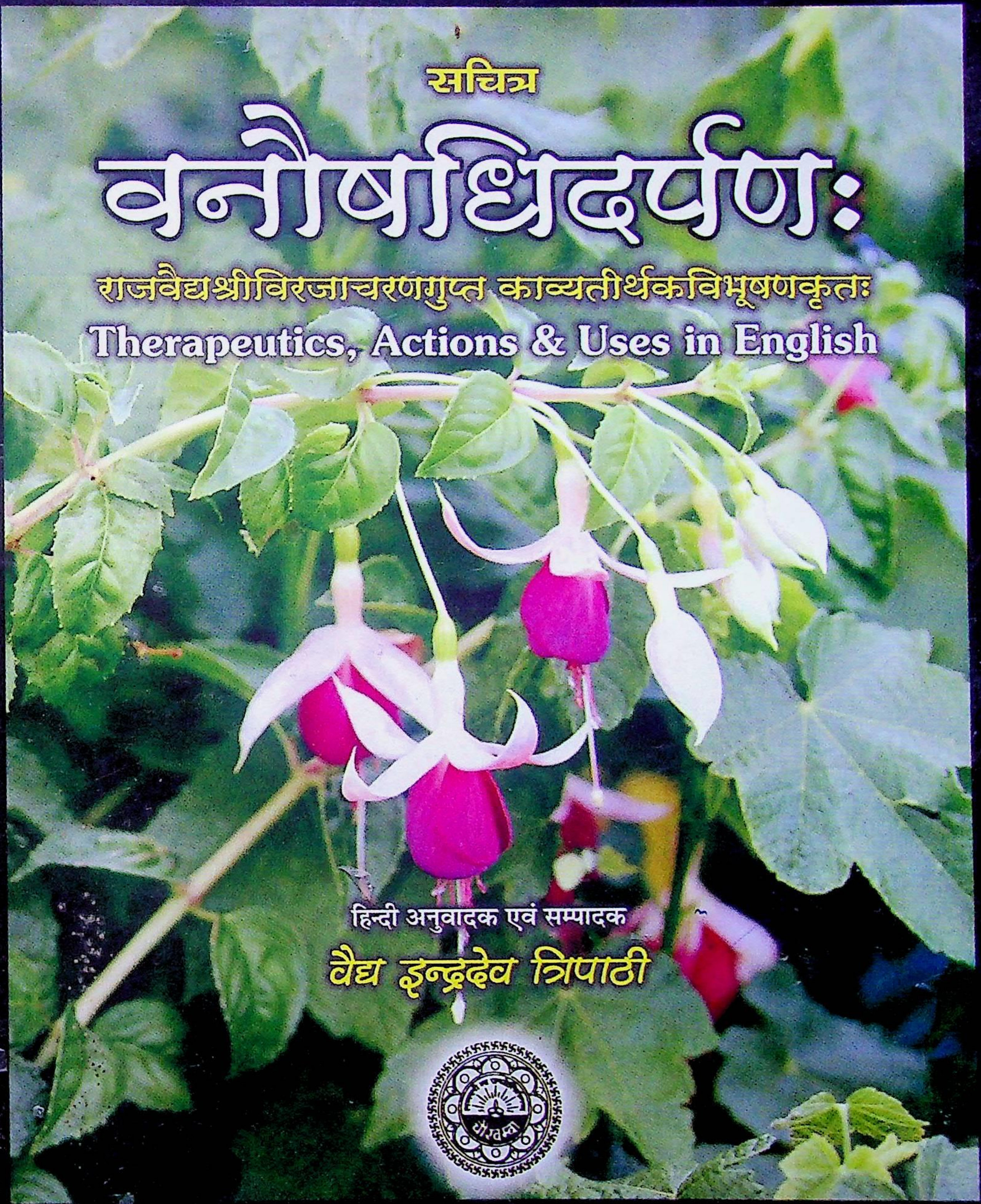
बनारस आयुर्वेद सीरीज ३०



सचित्र

वनौषधिदर्पणः

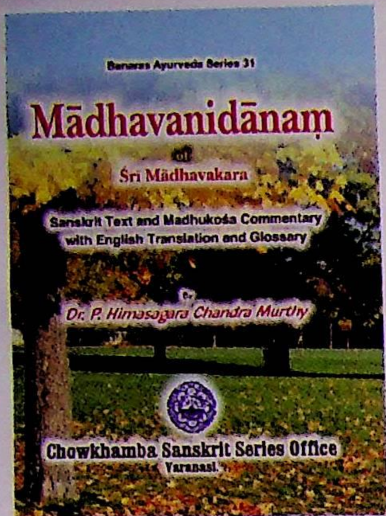
राजवैद्यश्रीविरजाचरणगुप्त काव्यतीर्थकविभूषणकृतः

Therapeutics, Actions & Uses in English

हिन्दी अनुवादक एवं सम्पादक

वैद्य इन्द्रदेव त्रिपाठी

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी



Madhavanidanam of Sri madhavakara with Madhukosa commentary of Vijayaraksita and Srikanthadatta part-I (1-32 chapters) is translated into English by Dr. P. Himasagara Chandra Murthy a reputed academician in the field of Ayurveda. The subject is presented in all clarity and simplicity to make this work understandable and adoptable to the English-knowing zealots of Ayurveda in particular. The text, as such, is louded for bringing together, vast subject of Ayurvedic diagnostics and presenting in a lucid manner. This translation will take it to the universal level making the work more worthy and useful to the medical field. In fact the expensive diagnostic aspect can be avoided effectively by following the principles laid down in this text.

The addition of Sanskrit - English glossary adds to the utility of this work making it a monumental one. The students, researchers and practitioners will find this as a must for their ready reference at every step. The Chowkhamba Sanskrit Series Office, the publishers have made a worthy attempt in publishing this translation. The author, who has already proved his mite through his translation of Sarangadhara Samhita, deserves all the commendation for his skills in translation and presentation.

Dr. P. Himasagara Chandra Murthy 350.00

बनारस आयुर्वेद सीरीज
३०
***

सचित्र

वनौषधिदर्पणः

राजवैद्यश्रीविरजाचरणगुप्त काव्यतीर्थकविभूषणकृतः
वनौषधीनां गुणमात्रावर्णनोत्पत्ति-प्रचार-प्राचीन-
नवीनमतानुसारयोजनादिभिः समलंकृतः
अभिनवोनिघण्टु

हिन्दी अनुवाद सहित

अनुवादक एवं सम्पादक
डॉ. इन्द्रदेव त्रिपाठी

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : द्वितीय, वि०सं० २०७०, सन् २०१४
मूल्य : रू० ६००.००

ISBN : 978-81-7080-209-1

600/-

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
(गोपाल मन्दिर के उत्तरी फाटक पर)
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३३४५८ (आफिस), २३३४०३२ एवं २३३५०२० (आवास)
Fax : 0542-2333458
e-mail : cssoffice@satyam.net.in
web site : www.chowkhambaseries.com

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी

के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १११८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३३४५८ P.P. & २३३५०२०

BANARAS AYURVEDA SERIES
30
* * *

VANAUṢADHI DARPAṆA

OR
THE AYURVEDIC VEGETABLE MATERIA MEDICA

With
Quotations And Copious Original Prescriptions From Standard Works
&
Constituents, Therapeutics, Actions and uses etc.

By
KAVIRAJA BIRAJA CHARAN GUPTA KAVIBHUSHAṆA
THE RAJVAIDYA OF COOCH BEHAR

Hindi Translation
By
DR. INDRADEV TRIPATHI

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
VARANASI

Publisher : Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi
Printer : Chowkhamba Press, Varanasi

ISBN : 81-7080-209-1

Publishers and Oriental and Foreign Book-sellers
K . 37/99, Gopal Mandir Lane
At the North Gate of Gopal Mandir
Near Golghar (Maidagin)
Post Box No. 1008, Varanasi- 221001 (India)
Phone { Office : (0542) 2333458
Resi. : (0542) 2334032, 2335020
Fax : 0542-2333458
e-mail : cssoffice@satyam.net.in
web-site : www.chowkhambaseries.com

Also can be had from :
CHOWKHAMBA KRISHNADAS ACADEMY
Oriental Publishers & Distributors
K. 37/118, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1118, Varanasi- 221001
(INDIA)
Phone : (0542) 2333458 P.P. & 2335020

निघण्टु व्यवहृत पारिभाषिक शब्दों के अर्थ

(1) शीतः—

ह्लादनः स्तम्भनः शीतो मूर्च्छातृड्दाहस्वेदजित् । शीत पदार्थ उसे कहते हैं जो ह्लादन अर्थात् सुखकारी तथा स्तम्भन अर्थात् अतिसार एवं रक्तप्रवृत्तिका रोधक हो और मूर्च्छा, तृष्णा, दाह एवं स्वेद का प्रशमन करता हो।

(2) उष्णः—

उष्णस्तद्विपरीतः स्यात् पाचनश्च विशेषतः। उष्ण पदार्थ उसे कहते हैं जो शीत के विपरीत गुण से युक्त हो अर्थात् ह्लादन न हो, स्तम्भन न हो तथा मूर्च्छा, तृष्णा, दाह एवं स्वेद का प्रशमन न करता हो; विशेषतः ब्रण आदि का पाचन करता हो।

(3) स्निग्धः—

स्नेहमार्दवकृत् स्निग्धो बलवर्णकरस्तथा। स्निग्ध पदार्थ उसे कहते हैं जो स्नेह एवं मृदुता का कारण हो तथा बल एवं वर्ण का कारक हो।

(4) रूक्षः—

रूक्षस्तद्विपरीतः स्याद् विशेषात् स्तम्भनः खरः। रूक्ष पदार्थ उसे कहते हैं जो स्निग्ध के विपरीत गुणों से युक्त हो अर्थात् जो स्नेह एवं मृदुता का कारण न हो तथा बल एवं वर्ण का कारक न हो; विशेषतः खर एवं स्तम्भन हो।

भाव मिश्र के अनुसार—स्निग्धं वातहरं श्लेष्मकारि वृष्यं बलावहम् । रूक्षं समीरणकरं परं कफहरं मतम् ।। स्निग्ध पदार्थ वायुनाशक, श्लेष्मजनक, वृष्य एवं बलवर्धक होता है; जबकि रूक्ष पदार्थ वायुकारक एवं अत्यन्त कफनाशक होता है।

(5) पिच्छिलः—

पिच्छिलो जीवनो बंल्यः सन्धानः श्लेष्मलो गुरुः। पिच्छिल पदार्थ उसे कहते हैं जो जीवनरक्षक, बलप्रद, सन्धान अर्थात् टूटे-फूटे को जोड़ने वाला, श्लेष्मजनक तथा गुरु हो।

(6) विशदः—

विशदो विपरीतोऽस्मात् क्लेदाचूषणरोपणः। विशद पदार्थ उसे कहते हैं जो पिच्छिलके विपरीत गुणों से युक्त हो अर्थात् जीवन रक्षक न हो, बलप्रद न हो, सन्धान न हो, श्लेष्मजनक न हो तथा गुरु न हो; बल्कि क्लेदशोषक अर्थात् आर्द्रता का नाश हो तथा क्षत को भरने वाला हो।

(7) तीक्ष्णः—

दाहपाककरस्तीक्ष्णः स्रावणो.......। तीक्ष्ण पदार्थ उसे कहते हैं जो दाहकारक तथा व्रणादि को पकाता हो और लार एवं व्रणादि का स्राव कराता हो।

भावमिश्र के अनुसार—तीक्ष्णं पित्तकरं प्रायो लेखनं कफवातहृत्। तीक्ष्ण पदार्थ प्रायः पित्तजनक, लेखन तथा कफ और वात का नाशक होता है।

(8) मृदुः—

मृदुरन्यथा। मृदु पदार्थ उसे कहते हैं जो तीक्ष्ण के विपरीत गुणों से युक्त हो अर्थात् दाहकर न हो, व्रणादिका पाचक न हो तथा लार आदि का स्रावक न हो।

(9) गुरुः—

सादोपलेपबलकृद् गुरुस्तर्पणो बृंहणः। गुरु पदार्थ उसे कहते हैं जो सादकृत् अर्थात् अङ्गग्लानिजनक, उपलेपकृत् अर्थात् मलवृद्धिकर, बलप्रद तथा तर्पण अर्थात् तृप्तिजनक एवं बृंहण अर्थात् देहवृद्धिकर हो।

(10) लघुः—

लघुस्तद्विपरीतस्याल्लेखनो रोपणस्तथा। लघु पदार्थ उसे कहते हैं जो गुरु के विपरीत गुणों से युक्त हो अर्थात् जो अङ्गग्लानिजनक न हो, मल की वृद्धि करने वाला न हो, बलप्रद न हो, तृप्तिकारक न हो तथा शरीर की वृद्धि करने वाला न हो; बल्कि लेखन एवं क्षत का रोपण करता हो।

भावमिश्र के अनुसार—लघु पथ्यं परं प्रोक्तं कफघ्नं शीघ्रपाकि च। गुरु वातहरं पुष्टिश्लेष्मकृच्चिरपाकि च।। लघु पदार्थ सर्वश्रेष्ठ पथ्य कहलाता है तथा कफनाशक एवं शीघ्र परिपाचन करता है। गुरु पदार्थ वायुनाशक, पुष्टिकारक, श्लेष्मजनक तथा विलम्ब से परिपाचन करता है।

(11) द्रवः—

द्रवः प्रक्लेदनः सान्द्रः स्थूलः स्याद् बन्धकारकः। द्रव पदार्थ उसे कहते हैं जो क्लेदकर, गाढ़ा, स्थूल तथा विबन्धक होता है।

भावमिश्र के अनुसार—स्थूलः स्थौल्यकरो देहे स्रोतसामवरोधकृत् । द्रवः क्लेदकरो व्यापी शुष्कस्तद्विपरीतकः।। द्रव पदार्थ ठोस, मोटापा करने वाला, शरीर में स्रोतों का अवरोध करने वाला, क्लेद जनक तथा व्याप्त रहने वाला होता है; जबकि शुष्क इसका विपरीत होता है।

(12) श्लक्ष्णः—

श्लक्ष्णः पिच्छिलवज्ज्ञेयः। श्लक्ष्ण पदार्थ उसे करते हैं जो कि पिच्छिल के समान हो।

भावमिश्र के अनुसार—श्लक्ष्णः स्नेहं विनापि स्यात् कठिनोऽपि हि चिक्कणः। स्नेह के विना भी श्लक्ष्ण पदार्थ कठिन होने पर भी चिक्कन होता है।

(13) कर्कशः—

कर्कशो विशदो यथा। कर्कश पदार्थ उसे कहते हैं जो विशद के समान हो।

(14) सुगन्धः—

सुखानुबन्धी सूक्ष्मश्च सुगन्धो रोचनो मुदुः। सुगन्ध पदार्थ उसे कहते हैं जो सुखकारक, सूक्ष्म, क्षुधावर्द्धक तथा मृदु हो।

(15) दुर्गन्धः—

दुगन्धो विपरीतोऽस्माद्धृल्लासारुचिकारकः। दुर्गन्ध पदार्थ उसे कहते हैं जो सुगन्ध के विपरीत गुणों से युक्त हो तथा वमन एवं अरुचिका कारक हो।

(16) सरः—

सरोऽनुलोमनः प्रोक्तः। सर पदार्थ उसे कहते हैं जो अपान वायु एवं मल का प्रवर्तक हो।

(17) मदः—

मदो यात्राकरः स्मृतः। मद उसे कहते हैं जो शरीर को गतिमान् बनावे।

(18) व्यवायि—

पूर्वं व्याप्याखिलं कायं ततः पाकञ्च गच्छति। व्यवायि तद् यथा भङ्गा फेनञ्चाहि समुद्भवम्।। जो पदार्थ पहले शरीर

में व्याप्त होकर बाद में परिपाकता को प्राप्त होता है उसे व्यवायि कहते हैं। जैसे—भाङ्ग तथा अफीम। सामान्यतः भुक्त पदार्थ का पहले परिपाक होता है तथा बाद में वह शरीर में व्याप्त होता है।

(19) विकासी—

विकासी विकसन्नेवं धातुबन्धान् विमोक्षयेत् । विकासी पदार्थ उसे कहते हैं जो व्यवायि के गुणों से युक्त हो तथा बद्ध धातु को शिथिल करता हो।

(20) आशुकारी—

आशुकारी तथाशुत्वाद् धावत्यम्भसि तैलवत् । आशुकारी पदार्थ उसे कहते हैं जो शीघ्रता से तैलके समान जल में दौड़ता है।

व्यवायि, विकासी तथा आशुकारी—ये तीन गुण विशेषतः विष के हाते हैं।

(21) सूक्ष्मः—

सूक्ष्मस्तु सौक्ष्मात् सूक्ष्मेषु स्त्रोतःस्वनुसरः स्मृतः। सूक्ष्म पदार्थ उसे कहते हैं जो शरीर के सूक्ष्म से भी सूक्ष्म अर्थात् अतिसूक्ष्म स्त्रोतों में अनुसरण करता रहता हो।

(22) दीपनम्—

पचेन्नामं वह्निकृद् यद् दीपनं तद् यथा मिसिः। दीपन पदार्थ उसे कहते हैं जो आम परिपाक नहीं कर पाता हो; किन्तु पाकाग्नि को दीप्त करता हो। जैसे—सौंफ।

(23) पाचनम्—

पचत्यामं न वह्निञ्च कुर्याद् यत्तद्धि पाचनम् । पाचन पदार्थ उसे कहते हैं जो आम परिपाक करता हो किन्तु पाकाग्नि को दीप्त न करता हो। जैसे—नाग केसर।

(24) शमनम्—

न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि। समीकरोति संवृद्धान् शमनं तद् यथामृता।। शमन पदार्थ उसे कहते हैं जो दोषत्रय अर्थात् वात, पित्त एवं कफ दोषों को ऊर्ध्व तथा अधोमार्गों से अपसारित न करता हो, विद्यमान् दोष को प्रकुपित न करता हो तथा बढ़े हुए दोष का शमन करता हो। जैसे—अमृता अर्थात् गुरुच।

(25) अनुलोमनम्—

कृत्वा पाकं मलानां यद् भित्त्वा बन्धमधो नयेत् । तच्चानुलोमनं ज्ञेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी।। अनुलामन पदार्थ उसे कहते हैं जो अपक्व पदार्थ का परिपाक करके बद्ध मल को नीचे की ओर ले जाय। जैसे—हरीतकी अर्थात् हर्रे।

(26) स्रंसनम्—

पक्तव्यं यदपक्त्वैव श्लिष्टं कोष्ठे मलादिकम् । नयत्यधः स्रंसनं तद् यथा स्यात् कृतमालकः।। स्रंसन पदार्थ उसे कहते हैं जो कोष्ठ में स्थित अपक्व मल, कफ तथा पित्त को नीचे की ओर ले जाता हो। जैसे—कृतमालक अर्थात् अमलतास।

(27) भेदनम्—

मलादिकमबद्धं यद्बद्धं वा पिण्डितं मलैः। भित्त्वाधः पातयति यद्भेदनं कटुकी यथा।। भेदन पदार्थ उसे कहते हैं जो पतला, गाढ़ा या गुठली मल को पतला करके नीचे की ओर ले जाता हो। जैसे—कटुकी।

(28) रेचनम्—

विपक्वं यदपक्वं वा मलादिं द्रवतां नयेत् । रेचयत्यपि तज्ज्ञेयं रेचनं त्रिवृता यथा।। रेचन पदार्थ उसे कहते हैं जो पक्व या अपक्व मलादि को पतला करके नीचे के मार्ग से बाहर निकालता हो। जैसे—त्रिवृता।

(29) वमनम्—

अपक्वं पित्तश्लेष्मान्नचयमूर्ध्वं नयेत्तु यत् । वमनं तद्धि विज्ञेयं मदनस्य फलं यथा।। वमन पदार्थ उसे कहते हैं जो अपक्व पित्त, श्लेष्म तथा अन्न को ऊपर की ओर ले जा कर बाहर निकालता हो। जैसे—मदनफल।

(30) संशोधनम्—

स्थानाद् बहिर्नयेदूर्ध्वमधो वा मलसञ्चयम् । देहसंशोधनं तत् स्याद् देवरालीफलं यथा।। संशोधन पदार्थ उसे कहते हैं जो शरीर के सञ्चित मल को अपने स्थान से बाहर ऊपर या नीचे की ओर ले जाता हो। जैसे—देवदाली फल।

(31) ग्राहि—

दीपनं पाचनं यत् स्यादुष्णत्वाद् द्रवशोषकम् । ग्राहि तच्च यथा शुण्ठी जीरकं गजपिप्पली।। ग्राहि पदार्थ उसे कहते हैं जो दीपन, पाचन तथा उष्ण होने के कारण पदार्थ का शोषक हो। जैसे—शुण्ठी, जीरा तथा गजपिप्पली।

(32) स्तम्भनम्—

रौक्ष्याच्छैत्यात् कषायत्वाल्लघुपाकाच्च यद्भवेत् । वातकृत् स्तम्भनं तत् स्याद् यथा वत्सकटुण्टुकौ।। स्तम्भन पदार्थ उसे कहते हैं जो रूक्ष, शीत, कषाय तथा लघु पाकी होने से वात कारक हो। जैसे—कूटज तथा शोणाक।

सुश्रुत के टीकाकार श्री ब्रह्मदेव के अनुसार सङ्ग्राहि तथा स्तम्भन का लक्षण है— सङ्ग्राहि स्तम्भनाद् भिन्नं यथा तदभिदध्महे। आग्नेयगुणभूयिष्ठं तोयांशं परिशोष्य यत् ।। सङ्गृह्णाति मलं तत् स्याद् ग्राहि शुण्ठ्यादयो यथा। समीरगुणभूयिष्ठं शीतत्वाद् यन्नभ् स्वतः। विधाय वृद्धिं स्तम्भाति स्तम्भनं तद् यथा वटः।। सङ्ग्राहि जिस प्रकार से स्तम्भन से भिन्न है उसका कथन करते हैं। अग्नि के गुण की अधिकता होने से जलीय अंश का परिशोषण करके जो मल का सङ्ग्रहण करता है उसे सङ्ग्राहि कहते हैं। जैसे—शुण्ठी आदि पदार्थ। वायु के गुण की अधिकता होने के कारण शीत होने से जो वायु की वृद्धि का स्तम्भन करता है उसे स्तम्भन कहते हैं। जैसे—वट।

(33) छेदनम्—

श्लिष्टान् कफादिकान् दोषानुन्मूलयति यद् बलात् । छेदनं तद् यथा क्षारा मरिचानि शिलाजतु।। छेदन पदार्थ उसे कहते हैं जो जमे हुए कफादिक दोषों को बलपूर्वक उखाड़ डालता हो। जैसे—सभी क्षार, मरिच तथा शिलाजतु।

(34) लेखनम्—

धातून् मलान् वा देहस्य विशोष्योल्लेखयेच्च यत् । लेखनं तद् यथा क्षौद्रं नीरमुष्णं वचा यवाः ।। लेखन पदार्थ उसे कहते हैं जो शरीर के धातु तथा मलों को सूखा कर कृश बना दे। जैसे—मधु, उष्ण जल, वचा तथा यव।

शल्य तन्त्र के अनुसार लेखन का अर्थ है—चर्म या व्रण का दारण करना।

(35) वाजिकरणम्—

यस्माद् द्रव्याद् भवेत् स्त्रीषु हर्षो वाजीकरं हि तत् । यथाश्वगन्धा मुषली शर्करा च शतावरी।। वाजीकरण पदार्थ उसे कहते हैं जो स्त्रियों में रमण करने हेतु पुरुषों में रमण-सामर्थ्य उत्पन्न करता है या शुक्र की वृद्धि करता है। जैसे—अश्वगन्धा, मुषली, चिनि तथा शतावर।

वाजीकरण के तीन प्रकार के पदार्थ होते हैं—जनक, प्रवर्तक तथा जनक प्रवर्तक। श्री ब्रह्मदेव के अनुसार—

जनक—तत्र जनकं मांसघृतादिकं यत् रसादि क्रमेण परिणतं प्रधानधातुपुष्टिं करोति। जनक मांस, घृत आदि हैं जो कि रसादि धातु क्रम से परिणत होकर प्रधान धातु की पुष्टि करते हैं।

प्रवर्तक—प्रवर्तकमुच्चटाचूर्णादिकं शुक्रविरेचनकरम् । न च तस्य वैरेचनिकोक्त्य शुक्रक्षयकारित्वं स्यात् । यतो विरेचनं शुक्रस्य पातनायाभिमुखीभावमात्रकरणम् । प्रवर्तक उच्चटा अर्थात् गुञ्जा आदि के चूर्ण हैं जो कि शुक्र का विरेचन करते हैं; न कि 'विरेचन कर' कहने से शुक्रक्षयकारित्व समझे जायें; क्योंकि विरेचन केवल शुक्र के मुख को पतन मार्ग की ओर कर देता है।

जनक-प्रवर्तक—जनक-प्रवर्तकं तु क्षीर-गव्य-घृत-गोधूम-माष-काकाण्डफलादिकम् । जनक प्रवर्तक तो दुग्ध, गव्य, घृत, गेहूँ, उड़द, काकाण्ड फल आदि हैं।

(36) शुक्रलम्—

यस्माच्छुक्रस्य वृद्धिः स्यात् शुक्रलं हि तदुच्यते। यथा नागबलाद्याः स्यूर्बीजञ्च कपिकच्छुजम्।। शुक्रल पदार्थ उसे कहते हैं जो शुक्र की वृद्धि करता हो। जैसे—नागबलादि तथा कपिकच्छुका बीज।

(37) रसायनम्—

रसायनं तु तज्ज्ञेयं यज्जराव्याधिनाशनम्। यथामृता रुदन्ती च गुग्गुलुश्च हरीतकी।। रसायन पदार्थ उसे कहते हैं, जो शरीर की जर्जरता तथा व्याधिका नाश करता हो। जैसे—गुडूची, रुदन्ती, गुग्गुल तथा हरीतकी।

(38) विकाशि—

सन्धिबन्धांस्तु शिथिलान् यत्करोति विकाशि तत् । विशोष्यौजश्च धातुभ्यो यथा क्रमुककोद्रवौ।। विकाशि पदार्थ उसे कहते हैं जो शरीर के समस्त धातुओं से ओज का शोषण करके सन्धिबन्धों को शिथिल कर देता हो। जैसे—सुपारी तथा कोदो।

(39) मदकारि—

बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारि तदुच्यते। तमोगुणप्रधानञ्च यथा मद्यं सुरादिकम्।। मदकारि पदार्थ उसे कहते हैं जो तमो गुण प्रधान हो तथा बुद्धि का नाश करता हो। जैसे—मद्य तथा सुरा आदि।

(40) अभिष्यन्दि—

निजवीर्येन यद् द्रव्यं रुद्धा रसवहाः सिराः। धत्ते यद् गौरवं तत् स्यादभिष्यन्दि यथा दधि।। अभिष्यन्दि पदार्थ उसे कहते हैं जो अपनी शक्ति से अर्थात् पिच्छिलता एवं गुरुता के कारण रसवाही सिरागण को अवरुद्ध करके शरीर को भारी बना देता हो। जैसे—दही।

(41) विदाही—

विदाही द्रव्यमुद्गारमम्लं कुर्यात् तथा तृषाम्। हृदि दाहञ्च जनयेत् पाकं गच्छति तच्चिरात्।। विदाही पदार्थ उसे कहते हैं जो खट्टी डकार, प्यास तथा हृदय में दाह उत्पन्न करता हो और देर से पचता हो।

(42) योगवाहि—

गृह्णाति योगवाहि द्रव्यं संसर्गिवस्तुगुणान् । पच्यमानं यथैतन्मधुजल-तैलाज्य-सूतलौहादि।। योगवाहि पदार्थ उसे कहते हैं जो संसर्गि वस्तु के गुण का ग्रहण कर लेता है। जैस—पकाये जाने पर मधु और जल, तेल और घी तथा पारद और लौह आदि।

(43) स्थिरः—

स्थिरो वातमलस्तम्भी। स्थिर पदार्थ उसे कहते हैं जो अपान वायु तथा मल का रोधन करता हो।

(44) सरः—

सरस्तेषां प्रवर्तकः। सर पदार्थ उसे कहते हैं जो रुद्ध अपान वायु तथा मल का प्रवर्तक हो।

(45) दारणम्—

दारणं विदारणं पक्वशोफस्य। (श्रीकण्ठः)। श्रीकण्ठ के अनुसार दारण पदार्थ उसे कहते हैं जो लेप से पके हुए फोड़े को फोड़ डालता हो। दारण पदार्थ दो प्रकार के होते हैं—सुकुमार तथा दारुण। सुकुमार दारण पदार्थ जैसे—कबूतर का मल आदि। दारुण दारण पदार्थ जैसे—क्षार।

(46) पीडनम्—

पीडनमौषधैः पचनम्। (डल्हणः)। डल्हण के अनुसार पीडन पदार्थ उसे कहते हैं जिसके लेपन से ब्रण से पूय निर्गत होता है। लेपन करने की विधि है—ब्रणमुखं बहिष्कृत्य लेपयेत्। लिप्ता च शोषयेत्। शुष्कं सत् पीडनं भवति। ब्रण के मुख को बाहर निकाल कर लेपन करें और लेप को सूख जाने दें। सूख जाने पर पीडन है अर्थात् पूय बाहर निकल जाता है। पीडन पदार्थ जैसे—शेलू, शाल्मली, वट आदि।

(47) ग्लपनम्—

हर्षक्षयकरमवृष्यञ्च। ग्लपन पदार्थ उसे कहते हैं जो नपुंसकता का प्रदान करता है तथा हर्ष का क्षय करता हो।

(48) विचारणम्—

मनसोऽनेकविकल्पकरणम्। (डल्हणः)। विचारण पदार्थ उसे कहते हैं जो मन में नाना प्रकार के विचारों को उत्पन्न करता हो। जैसे—परिमित मात्रा में अफीम।

(49) सन्धानम्—

घातविशेषात् द्विधाभूतस्यावयवस्यैक्यभावः। (डल्हणः)। सन्धानपदार्थ उसे कहते हैं जो विशिष्ट चोट के कारण दो टुकड़े हुए अवयवों को एक बना देता हो। जैसे—लाक्षा उरःसन्धानकारी है तथा बबूल भग्नसन्धानकारी है।

(50) जीवनीयम्—

जीवने हितो जीवनीयः। जीवनीय शब्देनेहायुष्यत्वमभिप्रेतम्। मूर्च्छितस्य संज्ञाजनकत्वेऽपि जीवनीयत्वं व्याख्येयम्। जीवनीय पदार्थ उसे कहते हैं जो आयु के लिए हितकर हो। जीवनीय शब्द का तात्पर्य आयुष्यत्व है। मूर्छित व्यक्ति की चेतना प्राप्ति के जनक के रूप में जीवनीय शब्द की व्याख्या करनी चाहिए।

(51) तृप्तिघ्नम्—

तृप्तिः श्लेष्मविकारो येन तृप्तमिवात्मानं मन्यते तद्घ्नं तृप्तिघ्नम् । तृप्ति श्लेष्म विकार है, जिससे कि बिना भोजन किये ही अपने को व्यक्ति तृप्त मानता हो। ऐसी तृप्ति को नष्ट करने वाले पदार्थ को तृप्तिघ्न कहते हैं। जैसे—विडङ्ग तथा गुडूची।

(52) विरेचनोपगः—

विरेचनक्रियायां सहायत्वेनोपगच्छतीति विरेचनोपगः। (चक्रपाणिः)। विरेचनोपग पदार्थ उसे कहते हैं जो विरेचन की क्रिया में सहायक बनता हो। जैसे—द्राक्षा, गम्भारी तथा अभया। इसी प्रकार स्वेदोपग, वमनोपग आदि को जानना चाहिए।

(53) पुरीषविरजनीयः—

पुरीषस्य विरजनं दोषसम्बन्धनिरासं करोतीति पुरीषविरजनीयः। (चक्रपाणिः)। पुरीष विरजनीय पदार्थ उसे कहते हैं जो मल के दोष सम्बन्धों का निरास करता हो।

(54) शोणितास्थापनम्—

शोणितस्य दुष्टस्य दुष्टिमपहृत्य प्रकृतौ शोणितं स्थापयतीति शोणितास्थापनम्। (चक्रपाणिः)। शोणितास्थापन पदार्थ उसे कहते हैं जो दूषित रक्त के दोष को निकाल कर रक्त को प्रकृतिस्थ करता हो। जैसे—मधु, यष्टिमधु तथा कुङ्कुम।

शल्यतन्त्र के अनुसार—शोणितास्थापनं शोणितातिप्रवृत्तिस्तम्भनम् । (डल्हणः)। रक्त के अत्यधिक स्राव के रोकने को शोणितास्थापन कहते हैं। शोणितास्थापनं चतुर्विधं यथा—सन्धानं स्कन्दनञ्चैव पाचनं दहनं तथा। शोणतास्थापन चार प्रकार का है। जैसे—सन्धान, स्कन्दन, पाचन तथा दहन।

(55) वेदनास्थापनम्—

वेदनायां सम्भूतायां तां निहत्य शरीरं प्रकृतौ स्थापयतीति वेदनास्थापनम् । (चक्रपाणिः)। वेदनास्थापन पदार्थ उसे कहते हैं जो उत्पन्न हुई वेदना को नष्ट करके शरीर को प्रकृतिस्थ करता हो।

(56) प्रजास्थापनम्—

प्रजोपघातकं दोषं हत्वा प्रजां स्थापयतीति प्रजास्थापनम् । (चक्रपाणिः)। प्रजास्थापन पदार्थ उसे कहते हैं जो गर्भ को नष्ट करने वाले दोष को दूर कर गर्भ स्थापन करता हो।

(57) शोणितप्रसादनम्—

शोणितप्रसादन को शोणितास्थापन भी कहते हैं।

(58) निर्वापणम्—

पाकाभिमुखिनो व्रणशोथस्य दाहतोदप्रशमनं निर्वापणम् । निर्वाप पदार्थ उसे कहते हैं जो पाकाभिमुखी व्रण शोथ के दाह एवं पीड़ा का प्रशमन करता हो। जैसे—पञ्चवल्कल।

(59) संज्ञास्थापनम्—

संज्ञां ज्ञानञ्च स्थापयतीति संज्ञास्थापनम्। (चक्रपाणिः)। संज्ञास्थापन पदार्थ उसे कहते हैं जो चेतना और ज्ञान का स्थापन करता हो। जैसे—हिंग।

(60) वयःस्थापनम्—

वयस्तरुणं स्थापयतीति वयःस्थापनम् । (चक्रपाणिः)। वयःस्थापन पदार्थ उसे कहते हैं जो वयः अर्थात् तरुणता का स्थापन करता है। जैसे—शालपर्णी, मण्डूकपर्णी, पूनर्नवा इत्यादि।

(61) विम्लापनम्—

अङ्गुल्यादिमर्दनेन विलयनं विम्लापनम्। (डल्हणः)। अङ्गुलि आदि के द्वारा मर्दनपूर्वक अपक्व फोड़े को बैठा देना विम्लापन कहलाता है।

श्रीकण्ठ कहते हैं—विम्लापनमिह केवलमङ्गुष्ठादिमर्दनेन परिभाषितं ग्राह्यम्, किन्तु विम्लायत अनेनेति व्युत्पत्त्या बहिर्मार्जनरूपे शमने शोफविलयकरे प्रलेपनपरिषेकाभ्यङ्गादावपि वर्तते। यहाँ पर परिभाषित विम्लापन शब्द केवल अङ्गुलि आदि के द्वारा मर्दनपूर्वक के रूप में ग्राह्य है; किन्तु 'इसके द्वारा विम्लापन किया जाता है' इस व्यूत्पत्ति से बहिर्मार्जन रूप शमन में, शोफ के बढ़ाने में, प्रलेपन, परिषेक तथा अभ्यङ्ग आदि में भी विम्लापन शब्द ग्राह्य है; इस प्रकार के पदार्थ को विम्लापन पदार्थ कहते हैं। जैसे—चीड़ वृक्ष का गोंद।

(62) पाचनः—

पाचनो दोषामयोः शोथस्य वा। पाचन पदार्थ उसे कहते हैं जो दोष अर्थात् वात, पित्त एवं कफ दोष तथा रोग का अथवा शोथ का परिपाक करता हो।

(63) जरणः—

जरण आहारस्य। जरण पदार्थ उसे कहते हैं जो खाये गये पदार्थ को जीर्ण कर दे।

(64) तर्पणः—

तर्पणस्तृप्तिजनको धातुवर्द्धनश्च। तर्पण पदार्थ उसे कहते हैं जो तृप्ति जनक तथा धातुवृद्धिकर हो। जैसे—द्राक्षा।

(65) बृंहणः—

बृंहणो देहस्थूलकरः। बृंहण पदार्थ उसे कहते हैं जो धातु, बल आदि की वृद्धि कर शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाता हो।

उपचय शब्द इसका पर्याय है। कायचिकित्सा में बृंहण विपरीतार्थ लेखन शब्द प्रयुक्त हुआ है।

(66) पुंस्त्वोपघाति—

पुंस्त्वोपघाति शुक्रक्षयकरम् । पुंस्त्वोपघाति पदार्थ उसे कहते हैं जो शुक्र का क्षय करता हो। जैसे—क्षार आदि।

वृन्दमाधव के अनुसार—अन्नैरम्लोष्णलवणैरतिमात्रोपसेवितैः सौम्यधातुक्षयो दृष्टः। अम्ल, उष्ण तथा लवण युक्त अन्न के अत्यधिक मात्रा में सेवन करने से शुक्र का क्षय होना देखा गया है।

(67) मार्गविशोधनः—

मूत्रनाडीव्रणादिमार्गविशोधनः। (डल्हणः)। मूत्र, नाड़ी, ब्रण आदि के मार्ग का विशोधन करना मार्ग विशोधन कहलाता है।

(68) कोष्ठविदाही—

कोष्ठविदाही पदार्थ उसे कहते हैं जो अत्यधिक सेवन से उदर के आन्तरिक भाग में जलन उत्पन्न करता हो। जैसे—अम्ल।

(69) कफविलयनम्—

कफविलयन पदार्थ उसे कहते हैं जो सेवन करने से अत्यन्त शुष्क श्लेष्म को तरल बना देता हो। जैसे—अत्यधिक मात्रा में उपभुक्त अम्ल रस।

(70) अनागतावाधप्रतिषेधः—

अनागतावाधप्रतिषेध पदार्थ उसे कहते हैं जो आने वाली पीड़ा का निवारण करता हो। जैसे—लोध्र आने वाली आँख की पीड़ा को दूर करता है तथा भृङ्गराज आने वाले पलित रोग का प्रतिषेध करता है।

(71) मूत्रविरेचनीयः—

मूत्रस्य विरेचनं करोतीति मूत्रविरेचनीयः। (चक्रपाणिः)। मूत्रविरेचनीय पदार्थ उसे कहते हैं जो मूत्र का स्राव करता हो। जैसे—गोक्षुर। 'मूत्रल' शब्द मूत्रविरेचनीय का पर्याय है।

(72) मूत्रजननः—

मूत्रजनन पदार्थ उसे कहते हैं जो मूत्र का उत्पादक हो। जैसे—ईख। 'मूत्रवर्द्धन' शब्द मूत्रजनन का पर्याय है।

(73) श्लेष्मप्रसेकि—

श्लेष्मप्रसेकि पदार्थ उसे कहते हैं जो श्लेष्म का स्राव कराता हो। जैसे—आर्द्रमरिच अर्थात् हरी मिर्च। 'कफोत्सारि' और 'कफनिर्हरण' शब्द श्लेष्मप्रसेकि के पर्याय हैं।

(74) स्तन्यजननम्—

स्तन्यजनन पदार्थ उसे कहते हैं जो अधिक मात्रा में स्तन दुग्ध का उत्पादन करता हो।

(75) स्तन्यशोधनम्—

स्तन्यशोधन पदार्थ उसे कहते हैं जो स्तन दुग्ध का दोष दूरकर उसे शुद्ध करता हो।

(76) उत्क्लेशकारि—

उत्क्लेशकारि पदार्थ उसे कहते हैं जो उत्क्लेश अर्थात् मानो अभी-अभी वमन होने वाला हो, भाव को उत्पन्न करता हो।

(77) कण्ठ्यप्रभृति—

कण्ठ्य पदार्थ उसे कहते हैं जो कण्ठरोग को नष्ट करने वाला हो और कण्ठ के लिए हितकर हो। स्वर्य और स्वरशेधिनी कण्ठ्य के पर्याय हैं। प्रभृति शब्द से स्वर्य, नेत्र्य, केश्य, त्वच्य, दन्त्य, मेध्य, आयुष्य आदि समझना चाहिए।

(78) क्षवणः—

क्षवण पदार्थ उसे कहते हैं जो छींक उत्पन्न करता हो। जैसे—कट्फल प्रभृति।

—0—

भेषज कल्पना विषयक पारिभाषिक शब्दों के अर्थ

(1) क्वाथ—

दशरक्तिकमानेन गृहीत्वा तोलकद्वयम्। दत्त्वाम्भः षोडशगुणं ग्राह्यं पदावशेषितम् । दश रत्ति के परिमाण से दो तोला तक के भेषज द्रव्य को लेकर षोलह गुणा जल में पकाकर चार गुणा मात्र अर्थात् एक चौथाई मात्र शेष रखने की विधि को क्वाथ कहते हैं। 'शृत' शब्द क्वाथ का पर्याय है। जिन पदार्थों का पाचन करना हो उन सबका कुल मिला कर परिमाण दो तोला से अधिक नहीं होना चाहिए। जल आधा सेर, शेष आधा पाव बचेगा। मिट्टी के वर्तन में तथा लकड़ी की हल्की आँच से पाचन करें।

(2) शीतकषायः—

शीतः शर्वरीमुषितो मतः। द्रव्यादापोत्थितात् तोये प्रतप्ते निशि संस्थितात् । कषायो योऽभिनिर्याति स शीतः समुदाहृतः।। रात भर भींगे हुए को शीत कषाय कहते हैं। जिन द्रव्यों का कषाय बनाना हो उनको कूट कर गरम पानी में डाल कर रात भर भींगे रहने देने से शीतकषाय प्रस्तुत होता है। भेषज द्रव्य 1 तोला हो तो 6 तोला जल लें। इसी प्रकार भेषज द्रव्यों के छः गुणा जल होना चाहिए।

(3) फाण्टः—

क्षिप्तोष्णतोये मृदितः फाण्ट इत्यभिधीयते। भेषज द्रव्यों को उष्ण जल में डालकर कुछ देर मर्दन करके कपड़े से छानने पर फाण्ट तैयार होता है।

(4) स्वरसः—

स्वरसः स्वो रसः प्रोक्तः। गीले पदार्थ को पीस कर निकाले गये रस को स्वरस कहते हैं।

(5) कल्कः—

किसी द्रव्य के चूर्ण अथवा द्रव्य को शिल पर गिला पीसने पर कल्क तैयार होता है।

(6) पानीयम्—

कर्षमात्रं ततो द्रव्यं साधयेत् प्रास्थिकेऽम्भसि। भेषज द्रव्य दो तोला एवं दो सेर जल को पाक करके आधा शेष रहने पर उतार ले तो पानीय प्रस्तुत होता है।

(7) क्षीरपाकः—

द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरात् तोयं चतुर्गुणम् । क्षीरावशेषः कर्तव्यः क्षीरपाके त्वयं विधिः।। जिस द्रव्य का क्षीर पाक तैयार करना हो तो उस द्रव्य के आठ गुणा दुग्ध एवं दुग्ध का चार गुणा जल लें और क्षीरमात्र शेष रहने तक पाक करें तो क्षीरपाक तैयार होता है।

(8) भावना—

द्रवेन यावता सम्यक् चूर्णं सर्वं प्लुतं भवेत्। भावनायाः प्रमाणन्तु चूर्णे प्रोक्तम्। सप्ताहं भावनाविधिः। किसी औषध को जब क्वाथ या रस में डूबो कर धूप में सूखा लिया जाता है उसे भावना कहते हैं। यदि विशेष उल्लेख नहीं है तो सात बार डूबाने और सूखाने की क्रिया करें।

(9) पुटपाकः—

द्रव्यमोपोत्थितं जम्बूवटपत्रादिसम्पूटे। वेष्टयित्वा ततो बद्ध्वा दृढं रज्ज्वादिना तथा।। मृल्लेपं द्व्यङ्गुलं कुर्यादथवाङ्गुलिमात्रकम्। दहेत् पुटान्तरादग्नौ यावल्लेपस्य रक्तता।। जिस द्रव्य का पुटपाक करना हो उसको पानी से धोकर शुद्ध पीस डाले। उसके बाद जामुन और बरगद के पत्तों से पोटली बाँधकर उसके ऊपर एक या दो अंगूल मोटा मिट्टी का लेप लगावे। इस मिट्टी के पिण्ड को तब तक आग में पकावे जब तक मिट्टी के पिण्ड का ऊपरी भाग लाल न हो जाय। इसके बाद आग से निकाल कर उसके अन्दर में स्थित औषध को निकाल कर उससे रस निकाल लें। इसी को पूटपाक कहते हैं।

(10) काञ्जिकम्—

आशुधान्यं क्षोदितञ्च वालमूलन्तु खण्डशः। कृतं प्रस्थमितं पात्रं जलं तत्राढकं क्षिपेत्।। तावत् सन्धाय संरक्षेद् यावदम्लत्वमागतम्। काञ्जिकं तत्तु विज्ञेयमेतत् सर्वत्र पूजितम्।। कूटे हुए आशुधान्य अर्थात् भाद्रव-आश्विन में पकने वाले धान और कच्चीमूली को टुकड़े-टुकड़े काट कर दो सेर लें एवं आठ सेर जल के साथ मिट्टी के पात्र में रखकर पात्र के मुख को ढाँक लें। जितने दिन में जल अम्लरस हो जाय उतना दिन रखें। जल अम्ल हो जाने पर उसे छान लें। इसे काञ्जिक कहते हैं।

(11) आरणालम्—

तुलामितं षष्टिकतण्डुलस्य प्रगृह्य चान्नं विधिवद् विधाय। द्रोणेऽम्भसि क्षिप्तमथ त्रियामं तत् सप्त रक्षेत् पिहितं प्रयत्नात्। तत्रैव कल्कं सकलं निरस्येत् तत् काञ्जिकं कथ्यते आरणालम्।। साढ़े चार सेर पका हुआ षष्टिक धान के चावल का भात और बत्तीस सेर जल को इक्कीस दिन तक मिट्टी के पात्र में मुख ढँककर रखें तत्पश्चात् उसे छान लें। इसे आरणाल कहते हैं।

भाव मिश्र के अनुसार—छिलके निकले हुए कच्चे या पक्के हुए गेहूँ को उपर्युक्त प्रकार से तैयार करने पर आरणाल प्रस्तुत होता है।

(12) तुषाम्बु वा तुषोदकम्—

भृष्टान् माषतुषान् सिद्धान् यवांस्तु चूर्णसंयुतान् । आश्रृतानम्भसा तद्वत् जातं तच्च तुषोदकम्।। तुषोदकं यवैरामैः सतुषैः शकलीकृतैः। उरद की दाल के भुने हुए छिलके तथा सिद्ध और चूर्ण किये हुए यव को जल के साथ सिद्ध करके जब तक अम्लत्व प्राप्त न हो तब तक उसे रक्खें अथवा छिलके सहित कच्चे यव को कूट कर जल के साथ रखें जब तक अम्लत्व प्राप्त न हो जाय। इसे तुषोदक कहते हैं।

(13) सौवीरम्—

सौवीरं तु यवैरामैः पक्वैर्वा निस्तुषैः कृतम्। गोधूमैरपि सौविरमाचार्याः केचिदूचिरे।। छिलके निकाले गये कच्चे यव अथवा छिलके के साथ सिद्ध यव या गेहूँ को जल के साथ पात्र में ढँककर रखने पर सौवीर तैयार होता है, उसे यव सौवीर या गेहूँ सौवीर कहते हैं।

(14) शुक्तं चुक्रम्—

यन्मस्त्वादि शुचौ भाण्डे सगुडक्षौद्रकाञ्जिकम्। यथर्तु धान्यराशिस्थं शुक्तं चुक्रं तदुच्यते।। गुडमाक्षिकधान्याम्लमस्त्वम्बु द्विगुणं क्रमात्। संशन्ति चुक्रसिद्ध्यर्थं..........।। मस्तु आदिको परिष्कृत मिट्टिके भाण्ड में गुड़, मधु तथा काञ्जि के साथ ऋतु के अनुसार धान्यराशि के अन्दर रखने पर शुक्त चुक्र तैयार होता है। गुड़, मधु, काञ्जि, मस्तु तथा जल क्रम से दो गुणा अर्थात्

गुड़ के दो गुणा मधु, मधुके दो गुणा काञ्जि, काञ्जि के दो गुणा मस्तु (दो गुणा जलयुक्त दधि) और मस्तुके दो गुणा जल, मात्रा में चुक्र सिद्धि के लिए उत्तम कहे गये हैं। किस ऋतु में कितने दिन तक धान्यराशि के अन्दर रखना है इसके लिए यदि समय नियत नहीं किया गया है तो ऐसी परिस्थिति में विधि है—

घनात्यये तथा ग्रीष्मे सन्धानं षड्दिनं भवेत्। हेमन्ते शिशिरे स्थाप्यं भिषक् दृषिदि तेन वै।। प्रावृड्वसन्ते सन्धानं भवेदष्टदिनेन वै। सन्धानवर्ग में कहे गये सभी प्रकार के सन्धानीय वस्तुका सन्धान उपर्युक्त समय के अनुसार होता है।

(15) आसवः—

यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः। आत्रेय संहिता के अनुसार—सुरा में नाना प्रकार के कूटे हुए द्रव्यों को भींगा कर ढँके हुए पात्र में एक सप्ताह तक रखें और सप्ताह के अन्त में उसे छान लें तो वह जल आसव कहलाता है। वृद्ध सुश्रुत के अनुसार—यदि किसी द्रव्य का परिमाण नहीं दिया गया है तो ऐसी स्थिति में द्रव्य का विधान है—जल बतीस सेर, गुड़ साढ़े बारह सेर, मधु सवा छः सेर तथा ओषध द्रव्य सवा सेर।

(16) अरिष्टम्—पक्वौषधाम्बुसिद्धं यन्मद्यं तत्स्यादरिष्टकम्। सुरा में नानाप्रकार के ओषधि द्रव्यों के क्वाथ को ढँके हुए पात्र में एक सप्ताह तक रखने पर अरिष्ट तैयार होता है। आसव के समान अरिष्ट भी तैयार होता है। अरिष्ट में कूटे हुए ओषधि द्रव्य के स्थान पर ओषधि द्रव्यों के क्वाथ को पात्र में रखा जाता है।

(17) शीधुः—

शीधुरिक्षुरसैः पक्वैरपक्वैरासवो भवेत्। इक्षु रस को गरम कर भेषज द्रव्यों को उमसें भींगो कर पात्र में तैयार करने पर पक्व रस शीधु तैयार होता है तथा कच्चे ईक्षुरस में तैयार करने पर शीतरस शीधु तैयार होता है।

(18) आसुतम्—

कन्दमूलफलाद्यञ्च लवणोदकसंयुतम्। सन्धानाच्चिरकालाम्लमासुतं परिकीर्तितम्।। कन्दमूल फल आदि को पीस कर नमक मिले हुए जल में दीर्घकाल तक रखने पर जो अम्ल पदार्थ तैयार होता है उसे आसुत कहते हैं।

(19) प्रमथ्या—

प्रमथ्या प्रोच्यते द्रव्यं पलमात्रं सुकल्कितम्। किञ्चिदन्येन संयुक्तमथवान्यविवर्जितम्।। तोये चाष्टगुणे साध्यं...। जब किसी पीसे हुए आठ तोले द्रव्य को अन्य द्रव्य के साथ अथवा अकेले चौंसठ तोले जल के साथ पका करके चौथाई मात्र अवशेष रख दिया जाता है तो उसे प्रमथ्या कहते हैं।

(20) रसक्रिया, अवलेहः, प्राशः—

क्वाथादेर्यत् पुनः पाकाद् घनत्वं सा रसक्रिया। क्वाथ को पुनः पाक करके घनीभूत कर दिया जाता है तो उसे रसक्रिया कहते हैं। इसी को अवलेह या प्राश कहते हैं।

(21) लेपः—

लेपस्य दौ भेदौ—आलेपः प्रदेहश्च। तयोरालेप आर्द्रमाषिचर्मवच्छीतलस्तनुर्विशोषी च। प्रदेह आर्द्रो घन उष्णश्चेति। लेप दो प्रकार के होते हैं—आलेप तथा प्रदेह। आलेप गीले माहिष चर्म के समान शीतल, पतला तथा शीघ्र सुखने वाला होता है। प्रदेह गीला, गाढ़ा तथा उष्ण होता है।

(22) परिषेचनम्—

व्रणवेदनोपशमनार्थमुष्णक्वाथसेचनम्। व्रण की पीडा के उपशमन के लिए उष्ण क्वाथ के सेचन को परिषेचन कहते हैं।

(23) अवचूर्णनं गुण्डनञ्च—

यव आदि चूर्ण के द्वारा पूर्ण करने को अवचूर्णन कहते हैं तथा बुकनी करने को गुण्डन कहते हैं।

(24) उद्वर्तनम्—

कल्कचूर्णाभ्यां गात्रमर्दनम्। औषध द्रव्यों के कल्क तथा चूर्ण से किये जाने वाले शरीर मर्दन को उद्वर्तन कहते हैं।

(25) पिचुधारणम्—

भेषजसाधितक्वाथस्नेहाप्लुतस्य तूलकस्य वस्त्रखण्डस्य वा योनौ स्थापनम्। भेषज द्रव्यों से साधित क्वाथ या तैल में रुई या कपड़े के टुकड़े को भींगोकर योनि में स्थापित करना पिचुधारण कहलाता है।

(26) कवलः गुण्डूषश्च—

जितनी मात्रा में तरल द्रव को मुख में रख कर मुख का चालन कर सकते हैं उेस कवल तथा जितनी मात्रा में तरलद्रव को मुख में रखकर मुख का चालन नहीं कर सकते उसे गण्डूष कहते हैं।

(27) अञ्जनकर्म—

औषध द्रव्य का मधु आदि के साथ घीसकर अङ्गुलि से या शास्त्र में बताये गये शलाका से आँख में लगाने को अञ्जन कर्म कहते हैं। अञ्जन द्रव्य तीन प्रकार के होते हैं—लेखन, रोपण तथा प्रसाधन।

(28) आश्च्योतनम्—

उन्मिलिते दृङ्मध्मे क्वाथक्षौद्रासवस्नेहबिन्दूनां पातनम्। खुली हुई आँख में क्वाथ, मधु, आसव तथा तैल बिन्दुओं का डालना आश्च्योतन कहलाता है। मात्रा का निर्धारण इस प्रकार है—लेखनार्थ आठ बिन्दु, स्नेहनार्थ दस बिन्दु तथा रोपणार्थ बारह बिन्दु।

(29) विडालकः—

शालाक्येऽक्ष्णोर्बहिर्दत्तो लेपो विडालको मतः। आँख के बाहरी भाग में शलाका के द्वारा लगाये गये लेप को विडालक कहते हैं।

(30) पिण्डः—

पिण्डो नाम श्लक्ष्णवस्त्रोपरि निमीलितचक्षुसि धार्यो भेषजपिण्डः। बन्द की हुई आँख के ऊपर महीन कपड़े पर धारण किये जाने वाले भेषज पिण्ड को पिण्ड कहते हैं।

(31) वस्तिः—

चर्मपुटकद्वारेण गुदाध्वना क्वाथादिप्रदानरूपः कर्मविशेषः। स द्विविधः—अनुवासन-निरुहभेदात्। स्नेहवस्तिरनुवासनम्, कषायवस्तिर्निरुहः। चर्मपुटक के द्वारा गुदा मार्ग से क्वाथ आदि के दिये जाने वाले कर्म विशेष को वस्ति कहते हैं। वस्ति दो प्रकार के हैं—अनुवासन तथा निरुह। स्नेह द्रव्य के वस्ति कर्म को अनुवासन तथा कषाय द्रव्य के अर्थात् क्वाथ, दुग्ध आदि के वस्ति कर्म को निरुह कहते हैं। अनुवासन को मात्रावस्ति तथा निरुह को आस्थापन भी कहते हैं।

(32) शिरोवस्तिः—

शिरोवस्तिश्चर्मणः स्याद् द्विमुखो द्वादशाङ्गुलः। शिरः प्रमाणस्तं बद्ध्वा मस्तके माषपिष्ठकैः।। सन्धिरोधं विधायाशु स्नेहैः कोष्णैः प्रपूरयेत्। तावद्धार्यस्तु यावत् स्यान्नासाकर्णमुखश्रुतिः।। बारह अङ्गुल के एक चमड़े के टुकड़े को लेकर मस्तक की चारो ओर से लपेट कर शिर एवं चमड़े के बीच स्थित सन्धि का रोध माष पिष्ठ से कर लें तथा हल्के उष्ण तिल तैल

से चमड़े के घेरे के अन्दर शिर पर स्थित खाली स्थान को भर दें और रोगी को तब तक धारण करावे जब तक कि नाक, कान तथा मुख से स्राव न निकल जाय। इसी को शिरोवस्ति कहते हैं।

(33) स्वेदः—

व्यवहारप्रणाली के अनुसार स्वेद चार प्रकार का होता है—तापस्वेद, उपनाह स्वेद, द्रवस्वेद तथा वाष्प स्वेद। तप्तैः सैकतपाणिकांस्यवसनैः स्वेदोऽथवाङ्गारकैः। लेपाद्वातहरैः सहाम्ललवणस्नेहैः सुखोष्णैस्तथा। एवं तप्तपयोऽम्बु-वातशमनक्वाथादिसेकादिभिः। तप्तैस्तोयनिषेचनोद्भवबृहद्वाष्पैः शिलाद्यैः क्रमात्।। गरम किये गये बालुका, करतल, कांस्य पात्र या वस्त्र से अथवा अङ्गारक से जो स्वेद किया जाता है उसे ताप स्वेद कहते हैं। वातहर ओषधी के साथ हल्के गरम किये गये दूध, जल तथा वातशामक क्वाथ आदि के परिषेचन आदि के द्वारा जो स्वेद किया जाता है उसे द्रव स्वेद कहा जाता है। गरम किये गये दूध के परिषेचन से उठने वाले अत्यधिक वाष्पों से, शिलादि से जो स्वेद किया जाता है उसे वाष्पस्वेद कहते हैं।

(32) नस्यम्—

नस्यं तत्कथ्यते धीरैर्नासाग्राह्यं यदौषधम्। प्रतिमर्षोऽवपीडश्च नस्यं प्रधमनन्तथा।। शिरोविरेचनञ्चेति नस्य कर्म च पञ्चधा। जब ओषध का नाक के द्वारा ग्रहण किया जाता है तो विद्वान् लोग उसे नस्य कर्म कहते हैं। नस्य कर्म पाँच प्रकार के हैं—प्रतिमर्ष, अवपीड़, नस्य, प्रधमन तथा शिरोविरेचन।

—0—

द्रव्यविज्ञानीय अध्याय

आयुर्वेद में तीन प्रकार के द्रव्यों का व्यवहार पाया जाता है। तीन प्रकार के द्रव्य हैं—जाङ्गम, औद्भिद तथा पार्थिव। व्यवहार के अनुसार ही इनका लक्षण भी बताया गया है।

जाङ्गमः—

जिस द्रव्य में गमन करने की शक्ति हो उसे जाङ्गम कहते हैं। प्राणी को ही यहाँ जाङ्गम द्रव्य माना गया है। औषध के लिए जिन प्राणियों का ग्रहण किया जाता है उनको चार श्रेणी में रखा गया है। जीवित प्राणी, मृत प्राणी या उसके अङ्ग, प्राणी के शरीर से उत्पन्न वस्तु तथा प्राणी के द्वारा रचित पदार्थ। **जीवित प्राणी** के द्वारा किये गये कार्य जैसे—जोंक के द्वारा दूषित रक्त का शोषण कराना, यक्ष्म रोग से पीडित रोगी के लिए बकरी की सेवा करना इत्यादि। **मृतप्राणी या उसके अङ्गों** के अन्तर्गत प्रवाल, कौड़ि, शङ्ख, मुक्ता, शुक्ति तथा मांस, रक्त, वसा, मज्जा, चर्म, आँख, स्नायु, सींग, नाखून, खुरा, जिभ, आँत, केश इत्यादि आते हैं। **प्राणि के शरीर से उत्पन्न वस्तु** के अन्तर्गत मल, मूत्र, पित्त, लार, दूध, अण्डा, जहर, कस्तूरी इत्यादि आते हैं। **प्राणी के द्वारा रचित पदार्थ के अन्तर्गत** मधु, लाख इत्यादि आते हैं।

औद्भिदः—

औद्भिद द्रव्य उसे कहते हैं जो पृथ्वी का भेदन करके उत्पन्न होने वाला वनस्पति है, जैसे वृक्ष तथा उसके अङ्ग हैं। इसके अन्तर्गत कन्द, मूल, त्वक्, सार, काष्ठ, गोंद, पत्र, क्षार, क्षीर, फल, पुष्प, टूसा, अङ्कुर इत्यादि आते हैं।

पार्थिवः—

पृथिवी से उत्पन्न होने वाले निर्जीव वस्तु पार्थिव पदार्थ कहलाते हैं। पार्थिव पदार्थ के अन्तर्गत मिट्टी, पत्थर, पारद, स्वर्ण आदि धातु, मनःशिला, हरिताल, लवण, फिटकरी, सुहागा, कसीस, स्वर्णमाक्षिक, तूतिया, सर्जिका इत्यादि आते हैं।

'नानौषधीभूतं जगति किञ्चिद् द्रव्यमस्ति' के अनुसार संसार में प्रत्येक वस्तु ओषध ही है; क्योंकि जो वस्तु जिसका हित करता है अर्थात् उपकार करता है वह उपकरण वस्तु कहलाता है तथा जिसका हित करता है वह उपकार्य वस्तु कहलाता है। संसार में सभी वस्तु एक-दूसरे से उपकरण-उपकार्य भाव सम्बन्ध से जुड़े हुए हैं, एक-दूसरे के ओषध है अतः संसार की प्रत्येक वस्तु ओषध ही है। सुश्रुत में भी कहा गया है—'तस्योपकरणमन्यत्'।

यह जगत् पञ्च महाभूत—पृथ्वी, जल, वायु, तेजस्, आकाश की पञ्चीकृत प्रक्रिया से उत्पन्न है। प्रत्येक वस्तु में ये पाँचों तत्त्व रहते हैं; किन्तु जिसमें जिस तत्त्व की प्रधानता होती है वह वस्तु उसी तत्त्व के रूप में विशेषतः जाना जाता है। अतः पृथ्वी तत्त्व का प्राधान्य हो तो पार्थिव, जल तत्त्व का प्राधान्य हो तो जलीय या आप्य, वायु तत्त्व का प्राधान्य हो तो वायवीय, तेजस् तत्त्व का प्राधान्य हो तो तैजस्, आकाश तत्त्व की प्राधान्य हो तो आकाशीय द्रव्य कहलाता है। संसार के सारे द्रव्य गुण एवं कर्म के अनुसार इन पाँच महाभूतों के लक्षणों से परिलक्षित होते हैं। जैसे—

पार्थिव द्रव्य—

गुण—स्थूल, सार, सान्द्र अर्थात् गाढ़ा, मन्द अर्थात् तीक्ष्ण के विपरीत, स्थिर, खर, गुरु अर्थात् चिरपाकि, कठिन, गन्ध बहुल, ईषत् कषाय रस तथा प्रधानतः मधुर।

कार्य—स्थिरत्वकर, बलकर, काठिन्यजनक, स्थूलता सम्पादक तथा विशेषतः अधोगतिस्वभाव।

आप्य (जलीय) द्रव्य—

गुण—शीत, स्तिमित अर्थात् आर्द्र, स्निग्ध, मन्द, गुरु, सर, सान्द्र, मृदु, पिच्छिल, रसबहुल, स्वाद में ईषत् अम्ल, ईषत् कषाय, ईषत् लवण तथा प्रधानतः मधुर।

कार्य—स्निग्धकर, आह्लादजनक, क्लेदजनक, बन्धनकर तथा निष्यन्दकर।

तैजस द्रव्य—

गुण—उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, रूक्ष, खर, लघु, विशद, रूपगुण बहुल, ईषत् अम्ल रस, ईषत् लवण, प्रधानतः कटुरस तथा ऊर्ध्वगतिस्वभाव।

कार्य—दहन, पचन, दारण, तापन तथा प्रभावर्णकरण।

वायवीय द्रव्य—

गुण—सूक्ष्म, रूक्ष, खर, शिशिर, लघु, विशद, स्पर्श बहुल, ईषत् तिक्त तथा प्रधानतः कषाय रस।

कार्य—वैशद्यजनन, लघुतोत्पादन, अवृष्यकरण, रूक्षताजनन तथा विविध चिन्ताओं को उत्पन्न करना।

आकाशीय द्रव्य—

गुण—श्लक्ष्ण, सूक्ष्म, मृदु, व्यवायि, विशद, विविक्त अव्यक्त रस तथा शब्द बहुल।

कार्य—मार्दवकरण, छिद्रोत्पादन तथा लाघवकरण।

चरक के अनुसार द्रव्यों को तीन भागों में बाँटा गया है—1. त्रिदोष—वात-पित्त-कफ का प्रशमन करने वाले, 2. धातु—रस, रक्त, मांस आदि को प्रदूषित करने वाले तथा 3. स्वास्थ्य की रक्षा करने वाले। जैसा कि कहा है—किञ्चिद् दोषप्रशमनं किञ्चिद् धातुप्रदूषणम्। स्वस्थवृत्तो मतं किञ्चिद् त्रिविध द्रव्यमुच्यते।।

द्रव्य के गुण व कार्य के परिवर्तन में काल, संस्कार व कल्पना, अङ्ग विशेष, संयोग तथा देश कारक होते हैं। जैसे—

1. काल—द्रव्य के गुण में परिवर्तन करने वाले काल दो प्रकार के हैं—आवस्थिक तथा नित्यग। आवस्थिक जैसे—कच्चा वेल, कोहड़ा का एक गुण तो परिपुष्ट या परिपक्व का अन्य गुण होता है। नवीन घृत का गुड़ के साथ जो गुण होता है पुराने घृत का गुड़ के साथ वह गुण नहीं होता है बल्कि दोनों में बहुत अन्तर है। उसी प्रकार ताजा पदार्थ व वासी पदार्थ के गुणों में बहुत अन्तर है।

नित्यग जैसे—ऋतु विशेष में ओषधि के रूक्ष, स्निग्धत्वादि गुणों में अन्तर होता है।

2. संस्कार एवं कल्पना—संस्कार एवं कल्पना विशेष द्रव्यों के गुणों के परिवर्तन में कारक होता है। संस्कार विशेष में धान से प्रस्तुत चावल, चिवड़ा, भूना चावल, फोरवी, लावा आदि के गुणों में भिन्नता पायी जाती है। एक ही द्रव्य के शीत कषाय, फाण्ट, क्वाथ तथा स्वरस के गुणों में अन्तर पाये जाते हैं। बाह्य प्रयोग में कुरथी घर्मरोधक होता है तो खाने पर घर्मप्रद।

3. संयोग—संयोग भी द्रव्य के गुण परिवर्तन में कारक है। मछली के साथ दूध का प्रयोग होने पर गुण में परिवर्तन होता है। उसी प्रकार समान मात्रा में मधु के साथ घृत का प्रयोग करने पर भी होता है।

4. देश—देश भी गुणान्तर में कारक है। एक ही द्रव्य की भिन्न-भिन्न देश में उत्पत्ति होने पर उसके गुण में अन्तर पाया जाता है। जैसे बंगाल का अनार कषायाम्ल होता है जबकि अन्य स्थान का मधुर। इसी प्रकार यास एवं धन्वयास तथा लोध्र एवं शाबतर लोध्र के गुणों में अन्तर पाया जाता है।

—0—

रस-वीर्य-विपाक-प्रभाव विज्ञानीय अध्याय

रस

रस का लक्षण—

रसनार्थो रसः। द्रव्य के जिस गुण को जिह्वा जान सकती है उसे रस कहते हैं।

रस के प्रकार—

रस के छः प्रकार हैं। जैसे—मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु और कषाय। ये मधुर आदि रस द्रव्य में व्यक्त और अव्यक्त रूप में स्थित रहते हैं।

व्यक्त रस—किसी शुष्क या आर्द्र द्रव्य के जिह्वा के साथ सम्बन्ध मात्र से या आस्वादन के अन्त में बहुत देर के बाद जिस रस की अनुभूति होती है उसे व्यक्त रस कहते हैं। जैसे—यष्टि मधु के जिह्वा के साथ सम्बन्ध मात्र से ही मधुर रस व्यक्त होता है। इसी प्रकार अनेक पदार्थों के एक से अधिक रस व्यक्त होते हैं। जैसे—पक्का आम, आँवला, लहसुन आदि। पक्के आम का सम्पर्क जब जिह्वा के साथ होता है तब सम्पर्क मात्र से ही मधुर एवं अम्लरस व्यक्त हो जाते हैं। इसी प्रकार आँवले के अम्ल एवं कषाय रस व्यक्त होते हैं।

अव्यक्त रस या अनुरस—जो रस द्रव्य की आर्द्रावस्था में अनुभूत होता है किन्तु शुष्कावस्था में नहीं होता उसे अव्यक्त रस या अनुरस कहते हैं। जैसे—पिप्पली की आर्द्रावस्था में मधुर रस की अनुभूति होती है किन्तु शुष्कावस्था में कटु रस की अनुभूति होती है। इसलिए पिप्पली का मधुर रस अव्यक्त या अनुरस है जबकि व्यक्त रस कटु है। अव्यक्त, रस का अनुमान कार्य को देखकर ही किया जाता है। जैसे—आँवले के तिक्त एवं कटु रस। सुश्रुत ने आँवले के बारे में कहा है—अम्लं सुमधुरं तिक्तं कषाय कटुकम्। (सुश्रुत, अध्याय 46) आँवला अम्ल, सुमधुर, तिक्त, कषाय तथा कटु होता है। अम्ल और कषाय तो व्यक्त रस हैं जो कि पक्व या अपक्व दोनों अवस्थाओं में अनुभूत होते हैं, जबकि तिक्त एवं कटु रस की अनुभूति दोनों अवस्थाओं में नहीं होती है। इनका केवल अनुमान ही किया जाता है। इसलिए इन रसों को अव्यक्त रस या अनुरस कहते हैं।

रस की उत्पत्ति—

रस की उत्पत्ति पञ्च महाभूतों के गुणों के परस्पर संसर्ग से होती है। महाभूतों के गुणों की बहुलता के कारण रस के छः प्रकार हो जाते हैं। जैसे—

मधुरः—भूम्यम्बुगुणबाहुल्यान्मधुरः। पृथिवी तथा जल के गुणों की बहुलता से मधुर रस की उत्पत्ति होती है।

अम्लः—भूम्यग्निगुणबाहुल्यादम्लः। पृथिवी तथा जल के गुणों की बहुलता से अम्ल रस की उत्पत्ति होती है।

लवणः—तोयाग्निगुणबाहुल्याल्लवणः। जल तथा अग्नि के गुणों की बहुलता से लवण रस की उत्पत्ति होती है।

कटुकः—वाय्वग्निगुणबाहुल्यात् कटुकः। वायु तथा अग्नि के गुणों की बहुलता से कटु रस की उत्पत्ति हाती है।

तिक्तः—वाय्वाकाशगुणबाहुल्यात् तिक्तः। वायु तथा आकाश के गुणों की बहुलता से तिक्त रस की उत्पत्ति होती है।

कषायः—पृथिव्यनिलगुणबाहुल्यात् कषायः। पृथिवी तथा वायु के गुणों की बहुलता से कषाय रस की उत्पत्ति होती है।

रस की उत्पत्ति मूल पञ्चमहाभूतों की विशिष्ट परिणतिका फल है। केवल संयोग मात्र से ही रस की उत्पत्ति नहीं हो जाती है जैसा कि उष्ण जल में लवण रस की अनुभूति नहीं होती है।

उपर्युक्त छः रसों के परस्पर संयोग से रसके तिरषठ प्रकार हो जाते हैं। जैसाकि कहा गया है—स्वादुरम्लादिभिर्योगं शेषैरम्लादयः पृथक्। यानि पञ्चदशैतानि द्रव्याणि द्विरसानि तु।। पृथगम्लादियुक्तस्य योगः शेषैः पृथग्भवेत्। मधुरस्य तथाम्लस्य लवणस्य कटोस्तथा।। त्रिरसानि यथासङ्ख्यं द्रव्याण्युक्तानि विंशतिः। वक्ष्यन्ते तु चतुष्केण। द्रव्याणि दशपञ्च च।। स्वाद्वम्लौ सहितौ योगं लवणाद्यैः पृथग्गतौ। शेषैः पृथक् पृथग् यातश्चतुष्कं रस सङ्ख्यया।। सहितौ स्वादुलवण तद्वत् कट्वादिभिः पृथक्। युक्तौ शेषैः पृथग् योगं यातः स्वादूषणौ तथा।। कट्वाद्यैरम्ललवणौ संयुक्तौ सहितौ पृथक्। यातः शेषैः पृथग् योगं शेषैरम्लकटू तथा।। युज्येते तु कषायेण सतिक्तौ लवणोषणौ। षट् तु पञ्चरसान्याहुरेकैकस्यापवर्ज्जनात्।। षट् चैवैकरसानि स्यूरेकं षडसमेव तु। इति त्रिषष्टिर्द्रव्याणां निर्दिष्टा रससङ्ख्यया।।

कर्म की दृष्टिसे भी रस भेदों का निर्धारण किया गया है। जैसे—

मधुरः—यः परितोषमुत्पादयति प्रह्लादयति तर्पयति जीवयति मुखावलेपं जनयति श्लेष्माणं चाभिवर्द्धयति स मधुरः। जो परितुष्टि को देता है, आह्लादन करता है, तृप्त करता है, जीवन देता है, मुख का अवलेपन करता है तथा श्लेष्माकी वृद्धि करता है उसे मधुर कहते हैं।

अम्लः—यो दन्तहर्षमुत्पादयति श्रद्धाश्चोत्पादयति सोऽम्लः। जो दन्तहर्ष का उत्पादन करता है तथा श्रद्धा का जनक है उसे अम्ल कहते हैं।

लवणः—यो भक्तारुचिमुत्पादयति कफप्रसेकं जनयति मार्दवञ्चापादयति स लवणः। जो भात को रुचिकर बना देता है, कफप्रसे का उत्पादन करता है तथा मृदुता को प्रदान करता है उसे लवण कहते हैं।

कटुकः—यो जिह्वाग्रं बाधते, उद्वेगं जनयति, शिरो गृह्णाति, नासिकञ्च स्रावयति स कटुकः। जो जिह्वा के अग्र भाग को पीड़ा पहुँचाता है, उद्वेग का जनक है, शिर को पकड़ लेता है तथा नाक को बहाता है उसे कटुक कहते हैं।

तिक्तः—यो गले चोषमुत्पादयति, मुखवैशद्यं जनयति, भक्तारुचिं चापादयति हर्षञ्च स तिक्तः। जो गले में सूजन पैदा करता है, मुख को शुद्ध करता है भात को रुचिकारक बनाता है तथा हर्ष का प्रदान करता है उसे तिक्त कहते हैं।

कषायः—यो वक्त्रं परिशोषयति जिह्वां स्तम्भयति कण्ठं बध्नाति हृदयं कर्षति पीडयति च स कषायः। जो मुख का परिशोषण करता है, जिह्वा का स्तम्भन करता है, कण्ठ को बाँध लेता है, हृदय को खींचता है तथा पीड़ा पहुँचाता है उसे कषाय कहते हैं।

रस के गुण—

मधुराम्ललवणा वातघ्नाः। मधुर, अम्ल तथा लवण रस वातनाशक होते हैं।
कटुतिक्तकषाया वातवर्द्धनाः। कटु, तिक्त तथा कषाय वातवर्द्धक होते हैं।
मधुरतिक्तकषायाः पित्तघ्नाः। मधुर, तिक्त तथा कषाय पित्तनाशक होते हैं।
कटुकाम्ललवणाः पित्तवर्द्धनाः। कटुक, अम्ल तथा लवण पित्तवर्द्धक होते हैं।
कटुतिक्तकषायाः श्लेष्मघ्नाः। कटुक, तिक्त तथा कषाय श्लेष्मनाशक होते हैं।
मधुराम्ललवणाः श्लेष्मवर्द्धनाः। मधुर, अम्ल तथा लवण श्लेष्मवर्द्धक होते हैं।

मधुरः—मधुरः रसरक्तमांसमेदोऽस्थिमज्जोजःशुक्रस्तन्यवर्द्धनः, चक्षुष्यः, केश्यः, वर्ण्यः, बलकृत्, सन्धानः, शोणितरसप्रसादनः, बालवृद्धक्षतक्षीणहितः, षट्पदपिपीलिकानामिष्टतमः, तृष्णामूर्च्छादाहप्रशमनः; षडिन्द्रियप्रसादनः कृमिकफकरश्च। स एवं गुणोऽप्येक एवात्यर्थमासेव्यमानः कासश्वासालसकवमथुवदनमाधुर्यस्वरोपघातक्रिमिगलगण्डानापादयति। तथार्वुदश्लीपदवस्ति-

गुदोपलेपाभिष्यन्दप्रभृतीन् जनयति। मधुर रस रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, ओज, शुक्र तथा स्तन्य का वर्द्धक है; आँख के लिए हितकर, केश को बढ़ाने वाला, वर्णकारक, बल की वृद्धि करने वाला, अस्थियों को जोड़ने वाला, रक्त तथा रस की शुद्धि करने वाला, बालक तथा वृद्धों के घाव को क्षीण करने में हितकर, भौंरे तथा चींटियों का प्रिय, तृष्णा, मूर्च्छा तथा दाह का प्रशमन करने वाला, छहों इन्द्रियों को शुद्ध करने वाला तथा कृमि एवं कफ को बढ़ाने वाला है। वह इस प्रकार के गुण वाला होने पर भी अत्यधिक सेवन करने वाले के लिए कास, श्वास, आलस्य, वमन, मुख के माधुर्य तथा स्वर को हानि पहुँचाता है, कृमि तथा गलगण्ड की वृद्धि करता है तथा अर्वुद, पील पाँव, वस्ति तथा गुदा में अभिष्यन्द आदि को उत्पन्न करता है।

अम्लः—अम्लो जरणः, पाचनः, पवननिग्रहणः, अनुलोमनः, कोष्ठविदाही, बहिःशीतः, क्लेदनः, प्रयाशो हृद्यः। स एवं गुणोऽप्येक वात्यर्थमुपसेव्यमानो दन्तहर्षनयनसम्मीलनरोमसम्बेजनकफविलयनशरीरशैथिल्यानापादयति। तथाक्षताभिहतदग्ध-दष्टभग्नशूलरुग्णप्रच्युतावमूत्रितविसर्पितछिन्नभिन्नविद्धोत्पिष्टादीनि पाचयत्याग्नेयस्वभावात् परिदहति कण्ठमुरो हृदयञ्चेति। अम्ल रस जारण, पाचन वायु का विग्रहण करने वाला, अनुलोमन, कोष्ठविदाही, बाहर से ठण्डा, क्लेद को उत्पन्न करने वाला तथा हृदय को लाभ पहुँचाने वाला होता है। इस प्रकार के गुण वाला होता हुआ भी यदि अत्यधिक मात्रा में प्रयुक्त होता है तो वह दन्तहर्ष, आँखों का बार-बार खुलना व बन्द होना, रोमों का फडफडाना, कफ का विलयन करना तथा शरीर की शिथिलता को उत्पन्न करता है। उस प्रकार क्षत से अभिहत, जले, कटे, टूटे, शूल रोग से गिरे हुए, अवमूत्रित, विसर्पित छिन्न-भिन्न, विद्ध उत्पीष्टों का पाचन करता है और आग्नेय गुण होने के कारण तथा कण्ठ, छाती तथा हृदय में जलन उत्पन्न करता है।

लवणः—लवणः संशोधनः, पाचनः, विश्लेषणः, क्लेदन, शैथिल्यकृत, उष्णः, सर्वरसप्रत्यनीकः, मार्गविशोधनः, सर्वशरीरावयवमार्दवकरः। स एवं गुणोऽप्येक एवात्यर्थमासेव्यमानो गात्रकण्डूकोठशोफवैवर्ण्यपुंस्त्वोपघातेन्द्रियोपतापान् तथा मुखाक्षिपाकं रक्तपित्तवातशोणिताम्लीकाप्रभृतीनापादयति। लवण रस संशोधन करने वाला, पाचन करने वाला, विश्लेषण करने वाला,क्लेद को उत्पन्न करने वाला, शिथिलता कारक, उष्ण, सभी रसों का प्रत्यनीक, शरीर के सभी मार्गों का शोधन करने वाला तथा शरीर के सभी अङ्गों को मृदुता प्रदान करने वाला है। इस प्रकार के गुण वाला होता हुआ भी यदि अत्यधिक मात्रा में प्रयुक्त होता है तो वह शरीर में खुजली, कोठ,शोफ, विवर्ण,पुरुषत्व की हानि तथा इन्द्रियों में रोग और मुख तथा आँख में पाक रोग, रक्त-पित्त-वातरक्त तथा अम्लीका आदि रोगों को उत्पन्न करता है।

कटुकः—कटुको दीपनः पाचनः रोचनः शोधनः स्थौल्यालस्यकफकृमिविषकुष्ठकण्डूपशमनः सन्धिबन्ध-विच्छेदनोऽवसादनः स्तन्यशुक्रमेदसामुपहन्ता। स एवं गुणोऽप्येक एवात्यर्थमुपसेव्यमानो भ्रममदगलताल्वोष्ठशोषदाहसन्ताप-बलविघातकम्पतोदभेदकृत्करचरणपार्श्वपृष्ठप्रभृतिषु वातशूलानापादयति। कटु रस दीपन, पाचन, रोचन, शोधन करने वाला है; तथा स्थूलता, आलस्य, कफ, कृमि, विष, कुष्ठ तथा खुजली का उपशमन करने वाला है; सन्धि तथा बन्ध का विच्छेदन करने वाला है, अवसाद को उत्पन्न करता है तथा स्तन्य, शुक और मेद का नाशक है। इस प्रकार के गुणवाला होना हुआ भी यदि अत्यधिक मात्रा में प्रयुक्त होता है तो वह भ्रम तथा मद को उत्पन्न करता है, गला, तालु तथा ओष्ठ को सुखाता है, दाह एवं सन्ताप का प्रदान करता है, बल का नाश करता है, कम्प तथा तोद भेद को बढ़ाता है तथा हाथ, पैर, बगल, पीछले भाग आदि में वातशूल को उत्पन्न करता है।

तिक्तः—तिक्तश्छेदनो रोचनो दीपनः शोधनः कण्डूकोठतृष्णामूर्च्छाज्वरप्रशमनः स्तन्यशोधनो विण्मूत्रक्लेद-मेदोवसापूयोपशोषणश्च। स एवं गुणोऽप्येक एवात्यर्थमुपसेव्यमानो गात्रमन्यास्तम्भाक्षेपकार्दितशिरःशूलभ्रमतोदभेदास्यवैरस्यानापादयति। तिक्त रस छेदन, रोचन, दीपन तथा शोधन होता है; खुजली, कोठ, तृष्णा, मूर्च्छा तथा ज्वर का प्रशमन करने वाला है; स्तन्य

का शोधन करने वाला है तथा मल, मूत्र, क्लेद, मेद, चर्वी तथा पूयका उपशोषण करता है। इस प्रकार के गुण वाला होता हुआ भी यदि अधिक मात्रा में प्रयुक्त होता है तो वह शरीर में मन्यास्तम्भ, आक्षेपक तथा पीडा उत्पन्न करता है; शिरःशूल, भ्रम, तोदभेद तथा मुख में विरसता को उत्पन्न करता है।

कषायः—कषायः सङ्ग्राहको रोपणः स्तम्भनः शोधनो लेखनः शोषणः पीडनः क्लेदोपशोषणश्च। स एवं गुणोऽप्येक एवात्यर्थमासेव्यमानो हृत्पीडास्यशोषोदराध्मानवाक्यग्रहमन्यास्तम्भगात्रस्फुरणचुमुचुमायनाकुञ्चनाक्षेपणप्रभृतीनापादयति। कषाय रस सङ्ग्राहक है, रोपण, स्तम्भन, शोधन, लेखन, शोषण, पीडन तथा क्लेद का उपशोषण करता है। इस प्रकार के गुण वाला होता हुआ भी यदि अधिक मात्रा में प्रयुक्त होता है तो वह हृदय को पीडा पहुँचाता है, मुख को सुखाता है, उदर में आध्मान, वाक्यग्रह, मन्यास्तम्भ, गात्रस्फुरण, चुम-चुमाहट, फैलना-सिकोडना तथा आक्षेपण आदि को उत्पन्न करता है।

रस का वीर्य—

तिक्तकषायमधुराः शीताः सौम्याश्च। तिक्त, कषाय तथा मधुर रस शीत एवं सौम्य होते हैं।

तिक्तकटुकषायाः रूक्षा आग्नेयाश्च। तिक्त, कटु तथा कषाय रस रूक्ष एवं आग्नेय होते हैं। ये तीनों रस बद्धविण्मूत्रमारुताः अर्थात् मल, मूत्र तथा अपान वायु के रोधक होते हैं।

लवणाम्लमधुराः स्निग्धाः सृष्टविण्मूत्रमारुताः। लवण, अम्ल तथा मधुर रस स्निग्ध गुण वाले हैं तथा मल, मूत्र एंव अपान वायु को सुखपूर्वक निर्गत करते हैं।

लवणकषायमधुराः गुरवः। लवण, कषाय तथा मधुर रस गुरुपाकी होते हैं।

अम्लकटुतिक्ताः लघवः। अम्ल, कटु तथा तिक्त रस लघुपाकी होते हैं।

मधुरः स्निग्धः शीतो गुरुश्च। मधुर रस स्निग्धगुण वाला, शीतवीर्य वाला तथा गुरुपाकी होता है।

लवणो गुरुः स्निग्ध उष्णश्च। लवण रस गुरुपाकी, स्निग्ध गुण वाला तथा उष्णवीर्य होता है।

कटुको लघुः उष्णः रूक्षः। कटु रस पाक में लघु, उष्ण वीर्य वाला तथा रूक्ष गुण से युक्त होता है।

अम्लः लघुः उष्णः स्निग्धः। अम्ल रस लघुपाकी, उष्णवीर्य तथा शीतगुण वाला होता है।

तिक्तः रूक्षः शीतः लघुः। तिक्त रस रूक्ष गुण वाला, शीतवीर्य वाला तथा पाक में लघु होता है।

कषायः रूक्षः शीतः गुरुः। कषाय रस रूक्ष गुण वाला शीत वीर्य वाला तथा पाक में गुरु होता है।

रौक्ष्यात् कषायो रूक्षाणामुत्तमो मध्यमः कटुः। तिक्तोऽवरः। रूक्षत्व मात्रा के अनुसार रूक्षवीर्य वाले तीनों रसों में कषाय रस उत्तम, कटु रस मध्यम तथा तिक्तरस अधम होता है।

तथोष्णानामुष्णत्वाल्लवणः परः। मध्योऽम्लः कटुकश्चान्त्यः। उष्णत्व मात्रा के अनुसार उष्णवीर्य वाले तीनों रसों में लवण रस उत्तम, अम्ल रस मध्यम तथा कटु रस अधम होता है।

स्निग्धानां मधुरः परः। मध्योऽम्लो लवणश्चान्त्यः। स्निग्धत्व मात्रा के अनुसार स्निग्ध गुण वाले तीनों रसों में मधुर रस उत्तम, अम्ल रस मध्यम तथा लवण रस अधम होता है।

तिक्तात् कषायो मधुरः शीताच्छीततरः परः। शीतत्व मात्रा के अनुसार शीत वीर्य वाले तीनों रसों में तिक्त रस की अपेक्षा कषाय रस तथा कषाय रस की अपेक्षा मधुर रस अधिक शीत है।

स्वादुर्गुरुत्वादधिकः कषायाल्लवणोऽवरः। गुरुत्व मात्रा के अनुसार गुरुपाकी तीनों रसों में मधुर रस उत्तम, कषाय रस मध्यम तथा लवण रस अधम होता है।

अम्लात् कटुस्ततस्तिक्तो लघुत्वादुत्तमोत्तमः। लघुत्व मात्रा के अनुसार लघुपाकी तीनों रसों में अम्ल रस की अपेक्षा कटु रस तथा कटु रस की अपेक्षा तिक्त रस अधिक लघु है।

रस के विशेष कार्य—

मधुरं किञ्चिदुष्णं स्यात् कषायं तिक्तमेव च। यथा महत् पञ्चमूलं यथा चानूपमामिषम्।। मधुर रस, कषाय रस तथा तिक्त रस शीतवीर्य वाले होते हुए भी कुछ उष्णवीर्य भी होते हैं। जैसेकि महत्पञ्चमूल तथा आनूप मांस।

लवणं सैन्धवं नोष्णमम्लमामलकन्तथा। लवण रस उष्णवीर्य होते हुए भी सैन्धव लवण उष्ण नहीं होता है। उसी प्रकार अम्ल रस उष्ण होते हुए भी आमलक उष्ण नहीं होता है।

अर्कागरुगुडूचीनां तिक्तानामौष्ण्यमिष्यते। तिक्त रस शीतवीर्य होते हुए भी अर्क, अगरु तथा गुडूची उष्ण होते हैं।

तत्र प्रायो मधुरं श्लेष्मलमन्यत्र पुराणशालियवगोधूममुद्गमधुशर्कराजाङ्गलमांसात्। मधुर रस लगभग श्लेष्मा की वृद्धि करने वाला होता है, किन्तु पुराना शालि धान्य, पुराना जौ, पुराना गेहूँ, पुराना मूँग, पुराना शहद, पुरानी शर्करा तथा जाङ्गल मांस श्लेष्मल नहीं होते हैं।

प्रायोऽम्लं पित्तलमन्यत्र दाडिमामलकात्। अम्ल रस लगभग पित्त की वृद्धि करता है, किन्तु अनार और आँवला पित्तवर्द्धक नहीं होते हैं।

प्रायो लवणमचक्षुष्यमन्यत्र सैन्धवात्। लवण रस लगभग आँख के लिए हानिकर होता है, किन्तु सैन्धव लवण आँख को हानि नहीं पहुँचाता है।

प्रायस्तिक्तकटुकवातलमवृष्यं चान्यत्रामृतापटोलनागरपिप्पलीलशुनात्। तिक्तरस और कटुरस लगभग वायुकारक तथा अवृष्य होते हैं, किन्तु गुडूची, परवल, सोंठ, पीपर तथा लहसुन वायुकारक तथा अवृष्य नहीं हैं।

प्रायः कषायं शीतं स्तम्भनं चान्यत्र हरीतक्याः। कषाय रस लगभग शीतवीर्य तथा स्तम्भनकारक होता है, किन्तु हरीतकी न तो शीतवीर्य और न ही स्तम्भनकारक है।

किञ्चिदम्लं हि सङ्ग्राहि किञ्चिदम्लं भिनत्ति च। यथा कपित्थं सङ्ग्राहि भेदि चामलकं तथा।। कुछ अम्ल पदार्थ सङ्ग्राहि होते हैं जैसे कपित्थ। उसी प्रकार कुछ अम्ल पदार्थ भेदि होते हैं। जैसे—आँवला। इसलिए रस के अनुसार सदैव गुणों का निर्देश करना ठीक नहीं है। रस प्रधान द्रव्य खाद्य पदार्थ होते हैं जबकि वीर्य प्रधान द्रव्य ओषध कहलाते हैं।

वीर्य के पारिभाषिक लक्षण—

वीर्यन्तु क्रियते येन या क्रिया। नावीर्यं कुरुते किञ्चित् सर्वा वीर्यकृता क्रिया।। जिस रस, विपाक, प्रभाव तथा गुरु आदि गुणों के द्वारा जो तर्पण, ह्लादन, शमन आदि क्रिया की जाती है उस क्रिया के लिए उस रस आदि का नाम वीर्य कहलाता है। वीर्य के विना कोई भी क्रिया की नहीं जा सकती है; क्योंकि सारी क्रियाएँ वीर्य के द्वारा ही सम्पन्न होती है। इस प्रकार से वीर्य और शक्ति दोनों में अभिन्नता है।

वैद्यक शास्त्र में कहा गया है—रसविपाकप्रभावातिरिक्ते प्रभूतकार्यकारिणि गुणे वीर्यमिति संज्ञा। रस, विपाक तथा प्रभाव के अतिरिक्त अनेक कार्यकारी जो गुण हैं उन्हे वीर्य कहते हैं। इस प्रकार से पारिभाषिक लक्षण बताये हैं।

वीर्य के प्रकार—

वैद्यक शास्त्र में वीर्य के आठ प्रकार गिनाये गये हैं। जैसे—मृदु, तीक्ष्ण, गुरु, लघु, स्निग्ध, रूक्ष, उष्ण तथा शीत। किसी आचार्य के मत में वीर्य दो प्रकार के हैं—शीत तथा उष्ण। कुछ आचार्य वीर्य के आठ प्रकार इस प्रकार गिनाते हैं—उष्ण, शीत, स्निग्ध, रूक्ष, विशद, पिच्छिल, मृदु तथा तीक्ष्ण। यहाँ लघु और गुरु के स्थान पर विशद एवं पिच्छिल

को लिया गया है। उपर्युक्त मृदु आदि आठ गुणों में रस के व्यतिरिक्त भी कार्यकारित्व पाये जाते हैं, किन्तु विशद एवं पिच्छिल गुणों में रस के विपरीत कार्यकारित्व प्रायः देखने को नहीं मिलता है। इसलिए रसों के साथ ही विशद एवं पिच्छिल का उपदेश किया जाता है। इस प्रकार से विशद एवं पिच्छिल गुण को वीर्य नहीं माना गया है। वीर्य वही होता है जो रस के गुण को पराभूत करके अपने गुणों को कार्यकारी बना देता है।

सुश्रुताचार्य ने अपने ग्रन्थ में वीर्य के प्रकार के सम्बन्ध में कहते हैं—केचिदष्टविधमाहुः—उष्णं शीतं स्निग्धं रूक्षं विशदं पिच्छिलं मृदु, तीक्ष्णं चेति। एतानि वीर्याणि स्वबलगुणोत्कर्षाद् रसमभिभूयात्मकर्म कुर्वन्ति। कुछ लोग वीर्य के आठ प्रकार बतलाते हैं—उष्ण, शीत, स्निग्ध, रूक्ष, विशद, पिच्छिल, मृदु तथा तीक्ष्ण। ये वीर्य अपेन बल एवं गुणों के उत्कर्ष से रस को अभिभूत करके अपने कर्म करते हैं। अब हम दो प्रकार से विचार करते हैं—द्रव्याश्रित वीर्य कर्म एवं रसाश्रित वीर्य कर्म।

द्रव्याश्रित वीर्य कर्म—कुलथी कषाय रस वाला है। कषास रस वात वर्द्धक है, किन्तु कुलथी में स्थित स्निग्ध वीर्य कषाय रस को अभिभूत करके स्नेह भाव होने के कारण वात का शमन करता है।

पलाण्डु अर्थात् प्याज कटु रस वाला है। कटुरस वातवर्द्धक है, किन्तु प्याज में स्थित स्निग्ध वीर्य कटु रस को अभिभूत करके स्नेह भाव के कारण वात का शमन करता है।

इक्षु मधुर रस वाला है। मधुर रस वायु का शमन करता है, किन्तु इक्षु में स्थित शीतवीर्य मधुर रस को अभिभूत करके शीत के कारण वात की वृद्धि करता है।

आँवला अम्लरस वाला है। अम्लरस पित्त को प्रकुपित करता है, किन्तु आँवला में स्थित मृदु शीतवीर्य अम्लरस के कार्य पित्त प्रंकोपन का निरास करके मृदुशीत वीर्य के कारण पित्त का प्रशमन करता है। कपित्थ अम्लरस वाला है। अम्ल रस श्लेष्मा की वृद्धि करता है, किन्तु कपित्थ में स्थित रूक्ष वीर्य अम्लरस के कार्य श्लेष्मवर्द्धन का निरास करके रूक्षवीर्य के कारण श्लेष्म का प्रशमन करता है।

सैन्धव लवण लवणरस वाला है। लवण रस पित्तवर्द्धक है, किन्तु सैन्धव लवण में स्थित मृदु शीतवीर्य लवण रस के कार्य पित्तवर्द्धन का निरास करके मृदुशीतवीर्य के कारण पित्त का प्रशमन करता है।

काकमाची तिक्तरस वाला है। तिक्त रस पित्त का प्रशमन करता है, किन्तु काकमाची में स्थित उष्ण वीर्य तिक्त रस के कार्य पित्त प्रशमन का निरास करके उष्ण वीर्य के कारण पित्त की वृद्धि करता है।

रसाश्रित वीर्यकर्म—मधुर रस, अम्ल रस एवं लवण रस वात का प्रशमन करते हैं, किन्तु यदि ये रूक्षवीर्य, लघुवीर्य एवं शीतवीर्य होंगे तो वायु का प्रशमन नहीं कर सकते हैं।

मधुररस, तिक्तरस एवं कषाय रस पित्त का प्रशमन करते हैं, किन्तु यदि ये तीक्ष्णवीर्य, उष्णवीर्य एवं लघुवीर्य हो जायेंगे तो पित्त का प्रशमन नहीं कर सकते हैं।

कटुरस, तिक्त रस एवं कषाय रस श्लेष्मा का प्रशमन करते हैं, किन्तु यदि ये स्निग्ध वीर्य, गुरुवीर्य एवं शीतवीर्य होंगे तो श्लेष्मा की वृद्धि करते हैं।

वीर्य की उपलब्धि—वीर्य यावदधीवासान्निपाताच्चोपलभ्यते। (चरक)। चरक के अनुसार वीर्य की उपलब्धि अधीवास तथा निपात से होती है। अधीवास कहते हैं एक रूप में अवस्थित रहने को। यावदधीवास का तात्पर्य है जब तक

शरीर के साथ एक रूप में अवस्थित होना अर्थात् किसी द्रव्य का वीर्य, उस द्रव्य के खाने के बाद उसके परिपाक होने के पूर्वक्षण तक अवस्थित रहता है जैसा कि आनूप मांस का वीर्य। अनूप मांस का वीर्य उष्ण होता है। आनूप मांस खाने के बाद उसके परिपाक होने के पूर्व क्षण तक उसका उष्णवीर्य एक रूप बना रहता है। इसीको 'यावदधीवास' कहते हैं। निपात का अर्थ है—शरीर के संयोग मात्र से। किसी-किसी द्रव्य का वीर्य शरीर के संयोग मात्र से उपलब्ध हो जाता है जैसा कि मिर्च का तीक्ष्ण वीर्य। मिर्च आदि दीपनीय द्रव्य के वीर्य अधीवास एवं निपात दोनों प्रकार से उपलब्ध हो जाते हैं। द्रव्य में वीर्य का अनुभव कहीं अनुमान से होता है तो कहीं प्रत्यक्ष रूप से। अनुमान से जैसे—सैन्धव लवण का शीतवीर्य तथा प्रत्यक्ष से जैसे—राजिका का तीक्ष्णवीर्य जिसका कि सूँघने से ही अनुभव हो जाता है।

स्वाभाविक व एवं कृत्रिम भेद से वीर्य के दो भेद हैं। जैसे—उडद का गुरुवीर्य, मूँग का लघुवीर्य स्वाभाविक वीर्य है। इस प्रकार खैत्र का लघु वीर्य कृत्रिमवीर्य है।

—0—

विपाक

विपाक की परिभाषा—

जाठरेणाग्निना योगाद् यद्यदेति रसान्तरम्। रसानां परिणामान्ते स विपाक इति स्मृतः।। जाठराग्नि के योग से जब एक रस अन्य रस में परिणत होता है और रसों के परिणाम के अन्त में जो अवस्था होती है उसे विपाक कहते हैं। जब हम खाद्य पदार्थ खाते हैं तो वे छः रसों से युक्त होते हैं। छः रस हैं—मधुर, अम्ल, लवण, कषाय, कटु एवं तिक्त। जब षड् रसों से युक्त पदार्थ हम खाते हैं तो पदार्थ पाक की तीन अवस्थाओं से परिणति को प्राप्त करता है। आदि अवस्था में षड्रस परिणति को प्राप्त होकर एक मात्र मधुर रस में परिणत हो जाते हैं। मध्य अवस्था में अम्ल रस में परिणत होते हैं तथा अन्त में कटुरस में परिणत हो जाते हैं। इन तीन प्रकार के पाक को अवस्था पाक कहते हैं। अवस्था पाक के द्वारा खाये गये पदार्थ रस रूप में परिणत होते हैं और रस रूपी खाये गये पदार्थ का जाठराग्नि के जरीये पुनः पाक होना विपाक कहलाता है। विपाक को निष्ठापाक भी कहते हैं। यहाँ पर एक प्रश्न यह उठता है कि षड्रसाश्रित अन्न जब अवस्था पाक में मधुर, अम्ल एवं कटु इन तीन रसों में परिणत हो जाता है तब प्राकृत कषाय आदि रस वात आदि के जनक कैसे हो सकते हैं? वस्तुतः अवस्था पाक में प्राकृत रस पूर्ण रूप से अभिभूत नहीं होते हैं।

किसी के विचार में कि दुग्ध का पाक करने पर उसके स्वाद में कोई परिवर्तन नहीं होता है; खेत में जौ वोने पर जौ ही उगता है न कि मूँग। इसलिए जिस रस के पदार्थ का भोजन किया जाता है विपाक भी उसी रूप में होता है। मधुर रस का विपाक मधुर, अम्लरस का विपाक अम्ल तथा कटु रस का विपाक कटु ही होगा।

कोई अन्य कहता है कि नाना प्रकार के रसों के पदार्थों को जब एकत्र मिश्रित किया जाता है तब जिस रस की प्रधानता रहती है उसी रस का प्रत्यक्ष होता है जैसे कि दुर्बल व्यक्ति बलवान के वशीभूत हो जाता है। इसी प्रकार विपाक में भी ऐसा ही नियम लागू होता है। पदार्थों में जो रस प्रधान होगा तदनुसार विपाक में होगा।

कोई दूसरा व्यक्ति कहता है कि दोषानुसार विपाक होता है। कफ या वात-कफ दोष हो तो मधुर विपाक होता है, पित्त-कफ दोष हो तो अम्ल विपाक तथा वात-पित्त-कफ दोष हो तो कटु विपाक होता है।

उपर्युक्त विचारो में से रस के समान विपाक तथा बलवान् रस के अनुसार विपाक, ये दोनों पक्ष निष्ठा पाक में स्वीकृत नहीं हैं; क्योंकि रस के गुणादि कहने में उनके विषय कहे गये हैं। दोषावस्था से उत्पन्न विपाक को प्रमाण मानना ठीक नहीं है; क्योंकि शास्त्रों में इसका कोई प्रमाण नहीं है। इसलिए इसकी उपेक्षा करनी चाहिए।

विपाक के प्रकार—

चरक के मत में विपाक तीन प्रकार के हैं—मधुर, अम्ल तथा कटु। चरक ने कहा है—कटुतिक्तकषायाणां विपाकः प्रायशः कटुः। अम्लोऽम्लं पच्यते स्वादुर्मधुरं लवणस्तथा।। कटु, तिक्त तथा कषाय रसों का विपाक लगभग कटु होता है। अम्ल रस का विपाक अम्ल होता है तथा मधुर रस एवं लवण रस का विपाक मुधर होता है। सुश्रुत के मत में विपाक दो प्रकार के हैं—मधुर एवं कटु।

विपाक दो प्रकार के हैं या तीन प्रकार के जो हों, सबसे पहले विचार करना चाहिए कि विपाक सम्भव है या नहीं? अवस्था पाक की अन्तिम अवस्था में षड्रसाश्रित आहार कटु रस में परिणत हो जाते हैं, तब उस समय तिक्त एवं कषाय रस है कहाँ कि उनमें विपाक का निर्देश किया जा सके? पाक शब्द का अर्थ है—तेजः का संयोग। इसलिए द्रव्यों का पाक होता है; रस का पाक होना सम्भव नहीं है। अवस्था पाक के बाद रस के कारणभूत कटु, तिक्त एवं कषाय द्रव्यों का जो पुनः पाक होता है वही विपाक है। इस प्रकार से विपाक की अनुपपत्ति की आशङ्का का निरास किया गया। इतने विपाकों

का स्वीकार करने का क्या प्रयोजन है? केवल रस के विपरीत विपाक जैसे लवण रस का मधुर विपाक तथा तिक्त एवं कषाय रसों का कटु विपाक होता है, का स्वीकार करना होगा।

रस समान विपाक जैसे अम्ल रस का विपाक अम्ल, मधुर रस का विपाक मधुर तथा कटु रस का विपाक कटु होता है, इसका स्वीकार करने का क्या प्रयोजन है? इन स्थलों में रस के गुणानुसार विपाक का ज्ञान होता है। समरस विपाक स्थल तथा अनुगुण विपाक का उल्लेख करना होगा; नहीं तो लवण रस के मधुर विपाक के सिद्धान्त, समरस विपाक स्थल एवं विसदृश रसान्तर की उत्पत्ति की शङ्का हो सकती है।

अब हम विचार करते हैं कि किस प्रकार से रस के स्वभाव, अवस्था पाक एवं निष्ठा पाक या विपाक परस्पर बाधक न होकर अपने-अपने कार्य करते हैं। मधुर रस, अम्ल रस तथा लवण रस स्वभावतः श्लेष्मा की वृद्धि करते हैं। मधुर, अम्ल तथा लवण से युक्त आहार प्रथम व द्वितीय अवस्थापाक में मधुर एवं अम्ल होकर प्राकृत रस के अनुगुण होंगे अर्थात् मधुर, अम्ल एवं लवण रस जिस प्रकार स्वभावतः श्लेष्मवर्द्धक होते हैं उसी प्रकार उनके अवस्थापाक मधुर,अम्ल तथा श्लेष्मवर्द्धक होंगे। इसका परिणाम यह होता है कि श्लेष्मा की अधिकता होती है। उसके बाद तृतीय अवस्था पाक में उनका कटु पाक होता है। यह तृतीय अवस्था पाक प्राकृत रस में अनुगुण नहीं होता है। इसका परिमाण यह होता है कि कटु रस का कार्य वायु की वृद्धि करना है; किन्तु यहाँ पर वायु की वृद्धि अधिक नहीं होती है बल्कि कम होती है; क्योंकि प्राकृत रस मधुर, अम्ल तथा लवण रस वायु की वृद्धि नहीं करते हैं।

अब मधुर, अम्ल एवं लवण रसों के विपाक के सम्बन्ध विचार करते हैं। मधुर रस का विपाक मधुर, अम्ल रस का विपाक अम्ल एवं लवण रस का विपाक मधुर होता है। इस प्रकार से प्राकृत रस मधुर, अम्ल एवं लवण के विपाक मधुर एवं अम्ल होते हैं। इस प्रकार से हमने देखा कि मधुर, अम्ल एवं श्लेष्मवर्द्धक रसस्वभाव, अवस्था पाक एवं विपाक परस्पर के बाधक न होकर अपने-अपने कार्य करते हैं।

अब कटु, तिक्त और कषाय रसों के विपाक के सम्बन्ध में विचार करते हैं। कटु, तिक्त एवं कषाय रस वातवर्द्धक होते हैं। इनका प्रथम अवस्थापाक में मधुर पाक होता है। प्राकृत रस के विपरीत गुण वाला होने पर भी इसके परिणाम में कटु, तिक्त एवं कषाय रसों से युक्त आहार उसी प्रकार वायुवर्द्धक नहीं होता है; क्योंकि अवस्था पाक से उत्पन्न मधुर रस वातप्रशामक होता है। द्वितीय अवस्था पाक में अम्ल पाक होता है। अम्ल रस वात प्रशामक है इसलिए यहाँ अत्यधिक वातवर्द्धक नहीं बन पाता है। तृतीय अवस्था पाक और विपाक में वह कटु होकर वायु की अत्यधिक वृद्धि करता है। इस प्रकार कटु, तिक्त एवं कषाय रसों से युक्त आहार स्वभावतः पहले जिस प्रकार वातवर्द्धक था विपाक में भी अनुगुण होता है। उसके उसी गुणकी वृद्धि होगी, उपर्युक्त विचार से स्पष्ट हो जाता है।

विपाक नामक रस विशेष का अनुभव जिह्वा के द्वारा नहीं हो पाता तो ऐसी स्थिति में किस प्रकार से विपाक का अनुभव हो सकता है? कहते हैं—विपाकः कर्मनिष्ठया। कर्म को देखकर ही विपाक का अनुमान करना होगा। सोंठ रस में कटु तथा वीर्य में उष्ण होता है। कटु पदार्थ अवृष्य होता है। इसी वृष्य रूप कर्म को देखकर ही जाना जाता है कि सोंठ विपाक में मधुर है।

मधुर आदि विपाक का क्या लक्षण है? इस पर कहते हैं—मधुर विपाक होने पर मल तथा मूत्र सुखपूर्वक निर्गत होते हैं तथा कफ एवं शुक्र की वृद्धि होती है। अम्ल विपाक होने पर पित्त की वृद्धि और शुक्र का नाश होता है एवं मल तथा मूत्र विना किसी कष्ट के निर्गत होते हैं। कटु विपाक होने पर अपान वायु, मल एवं मूत्र का रोध होता है तथा शुक्र का नाश होता है। पदार्थ की विशेषता के कारण विपाक के भी अल्प तथा अधिक के रूप में भेद मिलते हैं। पदार्थ जब मधुर, मधुरतर एवं मधुरतम होता है तब उसका विपाक भी अधम, मध्यम तथा उत्तम होता है।

—0—

प्रभाव

प्रभाव की परिभाषा—

चरक के अनुसार प्रभाव की परिभाषा है—प्रभवोऽचिन्त्य उच्यते। रस, वीर्य और विपाक के अलावा पदार्थ में जो शक्ति रहती है उसे प्रभाव कहते हैं। रसादिसाम्ये यत्कर्म विशिष्टं तत् प्रभावजम्। दो पदार्थ रस, वीर्य एवं विपाक में आपस में समान हों; किन्तु उनमें एक-दूसरे की अपेक्षा कोई विशिष्ट कर्म दिखाई पड़ता है तो उसे प्रभाव से उत्पन्न हुआ जानना चाहिए। वागभट ने जैसे उदाहरण प्रस्तुत किया है—दन्तीरसाद्यैस्तुल्यापि चित्रकस्य विरेचनी। मधूकस्य च मृद्वीका घृतं क्षीरस्य दीपनम्।। दन्ती चित्रक के रस, वीर्य एंव विपाक के सम होने पर भी विरेचन करने वाली है; जबकि चित्रक विरेचन नहीं होता है। यष्टि मधु और द्राक्षा रसादि में तुल्य होने पर भी द्राक्षा विरेचक होती है; जबकि यष्टिमधु विरेचक नहीं है। घृत एवं दुग्ध रसादि में तुल्य होने पर भी घृत दीपन है, न कि दुग्ध। इस प्रकार से दन्ती और द्राक्षा का विरेचकत्व तथा घृत का दीपनत्व प्रभावकृत हैं। जिस पदार्थ के रस, वीर्य एवं विपाक का उत्कर्ष असम्भव है अर्थात् समभाव है तो ऐसी परिस्थित में कार्यकारित्वका निर्देश शास्त्र में पाया जाता है—रसं विपाकस्तौ वीर्यं प्रभावस्तान्यपोहति। बलसाम्ये रसादीनामिति नैसर्गिकं बलम्।। विपाक रस का, वीर्य उन दोनों का तथा प्रभाव उन सबका अतिक्रमण करके कार्य करते हैं। बल की समानता में सरादियों का बल नैसर्गिक होता है।

प्रशस्त भूमि—जहाँ-तहाँ उत्पन्न उद्‌भिद् कम गुणों से युक्त होते हैं इसलिए औषध कार्य में व्यवहार के योग्य नहीं होते हैं। किस प्रकार की भूमि में उत्पन्न भेषज पदार्थ वीर्यवान् एवं औषध कार्य के योग्य होते हैं उस सम्बन्ध में अब हम विचार करते हैं—

जिस भूमि में गड्ढे, मिट्टी के वर्तनों के टूटे टुकड़े, कङ्कड़, पत्थर, वालू तथा दीमक की वाँबी न हो; जो उच्च नहीं है; जिसके नजदीक श्मशान,देवालय या कसाईखाना न हो; जो क्षारयुक्त नहीं है; जो चिक्कन हो; जिसके नजदीक जलाशय हो; जो अङ्कुर प्ररोह को उत्पन्न करने में अनुकूल हो; जो कोमल, स्थिर,समतल हो; जो वर्ण से काली, सोने की या लाल हो; ऐसी भूमि भैषज्य के उद्यान के लिए उत्तम है।

भूमि के विशिष्ट गुण—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश इन पाँच तत्त्वों से समस्त द्रव्य उत्पन्न हुए हैं अतः सभी द्रव्यों में ये पाँच तत्त्व विद्यमान रहते हैं। जो तत्त्व अधिकता से जिस वस्तु में रहता है उस वस्तु में उसी तत्त्व की प्रधानता रहती है।

पार्थिव गुण प्रधान भूमि—जिस भूमि में उत्पन्न वृक्ष एवं शस्य बड़े होते हैं, वह पार्थिवगुण प्रधान भूमि होती है।

जलीय गुण प्रधान भूमि—जो भूमि चिक्कणं, शीतल तथा जल के समीप हो, वर्ण से शुक्ल हो, जिसमें उत्पन्न शस्य और तृण स्निग्ध हों तथा जो कोमल वृक्षों की अधिकता से युक्त हो, वह जलीय गुण प्रधान भूमि होती है।

आग्नेय गुण प्रधान भूमि—जो भूमि नाना प्रकार के वर्णों की हो, कङ्करीली हो, जो कहीं-कहीं कम पाण्डु वर्ण के वृक्ष तथा लताओं की अधिकता से युक्त हो, वह आग्नेय गुण प्रधान भूमि होती है।

वायवीय गुण प्रधान भूमि—जो भूमि भालू, राख एवं गधे के वर्ण की हो; पतले, रूखे और खोह वाले तथा अल्प रस वाले वृक्षों से युक्त हो, वह भूमि वायवीय गुण प्रधान भूमि होती है।

आकाशीय गुण प्रधान भूमि—जो भूमि कोमल, समतल, छिद्र, विवरों से युक्त है, जिसका जल अव्यक्त

रस है; जो सारहीन वृक्षों को उत्पन्न करती है तथा जो महान् पर्वतों तथा वृक्षों से परिपूर्ण है, वह भूमि आकाशीय गुण प्रधान भूमि होती है।

पार्थिव तथा जलीय गुण प्रधान भूमि में उत्पन्न विरेचन द्रव्य और आग्नेय, आकाशीय तथा वायवीय गुण प्रधान भूमि में उत्पन्न संशमन द्रव्य अधिक बलवान् होते हैं।

प्रशस्त ओषधि—

किस प्रकार के ओषधि औषध कार्य में प्रशस्त हैं अब इसका विचार करते हैं—

जो भेषज द्रव्य प्रशस्त भूमि में उत्पन्न होते हैं; जो कीटों के द्वारा खाये नहीं गये हैं, विषयुक्त नहीं हैं और शस्त्रों से क्षत नहीं हैं; जो समीप में स्थित बलवान् वृक्षों से आक्रान्त न हों; जो पूर्णरूप से विकसित हों; जो पूर्णरूप से रस, वीर्य एवं गन्ध आदि से युक्त हों; जो काल, धूप, अग्नि, जल, वायु तथा कीटों से प्रदूषित न हों; जिनके गन्ध, वर्ण, रस, स्पर्श तथा प्रभाव दूषित नहीं करते हैं, उन भेषज द्रव्यों को औषध कार्य में प्रशस्त माना गया है।

औषध संग्रह का काल—

दृढ़बल के अनुसार—शाखा एवं पत्रों का संग्रह वर्षा काल अथवा सभी काल में कर सकते हैं। शीतकाल में पत्र गिर जाते हैं अतः मूल का संग्रह करना चाहिए। छाल, कन्द तथा गोंद का संग्रह शरत्काल एवं हेमन्त में सार तथा जिस वस्तु के फूल एवं फल हुए हों उनके फूल एवं फलों का संग्रह करना चाहिए।

—0—

द्रव्यानुसारिणी सूची

—0—

परिशिष्ट

—0—

वनौषधिदर्पणः

(सविमर्शहिन्दीव्याख्याङ्ग्लटिप्पणीसहितः)

VANAUṢADHIDARPAṆAḤ

(With Hindi Commentary & English Critical Notes)

— ● —

अगरु

Aquilaria agallocha

अगरु, लोहम् , जोङ्गकम्। *Aquilaria agallocha, A. Ovata.*

"उत्पत्तिबोधिका संज्ञा"–"क्रिमजम्", "क्रिमिजन्यम्"।

"गुणप्रकाशिका संज्ञा"–"वर्णप्रसादनम्"। कटु तिक्तोष्णमगरु स्निग्धं वातकफापहम्। श्रुतिनेत्ररुजं हन्ति माङ्गल्यं कुष्ठनुत् परम्। "धन्वन्तरीयनिघण्टुः"॥ स्वादु "स्त्वगरुसारः" स्यात् सुधूम्यो गन्धधूमजः। स्वादुः कटुकषायोष्णः सधूमामोदवातजित्। "कृष्णागरु" कटूष्णञ्च तिक्तं लेपे च शीतलम्। पाने पित्तहरं किञ्चित्त्रिदोषघ्नमुदाहृतम्। "काष्ठागरु" कटूष्णञ्च लेपे रूक्षं कफापहम्। "दाहागरु" कटुकोष्णं केशानां वर्द्धनञ्च वर्ण्यञ्च। अपनयति केशदोषानातनुते सततञ्च सौगन्ध्यम्। "माङ्गाल्यागरु" शिशिरं गन्धाढ्यं योगवाहिकम्। "राजनिघण्टुः॥" अगरूष्णं कटुत्वातितिक्तं तीक्ष्णञ्च पित्तलम्। लघु कर्णाक्षिरोगघ्नं शीतवातकफप्रणुत्। कृष्णं गुणाधिकं तत्तु लौहवद्वारिमज्जति। अगरुप्रभवः स्नेहः कृष्णागरुसमो मतः। "भावप्रकाशः"॥ अगरु व्रणजित्तिक्तं कटूष्णं कफवातजित्। "राजवल्लभः"॥

वैद्यके व्यवहारः–(१) हिक्कायां काललोहम्–"मधुना संयुतं लेह्यं चूर्णं वा काललोहजम्" (चि. २१ अ.)। "चरकः"॥ (१) लवणमेहे अगरु–"लवणमेहिनं पाठागरुकषायम्" (चि. ११ अ.)। (२) दद्रुकुष्ठकिटिमेषु अगरुसारस्नेहः–"शिंशपागरुसारस्नेहा दद्रुकुष्ठकिटिमेषु" (चि. ३१ अ.)। "सुश्रुतः"॥ (१) कामे अगरु–"मधुनैव च जोङ्गकम्" (चि. ३ अ.)। (२) हिक्काश्वासयोः अगरु–"गुरु वागरु" (चि. ४ अ.)। "वाग्भटः"॥

विविध भाषाओं में नामः- संस्कृतम्- वंशिकम्, राजार्हम्, कृमिजम्। हिन्दी- अगर, द्राविणी- अहिल कहे, अरबी- ऊद हिन्दी, फारसी- उदखाम, लेटिन- Aquilaria agallocha, A. Ovata (एक्वीलेरिया एजेलीका), (Fam. Thymelaeaceac),. अंग्रेजी- Calambac, Eagle-wood, Aloe-wood.

उत्पत्ति बोधक नाम- क्रिमिजम्, क्रिमिजन्यम्।

गुणप्रकाशक नाम- वर्णप्रसादनम्।

गुण-दोष:-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- अगर कटु, तिक्त तथा उष्ण रसप्रधान, स्निग्ध गुण वाला, वात तथा कफ नाशक है और कान तथा आँख की पीड़ा का नाश करता है तथा मंगल देने वाला एवं कुष्ठ रोग को अच्छी तरह नष्ट करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- अगर सार स्वादिष्ट होता है, सुगन्धित धूमवाला तथा गन्ध धूमज है, स्वादिष्ट है; कटु, कषाय रस प्रधान, उष्ण वीर्य, मधुर गन्ध वाला तथा वातनाशाक है। **काला अगर** कटु तथा तिक्त रस प्रधान, उष्णवीर्य तथा लेप में शीतल है। पान करने से पित्त को शान्त करता है तथा थोड़ा त्रिदोष नाशक कहा गया है। **काष्ठ अगर**- कटु रस प्रधान, उष्णवीर्य, लेप में रूक्ष तथा कफ नाशक है। **दाहागर**- कटु रस प्रधान, उष्णवीर्य तथा केशों को बढ़ाने वाला एवं वर्ण को सुन्दर बनाने वाला है। बाल के दोषों को दूर करता है तथा निरंतर सुगन्ध को बढ़ाता है। **मांगल्यागरु**- शीतल, गन्धबाहुल्य तथा योगवाही है।

भाव प्रकाश के अनुसार- अगर उष्ण वीर्य, तीक्ष्ण, कटु तथा तिक्त रस प्रधान, त्वचा के लिए हितकर, पित्तकारक, हल्का, कर्ण तथा नेत्र रोग का नाश करने वाला, शीतल एवं वात-कफ का नाश करने वाला है। **काला अगर** अधिक गुण वाला है और वह लोहे की तरह जल में डूब जाता है। अगर से उत्पन्न स्नेह (तेल) काले अगर के समान होता है।

राजवल्लभ के अनुसार- अगर कफ को दूर करने वाला, तिक्त तथा कटु रस प्रधान एवं उष्ण है और वात एवं कफ को दूर करता है।

अगरु का वैद्यक में व्यवहार:-

१. हिचकी रोग में काललोह (अगर) का प्रयोग- अगरु का चूर्ण शहद में मिलाकर हिचकी को शान्त करने के लिए चाटे। (च.चि.अ.२१) **२. लवण मेह में अगर का प्रयोग**- पाठा तथा अगर के क्वाथ का प्रयोग लवणमेह में लाभदायक है। (च.चि.अ.१) **३. दाद, कुष्ठ तथा किटिम में अगर सार स्नेह का प्रयोग**- शीशम तथा अगर के सार का स्नेह (तैल) दाद, कुष्ठ तथा किटिम में लाभदायक है। (च.चि.अ.३१)

कास में अगर का प्रयोग- कास में अगर का प्रयोग मधु के साथ करे॥ (सु.चि. ३)

हिक्का तथा कास में अगर का प्रयोग- हिक्का तथा कास में अगर का प्रयोग करें (वा.चि.अ.४)

विमर्श- यह थाइमिलियेसी परिवार (Family Thymelaecceae) का सदस्य है। अगर वृक्ष की ऊँचाई लगभग ८० फीट होती है। यह वृक्ष पूर्वी हिमालय आसाम, बंगाल, भूटान एवं गेर, नागा, कचार तथा सिल्हट के पहाड़ी जंगलों में बहुतायत पाया जाता है। इसकी लकड़ी मुलायम तथा तनों के रन्ध्रों में राल की भांति तरल सुगंधित पदार्थ होता है जो अगरबत्ती निर्माण में उपयोग होता है। इसकी भारत में लगभग ५ जातियों का वर्णन मिलता है। इसकी लकड़ी का स्वाद कडुवा होता है तथा जलाने पर सुगन्धित धुँआ निकलता है। इसके रोगग्रस्त (कवक से ग्रसित) लकड़ी से एक प्रकार का उड़नशील तेल निकालते हैं जो ईथर (Ether) में विलेय हैं। इसका उपयोग इत्र उद्योग एवं औषधीय उपयोग में होता है। इसकी छाल के रेशों से रस्सी निर्मित की जाती है। इसका प्रयोग उत्तेजक, वातनाशक, पतले दस्त एवं उल्टी में किया जाता है। इसे अरबी में इद-उल-जुज कहते है॥ इसके काढ़ा

(१:१०) ४-१२ ड्राम तक उपयोग करते है॥ इसका प्रयोग अनेक नस-उपकारक टानिक (Nervine tonic), वातनाशक एवं दिल को ताकत पहुँचाने वाली औषधियों के निर्माण में होता है। गठिया, वातविकार, चक्कर आना, प्रदर, शक्तिहीनता, सर्प-दंश, घाव एवं शल्यजनित घावों में दर्द-निवारण हेतु प्रयोग करते है॥

Constituents— A Volatile Oil.

Actions and uses— Used as perfume and as stimulant, cholagogue also deobstruent. It is an ingredient in various nervine tonic, carminative and stimulant preparations. It is used in gout and rheumatism, also to check vomiting. A paste of Agara and Sapasanda, with brandy, is applied to the chest in bronchitis of children and to the head in headache. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., P. 535)

अगस्तिः

Sesbania grandiflora

अगस्तिः, मुनिद्रुमः, कुम्भयोनिः। *Sesbania grandiflora, Aeschynomene grandiflora.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा–"वक्रपुष्पः," "दीर्घफलः", "शीघ्रपुष्पः"। "गुण-प्रकाशिका संज्ञा"– "व्रणारिः"।

सितपीतनीललोहितकुसुमभेदाच्चतुर्विधोऽगस्तिः। मधुरः शिशिरस्त्रिदोष-श्रमकासविनाशनश्च भूतघ्नः। तथा च–अगस्त्यं शिशिरं गौल्यं त्रिदोषघ्नं श्रमापहम्। वलासकासवैवर्ण्यभूतघ्नञ्च बलापहम्॥ "राजनिघण्टुः"॥ अगस्तिः पित्तकफजिच्चातुर्थकहरो हिमः। रूक्षो वातकरस्तिक्तः प्रतिश्यायनिवारणः॥ "भावप्रकाशः"॥ अगस्तिकुसुमं शीतं चातुर्थकनिवारणम्। नक्तान्ध्यनाशनं तिक्तं कषायं कटुपाकि च। पीनसश्लेष्मपित्तघ्नं वातघ्नमिति कीर्त्तितम्। "मुनिशिम्बी" सरा प्रोक्ता बुद्धिदा रुचिदा लघुः। पाककाले तु मधुरा तिक्ता चैव स्मृतिप्रदा। त्रिदोषशूलकफहृत् पाण्डुरोगविषापनुत्। शोषगुल्महरा प्रोक्ता सा पक्वा रूक्षपित्तला। "वृहन्निघण्टुरत्नाकरः"॥ अगस्त्यं नातिशीतोष्णं नक्तान्धानां प्रशस्यते। "सुश्रुतः"–(सू. ४६ पु. व.)।

वैद्यके व्यवहारः– निशान्ध्ये अगस्तिपत्रम्– "भृष्टं घृतं कुम्भयोनेः पत्रैः पाने च पूजितम्" (उ. १३ अ.)। वाग्भटः॥ (१) "अपस्मारे अगस्तिपत्रम्"–अगस्तिपत्रं मरिचं मूत्रेण परिपेषितम्। नस्ये शस्तमपस्मारं हन्ति शीघ्रं नरस्य तु॥" (चि. १९)। (२) बालानामपस्मारे अगस्तिपत्रम्–"रसश्चागस्तिपत्रस्य मरिचैः प्रतियोजितम्। एतेन प्रतिसौख्यं स्यात्–"। (चि. ४३)। "हारीतः"॥ चातुर्थकज्वरे अगस्तिपत्रम्–"नस्यं चातुर्थकं हन्ति रसो वागस्त्यपत्रजः" (ज्वरचि.)। चक्रदत्तः॥ वातरक्ते अगस्तिपुष्पम्–"अगस्तिपुष्पचूर्णेन माहिषं जनयेद्दधि। तदुत्थनवनीतेन देहजं स्फुटनं जयेत्॥" (म. ख. २य भा.)। भावप्रकाशः॥

विविध भाषाओं में नाम- सं.- अगस्त्यः, हि.- अगस्तिया, गु.- अगस्थियो, वं.- वक, मरा.- अगस्ता, कनाड़ा- अगसेयमरन, चोगची, ता.- अल्कम, अर्गतो, तेल-अविसी, ले.- Agati grandiflora (अगटी ग्रान्डीफ्लोरा), वर्तमान नाम- Sesbania grandiflora (Fam. Papilionaceae).

परिचय ज्ञापक नाम- वक्रपुष्पः, दीर्घफलः, शीघ्रपुष्पः।

गुण प्रकाशक नाम- व्रणारिः।

गुण-दोषः-

राजनिघण्टु के अनुसार- शीत, पीत, नील, लोहित पुष्प भेद से अगस्त्य चार प्रकार का होता है। अगस्त्य मधुर, शीतल, त्रिदोषनाशक, श्रम को दूर करने वाला, कासनाशक तथा भूतदोषनाशक है। अगस्त्य शीतल, गला के लिए हितकर, त्रिदोषनाशक, थकावट को दूर करने वाला, कफ विकार, कास, विवर्णता, भूतदोष नाशक तथा बल का नाश करने वाला है।

भावप्रकाश के अनुसार- अगस्त्य पित्त तथा कफ को दूर करने वाला तथा चातुर्थिक ज्वर को नष्ट करता है, शीतल है, रूक्ष है, वातकारक है तथा तिक्त रस प्रधान है और प्रतिश्याय को दूर करता है।

बृहन्निघण्टु रत्नाकर के अनुसार- अगस्त्य की फूल शीतल है तथा चातुर्थिक ज्वर को दूर करती है, रतौंधी का नाश करती है, तिक्त तथा कटुरस प्रधान है तथा पाक में कटु है, पीनस रोग, श्लेष्म रोग तथा पित्त विकार का नाश करता है और वातनाशक है। **मुनिशिम्बी (अगस्त्य)-** दस्तावर, बुद्धिप्रद, रुचिकारक तथा लघु है, विपाक में मधुर तथा तिक्त रस है और स्मरण शक्ति को बढ़ाने वाला है। त्रिदोष शूल तथा कफ को दूर करता है, पाण्डुरोग तथा विष को नष्ट करता है, शोथ तथा गुल्म रोग को दूर करता है। पका हुआ अगस्त्य फल, रूक्ष है तथा पित्तकारक है।

सुश्रुत के अनुसार- अगस्त्य न तो अधिक शीतल है और न अधिक उष्ण है। अर्थात् समशीतोष्ण है। नक्तान्ध्य (रतौंधी) में लाभदायक है।

अगस्त्य का वैद्यक शास्त्र में प्रयोग-

रतौंधी में अगस्त्य के पत्र का प्रयोग- अगस्त्य पत्र के साथ पकाया घृत पान करने से रतौंधी में लाभ होता है। (वाग्भट उ. अ. १३)

१. अपस्मार में अगस्त्य पत्र का प्रयोग- अगस्त्य के पत्तों को मरिच के साथ गोमूत्र में पीसकर नस्य करने पर शीघ्र ही मनुष्यों का अपस्मार नष्ट होता है। (वा.चि.अ. १९) **२. बालकों के अपस्मार में अगस्त्य पत्र का प्रयोग-** अगस्त्य के पत्र का रस मरीच के चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन करने से आराम मिलता है। (हारीत-चि.अ.४३)

चातुर्थिक ज्वर में अगस्त्य पत्र का प्रयोग- अगस्त्य पत्र का रस नस्य लेने से चातुर्थिक ज्वर नष्ट होता है। (चक्रदत्त-ज्वर चिकित्सा)

वातरक्त में अगस्त्य पुष्प का प्रयोग- अगस्त्य पुष्प के चूर्ण को भैंस के दूध में डालकर दही बनावे और उस दही से मक्खन निकाले। यह मक्खन वातरक्तजन्य फोड़ियों को शान्त करता है। (भावप्रकाश- मध्य खण्ड २ या. भा.)

विमर्श- यह पेपीलियोनेसी परिवार (Family Papilionaceae) का सदस्य है। इसकी ऊँचाई लगभग ३० फीट होती है। यह तीव्र गति से बढ़ने वाला वृक्ष है। अंग्रेजी में इसे Agati Sesbania कहते है॥ यह ट्रापिकल एशिया का मूल निवासी है तथा वर्तमान समय में हमारे देश में यह आसाम, बंगाल, पंजाब, बड़ौदा, आन्ध्रप्रदेश व तमिलनाडू में उगाया जाता है। अगस्तिया की छाल हल्के भूरे रंग एवं स्पर्श में चिकनी होती है। इसकी लकड़ी

सफ़ेद व मुलायम तथा पत्तियाँ लगभग इमली के पत्तों के समान होती है॥ इसकी कोमल पत्तियों, फूलों व फलों की सब्जी बनती है। तने की छाल, पत्तियाँ, फूल, फल, गोंद एवं जड़ की छाल औषधि बनाने में प्रयुक्त होता है। इसकी पत्तियों एवं मुलायम तनों का मुर्गियों एवं जानवरों के चारे में प्रयोग होता है। इसकी छाल से रेशे निकलते हैं जिससे रस्सी बनायी जाती है। इसकी लकड़ी मुलायम व सफेद होती है जिससे खिलौना बनाया जाता है। इसके छाल की रस मछली के जाल को मजबूत करने के काम आती है। जड़ के रस को शहद के साथ मिलाकर कफनाश हेतु एवं पत्ती को मुँह एवं गले के संक्रमण से बचाने हेतु चूसते है॥ यूनानी चिकित्सकों का मत है कि इसके पत्तों का दो-तीन बूंद रस नाक में टपकाने से छींक आती है तथा नाक बहकर सिरदर्द व सिर का भारीपन दूर हो जाता है। इसका फल उदरशूल एवं पाण्डुरोगों को ठीक करता है। पका हुआ फल साइनस एवं ट्यूमर वृद्धि में उपयोगी है।

Constituents—Tannin and gum.

Actions and uses—The root expectorant. The bark astringent bitter tonic. The juice of leaves and flowers is blown up the nostrils in nasal catarrh and headache with relief. The juice of the root is given with honey in catarrh. A paste of the root with the stramonium root is applied to painful swellings. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 229-30).

अङ्कोटः

Alangium lamarkii

अङ्कोटः (ठः), अङ्कोलः। *Alangium lamarkii, Alangium hexapetalum.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा–"दृढकण्टकः", "लम्बपर्णः," "गन्धपुष्पः", "ताम्रफलः"। गुणप्रकाशिका संज्ञा–"रेची", "विषघ्नः", "वामकः, गुप्तस्नेहः"। पूर्वाचार्यकृतवर्णनम्–"अङ्कोटः सङ्ग्राही चिरितखलपत्रः अङ्कोल्ल इति लोके"। डल्लणः–(सु. टी. सू. ३६)।

अङ्कोलः स्निग्धतीक्ष्णोष्णः कटुको वातनाशनः। कुक्कुराखुविषं हन्ति ग्रहजन्तुविषापहः॥ भूतहृद्विषहृच्चैव कण्ठशूलस्य शोधनः। निघण्टुः॥ अङ्कोलः कटुकः स्निग्धो विषलूतादिदोषनुत्। कफानिलहरः भूतशुद्धिकृद्रेचनीयकः॥ राजनिघण्टुः॥ अङ्कोटकः कटुस्तीक्ष्णः स्निग्धोष्णस्तुवरो लघुः। रेचनः क्रिमिशूलामशोफग्रहविषापहः॥ विसर्पकफपित्तास्त्रमूषिकाहिविषापहः। तत् "फलं" शीतलं स्वादु श्लेष्मघ्नं वृंहणं गुरु। बल्यं विरेचनं वातपित्तदाहक्षयास्त्रजित्॥ भावप्रकाशः॥ रसो वान्तिकरश्चास्य विषदोषकफापहः। वातशूलशोथक्रिमिग्रहपीडामपित्तहा॥ रक्तदोषविसर्पघ्नः श्वानाखुविषनाशनः। ओतोर्विषं कटीशूलमतिसारञ्च नाशयेत्॥ वृहन्निघण्टुरत्नाकरः॥

वैद्यके व्यवहारः–(१) "दन्तकाष्ठगते विषे" अङ्कोटमूलम्–"अथवाङ्कोठमूलानि" (कल्प १ अ.)। (२) अञ्जने विषसंसृष्टे अङ्कोटपुष्पम्– "एकैकं कारयेत् पुष्पं बन्धूकाङ्कोठयोरपि" (कल्प १ अ.) सुश्रुतः॥ आखोर्विषे अङ्कोलमूलम्–"अङ्कोलमूलकल्को वा वस्तमूत्रेण कल्कितः। पानालेपनयोर्युक्तः सर्वाखुविषनाशनः॥" (उ.३८ अ.)। वाग्भटः॥ (१) "अतिसारे" अङ्कोठमूलम्–तण्डुलजलपिष्टाङ्कोठमूलकर्षार्द्धपानमपहरति। सर्वातिसारग्रहणीरोगसमूहं महाघोरम् (अतिसार चि.)। (२) गरदोषे अङ्कोटमूलम्–"अङ्कोटमूलनिष्क्वाथं फाणितं सघृतं लिहेत्। तैलाक्तः स्विन्नसर्वाङ्गो

गरदोषविषापहः (विष चिः)॥ चक्रदत्तः॥ श्वविषे अङ्कोटमूलम्–"क्षीरेण परिपेषिता अङ्कोठवंशजा वापि श्वविषघ्नी प्रयत्नतः" (म. ख. ४ भा.)। भावप्रकाशः॥

विविध भाषाओं में नाम– सं.– अङ्कोलः, निकोचकः, रेची, गुप्तस्नेहः। हिन्दी– अंकोल ढेरा। मारवाड़ी– अंकोल। गु.– अंकोल। बं.– आंकोड़े। ते.– बुड्डुगू। द्रा.– अंकीलाम। लेटिन– Alangium salviifolium (Syn. Alangium lamarckii)

परिचय बोधक नाम– दृढकण्टकः, लम्बकर्णः, गन्धपुष्पः, ताम्रफलः।

गुणप्रकाशक नाम– रेची (विरेचन कारक), विषघ्न (विषनाशक), वामक (वमनकारक), गुप्त स्नेह (गुप्त तैल वाला)।

प्राचीन आचार्यों द्वारा किया हुआ वर्णन– अंकोल, सङ्ग्राही, चीरा हुआ खल पत्र, अङ्कोल ऐसा लोक में वर्णन है। (सु.ड.टी.सूत्र-अ.३६)

गुण-दोष–

निघण्टु के अनुसार– अंकोल स्निग्ध तीक्ष्ण तथा ऊष्ण है तथा कटु रस प्रधान है और वात नाशक है। यह कुक्कुर तथा मूस के विष को नष्ट करता है तथा ग्रह दोष तथा जन्तु विष को नष्ट करता है। यह भूत बाधा, ग्रह दोष को नष्ट करता है तथा कण्ठशूल का शोधन करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार– अंकोल कटु रस प्रधान तथा स्निग्ध है और लूता आदि विषैले जन्तुओं के विष को नष्ट करता है, कफ विकार तथा वात विकार को दूर करता है, पारद को शुद्ध करने वाला तथा रेचनकारक होता है।

भावप्रकाश के अनुसार– अंकोट कटु रस प्रधान तीक्ष्ण, स्निग्ध, कसैला तथा हल्का है तथा दस्तावर है और क्रिमिरोग, शूल, आम शोथ, ग्रहदोष एवं विष विकार को नष्ट करता है। इनके अतिरिक्त विसर्प, कफ विकार, पित्त विकार, रक्तविकार, मूषिका विष तथा सर्प विषको दूर करता है। अंकोट का फल शीतल स्वादिष्ट, कफनाशक, शरीरवर्द्धक तथा गुरु है और बलकारक, विरेचनकारक है; वात विकार, पित्त विकार, दाह, क्षय रोग एवं रक्त विकार को नष्ट करता है।

बृहद् निघण्टु रत्नाकर के अनुसार– अंकोल के पत्ते का रस वमनकारक है और विष दोष तथा कफ विकार को दूर करता है। वात रोग, शूल, शोथ, क्रिमि रोग, ग्रह दोष, पीड़ा तथा पित्त विकार को दूर करता है। रक्त विकार तथा विसर्प को नष्ट करता है और कुत्ता, मूषक के विष को नष्ट करता है, लूताविष, कटिशूल तथा अतिसार को नष्ट करता है।

अंकोल का वैद्यक में प्रयोग–

१. दन्तकाष्ठगत (दातून में) विष होने पर अङ्कोट के मूल का प्रयोग– अङ्कोट का मूल प्रयोग करे। (सु.क.अ.१) **२. अञ्जन के विष से मिश्रित हो जाने पर**– अङ्कोट के पुष्प का प्रयोग करे। अङ्कोट तथा बन्धूक (दुपहरिया नामक पुष्प वृक्ष) के एक-एक पुष्प का भी प्रयोग करे। (सू.क.अ.१)।

मूषक विष में अङ्कोट के मूल का प्रयोग– अङ्कोल के मूल का कल्क या अंकोल के मूल बकरी के मूत्र के साथ कल्क बनाकर पान करे या लेप लगाये। इससे सभी प्रकार के मूषक विष नष्ट होते है॥ (वाग्भट उ.अ.३८)।

१. अतिसार (पेचिस के दस्त) में अङ्कोट के मूल का प्रयोग– अंकोट के मूल का कल्क बनाकर पान करे। चावल के धोअन के साथ अंकोट के मूल को पीस कर आधा कर्ष (५ग्राम) की मात्रा में पान करने से सभी प्रकार के अतिसार, ग्रहणी आदि भयंकर रोगों का समूह दूर होता है (चक्रदत्त अतिसार चिकित्सा)। **२. गरदोष (कृत्रिम विष) में अंकोट के मूल का प्रयोग-** अंकोट के मूल का क्वाथ कर तथा फाणित बनाकर तथा घृत मिलाकर चाटे और सम्पूर्ण शरीर में तैल लगाकर स्वेदन करे। यह सभी प्रकार के गर दोष को दूर करता है। (चक्रदत्त विष चिकित्सा)।

कुत्ता के विष में अंकोट मूल का प्रयोग- अंकोट का मूल या उस जाति के वृक्ष के मूल को दूध के साथ पीसकर पान करने से प्रयत्न पूर्वक कुत्ते के विष का नाश होता है (भा.प्र.४ ख.)।

विमर्श- अंकोल एलान्जियेसी कुल (Family Alangiaceae) का सदस्य है। इसका नया लैटिन नाम Alangium salviifolium हो गया है। अंग्रेजी नाम Sageleaved Alangium है। अंकोल का झाड़ीदार वृक्ष लगभग ४० फीट ऊँचा होता है तथा इसके हरे फल पकने के क्रम में लाल तथा अंततः बैगनी रंग के हो जाते हैं, खाने योग्य होते है॥ यह सम्पूर्ण भारत के शुष्क क्षेत्रों में पाया जाता है तथा दक्षिण भारत के जंगलों में बहुतायत मिलता है। इसकी लकड़ी वाद्य यंत्रों के निर्माण में काम आती है। इसकी जड़ की छाल, बीज तथा पत्तियाँ औषधीय उपयोग की है॥ इसकी लकड़ी में एक रक्तचाप कम करने वाला एल्केलायड होता है। इससे एलेन्जीन (Alangine) नामक एल्केलायड प्राप्त होता है जो अल्कोहल, क्लोरोफार्म तथा ईथर में घुलनशील तथा जल में अघुलनशील है।

Constituents— Non-crystallizable, bitter alkaloid, alangine. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II, p. 322)

Mr. Moodin Sheriff has drawn attention to the emetic properties of the bark in the *Pharmacopoeia of India*. He says—"It has proved itself an efficient and safe emetic in doses of fifty grains; in smaller doses, it is nauseant and febrifuge. The bark is very bitter, and its repute in skin diseases is not without foundation. If it is continued for a sufficient period its influence over them is greater than that of *Calotropis gigantea*." Mr. Moodin Sheriff, in a further report upon this drug (1883), states—"It is a good substitute for Ipecacuanha, and proves useful in all diseases in which the latter is indicated, except dysentery. As a diaphoretic and antipyretic it has been found useful in reliving pyrexia. Dose as a nauseant, diuretic and febrifuge, 6 to 10 grains of the rootbark; as an alterative, 2 to 5 grains, it is given in leprosy and syphilis; the natives consider it to be alexiteric, especially in cases of bites from rabit animals."—(*Pharmacographia Indica*—W. Dymock, Part II, p. 165).

अतसी

Linum usitatissimum

रुद्रपत्नी, अतसी, उमा। *Linum usitatissimum.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा–"नीलपुष्पिका"। गुणप्रकाशिका संज्ञा–"पिच्छिला", "तैलफला"। पूर्वाचार्यकृतवर्णनम्–"अतसी मशिना इति लोके प्रसिद्धा" डल्हणः (सु. टी. सू. ३६ अ.)। "अतसी तिसीति विख्याता" चक्रपाणिः–(सु. टी. सू. ३६ अ.)।

रुद्रपत्नी तु मधुरा पित्तहा बलकारिका। कफवातकरी चेषत् पित्तहृत् कुष्ठवातजित्॥

अन्यच्च–अतसी मधुरा तिक्ता स्निग्धा पाके कटुर्गुरु:। उष्णा दृक्शुक्रवातघ्नी कफपित्तविनाशिनी॥ धन्वन्तरीयनिघण्टु:॥ अतसी मदगन्धा स्यान्मधुरा बलकारिका। कफवातकरी चेषत् पित्तहृत् कुष्ठवातनुत्॥ राजनिघण्टु:॥ अतस्युष्णा च तिक्ता च वातघ्नी श्लेष्मपित्तला। स्वाद्वम्लमतसी "तैलं" वीर्य्योष्णं कटुपाकि च॥ राजवल्लभ:॥ अतसी मधुरा तिक्ता स्निग्धा पाके कटुर्गुरु:। उष्णा दृक्शुक्रवातघ्नी कफपित्तविनाशिनी॥ भावप्रकाश:॥ पाके कट्वी च तिक्ता च कफवातव्रणापहा। पृष्ठशूलञ्च शोथञ्च पित्तं शुक्रं दृशञ्जयेत्॥ "पर्ण"मस्या: कासकफवातनुच्छ्वासहृत्तथा। वृहन्निघण्टु-रत्नाकर:॥

वैद्यके व्यवहार:– (१) 'व्रणोपनाहने' अतसी– "...सातसीबीजदध्यम्ला शक्तुपिण्डिका। शस्ता स्यादुपनाहने..." (चि. १३ अ.)। (२) पक्वशोथप्रभेदने अतसी–"...उमाथ गुग्गुलु:...। इत्युक्तो भेषजगण: पक्वशोथप्रभेदन:॥" (चि. १३ अ.)। (३) वातप्रधानव्रणालेपने अतसी–"सदाहा वेदनावन्तो ये व्रणा मारुतोत्तरा:। तेषां तिलान्युमाश्चैव भृष्टान् पयसि निर्वृतान्॥ तेनैव पयसा पिष्ट्वा कुर्यादालेपनं भिषक्।" (चि. १३ अ.)। चरक:॥ (१) वाताधिकवातरक्ते उमा–"क्षीरपिष्टमुमालेपं. ..। कुर्याच्छूलनिवृत्त्यर्थं...।" (चि. २९ अ.)। (२) प्रमेहे उमातैलम्–"कुसुम्भसर्षपातसी... स्नेहा: प्रमेहेषु।" (चि. ३१ अ.)। सुश्रुत:॥

विविध भाषाओं में नाम- सं.- अतसी, पिच्छिला, उमा, क्षमा। हि.- अलसी, तीसी, मसीना। बं.- मसीन, तीसी। म.- जवस, अलशी। गु.- अलशी। कर्ना.- असगे। तैलंग- नल्लयगसिचेट्टू। फा.- तुख्मेकतान। अर.- वजरुलकतान। अं.- Lin Seed, Flax. ले.- Linum usitatissimum.

परिचय बोधक नाम- नीलपुष्पिका।

गुणप्रकाशक नाम- पिच्छिला, तैलफला (तैलवाला फल)।

पूर्वाचार्यकृत वर्णन- अलसी, मशिना यह लोक में प्रसिद्ध है ऐसा डल्हण का मत है। सू.सं.टी.अ. ३६॥ अतसी तिसी ऐसा प्रसिद्ध है चक्रपाणि के अनुसार। सु.टी.सू.अ.३६।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- रुद्रपत्नी (अतसी) स्वाद में मधुर है, पित्तकारक है, बलकारक है, वात-कफवर्द्धक है और थोड़ा पित्त नाशक तथा कुष्ठ रोग तथा वातरोग का नाश करती है। और भी अलसी मधुर तथा तिक्त रस प्रधान, स्निग्ध, पाक में कटु तथा गुरु (भारी) है और उष्ण है, दृष्टि, शुक्र तथा वातरोग का नाश करने वाली है तथा कफ एवं पित्त का नाश करने वाली है।

राजनिघण्टु के अनुसार- अतसी मादक गन्ध वाली है तथा स्वाद में मधुर एवं बलकारक है। यह कफ तथा वात वर्द्धक है तथा थोड़ा पित्त को दूर करने वाली है तथा कुष्ठ एवं वात विकार को दूर करने वाली है।

राजवल्लभ के अनुसार- अतसी उष्ण, तिक्त रस प्रधान, वातनाशक तथा कफविकार एवं पित्तविकार को उत्पन्न करने वाली है। स्वादिष्ट तथा अम्ल रसवाली अतसी का तैल उष्णवीर्य पाक में कटु है।

भाव प्रकाश के अनुसार- अतसी, मधुर रस तथा तिक्त रस प्रधान है तथा स्निग्ध है और पाक में कटु एवं गुरु (भारी) है। उष्णवीर्य, दृष्टि शक्ति, शुक्र (वीर्य) तथा पित्त का नाश करने वाली है।

बृहन्निघण्टु रत्नाकर के अनुसार- अतसी पाक में कटु है तथा तिक्त रस प्रधान है और कफ विकार, वात विकार तथा व्रण का नाश करने वाली है। यह पृष्ठ शूल, शोथ, पित्त विकार, वीर्य एवं दृष्टि शक्ति को जीत लेती है। अतसी का पत्र कास, कफ विकार तथा वात विकार को दूर करता है और श्वास विकार को दूर करता है।

अतसी का वैद्यक शास्त्र में व्यवहार (उपयोग)-

१. **व्रण के उपनाहन कर्म में अलसी का प्रयोग-** अलसी का बीज दही, अम्ल तथा सत्तू इन सब का पिंड (पिण्डिका) व्रण के उपनाहन में प्रशस्त है। २. **पके हुए शोथ का भेदन करने में अलसी का प्रयोग-** अलसी तथा गुग्गुल को पके हुए शोथ के भेदन करने वाला भेषजगणने कहा है। ३. **वात प्रधान व्रण के लेप करने में अतसी का प्रयोग-** दाह तथा वेदना से युक्त जो वात प्रधान व्रण होते हैं उनको तिल तथा अलसी भूनकर तथा दूध में भिगोंकर तथा दूध के साथ पीस कर व्रण के ऊपर लेप करे॥ (चरक चिकित्सा अ. १३)।

१. **वाताधिक वात रक्त में अतसी का प्रयोग-** अलसी को दूध में पीस वाताधिक वातरक्त में लेप करे॥ शूल को दूर करने के लिए अलसी को दूध में पीस कर लेप करे। (सु.चि.अ.२९) २. **प्रमेह में अलसी तैल का प्रयोग-** प्रमेह में कुसुम्भ (वर्दे), सरसों तथा अलसी का तैल प्रयोग करे। (सु.चि.अ.३१)

विमर्श- अलसी लाइनेसी कुल (Family Linaceae) का सदस्य है। यह शाकीय होता है तथा तेल उत्पादन हेतु उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार एवं राजस्थान में इसकी प्रचुर मात्रा में खेती होती है। इसका तेल खाने के अतिरिक्त पेन्ट, वारनिश व साबुन आदि बनाने में प्रयोग होता है। इसकी खली पशु आहार एवं खाद के रूप में प्रयोग की जाती है। इसके बीजों में ३०-३५ प्रतिशत तेल पाया जाता है। इसके बीजों में अनेक तत्त्व जैसे मैग्नेशियम, कैल्शियम, फास्फेट आफ पोटैशियम तथा लगभग २५% प्रोटीन पाया जाता है।

Constituents—The seed-nucleus contains a fixed oil 30 to 35 p.c. the epithelium contains mucilage 15 p.c., proteid 25 p.c., amygdalin, resin, wax, sugar and ash 3 to 5 p.c. The ash contains phosphates, sulphates and chlorides of potassium, calcium and magnesium—(*Materia Medica of India*.—R. N. Khory, Part II, p. 150).

Physiological action—Demulcent, expectorant, diuretic and emollient. In large doses it is laxative. In small doses it stimulates the kidneys. It is oxidized in the system and excreted as a resinoid body in the urine. Its infusion is given in inflammation of the mucous membranes of the respiratory, digestive and urinery organs; also in vesical and renal irritation.—(*Materia Medica of India*.—R. N. Khory, Part II, p. 151).

Therapeutics—As it contains a mucilaginous principle and a little oil, it is given with honey in coughs and catarrh. As a demulcent and diuretic it is given in renal colic, cystitis, vesical irritation, strangury, vesical catarrh and calculi. Fumigation with the smoke of linseed oil is used for colds in the head and hysteria. The decoction, owing to the oil it contains is useful enema. Ground meal is chiefly used for poultices applied to enlarged glands, boils, gouty and rheumatic swellings, to the chest in pneumonia & c. The oil is laxative and given in piles. Locally made into a emulsion with lime water it is a valuable non-oil irritant application in burns and scalds... The oil is often added to purgative enemata instead of the castar-oil. Liber fibres are cooling to the body and lessen perspiration, and hence used as an article of dress.—(*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 151).

अतिविषा

Aconitum heterophyllum

अतिविषा, अरुणा। *Aconitum heterophyllum.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा–"श्वेतकन्दा", "भङ्गुरा", "घूणवल्लभा"। गुणप्रकाशिका संज्ञा–"अतिसारघ्नी", "शिशुभैषज्यम्"।

कटूष्णाऽतिविषा तिक्ता कफपित्तज्वरापहा। आमातिसारकासघ्नी विषच्छर्दिविनाशिनी॥ धन्वन्तरीयनिघण्टू राजनिघण्टुश्च॥ विषा सोष्णा कटुस्तिक्ता पाचनी दीपनी हरेत्। कफपित्तातिसारामविषकासवमिक्रिमीन्॥ भावप्रकाशः॥ पाचन्यतिविषा तिक्ता ग्राहिणी दोषनाशिनी। राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) आमातिसारे अतिविषा– "दद्यात् सातिविषां पेयां सामे साम्लां सनागराम्" (सू. २ अ.)। (२) दीपनाद्यर्थेषु अतिविषा– "अतिविषा दीपनीयपाचनीयसङ्ग्राहकसर्वदोषहराणाम्" (सू. २५ अ.)। चरकः॥ (१) सर्वकुक्ष्यामये अतिविषा–"अङ्कोटस्य त्रयो भागा भागश्चैकोऽरुणाभवः। तण्डुलोदकसम्पीतः सर्वकुक्ष्यामयापहः॥" (जी. सं १२१ पृ.)। (२) शिशोः कासज्वरच्छर्दिषु अतिविषा–"कासज्वरच्छर्दिभिरर्दितानां समाक्षिकाञ्चातिविषां तथैकाम्" (जी. सं ८१६ पृ.)। वङ्गसेनः॥

विविध भाषाओं में नाम– सं.– विषा, अतिविषा, शृङ्गी, प्रतिविषा, अरुणा, शुक्लकन्दा, उपविषा, भङ्गुरा, घुणवल्लभा। हि.– अतीस। बं.– आतइच। म.– अतिविषा। मा.– अतीस–पतीस। द्रा.– अतिविषे। क.– अतिविषै, अतिविषा। गु.– अतवसनी कली। ता.– अतिवदयम। अं.– Indian Atees, ले.– Aconitum heterophyllum (एकोनाइटम हिटरोफिलम) या *Aconitum corbatum* (एकोनाइटम कार्बेटम)।

परिचय बोधक नाम– श्वेतकन्दा, भंगुरा, घुणवल्लभा।

गुण प्रकाशक नाम– अतिसारघ्नी, शिशु भैषज्य।

गुण–दोष–

धन्वन्तरिनिघण्टु तथा राजनिघण्टु के अनुसार– अतिविषा कटु तथा तिक्त रस प्रधान है तथा उष्ण है और कफज तथा पित्तज ज्वर को दूर करती है। इनके अतिरिक्त आमातिसार तथा कास का नाश करती है और विष विकार तथा छर्दि (वमन) का नाश करती है।

भावप्रकाश के अनुसार– अतिविषा उष्ण है तथा कटु तथा तिक्त रस प्रधान है, पाचक है, जाठराग्नि दीपक है और कफ विकार, पित्त विकार, अतिसार, आम विष, कास, वमन तथा कृमिरोग को दूर करती है।

राजवल्लभ के अनुसार– अतिविषा पाचक है, तिक्त रस वाली है, ग्राही है तथा दोषों का नाश करने वाली है।

वैद्यक शास्त्र में अतिविषा का प्रयोग–

(१) आमातिसार में अतिविषाका प्रयोग– आमविकार (आमातिसार) में अम्ल तथा नागरमोथा का चूर्ण

मिलाकर अतिविषा की पेया का प्रयोग करे। (च.सू.अ.२) (२) **जाठराग्नि प्रदीप्त करने में अतिविषा का प्रयोग-** अतिविषा जाठराग्नि को प्रदीप्त करने वाली, भोजन को पचाने वाली, ग्राही तथा सभी दोषों को दूर करने वाली है। (च.सू.अ.२५)।

सभी प्रकार के उदर रोगों में अतिविषा का प्रयोग- (१) अंकोट तीन भाग तथा अरुणा (अतिविषा) एक भाग इन सब के चूर्ण को तण्डुलोदक (चावल के धोअन) के साथ पान करे॥ यह सभी प्रकार के उदर रोग को नष्ट करती है। (बंगसेन जी.म.पृ. १२१)। (२) बालकों के कास ज्वर तथा वमन से प्रयोग कास ज्वर तथा वमन से पीड़ित बालकों के लिए केवल अतिविषा का चूर्ण मधु के साथ सेवन करना लाभदायक है। (बंगसेन जी.म.पृ.८१९)

विमर्श- अतीश रेननकुलेसी परिवार (Family Ranunculaceae) का सदस्य है। इसका पूर्व नाम A. atees तथा A. cordatum है। इसके पौधे एक से तीन फीट तक ऊँचे होते हैं तथा कुमायूँ से हसोरा तक, मनाली, रहल तथा उत्तर पश्चिम हिमालय क्षेत्र में २००० से ४००० मीटर की ऊँचाई तक पाये जाते है॥ इसका तना सीधा व पत्तेदार होता है। इसमें पुष्प बहुत लगते है॥ इसमें कन्द पाया जाता है जिसका स्वाद कसैला होता है तथा इसका ही औषधि हेतु प्रयोग किया जाता है। इसमें अतिसीन (Atisine) एवं एकोनाइट एसिड (Aconite acid) तथा टेनिन एसिड नामक क्षार पाया जाता है।

Constituents—An intensely bitter alkaloid—Atisine, Aconitic acid, Tannic acid, Pectous substance, abundant starch, fat, a mixture of oleic, palmitic-stearic glycerides, vegetable mucilage, cane-sugar and ash, 2 p.c. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II, p. 3).

Actions and uses—Bitter, stomachic, aphrodisiac, tonic and antiperiodic, given during convulescence from such debilitating diseases as fevers, acute inflammatory affections, etc., used also in cough, dyspepsia and diarrhoea depending thereupon, in which case it is given in combination with aromatics, bitters and astringents such as Tinospora, Bonduc-nuts, Holarrhena etc. It has been given as an anti-periodic in Malarial fevers with some success, but is much inferior to quinine. Combined with Vavading (विड़ङ्ग) it is given to expel worms (Do. II. 3). Dr. M. Sheriff considers that the ordinary doses are only useful as a tonic and that two drams or more should be given as an antiperiodic. (*Pharmacographia Indica*—W. Dymock, I, p. 16).

अपराजिता

Clitoria ternatea

श्वेतपुष्पाया नाम–श्वेता गिरिकर्णिका, अश्वक्षुरा। नीलपुष्पाया नाम–नीला गिरिकर्णिका, विष्णुक्रान्ता।

"गिरिकर्णीद्वयं" तिक्तं पित्तोपद्रवनाशनम्। चक्षुष्यं विषदोषघ्नं त्रिदोषशमनञ्च तत्॥ गिरिकर्णी हिमा तिक्ता पित्तोपद्रवनाशिनी। विषनेत्रविकारांश्च हन्ति कुष्ठरुजापहा॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ गिरिकर्णी हिमा तिक्ता पित्तोपद्रवनाशिनी। चक्षुष्या विषदोषघ्नी त्रिदोषशमनी च सा॥ "नीलाद्रिकर्णी" शिशिरा सतिक्ता रक्तातिसारज्वरदाहहन्त्री। विच्छर्दिकोन्मादमदभ्रमार्त्तिश्वासातिकासामयहारिणी च॥ राजनिघण्टुः॥ अपराजिते कटू मेध्ये शीते कण्ठ्ये सुदृष्टिदे। कुष्ठशूलत्रिदोषामशोथव्रणविषापहे। कषाये कटुके पाके तिक्ते च स्मृतिबुद्धिदे॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः–सर्पविषे अपराजिता–"सिन्धुवारस्य मूलञ्च श्वेता च गिरिकर्णिका। पानं दर्वीकरैर्दष्टे...॥" (चि. २५ अ.)॥ चरकः॥ (१) भूतोन्मादे अपराजिता– "साज्यं भूतहरं नस्यं श्वेताज्ज्येष्ठाम्बुनिर्मितम्॥ (उन्मादचि.)। (२) गलगण्डे अपराजिता–"घृतमिश्रपीतमिव श्वेत-गिरिकर्णिकामूलम्। (गलगण्ड चि.)। चक्रदत्तः॥ परिणामशूले अपराजिता–"विष्णुक्रान्ताजटाकल्कः सिताक्षौद्रयुतैर्घृतम्। परिणामभवं शूलं नाशयेत् सप्तभिर्दिनैः"॥ (२ ख. ५ अ.)॥ शार्ङ्गधरः। शोथे अपराजिता–"कल्को वा गिरिकर्ण्याश्च पीतः शोथविनाशनः"। (जी. सं. ५१९ पृ.)। वङ्गसेनः॥ बल्मीकश्लीपदयोः गिरिकर्णिका–"गिरिकर्णिकामूलञ्च...। पिष्ट्वा प्रलेपनं कार्यं बल्मीकश्लीपदस्य च"॥ (चि. ३६ अ.)। हारीतः॥

विविध भाषाओं में नाम– सं.– आस्फोता, गिरिकर्णी, विष्णुक्रान्ता, अपराजिता। हि.– अपराजिता, कोयला। बं.– अपराजिता, म.– गोकर्णी, सुपली, काली पाडरी। गु.– गरनी, गरानी। क.– विलीम, गिरि कर्णिके। ते.- मिलंगटना। ले.– Clitoria ternatea (क्लीटोरिया टरनेटिया)।

श्वेतपुष्पा अपराजिता– गिरिकर्णिका, अश्वक्षुरा। **नीलपुष्पा अपराजिता–** नीला गिरिकर्णिका, विष्णुक्रान्ता।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार– दोनों प्रकार की अपराजिता– तिक्तरस प्रधान है और पित्तजन्य उपद्रव को शान्त करती है, चक्षुष्य (नेत्र के लिए हितकर) है, विषदोष नाशक है तथा त्रिदोष शामक है। गिरिकर्णी (अपराजिता), शीतल, तिक्तरस वाली, पित्तजन्य उपद्रव का नाश करने वाली, विषजन्य विकार का नाश करने वाली तथा नेत्र विकार को दूर करती है और कुष्ठ विकार को नष्ट करती है।

राजनिघण्टु के अनुसार– अपराजिता, शीतल, तिक्तरस प्रधान, पित्तजन्य उपद्रव का नाश करने वाली, नेत्र के लिए हितकर, विष दोष का नाश करने वाली तथा त्रिदोष को शान्त करने वाली है। नील पुष्प वाली अपराजिता शीतल, तिक्त रस वाली, रक्तातिसार, ज्वर तथा दाह को शान्त करने वाली, छर्दि, उन्माद, मद, भ्रम, पीडा, श्वास तथा कासरोग को दूर करने वाली है।

भाव प्रकाश के अनुसार– अपराजिताद्वय (नीलपुष्पा तथा श्वेतपुष्पा) कटुरस प्रधान, मेध्य, शीतल, कण्ठ के लिए हितकर तथा दृष्टिशक्ति को बढ़ाने वाली है और कुष्ठरोग, शूल, त्रिदोष, आमशोथ, व्रण तथा विष को दूर करने वाली है। यह पाक में कषाय तथा कटु है और तिक्त रस वाली है और स्मरण शक्ति तथा बुद्धि को बढ़ाने वाली है।

अपराजिता का वैद्यकशास्त्र में उपयोग–

सर्प विष में अपराजिता का प्रयोग– सिन्दुवार (निर्गुण्डी) की जड़ तथा सफेद पुष्प वाली अपराजिता का मूल इन दोनों का कल्क बनाकर दर्वीकर (साँप) के काटने पर पान करे। (चरक चि.अ.२५)।

(१) भूतोन्माद में अपराजिता का प्रयोग– श्वेत अपराजिता के रस में घृत मिलाकर नस्य लेने से भूतोन्माद नष्ट होता है (च.उन्मादचि.)। (२) **गलगण्ड में अपराजिता का प्रयोग–** श्वेत अपराजिता की जड़ का चूर्ण घृत मिलाकर पान करे। (चक्रदत्त-गलगण्ड चिकित्सा)।

परिणाम शूल में अपराजिता का प्रयोग- विष्णुक्रान्ता (अपराजिता) की जड़ का कल्क शक्कर, मधु तथा घृत के साथ सेवन करने से परिणामजन्य शूल सात दिन में नष्ट होता है। (शार्ङ्गधर म.ख.अ.५)।

शोथ में अपराजिता का प्रयोग- गिरिकर्णिका का कल्क पान करने से शोथ नष्ट होता है (बंगसेन-जी. सं.-पृ. ५१९)।

बल्मीक तथा श्लीपद में गिरिकर्णिका का प्रयोग- गिरिकर्णिका के मूल को पीसकर बल्मीक तथा श्लीपद में लेप करे॥ (हारीत सं.चि.अ.२६)॥

विमर्श- अपराजिता को गोकर्णी के नाम से भी जाना जाता है। यह पैपीलिओनेसी (Fam. Papilionaceae) परिवार का सदस्य है। यह हेज (hedges) एवं दीवालों पर चढ़ता एवं फैलता है। इसके बीजों का विरेचन (दस्तावर) के लिए प्रयोग किया जाता है। इसके जड़ का आंत्र की क्रिया को उत्प्रेरित करने (Cathartic), मूत्रल (diuretic) एवं विरेचन के लिए प्रयोग करते है॥

Constituents—The root bark contains starch, tannin and resins. The seeds contain a fixed oil, a bitter resin which is the active principle, tannic acid, glucose a light-brown resin, and ash, 6 p.c.

Actions and uses— The root is demulcent, diuretic and laxative, and is given in fever croup, chronic bronchitis, ascites, dropsy and enlargements of the abdominal viscera. As an demulcent the infusion is used to relieve irritation of the bladder and urethra and also given in bronchitis. The juice of fresh root is blown up the nostrils in Hemicrania. The extract is a brisk purgative—a good substitute for Kaladanah, gulbas bija and jalap. (R.N. Khory—II 206). Ainslie mentions the use of the root in croup, given with the object of causing nausea and vomiting. The author of the *Bengal Dispensatory* after extensive experiments denies its emetic properties, but says that an alcoholic extract proved a brisk purgative in doses of from 5 to 10 grains; he found it however to give rise to griping and tenesmus and does not recommend its use. (*Pharmacographia Indica.*—W. Dymock, I., 459).

अपामार्गः

Achyranthes aspera

अपामार्गः, शिखरी, मयूरकः, प्रत्यक्पुष्पी, किणिही। *Achyranthes aspera.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा–"प्रत्यक्पुष्पी", "खरमञ्जरी", "मयूरकः", "पङ्क्तिकण्टकः", रक्तापामार्गस्य–"रक्तविन्दुः", "अल्पपत्रकः"। गुणप्रकाशिका संज्ञा–"क्षवक्रः", "किणिही"।

अपामार्गस्तु तिक्तोष्णः कटुश्च कफनाशकः। अर्शःकण्डूदरामघ्नो रक्तहृद् ग्राही वान्तिकृत्॥ "रक्तापामार्गकः" शीतः कटुकः कफवातनुत्। व्रणकण्डूविषघ्नश्च सङ्ग्राही वान्तिकृत् परः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टू राजनिघण्टुश्च॥ अपामार्गः सरस्तीक्ष्णो दीपनस्तिक्तकः कटुः। पाचनी रोचनश्छर्दिकफमेदोऽनिलापहः॥ निहन्ति हृद्रुजाध्मार्शःकण्डूशूलोदरापचीः॥ अपामार्गो"ऽरुणो" वातविष्टम्भी कफकृद्धिमः। रूक्षः पूर्वगुणैर्न्यूनः कथितो गुण वेदिभिः॥ "अपामार्गफलं" स्वादु रसे पाके च दुर्ज्जरम्। विष्टम्भि वातलं रूक्षं रक्तपित्तप्रसादनम्॥ भावप्रकाशः॥ अपामार्गोऽग्निवत्तीक्ष्णः क्लेदनः स्त्रंसनः परः। राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः—शिरोविरेचने अपामार्गतण्डुलः—"प्रत्यक्पुष्पी शिरोविरेचनानाम्" (सू. २५ अ.)। "चरकः"॥ **(१) अर्शःसु अपामार्गमूलम्—** "अपामार्गमूलञ्च तण्डुलोदकेन सक्षौद्रमहरहः" (चि. ६ अ.)। **(२) क्रिमिषु अपामार्गः—**"ततः शिरीषकिणिहीरसं क्षौद्रयुतं पिबेत्" (उ. ५४ अ.)। सुश्रुतः॥ **(१) सद्योव्रणेषु रक्तस्रुतौ अपामार्गपत्रम्—** "अपामार्गस्य संसिक्तं पत्रोत्थेन रसेन वा। सद्योव्रणेषु रक्तन्तु प्रवृत्तं परितिष्ठति॥" (व्रणशोथचि.)। **(२) कर्णनादवाधिर्ययोः अपामार्गक्षारः—**"अपामार्गक्षारजले तत्कृतकल्केण साधितं तिलजम्। अपहरति कर्णनादं वाधिर्यञ्चापि पूरणतः॥" (कर्णरोगचि.)। **(३) नवे लोचनोत्कोपे अपामार्गमूलम्—**"शिखरिमूलं ताम्रभाजने स्तोकसैन्धवोन्मिश्राम् मस्तुनि घृष्टं भरनाद्धरति नवं लोचनोत्कोपम्"॥ (नेत्ररोगचि.)। चक्रदत्तः॥ **विसूचीकायां अपामार्गमूलम्—** "जलपीतमपामार्गमूलं हन्याद्विसूचीकाम्" (म.ख.द्वि.भा.)॥ भावप्रकाशः॥ **रक्तार्शःषु अपामार्गवीजम्—** "अपामार्गस्य वीजानां कल्कस्तण्डुलवारिणा। पीतो रक्तार्शसां नाशं कुरुते नात्र संशयः"॥ (द्वि. ख. ५म. अ.)। शार्ङ्गधरः॥ **(१) उन्मादे अपामार्गमूलम्—** "सितकुसुमवलायाः सार्धकर्षत्रयं यः। शिखरिचरणकोलं क्षीरपाकेन पक्वम्। पिबति तदनु शीतं प्रातरुत्थाय नित्यम्। जयति झटिति घोरं व्याधिमुन्मादमुग्रम्॥" (उन्मादचि.)। **(२) आगन्तुव्रणरोपणार्थम् अपामार्गमूलम्—** "वलाशिखरिकामूलं पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत्। नूलतैलमिति ख्यातं..."॥ (आगन्तुव्रणाधिकारे)। वङ्गसेनः॥ **(१) निद्रानाशे अपामार्गः—** "काकजङ्घा त्वपामार्गः...। क्वाथो निद्राकरः शीघ्रं..."॥ (चि. १६ अ.)। **(२) शोथे अपामार्गः—**"संस्वेदनक्रिया कार्या...। मयूरैः कोकिलाक्षैश्च..."। (चि. ३६ अ.)। हारीतः॥

विविध भाषाओं में नाम— सं.— अपामार्गः, शिखरी, अद्यःशल्यः, मयूरकः, मर्कटी, दुर्ग्रहा, किणिही, खरमञ्जरी। हिं.— लटजीरा, चिचरी, आन्धीझाड़ा, ओंगा। म.— अंधारा, आंधीव्राडो। बं.— आपा, अपाङ्ग। गु.— अवेड़ो, झंझेटा, लिपटोवा। क.— उत्तरेणी, उत्तरणे। ते.— दुच्चिणीके। मा.— आंधी झाड़ो, उङ्गा। ता.— नाप रुवी। द.— झिझड़ा। फा.— खारताझ गूनह, खारे वाणा। अ.— अतकमह। अं.— Prickly-chaff Flower। ले.— Achyranthes aspera।

अपामार्ग के परिचय बोधक नाम— प्रत्यक्पुष्पी, खरमञ्जरी, मयूरका, पङ्क्तिकण्टकः। रक्तापामार्ग- रक्तविन्दुः अल्पपत्रकः।

गुणप्रकाशक नाम— क्षवक्रः किणिही।

गुण-दोष—

धन्वन्तरि तथा राजनिघण्टु के अनुसार— अपामार्ग तीक्ष्ण, उष्ण, कटुरस प्रधान तथा कफनाशक है और अर्श, कण्डू, उदररोग नाशक, रक्त विकार को दूर करने वाला, ग्राही तथा वमनकारक है। रक्तापामार्ग शीतल, कटुरस प्रधान, कफ तथा वात नाशक है और व्रण, कण्डू तथा विषनाश करने वाला है, ग्राही है एवं वमनकारक है।

भावप्रकाश के अनुसार— अपामार्ग दस्तावर, तीक्ष्ण, जाठराग्निदीपक, तिक्त तथा कटुरस प्रधान, पाचक एवं रोचक है और वमन, कफविकार मेदोविकार तथा वातविकार का नाश करता है। इनके अतिरिक्त हृदय रोग, आध्मान, अर्शरोग, कण्डू, शूल, उदररोग तथा अपचीरोग को नष्ट करता है। रक्तापामार्ग वात विबन्धक, कफकारक तथा शीतल है और रूक्ष है तथा श्वेतापामार्ग के गुण से कुछ कम गुणवाला है ऐसा अपामार्ग के गुण को जानने वाले कहते है॥ अपामार्ग का फल रस तथा पाक में मधुर है और दुष्पच है, विष्टम्भ कारक, वातकारक, रूक्ष तथा रक्तपित्त को शुद्ध करने वाला है। **राजवल्लभ के अनुसार—** अपामार्ग अग्नि के समान तीक्ष्ण है तथा क्लेदोत्पाक एवं उत्तम स्रंसन कारक है।

वैद्यक शास्त्र में अपामार्ग का व्यवहार-

शिरोविरेचन के लिए अपामार्ग के तण्डुल का प्रयोग- शिरोविरेचन द्रव्यों में अपामार्ग उत्तम है (च. सू.आ.२५)।

(१) **अर्शरोग (बवासीर) में अपामार्ग के मूल का प्रयोग-** अपामार्ग के मूल का चूर्ण (या क्षार) को शहद के साथ चाटकर चावल के धोअन ऊपर से पीवे (सु.चि.अ.६)। (२) **क्रिमिरोग में अपामार्ग का प्रयोग-** क्रिमिरोग में शिरीष तथा अपामार्ग का रस मधु मिलाकर पान करे (सु.उ.अ.५४)।

(१) **सद्यव्रण में रक्त स्राव होने पर अपामार्ग के पत्र के रस का प्रयोग-** अपामार्ग के पत्ते के रस से सींचने पर सद्यव्रण से प्रवृत रक्त स्राव रुक जाता है (चक्र.व्रणशोथचि.)। (२) **कर्ण नाद तथा कर्ण स्राव में अपामार्ग के क्षार का प्रयोग-** अपामार्ग क्षार के जल में अपामार्ग के कल्क के साथ सिद्ध किया हुआ तिल का तैल कान में पूरण करने से कर्ण नाद तथा कर्ण वाधीर्य को दूर करता है (चक्र. कर्णरो.चि.)। (३) **नये नेत्र प्रकोप में अपामार्ग मूल का प्रयोग-** अपामार्ग के मूल दो ताम्र के पात्र में थोड़ा सेन्धा नमक मिलाकर मट्ठा में घिसकर नेत्र में लगाने से नेत्र प्रकोप (नेत्र की लालिमा, दर्द आदि) नष्ट हो जाता है (चक्र. ने.चि.)।

विसूचिका में अपामार्ग के मूल का प्रयोग- अपामार्ग के मूल का चूर्ण जल के साथ (या अपामार्ग का स्वरस) पान करने से विसूचिका (हैजा) रोग नष्ट होता है (भा.म.ख.)।

रक्तार्श में अपामार्ग के बीज का प्रयोग- अपामार्ग के बीज का कल्क चावल के धोअन के साथ पान करने से रक्तार्श नष्ट होता है, इसमें सन्देह नहीं है (शार्ङ्गधर सं.- द्वि.ख.अ.५)।

(१) **उन्माद में अपामार्ग के मूल का प्रयोग-** सफेद कुसुम वाली बला (वरियार) के साढ़े तीन कर्ष (३५ ग्राम) को यो व्यक्ति अपामार्ग के मूल के बीज को क्षीरपाक के अनुसार पाक कर खाता है और अपामार्ग के पञ्चांग के शीतल कषाय को पान करता है वह शीघ्र ही भयंकर उन्माद रोग को जीत लेता है (बंगसेन-उन्माद चि.)। (२) **आगन्तुक व्रणरोपण के लिए अपामार्ग के मूल का प्रयोग-** बरियार तथा अपामार्ग की जड़ को पीस कर उस कल्क के साथ तैल पाक के अनुसार तैल पाक करे॥ इसे नूल तैल कहते हैं और यह आगन्तुक व्रण को नष्ट करता है (बंगसेन आगन्तुक व्रणाधिकार)।

(१) **निद्रानाश में अपामार्ग का प्रयोग-** काकजङ्घा तथा अपामार्ग के मूल के क्वाथ को पान करने से शीघ्र ही निद्रा आती है (हा.चि.अ.१६)। (२) **शोथ में अपामार्ग का प्रयोग-** शोथ में अपामार्ग तथा करञ्ज के जड़ के क्वाथ से संस्वेदन करें (हा.चि.अ.३६)॥

विमर्श- यह अमरेन्थेशी (Fam.-Amaranthaceae) परिवार का सदस्य है। यह एक प्रकार का शाकीय पौधा है जो कि खांसी में प्रयुक्त होता है। इसके काढ़ा का श्वास नली के संक्रमण एवं गुर्दों सम्बन्धी जलशोथ में उपयोग किया जाता है।

Constituents—The fruit contains a large percentage of alkaline ash containing potash. (*Materia Medica of India*—R.N. Khory, II 504).

Actions and uses— Astringent, diuretic and alterative; given in Menorrhagia, Diarrhoea and Dysentery. Khar is largely used in Anasarca, Ascites and Dropsy. It is also given in cutaneous affections and enlargements of glands, and to loosen expectoration in cough. It has a great reputation in dog-bites, and bites of snak.s and other venomous reptiles, for which

purpose it is given internally and also applied externally. The juice is sometimes applied in toothache and the paste as eye-salve (anjan) in opacity of the cornea. A medicated oil is dropped into the ear in deafness and noises in the ears. (Do, II, 504-5).

The diuretic properties of the plants are well-known to the natives of India, and European physicians agree as to its value in dropsical affections; one ounce of the plant may be boiled in ten ounces of water for 15 minutes, and from 1 to 2 ounces of the decoction be given 3 times a day. (*Pharmacographia Indica.*—W. Dymock, III.,p. 136).

अम्लवेतसम्

Rumex vesicarius

अम्लवेतसम्। *Rumex vesicarius.*

गुणप्रकाशिका संज्ञा–"गुल्महा", "शङ्खद्रावि", "मांसद्रावि", "रक्तस्रावि"।

कषायं कटुरूक्षोष्णमम्लवेतसकं विदुः। तृट्कफानिलजन्त्वर्शोहृद्बाधाश्मरीगुल्मजित्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ अम्लवेतसमत्यम्लं कषायोष्णञ्च वातजित्। कफार्शःश्रमगुल्मघ्नमरोचकहरं परम्॥ राजनिघण्टुः॥ अम्लवेतसमत्यम्लं भेदनं लघु दीपनम्। हृद्रोगशूलगुल्मघ्नं पित्तलं लोमहर्षणम्॥ रूक्षं विण्मूत्रदोषघ्नं प्लीहोदावर्त्तनाशनम्। हिक्कादाहारुचिश्वासकासाजीर्णवमिप्रणुत्॥ कफवातामयध्वंसि छागमांसद्रवत्वकृत्। चणकाम्लगुणं ज्ञेयं लोहसूचीद्रवत्वकृत्॥ भावप्रकाशः॥ अम्लवेतसमत्यम्लमानाहकफवातजित्। तदेव सिद्धं दोषघ्नं श्रमघ्नं ग्राहि गुर्वपि॥ राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः–"अम्लवेतसं भेदनीयदीपनीयानुलोमिकवातश्लेष्मप्रशमनानाम्" (सू. २५ अ.)। चरकः॥ प्लीह्नि अम्लवेतसम्– "अम्लवेतससंयुक्तः शिग्रुक्वाथः ससैन्धवः। पीतः प्लीहोदरं हन्ति पिप्पलीमरिचान्वितः।" (उदरचि.)। वङ्गसेनः॥

विविध भाषाओं में नाम– सं.- अम्लवेतसम्, चुक्रम्, शतवेधि, सहस्रभित्। हि.- अम्लवेत, अम्लवैंत। बं.- थेकड़, अमलवेत। म.- चुका। फा.- तुर्षक। यू.- अमलवेद। गु.- अम्लवेद।

अम्लवेत का गुण प्रकाशक नाम- गुल्महा, शंखद्रावि, मांस-द्रावि। रक्तस्रावि।

गुण-दोष–

धन्वन्तरिनिघण्टु के अनुसार- अम्लवेत कषाय तथा कटुरस प्रधान होता है तथा रूक्ष एवं उष्ण है। यह प्यास, कफ विकार, वातज अर्शरोग, हृदयरोग, अश्मरी तथा गुल्मरोग को जीत लेता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- अम्लवेत अत्यधिक अम्ल रस प्रधान, कषाय रसवाला, उष्णवीर्य एवं वातनाशक है। यह कफज अर्श, श्रम, गुल्म रोग नाशक है तथा अच्छी तरह अरोचक को दूर करता है।

भाव प्रकाश के अनुसार- अम्लवेंत अत्यधिक अम्ल, मलभेदक, हल्का तथा जाठराग्निदीपक है और हृदयरोग, शूल तथा गुल्मरोग का नाश करता है, पित्तनाशक है, रोमहर्षक है और रूक्ष है, मल विकार एवं मूत्र विकार नाशक है, प्लीहा रोग नाशक है, उदावर्त रोग नाशक है और हिचकी, आनाह, अरुचि, श्वास वृद्धि, कास, अजीर्ण तथा वमन को दूर करता है। यह कफ विकार तथा वात विकार को नष्ट करता है और बकरी के मांस को द्रव बना देता है। इस का गुण चणकाम्ल की तरह है और यह लोहे की सूई को द्रव बना देता है।

राजवल्लभ के अनुसार- अम्लवेंत अत्यधिक अम्ल है तथा आनाह रोग, कफ विकार एवं वात विकार को जीत लेता है। यही सिद्ध करने पर दोषों का तथा श्रम का नाश करता है एवं ग्राही तथा भारी है।

वैद्यकशास्त्र में व्यवहार-

अम्लवेंत भेदन करने वाले, दीपन करने वाले, अनुलोमन करने वाले तथा वात श्लेष्म शामक द्रव्यों में उत्तम है (च.सू.अ.२५)।

प्लीहा रोग में अम्लवेंत का प्रयोग- अम्लवेंत के साथ सेंहुड के क्वाथ में सेन्धा नमक मिलाकर तथा पीपर एवं मरिच का चूर्ण मिलाकर पान करने से प्लीहोदर रोग नष्ट होता है (बंगसेन-उदरचिकित्सा)।

अर्कः

Calotropis procera

अर्कः, रूपिका। श्वेतपुष्पस्य–अलर्कः। *Calotropis gigantea, Calotropis procera.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा–"क्षीरदलः", "क्षीरकाण्डकः", "तूलफलः", "शुक्रफलः"। राजार्कस्य–"सदापुष्पः"। शुक्लार्कस्य–"सुपुष्पः", "वृत्तमल्लिका"। गुणप्रकाशिका संज्ञा– "खर्जूघ्नः"।

अर्कस्तिक्तो भवेदुष्णः शोधनः परमः स्मृतः। कण्डूव्रणहरो हन्ति जन्तुसंहतिमुद्धताम्॥ अर्कस्तु कटुरुष्णश्च वातहृद्दीपनः सरः। शोफव्रणहरः कण्डूकुष्ठप्लीहक्रिमीञ्जयेत्॥ "राजार्कः" कटुतिक्तोष्णो वीर्यमेदोविषापहः। वातकुष्ठव्रणान् हन्ति शोफकण्डूविसर्पनुत्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ अर्कस्तु कटुरुष्णश्च वातजिद्दीपनीयकः। शोथव्रणहरः कण्डूकुष्ठक्रिमिविनाशनः॥ श्वेतार्कः कटुतिक्तोष्णो मलशोधनकारकः। मूत्रकृच्छ्रास्रशोफार्त्तिव्रणदोषविनाशनः॥ "राजार्कः" कटुतिक्तोष्णः कफमेदो-विषापहः। वातकुष्ठव्रणान् हन्ति शोफकण्डूविसर्पनुत्॥ "श्वेतमन्दारको"ऽत्युष्णास्तिक्तो मलविशोधनः। मूत्रकृच्छ्रव्रणान् हन्ति क्रिमीनत्यन्तदारुणान्॥ राजनिघण्टुः॥ "अर्कद्वयं" सरं वातकुष्ठकण्डूविषव्रणान्। निहन्ति प्लीहगुल्मार्शःश्लेष्मोदरशकृत्क्रिमीन्॥ "अलर्ककुसुमं" वृष्यं लघु दीपनपाचनम्। अरोचकप्रसेकार्शःश्वासकासनिवारणम्॥ "रक्तार्कपुष्पं" मधुरं सतिक्तं कुष्ठक्रिमिघ्नं कफनाशनञ्च। अर्शोविषं हन्ति च रक्तपित्तं सङ्ग्राहि गुल्मे श्वयथौ हितन्तत्॥ "क्षीर"-मर्कस्य तिक्तोष्णं स्निग्धं सलवणं लघु। कुष्ठगुल्मोदरहरं श्रेष्ठमेतद्विरेचनम्॥ भावप्रकाशः॥ अर्कः क्रिमिहरस्तीक्ष्णः सरोऽर्शःकफदोषजित्। तत् 'पयः' क्रिमिदोषघ्नं हितं कुष्ठोदरार्शोजित्॥ राजवल्लभः॥ अर्कमूलत्वचा स्वेदकरी श्वासनिवर्हणी। उष्णा च वामिका चैव फिरङ्गरोगनाशनी॥ इति कश्चित्।

वैद्यके व्यवहारः–(१) वमने सविरेचने अर्कक्षीरम्–क्षीरमर्कस्य विज्ञेयं वमने सविरेचने (सू. १ अ.)। (२) अर्शःषु अर्कमूलम्–अर्कमूलं शमीपत्रमर्शोभ्यो धूपनं हितम् (चि. ९ अ.)। (३) व्रणाच्छादनार्थम् अर्कपत्रम्–व्रणप्रच्छादने विद्वान् पत्राण्यर्कस्य चादिशेत् (चि. १३ अ.)। (४) ऊरुस्तम्भे शाकार्थम् अर्कपत्रम्–"शाकैरलवणैरद्याज्जलतैलोपसाधितैः। सुनिषण्णकनिम्बार्क.... पल्लवैः" (चि. २७ अ.)। चरकः॥ (१) जातसत्त्वे कुष्ठे अर्कमूलम्–क्वाथं वार्कालर्कसप्तच्छदानाम् जातसत्त्वः पिबेत्। (चि. ९ अ.)। (२) कर्णशूले अर्काङ्कुरः–"अर्काङ्कुरानम्लपिष्टांस्तैलाक्तान्

लवणान्वितान्। सन्निदध्यात् स्नुहीकाण्डे कीरिते तच्छदावृते॥ पुटपाकक्रमस्विन्नान् पीडयेदारसागमात्। सुखोष्णं तद्रसं कर्णे दापयेच्छूलशान्तये॥" (उ. २१ अ.)। (३) श्वासे अर्काङ्कुर:– "पिबेत् सञ्चूर्ण्य मधुना धानाश्चाप्यथ भक्षयेत्। अर्काङ्कुरैर्भावितानां यवानां साध्वनेकश:॥" (उ. ५१ अ.)। (४) आलर्के विषे अर्कक्षीरम्– "पललं तिलतैलञ्च रूपिकाया: पयो गुढ:। निहन्ति विषमालर्कं मेघवृन्दमिवानिल:॥" (कल्प ६ अ.)॥ सुश्रुत:॥ दन्तगतक्रिमिशूले अर्कक्षीरम्–सप्तच्छदार्कक्षीराभ्यां पूरणं क्रिमिशूलजित् (उ. २२ अ.)। वाग्भट:॥ (१) वृद्ध्यामये अर्कमूलम्–निष्पिष्टमारणालेन रूपिकामूलवल्कलम्। लेपो वृद्ध्यामयं हन्ति बद्धमूलमपि दृढम्॥ (वृद्धि-चि.)। (२) श्लीपदे अर्कमूलम्– "निष्पिष्टमारणालेन रूपिकामूलवल्कलम्। प्रलेपात् श्लीपदं हन्ति बद्धमूलमपि दृढम्॥" (श्लीपद-चि.)। (३) वृश्चिकदंशने अर्कपत्रम्–पुरधूपपूर्वमर्कच्छदमिव पिष्ट्वा कृतो लेप: (विष- चि.)॥ चक्रदत्त:॥ (१) प्लीह्नि अर्कपत्रम्–अर्कपत्रं सलवणं पुटदग्धं सुचूर्णितम्। निहन्ति मस्तुना पीतं प्लीहानमतिदारुणम्॥ (च.ख.३ त्रा.प्लीह-चि.)। (२) मेढ्रपाके अर्कपत्रम्– "जयाजात्यश्वमारार्कसम्पाकानां दलै: पृथक्। कृतं प्रक्षालनं क्वाथं मेढ्रपाके प्रयोजयेत्॥" (म.ख. ४ मा. उपदंश-चि.)। भावप्रकाश:॥ (१) वातसम्भवेऽर्शसि अर्कपत्रम्–लवणान्यर्कपत्राणि विनीय तरुणानि च। तैलेनाम्लेन युक्तानि युक्त्या क्षारं दहेद्भिषक्॥ उष्णोदकेन मद्यैर्वा रसैरम्लैश्च लाभत:। पीत: प्रशमयत्येष क्षारोऽर्शो वातसम्भवम्॥ (अर्शोऽधिकारे)। (२) मुखकार्ष्ण्ये अर्कक्षीरम्– अर्कक्षीरहरिद्राभ्यां मर्दयित्वा प्रलेपनात्। मुखकार्ष्ण्यं शमं याति चिरकालोद्भवं ध्रुवम्॥ (क्षुद्ररोगाधिकारे)। (३) नयनामये अर्कमूलम्– आर्कञ्च मूलमापोत्थ्य मुहर्त्तं वारिणि न्यसेत्। एतदाश्च्योतनं दृष्टं नयनामयनाशनम्॥ (नेत्ररोगाधिकारे)। वङ्गसेन:॥

विविध भाषाओं में नाम– सं.– अर्क:। हि.– आक, अर्क, अकवन, अकौआ, मदार, आकन। बं.– आकन्द(न्दा)। म.– मदार। गु.– आकड़ा, आकदामु। क.– अक्के। मा.– आकड़ो। द्रा.– ओरिक्के। फा.– खरकर, अ.– उसर। ता.– एरुकम्म। ले.– Calotropis gigantea (केलोट्रोपिस जाईगन्टिया), Calotropis procera (केलोट्रोपिस प्रोसिरा)। श्वेतार्क– सं.– श्वेतार्क:, मन्दर:, श्वेतपुष्प:, बालार्क:। हि.– सफेद आक। बं.– श्वेताकन्द। म.– पाढरी रुई। क.– मन्दारयक्के। गु.– धोलो आकड़ो। ते.– जेल्लेट्टू। द्रा.– वल्लेरिक्क। ले.– Calotropis Procera (केलोट्रापिस प्रोसिरा)। रक्तार्क:– सं.– रक्तार्क:, अर्कपर्ण:, रक्तपुष्प:, शुक्लफल:। हि.– लाल आक। गु.– रातो मदार। क.– मान्दर अक्के। ते.– नील जिल्लडे घोली। ले.– Calotropis gigantea (केलोट्रोपिस जाईगेन्टिया)।

परिचय बोधक नाम– क्षीरदल:, क्षीरकाण्डक:, तूलप ल:, शुक्रफल:।

गुण प्रकाशक नाम– खर्जूघ्न:।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार– अर्क तिक्तरस प्रधान होता है तथा उष्ण है एवं उत्तम शोधक है। कण्डू व्रण को दूर करता है तथा क्रिमि के समूहों को नष्ट करता है। मदार कटुरस प्रधान, उष्ण वीर्य, वातनाशक, हृदय को उद्दीप्त करने वाला एवं दस्तावर है, शोथ तथा व्रण को दूर करता है और कण्डू , कुष्ठ, प्लीहा रोग एवं क्रिमिरोग को जीत लेता है। **राजार्क–** अर्क कटु तथा तिक्तरस प्रधान, उष्ण वीर्य, मेदोविकार एवं विष विकार को दूर करता है, वातरोग, कुष्ठरोग तथा व्रण का नाश करता है और शोथ, कण्डू एवं विसर्प को दूर करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- मदार कटु रस वाला तथा उष्ण है और वातरोग को जीत लेता है तथा जाठराग्नि दीपक है। इनके अतिरिक्त शोथ एवं व्रण को दूर करता है, कण्डू, कुष्ठ एवं क्रिमि का नाश करता है। **श्वेतार्क-** कटु एवं तिक्त रस प्रधान, उष्ण वीर्य, मलशोधक, मूत्रकृच्छ्र, रक्त विकार, शोथ, वेदना तथा व्रण दोष का नाश करता है। **राजार्क-** कटु, तिक्तरस प्रधान, कफ विकार, मेदो विकार एवं विष विकार को नष्ट करता है। वात रोग एवं कुष्ठ रोग तथा व्रण को नष्ट करता है, शोथ, कण्डू एवं विसर्प को दूर करता है। **श्वेत मदार-** अत्यधिक उष्ण, तिक्तरस प्रधान, मलशोधक, मूत्रकृच्छ्र तथा व्रण को नष्ट करता है एवं अति भयंकर कृमि रोग को नष्ट करता है।

भावप्रकाश के अनुसार- दोनों प्रकार के मदार दस्तावर हैं और वात विकार, कुष्ठ रोग, विष विकार तथा व्रण एवं प्लीहा, गुल्मरोग, अर्शरोग, कफ विकार, उदर विकार तथा मल कृमि को नष्ट करते है॥ मदार का पुष्प वृष्य है, लघु है तथा दीपन-पाचन है। यह अरोचक, प्रसेक, अर्शरोग, श्वास तथा कास को दूर करता है। रक्त पुष्प वाला मदार, मधुर तथा तिक्तरस प्रधान, कुष्ठरोग, क्रिमीरोग, कफ विकार, अर्श विकार, विष विकार एवं रक्त पित्त को नष्ट करता है, ग्राही है और गुल्म रोग में तथा शोथ में हितकर है। मदार का दूध तिक्तरस वाला, उष्ण, स्निग्ध, नमकीन तथा हल्का है और कुष्ठरोग, गुल्मरोग और उदररोग को दूर करता है एवं उत्तम विरेचक है।

राजवल्लभ के अनुसार- मदार क्रिमिनाशक, तीक्ष्ण, दस्तावर है और अर्शरोग एवं कफ दोष को दूर करता है। मदार का दूध क्रिमि दोष नाशक, हितकर, कुष्ठ, उदर रोग तथा अर्श विकार को नष्ट करता है।

अन्य आचार्यों के मतानुसार- अर्क का मूल तथा त्वचा स्वेद कारक है और श्वास रोग को दूर करने वाली है। यह उष्ण वीर्य, वमनकारक तथा क्रिमिरोग को नष्ट करने वाली है।

वैद्यकशास्त्र में प्रयोग-

(१) **वमन तथा विरेचन में मदार के दूध का प्रयोग-** वमन तथा विरेचन कराने के लिए मदार के दूध का प्रयोग करें (च.चि.अ.१)। (२) **अर्श में अर्कमूल का प्रयोग-** मदार का मूल तथा शमी पत्र का धूप अर्शरोग में हितकर है (च.चि.अ.८)। (३) **व्रण को ढकने के लिए अर्क के पत्र का प्रयोग-** विद्वान् चिकित्सक व्रण को ढकने के लिए मदार के पत्तों का उपयोग करे (च.चि.अ.१३)। (४) **ऊरुस्तम्भ में शाक के लिए अर्क पत्र का प्रयोग-** सुन्निष्णक (तीनपतिया), नीम तथा मदार के पत्तों का शाक जल तथा तैल में पकाकर बिना नमक मिलाये भक्षण करे (च.चि.अ. २७)।

(१) **कुष्ठरोग में शक्ति होने पर अर्क मूल का प्रयोग-** शरीर में शक्ति हो जाने पर बाल मदार के पत्ते तथा सप्तपर्ण के पते का क्वाथ पान करे (सु.चि.अ. ९)। (२) **कर्णशूल में मदार के मुलायम टूसा का उपयोग-** मदार के मुलायम अंकुरों को अम्ल (काञ्जी) के साथ पीसकर उसमें तिल का तैल तथा सेन्धा नमक मिला दें और सेहुड़ के काण्ड में छेद कर उसमें भर दें और उसके छेद को सेहुड़ के पत्ते से बन्दकर पुटपाक विधि के अनुसार उसका स्वेदन कर इसके बाद उसको तब तक दबावें जब तक उसमें से रस न निकल जाय। रस निकल जाने पर उस रस को थोड़ा गरम-गरम कर्ण शूल की शान्ति के लिए कान में छोड़े (सु.उ.अ.२१)। (३) **श्वास रोग में मदार के अंकुर का उपयोग-** मदार के अंकुरों का चूर्ण बनाकर मधु के साथ चाटे तथा धान का लावा खाय। मदार के अंकुरों के स्वरस से यव को अनेक बार भावित कर उसके विविध प्रकार का भोजन बनाकर श्वास रोग में सेवन करें (सु.उ.अ.५१)। (४) **अलर्क विष में मदार के दूध का प्रयोग-** मांस, तिल का तैल, मदार का दूध तथा गुड़ इन सब को एकत्र पकाकर लगाने से अलर्क (कुत्ता) का विष नष्ट होता है जैसे वायु बादल के समूहों को नष्ट कर देता है (सु.कल्प.अ.६)।

दन्तगत क्रिमिशूल में मदार के दूध का प्रयोग- सप्तच्छद (छतिवन) तथा मदार के दूध को दांत में लगाने से दन्तगत क्रिमिशूल नष्ट होता है (अ.हृ.उ.अ.२२)।

(१) **वृद्धि रोग में मदार के मूल का उपयोग**- मदार के मूल की छाल को काञ्जी के साथ पीस कर लेप करने से वृद्धि रोग नष्ट होता है। जिस वृद्धि रोग का जड़ अच्छी तरह बंध गया है उसका भी नाश होता है (चक्र. वृद्धि रोग चिकित्सा)। (२) **श्लीपद (फाइलेरिया) में मदार के मूल का उपयोग**- मदार के मूल की छाल को काञ्जी के साथ पीसकर लेप करने से दृढ तथा बद्धमूल वाले श्लीपद का नाश होता है। (चक्र. श्लीपदचि.)। (३) **वृश्चिक दंश में मद.र के पत्तों का उपयोग**- गुग्गुल तथा धूप के साथ मदार के पत्तों को पीस कर लेप करने से वृश्चिकदंश का नाश होता है (चक्र. विषचि.)।

(१) **प्लीहा रोग में मदार के पत्तों का उपयोग**- मदार के पत्तों को सेन्धा नमक मिलाकर पुटपाक विधि से पुट देकर उसका चूर्ण बना ले। इस चूर्ण को मस्तु (दही के पानी) के साथ पीने से अति भयंकर प्लीहा वृद्धि का नाश होता है (च.ख.३, भावप्रकाश प्लीहचिकित्सा)। (२) **मेढ्र पाक में मदार के पत्तों का प्रयोग**- जया, चमेली, कनेर तथा मदार एवं अमलतास के पत्तों का क्वाथ बनाकर मेढ्रपाक में प्रक्षालन के लिए प्रयोग करे (म. ख.४, भाव. उपदंशचिकित्सा)।

(१) **वातजन्य अर्शरोग में अर्क पत्र का उपयोग**- सेन्धा नमक तथा मदार के तरुण पत्तों को लेकर तैल तथा काञ्जी से युक्त कर तथा जलाकर क्षार विधि से क्षार बनावे। इसका गरम जल, मद्य या अम्ल रस जो भी लाभ हो जाय उसके साथ पान करे। यह वातजन्य अर्शरोग को शान्त करता है (बङ्गसेन-अर्शोऽधिकार)। (२) **मुख की कालिमा में मदार के दूध का उपयोग**- मदार का दूध तथा हल्दी इन दोनों का एक साथ मर्दन कर मुख में लेप करने से बहुत पुरानी मुख की कृष्णता शान्त होता है (बंगसेन क्षुद्ररोगाधिकार)। (३) **नेत्ररोग में मदार के मूल का उपयोग**- मदार की जड़ को कूट कर थोड़े देर जल में रक्खे। इसके बाद उस जल से आश्च्योतन करने पर नेत्र रोग नष्ट होता है (बंगसेन-नेत्ररोगाधिकार)।

Constituents—Mudarine, caotchouc, yellow bitter acrid resin. Mudarine an active principle, soluble in alcohol and ether, insoluble in cold water, and olive oil, possesses the singular property of congealing by heat and becoming again fluid on exposure to cold. (*Materia Medica of India,*—R. N. Khory, Part II, p. 395).

Actions and uses—An alternative the root with calomel and antimonial powder is given internally, and the bark made into paste applied to the legs and scrotum, in elephantiasis, to leprous ulcers, leucoderma and other skin diseases. The root-bark powdered, soaked in the milky juice, dried and made into cigars, is smo.'ed as an inhalation in cough and asthma. Dried bark is an emetic, a very good substitute for ipecacuanha and with opium it is used like Dover's powder in dysentery. The leaves are deobstruent with rock salt are roasted in a close vessel and the ashes given with whey by the natives in enlargement of the liver and spleen, in intestinal worms, ascites anasarca, and in dysentery. As rubefacient the leaves are smeared with oil, and used as varalians, to relieve colicky pain and tympanitis. As a poultice they give relief to inflammatory swellings. The flowers are tonic, stomachic and digestive and used in cough and asthma etc. The juice is drastic, purgative and caustic, in combination with the juice of *Euphorbia Neriifolia* applied to carried teeth to relieve pain and dropped into the ear in ear-ache. Also applied to the cervix to procure abortion. Given in rheumatism, malarial and low hectic

fevers; and largely used in syphilis, hence known as vegetable mercury. The juice mixed with powdered wood of *Berberis Asiatica* and the juice of *Euphorbia Neriifolia* made into tents and introduced into the recum to relieve tenesmus. In scorpion and insect bites, it relieves the pain and burning. As a depilatory it is used by tanners, and also by women for removing hair from the pubes and other parts. It is a useful local application for the relief of painful joints and swellings, and for ringworm of the scalp. In combination with the juice of *Nateio Thuhar* and with the wood of *Berberis Asiatica* it is used as a caustic for closing sinuses and fistula in ano. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II, p. 396).

"Modern physiological research has shown that the juice applied to the skin acts as an irritant, the practice of applying it with salt to bruises and sprains to remove pain is therefore rational; also the application of the fresh bark in chronic rheumatism, given internally in small doses the drug stimulates the capillaries and acts powerfully upon the skin, it is therefore likely to be useful in elephantiasis and leprosy (*Casonora*). The benefit derived from the administration of the flowers in asthma is probably due to their nauseant action. In large doses Calotropis causes vomiting and purging acting as an irritant emeto Cathartic (*Pharmacographia Indica*—Part II, p. 434).

अर्जुनः

Pentaptera arjuna

अर्जुनः, ककुभः। *Terminalia Arjuna, Pentaptera Arjuna.*

अर्जुनस्तु कषायोष्णः कफघ्नो व्रणशोधनः। पित्तश्रमतृषार्त्तिघ्नो मारुतामयकोपनः॥ 'धन्वन्तरीयनिघण्टू राजनिघण्टुश्च'॥ ककुभः शीतलो हृद्यः क्षतक्षयविषास्त्रजित्। मेदोमेहव्रणान् हन्ति तुवरः कफपित्तहृत्॥ 'भावप्रकाशः'॥ पार्थः पथ्यः क्षते भग्ने रक्तस्तम्भनकृच्छ्रयोः। 'राजवल्लभः'।

वैद्यके व्यवहारः– (१) रक्तपित्ते अर्जुनत्वक्–"धनञ्जयोदुम्बर... निशिस्थिता वा स्वरसीकृता वा कल्कीकृता वा मृदिता शृता वा। एते समस्ता गणशः पृथग्वा रक्तं सपित्तं शमयन्ति योगाः॥ (चि. ४ अ.)। (२) व्रणाच्छादनार्थम् अर्जुनपत्रम्–"कदम्बार्जुन...। व्रणप्रच्छादने विद्वान्...।" (चि. १३ अ.)॥ 'चरकः'॥ शुक्रमेहे अर्जुनत्वक्–"शुक्रमेहिनं ककुभचन्दनकषायं वा" (चि. ११ अ.)। सुश्रुतः॥ व्यङ्गेषु अर्ज्जुनत्वक्– "व्यङ्गेषु चार्जुनत्वग्वा" (उ. ३२ अ.)। वाग्भटः॥ (१) रक्तातिसारे अर्जुनत्वक्–"...अर्जुनत्वचः। पीताः क्षीरेण मध्वाढ्याः पृथक् शोणितनाशनाः (अतिसारचि.)॥ (२) हृद्रोगे अर्जुनत्वक्–"अर्जुनस्य त्वचा सिद्धं क्षीरं योज्यं हृदामये" (हृद्रोग-चि.)। (३) बलसञ्जननार्थम् अर्जुनत्वक्–"ककुभस्य च वल्कलम्। रसायनं परं बल्यं...। (हृद्रोग-चि.)।" (४) अस्थिभग्ने अर्जुनत्वक्–"सघृतेन... अर्जुनम्। सन्धियुक्तोऽस्थिभग्ने च पिबेत् क्षीरेण मानवः॥" (भग्न-चि.) 'चक्रदत्तः'॥ (१) क्षयकासे अर्जुनत्वक्–"चूर्णं काकुभमिष्टं वासकरसभावितं बहुवारान्। मधु- घृतसितोपलाभिर्लेह्यं क्षयकासरक्तहरम्॥" (भ.ख.द्वि.भा.)। (२) मूत्ररोधज उदावर्त्ते अर्जुनत्वक्– "मूत्ररोधजनिते... कषायं ककुभस्य च"। (म.ख.तृ.भा.)। 'भावप्रकाशः'॥ पूयमेहे अर्जुनत्वक्– "...पूयमेहे कषायश्च धवार्जुनस्य" (चि.२८ अ.)। "हारीतः"॥ ग्रहण्याम्

अर्जुनक्षारः– **"केशराजोऽर्जुनक्षारं प्रातः पीतश्च मस्तुना। निहन्ति साममत्यर्थमचिराद् ग्रहणीरुजम्॥" (ग्रहण्यधिकारे) 'वङ्गसेनः'।**

विविध भाषाओं में नाम– सं.– ककुभः, अर्जुनः, नदीसर्जः, इन्द्रद्रुः , वीरवृक्षः। हि.– अर्जुन, कहू, कोह अंजन। बं.– अर्जुन गाछ। गु.– अर्जुन, घोलो साजड़ा। क.–कफमत्ते, सारढोल। ता.– वेल्लमर्द, वेल्लर मरुदमरम। म.–यर्रमद्दि, वेर मडडी। ले.– Terminalia arjuna (टर्मिनेलिया अर्जुना)।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु तथा राजनिघण्टु के अनुसार– अर्जुन कषाय रस प्रधान, उष्ण, कफनाशक, व्रणशोधक, पित्तविकार, श्रम, प्यास तथा पीड़ा नाशक एवं वातरोग को प्रकुपित करने वाला है।

भावप्रकाश के अनुसार– अर्जुन शीतल तथा हृद्य है और क्षत, क्षय, विष विकार और रक्त विकार को नष्ट करता है। इनके अतिरिक्त मेदोविकार, प्रमेह तथा व्रण को नष्ट करता है, कषाय रस प्रधान है और कफ विकार एवं पित्त विकार को दूर करता है।

राजवल्लभ के अनुसार– अर्जुन क्षतरोग, भग्न, रक्तस्तम्भन तथा मूत्रकृच्छ्र में पथ्य है।

वैद्यक शास्त्र में अर्जुन का उपयोग–

(१) रक्तपित्त में अर्जुन की छाल का प्रयोग– अर्जुन तथा उदुम्बर की छाल का चूर्ण बनाकर रात भर जल में रखकर या उनका स्वरस या उनका कल्क या उनका चूर्ण या उनका श्रृतशीतकषाय रक्तपित्त को शान्त करते है॥ इनमें से एक-एक दवा का प्रयोग या सभी द्रव्यों का एक साथ प्रयोग किया जाय, रक्तपित्त में लाभ करता है। (च.चि.अ.४)। (२) **व्रण को ढकने तथा प्रक्षालन के लिए अर्जुन के पत्र का उपयोग–** कदम्ब तथा अर्जुन के पत्र का प्रयोग व्रण को ढकने तथा प्रक्षालन के लिए किया जाता है (च.चि.अ.१३)।

शुक्रमेह में अर्जुन का उपयोग– शुक्रमेह (शुक्रप्रमेह) में अर्जुन तथा चन्दन का कषाय शान्त करता है। (सुश्रुत चि.अ.११)।

व्यङ्ग में अर्जुन के त्वक् का प्रयोग– व्यङ्ग में अर्जुन की छाल का प्रयोग करे (वाग्भट उ. अ. ३२)।

(१) रक्तातिसार में अर्जुन के छाल का प्रयोग– रक्तातिसार में अर्जुन के चूर्ण या कषाय मधु के साथ या दूध के साथ पान करने से रक्तविकार (रक्तातिसार) का नाश होता है (चक्र.अ.चि)। (२) **हृदयरोग में अर्जुन की छाल का प्रयोग–** हृदय रोग में अर्जुन की छाल के साथ सिद्ध दूध का प्रयोग करे (चक्र.हृ.चि.)। (३) **बल उत्पन्न करने के लिए अर्जुन की छाल का प्रयोग–** अर्जुन की छाल उत्तम रसायन है तथा बलकारक है (चक्र. हृ.रोग)। (४) **अस्थिभग्न में अर्जुन की छाल का प्रयोग–** अस्थि भग्न में अर्जुन की छाल का चूर्ण घृत के साथ पान करे। सन्धि युक्त अस्थि भग्न में अर्जुन की छाल को दूध के साथ पान करे (चक्र.भग्नचिकित्सा)।

(१) क्षयरोग तथा कासरोग में अर्जुन की छाल का प्रयोग– अर्जुन की छाल के चूर्ण को अडूसा के रस के साथ अनके बार भावित कर मधु, घृत तथा मिश्री मिलाकर चाटे। यह क्षय रोग, कास रोग तथा क्षयकासज रक्तस्राव को दूर करता है। (भा.प्र.म.ख.द्वि.भा)। (२) **मूत्रावरोधजन्य उदावर्त में अर्जुन की छाल का प्रयोग–** अर्जुन की छाल का क्वाथ मूत्रावरोधजन्य उदावर्त में पान करे (भा.भ.ख.वि.)।

पूयमेह में अर्जुन की छाल का प्रयोग– पूय मेह में अर्जुन तथा धाय के क्वाथ का प्रयोग करें (हारीत चि.अ.२८)।

ग्रहणी में अर्जुन के क्षार का प्रयोग- भृंगराज तथा अर्जुन के क्षार को मस्तु (दही के पानी) के साथ पान करने से आम तथा अत्यन्त भयंकर ग्रहणी विकार शीघ्र ही नष्ट होता है (बंगसेन-ग्रहण्यधिकार)।

Constituents—The ash of the bark contains 34 p.c. of almost pure calcium carbonate. The bark also contains tannin.

Actions and uses—Astringent and tonic, given in heart disease. Locally used as a wash for wounds ulcers, contusions and specially used in promoting union of fractures and dispersion of ecchymosis; internally largely used by the natives in haemorrhagic and other fluxes and as a lithontriptic. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II, p. 258).

अलावु

Cucurbita lagenaria

स्वादुनः संज्ञा—अलावु। 'कटुनः' संज्ञा—कटुकालावु, इक्ष्वाकुः। *Cucurbita Lagenaria.*

स्वादुनो भेदौ—गोरक्षतुम्बी (कुम्भतुम्बी), क्षीरतुम्बी। कटुनो भेदः— भूतुम्बी।

कासश्वासच्छर्दिहरा विषार्त्ते कफकर्षिते। इक्ष्वाकुर्वमने शस्ता...। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ "कटुतुम्बी" कटुस्तीक्ष्णा वान्तिकृच्छ्वासकासजित्। "कुम्भतुम्बी" समधुरा शिशिरा पित्तहारिणी॥ गुरुः सन्तर्पणी रुच्या वीर्य्यपुष्टिबलप्रदा॥ 'तुम्बी' (क्षीरतुम्बी) समधुरा स्निग्धा पित्तघ्नी गर्भपोषकृत्। वृष्या वातप्रदा चैव बलपुष्टिविवर्द्धनी॥ "भूतुम्बी" कटुकोष्णा च सन्निपातापहारिणी। दन्तार्गलादन्तरोधधनुर्वातादिदोषनुत्॥ राजनिघण्टुः॥ अलावुः कथिता तुम्बी द्विधा दीर्घा च वर्त्तूला। "मिष्टतुम्बीफलं" हृद्यं पित्तश्लेष्मापहं गुरु॥ वृष्यं रुचिकरं प्रोक्तं धातुपुष्टिविवर्द्धनम्। "इक्ष्वाकुः" कटुतुम्बी स्यात् सा तुम्बी च महाफला॥ 'कटुतुम्बी' हिमा हृद्या पित्तकासविषापहा। तिक्ता कटुर्विपाके च वातपित्तज्वरान्तकृत्॥ भावप्रकाशः॥ अपुष्पस्य प्रवालानां मुष्टिं प्रादेशसम्मिताम्। क्षीरप्रस्थे शृतं दद्यात् पित्तोद्रिक्ते कफज्वरे॥ फलस्वरसभागञ्च त्रिगुणक्षीरसाधितम्। उरःस्थिते कफे दद्यात् स्वरभेदे सपीनसे॥ हृतमध्ये फले जीर्णे स्थितं क्षीरं यदा दधि। जातं स्यात् कफजे कासे श्वासे वम्यञ्च तत् पिबेत्॥ मस्तुना फलमध्यं वा पाण्डुकुष्ठविषार्दितः। तेन तक्रं विपक्वं वा सक्षौद्रलवणं पिबेत्॥ तुम्ब्याः फलरसैः शुष्कैः सपुष्पैरवचूर्णितम्। छर्दयेन्माल्यमाघ्राय गन्ध-सम्पत्सुखोचितः॥ चरकसंहिता कल्प. ३ अ. (दृढबल.)।

वैद्यके व्यवहारः—अश्मर्यां तुम्बीबीजम्— "नृत्यकुण्डलबीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम्। अविक्षीरेण सप्ताहं पीतमश्मरीपातनम्॥" "तुम्बीबीजानां चूर्णं माक्षिकान्वितमविक्षीरेण सप्ताहं पीतमश्मरीपातनम्" (अरुणदत्तः)॥ (चि. ११ अ.)। वाग्भटः॥ (१) अश्मर्यां तिक्तालावु— तिक्तालावुरसः क्षारः सितायुक्तोऽश्मरीहरः। (अश्म.चि.। (२) गलगण्डे तिक्तालावु— तिक्तालावुफले पक्वे सप्ताहमुषितं जलम्। मद्यं वा गलगण्डघ्नं पानात् पथ्यानुसेविनः॥ (गलगण्ड-चि.)। (३) अर्शःसु तिक्तालावुबीजम्—तुम्बीबीजं सौद्भिदन्तु काञ्जिपिष्टं गुडीत्रयम्। अर्शोहरं गुदस्थं स्याद्दधिमाहिषमश्वतः (अर्शः-चि.)॥ चक्रदत्तः॥ (१) प्रदरे अलावु— "अलावुफलचूर्णस्य शर्करासहितस्य च। मधुना मोदकं

कृत्वा खादेत् प्रदरशान्तये॥" (म.ख. ४र्थः भा.)। (२) योनिरोगे तिक्तालावुपत्रम्– "तुम्बीपत्रं तथा लोध्रं समभागं सुपेषयेत्। तेन लेपो भगे कार्यः शीघ्रं स्याद्योनिरक्षता॥" (म.ख.४भा.)। (३) दशनक्रिमिषु तिक्तालावु-मूलम्–"...कटुतुम्बीमूलम्। सञ्चूर्ण्य दशनविधृतं दशनक्रिमिनाशनं प्राहुः।" भावप्रकाशः॥ (१) शोथे कटुतुम्बी–"लोमशा कटुतुम्बी च काञ्जिकेन जलेन वा। निःक्वाथ्य चापि संस्वेदस्तथैवोष्णेन तेन च॥" (चि. २६ अ.)। (२) कर्णरोगे कटुकालावु–"तुम्बीरसञ्च धार्येत कर्णरोगे प्रशस्यते" (चि. ४३ अ.)। हारीतः। (१) पित्तोद्रिक्ते कफज्वरे तिक्तालावु–"अपुष्पस्य प्रवालानां मुष्टिं प्रादेशसम्मितम्। क्षीरप्रस्थे शृतं दद्यात् पित्तोद्रिक्ते कफज्वरे॥" (कल्प.३अ. दृढबल.)। (२) उरःस्थिते कफे तिक्तालावु–"फलस्वरसभागञ्च त्रिगुणक्षीरसाधितम्। उरःस्थिते कफे दद्यात् स्वरभेदे सपीनसे॥" (कल्प.३ अ.दृढबलः)। (३) कफजे कासे तिक्तालावु–"ततमध्ये फले जीर्णे स्थितं क्षीरं यदा दधि। जातं स्यात् कफजे कासे स्वासे वम्यञ्च तत् पिबेत्॥" (कल्प. ३ अ. दृढबलः)। (४) पाण्डुरोगे तिक्तालावु– "मस्तुना फलमध्यं वा पाण्डुकुष्ठविषार्दितः। तेन तक्रं विपक्वं वा सक्षौद्रं लवणं पिबेत्॥" (कल्प.३ अ.दृढबलः)। (५) वमनार्थं तिक्तालावुपुष्पम्– "तुम्ब्याः फलरसैः शुष्कैः सपुष्पैरवचूर्णितम्। छर्दयेन्माल्यमाघ्राय गन्धसम्पत्सुखोथितः॥" (कल्प. ३ अ. दृढबलः)॥ चरकसंहिता॥

विविध भाषाओं में नाम–

मिष्टतुम्बी के नाम– सं.– अलावु, मिष्टतुम्बी, तुम्बी। हि.– तुम्बी, लौआ, लौका, लौकी, कद्दू, कदुआ, मीठी तोम्बी, लम्बा कद्दू। बं.– लाड़लाड़। मं.– भोपला, दुच्या। गु.– दधियु दबालु, आलड़ी। क.– इण्डजलकायी। ते.– तियातुखड़ीकाया। फा.– कटुशीरिन, कदुयदरोज। अ.– युक्ति नहेलुकुरा। अं.– White-gourd (ह्वाइट गोर्ड)। ले.– Cucurbita lagenaria (कुकुरविटा लेजिनेरिया)।

कटुतुम्बी के नाम– सं.– कटुतम्बी, इक्ष्वाकु। हिं.– कटुलौकी, कडवी तोम्बी, तितलोकी, तितुआ लोकी, तुमरी, तुम्बी। बं.– तितलाउ, तितलावो। म.– कदु, भोंपला, कडदुवी। ग्र.– कड़वी तुम्वरी। ते.– तेति आनव। फा. – कदूय तल्ख। अ.– करञ्जअलूमुर। अं.– Bottel gourd (वाटेलगोर्ड)। ले.– Lagenaria Vulgaris (लेजिनेरिया बुल्गेरिस)।

मीठीतुम्बी की संज्ञा– अलावु।

कटुतुम्बीकी संज्ञा– कटुकालावु, इक्ष्वाकुः। मीठीतुम्बी के दो भेद– गोरक्षतुम्बी (कुम्भतुम्बी), क्षीरतुम्बी। कटुतुम्बी के भेद– भूतुम्बी।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार– तुम्बी कास, श्वास तथा छर्दि (वमन) को दूर करने वाला है तथा विष पीड़ित, कंडू से पीड़ित व्यक्तियों के लिए वमन कराने में हितकर है।

राजनिघण्टु के अनुसार– कटुतुम्बी कटुरस प्रधान, तीक्ष्ण, वमन कारक तथा श्वास-कास को दूर करने वाली है। मीठी तुम्बी-मधुर रस प्रधान, शीतल, पित्त नाशक, गुरु, संतर्पक, रुचि कारक, वीर्यवर्द्धक, पुष्टि तथा बल कारक है। क्षीर तुम्बी (मिष्ट तुम्बी) मधुर रस प्रधान, स्निग्ध, पित्तनाशक गर्भपोषक, वीर्यवर्द्धक तथा वात कारक है ओर बल एवं पुष्टि को बढ़ाने वाली है। भूतुम्बी (कटुतुम्बी) कटुरस प्रधान तथा उष्ण है और सन्निपात को दूर करने वाली है। इनके अतिरिक्त दन्तार्गल, दन्तरोध तथा धनुर्वात आदि दोष को दूर करती है।

भावप्रकाश के अनुसार- अलावु (मीठी तुम्बी) दो प्रकार की होती है– १. लम्बी तथा २. वर्तुलाकार। मीठी तुम्बी का फल हृदय को बल देने वाला, पित्त विकार तथा कफ विकार को दूर करता है और गुरु है। इनके अतिरिक्त वीर्यवर्द्धक तथा रुचिकारक कहा गया है और धातु तथा पुष्टि को बढ़ाने वाला है। इक्ष्वाकु (कटुतम्बी) कड़वी होती है और वह लम्बफलवाली है। कटुतुम्बी शीतल, हृदय को बल देने वाली तथा पित्त विकार, कास एवं विष विकार को नष्ट करती है। कटुतुम्बी विपाक में कटु है तथा वात, पित्त एवं ज्वर को नष्ट करने वाली है।

वैद्यक शास्त्र में अलावु का प्रयोग-

अश्मरी (पथरी) में तुम्बी के बीज का प्रयोग- तुम्बी बीज के चूर्ण को शहद में मिलाकर बकरी के दूध के साथ पान करने से पथरी गिर जाती है। (अरुणदत्त) (वाग्भट चि.अ.११)।

(१) **अश्मरी में तितलौकी का प्रयोग–** अश्मरी में तितलौकी रस तथा क्षार मिश्री मिलाकर पान करने से अश्मरी दूर होती है (चक्र.अश्मरीचि.)। (२) **गलगण्ड में तिक्तालावु का प्रयोग-** तितलौकी के पके फल में एक सप्ताह जल रखकर या मद्य रखकर पान करने से तथा उचित पथ्य सेवन करने से गलगण्ड नष्ट होती है। (३) **अर्शरोग में तितलौकी के बीज का प्रयोग-** तितलौकी के उद्भिद बीज को काञ्जी के साथ पीस कर तथा गुड़ मिला कर गुदा के स्थान पर रखने से तथा भैंस का दही खाते रहने पर अर्श रोग नष्ट होता है (चक्र.अर्श चि.)।

(१) **प्रदर में लौकी का प्रयोग-** लौकी के फल के चूर्ण को शर्करा मिलाकर तथा शहद के साथ मोदक बनाकर प्रदर रोग की शान्ति के लिए भक्षण करे (भावप्रकाश म.ख.४ भाग)। (२) **योनि रोग में तितलौकी के पत्र का प्रयोग-** तितलौकी के पत्र तथा लोध सम भाग लेकर पीस लें और उसका लेप करे॥ इससे शीघ्र ही योनि रोग अच्छा हो जाता है तथा योनि की रक्षा होती है। (३) **दशन क्रिमि में तितलौकी के मूल का प्रयोग-** तितलौकी के मूल का चूर्ण दांत में धारण करने से दन्त क्रिमि का नाश होता है (भाव प्रकाश)।

शोथ में कटुतुम्बी का प्रयोग- (१) लोमश तथा तितलौकी को काञ्जी या जल के साथ क्वाथ कर संस्वेदन करें तथा उसी प्रकार गरम जल से संस्वदेन करे॥ इससे शोथ शान्त होता है (हारीत सं.चि.अ.२६)। (२) **कर्ण रोग में तितलौकी का प्रयोग-** तितलौकी के रस का कान में धारण करने से कान का रोग शान्त होता है (हारीत चि.अ.४३)।

(१) **पित्त के उद्रिक्त होने पर कफज्वर में तितलौकी का प्रयोग–** फूल न आये हुए तितलौकी के कोमल पत्तों को मुट्ठी भर लेकर उसे एक प्रस्थ दूध में पकाकर पित्त के उद्रिक्त होने पर कफ-ज्वर में पिलावे॥ (२) **हृदय में स्थित कफ में तितलौकी का प्रयोग–** तितलौकी के फल का स्वरस एक भाग तथा दुग्ध तीन भाग को एकत्र पकाकर उसे हृदय स्थित कफ, स्वरभेद तथा पीनस में पीलावे। (३) **कफ से उत्पन्न कास में तितलौकी का प्रयोग–** पके हुए तितलौकी के फल के मध्य भाग दूध डाल दे और जब दही जम जाय तो उसका कफ से उत्पन्न कास में, श्वास में तथा वमन में प्रयोग करे॥ (४) **पाण्डु रोग में तितलौकी का प्रयोग–** पाण्डु रोग, कुष्ठ रोग तथा विष से पीडित व्यक्ति तितलौकी के फल की गुद्दी को दही के पानी के साथ अथवा मट्ठा में पकाकर मधु और सेन्धा नमक के साथ उसका प्रयोग करे॥ (५) **वमन कराने के लिए तितलौकी की फूल और फल के रस का प्रयोग–** तितलौकी की फूल और फल के रस को सुखाकर बनाये गये चूर्ण को माला के ऊपर छिड़क कर सुगन्ध का उपयोग करने वाले व्यक्ति को सूँघाने से वमन होता है।

Actions and uses—The pulp of Karavi tumbadi is emetic and purgative. The oil is used

as a cooling and emollient application for the head. The pulp of sweet dudhi is an ingredient in various confections. The seeds are nutritive and diuretic and constitute one of the five cucurbitaceous seeds. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II, p. 312).

अशोक:

Jonesia asoka

अशोक:। *Saraca Indica, Jonesia Asoka.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा–"रक्तपल्लवक:", "मधुपुष्प:", "हेमपुष्प:"।

पूर्वाचार्यकृतवर्णनम्–'अशोक: लोहितकुसुम: स्वनामख्यात:' (डल्हण: सु.टी.सू. ३८ अ.)। अशोक: शीतलश्चार्श: क्रिमीन् हन्ति प्रयोजित:। अपचीं नाशयत्येव सर्वव्रणविनाशन:॥ अशोको मधुरो हृद्य: सन्धानीय: सुगन्धिक:। धन्वन्तरीयनिघण्टु:॥ अशोक: शिशिरो हृद्य: पित्तदाहश्रमापह:। गुल्मशूलोदराध्माननाशन: क्रिमिकारक:॥ राजनिघण्टु:॥ अशोक: शीतलस्तिक्तो ग्राही वर्ण्य: कषायक:। दोषापचीतृषादाहक्रिमिशोषविषास्त्रजित्॥ भावप्रकाश:॥

वैद्यके व्यवहार:– (१) असृग्दरे अशोकत्वक्–"अशोकवल्कलक्वाथशृतं क्षीरं सुशीतलम्। यथाबलं पिबेत् प्रातस्तीव्रासृग्दरनाशनम्॥" (असृग्दर-चि.)। (२) मूत्राघाते अशोकबीजम्–"जलेन खदिरीबीजं मूत्राघाताश्मरीहरम्" (मूत्रघात-चि.) "खदिरीबीजमशोकबीजमित्याहु:" (शिवदास:)। 'चक्रदत्त:'।

विविध भाषाओं में नाम- सं.- अशोक:, हेमपुष्प:, वञ्जुल:, ताम्रपल्लव:, हि.- अशोक, आसा पाला। बं.- अशोक, अस्पाला। गु.- अशुपालो। क.- अशोक, अशुंकर। ले.- Saraca indica (सराका इन्डिका) या Jonesia asoka (जोनेसिया अशोका)।

परिचय बोधक नाम- राजपल्लव, मधुपुष्प, हेमपुष्प। अशोक के सम्बन्ध में पहले के आचार्यों का किया वर्णन सु.टी.सू. स्थान, अ. ३८ डल्हण के अनुसार- अशोक लोहित पुष्प वाला अपने नाम से प्रसिद्ध है।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- अशोक शीतल है तथा प्रयोग करने से अर्श रोग तथा क्रिमि रोग को नष्ट करता है, अपची रोग का नाश करता है और सभी प्रकार के व्रण का नाश करता है। अशोक मधुर रस प्रधान हृदय को बल देने वाला सन्धान कारक तथा सुगन्धित है।

राजनिघण्टु के अनुसार- अशोक शीतल, हृदय को बल देने वाला, पित्त विकार, दाह तथा श्रम को दूर करने वाला है और गुल्म रोग, शूल रोग, उदर रोग एवं आध्मान का नाश करता है।

भाव प्रकाश के अनुसार- अशोक शीतल, तिक्त रस प्रधान, ग्राही, वर्ण को बढ़ाने वाला तथा कषाय रस वाला है; वातादि दोष, अपची रोग, प्यास, दाह, क्रिमि रोग, शोथ, विष विकार तथा रक्त विकार को दूर करता है।

अशोक का वैद्यक शास्त्र में व्यवहार–

(१) रक्त प्रदर में अशोक की छाल का प्रयोग- अशोक छाल के क्वाथ में दूध को पकाकर तथा शीतल

कर बल के अनुसार प्रातःकाल पान करायें॥ यह रक्त प्रदर का नाश करता है (चक्र असृग्दर चि.)। (२) **मूत्राघात में अशोक के बीज का प्रयोग-** खैर के बीज का जल के साथ प्रयोग करने से मूत्राघात तथा अश्मरी रोग नष्ट होता है (खैर के बीज को अशोक का बीज कहा जाता है शिव दास के अनुसार) (चक्रदत्त)।

Constituents—Tannin and Catechin.

Actions and uses—Astringent : the decoction with a number of aromatics is given in uterine affections, chiefly in menorrhagia. (*Materia Medica of India*—By. R. N. Khory, Part II, p. 217).

अश्वगन्धा

Withania somnifera

अश्वगन्धा, हयगन्धा, वाजिगन्धा। *Withania Somnifera, Physalis Fluxuosa.*

गुणप्रकाशिका संज्ञा–"पुष्टिदा", "बल्या", "वातघ्नी", "वाजीकरी"।

अश्वगन्धा कषायोष्णा तिक्ता वातकफापहा। विषव्रणकफान् हन्ति कान्तिवीर्यबलप्रदा॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ अश्वगन्धा कटूष्णा स्यात्तिक्ता च मदगन्धिका। बल्या वातहरा हन्ति कासश्वासक्षयव्रणान्॥ राजनिघण्टुः॥ अश्वगन्धानिलश्लेष्मशोफश्वित्रक्षयापहा। बल्या रसायनी तिक्ता कषायोष्णातिशुक्रला॥ भावप्रकाशः॥ अश्वगन्धा जराव्याधिनाशकस्तुवरः स्मृतः। धातुवृद्धिकरः किञ्चित् कटुको बलदः स्मृतः॥ वृहन्निघण्टुरत्नाकरः॥ अश्वगन्धापत्रलेपो ग्रन्थिगण्डापचीः हरेत्। सोढलनिघण्टुः॥

वैद्यके व्यवहारः–श्वासे अश्वगन्धामूलक्षारः–"क्षारञ्चाप्यश्वगन्धाया लेहयेत् क्षौद्रसर्पिषा" (चि. २१ अ.) चरकः॥ शोषे अश्वगन्धा–"क्षीरं पिबेद्वाप्यथ वाजिगन्धा विपक्वमेवं लभते च पुष्टिम्। तदुत्थितं क्षीरघृतं सिताढ्यं प्रातः पिबेद्वाथ पयोऽनुपानम् (उ. ४१ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) वातव्याधौ अश्वगन्धा–अश्वगन्धाकषाये च कल्के क्षीरचतुर्गुणम्। घृतं पक्वन्तु वातघ्नं वृष्यं मांसविवर्द्धनम्॥ (वातव्याधि-चि.)। (२) उदरोपद्रवभूते शोथे अश्वगन्धा–"गोमूत्रपिष्टामथवाश्वगन्धाम्" (उदर-चि.)। (३) बन्ध्यात्वे अश्वगन्धा– क्वाथेन हयगन्धायाः साधितं सघृतं पयः। ऋतुस्नाता बाला पीत्वा धत्ते गर्भं न संशयः॥ (योनिव्यापच्चि.)। (४) शिशोः कार्श्ये अश्वगन्धा–"पीताऽश्वगन्धा पयसार्द्धमासं घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा। कृशस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते बालस्य शस्यस्य यथाम्बुवृष्टिः॥" (रसायनाधिकारे)। चक्रदत्तः॥ हृद्गते वायौ अश्वगन्धा–"पिबेदुष्णाम्भसा पिष्टवामश्वगन्धाम्।" (म. ख. २ भा.)। भावप्रकाशः॥ निद्रानाशे अश्वगन्धा–चूर्णं हयगन्धायाः सितया सहितञ्च सर्पिषा लीढम्। विदधाति नष्टनिद्रे निद्रामाश्वेव सिद्धमिदम्। (जलदोषादियोगाधिकारे) वङ्गसेनः॥

विविध भाषाओं में नाम- सं.- अश्वगन्धा, हयाह्वा, वाराहकर्णी, वरदा, कुष्ठगन्धिनी। हि.- असगन्ध, अश्वगन्धा, ढोरगंज, बं.- अश्वगन्ध, मं.- असगन्ध, आसगन्ध। गु.- आक्षंध, आखसंधु। मा.- आसगन्ध। क.- आसेंद, इरिमेदद, अङ्गरवेरु। ते.- पेन्नेरु, गड्डु, पिल्वी, आन्ड्रा, अश्वगन्धी। द्रा.- अमुक, रांकिडंग। फा.- वेईमनबर्री। ता.-

अश्वगंदी, भला, अमुकिर, पिवेरे। अं.- Winter cherry (विण्टरचेरी) ले.- Withania somnifera (विथनिया सोम्नीफेरा)।

गुण प्रकाशक नाम- पुष्टिदा, बल्या, वातघ्नी, वाजीकरी।

गुण-दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- अश्वगन्धा कषाय तथा तिक्त रस युक्त एवं उष्ण है और वात एवं कफ को दूर करती है। इनके अतिरिक्त विष विकार, व्रण तथा कफ का नाश करती है और कान्ति, वीर्य तथा बल को देने वाली है।

राजनिघण्टु के अनुसार- अश्वगन्धा कटु तथा तिक्त रस युक्त तथा उष्ण एवं मद के समान गन्ध वाली है। यह बल कारक तथा वात रोग को दूर करने वाली है और कास, श्वास, क्षयरोग तथा व्रण को नष्ट करती है।

भाव प्रकाश के अनुसार- अश्वगन्धा वात रोग, कफ रोग, शोथ रोग तथा क्षय रोग को दूर करती है। यह बलकारक है, रसायन है, तिक्त तथा कषाय रस प्रधान, उष्ण एवं अत्यधिक वीर्य को बढ़ाने वाली है।

बृहन्निघण्टु रत्नाकर के अनुसार- अश्वगन्धा जरा तथा व्याधि का नाश करने वाली एवं कषाय रसयुक्त है। यह धातुवर्द्धक, थोड़ी कटु रस वाली तथा बल को बढ़ाने वाली है।

सोढल निघण्टु के अनुसार- अश्वगन्धा के पत्तों का लेप ग्रन्थिशोथ, गलगण्ड रोग तथा अपची रोग को दूर करता है।

वैद्यक में अश्वगन्धा का उपयोग-

श्वास रोग में अश्वगन्धा मूलक्षार का प्रयोग- श्वास रोग में अश्वगन्धा के क्षार को मधु तथा घृत के साथ चाटे (चरक चि.अ.२१)।

शोथ में अश्वगन्धा का प्रयोग- शोथ में अश्वगन्धा के कल्क के साथ विधिवत् सिद्ध दूध पान करे॥ इसी प्रकार पकाया हुआ दूध पुष्टि को देता है। अश्वगन्धा के कल्क के साथ परिपक्व दूध से निकला हुआ घृत मिश्री मिलाकर प्रातःकाल पान करे और ऊपर से दूध पीवे (सुश्रुत उ.अ.४१)।

(१) वातरोग में अश्वगन्धा का प्रयोग- अश्वगन्धा के चौगुना क्वाथ तथा चौथाई कल्क के साथ चौगुना दूध मिलाकर पकाया हुआ घृत सेवन करना वातनाशक है, वीर्यवर्द्धक है तथा मांसवर्द्धक है (चक्र.वातव्याधि चि.)। **(२) उदररोग के कारण उत्पन्न शोथ में अश्वगन्धा का प्रयोग-** उदररोगजन्य शोथ में गोमूत्र के साथ अश्वगन्धा को पीसकर सेवन करें (चक्र.उ.चि.)। (३) **बन्ध्या रोग में अश्वगन्धा का प्रयोग-** अश्वगन्धा के कल्क के साथ विधिवत् सिद्ध घृत दूध के साथ पान कर ऋतुमती स्त्री गर्भ को धारण करती है (चक्र.योनिव्यापद् चि.)। (४) **बालकों की कृशता में अश्वगन्धा का प्रयोग-** बालकों की कृशता में अश्वगन्धा का दूध के साथ आधा मास (१५ दिन तक) सेवन करने से कृश बालक का शरीर पुष्ट होता है। इसी प्रकार अश्वगन्धा का घृत के साथ, तैल के साथ या गरम जल के साथ पान करने से बालकों के दुर्बल शरीर पुष्ट होते हैं (चक्र.बालरोग चि.)।

हृदयगत वात में अश्वगन्धा का प्रयोग- हृदयगत वात में अश्वगन्धा को गरम जल के साथ पीसकर पान करें (भा.म.ख.२)।

निद्रानाश में अश्वगन्धा का प्रयोग- निद्रा नष्ट होने पर अश्वगन्धा के चूर्ण को मिश्री मिलाकर घृत के साथ चाटने से अवश्य ही नींद आ जाती है, यह सिद्धयोग है। (जलदोषादियोगाधिकार बङ्गसेन)।

Constituents—An alkaloid somniferin having hypnotic property, resin, fat and colouring matter. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II, p. 542).

Actions and Uses—Tonic, alterative and sedative; a paste of the root taken with milk and clarified butter helps the nutrition of children. As an alterative a confection is given in consumption debility from old age and rheumatism. Native women combine it with various restoratives in nervous debility and leucorrhoea; as a sedative and hypnotic the leaves moistened with castor oil are applied to carouncles. "Narayan tel" (which contains Ashwagandha) is dropped into the nose in deafness, and as an inunction over the body in hemiplegia, tetanus, rheumatism and lumbago and as an enema in dysentery and anal Fistula. It is given internally in 15 to 60 ms. doses in consumption, emaciation of children, debility from old age, leprosy, nervous diseases and rheumatism (Do. II., p. 452). "The authors of *Bombay Flora* say that the seeds are employed to coagulate milk like those of W. Coaguls. We have tried the experiment and find them to have some coagulating power. (*Pharmacographia Indica*—Part II, p. 567).

अश्वत्थः

Ficus religiosa

अश्वत्थः, पिप्पलः, बोधिद्रुमः। *Ficus religiosa.*

अन्वर्थसंज्ञाः-"चलपत्रः", "गजभक्ष्यः", "सेव्यः", "क्षीरद्रुमः", "अच्युतावासः", "धर्मवृक्षः"। पिप्पलः सुमधुरस्तु कषायः शीतलश्च कफपित्तविनाशी। रक्तदाहशमनः स हि सद्यो योनिदोषहरणः किल पक्वः। अन्यच्च-अश्वत्थवृक्षस्य फलानि पक्वान्यतीव हृद्यानि च शीतलानि। कुर्वन्ति पित्तास्त्रविषार्त्तिदाहं विच्छर्दिशोषारुचिदोषनाशम्॥ अश्वत्थिका तु मधुरा कषाया चास्त्रपित्तजित्। विषदाहप्रशमनी गुर्विण्या हितकारिणी॥ राजनिघण्टुः॥ पिप्पलो दुर्ज्जरः शीतः पित्तश्लेष्मव्रणास्त्रजित्। गुरुस्तुवरको रूक्षो वर्ण्यो योनिविशोधनः॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः- (१) वातरक्ते अश्वत्थत्वक्-"बोधिद्रुमकषायन्तु पिबेत्तं मधुना सह। वातरक्तं जयत्याशु त्रिदोषमपि दारुणम्॥" (चि. २९ अ.)। (२) व्रणाच्छादनार्थम् अश्वत्थपत्रम्-...पिप्पलस्य च। व्रणप्रच्छादने विद्वान्... (चि. १३ अ.)। (३) व्रणे अश्वत्थत्वक्-"ककुभोदुम्बराश्वत्थ...। त्वचमाश्वेव गृह्णन्ति त्वक्चूर्णैश्चूर्णिता व्रणाः"। (चि. १३ अ.)। चरकः॥ (१) नीलमेहे अश्वत्थत्वक्-"नीलमेहिनमश्वत्थकषायं वा पाययेत्" (चि. ११ अ.)। (२) वाजीकरणार्थम् अश्वत्थफलमूलत्वक्छुङ्गाः-"अश्वत्थफलमूलत्वक्छुङ्गसिद्धं पयो नरः। पीत्वा सशर्कराक्षौद्रं कुलिङ्ग इव हृष्यति॥" (चि. २६ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) वमने अश्वत्थवल्कलम्-"अश्वत्थवल्कलं शुष्कं दग्ध्वा निर्वापितं जले। तत्तोयपानमात्रेण छर्दिञ्जयति दुस्तराम्॥" (२) अग्निदग्धव्रणे अश्वत्थवल्कलम्-"अश्वत्थस्य विशुष्कवल्कलकृतं चूर्णं तथा गुण्डनात्" (व्रणशोथ-चि.)। (३) कर्णशूले अश्वत्थपत्रम्-"अश्वत्थपत्रखल्लम्बा विधाय बहुपत्रकम्। तैलाक्तमङ्गारपूर्णं विदध्याच्छ्रवणोपरि॥ यत्तैलं च्यवते तस्मात् खल्लादङ्गारतापितात्। तत्प्राप्तं श्रवणस्त्रोतः सद्यो गृह्णाति वेदनाम्॥" (कर्णरोग-चि.)। (४) शिशोर्मुखपाके अश्वत्थत्वग्दलम्-अश्वत्थत्वग्दलं क्षौद्रैर्मुखपाके प्रलेपनम्। (बालरोग-चि.)। चक्रदत्तः॥

विविध भाषाओं में नाम- सं.- बोधिद्रुमः, पिप्पलः, अश्वत्थः, चलपत्रः, गजाशनः। हि.- पीपल वृक्ष। बं.- अश्वस्थ, अशोत्थागाछ। म.- पिंपल, पिपले। क.- आरली। गु.- पीपली, पीपुल। ते.- राई चेट्टू। ता.- अरसुमरम। फा.- दरख्ते लर। ते.- रैगाहस्पेय, अश्वलतो। अं.- Peepal Tree। ले.- Ficus religiosa (फाइकस रेलिजिओसा)।

अन्वर्थ बोधक नाम- चलपत्र, गजभक्ष्य, सेव्य, क्षीरद्रुम, अच्युतावास, धर्मवृक्ष।

गुण-दोष-

राजनिघण्टु के अनुसार- पीपल-मधुर तथा कषाय रस युक्त और शीतल है एवं कफ विकार एवं पित विकार का नाश करता है, रक्त विकार तथा दाह को शान्त करने वाला है और इसका पका हुआ फूल शीघ्र ही योनि दोष को दूर करता है। और भी इसकी विशेषताएँ हैं- अश्वत्थ वृक्ष के पके फल अत्यधिक हृदय को बल देने वाले हैं तथा शीतल है॥ ये पित्त विकार, रक्त विकार, विष विकार, पीडा, दाह, वमन, शोथरोग, अरुचि तथा दोषजन्य विकारों का नाश करते है॥ अश्वत्थिका मधुर तथा कषाय रस युक्त है और रक्त विकार तथा पित्त विकार का नाश करती है, विष विकार तथा दाह को शान्त करती है, भारी है तथा हितकारक है।

भाव प्रकाश के अनुसार- पीपल, दुष्पच तथा शीतल है और यह पित्त विकार, कफ विकार, व्रण एवं रक्त विकार को जीत लेता है। यह भारी है तथा कषाय रस युक्त है, रूक्ष है, वर्णकारक है तथा योनि को शुद्ध करने वाला है।

वैद्यकशास्त्र में प्रयोग-

(१) वातरक्त में अश्वत्थ की छाल का प्रयोग- पीपल वृक्ष की छाल के क्वाथ का मधु के साथ सेवन करे॥ यह शीघ्र ही वातरक्त को जीत लेता है तथा भयंकर त्रिदोष का भी नाश करता है (च.चि.अ.२८)। (२) **व्रण का आच्छादन करने के लिए अश्वत्थ के पत्र का प्रयोग-** अश्वत्थ के पत्तों से विद्वान चिकित्सक व्रण को आच्छादित करें (च.चि.अ.१३)। (३) **व्रण में अश्वत्थ छाल का प्रयोग-** अर्जुन, गूलर तथा अश्वत्थ की छाल का चूर्ण व्रण के ऊपर अवचूर्णित करने से व्रण शीघ्र ही भर जाते हैं (च.चि.१३)।

(१) नीलमेह में अश्वत्थ की छाल का प्रयोग- नीलमेह के रोगी को अश्वत्थ की छाल का कषाय पान करायें (सु.चि.अ.१२)। (२) **वाजीकरण के लिए पीपर के फल, मूल, छाल तथा शुङ्ग(टूसा) का प्रयोग-** पीपर के फल, मूल, छाल तथा टूसा के कल्क एवं क्वाथ के साथ विधिवत सिद्ध दूध का शक्कर तथा शहद मिलाकर पान करने से व्यक्ति कुलिंग की तरह मैथुन शक्ति प्राप्त करता है (सु.चि.अ.२६)।

(१) वमन में अश्वत्थ छाल का प्रयोग- पीपल की शुष्क छाल को जलाकर जल में बुझाये। इस जल का पान करने मात्र से भयंकर छर्दि (वमन) शान्त हो जाता है (चक्र.चि.)। (२) **अग्निदग्ध व्रण के ऊपर पीपर की छाल के चूर्ण का प्रयोग-** पीपर के सूखे छाल के चूर्ण को व्रण के ऊपर लगाने से अग्नि दग्ध व्रण शान्त होता है (चक्र.व्रणशोथ चि.)। **(३) कर्णशूल में अश्वत्थ पत्र के रस का प्रयोग-** पीपल के बहुत पत्रों को एकत्र कर एक साथ लपेट लें और उसको तैल में तर कर लें और कान के ऊपर रक्खे॥ इसके बाद उसको अंगार से तपावे॥ इस प्रकार अंगार से तपाने के बाद जो तैल कान के स्रोतसों में जाता है वह कान की वेदना को शीघ्र ही दूर करता है (चक्र. कर्ण चि.)। (४) **बच्चों के मुखपाक में पीपर की छाल तथा पत्र का प्रयोग-** पीपर की छाल तथा पत्र के चूर्ण को मधु के साथ मिलाकर मुखपाक में लेप करे॥ इससे मुखपाक शान्त हो जाता है (चक्र.बालरोग चि.)।

Constituents—The bark contains tannin, caouthouc and wax.

Actions and uses—With honey it is locally applied to aphthac sore mouth. The powder is given internally in asthma. The medicated oil is used as an astringent injection in leucorrhoea, into the rectum in dysentery, as a wash for unhealthy ulcers and as a gargle in salivation. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II, p. 559).

असनः

Termenalia tomentosa

असनः, बीजकः। *Termenalia tomentosa, Pentaptera tomentosa.*

बीजकः सकषायश्च कफपित्तास्त्रनाशनः। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ असनः कटुरुष्णश्च तिक्तो वातार्त्तिदोषनुत्। सारको गलदोषघ्नो रक्तमण्डलनाशनः॥ राजनिघण्टुः॥ बीजकः कुष्ठ-विसर्पश्वित्रमेहगुदक्रिमीन्। हन्ति श्लेष्मास्त्रपित्तञ्च त्वच्यः केश्यो रसायनः॥ भावप्रकाशः॥ असनस्य तु 'पुष्पाणि' विपाके मधुराणि च। तिक्तानि पाचनीयानि वातलानि भवन्ति हि॥ बृहन्निघण्टुरत्नाकरः॥

वैद्यके व्यवहारः-रक्तपित्ते असनक्षारः-"तथा मधूकस्य तथासनस्य क्षाराः प्रजोज्या विधिनैव तेन" (चि. ५ अ.)। चरकः॥ (१) कुष्ठे असनः- "यथा सर्वाणि कुष्ठानि हतः खदिरबीजकौ" (चि. ६ अ.)। (२) चक्षुःकामित्वे असनसारः-"चक्षुःकामः प्राणकामो वा बीजकसाराग्निमन्थमूलं निःक्वाथ्य माषप्रस्थं साधयेत्। तस्मिन् सिध्यति चित्रकमूलानामक्षमात्रं कल्कं दद्यात्। आमलकरसचतुर्थभागम्। ततः स्विन्नमवतार्य्य शीतीभूतं मधुसर्पिर्भ्यां संसृज्योपयुञ्जीत यथाबलम्। लवणं परिहरेत्। जीर्णे मुद्गामलकयूषेणालवणेन घृतवन्तमोदनमश्नीयात् (चि. २७ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) उपदंशे असनः-"क्वाथं पिबेद् खदिरासनाभ्याम्। सगुग्गुलुं वा त्रिफलायुतं वा सर्वोपदंशपहरः प्रयोगः" (उपदंशाधिकारे)। (२) पश्चात्तके असनपुष्पम्-"असनस्य तु पुष्पाणि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्। गुटिकां कारयेद्वैद्यस्तां च भक्तस्य वारिणा। एतां पश्चात्तके दद्याद्बालेषु मतिमान् भिषक्॥ वङ्गसेनः।

विविध भाषाओं में नाम- सं.- बीजकः, पीतसारः, बन्धूकपुष्पः, असनः। हि.- विजयसार, विजेसार, विजौसार, आसना। बं.- पियाशाल, पियाल। गु.- वीयां, हीरादखन, आसन। क.- केपिन्ने होने। मं.- विवला। ते.- मद्दिवेगि। म.- मसाणा विवेलो। फा.- कमरकस। अं.- Indian Kino Tree (इण्डियन किनो ट्री)। ले.- Pterocarpus marsupium (टेरोकार्पस मार्सुपियम)।

गुण-दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- बीजक (असन वृक्ष) कषायारस प्रधान है तथा कफ विकार, पित्त विकार एवं रक्ताविकार का नाश करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- असन वृक्ष, कटु तथा तिक्तरस युक्त और उष्ण है। यह वात विकार एवं पीड़ा को दूर करता है। इनके अतिरिक्त यह दस्तावर है, गले के विकार का नाश करता है तथा रक्त मण्डल (शरीर के लाल चकत्ता) का नाश करता है।

भाव प्रकाश निघण्टु के अनुसार- बीजक (असन वृक्ष) कुष्ठरोग, विसर्प, श्वित्ररोग, प्रमेह तथा गुद कृमि का नाश करता है और कफ विकार, रक्त विकार एवं पित्त विकार को नष्ट करता है। इनके अतिरिक्त यह त्वचा तथा केश के लिए हितकर है और रसायन है।

बृहन्निघण्टु रत्नाकर के अनुसार- असन वृक्ष के पुष्प विपाक में मधुर है॥ ये तिक्तरस प्रधान, पाचक तथा वातकारक होते है॥

वैद्यकशाला में असन का प्रयोग-

रक्त पित्त में असन का क्षार का प्रयोग- रक्तपित्त में मधूक (महुआ) तथा असन के क्षार का प्रयोग पूर्वोक्त प्रकार से करें (च.चि.अ.५)।

(१) कुष्ठरोग में असन का प्रयोग- जैसे सभी प्रकार के कुष्ठों को खैर तथा बीजक (असन वृक्ष) नष्ट करते हैं अर्थात् कुष्ठ रोग को खैर तथा असनसार के प्रयोग नष्ट करते हैं (सु.चि.अ.६)। (२) **नेत्र के हित के लिए असनसार का प्रयोग-** नेत्र के लिए तथा प्राण (जीवन) के लिए असनसार, अग्निमन्थ (अरणी) की जड़, समभाग इन सब का क्वाथ बनाकर उसमें एक प्रस्थ (एक किलो) माष (उड़द) सिद्ध करे॥ उसके सिद्ध हो जाने पर चित्रकमूल का एक अक्ष (१० ग्राम) कल्क मिला दें और आंवला का रस चार भाग मिला दे॥ इसके बाद सिद्ध हो जाने पर उतार कर शीतल होने पर मधु तथा घृत मिलाकर सेवन करें और नमक का प्रयोग बन्द कर दे॥ औषध के पच जाने पर नमक रहित मूंग तथा आंवले के जूष के साथ घृतयुक्त भात भोजन करे॥ (सु.चि.अ.२७)।

(१) उपदंश में असन का प्रयोग- उपदंश रोग में खैर तथा असनसार का क्वाथ गुग्गुलु मिलाकर या त्रिफला मिलाकर सभी प्रकार के उपदंश को दूर करने के लिए सेवन करें (बंगसेन उपदंशाधिकार)। (२) **पश्चात्तक रोग में असन सार के पुष्प का प्रयोग-** असन सार वृक्ष के पुष्पों को अच्छी तरह महीन पीस लें और गुटिका बनावे॥ इस गुटिका को भात के जल (मांड़) के साथ दाल में मिलाकर पश्चात्तक रोग में प्रयोग करे (बंगसेन)।

Constituents—The ash of the bark contains much potash and tannin.

Actions and uses—Astringent, used in diarrhoea, dyspepsia and leucorrhoea, like the bark of J. Catappa. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 263).

अस्थिसंहारः

Vitis quadrangularis

अस्थिसंहारः, अस्थिशृङ्खला, वज्रवल्ली। *Vitis quadrangularis.*

अस्थिसंहारकः प्रोक्तो वातश्लेष्महरोऽस्थियुक्। उष्णः सरः क्रिमिघ्नश्च दुर्नामघ्नोऽक्षिरोगजित्॥ रूक्षः स्वादुर्लघुर्वृष्यः पाचनः पित्तलः स्मृतः। भावप्रकाशः॥ वज्रवल्ली सरा रूक्षा क्रिमिदुर्नामनाशिनी। दीपन्युष्णा विपाकेऽम्ला स्वाद्वी वृष्या बलप्रदा॥ अर्शसान्तु विशेषेण हिता चैवाग्निदीपनी। चतुर्धारा काण्डवल्ली भूतोपद्रवशूलहा॥ अत्युष्णाध्मानवातांश्च तिमिरं वातरक्तकम्। अपस्मारं वातरोगं नाशयेदिति कीर्त्तितम्॥ बृहन्निघण्टुरत्नाकरः।

वैद्यके व्यवहारः-भग्नरोगे अस्थिसंहारः-सघृतेनास्थिसंहारं...। सन्धियुक्तेऽस्थिभग्ने च पिबेत् क्षीरेण मानवः। (भग्न-चि.)। चक्रदत्तः॥ वायुप्रशमने अस्थिसंहारमज्जा-"काण्डं त्वग्विरहितमस्थि-

शृङ्खलाया माषार्द्धं द्विदलमकुञ्चकं तदर्द्धम्। सम्पिष्टं तदनु ततस्तिलस्य तैले सम्पक्वं वटकमतीव वातहारि"। भावप्रकाशः॥

विविध भाषाओं में नाम- सं.- ग्रन्थिमान्, अस्थिसंहारी, वज्राङ्गी, अस्थिशृंखला। हि.- हड़जोड़, हड़संधारी। बं.- हाड़ भांगा, हाड़जोड़ा। ते.- नाल्लस। ता.- पेतण्ड। गु.- हाड़ सांकल। मं.- हाड़संघी, काण्डवेल। मं.- हाड़जोड़। ले.- Vitis quadrangularis (वाइटिस केन्डेगुलेरिस)।

गुण-दोष-

भावप्रकाश निघण्टु के अनुसार- अस्थि संहार वात तथा कफ को दूर करने वाला है तथा अस्थि को जोड़ता है। यह उष्ण, दस्तावर, क्रिमिनाशक, अर्श रोग नाशक तथा नेत्र रोग को दूर करने वाला है। इनके अतिरिक्त यह रूक्ष, स्वादिष्ट, लघु, वीर्यवर्द्धक, पाचक तथा पित्तकारक है।

बृहन्निघण्टुकार के अनुसार- वज्रवल्ली (अस्थिसंहार) दस्तावर, रूक्ष, क्रिमि रोग नाशक, अर्श नाशक जाठराग्निदीपक, उष्णवीर्य, विपाक में अम्ल, स्वादिष्ट, वीयवर्द्धक तथा बल देने वाली है। यह अर्श रोग के लिए तो विशेष हित कर है और जाठराग्नि को प्रदीप्त करने वाली है। चार धारवाली काण्ड-वल्ली (अस्थिसंहार) भूत जन्य उपद्रव तथा शूल का नाश करने वाली है और यह उष्ण है तथा आध्मान, वातरोग, तिमिररोग (मोतियाबिन्द), वातरक्त, अपस्मार एवं वात रोग का नाश करता है ऐसा कहा गया है।

वैद्यक शास्त्र में अस्थिसंहार का व्यवहार-

भग्न रोग में अस्थि संहार का प्रयोग- भग्न रोग में अस्थिसंहार का प्रयोग करे॥ सन्धि युक्त अस्ति भग्न में अस्थिसंहार के चूर्ण का दूध के साथ पान करें (चक्र.भग्न चिकित्सा)।

वायु को शान्त करने के लिए अस्थि संहार की मज्जा का प्रयोग- अस्थि संहार के त्वचा रहित काण्ड आधा माषा (५०० मिलीग्राम), द्विदल चौथाई माषा इन दोनों को अच्छी तरह पीसकर तिल के तैल में पकाकर मोदक बनाये। यह वटक वातनाशक है (भावप्रकाश)।

Actions and uses—Alterative and stimulant, given in dyspepsia, loss of appetite and Scurvy; also in irregular menstruation. The juice is given mixed with gopi chandan, ghee and sugar. Paste of the fresh stem is astringent and locally applied to dislocations, sores and fractured limbs; juice of the stem is dropped into the ear in otorrhoea and into the nose to check epistaxis. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory. Part II., p. 136).

आकारकरभः

Anacyclus pyrethrum

आकारकरभः। *Anacyclus pyrethrum.*

अक्कोलकरोष्णो वीर्येण बलकृत् कटुको मतः। प्रतिश्यायश्च शोथश्च वातश्चैव विनाशयेत्। बृहन्निघण्टुरत्नाकरः॥

वैद्यके व्यवहारः- फिरङ्गरोगे आकारकरभः-"पारदष्टङ्कमानः स्यात् खदिरष्टङ्कसन्मितः। आकारकरभश्चापि ग्राह्यष्टङ्कद्वयोन्मितः॥ टङ्कत्रयोन्मितं क्षौद्रं खल्वे सर्वं विनिक्षिपेत्। सम्मर्द्य तस्य

सर्वस्य कुर्यात् सप्तवटीर्भिषक्॥ स रोगी भक्षयेत् प्रातरेकैकामम्बुना वटीम्। वर्जयेदम्ललवणं फिरङ्गस्तस्य नश्यति॥" भावप्रकाशः॥

ववविध भाषाओं में नाम- सं.- आकारकरभः, अक्कोलकरः। हि.- अकरकरा, करकरा। बं.- आकरकरा। म.- अक्कलकरा, ते.- अकरकरम। ता.- अक्मे करम। गु.- अक्कीरकरन। अ.- आकिरकिही, ऊदुल्कई। फा.- बेख तर्खून कोही। अं.- Phyrethrum root, Spanish Pallitory Root, ले.- Pyrethrum Radix.

गुण-दोष-

बृहन्निघण्टुरत्नाकर के अनुसार- आकरकरभ उष्ण वीर्य, बलकारक है, तथा कटु माना गया है। प्रतिश्याय, शोथ तथा वातका विनाश करता है।

वैद्यक में आकरकरभ का प्रयोग-

फिरंग रोग में आकरकरभ का प्रयोग- वैद्य जी विशुद्ध पारद आधा तोला, खदिरचूर्ण आधा तोला, आकरकरभ एक तोला तथा मधु डेढ़ तोला इन सबको लेकर एक खल में डाले। उनका मर्दन करके सबको सात वटी बनावे॥ रोगी प्रातः काल प्रतिदिन एक-एक वटी का भक्षण जल के साथ करे। अम्ल तथा लवण का त्याग करे। उसका फिरंग नष्ट हो जायेगा। (भावप्रकाश)

Constituents—Pyrethrin—an acrid brown resin, Pyrenthrine 5 p.c.—an alkaloid, 2 fixed oils, inulin 50 p.c. gum, salts a trace of tannin.

Physiological action—Stimulant, rubefacient irritant and sialagogue; locally rubefacient. When chewed it at first irritates or stimulates the nerves and vessels of the mouth, salivary and buccal glands and then deadens and blunts their sensibility. In small does it is stimulant and cordial. As a masticatory sialagogue it produces pricking sensation in the tongue with heat pungency and copious flow of saliva, constriction in the fauces and increased buccal mucus. In large doses it is an irritant mucous membrane of the intestines, causing bloody stools, tetanoid spasms and profounded stupor. The pulse becomes accelerated.

Therapeutics—The infusion is given with lesser galangal and ginger in low states of the system with drowsiness and lethargy. The tincture is given in neuralgic headache, toothache due to caries, in paralysis of the tongue and in neuralgia of the face. As a local anaesthetic gargle or lotion or a mouth-wash it is used in sore throat, relaxed uvula aphonia etc. As a sternutatory, the powder is inhaled in chronic catarrh of tre frontal sinuses. The confection is given in impotence and in chronic seminal weakness. As a sialagogue it is an efficient remedy in chronic iodine poisoning where it secures a prompt and radid elimination." (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 349).

आत्मगुप्ता

Mucuna pruciens

आत्मगुप्ता, स्वयंगुप्ता, शूकशिम्बी, वानरी, कपिकच्छुः। *Mucuna pruciens, Catpopogan prucens. Eng :* Cowhage plant.

उत्पत्तिबोधिका संज्ञा-"प्रावृषेण्या"। परिचयज्ञापिका संज्ञा- "कपिरोमफला", "शूकवती"। गुणप्रकाशिका संज्ञा-"सद्यःशोथा", "वृष्या"। कपिकच्छू रसे स्वादुस्तिक्ता शीतानिलापहा। वृष्या पित्तास्त्रहन्त्री च दुष्टव्रणविनाशिनी॥ धन्वन्तरीयनिघण्टू राजनिघण्टुश्च॥ कपिकच्छुर्भृशं वृष्या मधुरा वृंहणी गुरुः। तिक्ता वातहरी बल्या कफपित्तास्त्रनाशिनी॥ तद्'बीजं" वातशमनं स्मृतं वाजीकरं परम्। भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः-वाजीकरणार्थं कपिकच्छुफलम्-"स्वयंगुप्ताफलैर्युक्तं माषसूपं पिबेन्नरः" (चि. २६ अ.)। सुश्रुतः॥ रक्तपित्ते शूकशिम्बीधान्यं शाकञ्च-"शूकशिम्बीभवं धान्यं रक्ते शाकञ्च शस्यते" (चि. २ अ.)। वाग्भटः। अवबाहुके शूकशिम्बीमूलस्वरसः- "तथात्मगुप्तास्वरसं पिबेद्वा. .. मासादसौ वज्रसमानबाहुः" (वातव्याधि-चिः)। चक्रदत्तः॥ योनिसङ्कीर्णीकरणे कपिकच्छुमूलम्-"कपिकच्छुभवं मूलं क्वाथयेद्विधिना भिषक्। योनिः सङ्कीर्णतां याति क्वाथेनानेन धारयेत् (मः खः ४ भाः)॥" भावप्रकाशः॥

विविध भाषाओं में नाम- सं.- कपिकच्छुः, आत्मगुप्ता, मर्कटी, अनहा, दुःस्पर्शा, प्रावृषेण्या, शूकशिम्बी, हि.- केवाच, केवाछ, किमोच कौच, छोइ। बं.- आलकुशी, शुया शिम्बी। मं.- कुहिली, कुहिलिचे वीज। क.- नसूगुन्नटी। ते.- चुलगुण्डी, पिल्ली, अड्डुगु , डुलगुण्डी। ता.- पुनाइक काली। गु.- कवचा, कैचा। अं.- Cowhage (कौहेज)। ले.- Mucuna Pruciens.

उत्पत्तिबोधक नाम- प्रावृषेण्या। **परिचय बोधक नाम-** कपिरोमफला, शुकवती। **गुणप्रकाशक नाम-** सद्यःशोथा वृष्या।

गुण-दोष-

धन्वन्तरीय तथा राजनिघण्टु के अनुसार- कपिकच्छु (केबाछ) रस में स्वादिष्ट, तथा तिक्तरस प्रधान है और शीत तथा वात का दूर करने वाली है, वृष्य है, पित्त विकार तथा रक्त विकार को नष्ट करने वाली है तथा दुष्टव्रण का नाश करने वाली है।

भावप्रकाश निघण्टु के अनुसार- कपिकच्छु (केवाछ) अधिक वीर्यवर्द्धक, स्वादिष्ट,मांसवर्द्धक तथा गुरु है। यह तिक्तरस प्रधान है तथा यह वात नाशक, पित्त नाशक, बलवर्द्धक एवं कफ विकार, पित्त विकार तथा रक्त विकार का नाशक है। कपिकच्छु का बीज वात नाशक कहा गया है तथा उत्तम बाजीकरण है।

वैद्यकशास्त्र में केवाछ का प्रयोग-

केवाछ के फल का बाजीकरण में प्रयोग- केवाछ का फल बाजीकरण के लिए उपयोगी है। मनुष्य केवाछ के फल के साथ उड़द का सूप (दाल का पानी) पान करे (सू.चि.अ.२६)।

रक्तपित्त में शूकशिम्बी धान्य तथा शाक का प्रयोग- शूकशिम्बी से जन्य धान्य तथा शाक रक्त विकार में उपयोगी है (वाग्भट चि.अ.५)।

अवबाहुक रोग में शूकशिम्बी (केवाछ) के मूल स्वरस का प्रयोग- अवबाहुक रोग में केवाछ के मूल स्वरस का पान करें। इसका एक माह सेवन करने से वज्र के समान बाहु हो जाते हैं (चक्र.वातव्याधि चि.)।

योनि को संकुचित करने के लिए केवाछ के मूल का प्रयोग- केवाछ के मूल का विधि पूर्वक क्वाथ

बनावें। इस क्वाथ का योनि में धारण करने से योनि संकीर्ण (संकुचित होकर छोटी) हो जाती है (भावप्रकाश भ. ख. ४ भा)।

Constituents—Resin, tannin and fat and a trace of manganese.

Actions and uses—The seeds are nervine tonic, emmenagogue and aphrodisiac, used in leucorrhoea, menstrual derangements and paralysis. The confection is given in paralysis and seminal debility. The hairs of the pods are vermifuge and given in round worms. They work mechanically by injuring the worms and promoting their expulsion. When applied to the skin or to the mucous membrane, the hairs produce a painful irritation and eruption, and hence are very dangerous if left in the intestines. In such cases their administration should always be followed by a purge of calomel and jalap. Dose of hairs 1 to 3 grs. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II, p. 219).

आमलकी

Phyllanthus emobhica

आमलकम्, धात्रीफलम्। *Phyllanthus emobhica.*

कषायं कटुतिक्तोष्णं स्वादु चामलकं हिमम्। रसं त्रिदोषहृद्वृष्यं ज्वरघ्नञ्च रसायनम्॥ हन्ति वातं तदम्लत्वात् पित्तं माधुर्यशैत्यतः। कफं रूक्षकषायत्वात् फलं धात्र्यास्त्रिदोषजित्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ आमलकं कषायाम्लं मधुरं शिशिरं लघु। दाहपित्तवमीमेहशोफघ्नञ्च रसायनम्॥ अन्यच्च—कटु-मधुरकषायं किञ्चिदम्लं कफघ्नं रुचिकरमतिशीतं हन्ति पित्तास्त्रतापम्। श्रमवमनविबन्धा-ऽऽध्मानविष्टम्भदोष-प्रशमनममृताभं चामलक्याः फलं स्यात्॥ राजनिघण्टुः॥ हरीतकीसमं धात्रीफलं किन्तु विशेषतः। रक्तपित्तप्रमेहघ्नं परं वृष्यं रसायनम्॥ हन्ति वातं तदम्लत्वात् पित्तं माधुर्यशैत्यतः। कफं रूक्षकषायत्वात् फलं धात्र्यास्त्रिदोषजित्॥ यस्य यस्य फलस्येह वीर्यं भवति यादृशम्। तस्य तस्यैव वीर्येण मज्जानमपि निर्दिशेत्॥ भावप्रकाशः॥ आदावन्ते च मध्ये च भोजनस्य प्रशस्यते। निरत्ययं दोषहरं फलेष्वामलकीफलम्॥ राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः- (१) विसर्पज्वरे आमलकम्-"रसमामलकानां वा घृतमिश्रं प्रदापयेत्। स एव गुरुकोष्ठाय त्रिवृन्मूलयुतो हितः॥" (चि. ११ अ.)। (२) हिक्कायाम् आमलकम्-"पिप्पलीमधुयक्तौ वा रसौ धात्रीकपित्थयोः।" (चि. १२ अ.)। (३) श्वेत प्रदरे आमलकीबीजम्- "जलेनामलकाद्बीजकल्कं वा ससितामधु। मधुनाऽऽमलकाच्चूर्णं रसं वा लेहयेत् सिते॥" (चि. ३० अ.)। चरकः॥ (१) अर्शःसु आमलकम्-"एष एव... आमलकगुडूचीषु तक्रकल्पः" (चि. ६ अ.)।(२) वातरक्ते आमलकम्-"सर्वेषु पुराणघृतमामलकरसविपक्वं वा पानार्थे" (चि. ५ अ.)। (३) प्रमेहे आमलकम्-महाधनो वा श्यामाकनीवारवृत्तिरामलक... फलाहारा मृगैः सह वसेत् (चि. ११ अ.)। (४) मूत्रदोषरुजातुरे आमलकम्-"प्रपीड्यामलकानान्तु रसं कुडवसम्मितम्। पीत्वागदी भवेज्जन्तुर्मूत्रदोषरुजातुरः॥" (उ. ५८ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) कासे आमलकम्-"चूर्णमामलकानां वा क्षीरपक्वं घृतान्वितम्" (चि. ३ अ.)। (२) प्रमेहे आमलकम्-"रसमामलकस्य वा" (चि. १२ अ.)। वाग्भटः॥ (१) रक्तपित्ते

आमलकम्- "नासाप्रवृत्तं रुधिरं घृतभृष्टं श्लक्ष्णपिष्टमामलकम्। सेतुरिव तोयवेगं रुणद्धि मूर्द्धनि प्रलेपेन" (रक्तपित्त-चि.)। (२) पित्तशूले आमलकम्-"धत्रीरसं... पिबेत्सशर्करं सद्यः पित्तशूलनिसूदनम्।" (शूल-चि.)। (३) शीतपित्ते आमलकम्-"...गुडमामलकैः सह" (उदर्द-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) मूत्रनिग्रहे आमलकी-"आमलक्याश्च कल्केन वस्तिभागं प्रलेपयेत्। तेन प्रशाम्यति क्षिप्रं नियमान्मूत्रनिग्रहः॥" (२) योनिदाहे आमलकम्-"धात्रीरसं सितायुक्तं योनिदाहे पिबेत् सदा।" (योनिरोग-चि.)। भावप्रकाशः॥ (१) वातजायां छर्द्याम् आमलकी-"आमलक्या रसेनाथ घृष्टं चन्दनकं मधु। गुटिकामलमानेन लेहो हन्ति वमिं ध्रुवम्॥" (चि. १३ अ.)। (२) शिरःक्षते आमलकी-"तथामलक्याः फलमेव पिष्ट्वा घृतेन खण्डेन प्रलेपनञ्च। निवार्यते मस्तकजं क्षतञ्च शिरोऽर्त्तिसङ्घान् विनिहन्ति चैतत्॥" (चि. ४२ अ.)। हारीतः॥ (१) सरक्ते मूत्रकृच्छ्रे आमलकी-"धात्रीरसं चेक्षुरसं पिबेद्वा कृच्छ्रे सरक्ते मधुना विमिश्रम्।" (मूत्रकृच्छ्राधिकारे)। (२) नवदूक्कोपे धात्रीफलम्-"धात्रीफलनिर्यासः नवदूक्कोपं निहन्ति पूरणतः"। (नेत्र-चि.)। (३) शिशोर्विच्छिनामरोगे आमलकी-"आमलक्याः पलान्यष्टौ गोमूत्रे सप्त भावयेत्। भावयित्वाऽऽतपे पश्चाद्विच्छिर्लिप्ता प्रशाम्यति॥" (बालरोग-चि.) वङ्गसेनः॥

विविध भाषाओं में नाम– सं.- आमलकी, हि.- आंवला। बं.- आमला। गु.- आमलां। फा.- आम्लझ। उ.- अण्ड। अं.- Emblic myrobalan (एम्ब्लिक मीरोवेलन)। ले.- Phyllanthus emblica (फाईलेन्थस एम्ब्लिका)।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- आमलकी कषाय, कटु एवं तिक्त रस प्रधान, उष्ण वीर्य, स्वादिष्ट तथा शीतल है। आमलकी के फल का रस त्रिदोष को दूर करता है, वीर्यवर्द्धक है, ज्वर नाशक है तथा रसायन है। यह अम्ल होने से वात का नाश करता है, मधुर तथा शीतल होने से पित्त का नाश करता है और रूक्ष तथा कषाय होने से कफ का नाश करता है। इस प्रकार आंवला का फल तीनों दोषों को दूर करता है।

राज निघण्टु के अनुसार- आंवला कषाय, अम्ल एवं मधुर रस प्रधान है, शीतल तथा लघु है। यह दाह, पित्त-विकार एवं वमन, प्रमेह एवं शोथ का नाश करता है और रसायन है। प्रकारान्तर से यह कटु, मधुर, कषाय तथा थोड़ा अम्ल है और कफनाशक है। यह रुचिकारक तथा अत्यन्त शीतल है और पित्त विकार, रक्त विकार तथा ताप का नाश करता है। इनके अतिरिक्त थकावट, वमन, विबन्ध, आध्मान, विष्टम्भ दोष को शान्त करता है और आवंला का फल अमृत के समान गुणकारक होता है।

भावप्रकाश के अनुसार- आंवला का गुण हरीतकी फल के समान होता है किन्तु आंवला विशेषकर रक्तपित्त तथा प्रमेह को नष्ट करता है, उत्तम वीर्यवर्द्धक है तथा रसायन है। आंवला का फल अम्ल होने से वात रोग को नष्ट करता है, मधुर तथा शीतल होने से पित्त को शान्त करता है, रूक्ष तथा कषाय रस होने से कफ का नाश करता है। इस प्रकार आंवला का फल त्रिदोष को शान्त करता है। जिस फल का जो वीर्य होता है उसके मज्जा का भी वही वीर्य होता है ऐसा निर्देश है।

राजवल्लभ के अनुसार- आमलकी का फल भोजन के पहले, मध्य में तथा अन्त में प्रशस्त होता है। यह बढ़े हुए दोषों को दूर करता है।

वैद्यकशास्त्र में आंवला का उपयोग-

(१) विसर्प ज्वर में आंवला का प्रयोग- आंवला के रस का घी में मिलाकर प्रयोग करें। जिसका कोष्ठ (कोठा) भारी हो उसके लिए आंवला के रस का घी तथा निशोथ मूल का चूर्ण मिलाकर प्रयोग करें (च.चि.अ. ११)। **(२) हिक्का में आंवला का प्रयोग-** हिचकी में आंवला तथा कैंथ के रस में पीपर का चूर्ण तथा मधु मिलाकर प्रयोग करें (च.चि.अ.१२)। **(३) श्वेतप्रदर में आमलकी बीज का प्रयोग-** जल के साथ आंवला के बीज को पीसकर कल्क बनावे और उसमें शक्कर तथा मधु मिलाकर·प्रयोग करें अथवा शहद के साथ आंवला का चूर्ण या मिश्री मिलाकर प्रयोग करें (च.चि.अ.३०)।

(१) अर्श रोग में आंवला का प्रयोग- पूर्वोक्त प्रकार से अर्श रोग में आंवला तथा गुडूची के रस में तक्रकल्प का प्रयोग करें (सु.चि.अ.६)। **(२) वात रक्त में आमलक का प्रयोग-** सभी प्रकार के वात रक्त में पुराना घृत में आंवला को पकाकर पीने के लिए दें (सु.चि.अ.०५)। **(३) प्रमेह में आमलक का प्रयोग-** प्रमेह रोग में बड़े धनवान व्यक्ति सांवां, तीना के चावल के साथ आंवला फल का आहार करे तथा मृगों के साथ रहें (सु.चि.अ. ६)। **(४) मूत्ररोग दोष में आंवला के रस का प्रयोग-** अच्छी तरह कूट, पीसकर आंवला का रस एक कुड़व (२५० ग्राम) निकालकर मूत्र दोष से पीड़ित व्यक्ति पान करे (सु.उ.अ.५८)।

(१) कास में आंवला का प्रयोग- कास से पीड़ित व्यक्ति आंवला के चूर्ण का क्षीर पाक (दूध में पकाकर) तथा घृत मिलाकर सेवन करे (वाग्भट चि.अ.२)। **(२) प्रमेह में आमलक का प्रयोग-** प्रमेह में आंवला के रस का प्रयोग करे (वा.चि.अ.१२)।

(१) रक्तपित्त में आंवला का प्रयोग- आंवला फल को पकाकर तथा महीन पीठी बनाकर सेवन करने से नासिका से निकलते हुए खून को रोक देता है जैसे पुल जल के वेग को रोक देता है अथवा सिर पर लेप करने से रक्त पित्त के वेग को रोक देता है (चक्र.रक्त.चि.)। **(२) पित्त शूल में आंवला का प्रयोग-** पैत्तिक शूल में आंवला के रस को शक्कर मिलाकर पान करे। यह शीघ्र ही पित्तजन्य शूल को नष्ट करता है (चक्र. शूल चि.)। **(३) शीत पित्त में आमलक का प्रयोग-** शीत पित्त में गुड़ के साथ आंवला का प्रयोग करे (चक्र.उदर चिकित्सा)।

(१) मूत्रग्रह में आमलक का प्रयोग- मूत्र निग्रह में (मूत्र रुकने पर) आंवला कल्क से वस्ति भाग पर लेप करे। इससे शीघ्र ही मूत्रग्रह शान्त होता है (भाव प्रकाश)। **(२) योनि दाह में आंवला का प्रयोग-** योनिदाह में आंवला के रस में मिश्री मिलाकर हमेशा पान करे (भा.प्रका.योनिदाह चि.)।

(१) वातज छर्दि (वमन) में आंवला का प्रयोग- आंवला के रस के साथ चन्दन को घिस कर तथा मधु मिलाकर गुटिका बनावे। यह गुटिका चाटने से वमन अवश्य ही शान्त होता है (हा.चि.अ.१३)। **(२) शिर के क्षत होने पर आंवला के रस का प्रयोग-** आंवला के फल को पीस कर उसमें घी तथा मिश्री मिलाकर लेप करने से मस्तक क्षत तथा सिर की वेदना शान्त होती है (हा.चि.४२)।

(१) रक्त युक्त मूत्र कृच्छ्र में आंवला का प्रयोग- रक्तयुक्त मूत्र कृच्छ्र में आंवला का या गन्ना का रस मधु मिलाकर पान करे (वं.से. मूत्रकृच्छ्राधिकार:)। **(२) नवीन नेत्र प्रकोप (नेत्र की लालिमा) में आंवला फल का प्रयोग-** आंवला के फल का रस आँख में डालने से नवीन नेत्र कोप (आंख का आना) को नष्ट करता है। (बं.से.नेत्र चि.) **(३) बच्चों के विच्छि नामक रोग में आंवला का प्रयोग-** आंवला का चूर्ण आठ पल (४०० ग्रा) लेकर सात वार गोमूत्र में भावित करे। भावना देकर धूप में सुखा दे। इसके बाद बच्चों के विच्छि रोग में लेप करे। इससे विच्छि नामक रोग शान्त होता है (बं.से.बाल रोग.चि.)।

Constituents—Gallic acid, tannic acid, gum, sugar albumen, cellulose and mineral matter.

Action and uses—The fresh fruit is refrigerant, diuretic and laxative and is used in chronic constipation. The dried fruit is cooling stomachic and astringent; a powder of the fruit, nilotpala, kesara and rose water is used as a paste to the forehead in cephaḷagia. It is also applied to the pubes in irritability of the bladder and in retention of urine. With grapes and honey it is a favourite cooling drink for fever and diarrhoea. An extract, prepared from the wood is astringent like kaitho. Its branches put into muddy water render the latter clear. It is one of the ingredients in the preparation known as triphala. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 550-I).

आम्रः

Mangifera indica

आम्रः, चूतः, सहकारः। *Mangifera indica.*

रक्तपित्तकरं 'बालमापूर्णं' पित्तवर्द्धनम्। 'पक्वमाम्रं' जयेद्वायुं मांसशुक्रबलप्रदम्॥ (सू. २७ अ.)। चरकः॥ पित्तानिलकरं 'बालं' पित्तलं 'बद्धकेसरम्'। हृद्यं.वर्णकरं रुच्यं रक्तमांसबलप्रदम्॥ कषायानुरसं स्वादु वातघ्नं वृंहणं गुरु। पित्तावरोधि "सम्पक्व"माम्रं शुक्रविवर्द्धनम्॥ वृंहणं मधुरं बल्यं गुरु विष्टभ्य जीर्यति।" (सू. ४६ अ.)॥ सुश्रुतः॥ "बालं" कषायं कट्वम्लं रूक्षं वातास्रपित्तकृत्। "सम्पूर्ण"माम्रमम्लञ्च रक्तपित्तकफप्रदम्॥ हृद्यं वर्णकरं रुच्यं रक्तमांसबलप्रदम्। कषायानुरसं स्वादु वातघ्नं वृंहणं गुरु। पित्तावरोधि "सम्पक्व"माम्रं शुक्रविवर्द्धनम्। मधुरं वृंहणं बल्यं गुरु विष्टभ्य जीर्णकृत्॥ सहकाररसो हृद्यः सुरभिः स्निग्धरोचनः। त्वङ्मूलपल्लवं ग्राहि कषायं कफपित्तजित्॥ "पक्वाम्रं" सकषायाम्लं भेदनं कफवातजित्। हृद्यं वर्णकरं रुच्यं रक्तमांसबलप्रदम्॥ अथ क्षुद्राम्रगुणाः-कोशाम्रोऽम्लः कटुः पाके वीर्योष्णोऽथानिलापहः। कफपित्तकरो रुच्यः कुष्ठघ्नो रक्तशोधनः॥ अथ राजाम्रगुणाः-राजाम्रयुगलं चाम्लमुष्णवीर्यञ्च पित्तलम्। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ आम्रः कषायाम्लरसः सुगन्धिः कण्ठामयघ्नोऽग्निकरश्च बालः। पित्तप्रकोपानिलरक्तदोषप्रदः पटुत्वादिरुचिप्रदश्च॥ "बालं" पित्तानिलकफकरं तच्च "बद्धास्थि" तादृक् पक्वं दोषत्रितयशमनं स्वादुपुष्टिं गुरु च। धत्ते धातुप्रचयमधिकं तर्पणं कान्तिकारि ख्यातं तृष्णाश्रमशमकृतौ चूतजातं फलं स्यात्॥ अथ क्षुद्राम्रगुणाः-कोशाम्रमम्लमनिलापहरं कफार्त्तिपित्तप्रदं गुरु विदाहविशोफकारि। पक्वं भवेन्मधुरमीषदपारमम्लं पट्वादियुक्तरुचिदीपनपुष्टिबल्यम्॥ अथ राजाम्रगुणाः-राजाम्राः कोमलाः सर्वे कट्वम्लाः पित्तदाहदाः। सुपक्वाः स्वादुमधुराः पुष्टिवीर्यबलप्रदाः॥ राजनिघण्टुः॥ आम्रपुष्पगुणाः-आम्रपुष्पमतीसारकफपित्तप्रमेहनुत्। असृग्दुष्टिहरं शीतं रुचिकृद् ग्राहि वातलम्॥ बालाम्रगुणाः-आम्रं "बालं" कषायाम्लं रुच्यं मारुतपित्तकृत्। "तरुणन्तु" तदत्यम्लं रूक्षं दोषत्रयास्रकृत्॥ आम्रपेषिकागुणाः-आम्रमामं त्वचाहीनमातपेऽतिविशोषितम्॥ अम्लं स्वादु कषायं स्याद् भेदनं कफवातजित्॥ पक्वाम्रगुणाः- पक्वन्तु मधुरं वृष्यं स्निग्धं बलसुखप्रदम्। गुरु वातहरं हृद्यं वर्ण्यं शीतमपित्तलम्॥ कषायानुरसं वह्निश्लेष्मशुक्रविवर्द्धनम्। तदेव "वृक्षसम्पक्वं"

गुरु वातहरं परम्॥ मधुराम्लरसं किञ्चिद् भवेत् पित्तप्रकोपनम्। आम्रं "कृत्रिमपक्वन्तु" तद्भवेत् पित्तनाशनम्॥ रसस्याम्लस्य हीनन्तु माधुर्याच्च विशेषतः। उषितं तत्परं रुच्यं बल्यं वीर्यकरं लघु॥ शीतलं शीघ्रपाकि स्यात् वातपित्तहरं सरम्। तद्रसो गालितो बल्यो गुरुर्वातहरः सरः। अहृद्यस्तर्पणोऽतीव वृंहणः कफवर्द्धनः॥ "आम्रखण्डं" गुरु परं रोचनं चिरपाकि च। मधुरं बृंहणं बल्यं शीतलं वातनाशनम्॥ वृष्यं वर्णकरं स्वादु "दुग्धाम्रं" गुरु शीतलम्। वातपित्तहरं रुच्यं वृंहणं बलवर्द्धनम्॥ मन्दानलत्वं विषमज्वरञ्च रक्तामयं बद्धगुदोदरञ्च। आम्रातियोगान्नयनामयं वा करोति तस्मादति तानि नाद्यात्॥ एतदम्लाम्रविषयं मधुराम्लपरं न तु। मधुरस्य परं नेत्रहितत्वाद्या गुणा यतः॥ शुण्ठ्यम्भसोऽनुपानं स्यादाम्राणा"मति भक्षणे"। जीरकं वा प्रयोक्तव्यं सह सौवर्च्चलेन वा॥ आम्रावर्त्तलक्षणं-पक्वस्य सहकारस्य पटे विस्तारितो रसः। घर्मशुष्को मुहुर्दत्त आम्रावर्त्त इति स्मृतः॥ तद्गुणाः- आम्रावर्त्तस्तृषाच्छर्दिवातपित्तहरः सरः। रुच्यः सूर्यांशुभिः पाकाल्लघुश्च स हि कीर्त्तितः॥ आम्रबीजगुणाः-आम्रबीजं कषायं स्याच्छर्द्यतिसारनाशनम्। ईषदम्लञ्च मधुरं तथा हृदयदाहनुत्॥ आम्रपल्लवगुणाः-आम्रस्य पल्लवं रुच्यं कफपित्तविनाशनम्। भावप्रकाशः॥ आम्रास्थितैलगुणाः- आम्रतैलन्तु तुवरं स्वादु रूक्षञ्च तिक्तकम्। सुगन्धि मुखरोगस्य नाशनं कफवातनुत्॥ आम्रान्तस्त्वग्गुणाः- आम्रान्तस्त्वग् ग्राहिणी तु तुवरा दाहकारिणी। पित्तमेहकफानाञ्च नाशिनी योनिशुद्धिकृत्॥ आम्रमूलगुणाः-आम्रमूलन्तु तुवरं ग्राहि शीतं रुचिप्रदम्। सुगन्धि कफवातानां नाशनं परिकीर्त्तितम्॥ वृहन्निघण्टुरत्नाकरः॥

वैद्यके व्यवहारः- (१) घ्राणात् प्रवृत्ते रुधिरे आम्रास्थिरसः-"नस्यं तथाम्रास्थिरसः" (चि. ४ अ.)। (२) पित्तजवमने आम्रपत्रम्-"जम्वाम्रयोः पल्लवजं कषायं पिबेत् सुशीतं मधुसंयुतं वा" (चि. २३ अ.)। चरकः॥ (१) रक्तातिसारे आम्रत्वक्-"...आम्रार्जुनत्वचः। पीताः क्षीरेण मध्वाढ्याः पृथक् शोणितनाशनाः॥" (अतिसार-चि.)। (२) प्लीहोदरे पक्वाम्ररसः-"प्लीहव्युपरमो योगः पक्वाम्ररसोऽथवा समधुः" (प्लीह-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) मत्स्यभक्षणजे अजीर्णे आममाम्रम्-"आममाम्रफलं मत्स्ये" (म. ख. २य. भा.)। (२) मांसभोजनजे अजीर्णे आम्रबीजम्-"तद्बीजं पिशिते हितं" (म. ख. २य. भा.)। (३) अतिसारे आम्रमध्यत्वक्-"...तथा मध्यत्वगाम्रजा। अतिसारं व्यथादाहं हन्त्येवाशु न संशयः॥" (म.ख.१म.भा.) भावप्रकाशः॥ (१) पक्वातिसारे आम्रपल्लवम्-"नवचूतस्य पर्णानि कपित्थफलमेव च। पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन पक्वातिसारशान्तये॥" (अतिसार-चि.)। (२) शोथे रसालमूलम्- पूनर्णवापत्ररसालमूलं संक्षुद्य तोयार्मणशेषसिद्धम्। चतुर्थभागेन घृतं विपक्वं प्रस्थन्तु तत्कल्कपलाष्टकेन॥ संसेवितं वातवलासरोगान् सर्वांश्च शोथानपि दुस्तरांश्च। गुल्मोदरप्लीहगुदोद्भवांश्च निहन्ति वह्निं कुरुते हि पुंसाम्॥ (शोथ-चि.)। (३) बालानां मुखपाके आम्रसारः-"मुखपाके तु बालानामाम्रसारमयं रजः। गैरिकं क्षौद्रसंयुक्तं भेषजं सरसाञ्जनम्॥ (बालरोगाधिकारे)। वङ्गसेनः।

विविध भाषाओं में नाम- सं.- आम्रः, रसालः, सहकारः, पिकवल्लभः। हि.- आम। बं.- आम। म.- अम्बाः। गु.- आम्बो। ते.- मालिड़ि चेडडू। ते.- भामर। क.- मामिनवक्कानि। द्रा.- भांगाय, आम्वा। अ.- अम्बज। अं.- Mango tree (मैंगो ट्री)। ले.- Mangifera indica (मेनीफेरा इण्डिका)।

गुण-दोष–

चरक के अनुसार- बाल आम्र रक्तपित्तकारक तथा पित्तवर्द्धक है। पका आम आयु को बढ़ाने वाला तथा मांस, शुक्र एवं बल को देने वाला है (च.सू.अ.२७)।

सुश्रुत के अनुसार- बाल आम पित्त तथा वातवर्द्धक, तरुण आम पित्तकारक, हृदय को बल देने वाला, वर्ण कारक, रुचिकारक, रक्त, मांस तथा बलवर्द्धक, कषाय तथा मधुर रस वाला, वातनाशक एवं गुरु है और पका हुआ आम पित्त को शान्त करने वाला, बलवर्द्धक, मधुर, वर्णकारक, भारी, विष्टम्भकारक होते हुए पचने वाला है (सु.सू.अ.४६)।

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- बाल आम्र कषाय रस तथा मधुर रसानुगामी है, रूक्ष है तथा वात रक्त एवं पित्त विकार को बढ़ाने वाला है। सम्पूर्ण (सभी) आम अम्ल रस प्रधान है तथा रक्त पित्त एवं कफ को बढ़ाने वाला है। हृद्य है, वर्णकारक है, रुचिकारक है तथा रक्त, मांस एवं बल को बढ़ाने वाला है। यह कषाय रस युक्त मधुररसानुगामी, वातनाशक, मांसवर्द्धक, भारी, पित्त को रोकने वाला होता है। पका हुआ आम रक्त तथा शुक्र को बढ़ाने वाला है। यह स्वादिष्ट है, मांसवर्द्धक है, बल वर्द्धक है, भारी है तथा विष्टम्भक होते हुए भी पाचन करने वाला है। पके आम का रस हृदय को बल देने वाला, सुगन्धित, स्निग्ध एवं रुचिकर है। आम के मूल, त्वचा तथा पल्लव ग्राही है, कषाय रस है तथा कफ तथा पित्त को दूर करता है। पका हुआ आम कषाय रस युक्त अम्लरस वाला होता है और यह भेदन करने वाला तथा कफ एवं वात को दूर करता है, हृद्य है, वर्णकारक है, रुचिकर है तथा रक्त, मांस एवं बल को बढ़ाने वाला है। **क्षुद्राम्र (छोटे-छोटे आम) के गुण**- कोशाम्र (क्षुद्राम्र) अम्ल रस प्रधान पाक में कटु तथा उष्ण वीर्य है और वात रोग को नष्ट करता है, कफ तथा पित्त को बढ़ाने वाला है, रुचिकारक है, कुष्ठरोग का नाश करने वाला तथा रक्त शोधक है। **राजाम्र के गुण**- दोनों प्रकार के राजाम्र अम्ल रस प्रधान तथा उष्ण वीर्य हैं और पित्तकारक हैं।

भावप्रकाश के अनुसार- आम कषाय तथा अम्ल रस प्रधान है तथा सुगन्धित है। बालाम्र कण्ठ रोग का नाश करता है तथा जाठराग्निवर्द्धक है और पित्त प्रकोपक एवं वात-रक्त-दोष कारक है, कटु तथा रुचि कारक है। बाल आम्र पित्त, वात तथा कफ कारक है तथा तरुण आम उसी प्रकार पित-वात एवं कफ कारक है। पका हुआ आम तीनों दोषो को शान्त करने वाला, स्वादिष्ट है, पुष्टिकारक है, भारी है, धातुओं को अधिक बढ़ाता है, तृप्तिकारक है, कान्ति वर्द्धक है। सभी प्रकार के आम प्यास तथा श्रम के शामक होते हैं।

राजनिघण्टु के अनुसार- क्षुद्राम के गुण- कोशाम्र (क्षुद्राम्र) अम्ल रस प्रधान, वात को दूर करने वाला, कफ विकार तथा पित्त को बढ़ाने वाला, गुरु, विदाह तथा शोथ को उत्पन्न क़रने वाला होता है। पका हुआ कोशाम्र मधुर रस प्रधान, थोड़ा अम्ल होता है और सेन्धा नमक आदि मिलाने पर रुचि कारक, जाठराग्नि-दीपक, पुष्टिकारक तथा बल कारक होता है। **राजाम्र के गुण**- सभी राजाम्र कोमल, कटु तथा अम्ल रस प्रधान, पित्त तथा दाह को उत्पन्न करने वाले हैं। पके हुए राजाम्र स्वादिष्ट एवं मधुर होते हैं और पुष्टि, वीर्य तथा बल को देने व.ले हैं।

भावप्रकाश के अनुसार- आम्र पुष्प के गुण-. आम्र के पुष्प (मोजर) अतिसार, कफ विकार, पित्त विकार तथा प्रमेह को दूर कता है, रक्त विकार तथा दृष्टि विकार को दूर करता है, शीतल है, रुचि कारक है, ग्राही है तथा वात कारक है। **बाल आम्र के गुण**- बाल आम (टिकोरा आम) कषाय तथा आम रस प्रधान है, रुचिकारक है तथा वात तथा पित्त को उत्पन्न करने वाला है। तरुण (कच्चा आम) अत्यधिक अम्ल रस वाला, रूक्ष, तीनों दोष (वात-पित्त-कफ) तथा रक्त क़ो उत्पन्न करने वाला है। **आम्र पेषिका का गुण**- त्वचारहित कच्चा आम

अम्ल (खट्टा) होता है। धूप में सुखाया हुआ कच्चा आम अम्ल रस प्रधान, स्वादिष्ट तथा कषाय रस वाला होता है और दस्तावर तथा कफ-वात को दूर करता है। **पके हुए आम के गुण**- पका हुआ आम मधुर रस प्रधान, वीर्यवर्द्धक, स्निग्ध तथा बल एवं सुख को देने वाला है, गुरु है, वात नाशक है, हृदय को बल देने वाला है, शरीर के रूप को बढ़ाने वाला है, शीतल है और पित्त को शान्त करने वाला है, कषाय रसवाला, अग्नि वर्द्धक, कफ कारक तथा वीर्य वर्द्धक है। वही आम वृक्ष के ऊपर पका हुआ गरिष्ठ तथा उत्तम वात नाशक होता है, थोड़ा मधुर एवं अम्ल रस वाला होता है तथा पित्त को प्रकुपित करता है। कृत्रिम औषध आदि के द्वारा पकाया हुआ आम पित्त नाशक होता है, अम्ल रस रहित होता है तथा अधिक मीठा होता है। पका हुआ वासी आम अधिक रुचिकर, बलकारक, वीर्यवर्द्धक, हल्का, शीतल, शीघ्र पचने वाला, वात-पित्त-नाशक एवं दस्तावर होता है। वासी आम का निचोड़कर निकाला हुआ रस बलकारक, भारी, वातनाशक तथा दस्तावर है, अहृद्य, अधिक तृप्तिकर, मांसवर्द्धक तथा कफ वर्द्धक है। काटा हुआ आम (आम का खण्ड) गुरु, उत्तम रेचक तथा देर से पचने वाला है और मधुर, मांस वर्द्धक, वीर्य वर्द्धक, बल कारक, शीतल तथा वातनाशक है, वर्ण कारक है तथा स्वादिष्ट है। दूध में मिलाया हुआ आम गुरु, शीतल, वात-पित्तनाशक, रुचिकारक, मांसवर्द्धक तथा बलवर्द्धक है। अधिक आम का सेवन जाठाराग्नि को मन्दन करता है, विषम ज्वर को उत्पन्न करता है, रक्त विकार उत्पन्न करता है तथा बद्धगुदोदर रोग उत्पन्न करता है और नेत्र रोग को उत्पन्न करता है। अत: आम का अधिक सेवन न करे। यह विचार अम्ल आम सेवन करने के सम्बन्ध में है। मधुराम्ल आम सेवन के सम्बन्ध में नहीं है; क्योंकि मधुर रस वाला पदार्थ उत्तम नेत्रहितकारक आदि गुण वाला है। आम को अधिक भक्षण करने पर सोंठ के साथ पकाकर जल सेवन करना अनुपान में बताया है अथवा आम अधिक भक्षण करने पर जीरा का प्रयोग करे अथवा सैन्धव नमक के साथ प्रयोग करे। **आम्रावर्त (आमावट) के लक्षण**- पके हुए आम के रस को कपड़ा के ऊपर फैला कर धूप में सुखाकर तथा बार-बार रस को फैलाकर एवं सुखाकर जो तैयार किया जाता है उसे आम्रावी (आमावट) कहते हैं। **आम्रावर्त के गुण**- आमावट प्यास, वमन तथा वात-पित्त को दूर करता है और विरेचक है। यह रुचि कारक है और सूर्य के किरणों से परिपक्व होने के कारण लघु (हल्का सुपच) होता है। **आम के बीज के गुण**- आम का बीज कषाय रस प्रधान वमन तथा अतिसार का नाश करने वाला, थोड़ा अम्ल, मधुर है तथा हृदय के दाह को दूर करता है। **आम्र पल्लव के गुण**- आम का पल्लव रुचिकारक तथा कफ विकार एवं पित्त विकार को नष्ट करता है।

वृहन्निघण्टु रत्नाकर के अनुसार-आम की गुठली के तैल का गुण- आम की गुठली का तैल कसैला, स्वादिष्ट, रुचिकारक, तिक्त रस प्रधान, सुगन्धित, मुखरोग का नाश करने वाला तथा कफ विकार एवं पित्त विकार को दूर करता है। **आम फल के अन्दर की त्वचा के गुण**- आम के अन्दर की त्वचा ग्राही, कसैला तथा दाह कारक है, पित्त विकार, प्रमेह तथा कफ विकार का नाश करने वाली और योनि शोधक है। **आम्र मूल के गुण**- आम का मूल कषाय रस वाला, ग्राही, शीतल, रुचिप्रद, सुगन्धित है तथा कफ विकार एवं पित्त विकार का नाश करने वाला कहा गया है।

आम का वैद्यक शास्त्र में प्रयोग-

(१) नाक से रक्त निकलने पर आम्र के अस्थि के रस का प्रयोग- नाक से रक्त निकलने पर आम्र के अस्थि (गुठली) के रस का प्रयोग करने पर नासा रक्तस्राव रुक जाता है (च.चि.अ.४)। **(२) पित्त वमन में आम के पत्तों का प्रयोग**- जामुन तथा आम के पल्लव के कषाय को शीतल कर तथा मधु मिलाकर पित्त वमन में पान करे (च.चि.अ.२३)।

(१) रक्तातिसार में आम के छाल का प्रयोग- आम तथा अर्जुन वृक्ष की छाल के चूर्ण का मधु मिलाकर एक साथ या अलग-अलग दूध के साथ प्रयोग करने से रक्तातिसार नष्ट होता है (चक्रदत्त अतिसार चि.)। **(२) प्लीहोदर में पके आम के रस का प्रयोग**- पके आम के रस को मधु मिला कर पान करने से प्लीहोदर रोग शान्त होता है (चक्र.प्लीहोदर चि.)।

(१) मत्स्य भक्षणजन्य अजीर्ण में कच्चे आम का प्रयोग- मछली भक्षण से अजीर्ण रोग में कच्चे आम का प्रयोग अजीर्ण को दूर करता है (भा.पू.म.ख.य.भा.)। **(२) मांस भक्षणजन्य अजीर्ण में आम के बीज का प्रयोग**- मांस भक्षणजन्य अजीर्ण में आम का बीज हितकर होता है (भा.म.ख.२य.भा.)। **(३) अतिसार में आम के अन्तःत्वक् का प्रयोग**- आम के अन्दर की छाल के चूर्ण का शहद के साथ सेवन करने से अतिसार की व्यथा तथा दाह शान्त होते हैं, इसमें संदेह नहीं है (भा.म.ख.१म.भा.)।

(१) पक्वातिसार में आम्र पल्लव का प्रयोग- नवीन आम के पत्तों को तथा कैथ के फल को चावल के धोअन के साथ पीस कर पक्वातिसार की शान्ति के लिए पान करे (बंगसेन अतिसार चि.)। **(२) शोथ में आम के मूल का प्रयोग**- पुनर्नवा का पत्ता तथा आम के मूल की छाल को कूट कर तथा एक अर्मण जल में पकाकर उसके चौथाई भाग शेष क्वाथ के साथ उसी का कल्क आठ पल (४०० ग्राम) मिलाकर पकाया हुआ घृत सेवन करने से वात-कफ रोगों को नष्ट करता है तथा सभी प्रकार के भयंकर शोथ रोग, गुल्म रोग, उदर रोग तथा अर्श रोग को नष्ट करता है ओर मन्दाग्नि पुरुषों के जाठाराग्नि को प्रदीप्त करता है। **(३) बालकों के मुख पाक में आम के सार का प्रयोग**- बालकों के मुख पाक में आम के सार का चूर्ण, शुद्धगेरु, रसाञ्जन तथा शहद मिलाकर लेप करे (बंगसेन बालरोगाधिकार)।

Constituents—The dried unripe peeled fruit contains water 21 p.c., watery extract 61.5 p.c., cellulose 5 p.c., insoluble ash 1.5, soluble ash 1.9. The soluble ash contains alkalies as potash 1/2, tartaric and citric acids 7, and malic acid 12.6. The ripe fruit contains yellow colouring matter, chlorophyll product, soluble in ether, bisulphide of carbon and benzol, less readily soluble in alcohol. The bark contains tanin. The kernel contains gallic acid and tannin, fat, sugar, gum and ash.

Physiological action—The bark is astringent and tonic. The ripe fruit is invigorating, refreshing and nutrient also somewhat laxative. The unripe fruit is acid, astringent and antiscorbutic. Ambosi is a valuable antiscorbutic owing to its containing citric acid. The ashes of the leaves are applied to burns and scalds. Tender leaves dried and made into a powder are used in Diabetes. The kernel is astringent and anthelmintic. Amba no chik or the gum resin, mixed with lime juice, is used locally in scabies. The bark is astringent anthelminitic and used in nasal Catarrh and for Lumbrici. As an astringent it is given in Diarrhoea, also to check Haemorrhages from the nose, stomach, intestines, uterus and lungs. It also checks profuse muco-purulent discharges as Leucorrhoea, Gonorrhoea & c. (*Materia Medica of India*—K. N. Khory, Part II., p. 164).

आरग्वधः

Casia fistula

आरग्वधः, राजवृक्षः, सम्पाकः। *Casia fistula.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा-"स्वर्णपुष्प:", "दीर्घफल:"। गुणप्रकाशिका संज्ञा- "कण्डूघ्न:", "ज्वरान्तक:", "कुष्ठसूदन:", "रेचन:"। आरग्वधो रसे तिक्तो गुरूष्ण: क्रिमिशूलनुत्। कफोदरप्रमेहघ्न: कृच्छ्रगुल्मत्रिदोषजित्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टु:॥ आरग्वधोऽतिमधुर: शीत: शूलापहारक:। ज्वरकण्डूकुष्ठमेहकफविष्टम्भनाशन:॥ राजनिघण्टु:॥ आरग्वधो गुरु: स्वादु: शीतल: स्रंसनो गुरु:। ज्वरहृद्रोगपित्तास्रवातोदावर्त्तशूलनुत्॥ तत्"फलं" स्रंसनं रुच्यं कुष्ठपित्तकफापहम्। ज्वरे तत् सततं पथ्यं कोष्ठशुद्धिकरं परम्॥ भावप्रकाश:॥ राजवृक्षोऽधिक: पथ्य: मृदुर्मधुरशीतल:। त"त्फलं" मधुरं वृष्यं वातपित्तहरं सरम्॥ राजवल्लभ:॥

वैद्यके व्यवहार:- (१) ज्वरे आरग्वधफलम्-"आरग्वधं वा पयसा मृद्वीकानां रसेन वा। .. ज्वरित: पिबेत्।" (चि. ३ अ.)। (२) रक्तपित्ते आरग्वधफलम्-"...फलान्यारग्वधस्य वा। विरेचनं प्रयुञ्जीत प्रभूतमधुशर्करम्॥" (चि. ४ अ.)। (३) पित्तोदरे आरग्वधफलम्-"...शृतेनारग्वधेन वा। ...पित्तोदरं जयेत्॥" (च. १८ अ.)। (४) कामलायाम् आरग्वधफलम्- "आरग्वधं रसेनेक्षोर्विदार्यामलकस्य च। ...पिबैन्ना कामलापहम्॥" (चि. २० अ.)। (५) कुष्ठे आरग्वधपत्रम्- "...राजवृक्षपत्राणि। पिष्ट्वा ...चतुर्विध: कुष्ठनुल्लेप:॥" (चि. ७ अ.। (६) विसर्पे आरग्वधपत्रम्- "आरग्वधस्य पत्राणि...। पृथगालेपनं कुर्यात्...॥" (चि. ११ अ.)। (७) ऊरुस्तम्भे शाकार्थम् आरग्वधपत्रम्- "शाकैरलवणैरद्याज्जलतैलोपसाधितै:। ...वेत्रारग्वधपल्लवै:॥" (चि. २७ अ.)। चरक:॥ (१) उपदंशे क्षतप्रक्षालनार्थम् आरग्वधपत्रम्- "...पत्राणि जात्यारग्वधयोस्तथा। प्रक्षालने प्रयोज्यानि...॥" (चि. १९ अ.)। (२) हारिद्रचमेहे आरग्वध:- "हरिद्रामेहिनं राजवृक्षकषायं" (चि. ११ अ.)॥ सुश्रुत:॥ (१) कफविद्रधौ आरग्वधपत्रम्- "आरग्वधाम्बुना धौतं" (चि. १३ अ.)। (२) कफजारोचके आरग्वध:-"...दीप्यकारग्वधोदकम्" (चि. ५ अ.)। (३) राजयक्ष्मणि आरग्वध:- "...विरेचनं दद्यात् त्रिवृच्छ्यामानृपद्रुमान्। शर्करामधुसर्पिर्भि: पयसा तर्पणेन वा॥" (चि. ५ अ.)। (४) कुष्ठे आरग्वधमूलम्- "आरग्वधस्य मूलेन शतकृत्वा शृतं घृतम्। पिबेत् कुष्ठं जयत्याशु भजन् सखदिरं जलम्॥" (चि. १९ अ.)। वाग्भट:॥ (१) आमवाते आरग्वधपत्रम्- "आरग्वधस्य पत्राणि भृष्टानि कटुतैलत:। आमघ्नानि नर: कुर्यात् सायं भक्तावृतानि च॥" भावप्रकाश:॥ (१) पित्तज्वरे आरग्वध:-"द्राक्षारग्वधयोश्चापि" (ज्वर-चि.)। (२) गण्डमालायाम् आरग्वध:- "आरग्वधशिफां क्षिप्रं पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा। सम्यङ्नस्यप्रलेपाभ्याङ्गण्डमालाहरा: परा:॥" (गण्डमाला-चि.)। चक्रदत्त:॥ दद्रुकिटिमकुष्ठेषु आरग्वध-पत्रम्-"आरग्वधस्य पत्राणि चारणालेन लेपयेत्। दद्रुकिटिमकुष्ठानि हन्ति सिध्मानमेव च॥" वङ्गसेन:॥

विविध भाषाओं में नाम-

सं- आरग्वध:, राजवृक्ष:, सम्पाक:, चतुरङ्गुल:, कृतमाल:, आरेवत:, व्याधिघात:, कीर्णकारा:, दीर्घफल:, स्वर्णाङ्ग:। हि.- अमलतास, धनवहेड़ा, स्टेनालु, किरमाला, बानर काकरी। बं.- सोन्दाल, सुन्दर, रखालनडी। म.- वाईवा, वाहग्याचे-जाड़। क.- हेगकि, कवेकमर। ते.- रेल कायलु, सुवटनम्। गु.- गरभालो। मा.- फिरमाले। द्रा. - कोन्नेमरम। फा.- ख्वावेचम्बर, अं.- ख्मारे शम्बर। अं.- Pudding Tree (पुडिङ्ग ट्री)। The Indian Laburnum (दी इन्डियन लेवर्नम), The Purging Casia (दी पर्जिङ्ग केशिया)। ले.- Catharto Carpus Fistula (कथार्टो कार्पस फिष्टुला)।

परिचय ज्ञापिका संज्ञा- स्वर्ण पुष्प, दीर्घ फल।

गुण प्रकाशिका संज्ञा- कण्डूघ्न, ज्वरान्तक, कुष्ठ सूदन, रेचन।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- आरग्वध रस में तिक्त रस प्रधान, गुरु तथा उष्ण है और क्रिमि रोग तथा शूल रोग को दूर करता है, कफ विकार, उदर विकार तथा प्रमेह को नष्ट करता है और मूत्रकृच्छ्र, गुल्म रोग तथा त्रिदोष को जीत लेता है।

राज निघण्टु के अनुसार- अमलतास अधिक मधुर तथा शीतल है तथा शूल को दूर करता है और ज्वर, कण्डू, कुष्ठ रोग, प्रमेह, कफ विकार एवं विष्टम्भ (कब्ज) का नाश करता है।

भाव प्रकाश के अनुसार- अमलतास गुरु, स्वादिष्ट, शीतल, रेचक तथा भारी है। यह ज्वर रोग, हृदय रोग, पित्त विकार, रक्त विकार, वात रोग, उदावर्त रोग तथा शूल को दूर करता है। **अमलतास का फल-** रेचक, रुचि कारक है, कुष्ठ रोग, पित्त विकार एवं कफ विकार को नष्ट करता है। ज्वर में यह निरन्तर पथ्य है और उत्तम कोष्ठ शोधक है।

राजवल्लभ के अनुसार- राजवृक्ष (अमलतास), अधिक पथ्य है, मृदु (मुलायम) है, मधुर है तथा शीतल है। अमलतास का फल मधुर है, वीर्यवर्द्धक है तथा वात पित्त को दूर करने वाला एवं रेचक है।

वैद्यकशास्त्र में आरग्वध का प्रयोग-

(१) ज्वर में अमलतास के फल का प्रयोग- अमलतास का दूध के साथ या मुनक्का के रस के साथ ज्वर से पीड़ित व्यक्ति पान करे (चरक चि. अ. ३)। **(२) रक्त पित्त में आरग्वध का प्रयोग-** रक्त पित्त में अमलतास के फल का विरेचन करे। इसका अधिक मात्रा में मधु तथा शक्कर मिलाकर प्रयोग करे (च.चि.अ. ४)। **(३) पित्तोदर रोग में आरग्वध के फल का प्रयोग-** अमलतास फल के क्वाथ का सेवन कराकर पित्तरोग को दूर करे (च.चि.अ.१८)। **(४) कामलारोग में आरग्वध के फल का प्रयोग-** अमलतास फल के क्वाथ या चूर्ण का गन्ना के रस, विदारी कन्द के रस तथा आंवला के रस के साथ कामला रोग को दूर करने के लिए पान करे (च.चि.अ.२०)। **(५) कुष्ठरोग में अमलतास के पत्र का प्रयोग–** अमलतास के पत्तों को पीसकर चारों प्रकार के कुष्ठ रोग में लेप करे (च.चि.अ.७)। **(६) विसर्प में अमलतास के पत्तों का प्रयोग-** अमलतास के पत्तों को पीस कर विसर्प के ऊपर अलग-अलग लेप करे (च.चि.अ.११)। **(७) उरुस्तम्भ में शाकार्थ आरग्वध पत्र का प्रयोग-** वेंत तथा अमल-तास के पत्तों का शाक बिना नमक का जल तथा तैल में सिद्ध कर सेवन करे (च.चि.अ.२७)।

(१) उपदंश में क्षत के प्रक्षालन के लिए अमलतास पत्र के क्वाथ का प्रयोग- चमेली तथा अमल तास के पत्तों के क्वाथ से उपदंश रोग में प्रक्षालन करे (सु.चि.अ.१९)। **(२) आरग्वध का हरिद्रामेह में प्रयोग-** हरिद्रामेह के रोगी को अमलतास के पत्तों का क्वाथ (या फल का) पान कराये (सु.चि.अ.११)।

(१) कफज विद्रधि में आरग्वध पत्र के क्वाथ का प्रयोग– कफज विद्रधि में आरग्वध के पत्र क्वाथ से प्रक्षालन करे (वाग्भट चि.अ.१३)। **(२) कफज अरोचक में आरग्वध का प्रयोग–** कफज अरोचक में अजवायन तथा अमलतास फल के क्वाथ का पान कराये (वा.चि.अ.५)। **(३) राजयक्ष्मा में आरग्वध का प्रयोग-** काला निशोथ तथा अमलतास के चूर्ण को शर्करा, मधु एवं घृत के साथ या दूध के साथ अथवा तर्पण के साथ विरेचन

दे (वा.चि.अ.५)। **(४) कुष्ठ में आरग्वध के मूल का प्रयोग**- अमलतास के मूल के कल्क तथा क्वाथ के साथ सौ बार सिद्ध किया हुआ घृत का पान करे और खैर के क्वाथ का पान कराये। यह कुष्ठ रोग को दूर करता है (वा.चि.अ.१९)।

(१) आमवात में आरग्वध के पत्र का प्रयोग- अमलतास के पत्तों को सरसों के तैल में भून ले और उसको सायंकाल भक्त से ढक दे। यह आम दोष को नष्ट करता है (भावप्रकाश)।

(१) पित्तज्वर में आरग्वध का प्रयोग- पित्तज्वर में मुनक्का तथा आरग्वध का फल सेवन करे (चक्रदत्त ज्वर चि.)। **(२) गण्डमाला में आरग्वध का प्रयोग**- आरग्वध की जड़ को चावल के धोअन के साथ पीसकर अच्छी तरह नस्य लेना, लेप करना तथा मालिस करना गण्डमाला को दूर करता है (चक्र. गण्डमाला चि.)।

(१) दाद, किट्टिम तथा कुष्ठरोग में आरग्वध के पत्र का प्रयोग- आरग्वध के पत्तों को आरनाल (काञ्जी) के साथ पीसकर लेप करे। यह दाद, किट्टिम तथा कुष्ठ रोग को नष्ट करता है और सिध्म रोग को भी नष्ट करता है (बंगसेन)।

Constituents—The pulp consists of sugar 60 p.c. mucilage, astringent matter, gluten, colouring matter pectin, calcium oxalate and ash.

Actions and uses—Laxative—pulp seldom used alone, as it causes colic, griping and flatulence; uses as an adjunct to other purgatives. When given for a long time it tinges the urine dark-brown. The pulp is employed to adulterate essence of coffee. The seeds are emetic.

Therapeutics—The bark and leaves mixed with oil, are applied the Pustules. The root is a strong purgative. The pulp recommended to persons of dyspeptic habits. Dose of the pulp as a laxative, 30 to 80 grs. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 200).

आर्द्रकम्

Zingiber officinale

आर्द्रकम्, शृङ्गवेरम्। शुण्ठ्या नाम- "विश्वौषधं", "नागरं", "विश्वभेषजम्"। *Zingiber officinale.*

कटूष्णमार्द्रकं हृद्यं विपाके शीतलं लघु। दीपनं रुचिदं शोफकफकण्ठामयापहम्॥ कफानिलहरं स्वर्य्यं विबन्धानाहशूलजित्। कटूष्णं रोचनं वृष्यं हृद्यं चैवाऽऽर्द्रकं स्मृतम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टू राजनिघण्टुश्च॥ स्निग्धोष्णा कटुका शुण्ठी वृष्या शोथकफारुचीः। हन्ति वातोदरश्वासपाण्डुश्लीपदनाशिनी॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ शुण्ठी कटूष्णा स्निग्धा च कफशोफा-निलापहा। शूलविबन्धोदराध्मानश्वासश्लीपदहारिणी॥ राजनिघण्टुः॥ शुण्ठी रुच्यामवातघ्नी पाचनी कटुका लघुः। स्निग्धोष्णा मधुरा पाके कफवातविबन्धनुत्॥ वृष्या स्वर्य्या वमिश्वास-शूलकासहृदामयान्। हन्ति श्लीपदशोथार्शः आनाहोदरमारुतान्॥ आग्नेयगुणभूयिष्ठात् तोयांशं परिशोष्य यत्। सङ्गृह्णाति मलं तत्तु ग्राहि शुण्ठ्यादयो यथा॥ विबन्धभेदिनी या तु सा कथं ग्राहिणी भवेत्। शक्तिर्विबन्धभेदे स्यात् यतो न मलपातने॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः- (१) मूत्रमार्गात् सरुजं रक्तस्रुतौ नागरम्-"नागरकैः शृतं वा" (चि. ४ अ.)।

(२) अर्शःसु शुण्ठी-"सनागरं चित्रकं वा सीधुयुतं प्रयोजयेत्" (चि. ९ अ.)। (३) अतिसारे शुण्ठी-"ह्रीवेरशृङ्गवेराभ्यां पक्वं वा पाययेज्जलम्" (चि. १० अ.)। (४) क्षतक्षीणे शुण्ठी- "...कल्पोऽथ शुण्ठीमधुकयोस्तथा" (च. १६ अ.)। (५) शोथे आर्द्रकम्- "प्रयोजयेदार्द्रक-नागरं वा तुल्यं गुडेनार्द्धपलाभिवृद्ध्या" (चि. १७ अ.)। (६) उदररोगे आर्द्रकम्- "शृङ्गवेरार्द्रकरसः पाने क्षीरसमो मतः। तैलं रसेन तेनैव सिद्धं दशगुणेन वा॥" (चि. १८ अ.)। (७) आमपाचनार्थं शुण्ठी-"नागरञ्चोष्णवारिणा" (चि. १९ अ.)। चरकः॥ (१) कर्णशूले आर्द्रकम्- "कर्णशूले तु शृङ्गवेररसं तैलमधुसंसृष्टं सैन्धवोपहितं सुखोष्णं कर्णे दद्यात्" (चि. ५ अ.)। (२) कामलायां शुण्ठी- "...कामलिनां ...हिता। ...सगुडा शुण्ठी"। (उ. ४४ अ.)। (३) गुल्मे शुण्ठी-"पिबेत् त्रिवृन्नागरं वा"। (उ. ४२ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) सन्निपातज्वरे आर्द्रकम्-"आर्द्रकस्वरसोपेतं सैन्धवं कटुकत्रयम्। आकण्ठं धारयेदास्ये निष्ठीवेच्च पुनः पुनः॥" (ज्वर-चि.)। (२) अतिसारे आर्द्रकम्- "कृत्वालवालं सुदृढं पिष्टैर्वामलकैर्भिषक्। आर्द्रकस्वरसेनाशु पूरयेन्नाभिमण्डलम्॥ नदीवेगोपमं घोरं अतिसारं निरोधयेत्।" (अतिसार-चि.)। (३) ग्रहण्यां शुण्ठी-"घृतं नागरकल्केन सिद्धं वातानुलोमनम्। ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं प्लीहकासज्वरापहम्॥" (ग्रहणी-चि.)। (४) अग्निसन्दीपनार्थम् आर्द्रकम्- "भोजनाग्रे सदा पथ्यं जिह्वाकण्ठविशोधनम्। अग्निसन्दीपनं हृद्यं लवणार्द्रकभक्षणम्॥" (अग्निमान्द्य-चि.)। (५) कासे आर्द्रकम्-"स्वरसं शृङ्गवेरस्य माक्षिकेण समन्वितम्। पाययेत् श्वासकासघ्नं प्रतिश्यायकफापहम्॥" (कास-चि.)। (६) ऊरुस्तम्भे शुण्ठी-"...अथ नागरम्। ऊरुस्तम्भे पिबेन्मूत्रैर्दशमूलीरसेन वा॥" (ऊरुस्तम्भ-चि.)। (७) आमवाते शुण्ठी-"कर्षं नागरचूर्णस्य काञ्जिकेन पिबेत् सदा। आमवातप्रशमनं कफवातहरं परम्॥" (आमवात-चि.)। (८) हृद्रोगे शुण्ठी-"नागरं वा पिबेदुष्णं कषायञ्चाग्निवर्द्धनम्। श्वासकासानिलहरं शूलहृद्रोगनाशनम्॥" (हृद्रोग-चि.)। (९) शिरोरोगे शुण्ठी- "नागरकल्कमिश्रं क्षीरं नस्येन योजितं पुंसाम्। नानादोषोद्भूतां शिरोरुजां हन्ति तीव्रतराम्। (शिरोरोग-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) आमातिसारसम्भवायां पीडायां शुण्ठी-"चूर्णं किञ्चिद्घृताभ्यक्तं शुण्ठ्या एरण्डजैर्दलैः। वेष्टितं पुटपाकेन विपचेन्मन्दवह्निना॥ तत उद्धृत्य तच्चूर्णं ग्राह्यं प्रातः सितान्वितम्। तेन यान्ति शमं पीडा आमातिसारसम्भवा॥" (द्वि.ख. १म.अ.)। (२) आमवाते शुण्ठीपुटपाकः-"शुण्ठीकल्कं विनिक्षिप्य रसैरेरण्डमूलजैः। विपचेत् पुटपाकेन तद्रसः क्षौद्रसंयुतः॥ आमवातसमुद्भूतां पीडां जयति दुस्तराम्।" (द्वि.ख.१म.अ.)। (३) वृषणवाते आर्द्रकम्-"आर्द्रकस्वरसः क्षौद्रयुक्तो वृषणवातनुत्॥" (द्वि.ख. १म. अ.)। शार्ङ्गधरः॥ (१) विषमज्वरे शुण्ठी-"महाबलामूलमहौषधाभ्यां क्वाथो निहन्याद्विषमज्वरं हि। शीतं सकम्पं परिदाहयुक्तं विनाशयेत् द्वित्रिदिनप्रयोगात्॥" (म.ख. १ म. भा.)। (२) विसूचीकायां शुण्ठी- "बिल्वनागरनिःक्वाथो हन्याच्छर्दिविसूचीकाम्" (म.ख. द्वि.भा.)॥ (३) खर्जुरशृङ्गाटकातिभक्षणाज्जाते अतिसारे शुण्ठी- "खर्जुरशृङ्गाटकयोः प्रशस्तं विश्वौषधम्॥" (म.ख.द्वि.भा.)। (४) हिक्कायां शुण्ठी-"हिक्कार्त्तस्य पयश्छागं हितं नागरसाधितम्" (म.ख.द्वि.भा.)। (५) गुल्मे आर्द्रकम्- "सुवर्चिका टङ्कमिता तत्समानार्द्रिकाऽपि च। उभे भुञ्जीत युगपद् गुल्मामयनिवृत्तये॥" (म.ख.तृ.भा.)। (६) शीतपित्ते आर्द्रकम्-"आर्द्रकस्य रसः पेयः पुराणगुडसंयुतः। शीतपित्तापहः श्रेष्ठो वह्निमान्द्यविनाशनः॥" भावप्रकाशः॥

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– आद्रक के नाम– आर्द्रकम् , भद्रम् , शृङ्गवेरम् , विश्वौषधम् , नागरम् , विश्वभेषजम्। हि.– अदरक, आदी। बं.– आदा। म.– आले। तै.– अल्ल। द्रा.– इञ्मि। फा.– जञ्जवीलेतर। अ.– जञ्जवीले रतव। अं.– Ginger Root (जिञ्जर रूट)। ले.– Gingiber Officinale (जिञ्जिवेर आफिसिनेल)।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु एवं राज निघण्टु के अनुसार– अदरक कटुरसप्रधान, उष्ण, हृदय को बल देने वाला, विपाक में शीतल तथा लघु , जाठराग्नि दीपक एवं रुचिकारक है और शोथ, कफ विकार एवं कण्ठ रोग को दूर करता है। अदरक कफ एवं वात रोग को दूर करता है, स्वर को बल देता है, विबन्ध, आनाह एवं शूल को जीत लेता है। अदरक कटु तथा उष्ण है, वीर्यवर्द्धक है तथा हृदय के लिए हितकर है।

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार– सोंठ स्निग्ध, उष्ण, कटुरस-प्रधान एवं वीर्य वर्द्धक है और शोथ, कफ विकार तथा अरुचि को नष्ट करती है तथा वातोदररोग, श्वास, पाण्डु रोग एवं श्लीपद (फीलपांव-फाइलेरिया) का नाश करने वाली है।

राजनिघण्टु के अनुसार– सोंठ कटु रस प्रधान, उष्ण तथा स्निग्ध है और कफ विकार, शोथ तथा वात रोग को दूर करती है। इसके अतिरिक्त शूल, विबन्ध, उदररोग, आध्मान, श्वास रोग एवं श्लीपद का नाश करती है।

भावप्रकाश के अनुसार– सोंठ रुचिकारक, आमवातनाशक, पाचक, कटु रस प्रधान, लघु, स्निग्ध, उष्ण तथा पाक में मधुर है और कफ विकार, वात विकार तथा विबन्ध को दूर करती है, वीर्य वर्द्धक है, स्वर वर्द्धक है तथा वमन,. श्वास, शूल, कास एवं हृदय रोग, श्लीपद रोग, शोथ, अर्श, आनाह तथा उदर वात को नष्ट करती है; आग्नेय गुण प्रधान होने से जलीयांश को सुखाकर मल का ग्रहण करती है (बांधती है) अत: उसे ग्राही कहते हैं– जैसे सोंठ मल ग्राही है। जो द्रव्य विबन्ध का भेदन करता है वह ग्राही कैसे हो सकता है? शुण्ठी में मल का भेदन करने की शक्ति है, मल के पातन करने की शक्ति नहीं है।

वैद्यकशास्त्र में सोंठ का व्यवहार–

(१) मूत्र मार्ग से पीडायुक्त रक्त निकलने पर सोंठ का प्रयोग– मूत्र मार्ग से पीडायुक्त रक्त निकलने पर सोंठ के शृत क्वाथ का प्रयोग करें (च.चि.अ.४)। **(२) अर्श रोग में सोंठ का प्रयोग**– सोंठ तथा चित्रक के शृत क्वाथ का सीधु (काञ्जी) मिलाकर अर्श रोग में पान कराये (च.चि.अ.९)। **(३) अतिसार में सोंठ का प्रयोग**– हाऊवेर तथा अदरक के साथ पकाया हुआ जल का अतिसार में पान कराये (च.चि.अ.१०)। **(४) क्षत-क्षीण में सोंठ का प्रयोग**– सोंठ तथा मधु के कल्प का क्षत क्षीण रोग में पान कराये (च.चि.अ.१६)। **(५) शोथ में अदरक का प्रयोग**– शोथ रोग में अदरक या सोंठ के क्वाथ का समभाग गुड़ मिलाकर आधा पल प्रतिदिन बढ़ाते हुए पान कराये (च.चि.अ.१७)। **(६) उदर रोग में अदरक का प्रयोग**– उदर रोग में अदरक तथा सोंठ के क्वाथ का समभाग दूध मिलाकर पान कराना लाभदायक है अथवा उसी के दश गुने रस के साथ पकाये तेल का उदर रोग में प्रयोग करे (च.चि.अ.१८)। **(७) आम पाचन के लिए सोंठ का प्रयोग**– आम पाचन के लिए सोंठ के चूर्ण का गरम जल से सेवन करे (च.चि.अ.१९)।

(१) कर्ण शूल में अदरक का प्रयोग– कर्ण शूल में अदरक का रस, तैल तथा मधु एवं सेंधा नमक मिलाकर थोड़ा-थोड़ा गरम कान में छोड़े (सु.चि.अ.५)। **(२) कामला रोग में सोंठ का प्रयोग**– कामला रोग

में सोंठ का प्रयोग हितकर होता है। सोंठ का गुड़ के साथ प्रयोग करे (सू.उ.अ.४४)। **(३) गुल्म रोग में सोंठ का प्रयोग-** गुल्मरोग में निशोथ या सोंठ के चूर्ण का प्रयोग करे (सु.उ.अ.४२)।

(१) सन्निपात ज्वर में अदरक का प्रयोग- अदरक स्वरस के साथ सेन्धा नमक तथा कटुत्रय (सोंठ, पीपर, मरिच) का चूर्ण मिलाकर उससे कण्ठ पर्यन्त मुख में कवल (कुल्ला) धारण करे और बार-बार थूकता रहे (चक्र.ज्वर चि.४)। **(२) अतिसार में अदरक का प्रयोग-** चिकित्सक नाभि के चारों तरफ आंवला के पिट्ठी का मजबूत आल बाल (कियारी) बनाकर अदरक के स्वरस से शीघ्र ही भर दे। इससे यह नदी के वेग की तरह बहता हुआ भयंकर अतिसार रुक जाता है (चक्र.अति.चि.)। **(३) ग्रहणी में सोंठ का प्रयोग-** सोंठ के कल्क के साथ सिद्ध घृत वातानुलोमक है। यह ग्रहणी रोग तथा पाण्डुरोग का नाश करता है (चक्र.ग्र.चि.)। **(४) अग्नि संदीपन के लिए अदरक का प्रयोग-** सेन्धा नमक तथा अदरक को भोजन के पहले खाने से हमेशा पथ्य है तथा जिह्वा तथा कण्ठ का शोधन करता है, जाठराग्नि प्रदीप्त करता है और हृदय को बल देता है (चक्र.अग्निमान्द्य चि.)। **(५) कास रोग में अदरक का प्रयोग-** अदरक के रस का मधु के साथ मिलाकर श्वास-कास में पान कराये। यह श्वास-कास को नष्ट करता है और प्रतिश्याय एवं कफ विकार को दूर करता है (चक्र.कास चि.)। **(६) उरुस्तम्भ में सोंठ का प्रयोग-** ऊरुस्तम्भ रोग में सोंठ के चूर्ण या कल्क का गोमूत्र के साथ या दशमूल के क्वाथ या रस के साथ पान करे। यह प्रयोग ऊरुस्तम्भ रोग को नष्ट करता है (चक्र.ऊरुस्तम्भ चि.)। **(७) आमवात में सोंठ का प्रयोग-** सोंठ के चूर्ण का एक कर्ष (१० ग्राम) की मात्रा में काञ्जी के साथ हमेशा पान करे। यह आम वात को शान्त करता है तथा कफ वात को अच्छी तरह दूर करता है (चक्र. आमवात चि.)। **(८) हृदय रोग में सोंठ का प्रयोग-** सोंठ के चूर्ण का हृदय रोग मे पान करे या सोंठ के थोड़ा उष्ण कषाय का पान करे। यह जाठराग्नि को बढ़ाता है, श्वास-कास तथा वात विकार को दूर करता है और शूल तथा हृदय रोग का नाश करता है (चक्र. हृदय रोग चि.)। **(९) शिरोरोग में सोंठ का प्रयोग-** सोंठ के क़ल्क को दूध मैं मिलाकर नस्य लेने से अनेक दोषों के कारण उत्पन्न अति तीव्र शिरोरोग का नाश होता है (चक्र.शिरो रोग चि.)।

(१) आमातिसार से उत्पन्न पीड़ा में सोंठ का प्रयोग- सोंठ के चूर्ण को थोड़ा घी मिलाकर तथा एरण्ड के पत्तों में लपेट कर पुटपाक विधि के अनुसार मन्द आंच से पकावे। इसके बाद उस चूर्ण को लेकर तथा मिश्री मिलाकर प्रातः काल सेवन करें। इसके सेवन करने से आमातिसार से उत्पन्न पीड़ा शान्त हो जाती है (शार्ङ्गधर संहिता द्वि.ख.१म.अ.) **(२) आमवात में शुण्ठीपुट पाक-** सोंठ के कल्क को एरण्ड के मूल के रस के साथ मिलाकर तथा पुटपाक विधि से पकाकर उसके रस का सेवन करने से यह योग असह्य आम जन्य पीड़ा को जीत लेता है (शा.द्वि.ख.१म.अ.)। **(३) वृषण वात में अदरक का प्रयोग-** अदरक के रस का मधु मिलाकर सेवन करने से वृषण वात दूर होता है (शा.ख.म.१अ.)।

(१) विषम ज्वर में सोंठ का प्रयोग- महाबला की जड़ तथा महौषध (सोंठ) के क्वाथ का सेवन करने से विषम ज्वर नष्ट होता है। यह दाहयुक्त शीत ज्वर तथा सकम्प ज्वर का तीन दिन में नाश करता है। **(२) विसूचिका में सोंठ का प्रयोग-** बेल तथा नागर मोथा के क्वाथ का प्रयोग करने से वमन तथा विसूचिका नष्ट होते हैं (शा.म.द्वि.भा.)। **(३) खजूर तथा सिंघाड़ा को अधिक खाने से उत्पन्न अतिसार में सोंठ का प्रयोग-** खजूर तथा सिंघाड़ा खाने से उत्पन्न अतिसार में सोंठ के चूर्ण या कल्क का प्रयोग उत्तम होता है (म.ख.द्वि.भा.)। **(४) हिचकी रोग में सोंठ का प्रयोग-** हिचकी से पीडित व्यक्ति के लिए अदरक के कल्क के साथ सिद्ध बकरी का दूध हितकर है (म.ख.द्वि.भा.)। **(५) गुल्म में अदरक का प्रयोग-** सुवर्चिका (हुरहुर) एक टंक (तीन ग्राम) तथा अदरक तीन ग्राम इन दोनों को मिलाकर एक साथ गुल्म रोग की निवृत्ति के लिए भक्षण करे (म.ख.तृ.भा.)।

(६) शीत पित्त में अदरक का प्रयोग- अदरक के रस का पुराना गुड़ मिलाकर पान करें। यह शीत पित्त को दूर करता है तथा उत्तम अग्निमान्द्य नाशक है (भावप्रकाश)।

Constituents—A volatile oil 2 p.c., fat, a crude liquid oleo resin, gingerol or gingerin, mucilage, resin, starch 20 p.c.; ash 4 p.c.

Actions and uses—Dried ginger is aromatic, stimulant and carminative, produces a sensation of warmth at the epigastrium and expels flatus; as a carminative it is given in colic; as a masticatory in relaxed throat and to increase the saliva. Locally it is rubefacient, anodyne and sialogogue. When chewed fresh ginger is stomachic and digestive. The dry rhizome powdered and made into a paste with warm water is used as cataplasm or fomentations to the forehead in headaches, Neuralgia, Colic and toothache; also given in atonic Dyspepsia loss of appetite, to correct flatulence in Colic Diarrhoea, Chronic Bronchial Cough, Palpitation of the heart, Dropsy, Cholera and Tympanitis, and as a corrective to nauseous medicines and to check griping of purgatives. It is also used as a flavouring adjuvant to bitters. The juice is given as an adjuvant to laxatives, as castor oil; with garlic and honey it is used for Cough and Asthma. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 601).

आस्फोता

Echites dichotoma

आस्फोता। *Echites dichotoma.*

पूर्वाचार्यकृतवर्णनम्– "आस्फोता आफरमालीति लोके" शिवदासः। आस्फोता विषकुष्ठघ्नी। राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः-चिप्पे आस्फोतामूलम्-"चिप्पे सटङ्कनास्फोतामूललेपो नखप्रदः" (क्षुद्ररोग-चि.)। **चक्रदत्तः॥**

विविध भाषाओं में नाम– सं.- आस्फोटा, आस्फोता, वनोदूमक मल्लिका। हि.- जङ्गली वेला। अं.- Echites frutescens। ले.- Echites dichotoma (इचीटीस डिचोटोमा)।

गुण-दोष–

पूर्वाचार्यों का वर्णन किया गया है। आस्फोता आफरमाली है- यह लोक में प्रसिद्ध है (शिवदास)।

राजवल्लभ के अनुसार– आस्फोता विष तथा कुष्ठ का नाश करने वाला है।

वैद्यकशास्त्र में आस्फोता का प्रयोग–

चिप्प रोग में आस्फोता मूल का प्रयोग– चिप्प रोग में टंकण के साथ आस्फोता मूल का लेप नख को उत्पन्न करने वाला है (चक्र. क्षुद्ररोगाधिकार)।

इङ्गुदी

Balanites roxburghii

इङ्गुदी (दः)। *Balanites roxburghii, B. indica, B. egyptica.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा-"तीक्ष्णकण्टकः", "तैलफलः", "क्रोष्टुफलः", "पूतिगन्धः"। गुणप्रकाशिका संज्ञा-"अनिलान्तकः", "शूलारिः"। पूर्वाचार्यकृतवर्णनम्-"इङ्गुदी कण्टकीवृक्षः" (डल्हणः सु. टी. ४५ अ.)। इङ्गुदः कुष्ठभूतादिग्रहव्रणविषकृमीन्। हन्त्युष्णः श्वित्रशूलघ्नस्तिक्तकः कटुपाकवान्॥ भावप्रकाशः॥ इङ्गुदी मदगन्धी स्यात् कटूष्णा फेनिला लघुः। रसायनी हन्ति जन्तुवातामयकफव्रणान्॥ राजनिघण्टुः॥

वैद्यके व्यवहारः-कुष्ठेषु इङ्गुदीतैलम्-"...तैलान्यथेङ्गुदीनाञ्च कुष्ठेषु हितान्याहु...:।" (चि. ७ अ.)। चरकः॥ (१) मूषिकविषे इङ्गुदः-"शिरीषेङ्गुदकल्कन्तु लिह्यात्तत्र समाक्षिकम्" (कल्प. ६ अ.)। (२) रक्तपित्ते इङ्गुदीफलमज्जा-"मज्जानमिङ्गुदस्यैवं पिबेन्मधुकसंयुतम्"। (उ. ४५ अ.)। सुश्रुतः॥

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- इङ्गुदः, अगारवृक्षः, तापसद्रुमः, हि.- हिंगोट, हिञ्जन, गोंदी, ईगुन, इंगुदी। बं.- हिंगोट, इङ्गुदी। म.- हिगणवेट, हिंगणी। गु.- हिंगोरिया, हिंगर। क.- इंगलगिद। ते.- गाडचेट्टू, गाठी। ता.- ननजुन्द। अ.- हिमेलजे। अं.- Delile (डेलील)। ले.- Balanites roxburghii (वेलेनाइटिस रक्स वर्घी)।

परिचय ज्ञापिका संज्ञा- तीक्ष्णकंटक, तैलफल, क्रोष्टुफल, पूतिगन्ध। **गुण प्रकाशिका संज्ञा-** अनिलान्तक-वातनाशक। शूलारि-शूलनाशक। **पूर्वाचार्यों का किया हुआ वर्णन-** इङ्गुदी कण्टकी वृक्ष है (डल्हण सु.टी. ४५ अ.)।

गुण-दोष-

भावप्रकाश के अनुसार- इङ्गुद कुष्ठ रोग, भूतादि ग्रहदोष, व्रण विकार, विष विकार तथा क्रिमि विकार को नष्ट करता है। यह उष्ण है और श्वित्ररोग तथा शूल का नाश करता है। यह तिक्तरस प्रधान है तथा पाक में कटु है।

राजनिघण्टु के अनुसार- इङ्गुदी मादक गन्ध वाली है, कटु है, उष्ण है, फेनिल है तथा लघु है और यह रसायन है। यह क्रिमिरोग, वातरोग, कफ रोग तथा व्रण को नष्ट करता है।

वैद्यकशास्त्र में इङ्गुदी का प्रयोग-

कुष्ठ रोग में इङ्गुदी तैल का प्रयोग- कुष्ठ रोग में इङ्गुदी तेल लाभ प्रद है (च.चि.७अ.)।

(१) मूषक विष में इङ्गुदी के तैल- मूषक दंश विष में शिरीष वृक्ष की छाल तथा इङ्गुदी वृक्ष की छाल के कल्क को शहद मिलाकर चाटे (सु.कल्पअ.६)। **(२) रक्त पित्त में इङ्गुदी फल की मज्जा का प्रयोग-** इङ्गुद फल की मज्जा को मधु मिलाकर रक्त पित्त रोग में चाटे (सु.उ.४५उ.)।

Constituents—The bark yields a principle alied to saponin. From the seeds is extracted the oil known as zachum oil or zaitun oil of Africa. The oil resembles that of *Arachis hypogoea;* it congeals at zero. It contains fatty acids. It is a slow drying oil, and becomes white when exposed to the sunlight. The pulp contains an organic acid, saponin, mucilage and sugar.

Actions and uses—Leaves acrid, purgative, anthelmintic and expectorant, used in Worms in children, cough and irritation of the throat. It is a good emulsifier. In action it resembles

senega. The oil expressed from the seeds is applied to burns and excoriations, and also to freckles. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 143-4).

इन्द्रवारुणी

Cucumis trigonis

इन्द्रवारुणी, ऐन्द्री, गवाक्षी– *Bryonia scabrella or Cucumis trigonis.* **महेन्द्रवारुणी, विशाला-** *Citrulls Colocynthis, Cacumis colocynthis.* **श्वेतपुष्पी विशाला**-*Trichosanthes palmata.*

इन्द्रवारुण्या: परिचयज्ञापिका संज्ञा-"पीतपुष्पी", "क्षुद्रफला", "बालक-प्रिया"। गुणप्रकाशिका संज्ञा-"विषघ्नी"। विशालाया: परिचयज्ञापिका संज्ञा-"दीर्घवल्ली", "महाफला", "चित्रफला", "रम्या"॥ इन्द्रवारुणिकाऽत्युष्णा रेचनी कटुका तथा। कृमिश्लेष्मव्रणान् हन्ति हन्ति सर्वोदरान्यपि॥ इन्द्रवारुद्वयं तिक्तं कटु पाके रसे लघु। वीर्योष्णं कामलापित्तकफश्लीपदनाशनम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टु:॥ इन्द्रवारुणिका तिक्ता कटु: शीता च रेचनी। गुल्मपित्तोदरश्लेष्मकृमिकुष्ठज्वरापहा॥ महेन्द्रवारुणी ज्ञेया पूर्वोक्तगुणभागिनी। रसे वीर्ये विपाके च किञ्चिद्दोषा गुणाधिका॥ राजनिघण्टु:॥ गवादनीद्वयं तिक्तं पाके कटु सरं लघु। वीर्योष्णं कामलापित्तकफप्लीहोदरापहम्॥ कासश्वासापहं कुष्ठगुल्मग्रन्थिव्रणप्रणुत्। प्रमेहमूढगर्भामगण्डामयविषापहम्॥ भावप्रकाश:॥

वैद्यके व्यवहार:-कामलायां गवाक्षी-"...हिता गवाक्षी सगुडा..."। (उ.४४ अ.)। सुश्रुत:॥ (१) वृद्धौ ऐन्द्रीमूलम्-"ऐन्द्रीमूलभवं चूर्णं रुवुतैलेन मर्दितम्। त्र्यहाद् गोपयसा पीतं सर्ववृद्धिनिवारणम्॥" (वृद्धि-चि.)। (२) गण्डमालायाम् ऐन्द्री-"ऐन्द्र्या वा... मूलं गोमूत्रयोगत:। गण्डमालां हरेद् घोरां चिरकालोत्थितामपि॥" (गलगण्डादि-चि.)। (३) अन्त:शल्यनिर्हरणार्थं गवाक्षीमूलम्-"गवाक्षीमूलतस्तथा" (व्रणशो-चि.)। (४) उन्मादे पक्वैन्द्रीफलम्– "ब्रह्मराक्षसजिन्नस्यं पक्वैन्द्रीफलमूत्रजम्।" (उन्माद-चि.)। (५) स्तनोत्थितायां पीडायां विशालामूलम्– "विशाला-मूललेपस्तु हन्ति पीडां स्तनोत्थिताम्" (स्त्रीरोग-चि.)। चक्रदत्त:॥ सन्धिवाते इन्द्रवारुणि-कामूलम्-"इन्द्रवारुणिकामूलं मागधीगुडसंयुतम्। भक्षयेत् कर्षमात्रन्तु सन्धिवातं व्यपोहति॥ (म. ख. २य भा.)। भावप्रकाश:॥

इन्द्रवारुणी, ऐन्द्री, गवाक्षी, महेन्द्रवारुणी, विशाला, श्वेतपुष्पी विशाला,

विविध भाषाओं में नाम– सं.- ऐन्द्री, इन्द्रवारुणी, चित्रागवाक्षी, गवादनी। हि.- इनायन, इन्द्रायण, इन्द्रायन, माहुरी, फरफेड़, गोडम्बा। ब.- रखालशा, माकाल, रखालताकू। म.- इन्द्रायण, कांवडला। मा.- गरडुमो, वसतुम्बों। गु.- इन्द्रवरण। क.- हामक्के, कापि। द्रा.- गड़तुम्बी, आततुम्बी, डिकाय। ते.- एतिप्रच्चापापर। ता.- पेयकमञ्ची, डुमहों। फा.- खुरपुजे तक्खा, हिन्देवस्बोहे तल्ख सिंए। अ.- इज्जल। ले.- Ecballium Elaterium।

इन्द्रवारुणी की परिचय ज्ञापिका संज्ञा- पीतपुष्पी, क्षुद्रफल, बालक प्रिया।

गुणप्रकाशिका संज्ञा- विषघ्नी।

विशाला की परिचय ज्ञापिका संज्ञा- दीर्घवल्ली, महाफला, चित्रफला, रम्या।

गुण-दोष–

धन्वन्तरीय राजनिघण्टु के अनुसार– इन्द्रवारुणी अत्यन्त उष्ण, विरेचन कराने वाली तथा कटु रस प्रधान है और कृमिरोग, कफ विकार, व्रण रोग तथा सभी प्रकार के उदर विकारों को नष्ट करती है। दोनों इन्द्रवारुणी तिक्त रस प्रधान तथा पाक में कटु रस प्रधान, लघु तथा उष्ण वीर्य हैं। यह कामला, पित्त रोग, कफ रोग तथा श्लीपद (पील पांव) का नाश करता है।

राज निघण्टु के अनुसार– इन्द्रवारुणी तिक्त तथा कटु रस प्रधान, शीतल एवं रोचक है और यह गुल्मरोग, पित्त विकार, उदर रोग, कफ विकार, क्रिमिरोग, कुष्ठ रोग तथा ज्वर को दूर करती है। **महेन्द्र वारुणी** पूर्वोक्त इन्द्रवारुणी के गुण के समान गुण वाली है और रस, वीर्य एवं विकार के कुछ दोष हैं किन्तु अधिक गुण वाली है।

भाव प्रकाश के अनुसार– दोनों प्रकार की गवादिनी तिक्त रस प्रधान हैं और पाक में कटु हैं तथा दस्तावर एवं हल्की हैं। इसके अतिरिक्त उष्ण वीर्य वाली हैं और कामला रोग, पित्त विकार, कफ विकार एवं प्लीहोदर विकार को दूर करती हैं और कास रोग, श्वास रोग, कुष्ठ रोग, गुल्म रोग तथा ग्रन्थि व्रण को दूर करती हैं। इनके अतिरिक्त प्रमेह, मूढगर्भ, आम विकार, गण्डामय (गण्डमाला) एवं विष विकार को दूर करती हैं।

वैद्यकशास्त्र के अनुसार इन्द्रवारुणी का प्रयोग–

कामला रोग में गवाक्षी का प्रयोग– कामला रोग में गवाक्षी के चूर्ण का गुड़ मिलाकर सेवन करना हितकर है (सु.उ.अ.४)।

(१) वृद्धिरोग में इन्द्रवारुणी के मूल का प्रयोग– इन्द्रायण के मूल के चूर्ण को एरण्ड के तैल में मर्दन कर तीन-दिन के बाद गाय के दूध के साथ पान करने से सभी प्रकार के वृद्धि रोग दूर होते हैं (चक्र.वृद्धि चि.)। **(२) गण्डमाला में इन्द्रायण का प्रयोग**– इन्द्रायण की जड़ का गोमूत्र के साथ सेवन करने से (या लेप करने से) अति पुरानी गण्डमाला दूर होती है (चक्र.गण्डमालादि-चि.)। **(३) अन्तःशल्य निर्हरा के लिए गवाक्षी मूल का प्रयोग**– गवाक्षी मूल का लेप अन्तर्विद्रधि को नष्ट करता है (चक्र.व्रण-शोथ चि.)। **(४) उन्माद में पके ऐन्द्री फल का प्रयोग**– व्रहराक्षस तथा जिन्न आदि से जन्य उन्माद में पके इन्द्रायण के फल का प्रयोग करे। यह मूत्रोत्पादक भी है (चक्र.उन्माद चि.)। **(५) स्तन में उत्पन्न पीड़ा के लिए इन्द्रायण मूल का लेप**– स्तन में उत्पन्न पीड़ा में इन्द्रायण के मूल का लेप करे (चक्र.स्त्रीरोग चि.)।

सन्धिवात में इन्द्रायण के मूल का प्रयोग– इन्द्रायण की जड़ को पीसकर तथा पीपर का चूर्ण एवं गुड़ मिलाकर एक कर्ष (१० ग्राम) मात्रा में प्रयोग करने से सन्धि वात दूर होता है (भा.पृ.म.ख.द्वि.भाग)।

Constituents—The pulp contains colocynthin, also colocynthein (a resin), colocynthitin pectin, gum, no starch, ash ll p.c. The seeds contain a fixed oil 17 p.c. albuminoids 6 p.c., and ash 3 p.c. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 308).

Therapeutics—"A snuff of the powdered root is irritating to the eyes and nostrils. In India the root is given in rheumatism and enlargements of the abdominal viscera in children; a paste of the fruit or the root with that of Nuxvomica is applied to boils and pimples to hasten maturation. In minute doses, it is very beneficial in Colic, Sciatica, Ovarian and other Neuralgias; and also to relieve pain of Glucoma." (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 308).

इक्षुः
Saccharum officinarum

इक्षुः। *Saccharum officinarum.*

इक्षुः सरो गुरुः स्निग्धो वृंहणः कफमूत्रजित्। वृष्यः शीतः पवनजिद्भुक्ते वायुप्रकोपनः॥ अतीव मधुरो मूले मध्ये मधुर एव च। अग्रे त्वचि च विज्ञेय इक्षूणां लवणो रसः॥ इक्षुयुग्मं रसे स्वादु पित्तघ्नं वृष्यशीतलम्। ग्रन्थान्तरे-गुरु श्लेष्मप्रदं वातरक्तपित्तविनाशनम्। शर्करासमवीर्यस्तु 'दन्तनिष्पीडितो रसः'॥ गुरुर्विदाही विष्टम्भी 'यन्त्रकस्तु' प्रकीर्त्तितः। पक्वो गुरुरसः स्निग्धः सुतीक्ष्णः कफवातनुत्। इक्षुविशेषगुणाः-वृष्यः शीतोष्णपित्तं शमयति मधुरो वृंहणः श्लेष्मकारी स्निग्धोहृद्योऽप्यतिशमनपरो मूत्रशुद्धिं करोति। मेदोवृद्धिं विधत्ते शमयति च मलं तर्पणं चेन्द्रियाणां दन्तैर्निष्पीड्य साक्षादमृतमयरसं भक्षयेदिक्षुदण्डम्॥ भक्षयेदिक्षुकं काले भोजनस्याग्रतो नरः। स्वभावान्मधुरो ह्येष भुक्ते वातप्रकोपनम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ इक्षवः पञ्चधा प्रोक्ता नानावर्णगुणान्विताः। सितः पुण्ड्रः करङ्केक्षुः कृष्णो रक्तश्च ते क्रमात्॥ गुणाः-'सितेक्षुः' कठिनो रुच्यो गुरुश्च कफमूत्रकृत्। दीपनः पित्तदाहघ्नो विपाके कोष्णदः स्मृतः॥ 'पुण्ड्रो'ऽतिमधुरः शीतः कफकृत् पित्तनाशनः। दाहश्रमहरो रुच्यो रसे सन्तर्पणः परः॥ 'करङ्कशालि'र्मधुरः शीतलो रुचिकृन्मृदुः। पित्तदाहहरो वृष्यस्तेजोबलविवर्द्धनः॥ 'कृष्णेक्षु'रुक्तो मधुरश्च पाके स्वादुः सुहृद्यः कटुको रसाद्यः। त्रिदोषहारी शमवीर्यदश्च सुबल्यदायी बहुवीर्यदायी॥ 'लोहितेक्षु'श्च मधुरः पाके स्याच्छीतलो मृदुः। पित्तदाहहरो वृष्यस्तेजोबलविवर्द्धनः॥ अभुक्ते पित्तहाश्चैते भुक्ते वातप्रकोपनाः। भुक्तमध्ये गुरुतरा इतीक्षूणां गुणास्त्रयः॥ पक्वेक्षुरसः स्निग्धः स्यात् कफवातनाशनोऽतिगुरुः। अतिपाकेन विदाहं तनुते पित्तास्त्रदोषशोषांश्च॥ राजनिघण्टुः॥ 'कोशकारो' गुरुः शीतो रक्तपित्तक्षयापहः। 'कान्तारेक्षु'र्गुरुर्वृष्यः श्लेष्मलो वृंहणः सरः॥ 'दीर्घपोरः' सुकठिनः सक्षारो 'वंशकः' स्मृतः। 'शतपर्वा' भवेत् किञ्चित् कोशकारगुणान्वितः॥ विशेषात् किञ्चिदुष्णश्च सक्षारः पवनापहः। 'तापसेक्षु'र्भवेन्मृद्वी मधुरा श्लेष्मकोपनी॥ तर्पणी रुचिकृच्चापि वृष्या च बलकारिणी। एवं गुणैस्तु 'काण्डेक्षुः' स तु वातप्रकोपनः॥ सूचीपत्रो नीलपोरो नैपाली दीर्घपत्रकः। वातलाः कफपित्तघ्नाः सकषायाः विदाहिनः॥ 'मनोगुप्ता' वातहरी तृष्णामयविनाशिनी। सुशीता मधुरातीव रक्तपित्तप्रणाशिनी॥ फाणितलक्षणम्- इक्षोः रसस्तु यः पक्वः किञ्चिद्गाढो बहुद्रवः। स एवेक्षुविकारेषु ख्यातः फाणितसंज्ञया॥ तद्गुणाः- 'फाणितं' गुर्वभिष्यन्दि वृंहणं कफशुक्रकृत्। वातपित्तश्रमान् हन्ति मूत्रवस्तिविशोधनम्॥ मत्स्यन्दी-लक्षणम्-इक्षो रसो यः सम्पक्वो घनः किञ्चिद्द्रवान्वितः। मन्दं यत् स्यन्दते तस्मान्मत्स्यन्दीति निगद्यते। तद्गुणाः-'मत्स्यन्दी' भेदिनी बल्या लघ्वी पित्तानिलापहा। मधुरा वृंहणी वृष्या रक्तदोषापहा स्मृता॥ गुडलक्षणम्-इक्षोः रसः यः सम्पक्वो जायते लोष्ट्रवद्दृढः। स गुडो गौडदेशे तु मत्स्यन्ध्येव गुडो यतः॥ तद्गुणाः-गुडो वृष्यो गुरुः स्निग्धो वातघ्नो मूत्रशोधनः। नातिपित्तहरो मेदः कफक्रिमिबलप्रदः॥ पुराणस्य गुणाः-गुडो जीर्णो लघुः पथ्योऽनभिष्यन्द्यग्निपुष्टिकृत्। पित्तघ्नो मधुरो वृष्यो वातघ्नोऽसृक्प्रसादनः॥ नवीनगुडगुणाः-गुडो नवः कफश्वासकासकृमि-

करोऽग्निकृत्॥ श्लेष्माणमाशु विनिहन्ति सदार्द्रकेण पित्तं निहन्ति च तदेवहरीतकीभिः। शुण्ठ्या समं हरति वातमशेषमित्थं दोषत्रयक्षयकराय नमो गुडाय॥ खण्डगुणाः-'खण्डन्तु' मधुरं वृष्यं चक्षुष्यं वृंहणं हिमम्। वातपित्तहरं स्निग्धं बल्यं वान्तिहरं परम्॥ शर्करालक्षणम्-खण्डन्तु सिकतारूपं सुश्वेतं शर्करा सिता। तद्गुणाः-'सिता' सुमधुरा रुच्या वातपित्तास्रदाहहृत्। मूर्च्छाच्छर्दिज्वरान् हन्ति सुशीता शुक्रकारिणी॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः- (१) मूत्रकरत्वे इक्षुः-"इक्षुर्मूत्रजनननानाम्"। (सू. २५ अ.)। (२) रक्तपित्ते इक्षुः-"मधूदकस्येक्षुरसस्य चैव पानाच्छमं गच्छति रक्तपित्तम्"। (चि. ४ अ.)। (३) घ्राणमार्गात् रक्तस्रुतौ इक्षुः-"द्राक्षारसस्येक्षुरसस्य नस्यम्"। (चि.५अ.)। (४) ग्रहण्याम् इक्षुः-"तद्वद् द्राक्षेक्षुखर्जुर-स्वरसानासूतान् पिबेत्" (चि. १९ अ.)। चरकः॥ (१) पाण्डुरोगे इक्षुः-"धात्रीफलानां रसमिक्षुजञ्च मन्थं पिबेत् क्षौद्रयुतं हिताशी"। (उ. ४४ अ.)। (२) क्षतोत्थे कासे इक्षुः-"क्षतोत्थे पिबेद् घृतञ्चेक्षुरसे विपक्वम्"। (उ. ५२ अ.)। सुश्रुतः। अग्निविसर्पे इक्षुः- "सेचयेत्...। ...इक्षु रसेन वा। (चि. १८ वाग्भटः)।

विविध भाषाओं में नाम– सं.- इक्षुः, दीर्घच्छदः, असिपत्रः, मधुतृणः। हि.- ईख, ऊख, ऊंख, गन्ना, केतार, गांड़ा। बं.- आक, इक्षु, कुशिर। म.- ऊंसृ, ऊस। गु.- शेटडी। मा.- साठो, हाखें, होठा। क.- काबू एडु , कवु। ते.- विरेकु, चरेकु। ता.- इवकु। प.- पन्ना। फा.- नसेशकट। अं.- कस वुस्सुक्कर। अं.- Sugar cane (सुगरकेन)। ले.- Saccharum officinarum (शाक्चरम ओफिसि नेरम)।

परिचय ज्ञापिका संज्ञा- खड्ग पत्रक, सुरस, बहुरस, तृणावेप, मृत्यु पुष्पक, पर्वयोग।

गुण-दोष–

गन्ना दस्तावर, गुरु, स्निग्ध तथा वीर्य वर्द्धक है और कफ रोग तथा मूत्र विकार को दूर करता है। यह वृष्य है, शीतल है और वायु को जीत लेता है तथा खाने के बाद वायु को प्रकुपित करने वाला है। गन्ना-मूल में अधिक मधुर है, मध्य में मधुर है, अग्रभाग में तथा त्वचा में लवण रस होता है। दोनों प्रकार का गन्ना रस में स्वादिष्ट, पित्तनाशक, वीर्यवर्द्धक तथा शीतल है।

अन्य ग्रन्थ के अनुसार– गन्ना भारी है, कफवर्द्धक है, वातरक्त तथा पित्त का विनाश करने वाला है, दांत से चूस कर खाने पर शक्कर के समान वीर्य वाला है, गुरु है, विदाही है, यन्त्र से निकाला हुआ गन्ना का रस विष्टम्भक है। पकाया हुआ रस भारी है, स्निग्ध है, तीक्ष्ण है तथा कफ वात को दूर करता है।

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनसुार गन्ने का विशेष गुण– गन्ना वीर्यवर्द्धक होता है, शीत, उष्ण तथा पित्त को शान्त करता है। यह रस में मधुर है, मांसवर्द्धक है, कफकारक है, स्निग्ध है, हृदय को बल देने वाला है, बलकारक है, अत्यन्त शामक है तथा मूत्र को शुद्ध करने वाला है। मेदा को बढ़ाता है, मल को शान्त करता है, इन्द्रियों को तृप्त करता है। दांत के द्वारा चूसकर खाने से साक्षात् अमृत के समान है, अतः गन्ना का दाँत से चूस कर सेवन करें। भोजन के पहले समय पर गन्ना का सेवन करे। स्वभाव में यह मधुर है। यह खाने पर वात को प्रकुपित करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार– गन्ना पांच प्रकार का होता है तथा अनेक वर्ण एवं गुण वाला होता है। सित, पुण्ड्रः, कृष्णेक्षु, कृष्ण तथा रक्त ये क्रमशः होते हैं। **गुण- सित गन्ना** कठिन होता है, रुचिकर है, भारी है तथा

कफ एवं मूत्र को बढ़ाता है, जाठराग्नि ठीक कर पित्त तथा दाह को शान्त करता है। विपाक में कुछ उष्ण कहा गया है। **पुण्ड्र नामक गन्ना** अत्यन्त मधुर तथा शीतल है, कफकारक है, पित्त नाशक है, दाह तथा श्रम (थकावट) को दूर करता है, रुचि कारक है, हल्का है, पित्त एवं दाह को दूर करता है, वीर्यवर्द्धक है और तेज एवं बल को बढ़ाने वाला है। **कृष्णेक्षु (काला गन्ना)** पाक में मधुर है, स्वादिष्ट है, हृदय को बल देने वाला है, कटु रस से भरपूर है, त्रिदोष को शान्त करने वाला है तथा शान्त वीर्य वाला है, अच्छे बल को देने वाला है तथा अधिक वीर्य को बढ़ाने वाला है। **लोहितेक्षु (लाल गन्ना)** पाक में मधुर है तथा शीतल एवं मृदु है। पित्त तथा दाह को दूर करने वाला है, वीर्य वर्द्धक है और तेज एवं बल को बढ़ाने वाला है। भोजन के पहले खाने से पित्त को दूर करता है तथा भोजन के बाद खाने पर वात को प्रकुपित करता है। भोजन के मध्य में खाने से भारी होता है। यहां पर गन्ने के तीन गुण होते हैं। **पका हुआ गन्ने का रस** स्निग्ध होता है, कफ तथा वात का नाश करता है और अधिक गुरु है। **अधिक पका देने से** दाह उत्पन्न करता है और पित्तविकार, रक्त विकार तथा सूखा रोग को उत्पन्न करता है।

भावप्रकाश के अनुसार– कोशकार गन्ना गुरु है, शीतल है तथा रक्तपित्त एवं क्षय रोग को नष्ट करता है। **कान्तार गन्ना** गुरु है, वीर्यवर्द्धक, कफकारक है, बलवर्द्धक तथा दस्तावर है। **दीर्घपोर गन्ना** अधिक कड़ा है, क्षारीय है तथा वंशक (बांस सदृश) कहा गया है। **शतपर्वा गन्ना** थोड़ा कोशकार के गुणों से युक्त होता है; विशेष कर थोड़ा उष्ण है, क्षारीय है तथा वात नाशक है। **तापस गन्ना** मुलायम होता है, मधुर है तथा कफ प्रकोपक है। इनके अतिरिक्त तर्पण कारक है, रुचिकारक है, वीर्यवर्द्धक है तथा बल कारक है। **काण्डेक्षु गन्ना** इसी प्रकार के गुणों से युक्त है तथा वात प्रकोपक है। **सूचीपत्री, नीलपोर, नैपाली तथा दीर्घ पत्रक गन्ना** वातकरक, कफपित्त नाशक, कषाय तथा विदाही है। **मनोगुप्ता नामक गन्ना** वात को दूर करने वाली, तृष्णा रोग का नाश करने वाली, शीतल, अत्यधिक मधुर तथा रक्तपित्त का नाश करने वाली है। **फाणिते का लक्षण**– गन्ना का पकाया हुआ रस थोड़ा गाढ़ा तथा अधिक द्रव वाला जो पदार्थ होता है उसे गन्नों के विविध प्रकारों में फाणित कहते हैं। **फाणित के गुण**– फाणित गुरु (भारी) है, अभिष्यन्दी तथा वृंहण है तथा कफ एवं शुक्र को बढ़ाने वाला है, वात तथा पित्तजन्य थकावट को नष्ट करता है, मूत्र एवं वस्ति को शुद्ध करता है। **मत्स्यन्दी के लक्षण**– पकाया हुआ गन्ना का रस थोड़ा द्रव युक्त घना (गाढ़ा) होता है और थोड़ा-थोड़ा पसीजता है अत: उसे मत्स्यन्दी कहते हैं। **मत्स्यन्दी के गुण**– मत्स्यन्दी मल का भेदन करने वाली, बलकारक, हल्की, पित्त विकार तथा वात विकार को नष्ट करती है। इनके अतिरिक्त यह मधुर है, मांसवर्द्धक है, वीर्यवर्द्धक है तथा रक्त विकार को दूर करने वाली कही गयी है। **गुड़ के लक्षण**– गन्ने का जो पकाया हुआ रस ढ़ेले की तरह दृढ़ होता है, उसे गुड़ कहते हैं। देश में वही गुड़ मत्स्यन्दी गुड़ कहलाता है। **गुड़ के गुण**– गुड़ भारी है, स्निग्ध है, वातनाशक है, मूत्र शोधक है और अत्यधिक पित्त को दूर नहीं करता है, मेदो, कफ, क्रिमि एवं बल को बढ़ाता है। **पुराने गुड़ के गुण**– पुराना गुड़ हल्का तथा पथ्य है और अभिष्यन्द कारक नहीं है। यह जाठराग्नि को पुष्ट करता है, पित्त नाशक है, मधुर है, वीर्यवर्द्धक है, वातनाशक और रक्त को शुद्ध करने वाला है। **नवीन गुड़ के गुण**– नवीन गुड़ कफ, श्वास विकार, कास, क्रिमि रोग को उत्पन्न करता है और जाठराग्नि को प्रदीप्त करता है। श्लेष्म (कफ) को अदरक के साथ प्रयोग करने से शीघ्र ही नष्ट करता है। वही नवीन गुड़ हर्रे के साथ प्रयोग करने से पित्त को नष्ट करता है। इस प्रकार सोंठ के चूर्ण के साथ प्रयोग करने से सभी वात रोगों को नष्ट करता है। इस प्रकार तीनों दोषों को नष्ट करने वाले गुड़ को नमस्कार है। **खण्ड (खाड़) के गुण**– खण्ड (खाड़) मधुर, वीर्यवर्द्धक, नेत्र के लिए हितकर, मांसवर्द्धक तथा शीतल है और वात-पित्त को दूर करता है। इनके अतिरिक्त स्निग्ध है,

बलकारक है तथा उत्तम वमन नाशक है। **शर्करा के लक्षण-** खण्ड (खाड़) ही जब सिकता (वालु) के स्वरूप का हो जाता है तथा सफेद होता है उसे शर्करा कहते हैं और उसे सिता भी कहते हैं। **शर्करा के गुण-** सिता (शक्कर) मधुर होता है, रुचिकारक है और वात विकार, पित्त विकार, रक्त विकार एवं दाह को दूर करता है; इनके अतिरिक्त मूर्च्छा, वमन एवं ज्वर को नष्ट करता है। इसी प्रकार यह अधिक शीतल है और वीर्य वर्द्धक है।

गन्ने का वैद्यक शास्त्र में व्यवहार-

(१) गन्ना का मूत्र कारक के रूप में प्रयोग- मूत्र उत्पन्न करने वालों में गन्ना उत्तम मूत्रोत्पादक है (च.सू.अ.२५)। **(२) रक्त पित में गन्ना का प्रयोग-** मधूदक (मधु का जल) तथा गन्ना का रस पान करने से रक्त-पित्त शान्त होता है (च.चि.अ.४)। **(३) नासिका से रक्त निकलने पर गन्ना के रस का प्रयोग-** नासिका से रक्त निकलने पर मुनक्का का रस तथा गन्ना के रस का नस्य ले। (च.चि.५अ.) **(४) ग्रहणी में गन्ना का प्रयोग-** ग्रहणी रोग में मुनक्का, गन्ना, खर्जूर के स्वरसों का आसुत पान करे (च.चि.अ.३९)।

(१) पाण्डु रोग में गन्ना का प्रयोग- पाण्डु रोग में आंवला के फल का रस तथा गन्ना का रस का मन्थ बनाकर और उसमें शहद मिलाकर पान करने से लाभ होता है (सु.उ.अ.४४)। **(२) क्षतज कास में गन्ने के रस का प्रयोग-** क्षत जन्य कास में गन्ने के रस में घृत पका कर पान कराये (सु.उ.अ.५२)।

अग्नि विसर्प में गन्ना का प्रयोग- अग्नि विसर्प में गन्ना से सींचे अथवा गन्ना के रस से सींचे (वाग्भट चि.अ.१८)।

Constituents—The juice contains saccharine matter, water mucilage, resin, fat, albumen, & c.

Actions and uses—Preservative, demulcent, antiseptic, aperient dietetic, sugar can increases the solubility of lime in water. It is used as a food and nutrient to adipose tissue, hence sugar or sugar forming food is needed in health; absence of it in dietary leads to rapid emaciation. It is also diuretic, cooling, demulcent and laxative. As a refringerant drink, it is given in beliousness and jaundice. It is a good remedy in cough, hiccough, apthae and hoarseness and locally in granulation of the eyelids and cornea (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 643).

उदुम्बरः
Ficus glomarata

उदुम्बरः, *Ficus glomerata.* **काकोदुम्बरिकायाः-फल्गुः, मलपूः** *F. Oppositifolia, F. Hispida.*

उदुम्बरस्य परिचयज्ञापिका संज्ञा-"क्षीरवृक्षः", "जन्तुफलः", "सदाफलः", "अपुष्पफलसम्बन्धः", "सितवल्कलः"॥ काकोदुम्बरिकायाः परिचयज्ञापिका संज्ञा-"फलसम्भारी", "खरपत्री"। गुणप्रकाशिका संज्ञा-"कुष्ठघ्नी"। उदुम्बरं कषायं स्यात् पक्वं तु मधुरं हिमम्। कृमिकृत् पित्तरक्तघ्नं मूर्च्छादाहतृषापहम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टू राजनिघण्टुश्च॥ औदुम्बरं फलमतीव हिमं सुपक्वं॥ पित्तापहं च मधुरं श्रमशोफहारि। आमं कषायमतिदीपनरोचनञ्च मांसस्य वृद्धिकरमस्त्रविकारकारि॥ राजनिघण्टुः॥ काकोदुम्बरिका ग्राहिकण्डूकुष्ठव्रणापहा। रक्तपित्तहरा शोफपाण्डुश्लेष्महरा च सा॥ अन्यच्च- काकोदुम्बरिका शीता पाके गौल्याऽम्लिका कटुः। त्वग्दोषरक्तपित्तघ्नी तत्फलं

चातिसारहृत्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ काकोदुम्बरिका शीता पाके पक्वाऽम्लिका कटुः। त्वग्दोषपित्तरक्तघ्नी तद्वल्कं चातिसारजित्। उदुम्बर'त्वचा' शीता कषाया व्रणनाशिनी। गुर्विणी गर्भसंरक्षे हिता स्तन्यप्रदायिनी॥ राजनिघण्टुः॥ उदुम्बरो हिमो रूक्षो गुरुः पित्तकफास्रजित्। मधुरस्तुवरो वर्ण्यो व्रणशोधनरोपणः॥ मलपूः स्तम्भकृत्तिक्ता शीतला तुवरा जयेत्। कफपित्तव्रणश्वित्रकुष्ठपाण्ड्वर्शः-कामलाः॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः- (१) श्वित्रे काकोदुम्बरः-"श्वित्रे स्रंसनमग्र्यं मलपूरस इष्यते। सगुडः...॥" (चि. ७ अ.)। (२) योनिरोगे उदुम्बरः-"उदुम्बरस्य दुग्धेन षट्कृत्वा भावितांस्तिलान्। तैलं क्वाथे च तस्यैव सिद्धं धार्यञ्च पूर्ववत्॥" (चि. ३० अ.)। चरकः॥ रक्तपित्ते उदुम्बरः- "उदुम्बरफलं पिष्ट्वा पिबेत् तद्रसमेव वा।" (उ. ४५ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) अत्यग्निप्रशमने उदुम्बरत्वक्-"नारीक्षीरेण संयुक्तां पिबेदौडम्बरीं त्वचम्।" (अग्निमान्द्य-चि.)। (२) रक्तपित्ते काकोदुम्बरः-"समाक्षिकः फल्गुफलोद्भवो वा पीतो रसः शोणितमाशु हन्ति।" (रक्तपित्त-चि.)। (३) पित्तजतृष्णायां पक्वोदुम्बरफलम्-"पित्तजायान्तु तृष्णायां पक्वोदुम्बरजो रसः। तत्क्वाथो वा हिमस्तद्वत्...॥" (तृष्णा-चि.)। चक्रदत्तः॥ असृग्दरे उदुम्बरफलम्-"क्षौद्रयुक्तं फलरसमौदुम्बरभवं पिबेत्। असृग्दरविनाशाय सशर्करपयोऽन्नभुक्॥" (म. ख. ४ भा.)। भावप्रकाशः॥ (१) वातव्याधौ काकोदुम्बरदुग्धम्-"काकोदुम्बरदुग्धैः सरामठैर्हरेत् सर्वयोगविच्च। कपिकच्छुमूलयुक्तैर्नस्यैरवबाहुजां पीडाम्।" (वातव्याधि-चि.)। (२) योनिगाढीकरणे उदुम्बरफलम्-"पलाशोदुम्बरफलं तिलतैलसमन्वितम्। मधुना योनिमालिप्य गाढीकरणमुत्तमम्।" (स्त्रीरोग-चि.)। (३) सारमेयविषे काकोदुम्बरमूलम्-"काकोदुम्बरमूलन्तु धुस्तूरफलकान्वितम्। पिबेत्तण्डुलतोयेन सारमेयविषापहम्।" (विष-चि.)। वङ्गसेनः॥

विविध भाषाओं में नाम– सं.- उदुम्बरः, जन्तुफलः, यज्ञाङ्गः, हेमदुग्धकः। हि.- गूलर, गुल्लर, गूलड़। बं.- यज्ञडुमुर। म.- उम्वर, उम्वरांचे झाड़। गु.- उदुम्वरो। क.- अति। अ.- जमीज। ते.- अतिचेट्टू। ता.- अतिमरम। फा.- अञ्जीरे आदम, समर पिस्ता। अं.- Fig tree (फिग ट्री)। ले.- Ficus glomarata (फाइकस ग्लोमेरेटा)।

परिचय ज्ञापिका संज्ञा- क्षीरवृक्ष, सदा फल, जन्तु फल, अपुष्प फल सम्बन्ध, सितवल्कल।

गुण प्रकाशिका संज्ञा- कुष्ठघ्नी।

काकोदुम्बरिकाकी परिचय ज्ञापिका संज्ञा- फल सम्भारी, खरपत्री।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु तथा राज निघण्टु के अनुसार- उदुम्बर (गूलर) कषाय रस प्रधान होता है। पक्व उदुम्बर मधुर रस प्रधान है तथा शीतल है। यह कृमि कारक, पित्त रक्त नाशक तथा मूर्च्छा, दाह एवं प्यास को दूर करने वाला है।

राज निघण्टु के अनुसार- पका हुआ गूलर का फल अत्यधिक शीतल है, पित्तनाशक है, मधुर है तथा श्रम एवं शोथ को दूर करने वाला है। कच्चा गूलर कषाय रस प्रधान है तथा अधिक जाठराग्नि दीपक एवं रोचक है; इनके अतिरिक्त मांस को बढ़ाने वाला तथा रक्त विकार को बढ़ाने वाला है।

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- काकोदुम्बरिका ग्राही है, कण्डू, कुष्ठ तथा व्रण को दूर करने वाली

है; इनके अतिरिक्त रक्तपित्त को दूर करने वाली, शोथ, पाण्डु तथा कफ को दूर करने वाली है। अन्य भी इसके गुण हैं:- काकोदुम्बरिका पाक में शीतल है, गले के लिए लाभदायक है, अम्ल रस प्रधान तथा कटु रस प्रधान है; इनके अतिरिक्त चर्म विकार, रक्त विकार तथा पित्त का नाशक है और उसका फल अतिसार को दूर करती है।

राजनिघण्टु के अनुसार- पक्व काकोदुम्बरिका शीतल है, अम्ल है तथा कटु है। यह चर्म विकार, पित्त विकार तथा रक्त विकार को नष्ट करने वाली है और उसका छिलका अतिसार को दूर करने वाली है। गूलर का छिलका शीतल है, कषाय रस प्रधान है, व्रण को नष्ट करने वाली है, भारी है, गर्भ के संरक्षण में हितकर है और दूध को बढ़ाने वाली है।

भावप्रकाश के अनुसार- गूलर शीतल है, रूक्ष है, गुरु है, पित्त विकार, कफ विकार तथा रक्त विकार को दूर करने वाला है। मधुर रस प्रधान तथा कषाय रस प्रधान है, वर्णकारक है, व्रण शोधक है तथा व्रणरोपक है। मलपू (काकोदुम्बरिका) स्तम्भकारक है, तिक्त है, शीतल है तथा कषाय रस प्रधान है और यह कफ विकार, पित्त विकार, व्रण, श्वेत कुष्ठ, पाण्डु, अर्श रोग तथा कामला रोग को दूर करती है।

वैद्यक शास्त्र में उदुम्बर का प्रयोग-

(१) श्वित्र (सफेद-कुष्ठ) में उदुम्बर का प्रयोग- श्वित्र में काकोदुम्बरिका के रस में गुड़ मिलाकर पहले स्रंसन करना अभीष्ट है (च.चि.अ.७)। **(२) योनिरोग में उदुम्बर का प्रयोग**- गूलर के दूध के साथ काले तिल को छः बार भावित कर उस तिल तैल को गूलर के क्वाथ में सिद्ध कर उसका योनि रोग में पिचु धारण करे (च.चि.अ.३०)।

रक्त पित्त में उदुम्बर का प्रयोग- उदुम्बर के फल को पीस कर उसका सेवन करे या उसके केवल रस का रक्त पित्त में पान करे (सु.उ.अ.४५)।

(१) अग्निमान्द्य में उदुम्बर के फल का प्रयोग- गूलर के छाल को पीस कर तथा स्त्री का दूध मिलाकर अग्निमान्द्य में पान करे (चक्रदत अग्निमान्द्य चि.)। **(२) रक्तपित्त में काकोदुम्बरिका का प्रयोग**- काकोदुम्बरिका के फल का रस मधु मिलाकर या केवल रस पान करने से शीघ्र ही रक्त पित्त रोग नष्ट होता है (चक्र.रक्तपित्त चिकित्सा)। **(३) पित्तज तृष्णा में पके गूलर के फल का प्रयोग**- पित्तज तृष्णा में पके उदुम्बर के रस का या उसके क्वाथ या उसके हिम का प्रयोग पित्तज तृष्णा को शान्त करता है (चक्र.तृष्णा चि.)।

रक्त प्रदर में गूलर के फल का प्रयोग- गूलर के फल के रस में मधु मिलाकर रक्त प्रदर के नाश के लिए पान करे और शक्कर मिलाकर दूध तथा भात भक्षण करे (भा.म.ख.भा. ४)।

(१) वात व्याधि में काकोदुम्बरिका के दूध का प्रयोग- सभी योगों को जानने वाला चिकित्सक काकोदुम्बरिका के दूध में शुद्ध हींग मिलाकर उससे वात रोग को दूर करे। केवाछ के मूल के चूर्ण क. नस्य देकर अवबाहुजन्य पीड़ा को दूर करे (वङ्गसेन वातव्याधि चि.)। **(२) योनि को गाढ़ी करने के लिए उदुम्बर के फल का प्रयोग**- पलास फल तथा उदुम्बर के फल का चूर्ण तिल तैल में मिलाकर लेप करे। इसके पहले शहद से योनि को लेप करे। यह प्रयोग योनि को गाढ़ा (कड़ा) कर देता है (वङ्गसेन-स्त्रीरोग चि.)। **(३) सारमेय (कुत्ता) विष में काकोदुम्बरिका के मूल का प्रयोग**- काकोदुम्बरिका के जड़ का रस तथा धतूर के फल का रस सारमेय के विष को दूर करने के लिए चावल के धोअन के साथ पान करे (बंग.वि.चि.)।

Constitutents—Tannin, wax and caoutchouc.

Actions and uses—Astringent, carminative and stomachic; given in haematuria, menorrhagia and haemoptysis. With cumin and sugar the juice from the root is given in gonorrhoea; a decoction of the root bark with nimado is used as a gargle in salivation, as a wash for ulcers and as an injection in leucorrhoea. The milky juice is given internally as an alterative, tonic and also applied as a lepa to the chest, abdomen and to rheumatic joints, mumps and other glandular enlargements. The application is coverd with a pad of cotton. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory Part II., p. 558).

उपोदकी

Basella alba

उपोदकी, उपोदका, पोतकी। *Basella alba.* **तस्या भेदाः-वनजोपोदकी, क्षुद्रोपोदकी, मूलपोती।**

पूर्वाचार्यकृतवर्णनम्–"उपोदिका पोइ" (डल्वण. सु. टी. सू. ४६ अ.)। उपोदकी कषायोष्णा कटुका मधुरा च सा। निद्रालस्यकरी रुच्या विष्टम्भश्लेष्मकारिणी॥ क्षुद्रोपोदक्या गुणाः– रसवीर्यविपाकेषु सदृशी पूर्वया त्वियम्। 'वनजोपोदकी' तिक्ता कटूष्णा रोचनी च सा॥ 'मूलपोती' त्रिदोषघ्नी वृष्या बल्या लघुश्च सा। बलपुष्टिकरा रुच्या जठरानलदीपनी॥ राजनिघण्टुः॥ 'पोतकी' शीतला स्निग्धा श्लेष्मला वातपित्तनुत्। अकण्ठ्या पिच्छिला निद्राशुक्रला रक्तपित्तनुत्॥ बलदा रुचिकृत् पथ्या वृंहणी...। भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) अर्शःसु अतिप्रवृत्ते रक्ते उपोदकी–"...तक्रेणोपदकां सवदराञ्च"। (चि. ९ अ.)। (२) अतिसारे उपोदकी–"उपोदकायाः...। शाकेन...। दधिदाडिमसिद्धेन बहुस्नेहेन भोजयेत्।" (चि. १० अ.)। चरकः॥ अर्वुदादिषु उपोदका- "उपोदकारसाभ्यक्तस्तत्पत्रपरिवेष्टिताः। प्रणश्यन्त्यचिरान्नृणां पिडका हच्वुदादयः॥" (श्लीपदाधिकारे)। वङ्गसेनः॥

विविध भाषाओं में नाम– सं.– उपोदोकी, उपोदका, पोतकी, मालवा, अमृतबल्लरी। हिं.– पोय, पोयका साग, पोई का साग। बं.– पूंई, पुईशाक। म.– मायाल। गु.– पोयी। क.– वमले। ते.– वच्चलि। ता.– बसलक्किरै। अं.– Indian Spinach (इण्डियन स्पाइनक)। ले.– Basella rufra., F. Basellaceal.

उपादेवी के भेद– वनजोपोदकी, क्षूद्रोपोदकी, मूलपोती।

पोदकी के सम्बन्ध में पूर्वाचार्यों के द्वारा किया गया वर्णन– उपोदिका पोइ (डल्हण सु.टी.सू.अ.४६)।

गुण-दोष–

राज निघण्टु के अनुसार– उपोदक (पोई) कषाय रस प्रधान, कटुरस प्रधान तथा मधुर है और उष्ण है। यह निद्रा तथा आलस्य करने वाली, रुचि कारक, विष्टम्भक एवं कफकारक है। **क्षुद्रोपोदिका के गुण–** क्षुद्रोपोदकी रस, वीर्य एवं विपाक में पूर्वोक्त उपोदक के गुण के ही समान है। वनज उपोदिका तिक्त एवं कटु रस प्रधान है और उष्ण एवं रुचिकारक है। **मूलपोती–** मूलपोती त्रिदोषनाशक, वीर्यवर्द्धक, बल कारक तथा हल्की है। यह बल एवं पुष्टि को करने वाली, रुचिकारक एवं जाठराग्नि को प्रदीप्त करने वाली है।

भाव प्रकाश के अनुसार- पोतकी शीतल, स्निग्ध, कफ कारक, तथा वात-पित्त को दूर करने वाली है। यह कण्ठ के लिए अहित कर, पिच्छिल, नींद लाने वाली तथा वीर्य को बढ़ाने वाली एवं रक्त पित्त को दूर करने वाली है; इनके अतिरिक्त, बलदायक, रुचिकारक पथ्य तथा मांस को बढ़ाने वाली है।

वैद्यक शास्त्र में उपोदकी का प्रयोग-

(१) अर्श रोग में रक्त के अधिक निकलने पर उपोदकी का प्रयोग- उपोदकी (पोई) के शाक में बेर का चूर्ण मिला कर मट्ठा के साथ पान करे (च.चि.अ.९)। **(२) अतिसार रोग में उपोदकी का प्रयोग-** पोई के शाक (पोई के कल्क) को दही तथा अनार के रस के साथ सिद्ध कर स्नेह अधिक (घृत) के साथ भोजन करायें (च.चि.अ.१०)।

अर्बुद आदि में उपोदका का प्रयोग- पोई के रस का लेप लगाकर तथा उसके पत्ते से बांध देने से व्रण पिडिका तथा अर्वुद आदि रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं (बंगसेन श्लीपदाधिकार)।

उशीरादीनि

Andropogon squorrosus

वीरणमूलकम्, उशीरम्। *Andropogon muricatus.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा– "सुगन्धिमूलकम्"। गुणप्रकाशिका संज्ञा– "जलामोदम्"। उशीरं शीतलं तिक्तं दाहक्लान्तिहरञ्च तत्। वातघ्नं ज्वरतृण्मेहनुद्रक्तं हन्ति योगतः॥ उशीरं खेददौर्गन्ध्यपित्तघ्नं स्निग्धतिक्तकम्। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ उशीरं शीतलं तिक्तं दाहश्रमहरं परम्। पित्तज्वरार्त्तिशमनं जलसौगन्ध्यदायकम्॥ राजनिघण्टुः॥ उशीरं पाचनं शीतं स्तम्भनं लघु तिक्तकम्। मधुरं ज्वरहृद्वान्तिमदनुत् कफपित्तहृत्॥ तृषास्त्रविषविसर्पदाहकृच्छ्रव्रणापहम्। भावप्रकाशः॥ उशीरं स्वेददौर्गन्ध्यदाहपित्तास्त्ररोगजित्। राजवल्लभः। अथ सुगन्धितृणानां वैद्यकोक्तगुणाः लिख्यन्ते–

१। लामज्जकम्। *Andropogon nardus.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा– "सुनालम्", "इष्टकापथकम्", "दीर्घमूलम्", "जलाश्रयम्"॥ लामज्जकं भवेत्तिक्तं हिमं चात्यन्तमिष्यते। पित्तप्रशान्तिजननं विषरक्तविनाशनम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ लामज्जकं हिमं तिक्तं मधुरं वातपित्तजित्। तृड्दाहश्रममूर्च्छार्त्तिरक्तपित्तज्वरापहम्॥ राजनिघण्टुः॥ लामज्जकं हिमं तिक्तं लघु दोषत्रयास्त्रजित्। त्वगामयखेदकृच्छ्रदाहपित्तास्त्ररोगनुत्॥ भावप्रकाशः॥

२। कत्तृणम् रोहिषम्। *Andropogon laniger.*

कत्तृणं श्वासकासघ्नं हृद्रोगशमनं परम्। विसूच्यजीर्णशूलघ्नं कफपित्तास्त्रनाशनम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ कुतृणं दशनामाख्यं कटुतिक्तकफापहम्। शस्त्रशल्यादिदोषघ्नं बालग्रहविनाशनम्॥ राजनिघण्टुः॥ रोहिषं तुवरं तिक्तं कटुपाकं व्यपोहति। हृत्कण्ठव्याधिपित्तास्त्रशूलकासकफज्वरान्॥ भावप्रकाशः॥

३। अन्यद्रोहिषकम्, दीर्घरोहिषकम्। *Andropogon Martine.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा– "दीर्घनालम्", "दृढच्छदम्", "तिक्तसारम्", "कुत्सितम्"॥ दीर्घरोहिषकं तिक्तं कटूष्णं कफवातजित्। भूतग्रहविषघ्नञ्च व्रणक्षतविरोपणम्॥ राजनिघण्टु:॥

४। कपटम् (कत्तृणभेद:)। परिचयज्ञापिका संज्ञा– "गन्धवधू:"। गुणा:–कफवातहरं चोष्णं दीपनं रक्तपित्तजित्। धन्वन्तरीयनिघण्टु:॥

५। गुण्ठ: (कत्तृणभेद:)। उत्पत्तिबोधिका संज्ञा–"शृङ्गभेदी"। परिचयज्ञापिका संज्ञा–"पृथुकन्दक:"। गुणा:–कषायानुरस: स्वादु: शीतलो मूत्रकृच्छ्रहा। रक्तपित्तहरो गुण्ठो रज:शुक्रविशोधन:॥ धन्वन्तरीयनिघण्टु:॥

६। भूतृण:। *Andropogon Citrarum.* **परिचयज्ञापिका संज्ञा– "मालातृण:", "प्रलम्ब:", "अतिच्छत्रक:", "गुह्यबीज:", "अतिगन्ध:", "पुंस्त्वविग्रह:"। उत्पत्तिबोधिका संज्ञा–"शृङ्गरोह:"। भूतृणो लघुरुष्णाश्च रूक्ष: श्लेष्मामयापह:। अस्य प्रयोग: सहसा हन्ति जन्तून् समुद्धतान्॥ अन्यच्च–भूतृण: कटुतिक्तश्च वातसन्तापनाशन:। हन्ति भूतग्रहावेशान् विषदोषांश्च दारुणान्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टु:॥ एतेन राजनिघण्टूक्तेर्गतार्थत्वम्। भूतृणं कटुकं तिक्तं तीक्ष्णोष्णं रेचनं लघु। विदाहि दीपनं रूक्षमनेत्र्यं मुखशोधनम्॥ अवृष्यं बहुविट्कञ्च पित्तरक्तप्रदूषणम्। भावप्रकाश:॥**

७। सुगन्धभूतृण:। गुणा:–गन्धतृणं सुगन्धि स्यादीषत्तिक्तं रसायनम्। स्निग्धं मधुरशीतञ्च कफपित्तश्रमापहम्॥ राजनिघण्टु:॥

वैद्यके व्यवहार:– (१) रक्तपित्ते उशीरम्–"उशीरकालीयक...। पृथक् पृथक् चन्दनतुल्यभागिका सशर्करास्तण्डुलधावनाप्लुता:। रक्तं सपित्तं तमकं पिपासां दाहञ्च पीडा: शमयन्ति सद्य:॥" (चि. ४ अ.)। (२) छर्द्याम् उशीरम्–"सोशीरधान्यं चणकोदकं वा" (चि. २३ अ.)। चरक:॥ ज्वरे उशीरम्–"उदकाद् द्विगुणं क्षीरं शिंशपोशीरमेव च। तत्क्षीरशेषं क्वथितं पेयं सर्वज्वरापहम्॥" (ज्वर-चि.)। भावप्रकाश:॥

विविध भाषाओं में नाम– सं.- वीरणमूलम्, नलदम्, उशीरम्, अमृणालम्, सेव्यम्, समगन्धकम् लामज्जकम्, इषकापथम्। हि.- खस, खस खस, वीरेरन मूल, गण्डरा। बं.- वरेणमूल, व्यानारमूल। म.- काला वाला, पीला वाला। गु.- कालो वालो, काला वालना, झाडनू मूल। फा.- वालदवेस। ते.- व्रहि वेलु, अवरुगड्डी, वट्रवेलुनल्व। ता.- वेतवेर वट्टिवेर। उ.- वीणा, गन्ध वीजा। ले.- Andropogon Squorrosus (एण्ड्रोपोगोन स्क्वेरोसस)।

परिचय ज्ञापिका संज्ञा- सुगन्धित मूल।

गुण प्रकाशिका संज्ञा- जलामोदम्।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- उशीर (खस) शीतल है तथा तिक्त रस प्रधान है और वह दाह, एवं क्लान्ति को दूर करता है; इसके अतिरिक्त वातनाशक है और ज्वर, प्यास तथा प्रमेह को दूर करता है एवं रक्त नाशक योगों के साथ प्रयोग करने से रक्त विकार को दूर करता है। खस स्वेद, दुर्गन्ध एवं पित्त का नाश करता है और स्निग्ध एवं तिक्त रस प्रधान है।

राज निघण्टु के अनुसार- खस शीतल है तथा तिक्त रस प्रधान है और अच्छी तरह दाह एवं श्रम को दूर करता है, पित्त ज्वर की पीड़ा को शान्त करता है तथा जल को सुगन्धित बनाता है।

भावप्रकाश के अनुसार- खस पाचक, शीतल, स्तम्भकारक, हल्का तथा तिक्त रस प्रधान है, मधुर है; ज्वर, हद्रोग, वमन तथा मद को दूर करता है; प्यास, रक्त विकार, विष विकार, विसर्प, दाह, मूत्रकृच्छ्र एवं व्रण को दूर करता है।

राजवल्लभ के अनुसार- खस स्वेद, दुर्गन्ध, दाह, पित्त विकार एवं रक्त विकार को नष्ट करता है।

इसके बाद सुगन्धित तृणों के वैद्यक शास्त्र के अनुसार गुण लिखेंगे-

(१) लामज्जक- Andropogon laniger (एन्ड्रोपोगान लेनिगर)।

परिचय ज्ञापिका संज्ञा- सुनालम्, इष्टकापथकम्, दीर्घमूलम्, जलाश्रयम्।

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- लामज्जक तिक्तरस प्रधान एवं शीतल होता है, पित्त को शान्त करता है, विष तथा रक्त विकार का नाश करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- लामज्जक, शीतल है, तिक्त-रस एवं मधुर रस वाला है तथा वात-पित्त को जीत लेता है। यह प्यास, दाह, थकावट, मूर्च्छा, पीड़ा, रक्तपित्त तथा ज्वर को दूर करता है।

भाव प्रकाश के अनुसार- लामज्जक तिक्त रस वाला, शीतल है तथा हल्का है और तीनों दोष एवं रक्तविकार को दूर करता है। यह त्वचा विकार, दाह, थकावट, मूर्च्छा, ज्वर, मूत्रकृच्छ्र तथा पित्त रोग को नष्ट करता है।

(२) कत्तृण रोहिषम्- Andropogon laniger (एन्ड्रोपोगान लेनिगर)

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- कत्तृण श्वास-कास का नाश करने वाला है तथा हृदय रोग को अच्छी तरह शान्त करता है। विसूची (हैजा), अजीर्ण तथा शूल का नाश करता है तथा कफ विकार, पित्त विकार एवं रक्त विकार को दूर करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- रोहिष (कत्तृण), दशनामाख्य कटु तथा तिक्त रस वाला एवं कफ नाशक है; शस्त्रवेध एवं शल्य आदि के दोषों को नष्ट करता है तथा बाल ग्रह का नाश करता है।

भाव प्रकाश के अनुसार- रोहिष तृण कसैला तिक्त तथा कटु रस वाला हैं और हृदय रोग, कण्ठ रोग, पित्त विकार, रक्त विकार, शूल, कास, कफ विकार तथा ज्वर को नष्ट करता है।

(३) अन्यद्रोहिषकम्, दीर्घ रोहिषकम्- Andropogon martine (एन्ड्रोपोगन मर्टिन)।

परिचय ज्ञापिका संज्ञा- दीर्घनाल, दृढच्छद, तिक्त सार, कुत्सित।

राजनिघण्टु के अनुसार- दीर्घ रोहिष तिक्त तथा कटुरस वाला, उष्णवीर्य है तथा कफ वात को नष्ट करता है। यह भूतग्रह शामक तथा विष नाशक हैं और व्रण एवं क्षत का रोपण करने वाला है।

(४) कपटम् (कत्तृण के भेद)

परिचय ज्ञापिका संज्ञा- गन्धवधू।

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- कपट कफ विकार तथा वात विकार का नाश करने वाला, उष्णवीर्य, जाठराग्नि दीपक तथा रक्तपित्त नाशक है।

(५) गुण्ठ (कत्तृण भेद)

उत्पत्ति बोधिका संज्ञा- शृङ्गभेदी। **परिचय ज्ञापिका संज्ञा**- पृथुकन्दक।

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- गुण्ठ कषायानुरस, स्वादिष्ट, शीतल, मूत्र कृच्छ्र का नाश करने वाला, रक्त पित्त को दूर करने वाला तथा रज एवं शुक्र को शुद्ध करने वाला है।

(६) भूतृण- Andropogon citrarum **(एण्ड्रोपोगोन सिट्रेरम)**।

परिचय ज्ञापिका संज्ञा- मालातृण, प्रलम्ब, अनिच्छत्रक, गुह्यबीज, अतिगन्धा, पुंस्वविग्रह। **उत्पत्ति बोधिका संज्ञा**- शृङ्गारोह:।

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- भूतृण लघु, उष्णवीर्य, रूक्ष तथा कफ रोग का नाश करता है। इसका प्रयोग शीघ्र ही समुद्धत जन्तुओं का नाश करता है और भूतृण कटु तथा तिक्तरस वाला, वातजन्य सन्ताप का नाश करने वाला है और भूतग्रह के आवेश एवं भयंकर विष दोष को नष्ट करता है। इससे राज निघण्टु के कहे गये तर्क से अनुगत होता है।

भावप्रकाश के अनुसार- भूतृण कटु तथा तिक्त रस वाला, तीक्ष्ण एवं उष्ण है तथा रेचन एवं लघु है। यह विदाह कारक, दीपक, रुचिकारक, नेत्र के लिए हितकर तथा मुख शोधक है, अवृष्य है तथा अधिक मल उत्पन्न करने वाला और पित्त एवं रक्त को दूषित करने वाला है।

(७) सुगन्ध भूतृण

राजनिघण्टु के अनुसार- सुगन्ध तृण सुगन्धित है तथा थोड़ा तिक्त है और रसायन है। यह स्निग्ध, मधुर तथा शीतल है ओर कफ विकार, पित विकार एवं थकावट को दूर करता है।

वैद्यक शास्त्र में उशीर का प्रयोग-

(१) रक्तपित में उशीर का प्रयोग- उशीर तथा कालीयक को अलग लेकर उसमें समान भाग चन्दन चूर्ण और शक्कर मिलाकर चावल के धोअन के साथ सेवन करने से रक्त पित्त, तमक, श्वास, पिपासा तथा दाह की पीड़ा को शीघ्र ही शान्त करता है (च.चि.अ.४)। **(२) छर्दि (वमन) में उशीर का प्रयोग**- खस, धनिया तथा चणक (चना के जल) का सेवन करने से वमन शान्त होता है (च.चि.अ.२३)।

ज्वर में खस का प्रयोग- जल के दुगुना दूध लेकर उसमें शीशम तथा खस का क्वाथ मिलाकर पकावे। दूध मात्र शेष रह जाय तो प्रयोग करे। यह सभी प्रकार के ज्वर को नष्ट करता है (भाव प्रकाश ज्वर-चि.)।

ANDROPOGON MURICATUS

Constituents—A volatile oil, a resinous substance of a deep red brown colour, a colouring matter, a salt of lime, oxide of iron and woody matters. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II, p. 637).

Actions and uses—Tonic, stimulant, antispasmodic, diaphoretic, diuretic and emmenagogue; given in flatulence, fever, deranged menstruation, hysteria, convulsions. rheumatism, gout, & c; also used in perfumery. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 637).

ANDROPOGON LANIGER

Constituents—The grass contains an essential oil.

Actions and uses—Tonic, stimulant, diaphoretic and carminative; given in fever, in enlarged glands, dyspepsia, hysteria and cough. A paste of the roots is used as an inunction to the body in fevers. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 636).

ANDROPOGON CITRARUM

Constituents—The volatile oil—lemons grass oil, oil of verbena, Indian Melissa oil, contains citrol and is obtained by distillation from the fresh plant. The oil is of a pale sherry colour, and of a pungent and agreeable taste, approaching that of ginger. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II, p. 636).

एरण्डः

Recinus Communis

एरण्डः, रुवुः, रुवुकः, उरुवूकः। *Recinus communis.*

तद्भेदाः–श्वेतैरण्डः, रक्तैरण्डः, स्थूलैरण्डः। परिचयज्ञापिका संज्ञा–"उत्तानपत्रकः" "दीर्घदण्डकः", "त्रिपुटीफलः", "चित्रबीजः", "स्नेहप्रदः"। गुणप्रकाशिका संज्ञा–"वातारिः"। एरण्डोऽपि रसे तिक्तः स्वादूष्णोऽनिलनाशनः। उदावर्त्तप्लीहगुल्मवस्तिशूलान्त्रवृद्धिनुत्॥ गुरुर्वातप्रशमनो विकाराञ् छोणिताञ्जयेत्। 'फलं' स्वादु च सक्षारं लघूष्णं भेदि वातजित्॥ एरण्डयुगलं वृष्यं स्वादु पित्तसमीरजित्। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ श्वेतैरण्डः स कटुकरसस्तिक्त उष्णः कफार्त्तिध्वंसं धत्ते ज्वरहरमरुत्कासहारी रसार्हः। 'रक्तैरण्डः' श्वयथुपचनः शान्तिरक्तार्त्तिपाण्डुभ्रान्तिश्वासज्वर-कफहरोऽरोचकघ्नो लघुश्च॥ राजनिघण्टुः॥ एरण्डयुग्मं मधुरमुष्णं गुरु विनाशयेत्। शूलशोथ-कटीवस्तिशिरःपीडोदरज्वरान्॥ व्रध्नश्वासकफानाहश्वासकुष्ठाममारुतान्। 'एरण्डपत्रं' वातघ्नं कफक्रिमिविनाशनम्॥ मूत्रकृच्छ्रहरञ्चापि पित्तरक्तप्रकोपनम्। 'वातार्यग्रदलं' गुल्मवस्तिशूलहरं परम्॥ कफवातकृमीन् हन्ति वृद्धिं सप्तविधामपि। 'एरण्डफल'मत्युष्णं गुल्मशूलानिलापहम्॥ यकृत्प्लीहो-दरार्शोघ्नं कटुकं दीपनं परम्। तद्वन्मज्जा' च विड्भेदी वातश्लेष्मोदरापहः॥ भावप्रकाशः॥ एरण्डतैलं मधुरं गुरु श्लेष्माभिवर्द्धनम्। वातासृग्गुल्महृद्रोगजीर्णज्वरहरं परम्॥ राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) ज्वरे एरण्डमूलम्–"एरण्डमूलोत्क्वथितं ज्वरात् सपरिकर्त्तिकात्। पयो विमुच्यते पीत्वा...।" (चि. ३ अ.)। (२) प्रवाहिकायाम् एरण्डमूलम्–"शृतमैरण्डमूलेन... पयः। एवं क्षीरप्रयोगेण रक्तं पिच्छावशाम्यति। शूलं प्रवाहिका चैव विबन्धश्चोपशाम्यति॥" (चि. १० अ.)। (३) उदरे एरण्डमूलम्–"...उरुवूकशृतेन वा...।" (चि.१८अ.)। (४) कासे एरण्ड-पत्रक्षारः–"एरण्डपत्रक्षारं वा व्योषतैलगुडान्वितम्। लिह्यात्...।" (चि. २२ अ.)। (५) वातरक्ते एरण्डबीजम्– "क्षीरपिष्टं... एरण्डस्य फलानि च। कुर्याच्छूलनिवृत्त्यर्थं...।" (चि. २९ अ.)। चरकः॥ (१) वृद्धौ एरण्डतैलम्– "सक्षीरं वा पिबेन्मासं तैलमेरण्डसम्भवम्।" (चि. १९ अ.)। (२) वाताभिष्यन्दौ एरण्डः–"एरण्डपल्लवे मूले त्वचि वाजं पयः शृतम्। ...सुखोष्णं सेचने हितम्॥"

(उ. ९ अ.)। सुश्रुतः॥ रात्र्यान्ध्ये एरण्डपत्रम्–"...पल्लवानि च भक्षयेत्। तथातिमुक्तकैरण्ड...॥" (उ. १३ अ.)। वाग्भटः॥ (१) ज्वरदाहे एरण्डपत्रम्–"ततो दाहे तु सञ्जाते पत्रैरेरण्डसम्भवैः। शीतलैर्द्धारितैरङ्गे दाहं तस्यापनोदयेत्॥" (म.ख.१मः भा.)। (२) कटीशूले गृध्रस्याञ्च एरण्डबीजम्–"निष्कुष्यैरण्डबीजानि पिष्ट्वा क्षीरे विपाचयेत्। तत्पानन्तु कटीशूले गृध्रस्यां परमौषधम्॥" (म. ख. २यः भा.)। (३) आमवाते एरण्डतैलम्–"आमवातगजेन्द्रस्य शरीरवनचारिणः। एक एव निहन्त्याशु एरण्डगजकेशरी॥" (म.ख. २यः भा.)। (४) शूले एरण्डमूलम्–"विश्वमेरण्डजं मूलं क्वाथयित्वा जलं पिबेत्। हिङ्गुसौर्वचलोपेतं सद्यः शूलनिवारणम्॥" (म. ख. ३यः भा.)। (५) स्थौल्ये एरण्डमूलम्–"यद्वोरुवूकमूलं मधुदिग्धं स्थाप्यते निशां सकलाम्। तस्य सलिलस्य पानाज् जठरे वृद्धिं शमं याति॥" (म. ३यः भा.)। भावप्रकाशः॥ शूले एरण्डतैलम्–"तैलमेरण्डजं वापि मधुकक्वाथसंयुतम्। शूलं पित्तादभवं हन्याद् गुल्मं पैत्तिकमेव च॥" (शूल-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) मेदोवृद्धिविनाशाय वातारिपत्रक्षारः–"क्षारं वातारिपत्रस्य हिङ्गुयुक्तं पिबेन्नरः। मेदोवृद्धिविनाशाय भक्तमण्डसमन्वितम्॥" (मेदोऽधिकारः)। (२) कर्णशूले एरण्डपत्रम्–"एरण्डपत्रपुटपाकविपाचिताम्बु तुल्यार्द्रकस्य सलिलं मधुकेन मिश्रम्। पक्त्वा च तैललवणेन युतं सुखोष्णं कर्णे रुजं हरति तत्क्षणमेव दत्तम्॥" (कर्ण-रोगाधिकारः)। (३) नवदूक्कोपे एरण्डपत्रम्–"एरण्डपत्रसप्तकरसोऽथवा सैन्धवसंयुक्तः। नवदूक्कोपशमनः...॥" (नेत्ररोगाधिकारः)। वङ्गसेनः॥

विविध भाषाओं में नाम– सं.– एरण्डः, रुवुः, रुवुकः, उरुवूकः, चित्रकः। हिं.– अरण्ड, अरण्डी, रेंडी। बं.– भेरेडा। म.– एरण्ड, एण्डीयें बीज। गु.– एरण्डी। अं.– Castor seed (कैस्टर सीड)। ले.– Recinus communis (रीसीनुस् कोम्यूनिस)।

एरण्ड के भेद– श्वेत एरण्ड, रक्त एरण्ड, स्थूलैरण्ड।

परिचय ज्ञापिका संज्ञा– उत्तान पत्रक, दीर्घ दण्डक, त्रिपुटीफल, चित्र बीज, स्नेह प्रद। **गुण प्रकाशिका संज्ञा–** वातारि।

गुण-दोष–

धन्वन्तरी निघण्टु के अनुसार– एरण्ड तिक्तरस प्रधान, स्वादिष्ट तथा उष्ण है और वात नाशक है। यह उदावर्त, प्लीहा, गुल्म, वस्ति शूल तथा अम्ल वृद्धि को दूर करता है। यह गुरु है, वात-शामक है तथा रक्त सम्बन्धि विकारों को दूर करता है। एरण्ड का फल स्वादिष्ट, क्षारयुक्त, हल्का, उष्ण, भेदन करने वाला तथा वात को दूर करने वाला है। सभी प्रकार का एरण्ड वीर्यवर्द्धक, स्वादिष्ट तथा पित्त-वात को दूर करने वाला है।

राजनिघण्टु के अनुसार– सफेद एरण्ड कटु तथा तिक्त रस वाला और उष्ण है। यह कफ विकार का नाश करता है, ज्वर को दूर करता है, वात विकार तथा कास को दूर करता है और रस के योग्य है। **लाल एरण्ड** शोथ को पचाने वाला, शान्ति, रक्त जन्य पीड़ा, भ्रान्ति, श्वास ज्वर, एवं कफ को दूर करने वाला तथ अरोचक का नाश करने वाला एवं हल्का है।

भाव प्रकाश के अनुसार– दोनों एरण्ड मधुर रस वाले, उष्ण तथा गुरु हैं और ये शूल, शोथ, कटि पीड़ा, वस्ति पीड़ा, शिर की पीड़ा, उदर रोग एवं ज्वर का नाश करते हैं। इनके अतिरिक्त व्रण, श्वास रोग कफ, आनाह, श्वास रोग, कुष्ठ तथा आम वात को नष्ट करते हैं। **एरण्ड का पत्र** वात नाशक, कफ रोग तथा क्रिमिरोग

नाशक, मूत्र कृच्छ्र को दूर करने वाला तथा पित्त रक्त को प्रकुपित करने वाला है। **एरण्ड पत्र का अग्र दल** गुल्म रोग तथा वस्ति शूल को अच्छी तरह दूर करता है। यह कफ विकार, वात विकार, कृमि रोग एवं सात प्रकार की वृद्धि को नष्ट करता है। **एरण्ड फल** अत्यधिक उष्ण है और गुल्म रोग, शूल रोग तथा वात विकार को नष्ट करता है। इनके अतिरिक्त यकृत रोग, प्लीहा रोग, उदर रोग तथा अर्श रोग का नाश करता है ओर यह कटु रस वाला और उत्तम जाठराग्नि दीपक है। **एरण्ड फल की मज्जा** मल का भेदन करने वाली, वातरोग, कफ रोग तथा उदर रोग को दूर करने वाली है।

राज वल्लभ के अनुसार- एरण्ड का तैल मधुर, गुरु तथा कफ वर्द्धक है। यह वात रोग, रक्तविकार, गुल्म रोग, हृदय रोग, अजीर्ण तथा ज्वर को अच्छी तरह दूर करता है।

वैद्यक शास्त्र में एरण्ड का व्यवहार-

(१) ज्वर में एरण्ड मूल का प्रयोग- एरण्ड मूल के क्वथित जल का पान कर मनुष्य उपद्रव युक्त ज्वर से मुक्त हो जाता है (च.चि.अ.३)। **(२) प्रवाहिका में एरण्ड मूल का प्रयोग**- एरण्ड मूल के क्वाथ के साथ सिद्ध दूध या जल के प्रयोग से रक्त प्रवाहिका तथा पिच्छा प्रवाहिका शान्त होती है। इसी प्रकार शूल, प्रवाहिका तथा विबन्ध शान्त होते हैं (च.चि.अ.१०)। **(३) उदर रोग में एरण्ड मूल के क्वाथ का प्रयोग**- एरण्ड मूल के क्वाथ का पान करने से उदर रोग शान्त होता है (च.चि.अ.१८)। **(४) कास रोग में एरण्ड पत्र के क्षार का प्रयोग**- एरण्ड के पत्र का क्षार (अर्क क्षार) व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) का चूर्ण, तैल तथा गुड के साथ चाटने से कास रोग शान्त होता है (च.चि.अ.२२)। **(५) वातरक्त में एरण्ड बीज का प्रयोग**- एरण्ड के फल को दूध के साथ पीसकर वातरक्त तथा शूल को दूर करने के लिए पान करे (च.चि.अ.२९)।

(१) वृद्धि रोग में एरण्ड तैल- वृद्धि रोग में क्षीर मिलाकर एरण्ड का तैल एक मास तक पान करे (सु.सं.चि.अ.१९)। **(२) वाताभिष्यन्द में एरण्ड का प्रयोग**- एरण्ड के पल्लव, मूल तथा त्वचा के साथ पकाया दूध थोड़ा-थोड़ा गरम सेक करने से वाताभिष्यन्द शान्त होता है (सु.स.अ.९)।

(१) रात्र्यान्ध्य में एरण्ड पत्र का प्रयोग- रात्र्यान्ध्य में एरण्ड के पत्तों का भक्षण करे तथा अतिमुक्त एरण्ड का प्रयोग करे (वाग्भट उ.अ.१३)।

(१) ज्वर दाह में एरण्ड पत्र का प्रयोग- ज्वरजन्य दाह में एरण्ड पत्र का शीतल रस शरीर के ऊपर धारण कर दाह को दूर करे। (भा.म.ख.१म.भा.) **(२) कटिशूल तथा गृध्रसी में एरण्ड बीज का प्रयोग**- एरण्ड बीज का छिलका निकाल कर तथा उसको पीस कर दूध में पकावे। इसका पान करना (सेवन करना) कटिशूल तथा गृध्रसी में उत्तम औषध है (भा.म.२य.भा.)। **(३) आमवात में एरण्ड तैल का प्रयोग**- शरीर रूपी वन में विचरण करने वाला आमवात रूपी हाथी का एक ही एरण्ड रूपी शेर शीघ्र ही नाश करता है (भा.म.ख.२य.भा.)। **(४) शूल रोग में एरण्ड मूल का प्रयोग**- सोंठ तथा एरण्ड मूल क्वाथ कर उसमें हींग तथा सौवर्चल नमक मिलाकर पान करे। यह शीघ्र ही शूल को दूर करता है (भा.म.ख.३य.भा.)। **(५) स्थौल्य में एरण्ड मूल का प्रयोग**- एरण्ड के मूल को काटकर मधु में रात भर रक्खे। उसके बाद उसके जल का पान करने से वृद्धि रोग (स्थूलता) शान्त हो जाता है (भा.म.ख.३य.भा.)।

शूल में एरण्ड तैल का प्रयोग- एरण्ड का तैल मुलेठी के क्वाथ में मिलाकर पान करने से पित्त जन्य शूल को तथा पैत्तिक गुल्म रोग को नष्ट करता है (शू.चि.चक्रदत्त)।

(१) मेदो वृद्धि का नाश करने के लिए एरण्ड पत्र के क्षार का प्रयोग- एरण्ड के पत्ते का क्षार हींग

मिलाकर मेदो वृद्धि रोग का नाश करने के लिए माड़ तथा भात के साथ पान करे (वंग.मेदोऽधिकार)। (२) **कर्णशूल में एरण्ड पत्र का प्रयोग**- एरण्ड के पत्र का पुटपाक विधि से रस निकालकर उसमें रस के बराबर अदरक का रस मिलाकर तथा मुलेठी का रस मिलाकर तैल पकावे और उसमें सेन्धा नमक मिला दे और थोड़ा गरम-गरम तैल कान में छोड़े। यह कान की पीड़ा को शीघ्र ही शान्त करता है (वंग.कर्ण रोगाधिकार)। (३) **नवीन नेत्र रोग के प्रकोप में एरण्ड पत्र का प्रयोग**- एरण्ड के सात पत्तों का रस अथवा सेन्धा नमक का जल नेत्र में छोड़ने से नवीन नेत्र का प्रकोप शान्त होता है (वङ्गसेन, नेत्र रोगाधिकार)।

Constituents—Fixed oil 45 p.c. an inert alkaloid, recinin, proteids 20 p.c.; starch, mucilage, sugar, ash 10 p.c.; also a poisonous aluminoid principle called ricin.

Actions and uses—All the constituents of the seeds except the oil are drastic, generally given with ginger tea or with decoction of dashamuladi kvath. The oil is non-irritant; when it reaches the duodenum it is decomposed by the pancreatic juice into recinoleic acid which irritates the bowels, stimulates the intestinal glands and the muscular coat and cause purgation; it does not stimulate the liver. It acts in 4 or 5 hours, causing liquid stools without pain or griping and has a sedative effect on the intestines. With glycerine the effects of the oil are increased. Recinoleic acid is absorbed into the blood tissues and is excreted with the human milk which when sucked imparts to the child its purgative action. Ricin, a toxic ferment is a violent irritant of the intestines, kidneys and bladder. It gives rise to inflammation of the bile duct and very often to jaundice and to dysuria. The oil is best given in flatulence, constiveness, fever, rheumatism and in inflammation of the genito urinary organs and Nephritis, Cystitis, Gonorroea, Calculi, Stricture of rectum or urethra. In Diarrhoea due to the presence of irritating substances in the intestines leading to congestion or to excessive secretions it acts without exhausting the strength. It is used after operations on the abdominal or pelvic viscera. It overcomes constipation of Typhoid fever, during pregnancy and before labour and in post-partern conditions. In intestinal or renal colic it is given with the juice of fresh ginger with prompt relief. It expels lumbrici. In Enteritis, Peritonitis and Dysentery it is given with laudanum. If depression exists, oil of turpentine 5 to 10 ms. may be added. A poultice of the crushed seeds is used to promote suppuration, to mature boils and to reduce gouty and rheumatic swellings; as a galactagogue varalians or poultices of the leaves are applied to the hypogastrium to increase the flow of menses. The root bark is an alterative and given in chornic visceral enlargements and in chronic skin diseases. (*Materia medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 553).

एर्वारु-प्रभृतयः

Cucumis utillissimus

कर्कटी, ए(उ)र्वारुः। *Cucumis utillissimus.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा–"लोमशा", "तोयफला"। उर्वारुकं पित्तहरं सुशीतलं मूत्रामयघ्नं मधुरं रुचिप्रदम्। सन्तापमूर्च्छापहरञ्च तृप्तिदं वातप्रकोपाय घनन्तु सेवितम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टू राजनिघण्टुश्च॥ कर्कटी शीतला रूक्षा ग्राहिणी मधुरा गुरुः। रुच्या पित्तहरा सामा पक्वा तृष्णाग्निपित्तकृत्॥ भावप्रकाशः॥ अथ त्रपुसस्य तद्विशेषाणां वालुकादीनाञ्च वैद्यकोक्तगुणाः

लिख्यन्ते—(१) 'त्रपुसं' छर्दिहृत् प्रोक्तं मूत्रवस्तिविशोधनम्। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ स्यात् त्रपुसीफलं रुच्यं मधुरं शिशिरं गुरु। भ्रमपित्तविदाहार्त्तिवान्तिहृद्बहुमूत्रदम्॥ राजनिघण्टुः॥ (२) 'वालुकगुणाः'—रक्तपित्तहरं भेदि लघूष्णं पक्वमग्निकृत्। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ वालुकी मधुरा शीताऽऽध्मानहृद्या श्रमापहा। पित्तप्रशमनी रुच्या कुरुते कासपीनसौ। राजनिघण्टुः॥ (३) 'कर्कटी' मधुरा शीता त्वतिक्ता कफपित्तजित्। रक्तदोषहरा पक्वा मूत्ररोधार्त्तिनाशनी॥ मूत्रावरोधशमनं बहुमूत्रकारि कृच्छ्राश्मरीप्रशमनं विनिहन्ति पित्तम्। वान्तिश्रमघ्नबहुदाहनिवारि रुच्यं श्लेष्मापहं लघु च कर्कटिकाफलं स्यात्। राजनिघण्टुः॥ (४) 'षड्भुजागुणः'—तिक्तं बाल्ये तदनु मधुरं किञ्चिदम्लञ्चपाके। निष्पक्वं चैतदमृतसमं तर्पणं पुष्टिदायि। वृष्यं दाहश्रमविशमनं मूत्रवृद्धिञ्च धत्ते। पित्तोन्मादापहरकफदं षाड्भुजं वीर्यकारि॥ राजनिघण्टुः॥ (५) 'शीर्णवृन्तं' लघु स्वादु भेद्युष्णं वह्निपित्तकृत्। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ (६) 'मृगाक्षी' कटुका तिक्ता पाकेऽम्ला वातनाशनी। पित्तकृत् पीनसहरा दीपनी रुचिकृत् परा। राजनिघण्टुः॥ (७) 'चीनाकर्कटिका' रुच्या शिशिरा पित्तनाशनी। मधुरा तृप्तिदा हृद्या दाहशोषापहारिणी॥ राजनिघण्टुः॥ (८) 'चिर्भिट' मधुरं रूक्षं गुरु पित्तकफापहम्। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ बाल्ये तिक्ता चिर्भिटा किञ्चिदम्ला गौल्योपेता दीपनी सा च पाके। शुष्का रूक्षा श्लेष्मवातारुचिघ्नी जाड्यघ्नी सा रोचनी दीपनी च। राजनिघण्टुः॥ (९) 'गोपालकर्कटी' शीता मधुरा पित्तनाशनी। मूत्रकृच्छ्राश्मरीमेहदाहशोषनिवर्त्तनी॥ राजनिघण्टुः॥ (१०) 'डङ्गरी' शीतला रुच्या दाहपित्तास्त्रदोषजित्। शोषहृत् तर्पणी गौल्या जाड्यहा मूत्ररोधनुत्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ बालं डाङ्गरिकं फलं सुमधुरं शीतञ्च पित्तापहम्। तृष्णादाहनिवर्हणं च रुचिकृत् सन्तर्पणं पुष्टिदम्। वीर्य्योन्मेषकरं बलप्रदमिदं भ्रान्तिश्रमध्वंसनम्। पक्वं चेत् कुरुते तदेव मधुरं तृड्दाहरक्तं गुरु॥ राजनिघण्टुः॥ वल्लीफलानां प्रवरं (११) 'कुष्माण्ड' वातपित्तजित्। वस्तिशुद्धिकरं वृष्यं हृद्यं चेतोविकारजित्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ मूत्राघातहरं प्रमेहशमनं कृच्छ्राश्मरीछेदनम्। विण्मूत्रग्लपनं तृषार्त्तिशमनं जीर्णाङ्गपुष्टिप्रदम्। वृष्यं स्वादुतरं त्वरोचकहरं बल्यञ्च पित्तापहम्। कुष्माण्डं प्रवरं वदन्ति भिषजो वल्लीफलानां पुनः। राजनिघण्टुः॥ (१२) 'मांसलफल' गुणाः—कलिङ्गो मधुरः शीतः पित्तदाहश्रमापहः। वृष्यः सन्तर्पणो बल्यो वीर्यपुष्टिविवर्द्धनः॥ राजनिघण्टुः॥ (१३) 'बन्ध्यकर्कोटकी' गुणाः—नागारिर्लूताविषजिद्धन्ति श्लेष्मविषद्वयम्। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ 'बन्ध्यकर्कोटकी' तिक्ता कटूष्णा च कफापहा। स्थावरादिविषघ्नी च शस्यते सा रसायने॥ राजनिघण्टुः॥ (१४) 'कर्कोटकी' कटूष्णा च तिक्ता विषविनाशनी। वातघ्नी पित्तहृच्चैव दीपनी रुचिकारिणी॥ कर्कोटकीयुगं तिक्तं हन्ति श्लेष्मविषद्वयम्। मधुना च शिरोरोगे कन्दस्तस्याः प्रशस्यते॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ (१५) 'करका' गुणाः—कारवल्ली सुतिक्तोष्णा दीपनी कफवातजित्। अरोचकहरा चैव रक्तदोषकरी च सा॥ राजनिघण्टुः॥ (१६) 'कुडुहुञ्ची' कटुरुष्णा तिक्ता रुचिकारिणी च दीपनदा। रक्तानिलदोषकरी पथ्याऽपि सा फले प्रोक्ता॥ कारलीकन्दमर्शोघ्नं मलरोधविशोधनम्। योनिनिर्गतदोषघ्नं गर्भस्त्रावविषापहम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥

वैद्यके व्यवहारः—अश्मरीशर्कराकृच्छ्रेषु एर्वारुबीजम्— "एर्वारुबीजं...। द्राक्षारसेनाश्मरीशर्करासु सर्वेषु कृच्छ्रेषु प्रशस्त एषः"। (चि. २६ अ.)। चरकः॥ (१) मूत्ररोधजे उदावर्त्ते एर्वारुबीजम्—

"एर्वारुबीजतोयेन पिबेद्वालवणीकृतम् (उ.५५अ.)। (२) मूत्राघाते एर्वारुबीजम्– "कल्कमेर्वारुबीजानामक्षमात्रं ससैन्धवम्। धान्याम्लयुक्तं पीत्वैव मूत्रकृच्छ्रात् प्रमुच्यते (उ. ५८ अ.)। सुश्रुतः॥

विविध भाषाओं में नाम– सं.– एर्वारुः, कर्कटी। हि.– ककड़ी, ककरी, कर्करा, कांकड़ी। बं.– कांकूड़, बड़कांकुड। म.– काकड़ी, वालुक। क.– भुल्लु सवति, क्येय सौत। ते.– दोष काया, नक्कदोसान। फा.– ख्यारजाव, ख्यारदराज़। अ.– किस्साकदस। अं.– Cucumber (क्यूक्यूम्बर)। ले.– Cucumis utillissimus (क्यूक्यूमिस यूटिलिसिमस)।

परिचय ज्ञापिका संज्ञा– लोमशा, तोयफला।

गुण-दोष–

धन्वन्तरीय एवं राजनिघण्टु के अनुसार– उर्वारुक (ककड़ी) पित्त नाशक तथा शीतल है और मूत्र रोग को नष्ट करती है, मधुर है तथा रुचिकारक है। संताप तथा मूर्च्छा को दूर करता है तथा तृप्तिदायक है। बरसात में खाने से वात दूर होता है।

भाव प्रकाश के अनुसार– ककड़ी शीतल, रूक्ष, ग्राही, मधुर तथा गुरु है और रुचिकारक एवं पित्तनाशक है। कच्ची ककड़ी प्यास, जाठराग्नि तथा पित्त कारक है।

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार– इसके बाद ककड़ी के विशेष भेद वालुक आदि के वैद्यक शास्त्र में कहे गये गुणों को लिखेंगे।

१. त्रपुस के गुण–

धन्वन्तरी निघण्टु के अनुसार– त्रपुस वमन को दूर करने वाला कहा गया है।

राजनिघण्टु के अनुसार– ककड़ी का फल रुचिकारक, मधुर, शीतल तथा गुरु है और वह भ्रम, पित्त विकार, विदाह, पीड़ा तथा वमन को दूर करता है तथा मूत्र को बढ़ाने वाला है।

२. वालुका के गुण–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार– वालुका रक्त पित्त को दूर करने वाला, मल का भेदन करने वाला, हल्का तथा उष्ण है और पका हुआ वालुका जाठराग्निवर्द्धक है।

राज निघण्टु के अनुसार– वालुकी मधुर रस वाली तथा शीतल है और आध्मान को दूर करती है या श्रम को दूर करने वाली है। यह पित्त को शान्त करने वाली, रुचिकारक है तथा कास एवं पीनस (प्रतिश्याय) को बढ़ाने वाली है।

३. कर्कटी के गुण–

राजनिघण्टु के अनुसार– ककड़ी मधुर रस वाली, शीतल तथा तिक्त रस वाली है और कफ एवं पित्त को जीत लेती है। पकी हुई ककड़ी रक्त दोष को दूर करने वाली है तथा मूत्रावरोध तथा पीड़ा का नाश करने वाली है। यह मूत्रावरोध को शान्त करने वाली तथा अधिक मूत्र को बढ़ाने वाली है; इनके अतिरिक्त मूत्रकृच्छ्र तथा अश्मरी रोग को शान्त करने वाली है तथा पित्त को शान्त करती है। यह वमन तथा श्रम का नाश करने वाली है और अधिक क्षार को दूर करने वाली एवं रुचिकारक है, कफनाशक तथा हल्का है।

४. षड्भुजा के गुण-

राजनिघण्टु के अनुसार- षट्कोण वाली ककड़ी बाल्य काल में तिक्त रस वाली, उसके बाद मधुर रस वाली तथा पक्वावस्था में थोड़ा अम्ल रसवाली है। पकी हुई अमृत के समान फल वाली, तृप्तिकारक तथा पुष्टिकारक है, वीर्यवर्द्धक है, दाह तथा श्रम को शान्त करने वाली है, मूत्र को बढ़ाने वाली है, पित्तोन्माद को दूर करने वाली है, कफकारक है। यह षड्भुज वाली ककड़ी वीर्य को बढ़ाने वाली है।

५. शीर्णवृन्त के गुण-

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- शीर्ण वृन्त (सड़ी-गली भेंटी वाली) ककड़ी-हल्की, स्वादिष्ट, भेदन करने वाली, उष्ण तथा जाठराग्नि एवं पित्त को बढ़ाने वाली है।

६. मृगाक्षी के गुण-

राज निघण्टु के अनुसार- मृगाक्षी (ककड़ी के भेद) कटु तथा तिक्त रस वाली, पाक में अम्ल रस वाली है तथा वात का नाश करने वाली है, पित्त को बढ़ाने वाली, पीनस (दुष्ट प्रतिश्याय) को दूर करने वाली, जाठराग्नि को प्रदीप्त करने वाली तथा उत्तम रुचिकारक है।

७. चीना कर्कटिका के गुण-

राज निघण्टु के अनुसार- चीना कर्कटी (ककड़ी के भेद) रुचिकारक, शीतल, पित्त नाशक, मधुर, तृप्तिदायक, पित्त को बढ़ाने वाली, हृदय को बल देने वाली तथा दाह, एवं शोष (सूखा रोग) को दूर करने वाली है।

८. चिर्भिट के गुण-

राजनिघण्टु के अनुसार- चिर्भिट (ककड़ी भेद) मधुर रस वाली, रूक्ष एवं गुरु है और पित्त एवं कफ रोग को दूर करने वाली है। चिर्भिट ककड़ी बाल्यावस्था में तिक्तरस वाली, थोड़ा अम्ल रस वाली, गले के लिए हितकर तथा पाकावस्था में जाठराग्निदीपक है और शुष्कावस्था में रूक्ष, कफ विकार, वात विकार एवं अरुचि का नाश करने वाली, जड़ता को दूर करने वाली, रोचक तथा जाठराग्निदीपक है।

९. गोपाल कर्कटी के गुण-

राजनिघण्टु के अनुसार- गोपाल कर्कटी (ककड़ी के भेद) शीतल है, मधुर है तथा पित्त का नाश करने वाली है। यह मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी रोग, प्रमेह, दाह तथा सूखा रोग को दूर करने वाली है।

१०. डङ्गरी के गुण-

धन्वन्तरि निघन्टु के अनुसार- डंगरी नामक ककड़ी शीतल, रुचिकारक, दाह, पित्त विकार तथा रक्त दोष को दूर करने वाली है, शोष (सूखा रोग) को दूर करने वाली, तृप्तिकारक, गले के लिए हितकर, जड़ता नाशक, मूत्रावरोध को दूर करने वाली है।

राज निघण्टु के अनुसार- बाल डंगरी (ककड़ी के भेद) का फल अधिक मधुर, शीतल तथा पित्तनाशक है। यह प्यास तथा दाह को शान्त करती है, रुचिकारक है, तृप्तिकारक है तथा पुष्टिप्रद है। इनके अतिरिक्त वीर्य को बढ़ाने वाली है, बल को बढ़ाने वाली तथा भ्रान्ति (भ्रम) एवं थकावट को दूर करने वाली है। डंगरी (ककड़ी) पकने पर मधुर रस वाली होती है तथा प्यास, दाह एवं रक्त विकार को दूर करती है और गुरु है।

(११) कुष्माण्ड के गुण-

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- बल्ली फल उत्तम कुष्माण्ड वात-पित्त को जीत लेता है, वस्ती का शोधन करता है, वीर्यवर्द्धक है, हृदय को बल दायक है तथा चित्त विकार को जीत लेता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- बल्लीफल (कुष्माण्ड, ककड़ी के भेद) मूत्राघात को दूर करने वाला, प्रमेह को शान्त करने वाला, मुत्रकृच्छ्र तथा अश्मरी (पथरी) का भेदन करने वाला, मल तथा मूत्र को निकालने वाला, प्यास को शान्त करने वाला, जीर्ण-शीर्ण अंग को पुष्ट करने वाला, वीर्यवर्द्धक, उत्तम स्वादिष्ट, अरोचक को दूर करने वाला, बलकारक तथा पित्त का नाश करने वाला है।

१२. मांसल फल के गुण-

राज निघण्टु के अनुसार- कलिङ्ग फल (कर्कटी भेद) मधुर रस वाला, शीतल, पित्त विकार, दाह तथा श्रम को दूर करने वाला है, वीर्य वर्द्धक है, तृप्ति कारक है, बलकारक है और वीर्य को पुष्ट करने वाला एवं वीर्य को बढ़ाने वाला है।

१३. बन्ध्य कर्कोटकी के गुण-

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- बन्ध्या कर्कोटकी (ककड़ी भेद-बाँझ ककोड़ा) नेवला तथा लूता (छिपकली) विष तथा कफजन्य दोनों विषों का नाश करती है।

राज निघण्टु के अनुसार- बन्ध्या कर्कोटकी (बांझ ककोड़ा) तिक्त तथा कटुरस वाली और उष्ण है एवं कफ को दूर करने वाली है, स्थावर आदि विष को दूर करने वाली है तथा रसायन कार्य में प्रशस्त है।

१४. कर्कोटकी के गुण-

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- कर्कोटकी कटु तथा तिक्त एवं उष्ण है और विष का नाश करने वाली है। यह वात नाशक है, पित्त नाशक है, जाठराग्नि दीपक है तथा रुचिकारक है। दोनों प्रकार की कर्कोटकी तिक्त रस वाली है तथा कफज विष का नाश करती है। इसके कन्द का चूर्ण मधु के साथ शिरो रोग में प्रशस्त है।

१५. करका के गुण-

राजनिघण्टु के अनुसार- कारवल्ली तिक्त रस वाली तथा उष्ण है, जाठराग्नि दीपक है, उष्ण वात को दूर करने वाली है, अरोचक को दूर करने वाली है तथा यह रक्त दोष का नाश करने वाली है।

१६. कुडुहुञ्ची के गुण-

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- कुडुहुञ्ची (ककड़ी के भेद) कटु तथा तिक्त रस वाली है और उष्ण है। यह रुचि को बढ़ाने वाली, जाठराग्नि को प्रदीप्त करने वाली, रक्त-वात दोष को बढ़ाने वाली है। यह फल में पथ्या भी कहलाती है। कारलीकन्द अर्श का नाश करने वाला, मलावरोध को दूर करने वाला, योनिगत दोष का नाश करने वाला तथा गर्भस्राव एवं विष का नाश करने वाला है।

वैद्यक शास्त्र में एर्वारुका प्रयोग-

अश्मरी शर्करा तथा मूत्रकृच्छ्र में एर्वारु (ककड़ी) का प्रयोग- ककड़ी का बीज मुनक्का के रस के साथ अश्मरी, शर्करा तथा सभी प्रकार के मूत्रकृच्छ्र में प्रशस्त है (च.चि.अ.२६)।

(१) मूत्रावरोधज उदावर्त में एर्वारु बीज का प्रयोग- एर्वारु (ककड़ी भेद) बीज का जल के साथ नमक

मिलाकर पान करे (सु.स.उ.अ.५५)। **(२) मूत्राघात में एर्वारु बीज का व्यवहार-** एर्वारु के बीज का कल्क एक अक्ष (१० ग्राम) की मात्रा का सेन्धा नमक मिलाकर कांजी के साथ पान करने से रोगी मूत्र कृच्छ्र से मुक्त हो जाता है (सु.उ.अ.५८)।

एला

Elettaria cardmomum

सूक्ष्मैला, बहुला, त्रुटिः। स्थूलैला, त्रिपूटा, पृथ्वीका। *Elettaria cardamomum, Amomum subelatum.*

उत्पत्तिबोधिका संज्ञा–"द्राविडी"। सूक्ष्मैला मूत्रकृच्छ्रघ्नी श्वासकासक्षये हिता। सूक्ष्मैला शीतला स्वादु हृद्या रोचनदीपनी॥ स्थूलैलागुणाः–एला तिक्ता च लघ्वी स्यात् कफवातविषव्रणान्। वस्तिकण्डूरुजो हन्ति मुखमस्तकशोधनी॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः। एलाद्वयं शीतलतिक्तमुक्तं सुगन्धि पित्तार्त्तिकफापहारि। करोति हृद्रोगमलार्त्तिवस्तिपुंस्त्वघ्नमत्र स्थविरा गुणाढ्या॥ राजनिघण्टुः॥

वैद्यके व्यवहारः–मूत्रे त्वभिहते एला–"एलामप्यथ मद्येन..."। (उ. ५५ अ.)। सुश्रुतः॥ कफजे मूत्रकृच्छ्रे एला–"पिबेन्मद्येन सूक्ष्मैलां धात्रीफलरसेन वा।" (चि. ११ अ.)। वाग्भटः॥ हृद्रोगे सूक्ष्मैला–"सूक्ष्मैला मागधीमूलं प्रलीढं सर्पिषा सह। नाशयत्याशु हृद्रोगं गुल्मानपि विशेषतः।" (हृद्रोगाधिकारे)। वङ्गसेनः।

विविध भाषाओं में नाम–

सूक्ष्मैला– संस्कृत- सूक्ष्मैला, उपवुञ्चिका, तुत्था, कोरङ्गी, द्राविडी। बं.- छोट इलायचि, गुजराती इलायचि। गु.- एलची कागदी, नानी एलची। म.- बारिकवेलदोड़े। ते.- चिल्वयाल्वकुल्लु, एल्लकाया, एलाकु, चिन्न एलकला। द्रा.- एलोकुलकायो चिन्नएल। कन्नड़- किरीयालकि, फा.- हिल खुर्द, खैरवोआ, कैलकला, अं.- Selasar cardamomum (सिलसर कार्डमोमम)। ले.- Elettaria cardamomum (इलेटेरिया कार्डमोमम)।

उत्पत्तिबोधिका संज्ञा- द्राविडी।

स्थूलैला – सं.- स्थूलैला, बहुला, पृथ्वीका, त्रिपुटा, मडैला, बृहदेला। हि.- बड़ी इलायची, पूर्वी इलायची, लाल इलायची। बं.- बडइलायच, एलायच। म.- मोट वेलदोड़े। गु.- एलचा मोटी एलची, नर एलची। ते.- पेदम एलाकुलु। त.- एलम्, काट्टु, एलक्काम। क.- दोडला एलाकी, दोड्यालकी। फा.- हीलकलां। अ.- काकलहे, किवोडा। ले.- Amomum subelatum (एमोमम सबेलेटम्)।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघन्टु के अनुसार- सूक्ष्मैला – छोटे इलायची मूत्रकृच्छ्र का नाश करने वाली, श्वास, कास तथा क्षय रोग में हितकर है। यह शीतल, स्वादिष्ट है और हृदय के लिए हितकर एवं रक्तरोधक तथा दीपक है। **स्थूलैला –** बड़ी इलायची तिक्तरसवाली तथा हल्की है और कफ रोग, वात रोग, विष विकार, व्रण एवं वस्तिकण्डू का नाश करती है और मुख तथा मस्तिष्क का शोधन करती है।

राज निघण्टु के अनुसार– दोनों प्रकार की इलायची शीतल तथा तिक्तरसवाली है, यह सुगन्धित है,

पित्त विकार तथा कफ विकार को दूर करती है और यह हृदय रोग, मल विकार, वस्ति तथा पुंस्त्व का नाश करती है। यह बड़ी इलायची अधिक गुणवाली है।

इलायची का वैद्यक शास्त्र में व्यवहार–

मूत्राभिघात में इलायची का प्रयोग– मूत्ररोग में इलायची का मद्य के साथ प्रयोग करे (सु.उ.अ.५५)।

कफज मूत्रकृच्छ्र में इलायची का प्रयोग– कफजमूत्रकृच्छ्र में छोटी इलायची के चूर्ण को मद्य के साथ प्रयोग अथवा आंवला के रस के साथ पान करे (वा.क.चि.अ.११)।

हृदय रोग में छोटी इलायची का प्रयोग– छोटी इलायची तथा पीपर के मूल का चूर्ण शहद के साथ पान करे। यह शीघ्र ही हृदय रोग को दूर करता है। विशेष कर गुल्म रोग को ही दूर करता है (वंगसेन, हृदयरोगाधिकार)।

Constituents—Fixed oil 10 p.c., volatile oil—the active principle 5 p.c., potassium salt 3 p.c., starch 3 p.c., nitrogenous mucilage 2 p.c., yellow colouring matter, ligneous fibre 77 p.c., and ash 6 to 10 p.c., containing manganese. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 597).

Actions and uses—Carminative, stomachic, stimulant, aromatic and masticatory; used for the same purpose as other carminatives. As a corrective it is given in flatulence, griping of purgative and other medicines. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 597).

कङ्‌गुनी

Panicum italicum

कङ्गुः, कङ्गुनिका, प्रियङ्गुः। *Panicum italicum.*

पूर्वाचार्यकृतवर्णनम्–"कङ्गुनिका कायनीति" (चक्रसङ्‌ग्रह टीकायां शिवदासः)। "प्रियङ्गुः कायनीति प्रसिद्धा" (चरकटीकायां चक्रपाणिः)। परिचयज्ञापिका संज्ञा–"पीततण्डुलः"। गुणप्रकाशिका संज्ञा–"वातलः", "अस्थि-सम्बन्धनः"। प्रियङ्गुर्मधुरी रुच्यः कषायः स्वादुशीतलः। वातकृत् पित्तदाहघ्नो रूक्षो भग्नास्थिबन्धकृत्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टू राजनिघण्टुश्च॥ 'कङ्गुभेदवरक'-गुणाः–वरकः स्थूलकङ्गुश्च रूक्षः स्थूलप्रियङ्गुकः। वरको मधुरो रूक्षः कषायो वातपित्तकृत्॥ राजनिघण्टुः॥ कङ्गुस्तु भग्नसन्धानवातकृत् वृंहणी गुरुः। रूक्षा श्लेष्महरातीव वाजिनां गुणकृद्भृशम्॥ भावप्रकाशः॥ कङ्गुका वृंहणी गुर्वी भग्नसन्धानकृन्मता। राजवल्लभः॥ कृष्णा रक्ताश्च पीताश्च श्वेताश्चैव प्रियङ्‌गवः। यथोत्तरं प्रधानाः स्यू रूक्षा कफहराः स्मृताः॥ सुश्रुतः (सू. ४६ अ. कुधान्यवः)।

वैद्यके व्यवहारः– (१) नाडीव्रणे कङ्गुनिकामूलम्–"माहिषदधिकोद्रवान्नमिश्रं हरति चिरविरूढञ्च। भुक्तं कङ्गुनिकामूलचूर्णमतिदारुणां नाडीम्॥" (नाडीव्रण-चि.)। (२) रक्तपित्ते कङ्गुः-"श्यामाकश्च प्रियङ्गुश्च भोजनं रक्तपित्तिनाम्।" (रक्तपित्त-चि.)। चक्रदत्तः॥ अन्नद्रवाख्यशूले कङ्गुः–"प्रियङ्गुतण्डुलैः सिद्धं पायसं शार्करं हितम्॥" (शूल-चि.)। वङ्गसेनः।

विविध भाषाओं में नाम– सं.- कुंकुम, घुसृण, काश्मीर, पीतक, धीरब्राह्लीकं। हि.- केशर। बं. म. गु.- केशर। क.- कुंकुम, कुंकुमदहु, मु.- सरफरान, द्रा.- कंकुमधु। फा.- करमीमास, अ.- जाफरान, ले.- Crocus sativus (क्रोकस सेटीवस)।

कङ्गुनी का पूर्वाचार्य कृत वर्णन– शिवदासकृत चक्र संग्रह टीका में 'कायनीति' कही गयी है। कङ्गुनिका 'प्रियङ्गु कायनीति' इस नाम से चक्रपाणि की चरक टीका में प्रसिद्ध है।

परिचय ज्ञापिका संज्ञा– पीत तण्डुल। **गुणप्रकाशिका संज्ञा-** वातल, अस्थि सम्बन्धन।

गुण-दोष–

धन्वन्तरीय निघण्टु तथा राज निघण्टु के अनुसार– प्रियङ्गु मधुर रस प्रधान तथा क़षाय रसयुक्त है और यह रुचिकारक है एवं स्वादिष्ट तथा शीतल है। यह वात कारक है, पित्त तथा दाह को नष्ट करता है, रूक्ष है और हड्डी को जोड़ने वाला है।

राज निघण्टु के अनुसार– कंगु के भेद वरक के गुण- वरक स्थूल कङ्गु है, रूक्ष है तथा स्थूल प्रियंगु है। वरक मधुर रसवाला, रूक्ष तथा कषाय रसवाला है और वात एवं पित्त को बढ़ाने वाला है।

भाव प्रकाश के अनुसार– कंगु भग्न का संधान करने वाला, वातकारक, वृंहण तथा गुरु है, रूक्ष है, कफ नाशक है और अश्वों के लिए अधिक गुण करने वाला है।

राजवल्लभ के अनुसार- कंगुका मांस को बढ़ाने वाली, भारी है तथा भग्न का संधान करने वाली है।

सुश्रुत के अनुसार– प्रियंगु कफवर्ण, रक्तवर्ण, पीतवर्ण तथा श्वेतवर्ण का होता है, उतरोत्तर प्रधान है तथा रूक्ष है और कफ नाशक कहा गया है। (सु.सू.स्थल.४६अ.कुधान्यव:)।

वैद्यक शास्त्र में कंगु का प्रयोग–

(१) नाड़ी व्रण में कंगुनिका का प्रयोग– भैंस का दही, कोदो का अन्न तथा कंगुनिका मूल के चूर्ण को मिलाकर खाने से बहुत दिन का पुराना अर्तिमय का नाड़ी व्रण दूर होता है। (च.क्र.नाड़ी व्रण चि.)। **(२) रक्तपित्त में कंगु का प्रयोग–** श्यामाक (सांवा) तथा प्रियंगु रक्तपित के रोगियों के लिए लाभप्रद भोजन है। (चक्र.रक्तपित्त चि.)। **अन्नद्रवाख्य शूल में कंगु का प्रयोग–** प्रियंगु के चावल से सिद्ध पायस का शक्कर मिलाकर सेवन करना अन्नद्रवाख्य शूल में हितकर है (वंगसेन, शू.चि.)।

कट्फल:

Myrica sapida

कट्फल: । *Myrica sapida. M. nagi.*

गुणप्रकाशिका संज्ञा–"उग्रगन्ध:", "रञ्जनक:"। कट्फल: कफवातघ्नो गुल्महाग्निमान्द्यजित्। रुचिष्यो ज्वरदुर्नामग्रहणीपाण्डुरोगहा॥ अन्यच्च–कट्फलश्च कषायश्च कफधातुविकारजित्। हृल्लासमुखरोगघ्नं कासश्वासज्वरापहम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टु:॥ कट्फल: कटुरुष्णश्च कासश्वास-ज्वरापह:। उग्रदांहहरो रुच्यो मुखरोगशमप्रद:॥ राजनिघण्टु:॥ कट्फलस्तुवरस्तिक्त: कटुर्वातकफज्वरान्। हन्ति श्वासप्रमेहार्श:कासकण्ठामयारुची:॥ भावप्रकाश:॥ कट्फलं कफरोगघ्नं श्वासकासज्वरापहम्। राजवल्लभ:॥

वैद्यके व्यवहार:– (१) रक्तपित्ते कट्फल:–"प्रियङ्गुकाकट्फलशङ्खगैरिकाः पृथक् पृथक् चन्दनतुल्यभागिकाः। सशर्करास्तण्डुलधावनाप्लुताः रक्तं सपित्तं शमयन्ति योगा:॥" (चि. ४ अ.)। **(२) अतिसारे कट्फल:–**"कट्फलं मधुयुक्तं वा मुच्यते जठरामयात्" (चि. ११ अ.)। **(३) व्रणे कट्फल:–**"...कट्फलैः। त्वचमाश्वेव गृह्णन्ति त्वक्चूर्णैश्चूर्णिता व्रणा:॥" (चि. १३ अ.)। चरक:॥ **शिरोरोगे कट्फल:–**"घ्रेयं कट्फलचूर्णञ्च" (उ. २६ अ.)। सुश्रुत:॥ **गलगण्डे कट्फल:–**"कट्फलचूर्णान्तर्गलघर्षो गलगण्डमपहरति"। (गलगण्डगण्डमाला-चि.)। चक्रदत्त:॥

विविध भाषाओं में नाम– सं.- कट्फल, सोमवल्व, कुम्भिका, श्रीपर्णिका, भद्रा। हि.- कायफल, कायफर। बं.- कायशाल, कायछाल, कट्फल। म.- कुम्भ्याचीशाल, कुभ्याचीफल, कुम्भ। क.- किरुसिवल्ली, इप्येभारा। म. मा., गु., प.- कायफल। द्रा.- मरुधम्पटे। फा.- दारशीशवा, दारशीशान्। अ.- उदुलवर्क, उदुलवुर्राक्। ले.- Myricasapida (माइरीकासेपिडा), Myrica nagi (मिरिकानागी)।

कायफल के पर्याय– श्रीपर्णिका, कुमुदिका, कुम्भी, कैर्य्य, कट्फल इति पञ्च कुम्भ्यः कायफल इति ख्यातस्य नामानीति (अमरकोष-टीकायां भानुदीक्षित:)।

गुण प्रकाशिका संज्ञा– उग्रगन्ध, रञ्जनक।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार– कायफल कफ-वात का नाश करने वाला है, प्रमेहरोग तथा अग्निमान्द्य को दूर करता है। यह रुचिकारक है तथा ज्वर, अर्शरोग (बवासीर), ग्रहणी विकार एवं पाण्डु रोग को दूर करता है।

अन्यत्र भी कहा गया है– कट्फल कषाय रसवाला है तथा कफ धातुविकार को दूर करता है। इनके अतिरिक्त हृल्लास (उवकाई) तथा मुखरोग को नष्ट करता है।

राज निघण्टु के अनुसार– कायफल कटुरसवाला है तथा उष्ण है और यह कास, श्वास एवं ज्वर को दूर करता है, भयंकर दाह को शान्त करता है, रुचिकारक है और मुखरोग को शान्त करता है।

भाव प्रकाश के अनुसार– कायफर कसैला, तिक्त, कटु रसवाला है और यह वात-कफ, ज्वर को दूर करता है। यह श्वास, प्रमेह, अर्श रोग, कास, कण्ठ का रोग तथा अरुचि का नाश करता है।

राज वल्लभ के अनुसार– कायफल कफ रोग का नाश करने वाला है तथा कास, श्वास एवं ज्वर को दूर करता है।

कट्फल का वैद्यक शास्त्र में प्रयोग–

(१) रक्त-पित्त में कट्फल का प्रयोग– फूल प्रियंगु एक भाग, कायफल एक भाग, शंख भस्म एक भाग, स्वर्ण गैरिक एक भाग, सफेद चन्दन एक भाग इन को एकत्र कर चूर्ण बनाकर उसका शक्कर तथा चावल के धोअन में मिलाकर सेवन करने से यह योग रक्तपित्त को शान्त करता है (च.चि.अ.४)। **(२) अतिसार में कायफल का प्रयोग–** कायफल के चूर्ण का शहद मिलाकर सेवन करने से मनुष्य उदर रोग से मुक्त हो जाता है (च.चि.अ.११)। **(३) व्रण में कायफल का प्रयोग–** कायफल की छाल का चूर्ण व्रण के ऊपर अवचूर्णित करने से व्रण के ऊपर शीघ्र ही त्वचा आ जाती है (च.चि.अ.उ.१३)।

शिरो रोग में कायफल का प्रयोग– शिरो रोग में कायफल का चूर्ण सूँघे (सु.उ.अ.२६)।

गलगण्ड रोग में कायफल का प्रयोग– कायफल चूर्ण गले के अन्दर घर्षण करने से गलगण्ड को दूर करता है (चक्रदत्त, गलगण्ड-गण्डमाला चि.)।

Constituents—The bark contains tannin, saccharine matter and salts.

Actions and uses—Stimulant, alterative, aromatic, diaphoretic and astringent; given in fevers, Catarrh of the intestinal mucous membrane, Diarrhoea, Dysentery, Scrofula, chronic Gonorrhoea, Cattarrh of the lungs, Asthma & c. The powdered bark is used as a sternutatory. The seeds—a paste of them with stimulant balsams is mixed with ginger and externally used as a rubefacient and as a stimulant application to the fore-arms, calves and extremities during the collapse stage of cholera. Its powder is locally applied to strengthen the gums; also as a lep for bruises, sprains and fractures, With catechu, asafetida and camphor, a paste of it is applied over piles with benefit. The arillus is used as an ingredient in numerous carminative mixtures. The powder or the lotion of the bark is applied to putrid sores, Pessaries made of it are given to promote secretion of menses. The bark when chewed acts as a sialogogue and relieves toothache. An oil prepared form it is dropped into the ear in earache to allay pain. Fruits when boiled yield a kind of wax, called wax myrtle, which is used as a healing application to ulcers. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 572).

कटुका

Picrorhiza kurroa

कटुका (की), कटुरोहिणी। *Picrorrhiza kurroa, Benth.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा–"शतपर्वा", "काण्डरुहा", "चक्राङ्गी", "मत्स्यशकला"। गुणप्रकाशिका संज्ञा–"आमघ्नी"। कटुका पित्तजित्तिक्ता कटुः शीतास्त्रदाहजित्। वलासारोचकान् हन्ति विषमज्वरनाशिनी॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ कटुकाऽतिकटुस्तिक्ता शीतपित्तास्त्रदोषजित्। वलासारोचकश्वासज्वरहृद्रेचनी च सा॥ राजनिघण्टुः॥ कट्वी तु कटुका पाके तिक्ता रूक्षा हिमा लघुः। भेदिनी दीपनी हृद्या कफपित्तज्वरापहा॥ प्रमेहश्वासकासास्त्रदाहकुष्ठक्रिमिप्रणुत्। भावप्रकाशः॥ कटुका तु सरा रूक्षा कफपित्तज्वरापहा। राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) हृद्रोगे कटुकी–"यष्टचाह्विकातिक्तकरोहिणीभ्यां कल्कं पिबेच्चापि सिताजलेन।" (चि. २६ अ.)। (२) स्तन्यशुद्धये कटुरोहिणी-"पाययेताऽथवा स्तन्यशुद्धये कटुरोहिणीम्।" (चि. ३० अ.)। चरकः॥ (१) कफपित्तज्वरे कटुकी–"सशर्करामक्षमात्रां कटुकामुष्णवारिणा। पीत्वा ज्वरं जयेज्जन्तुः कफपित्तसमुद्भवम्॥" (उ. ३९ अ.)। (२) हिक्कायाम् कटुकी–"...गैरिकं कटुरोहिणी। मधुद्वितीयाः कर्त्तव्यास्ते हिक्कासु विजानता।" (उ. ५० अ.)। सुश्रुतः॥

विविध भाषाओं मं नाम–

सं.- कटुका, कट्वी, तिक्ता। हि.- कुटकी, कटुका। बं.- कट्की। म.- केद्वार कुटकी। गु.- कटु , कडु। ते.- नल्लकारेकर, कटुगुरोगनी। मा.- कुटक, कुटको। फा.- सर्वकेस्याह। अ.- सर्वका अम्बद, सर्वके अवीयद। अं.- Black Halledoro (ब्लैक हलेडोर)। ले.- Picrorhiza kurroa (पिक्राहिजा कुरोआ)।

परिचय ज्ञापिका संज्ञा– शतपर्वण, काण्डरुहा, चक्राङ्गी, मत्स्यशकला। **गुणप्रकाशिका संज्ञा–** आमघ्नी।

गुण-दोष–

धन्वन्तरी निघण्टु के अनुसार– कटुका कटु तथा तिक्तरस वाली है और यह पित्त विकार, शीत रक्त विकार तथा दाह को शान्त करती है। यह वलास (कफ रोग), अरोचक तथा ज्वर का नाश करती है।

राज निघण्टु के अनुसार– कटुका अत्यधिक कटुरस वाली है तथा तिक्तरस वाली है, शीत-पित्त एवं रक्त विकार को दूर करती है। इनके अतिरिक्त बलास रोग, अरोचक, श्वास, ज्वर तथा हृदय रोग का नाश करती है तथा रेचक है।

भाव प्रकाश के अनुसार– कट्वी (कटुकी) कटुरस वाली, पाक में तिक्तरस वाली, रूक्ष, शीतल तथा लघु है। यह मल का भेदन करने वाली, जाठराग्नि प्रदीप्त करने वाली, हृदय को बल देने वाली तथा कफ विकार, पित्त विकार एवं ज्वर को दूर करती है; इनके अतिरिक्त प्रमेहरोग, श्वास, कास, रक्त विकार, दाह, कुष्ठ रोग एवं कृमि रोग को दूर करती है।

राजवल्लभ के अनुसार- कुटकी दस्तावर है, रूक्ष है, कफ, पित्त एवं ज्वर को नष्ट करती है।

वैद्यक शास्त्र में कुटकी का प्रयोग-

(१) हृदय रोग में कुटकी का प्रयोग- मुलेठी तथा कुटकी के कल्क का मिश्री के शर्वत के साथ हृदय रोग में पान करे (च.चि.अ.२६)। **(२) स्तन्य (स्त्री के दूध) की शुद्धि के लिए कटुरोहणी (कुटकी) का प्रयोग-** स्तन्य की शुद्धि के लिए कटुरोहिणी (कुटकी) के कल्क का प्रयोग करे (च.चि.अ.३०)।

(१) कफ-पित्त ज्वर में कुटकी का प्रयोग- कुटकी के चूर्ण एक अक्ष (१० ग्राम) में शक्कर मिलाकर गरम जल के साथ पान कर मनुष्य कफ-पित्त-जन्य ज्वर को दूर करे (सु.उ.अ.३९)। **(२) हिक्का रोग में कुटकी का प्रयोग-** शुद्ध गेरु तथा कटुरोहिणी के चूर्ण का शहद मिलाकर बुद्धिमान व्यक्ति हिक्का में सेवन करे (सु. उ.अ.५०)।

Constituents—A bitter principle Picrorhizin, Picrorhizetin, Cathartic acid glucose, wax & c. Picrorhizin is a glucoside and obtained by exhausting the powdered drug with ether. It is soluble in water and alcohol and insoluble in ether. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 457).

Actions and uses—Alterative, bitter, stomachic and cholagogue; given in Dyspepsia, chronic Dysentery, Asthma, hepatic derangements jaundice & c. Its action on the liver is similar to, but milder than that of colocynth. It is a valuable antiperiodic in low continued fevers; it is given to children in worms. (*Materia Medica of India*— R. N. Khory, Part II., p. 457).

कण्टकारी

Solanum zanthocarpum

निदिग्धिका, क्षुद्रा, व्याघ्री। *Solanum zanthocarpum. S. jaquini.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा–"क्षुद्रा", "बहुकण्टा", "क्षुद्रकण्टा" "क्षुद्रफला", "चित्रफला"।
कण्टकारी कटुस्तिक्ता तथोष्णा श्वासकासजित्। अरुचिज्वरवातामदोषहृद्गदनाशिनी॥

धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ कण्टकारी कटूष्णा च दीपनी श्वासकासजित्। प्रतिश्यायार्त्तिदोषघ्नी कफवातज्वरार्त्तिनुत्॥ राजनिघण्टुः॥ कण्टकारी सरा तिक्ता कटुका दीपनी लघुः। रूक्षोष्णा पाचनी कासश्वासज्वरकफानिलान्॥ निहन्ति पीनसं पार्श्वपीडाक्रिमिहृदामयान्। ...फलं कटु रसे पाके च कटुकं भवेत्॥ शुक्रस्य रेचनं भेदि तिक्तं पित्ताग्निकृल्लघु। हन्यात् कफमरुत्कण्डूकासमेदःकृमिज्वरान्॥ तद्वत्प्रोक्ता 'सिता क्षुद्रा' विशेषाद् गर्भकारिणी। भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) वातोल्बणेषु अर्शःसु कण्टकारी–"कण्टकार्या शृतं वापि...। अनुपानं भिषग् दद्यात् वातवर्चोऽनुलोमनम्॥ (चि. ९ अ.)। (२) मदात्ययस्य पिपासायाम् कण्टकारी–"तृष्यते सलिलञ्चास्मै...। कण्टकार्याऽथवा शृतम्॥" (चि. १२ अ.)। (३) कासे कण्टकारीकृतयूषः– "कण्टकारीरसे सिद्धो मुद्गयूषः सुसंस्कृतः। सगौराऽऽमलकः साम्लः सर्वकासभिषग्जितम्॥" (चि. २२ अ.)। (४) अश्मर्यां कण्टकारी– "...वृहतीद्वयञ्च। आलोड्य दध्ना मधुरेण पेयं दिनानि सप्ताऽश्मरीभेदनाय॥" (चि. २६ अ.)। चरकः॥ (१) अलसे कण्टकारी–"सिद्धं रसे कण्टकार्यास्तैलं वा सार्षपं हितम्" (चि. २० अ.)। (२) वाताभिष्यन्दे कण्टकारी–"कण्टकार्याश्च मूलेषु सुखोष्णं सेचने हितम्" (उ. ९ अ.)। (३) श्वासे कण्टकारी–"निदिग्धिकाञ्चामलकप्रमाणं हिङ्ग्वर्द्धयुक्तां मधुना सुयुक्ताम्। लिहेन्नरः श्वासनिपीडितो हि श्वासं जयत्येव बलात् त्र्यहेण॥" (उ. ५१ अ.)। (४) कासे कण्टकारी– "सम्यग्विपक्वं द्विगुणेन सर्पिः निदिग्धिकायाः स्वरसेन चैतत्। श्वासाग्निसादस्वरभेदभिन्नान् निहन्त्युदीर्णानपि पञ्चकासान्॥" (उ. ५२ अ.)। (५) मूत्रदोषहरणे कण्टकारी–"निदिग्धिकायाः स्वरसं पिबेत् कुडवसम्मितम्। मूत्रदोषहरं कल्कमथवा'क्षौद्रसंयुतम्॥" (उ. ५८ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) मूत्रकृच्छ्रे कण्टकारी–"निदिग्धिकारसो वापि सक्षौद्रः कृच्छ्रनाशनः" (मूत्रकृच्छ्र-चि.)। (२) मूत्राघाते कण्टकारी–"निदिग्धिकायाः स्वरसं पिबेद्वस्त्रान्तरस्रुतम्" (मूत्राघात-चि.)। चक्रदत्तः॥ शिशोश्चिरजे कासे व्याघ्रीकुसुमकेसरः–"व्याघ्रीकुसुमसञ्जातकेसरैरवलेहिकाम्। जग्ध्वाऽपि चिरजं जातं शिशोः कासं व्यपोहति॥" वङ्गसेनः॥

विविध भाषाओं में नाम–

सं- कण्टकारी, दुःस्पर्शा, क्षुद्रा, व्याघ्री, निदिग्धिका। हि.- कटेरी, भटकटैया, रिङ्गणी, कटाली। बं.- कण्टकारी। म.- लघु रिंगणी। गु.- रेटिमो रिंगणी। क.- नेल्लू गुल्लू। ते.- स्वेटी मुलंज, व्राकुडिचेट्ट। मा.- कण्टाली। द्रा.- कन कत्तरि, ता.- चुन्दुन वट रसि। यू.- कटीला। ले.- Solanuın zanthocarpum (सोलेनम् जैन्थोकार्पम)।

परिचय ज्ञापिका संज्ञा- क्षुद्रा, बहुकण्टा, क्षुद्रकण्टा, क्षुद्रफला, चित्रफला।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- कण्टकारी कटुरस, तिक्तरस तथा उष्ण है और श्वास कास को जीत लेती है। इनके अतिरिक्त यह अरुचि, ज्वर, वात-आमदोष तथा हृदयरोग का नाश करती है।

राज निघण्टु के अनुसार- कण्टकारी कटुरस उष्ण तथा जाठराग्नि दीपक है और श्वास एवं कास को दूर करती है। यह प्रतिश्याय, एवं पीड़ा का नाश करने वाली है और कफ-वात ज्वर को दूर करने वाली है।

भाव प्रकाश के अनुसार- कण्टकारी रेचक, तिक्त रस तथा कटु रस वाली, जाठराग्नि दीपक एवं लघु है। यह रूक्ष है, उष्ण है, पाचक है और कास, श्वास, ज्वर, कफ विकार एवं वात विकार, पीनस रोग, पार्श्व पीडा, क्रिमिरोग तथा हृदयरोग को नष्ट करती है। कण्टकारी का फल रस में कटुरस तथा पाक में कटु रस होता है। यह शुक्र का रेचन करता है, मल का भेदन करता है, तिक्त रस है और पित्त विकार एवं जाठराग्नि को बढ़ाता है एवं लघु है। यह कफ विकार, वात विकार, कण्डू, कास, मेद विकार, क्रिमि रोग तथा ज्वर का नाश करता है। इसी प्रकार श्वेत पुष्पा कण्टकारी विशेषकर गर्भकारक होती है।

वैद्यक शास्त्र में कण्टकारी का प्रयोग-

(१) वातोल्बण अर्शःरोग में कण्टकारी का प्रयोग- कण्टकारी का शृत क्वाथ वातोल्बण अर्श रोग में पान कराये। इसके साथ अनुमान में वात एवं मल का अनुलोमन करने वाले पथ्य को दे (च.चि.अ.९)। **(२) मदात्ययजन्य पिपासा में कण्टकारी का प्रयोग**- मदात्ययजन्य प्यास में कण्टकारी रस या क्वाथ अथवा शृत क्वाथ दे (च.चि.अ.१२)। **(३) कास रोग में कण्टकारी कृत यूष का प्रयोग**- कण्टकारी के रस में सिद्ध अच्छी तरह पकाया मूंग का यूष आंवला के रस से अम्ल बनाकर सेवन करने से सभी प्रकार के क्वाथ को दूर करता है (च.चि.अ.२३)। **(४) अश्मरी रोग में कण्टकारी का प्रयोग**- दोनों प्रकार के कण्टकारी के रस को दही में मिलाकर तथा शक्कर मिलाकर अश्मरी का भेदन करने के लिए सात दिन तक पान करे (च.चि.अ.२६)।

(१) अलस रोग में कण्टकारी का प्रयोग- कण्टकारी के रस में सिद्ध तिल का तैल या सरसो का तैल अलस रोग में हितकर है (सु.चि.अ.२०)। **(२) वाताभिष्यन्द रोग में कण्टकारी का प्रयोग**- कण्टकारी के मूल के रस में सिद्ध तैल थोड़ा गरम सेवन करना वाताभिष्यन्द रोग में हितकर है (सु.चि.अ.८)। **(३) श्वासरोग में कण्टकारी का प्रयोग**- कण्टकारी का कल्क आंवला के बराबर लेकर उसके आधा शुद्ध हींग मिलाकर तथा शहद के साथ श्वास रोग में पीड़ित मनुष्य चाटे। यह तीन दिन में श्वास रोग को बलपूर्वक दूर करता है (सु.उ.अ.५१)। **(४) कास रोग में कण्टकारी का प्रयोग**- कण्टकारी के दुगुना स्वरस में अच्छी तरह घृत श्वास, अग्निमान्द्य तथा स्वर भेद से भिन्न भयंकर पांच प्रकार के कास को नष्ट करता है (सु.उ.अ.५२)। **(५) मूत्ररोग को दूर करने के लिए कण्टकारी का प्रयोग**- कण्टकारी के स्वरस का एक कुडव (२५० ग्राम) के मात्रा में पान करे अथवा कण्टकारी का कल्क मधु मिलाकर मूत्र दोष को दूर करने के लिए पान करे (सु. उ.अ.५८)।

(१) मूत्र कृच्छ्र रोग में कण्टकारी के रस का प्रयोग- कण्टकारी का रस मधु मिलाकर पान करने से मूत्र कृच्छ्र का नाश होता है (चक्र.चि.मूत्रकृच्छ्राधिकार)। **(२) मूत्राघात में कण्टकारी का प्रयोग**- कण्टकारी का रस वस्त्र से छान कर मूत्राघात में पान करे (चक्र.चि.मूत्राघाताधिकार)।

बच्चों के पुराने कास में कण्टकारी फूल के पराग का प्रयोग- कण्टकारी के फूल के पराग को अवलेह बनाकर खाने से बालकों का पुराना कास दूर होता है (वंगसेन)।

Constituents—The fruit contains fatty acids, wax and an alkaloid. The dried leaves contain an alkaloid and an organic acid. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 450).

Actions and uses—Aperient, carminative, expectorant and diuretic. The confection (Kantakaryavaleha) is given in Asthma, cough, catarrhal affections of the lungs, Fever flatulence and pain in the chest; as a diuretic, the decoction is given in Dysuria, Cystic Calculi

and Dropsy; also given in Costiveness. A paste of the seeds is locally applied to promote suppuration boils, buboes and other indolent chronic abscesses. Fumigation of the fruits is largelý used by the natives as sialogogue and applied for the relief of pain in caried teeth. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 450).

कतकः

Strychnos Potatorum

कतकम्, अम्बुप्रसादनम्। *Strychnos potatorum.*

पूर्वाचार्यकृतवर्णनम्–"कतकफलं स्वनामख्यातं, शशकपुरीष-प्रतिमफलम् अम्बुप्रसादनम्" (डल्वणः, सु. सू. चि. ३८ अ.)। गुणप्रकाशिका संज्ञा- "अम्बुप्रसादः", "नेत्रविकारजित्"। कतकं शीतलं प्राहुस्तृष्णाविषविनाशनम्। नेत्रोत्थरोगविध्वंसि विधिनाऽञ्जनयोगतः॥ कतकस्य 'फलं' तिक्तं चक्षुष्यं पित्तलं मृदु। वारिप्रसादनं कृच्छ्रं शर्करामश्मरीञ्जयेत्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ कतकः कटुतिक्तोष्णश्चक्षुष्यः क्रिमिदोषनुत्। रुचिकृच्छूलदोषघ्नो 'बीज'मम्बुप्रसादनः॥ राजनिघण्टुः॥ कतकस्य 'फलं' नेत्र्यं जलनिर्मलताकरम्। वातश्लेष्महरं शीतं मधुरं तुवरं गुरु॥ भावप्रकाशः॥ छर्दिः स्वेदस्य जनकं शोफं पाण्डुं विषं जयेत्। कतकस्य च मूलन्तु सर्वकुष्ठहरं परम्॥ बृहन्निघण्टु-रत्नाकरः॥

वैद्यके व्यवहारः-अश्मर्य्यां कतकम्–"...कतकादिकानाम्। एकैकशो वा विधिनैव तेन" (चि. २६ अ.)। चरकः॥ अर्जुने कतकम्–"...कतकः सैन्धवेन वा। ...अञ्जनमर्जुने" (नेत्ररोग-चि.)। चक्रदत्तः॥ नेत्रप्रसादनार्थम् कतकम्–"कतकस्य फलं घृष्ट्वा मधुना नेत्रमञ्जयेत्। ईषत् कर्पूरसहितं तत् स्यान्नेत्रप्रसादनम्॥" भावप्रकाशः॥

विविध भाषाओं में नाम–

सं- पयःप्रसादि, कतकः। हि.- निर्मला, पायपसारी। बं.- निर्मल फूल। म.- निवली, निर्मली, चिल्हार। क.- चिल्लिकायि। ता.- तेतरन कोट्टई। ते.- चिलगिन जालु। मा.- निर्मली। अं.- Nutwich clears water (नटह्विच क्लियर्स वाटर)। ले.- Strychnos Potatorum।

पूर्वाचार्यकृत वर्णन- कतक फल- अपने नाम से प्रसिद्ध, शशकपुरीष के समान फल, अम्बु प्रसादन (डल्लण टी.सु.सू.चि.अ.३८)।

गुणप्रकाशिका संज्ञा- अम्बुप्रसाद, नेत्रविकारजित्।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- कतक (निर्मली) फल शीतल कहा गया है और यह प्यास एवं विष विकार का नाश करता है; नेत्र में उत्पन्न रोग का विधि पूर्वक अंजन करने से नाश करता है। कतक का फल तिक्तरस है और नेत्र रोग के लिए हितकर, पित्तवर्द्धक तथा मृदु है, जल को साफ करने वाला है, मूत्रकृच्छ्र, शर्करा रोग तथा अश्मरी रोग को दूर करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- कतक कटु तथा तिक्तरस वाला, उष्ण, नेत्र के लिए हितकर एवं क्रिमिरोग को

दूर करता है। यह रुचिकारक है तथा शूल विकार का नाश करता है। कतक का बीज जल को साफ करता है।

भाव प्रकाश के अनुसार- कतक फल नेत्र के लिए हितकर, जल को साफ करने वाला, वात कफ को दूर करने वाला, शीतल, मधुर रस, कसैल तथा भारी है।

बृहन्निघण्टुरत्नाकर के अनुसार- कतक वमन तथा पसीना को उत्पन्न करने वाला है और शोथ, पाण्डु एवं विष का नाश करता है। कतक का मूल सभी प्रकार के कुष्ठरोग को अच्छी तरह दूर करता है।

वैद्यक शास्त्र के अनुसार कतक का प्रयोग-

अश्मरी (पथरी रोग) में कतक का प्रयोग- कतक का अश्मरी आदि में एक-एक कर प्रयोग करे या पूर्वोक्त प्रकार से कतक का प्रयोग करे (च.चि.अ.२६)।

अर्जुन (नेत्र विकार) में कतक का प्रयोग- कतक का सेन्धा नमक के साथ अर्जुन रोग में प्रयोग करे। अर्जुन रोग में कतक का अंजन करे (चक्र. नेत्र रोग चि.)।

नेत्र को साफ करने के लिए कतक का प्रयोग- कतक के फल को मधु के साथ घिसकर नेत्रो में अंजन करे। थोड़ा कपूर मिलाकर कतक का प्रयोग करने से नेत्र साफ होता है (भाव प्रकाश)।

Constituents— Contains no strychnine but brucin is present.

Actions and uses— Alterative tonic, stomachic and demulcent, rubbed down with honey and camphor, it is applied to the eye to prevent lachrymation and to remove opacities; also applied to the abdomen to relieve Colic. Its infusion is recommended in irritation of the urinary organs as Gonorrhoea, Diabetes and as an emetic in cough. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 566).

कदम्बः

Anthocephalus cadamba

धाराकदम्बः- *Anthocephalus cadamba,* Miq. *Nauclea cadamba* Roxb. Wild *cinchona.* (Eng.) **धूलिकदम्बः-** *Adina cordifolia,* Hook. *F. Nauclea cordifolia,* Roxb.

परिचयज्ञापिका संज्ञा-धाराकदम्बस्य-"सुवासः", "प्रावृषेण्यः"। धूलिकदम्बस्य-"क्रमुकप्रसूनः", "वसन्तपुष्पः"। कदम्बस्तु कषायः स्याद्रसे शीतो गुणेऽपि च। व्रणसंहरणश्चापि कासदाहविषापहः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ कदम्बस्तिक्तकटुकः कषायो वातनाशनः। शीतलः कफपित्तार्त्तिनाशनः शुक्रवर्द्धनः॥ त्रिकदम्बाः कटुवर्ण्या विषशोफहरा हिमाः। कषयास्तिक्तपित्तघ्ना वीर्यवृद्धिकराः पराः॥ राजनिघण्टुः॥ कदम्बो मधुरः शीतः कषायो लवणो गुरुः। सरो विष्टम्भकृद्रूक्षः कफस्तन्याऽनिलप्रदः॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः- (१) व्रणाच्छादनार्थं कदम्बपत्रम्-"कदम्बार्जुननिम्बानां... व्रणप्रच्छादने विद्वान् पत्राण्यर्कस्य चाऽऽदिशेत्।" (चि. १३ अ.)। (२) मूत्रस्य वैवर्ण्ये कृच्छ्रतायाञ्च कदम्बः-"विदारीभिः कदम्बैर्वा... शृतम्। घृतं पयश्च मूत्रस्य वैवर्ण्ये कृच्छ्रनिर्गमे॥" (चि. २२ अ.)। चरकः॥

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– कदम्ब:, नीप:, प्रियक:। हि.– कदम, कदम्ब। व.– कदम गाछ, केलिकदम। म.– राजकदम, धूलिकदम्ब, भूमिकर्दम्ब। गु.– कदम्ब। ता.– वैल्लई कदम्ब। क.– कड़ऊ। ते.– कटिमिचेद्दु। ले.– Anthocephalus cadamba (एन्थेसेफैलस कदम्बा), Nauclea cordifolia.

परिचय ज्ञापिका संज्ञा– धाराकदम्बका– सुवास:, प्रावृषैण्य:। धूलिकदम्बका– कमुकप्रसून, वसन्तपुष्प:।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार– कदम्ब कषाय रस तथा गुण में शीतल है। यह व्रण को दूर करता है तथा कास, दाह एव विष का नाश करता है।

राज निघण्टु के अनुसार– कदम्ब तिक्त, कटु तथा कषाय रस वाला है और यह वात का नाश करता है। यह शीतल है, कफ एवं पित्त विकार का नाश करता है और शुक्र को बढ़ाता है। त्रिकदम्ब (तीन प्रकार का कदम्ब) कटु रस वाला है, वर्ण के लिए हितकर है तथा विष एवं शोथ को दूर करता है और शीतल है, कषाय रस वाला है तथा तिक्त रस वाला है, पित का नाश करता है और वीर्य अच्छी तरह बढ़ाता है।

भाव प्रकाश के अनुसार– कदम्ब मधुर, शीतल, कषाय तथा लवण रस वाला है। यह दस्तावर है, विष्टम्भकारक है, रूक्ष है और कफ, दूध तथा वातवर्द्धक है।

वैद्यक शास्त्र में कदम्ब का प्रयोग–

(१) व्रण के आच्छादन के लिए कदम्ब पत्र का प्रयोग– कदम्ब, अर्जुन तथा नीम के पत्तों से व्रण का आच्छादन करे तथा मदार के पत्तों से भी आच्छादन करे (च.चि.अ.१३)। **(२) मूत्र की विवर्णता में तथा मूत्र-कृच्छ्र में कदम्ब का प्रयोग–** विदारीकन्द तथा कदम्ब के कल्क तथा क्वाथ के साथ सिद्ध घृत तथा दूध मूत्र की कृच्छ्रता में तथा मूत्र की विवर्णता में प्रयोग करे (च.चि.अ.२२)।

Adina cordifolia—**Constituents**—Cinchotannic acid, a red oxidized product, a bitter principle, starch and calcium oxalate. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 325).

Actions and uses—Bitter, tonic and febrifuge. Like cinchona it is used in fevers, Dyspepsia, Anorexia. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 325).

Anthocephalus cadamba—Wild Cinchona—**Actions and uses**—Tonic, the juice is given to children with cumin and sugar in gastric irritability. The fruit is cooling, refrigerant and febrifuge, and given in fever with great thirst. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 325).

कदली

Musa sapientium

कदली, मोचा। *Musa paradisiaca*, Linn. *M. sapientium*, Roxb.

"परिचयज्ञापिका संज्ञा–"अम्बुसारा", "नि:सारा", दीर्घपत्रा", "स्वादुफला", "सकृत्फला", "गुच्छफला"। गिरिकदल्या:– "बहुबीजा", "गजवल्लभा"। गुणप्रकाशिका संज्ञा–काष्ठकदल्या:– "विषघ्नी"। कदली मधुरा शीता रम्या पित्तहरा मृदु:। कदल्यास्तु 'फलं' स्वादु कषायं नातिशीतलम्॥

रक्तपित्तहरं वृष्यं रुच्यं कफकरं गुरु। 'कन्दस्तु' वातलो रूक्षः शीतोऽसृक्कृमिकुष्ठनुत्॥ स्यात् 'काष्ठकदली' रुच्या रक्तपित्तहरा हिमा। गुरुर्मन्दाग्निजननी दुर्जरा मधुरा परा॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ पित्तापहं शिशिररुच्यमथापि नालं 'पुष्पं' तदप्यनुगुणं कृमिहारि 'कन्दम्'। 'पर्णञ्च' शूलशमकं कदलीभवं स्यात्॥ रम्भापक्वफलं कषायमधुरं बल्यञ्च शीतन्तथा। पित्तञ्चास्त्रविमर्द्दनं गुरुतरं पथ्यममन्दानले। सद्यः शुक्रविवृद्धिदं क्लमहरं तृष्णापहं कान्तिदम्। दीप्ताग्नौ सुखदं कफामयकरं सन्तर्पणं दुर्ज्जरम्॥ 'गिरिकदली' मधुरहिमा बलवीर्य्यविवृद्धिदायिनी रुच्या। तृट्पित्तदाहशोषप्रशमनकर्त्री च दुर्जरा च गुरुः॥ 'सुवर्णमोचा' मधुरा हिमा च। स्वल्पाशने दीपनकारिणी च। तृष्णापहा दाहविमोचनी च कफापहा वृष्यकरी गुरुश्च॥ राजनिघण्टुः॥ 'मोचाफलं' स्वादुशीतं विष्टम्भि कफनुद् गुरु। स्निग्धं पित्तास्त्रतृड्दाहक्षतक्षयसमीरजित्॥ पक्वं स्वादु हिमं पाके स्वादु वृष्यञ्च वृंहणम्। क्षुत्तृष्णा नेत्रगदहृन्मोहघ्नं रुचिमांसकृत्॥ माणिक्यमर्त्त्यामृतचम्पकाद्या भेदाः कदल्या बहवोऽपि सन्ति। उक्ता गुणास्तेष्वधिका भवन्ति निर्द्दोषता स्याल्लघुता च तेषाम्॥ भावप्रकाशः॥ कदलं मधुरं वृष्यं कषायं नातिशीतलम्। रक्तपित्तहरं हृद्यं रुच्यं श्लेष्मकरं गुरु॥ तदेव चम्पकाख्यन्तु वातपित्तहरं गुरु। वृष्यञ्चैवातिशीतञ्च मधुरं रसपाकयोः॥ कदलीमोचकं हृद्यं कफघ्नं कृमिनाशनम्। तृष्णाप्लीहज्वरं हन्ति दीपनं वस्तिशोधनम्॥ कदल्या बलकृन्मूलं वातपित्तहरं गुरु। राजवल्लभः॥ सम्पक्वं पनसं मोचं राजादनफलानि च। स्वादूनि सकषायाणि स्निग्धशीतगुरूणि च॥ कषायविशदत्वाच्च सौगन्ध्याच्च रुचिप्रदम्॥ चरकः (सू. २७ अ. फ. व.)॥ मोचं स्वादुरसं प्रोक्तं कषायं नातिशीतलम्। रक्तपित्तहरं वृष्यं रुच्यं श्लेष्मकरं गुरु॥ सुश्रुतः (सू. ४६ अ. फ. व.)।

वैद्यके व्यवहारः- कर्णरोगे कदली- "कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कदुष्णः कर्णपूरणे" (उ. २१ अ.)। सुश्रुतः॥ प्रदरे आमं मोचम्-"गुडेन वदरीचूर्णं मोचमामम्..." (असृग्दर-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) सिध्मे कदलीक्षारः-"...सिध्मम्। क्षारेण वा कदल्या रजनीमिश्रेण नाशयति॥" (कुष्ठ-चि.)। (२) सोमरोगे पक्वकदलीफलम्-"कदलीनां फलं पक्वं धात्रीफलरसं मधु। शर्करासहितं खादेत् सोमधारणमुत्तमम्॥" (सोमरोग-चि.)। वङ्गसेनः।

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- कदली, मोचा, रम्भा। हि.- केला, कदली। बं.- केला। म.- केला, सोन केला, चवर्ड। गु.- केलू, केल्य। क.- वालि, मखाले काष्ट, कावालेतव। तै.- अरटि, चक्राकेलि, काया, आटी चेहू। फा.- मावज, मोझ। अ.- तनामाडिद तिल। ता.- पाजम। अं.- Plantain (प्लान्टेन)। ले.- Musa sapientium (मुसा सेपिएण्टियम्), M. paradisiaca (मूसा पेराडाइसिका)।

परिचय ज्ञापिका संज्ञा- अम्बुसारा, निःसारा, दीर्घपत्रा, स्वादुफला, सकृत्फला, गुच्छफला। गिरिकदलीका, बहुबीजा, गजवल्लभा। **गुण प्रकाशिका संज्ञा**- काष्ठकदलीका, विषघ्नी।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- केला, मधुर रस, शीतल, रम्य, पित्त नाशक तथा मृदु (मुलायम) है। **केला का फल** स्वादिष्ट, कषाय रस वाला तथा थोड़ा शीतल है और यह रक्तपित्त को दूर करता है, वीर्यवर्द्धक है,

कफकारक है, रुचिवर्द्धक है तथा गुरु है। **केला का कन्द**- वातवर्द्धक, रूक्ष, शीतल, रक्तक्रिमि तथा कुष्ठ का नाश करता है। **काष्ठ कदली**- रुचिकारक, रक्तपित्त नाशक तथा शीतल है, गुरु है तथा मन्दाग्नि को उत्पन्न करने वाली है, दुर्जर है तथा उत्तम मधुर रस वाली है।

राजनिघण्टु के अनुसार- केला पित्त को दूर करने वाली, शीत तथा रुचिकारक है। **नाल** का भी यही गुण है। **केला पुष्प** भी उसी के गुण के अनुसार है और **कन्द** क्रिमिनाशक है। **पर्ण (पत्ता)**- केला का पत्ता शूल को शान्त करने वाला है। **केला का फल**- कषाय तथा मधुर रस वाला, बलकारक तथा शीतल है और पित्त-रक्त विकार का नाश करता है, गुरु है, तीव्र जाठराग्निवालों के लिए पथ्य है, शीघ्र ही शुक्र को बढ़ाने वाला है, क्लम रोग का नाश करने वाला है, प्यास को शान्त करने वाला है, कान्ति को बढ़ाने वाला है, प्रदीप्त जाठराग्निवालों के लिए सुखकारक है, कफ विकार को बढ़ाने वाला है, तृप्तिकारक है तथा दुष्पच है। **गिरिकदली** मधुर रस, शीतल, बलवीर्य को बढ़ाने वाली तथा रुचिकारक है और प्यास, पित्त विकार शोथ को शान्त करने वाली है तथा दुष्पच एवं गुरु है। **स्वर्ण मोचा (स्वर्ण कदली)** मधुर रस तथा शीतल है; थोड़ा खाने पर जाठराग्नि को प्रदीप्त करने वाली है, प्यास शान्त करने वाली है, दाह को दूर करने वाली है, कफ का नाश करने वाली, वीर्य को बढ़ाने वाली तथा गुरु है।

भावप्रकाश के अनुसार- मोचाफल (कदलीफल) स्वादिष्ट, शीतल, विष्टम्भकारक, कफ को दूर करने वाली तथा गुरु है और स्निग्ध है तथा पित्त विकार, रक्त विकार, प्यास, दाह, क्षत रोग, क्षय रोग एवं वात रोग को जीत लेता है। **पका हुआ केला का फल** स्वादिष्ट, शीतल, पाक में स्वादिष्ट, वीर्यवर्द्धक तथा मांसवर्द्धक है और भूख, प्यास, नेत्र रोग, हृदय रोग तथा मोह का नाश करने वाला है और रुचिकारक एवं मांस को बढ़ाने वाला है। माणिक्य, मर्त्यामृत, चम्पक आदि कदली के बहुत भेद हैं। जितने भी गुण कहे गये हैं उसमें उनसे भी अधिकगुण है। उनमें निर्दोषता है और लघुता (हल्कापन) भी है।

राजवल्लभ के अनुसार- कदल (केला) मधुर, वृष्य, रुचि कारक, कफवर्द्धक तथा गुरु है। वहीं **चम्पक नामक केला** वात-पित को दूर करने वाला है तथा गुरु है। यह वृष्य तथा अति शीतल है, रस तथा पाक में मधुर है। मोचक नाम की कदली हृद्य है, कफनाशक है, क्रिमिनाशक है, प्यास, प्लीहा रोग तथा ज्वर का नाश करता है, जाठराग्नि दीपक है, तथा वस्ति शोधक है। **केला का मूल** बलकारक है तथा वातपित्त को दूर करता है और गुरु है।

चरक के अनुसार- पका हुआ कटहल तथा केला एवं राजादन फल स्वादिष्ट है, कषाय रस वाला है, स्निग्ध है, शीत है तथा गुरु है, कषाय रस विशद होता है तथा सुगन्धित होता है अत: रुचिप्रद है। (च.सू.अ. २७ फ.व.)।

सुश्रुत के अनुसार- मोच (केला) मधुर रस वाला कहा गया है, कषाय रस है तथा अत्यधिक शीतल नहीं है, रक्तपित्त को दूर करता है, वीर्यवर्द्धक है, रुचि कारक है, कफवर्द्धक तथा गुरु है (सु.सू.अ.४६फ.ब.)।

वैद्यक शास्त्र के अनुसार केले का प्रयोग-

'कर्ण रोग में कदली का प्रयोग- केले का स्वरस थोड़ा-थोड़ा गरम कर कान में छोड़ना उत्तम है (सु. उ.अ.२१)।

प्रदर में कच्चे केले का प्रयोग- कच्चा केला तथा वेर का चूर्ण गुड़ के साथ प्रदर में प्रयोग करे (चक्रदत्त असृग्दर चि.)।

(१) सिध्मरोग में केले के क्षार का प्रयोग- केला के क्षार में हल्दी का चूर्ण मिलाकर प्रयोग करने से सिध्म रोग नष्ट होता है (चक्र.कुष्ठ.चि.)। **(२) सोम रोग में पके कदली फल का प्रयोग-** पके हुए केला के फल का आंवला का रस, मधु तथा शक्कर मिलाकर भक्षण करे। यह अच्छी तरह सोम रोग को नष्ट करता है (वंगसेन नेत्र रोग चिकित्सा)।

Constituents—The ash contains potash and soda salts, phosphoric acid and magnesia. The ripe fruit contains starch, sugar, gum, fat, albuminoids and non-nitrogenous extractives. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 568).

Actions and uses—Demulcent, nutritive and astringent; the fruit is used in soreness of the throat, dry cough and in irritability of the bladder. The root is used as an anthelmintic. The meal prepared from the fruits is nutritive; the strach prepared from the unripe fruits is astringent and used in bowel complaints. A syrup of banana is given in chronic bronchitis with benefit. In haemoptysis and haemorragic fluxes, the juice of the stem obtained by incisions is very beneficial. The young leaves are a good substitute for gutta percha tissue in dressing wounds as cooling for blistered surfaces. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 599).

"**Emerson**—Notices the use of the sap to alloy thirst in cholera". "...Pereira (*Materia Medica*—Part II., 222) has drawn attention to the nutritive properties of the meal prepared from the unripe fruit."... "Starch prepared from unripe fruit is used in the treatment of bowel complaints in Bengal. A specimen we examined consisted almost wholly of pure starch with a trace of astringent extractive." In America a syrup of bananas is said to be singularly effective in requiring only that the fruit shall be cut in small pieces and with an equal weight of sugar be placed in a close jar, which is set cold water and slowly heated to the boiling point, when it is to be removed from the fire and allowed to cool. The dose mentioned is a teaspoonful every hour." (Dymock—*Pharmacographia Indica*—Part III., pp. 444-5).

कपित्थः

Feronia elephantum

कपित्थः, दधित्थः। *Feronia elephantum*, Corr. Eng.—Elephant or wood apple.

गुणप्रकाशिका संज्ञा–"ग्राही"। परिचयज्ञापिका संज्ञा–"गन्धफलः", "चिरपाकी", "कठिनफलः",। कपित्थमाममस्वर्यं कफघ्नं ग्राहि वातलम्। कफानिलहरं पक्वं मधुराम्लरसं गुरु॥ श्वासकासारुचिहरं तृष्णाघ्नं कण्ठशोधनम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ कपित्थो मधुराम्लश्च कषायस्तिक्तशीतलः। वृष्यः पित्तानिलं हन्ति सङ्ग्राही व्रणनाशनः॥ राजनिघण्टुः॥ कपित्थमामं सङ्ग्राहि कषायं लघु लेखनम्। 'पक्वं' गुरु तृषाहिक्काशमनं वातपित्तजित्। स्यादल्पं तुवरं कण्ठशोधनं ग्राहि दुर्जरम्॥ भावप्रकाशः॥ कपित्थ'मामं' कण्डूघ्नं विषघ्नं ग्राहि वातलम्। मधुराम्लकषायत्वात् सौगन्ध्याच्च रुचिप्रदम्॥ तदेव पक्वं दोषघ्नं गुरु ग्राहि विषापहम्॥ राजवल्लभः॥ ...हिक्काकासं नाशयति बीजञ्च हृद्व्यथापहम्। शीर्षव्यथां विषञ्चैव विसर्पञ्चैव नाशयेत्॥ बीजतैलञ्च तुवरं ग्राहकं स्वादु पित्तनुत्। आखोर्विषं कफञ्चैव हिक्कां वान्तिञ्च नाशयेत्॥ विषनाशकरं पुष्पं पर्णं वान्त्यतिसारजित्। हिक्कां नाशयतीत्येवं प्रोक्तं पूर्वैर्महर्षिभिः॥ बृहन्निघण्टुरत्नाकरः।

वैद्यके व्यवहारः– (१) अर्शःसु कपित्थम्–"दधित्थबिल्वयूषम्बा... (चि. ९ अ.)। (२) "हिक्कायां" कपित्थम्–"पिप्पलीमधुयुक्तौ वा रसौ धात्रीकपित्थयोः" (चि. २१ अ.)। (३) कण्ठगतविषे कपित्थम्– "कपित्थमामं ससितक्षौद्रं कण्ठगते विषे" (चि. २५ अ.)। (४) "रक्तपित्ते" कपित्थपत्रम्–"पत्रकल्कौ घृते भृष्टौ राजादनकपित्थयोः। पित्तानिलहरौ पैत्ते सर्वञ्चैवास्त्रपित्तजित्" (चि. ३० अ.)। चरकः॥ (१) विषसंसृष्टाञ्जनजविकारे कपित्थम्–"कपित्थं मेषशृङ्ग्याश्च पुष्पं... (क. १ अ.)। (२) वमने कपित्थम्–दधित्थरससंयुक्तां पिप्पलीं माक्षिकान्विताम्। मुहुर्मुहुर्नरो लीढ्वा छर्दिभ्यः प्रतिमुच्यते॥" (उ. ४९ अ.)। (३) न्यच्छव्यङ्गनीलिकासु कपित्थम्–"कपित्थराजादनयोः कल्कं वा हितमुच्यते" (चि. २० अ.)। सुश्रुतः॥ (१) कफजवमने कपित्थम्-"खादेत् कपित्थं सव्योषम्" (चि. ६ अ.)। (२) कफजकर्णरोगे कपित्थम्–"रसेन... कपित्थस्य च पूरयेत्" (चि. १८ अ.)। वाग्भटः॥ प्रवाहिकायां कपित्थम्–"धातकी वदरीपत्रं कपित्थं...। एकतो दध्ना पिबेत् प्रवाहिकार्द्दितः (म. ख. १मः भा.)। भावप्रकाशः॥ प्रदरे कपित्थपत्रम्–"कपित्थवेणुपत्रञ्च सममेकत्र पेषयेत्। मधुना सह दातव्यं तीव्रप्रदरनाशनम्॥" (स्त्रीरोगाधिकारे)। वङ्गसेनः।

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– कपित्थः, दधित्थः, कपिप्रियः, दन्तशठः। हि.– कैथ, कैथा, कैत। बं.– कयेत्थ गाछ। म.– कवंठ, कवठ, कविठ। गु.– कोठ, काठ। ते.– एलांग काया, वेलग चेट्टु। द्रा.– वलाभरम्। क.– वेल्वल, वलुवत। अं.– Wood apple (उड एपुल)। ले.– Feronia elephantum (फिरानिया एलीफेन्टम)।

गुण प्रकाशिका संज्ञा– ग्राही। **परिचय ज्ञापिका संज्ञा**– गन्धफला, चिरपाकी, कठिन फल।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार– कपित्थ (कैथ) का कच्चा फल स्वर के लिए अहितकर, कफनाशक, ग्राही तथा वातकारक है; कफ विकार तथा वातविकार को दूर करता है। पका हुआ कैथ मधुर रस तथा अम्ल रस प्रधान और गुरु है। यह श्वास, कास तथा अरुचि को दूर करता है, प्यास को नष्ट करता है तथा कण्ठ का शोधन करता है।

राज निघण्टु के अनुसार– कैथ मधुर रस तथा अम्ल रस प्रधान कषाय रस तथा तिक्त रस वाला है ओर शीतल है। यह वीर्यवर्द्धक है तथा पित्त विकार तथा वात विकार को नष्ट करता है, ग्राही है तथा व्रणनाशक है।

भावप्रकाश के अनुसार– कच्चा कैंथ कषाय रस प्रधान, हल्का, ग्राही तथा मल का भेदन करने वाला है। पका कैथ फल भारी, प्यास तथा हिचकी को शान्त करने वाला एवं वात-पित्त को जीतने वाला है। यह थोड़ा तुवर (कषैला) रस प्रधान तथा कण्ठ का शोधन करने वाला है और दुष्पच होता है।

राजवल्लभ के अनुसार– कच्चा कैथ का फल कण्डू का नाश करने वाला, विष का नाश करने वाला, ग्राही तथा वात कारक होता है। यह मधुर रस, अम्ल रस तथा कषाय रस एवं सुगन्धित होने से रुचिकारक होता है। कैथ का पका हुआ फल दोषनाशक, भारी, ग्राही तथा विष को दूर करता है।

बृहन्निघण्टु रत्नाकर के अनुसार– कैथ का बीज हिचकी तथा कास का नाश करता है और हृदय की व्यथा को दूर करता है। इनके अतिरिक्त सिर की व्यथा, विष विकार तथा विसर्प का नाश करता है। कैथ के बीज का तैल कषाय रस वाला है तथा ग्राही है, स्वादिष्ट है और पित्त का नाश करता है। मूषक विष, कफ विकार,

हिचकी तथा वमन का नाश करता है। कैथ का पुष्प विष का नाश करता है; पत्ता वमन तथा अतिसार को दूर करता है तथा हिचकी का नाश करता है ऐसा पूर्वाचार्यों ने कहा है।

वैद्यक शास्त्र के अनुसार कैथ का प्रयोग-

(१) अर्श रोग में कैथ का प्रयोग- अर्श रोग में कैथ तथा बिल्व का यूष पान करे (चि.चि.अ.९)। **(२) हिक्का में कैथ का प्रयोग-** हिक्का रोग में आंवला तथा कैंथ के रस में पीपर तथा मुलेठी का चूर्ण मिलाकर पान करे (च.चि.अ.२१)। **(३) कण्ठगत विष में कैंथ का प्रयोग-** कण्ठगत विष में कच्चे कैथ का चूर्ण मिश्री तथा शहद मिलाकर पान करे (च.चि.अ.२५)। **(४) रक्तपित्त में कैथ के पत्र का प्रयोग-** राजादन तथा कैथ के पत्ते के कल्क का घी में भूनकर सेवन करने से पित्त तथा वात को दूर करता है और पैत्तिक विकार में सभी रक्त पित्त को जीत लेता है (च.चि.अ.३०)।

(१) विष मिश्रित अंजन लगाने से नेत्र विकार में कैथ के पुष्प का प्रयोग- कैथ तथा मेषशृङ्गी के पुष्प का अंजन करने से विष मिश्रित अंजन जन्य नेत्र रोग नष्ट होता है (सु.क.अ.१)। **(२) वमन में कैंथ का प्रयोग-** कैथ के रस से युक्त पीपल्ली के चूर्ण को मधु के साथ बार-बार चाटकर मनुष्य वमन रोग से मुक्त हो जाता है (सु.उ.अ.४८)। **(३) न्यच्छ, व्यङ्ग तथा नीलिका (क्षुद्ररोग) रोग में कैंथ के कल्क का प्रयोग-** कैंथ तथा राजादन के पत्र कल्क को न्यच्छ, व्यङ्ग तथा नीलिका रोग में लेप करने से ये रोग शान्त हो जाते हैं (सु.चि.अ.२०)।

(१) कफज वमन में कैथ का प्रयोग- कफज वमन में कैथ के फल का व्योष (सोठ, पीपर, मरिच) के चूर्ण को मिलाकर सेवन करने से वमन रोग शान्त होता है (अ.हृ.चि.अ.६)। **(२) कफज कर्ण रोग में कैंथ का प्रयोग-** कफज कर्ण रोग में कर्ण को कैंथ के रस से भर दे। इससे कर्ण रोग शान्त हो जाता है (अ.हृ.चि. अ.१८)।

प्रवाहिका में कपित्थ का प्रयोग- प्रवाहिका से पीड़ित व्यक्ति घास का फूल, बेर का पत्ता तथा कैथ का एक साथ पीसकर दही के साथ सेवन करे (भा.म.ख.प्रथम भाग)।

प्रदर रोग में कैथ के पत्र का प्रयोग- कैथ का पत्र तथा वांस का पत्र दोनों का एक साथ पीसकर शहद के साथ सेवन कराये। यह भयंकर प्रदर रोग को नष्ट करता है (वंगसेन, स्त्रीरोगाधिकार)।

Constituents—The pulp contains a large quantity of citric acid with potash lime and iron. The leaves yield an essential oil similar to that obtained from bael leaves. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 130).

Actions and uses—The young leaves are stomachic lithontriptic and carminative used in Dyspepsia and Diarrhoea; also used in lessening red sand from the urine. The unripe fruit is astringent, and like bael, is used in Diarrhoea and Dysentery. The ripe fruit is refreshing, antiscorbutic digestive and tonic, the syrup is used in salivation, Sore throat and in strengthening the gums. The gum is a good substitute for gum-arabic, the mucilage is more viscid than that of gum-arabic, and is used with honey is Diarrhoea, Dysentery and to relieve tenesmus of the bowels. The pulp or the powdered rind is used as a local application for bites of venomous insects. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 130).

कम्पिल्लकः
Mallotus phillippensis

कम्पिल्लकः। *Mallotus phillippensis*, Mub-Arg, *Rottlera tinctoria*, Roxb.

परिचयज्ञापिका संज्ञा–"लघुपत्रकः", "लोहिताङ्गः", "रक्तफलः", "बहुपुष्पः", "बहुफलः"। गुणप्रकाशिका संज्ञा–"रञ्जनः", "रेची"।

कम्पिल्लको विरेची स्यात् कटूष्णो व्रणनाशनः। गुल्मोदरविबन्धाध्मश्लेष्मकृमिविनाशनः॥ पित्तव्रणाध्मानविबन्धनिघ्नः श्लेष्मोदरार्त्तिकृमिगुल्मवैरी। शूलामशोथव्रणगुल्महारी कम्पिल्लको रेच्यगदापहारी॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ कम्पिल्लको विरेची स्यात् कटूष्णो व्रणनाशनः। कफकासार्त्तिहारी च जन्तुकृमिहरो लघुः॥ राजनिघण्टुः॥ कम्पिल्लः कफपित्तास्त्रकृमिगुल्मोदरव्रणान्। हन्ति रेची कटूष्णश्च मेहाऽऽनाहविषाश्मनुत्॥ भावप्रकाशः॥ 'तच्छाकं' शीतलं तिक्तं वातलं ग्राहि दीपनम्। बृहन्निघण्टुरत्नाकरः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) गुल्मे कम्पिल्लकः–"...लिह्यात् कम्पिल्लकं वापि विरेकार्थं मधुद्रवम्" (चि. ५ अ.)। (२) व्रणरोपणार्थम् कम्पिल्लकः– "...तैलं कम्पिल्लकेन वा। प्रधानं व्रणरोपणम्॥" (चि. १३ अ.)। चरकः॥ कृमिषु कम्पिल्लकः–"कम्पिल्लचूर्णकर्षार्द्धं गुडेन सह भक्षितम्। पातयेत्तु कृमीन् सर्वानुदरस्थान्न संशयः॥ (कृमि-चि.)। भावप्रकाशः॥

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– कम्पिल्लः, कर्कशः, चन्द्रः, रक्ताङ्गः, रेचनः। हि.– कबीला, कमीला, कम्बीला, रोरी, रोहिनी, सिन्दूरी, वसन्तगन्ध। बं.– कमलागण्डी, घोलसिन्दूर (कमला-गुटी)। म.– कमीला, कपिला। मला.– पोनागम। फा.– कम्बिलाय, कमीलह, कम्लेला। अ.– कम्वीला, किम्बील। अं.– Kamlla (कमीला)। ले.– Mallotus phillippensis (मेलाटेस फिलिपाईनेसिस), Rottlera tinctoria (रोटलेरा टिङ्कटोरिया), Croton puncteatis।

परिचयज्ञापिका संज्ञा- लघुपत्रक, लोहिताङ्ग, रक्तफल, बहुपुष्प, बहुफल। **गुणप्रकाशिका संज्ञा-** रञ्जन, रेची।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- कम्पिल्लक (कवीला) विरेचक होता है तथा कटु एवं उष्ण रस प्रधान है और व्रण का नाश करता है; गुल्म रोग, उदर विकार, विबन्ध, आध्मान, कफ विकार एवं कृमि रोग का नाश करता है; पित्त, व्रण, आध्मान तथा विबन्ध का नाश करता है; कफ विकार, उदर विकार, पीड़ा, कृमि रोग तथा गुल्म रोग का शत्रु है; शूल, आम विकार, शोथ, व्रण एवं गुल्म रोग को दूर करता है और रेचन कराने योग्य रोगों को दूर करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- कम्पिल्लक विरेचक होता है, यह कटुरस वाला, उष्ण एवं व्रण नाशक है, कफ विकार तथा कास की पीड़ा को दूर करता है, जन्तु क्रिमि को दूर करता है तथा हल्का है।

भाव प्रकाश के अनुसार- कम्पिल्लक कफ विकार, पित्त विकार, रक्त विकार, कृमि रोग, गुल्म रोग, उदर रोग तथा व्रण को नष्ट करता है। यह रेचक है, कटु रस प्रधान तथा उष्ण है और प्रमेह, आनाह, विष विकार तथा पथरी रोग को नष्ट करता है।

बृहन्निघण्टु रत्नाकर के अनुसार- कम्पिल्लक का शाक शीतल, तिक्त रस वाला, ग्राही तथा जाठराग्नि दीपक है।

वैद्यक के अनुसार कम्पिल्लक का प्रयोग-

(१) गुल्म में कम्पिल्लक का प्रयोग- कम्पिल्लक के चूर्ण को मधु मिलाकर गुल्म रोग में चाटे (च. चि.अ.५)। **(२) व्रण रोपण के लिए कम्पिल्लक का प्रयोग**- कम्पिल्लक का तैल प्रधान व्रणरोपक है (च. चि.अं.१३)।

क्रिमि रोग में कम्पिल्लक का प्रयोग- कम्पिल्लक का चूर्ण आधा कर्ष (६ ग्राम) गुड़ के साथ खाने से सभी उदर में स्थित क्रिमियों को नष्ट करता है। इसमें संदेह नहीं है (भा.क्रिमिचिकित्सा)।

Constituents—Resins 80 p.c. tannic acid, gum, volatile oil, rottlerin, albuminous matter 7 p.c.; colouring matter, cellulose 7 p.c. and ash 4 p.c. (*Materia Medica of India*—R.N. Khory, Part II., p. 550).

Actions and uses—Cathertic and anthelmintic; given with treacle it kills and expells round and thread worms; as a purgative it causes nausea but does not cause vomiting; it relieves colicky pain and removes bile. It is a local remedy for ringworm, pityriasis, freckles and scabies. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 550).

करञ्जः

Pongamia glabra

करञ्जः (कः), नक्तमालः, चिरबिल्वः– *Pongamia glabra*, Vent. **प्रकीर्यः, पूतिकरजः, पूतिकः**–*Caesalpinia bonducella*, *Fleming*.

परिचयज्ञापिका संज्ञा-नक्तमालस्य "पूतिपर्णः", "स्निग्धपत्रः", "गुच्छपुष्पः"।

करञ्जश्चोष्णतिक्तः स्यात् कफपित्तास्रदोषजित्। व्रणप्लीहकृमीन् हन्ति भूतघ्नो योनिरोगहा॥ 'चिरबिल्वः' करञ्जश्च तीव्रो वातकफापहः। 'महाकरञ्ज'स्तिक्तोष्णः कटुको विषनाशनः। कण्डूविचर्चिकाकुष्ठत्वग्दोषव्रणनाशनः। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ 'करञ्जः' कटुरुष्णश्च चक्षुष्यो वातनाशनः। तस्य 'स्नेहो'ऽतिस्निग्धश्च वातघ्नः स्थिरदीप्तिदः॥ 'घृतकरञ्जः' कटूष्णो वातहृद्व्रणनाशनः। सर्वत्वग्दोषशमनी विषस्पर्शविनाशनः॥ करञ्जः (गुच्छकरञ्जः) कटुतिक्तोष्णः विषवातार्त्तिनाशनः। कण्डूविचर्चिकाकुष्ठस्पर्शत्वग्दोषनाशनः॥ 'रीठाकरञ्ज'स्तिक्तोष्णः कटुस्निग्धश्च वातजित्। कफघ्नः कुष्ठकण्डूतिविषविस्फोटनाशनः॥ 'करञ्जतैलं' नयनार्त्तिनाशनं वातामयध्वंसनमुष्णतीक्ष्णकम्। कुष्ठार्त्तिकण्डूतिविचर्चिकापहं लेपेन नानाविधचर्मदोषनुत्॥ राजनिघण्टुः॥ करञ्जः कटूकस्तीक्ष्णो वीर्योष्णो योनिदोषहृत्। कुष्ठोदावर्त्तगुल्मार्शोव्रणकृमिकफापहः॥ 'तत्पत्रं' कफवातार्शःकृमिशोथहरं परम्। भेदनं कटुकं पाके वीर्योष्णं पित्तलं लघु॥ 'तत्फलं' कफवातघ्नं मेहार्शःकृमिकुष्ठजित्। 'घृतपर्णकरञ्जो'ऽपि करञ्जसदृशो गुणैः॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) कुष्ठे करञ्जफलम्–"...कुटजकरञ्जयोर्फलम्।... लेपः कुष्ठापहः

सिद्धः" (चि. ७ अ.)। (२) अर्शःसु करञ्जपत्रम्– "प्राग्भक्तं यमके भृष्टान् शक्तुभिश्चावचूर्णितान्। करञ्जपल्लवान् दद्याद्वातवर्चोऽनुलोमनम्॥" (चि. ९ अ.)। (३) विसर्पे करञ्जत्वक्– "सुखोष्णया प्रदिह्यात्...। ...नक्तमालत्वचाऽपि वा"। (चि. ११ अ.)। चरकः॥ (१) कच्छुपामाविचर्चिकासु नक्तमालतैलम्–"तैलं वा नक्तमालजम्" (चि. २० अ.)। (२) वातजशूले चिरबिल्वाङ्कुरः–"चिर-बिल्वाङ्कुरान् वापि तैलभृष्टांस्तु भक्षयेत्" (उ. ४२ अ.)। (३) रक्तपित्ते करञ्जबीजम्–"करञ्जबीजं मधुसर्पिषी च।... घ्नन्ति त्रयः पित्तमसृक् च योगः" (उ. ४५ अ.)। (४) छर्द्यां करञ्जपत्रम्–"पिबेद्यवागूमथवा सिद्धां पत्रैः करञ्जजैः" (उ. ५० अ.)। (५) ऊरुस्तम्भे करञ्जबीजम्– "...लिह्याच्च मूत्राढ्यैः करञ्जफलसर्षपैः" (चि. ५ अ.)। (६) श्लीपदे पूतिकरञ्जः–"पूतिकरञ्जपत्राणां रसं वापि यथाबलम्" (चि. १९ अ.)। (७) कृमिषु पूतिकरञ्जः–"पूतिकस्वरसं वापि पिबेद्वा मधुना सह" (उ. ५४ अ.)। (८) कुष्ठे करञ्जतैलम्–"कारञ्जं वा सार्षपं वा क्षतेषु। क्षेप्यं तैलं..." (चि. ९ अ.)। सुश्रुतः॥ ग्रन्थिविसर्पे नक्तमालत्वक्–"नक्तमालत्वचा...। लेपो भिन्द्याच्छिलामपि" (चि. १८ अ.)। वाग्भटः॥ (१) पक्वशोथप्रभेदने चिरबिल्वमूलम्–"चिरबिल्वा-ग्निकौ...।" (व्रणशोथ-चि.)। (२) नेत्ररोगे करञ्जबीजम्–"बहुशः पलाशकुसुमस्वरसैः परिभाविता जयत्यचिरात्। नक्ताह्वबीजवर्त्तिः कुसुमचयं दृक्षु चिरजमपि"। (नेत्ररोग-चि.)। (३) मसूरिकाप्रथमा-विर्भावकाले पूतिकरञ्जः–"...सोषणवाथपूतिः। प्रथममघगदे दृश्यमाने प्रयोज्याः" (मसूरिका-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) जलोदरे पूतिकरञ्जबीजम्– "पूतिकरञ्जबीजं... काञ्जिकपीतं शमयेज्जलोदरमपि" (उदर-चि.)। (२) अम्लपित्ते पूतिकरञ्जशुङ्गम्–"पूतिकरञ्जशुङ्गानि घृतभृष्टानि रोगिणे। निवेद्य भोजने कार्यं वमनं कोष्णवारिणा॥" (अम्लपित्त-चि.)। (३) मसूरिकायां पूतिकरञ्जः–"रसं पूतिकरञ्जस्य चामलक्या रसं तथा। पिबेत् सशर्कराक्षौद्रं शोफनुत् कफपैत्तिके॥" (मसूरिका-चि.)। वङ्गसेनः॥

विविध भाषाओं में नाम–

वृक्षकरञ्ज, घृतकरञ्ज– सं.– करञ्जः, नक्तमालः, उदकीर्यः। हि.– करञ्ज, करञ्जक, किरेमाल, पापर, डिठोरी, बं.– डहरकरञ्ज, म.– करंज, गु.– कणझी, करञ्ज। पं.– सूच चेडन। ता.– पुंगम, पुंकु। ते.– पुंगु, कनगुचेट्टु। म.– पौनम्, उन्नेरम्। कं.– होंगे। अं.– Smooth leaved pongamia (स्मूथ लिव्ड पोंगेमिया), Indian beach (इन्डियन वीच)। ले.– Pongamia glabra vent (पोन्ङ्गैमिया ग्लेब्रा वेण्ट)।

कण्टकरञ्ज– सं.– पूतिकरञ्जः, लताकरञ्जः, विटपकरञ्जः, कुवेराक्षः, प्रकीर्यः। हि.– करञ्ज, करञ्जुआ, कटकरञ्ज (जा) कंजा, करञ्ज, कटकलेजा, सागर गोटा। बं.– कोटाकरञ्जा, नाटाकरञ्जा, नाटा। म.– सागर गोटा, गञ्जा, गजरघोटा, गाजगा़। गु.– कोचका, कोच। क.– गञ्जिकेकायि। ते.– कच्चकायः। ता.– कझशिके। मला.– कलञ्चिकुरु। फा.– खाये-इब्-लिसि। अ.– ऊक्तभक्त, टजुल विलोदत्। अं.– (कण्डिक नट), फिझिकनट, फीवरनट। ले.– Cesalpinia bonducella, fleming (सिसिल पिनिआ वाण्ड्युसेल्ला फ्लेमिङ्ग)।

परिचय ज्ञापिका संज्ञा– नक्तमालका– पूतिपर्ण, स्निग्धपत्र, गुच्छपुष्प।

गुण–दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार– करञ्ज उष्ण तथा तिक्त रस प्रधान होता है। यह कफ विकार, पित्त विकार

तथा रक्त विकार को दूर करता है; व्रण, प्लीहा रोग, क्रिमि रोग को नष्ट करता है और भूतग्रह एवं योनि रोग को दूर करता है। चिरबिल्व करञ्ज तीव्र वात-कफ नाशक है। महाकरञ्ज तिक्त तथा कटु रस प्रधान एवं विषनाशक है और कण्डू, विचर्चिका, कुष्ठ रोग, चर्म रोग तथा व्रण का नाश करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- करञ्ज कटु रस प्रधान है तथा उष्ण वीर्य है और नेत्र के लिए हितकर एवं वातनाशक है। **करञ्ज का तैल** स्निग्ध होता है और वात नाशक है तथा तेज को स्थिर रखता है। **घृत करञ्ज** कटु रस प्रधान तथा उष्ण है और वात रोग, हृदय रोग तथा व्रण का नाश करता है; इनके अतिरिक्त सभी प्रकार के चर्म विकार के दोषों को शान्त करता है एवं विष के स्पर्श का नाश करता है। **करञ्ज (गुच्छ करञ्ज)** कटु तथा तिक्त रस प्रधान है तथा उष्ण है और विष विकार एवं वात विकार को नष्ट करता है। इनके अतिरिक्त यह कण्डू, विचर्चिका, कुष्ठ, स्पर्श एवं चर्म विकार का नाश करता है। **रीठा करञ्ज** तिक्त तथा कटु रस प्रधान है, उष्ण वीर्य है, स्निग्ध है तथा वात नाशक है। इनके अतिरिक्त कफनाशक है और कुष्ठ, कण्डू, विष विकार तथा विस्फोट का नाश करता है। **करञ्ज का तैल** नेत्र की पीड़ा का नाश करता है, वातरोग का नाश करता है और उष्ण वीर्य एवं तीक्ष्ण है। कुष्ठ रोग, कण्डू तथा विचर्चिका को नष्ट करता है। यह तैल लेप करने से अनेक प्रकार के चर्म सम्बन्धी दोषों को दूर करता है।

भावप्रकाश के अनुसार- करञ्ज कटुरस वाला, तीक्ष्ण तथा उष्ण वीर्य है और योनि विकार को दूर करता है। यह कुष्ठ रोग, उदावर्त, गुल्म रोग, अर्श रोग, व्रण, क्रिमि रोग एवं कफ रोग को दूर करता है। **करञ्ज का पत्र** कफ विकार, वात विकार, अर्श रोग, कृमिरोग तथा शोथ को अच्छी तरह दूर करता है, मल का भेदन करने वाला है, पाक में कटु रस है, उष्ण वीर्य है, पित्तकारक एवं लघु है। **करञ्ज का फल** कफ तथा वात का नाश करने वाला, प्रमेह, अर्श रोग, क्रिमि रोग तथा कुष्ठ रोग को दूर करता है। घृतपर्ण करञ्ज भी करञ्ज के समान गुणवाला होता है।

वैद्यक शास्त्र के अनुसार करञ्ज का प्रयोग-

(१) कुष्ठ रोग में करञ्ज के फल का प्रयोग- कुटज़ तथा करञ्ज के फल का लेप कुष्ठ रोग को दूर करने वाला सिद्ध योग है (च.चि.अ.७)। **(२) अर्श रोग में करञ्ज के पत्र का प्रयोग-** पहले करञ्ज के पत्र को तैल तथा घी में भून कर और सत्तू का अवचूर्णन कर वात एवं मल के अनुलोम कर प्रयोग करे (च.चि.अ. ९)। **(३) विसर्प में करञ्ज के छाल का प्रयोग-** करञ्ज के छाल के कल्क को थोड़ा गरम कर विसर्प में लगाये। इसी प्रकार नक्तमाल के छाल के कल्क का थोड़ा गरम गरम लेप विसर्प में करे (च.चि.अ.११)।

(१) कच्छु, पामा तथा विचर्चिका में नक्तमाल के तैल का प्रयोग- नक्तमाल का तैल कच्छु, पामा तथा विचर्चिका में लेप करे (सु.चि.अ.२०)। **(२) वातज शूल में चिरबिल्व के अंकुर का प्रयोग-** वातजशूल में चिरबिल्व के अंकुरों को तैल में भूनकर भक्षण करे (सु.उ.अ.४२)। **(३) रक्त पित्त में करञ्ज बीज का प्रयोग-** करञ्ज के बीज का चूर्ण, घी तथा मधु इन तीनों का सेवन करने से यह योग पित्त विकार तथा रक्त विकार को नष्ट करता है (सु.उ.अ.४५)। **(४) छर्दि रोग में करञ्ज के पत्र का प्रयोग-** छर्दि रोग में करञ्ज पत्र के क्वाथ के साथ सिद्ध यवागू का प्रयोग करे (सु.उ.अ.५०)। **(५) उरुस्तम्भ रोग में करञ्ज के बीज का प्रयोग-** गोमूत्र के साथ करञ्ज फल का कल्क देकर विधिवत् सिद्ध सरसो का तेल ऊरुस्तम्भ रोग में लेप करे (सु.चि.अ.५)। **(६) श्लीपद रोग में पूतिकरञ्ज का प्रयोग-** श्लीपद रोग में पूतिकरञ्ज के पत्रों का रस बल के अनुसार पान कराये (सु.चि.अ.१९)। **(७) क्रिमिरोग में पूति करञ्ज का प्रयोग-** क्रिमिरोग में पूति करञ्ज का स्वरस

मधु के साथ प्रयोग करे (सु.उ.अ.५४)। **(८) कुष्ठ रोग में करञ्ज तेल का प्रयोग-** कुष्ठरोग में करञ्ज या करञ्ज के कल्क तथा क्वाथ के साथ सिद्ध सरसो के तेल का प्रयोग करे तथा क्षत में भी तैल का प्रयोग करे (सु.चि.अ.९)। **ग्रन्थि विसर्प में नक्तमाल (करञ्ज) के छाल का प्रयोग-** नक्तमाल के छाल का लेप ग्रन्थि विसर्प में करे। यह पत्थर को भी गला देता है (वाग्भट-चि.अ.१८)।

(१) पके शोथ को भेदन करने के लिए चिरबिल्व के मूल का प्रयोग- चिरबिल्व तथा चित्रक के लेप का पक्व व्रण शोथ के भेदन के लिए प्रयोग करे (चक्र.चि. व्रण शोथाधिकार)। **(२) नेत्र रोग में करञ्ज बीज का प्रयोग-** अनेक बार पलाश के फूल के स्वरस से भावित करञ्ज बीज की वर्ति पुराने नेत्र रोगों को भी नष्ट करता है (चक्र. चि. नेत्ररोगाधिकार)। **(३) मसुरिका के पहले उत्पन्न होने के समय में पूति करञ्ज का प्रयोग-** सर्वप्रथम मसुरिका के दिखाई देने पर पूतिकरञ्ज के रस का थोड़ा-थोड़ा गरम प्रयोग करे (च.चि.मसूरिकाधिकार)।

(१) जलोदर में पूतिकरञ्ज के बीज का प्रयोग- पूति करञ्ज के बीज का चूर्ण काञ्जी के साथ पान करने से जलोदर रोग को भी शान्त करता है (वंगसेन-उदररोग चिकित्सा)। **(२) अम्लपित्त में पूतिकरञ्ज के शुङ्ग (टूसा) का प्रयोग-** पूतिकरञ्ज के टूसा को घी में भूनकर उसको रोगी के भोजन के साथ खिलाकर गरम जल से वमन कराये (वंग.चि.अम्लपित्ताधिकार)। **(३) मूसूरिका में पूतिकरञ्ज का प्रयोग-** पूतिकरञ्ज का रस आंवला के रस के साथ मिलाकर तथा शक्कर और घृत डाल कर कफ-पैत्तिक मसूरिका में पान कराये। यह शोथ को दूर करता है (वंगसेन-मसूरिका चि.)।

Constituents *of Pongamia glabra*—The seeds contain a bitter and pale sherry coloured oil 27 p.c., known as Pongamia oil or Honge oil. The bark contains a bitter alkaloid, resin, mucilage, sugar but no tannin (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 25).

Actions and uses *of Pongamia glabra*—The oil is stimulant, porasiticide and non-irritant; it does not stain the skin; used in scabies, herps, porrigo capitis, pityriasis, versicolor, psoriasis and other skin affections; generally used combined with an equal quantity of lemon juice; also used as an embrocation in rheumatism. The leaves are stimulant, carminative and alterative and are used in Dyspepsia, Diarrhoea, flatulency also in leprosy, epilepsy and abdominal enlargements. The juice of the root is demulcent and cooling, and used in Gonorrhoea and to clean foul ulcers and fistulous openings. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 225).

Rheede notices the uses of bath prepared with the leaves to remove Rheumatic pains; and they appear to be in general use for this purpose. **Ainslie** says that the juice of the root is used for cleanning foul ulcers and closing fistulous sores. He also notices the oil and its use in itch and Rheumatism. **Gilbson** speakes very highly of the oil as a remedy in scabies, herps, and other cutaneous diseases of a similar nature; it should be mixed with an equal quantity of lemon juice and be well shaken when it forms a rich yellow liniment which we have used successfully in porrigo capitis, pityriasis and psoriasis. **Dr. P. S. Mootooswamy** mentions the use of the root with coconut milk and lime water as a remedy for gonorrhoea in Tanjore, and of the leaves in flatulency, Dyspepsia and Diarrhoea. He has noticed the use of the flowers as a remedy for diabetes, and of the pods worn round the neck as a protective against whooping cough. (India Mad. Gaz., 1888). **Dr. B. Evers** has seen the seeds administered internally for the last named affection. (*Pharmacographia India*—Dymock, Part I., p. 469).

Constituents of *Casalpinia bonducella.*— The kernels contain a non-alkaloidal bitter principle, guilandina. The cotyledons of the seeds contain a fixed oil 25, bitter principle or resign 2, sugar 6, salts 3, albuminoid matter 20, starch 35, and tannin. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 203).

Actions and uses of *Casalpinia bonducella*—The kernels are bitter tonic, antiperiodic and anthelmintic. The juice of fresh leaves is febrifuge and used in chronic fevers. The seeds, powdered and mixed with black pepper are febrifuge and alterative tonic and are given in general debility to check haemorrhages and in quotidian, tertian, quartan fevers. As an anthelmintic, the kernels mixed with the leaves and flowers of *Butia frondosa* and with the flowering tops of *Artemisia maritima* are given for intestinal worms. The fixed oil is emollient and used as an embrocation and to remove freckles from the face and to stop the discharges from the ear; sagaragota with powdered cloves is given to relieve the pain of colic and vomiting. The seeds are worn as necklaces by pregnant women under the belief that it prevents abortion. (*Materia Medica of India*— R. N. Khory, Part II., p. 203).

The seeds roasted and powdered are administered for Hydrocele internally and at the same time applied externally, spread upon castor oil leaves. They are also given internally in leprosy, and are thought to be anthelmintic. The oil in which they have been boiled for a long time is applied to wounds to promote cicartization. The oil expressed from the seeds is used as a cosmetic; it is said to soften the skin and remove pimples & c. The seeds are given with gur (molasses) in hysteria. A decoction of the roasted seed is used for consumption and asthma. (*Pharmacographia Indica*—Dymock, Part I., pp. 497-8).

करवीर:

Nerium odorum

श्वेतपुष्पस्य–करवीरः, अश्वघ्नः, रक्तपुष्पस्य–करवीरकः, चण्डकः, लगुडः–*Nerium odorum*, Soland. पीतकरवीरकः। *Thevetia nirifolia*, Juss. करवीरः कटुस्तिक्तो वीर्ये चोष्णो ज्वरापहः। चक्षुष्यः कुष्ठकण्डूघ्नः प्रलेपाद्विषमन्यथा॥ 'करवीरद्वयं' तिक्तं सविषं कुष्ठजित् कटु। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ करवीरः कटुस्तीक्ष्णः कुष्ठकण्डूतिनाशनः। व्रणार्त्तिविषविस्फोटशमनोऽश्वमृतिप्रदः॥ 'रक्तस्तु' करवीरः स्यात् कटुस्तीक्ष्णो विशोधकः। त्वग्दोषव्रणकण्डूतिकुष्ठहारी विषापहः॥ 'पीतकरवीरको'ऽन्यः पीतप्रसवः सुगन्धिकुसुमश्च। कृष्णस्तु कृष्णकुसुमश्चतुर्विधोऽयं गुणे तुल्यः॥ राजनिघण्टुः॥ 'करवीरद्वयं' तिक्तं कषायं कटुकञ्च तत्। व्रणलाघवकृन्नेत्रकोपकुष्ठव्रणापहम्॥ वीर्योष्णं क्रिमिकण्डूघ्नं भक्षितं विषवन्मतम्। भावप्रकाशः॥ हलिनीकरवीरी च कुष्ठदुष्टव्रणापहौ॥ राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) कुष्ठे करवीरमूलत्वक्–"स्नाने पाने च मता तथाष्टमश्चाश्वमारस्य" (चि. ७ अ.)। (२) पालित्ये करवीरमूलत्वक्– "...क्षीरपिष्टौ दुग्धिकाकरवीरकौ। उत्पाद्य पलितं देयौ तावुभौ पलितापहौ (चि. २६ अ.)। चरकः॥ (१) अश्मर्यां करवीरक्षारः–"पाटला करवीरानां क्षारमेवं समाचरेत्" (चि. ७ अ.)। टीका–"पाटलेत्यादि। एतेन वातकफसमुद्भुतायामश्मर्यां

मधुरक्षीरघृताशिनः क्षारयोगा योज्याः"। डल्वणः। (२) उपदंशे करवीरपत्रम्–"करवीरस्य पत्राणि. ..। प्रक्षालने प्रयोज्यानि...॥" (चि. १८ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) व्रणदारणार्थं करवीरमूलम्–"...चित्रको हयमारकः। ...दारणम्"॥ (व्रणशोथ-चि.)। (२) पामायां करवीरमूलम्–"लेपाद्विनिहन्ति पामां तैलं करवीरसिद्धं वा" (कुष्ठ-चि.)। (३) नेत्रकोपे करवीरः–"करवीरतरुणकिशलयछेदोद्भवो बहुलसलिलसम्पूर्णम्। नयनयुगं भवति दूढं सहसैव तत्क्षणात् कुपितम्" (नेत्ररोग-चि.)। चक्रदत्तः॥ उपदंशे करवीरमूलम्–"करवीरस्य मूलेन परिपिष्टेन वारिणा। असाध्याऽपि व्रजत्यस्तं लिङ्गोत्था रुक् प्रलेपनात्॥" (उपदंश-चि.) भावप्रकाशः॥

विविध भाषाओं में नाम– सं.– करवीरः, शतकुम्भः, अश्वमारकः। हि.– कनेर, कनइल, कनेल, करवीरा। बं.– करली। मं.– कणेर, फुलांची, हयमार। क.– आफण लिगे। ते.– गन्नेरु कनरे चेट्टु। फा.– खुरजोहरा। अ.– सुमुला। ले.– Nerium odorum (नेरियम ओडोरम)।

गुण-दोष–

धन्वन्तरी निघण्टु के अनुसार– करवीर कटु तथा तिक्त रस प्रधान, उष्ण वीर्य है तथा ज्वर को दूर करता है; नेत्र के लिए हितकर है, कुष्ठ रोग तथा कण्डू का नाश करता है और लेप करने से विषैला होता है। दोनों प्रकार का करवीर तिक्त तथा कटु रस वाला है, विषैला है तथा कुष्ठ रोगों को दूर करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार– करवीर कटु रस प्रधान तथा तिक्तरस प्रधान एवं तीक्ष्ण है और कुष्ठ एवं कण्डु का नाश करता है। इनके अतिरिक्त व्रण पीड़ा तथा विष विकार को शान्त करता है और अश्व को मार डालता है। **रक्त पुष्प करवीर** कटुरस वाला तथा तीक्ष्ण और शोधन करने वाला है। यह त्वचा-विकार, व्रण, कण्डू तथा कुष्ठरोग एवं विष को दूर करता है। **दूसरा पीत पुष्प करवीर**– पीला फुल वाला तथा सुगन्धित फूल वाला होता है। **कृष्ण पुष्प करवीर**– काला करवीर, काला फूल वाला होता है। इस प्रकार करवीर चार प्रकार का होता है तथा उनका गुण समान होता है।

भाव प्रकाश के अनुसार– दोनों प्रकार का करवीर (श्वेत पुष्प तथा रक्त पुष्प) कषाय तथा कटु रस वाला होता है और वह व्रण को हल्का बनाता है, नेत्र कोप (नेत्राभिष्यन्द), कुष्ठ तथा व्रण को दूर करता है। यह उष्ण वीर्य वाला है और क्रिमि रोग तथा कण्डू का नाश करता है; खाने से विष के समान प्रभाव उत्पन्न करता है।

राजवल्लभ के अनुसार– हलिनी (लांगली) तथा करवीर कुष्ठ रोग तथा व्रण को दूर करते हैं।

वैद्यक शास्त्र में करवीर का प्रयोग–

(१) कुष्ठरोग में करवीर मूल के छाल का प्रयोग– करवीर के मूल के छाल का प्रयोग कुष्ठ रोग में खाने तथा पीने के लिए किया जाता है (च.चि.अ.७)। **(२) पलित रोग में करवीर मूल छाल का प्रयोग**– करवीर के मूल की छाल को दूध के साथ पीसकर पलित रोग को खुजला कर लगाने से पलित रोग दूर होता है (च.चि.अ.२६)।

(१) अश्मरी रोग में करवीर के क्षार का प्रयोग– अश्मरी रोग में पाटला तथा करवीर के क्षार का प्रयोग करे (सू.चि.अ.७)। सुश्रुत के डल्हण टीका में कहा गया है कि इसके प्रयोग से वात-कफ जन्य अश्मरी में मधुर पदार्थ, दूध तथा घृत खाने वाले व्यक्तियों में क्षार का प्रयोग करे। **(२) उपदंश में करवीर पत्र का प्रयोग**– करवीर के पत्र के क्वाथ का उपदंश रोग में प्रक्षालन के लिए प्रयोग करे (सु.चि.अ.१८)।

(१) व्रण को फोड़ने के लिए करवीर के मूल का प्रयोग- व्रण को फोड़ने के लिए चित्रक करवीर के मूल का प्रयोग करे। यह व्रण को फोड़ता है (चक्र.व्रण शोथ चि.)। **(२) पामा में करवीर के मूल का प्रयोग**- करवीर के मूल का कल्क पामा के ऊपर लगाने से पामा को नष्ट करता है अथवा करवीर के कल्क तथा क्वाथ से सिद्ध तैल पामा को नष्ट करता है (चक्र.कुष्ठ चि.)। **(३) नेत्र प्रकोप आने पर करवीर का प्रयोग**- कनेर के तरुण पुष्प के द्वारा रगड़ने से अधिक जल द्वारा आँख के भरने पर दोनों नेत्र दृढ़ होते हैं और उससे शीघ्र ही नेत्र दोष शान्त हो जाता है (चक्र.नेत्ररोग चि.)।

उपदंश मे करवीर के मूल का प्रयोग- करवीर के मूल को जल के साथ पीस कर लेप लगाने से असाध्य भी लिंग में उत्पन्न उपदंश की पीड़ा को शीघ्र ही दूर करता है (भावप्रकाश-उपदंश चि.)।

Constituents—The tuber contains two bitter non crystallizable principles. Neriodorin and Neriodorein (both powerful heart poisons); a glucoside. Rosaginine and essential oil; and a crystalline body, Neriene identical with digitaleine, tannic acid—wax. The leaves contain an alkaloid Oleandrine; a glucoside pseudocurarine also Neriene and Neriantine. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II, page 388). Constituents of *Thevetia nerifolia* (पीतकरवीर:)– The seeds contain 41 p.c. of a bland oil. The bark contains Thevetin.

Actions and uses—Oleandrin, if hypodermically injected, causes the heart beats to fall from 75 or 80 to 10 or 12; if continued for some-time the heart ceases to beat and with it the respiration. Both the root and root bark are powerful diuretic and cardiactonic, like strophanthine and digitalin—an infusion is given in cardiac systole as well as in dropsy. The root is often used to procure aboration and for the purpose of self-distruction. Villagers use the powder of the dried leaves as a remedy for colic, and as an errhine. The wood is employed as rat's-bane. The paste is applied to chancres and ulcers on the genitals and on ringworm. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 389).

Preparations—Tincture (1 in 5) dose 5 to 15 ms. as an antiperiodic; 20 to 60 ms. as a cathartic and emetic. **Actions and uses.**—Two grains of this bark is equal to 10 grains of cinchona bark. The bark is bitter, antiperiodic; it is given with benefit in remittent and intermittent fevers. In large doses it acts as an emetic and purgative and in poisonous doses as an acrid poison. The oil is emetic and purgative, like olive oil it is used externally. (*Materia Medica of India,* R. N. Khory, Part II., p. 392). "The antiperiodic properties of the bark have been confirmed by **Dr. G. Bidie** and **Dr. J. Shortt**. Their trials with it in various forms of remittent fever proved highly satisfactory and leave little doubt that it is a remedy of considerable power. It is employed in the form of tincture (one ounce of the freshly-dried bark macerated for 8 days in 5 ounces rectified spirit) in doses of from 10-15 drops thrice daily. (*Pharmacographia Indica*—Dymock, Part II., 406-7).

कर्कटशृङ्गी

Pistacia integerrima

कर्कट(क)शृङ्गी, कुलीरशृङ्गी। *Pistacia integerrima, Stewart.*

तिक्ता कर्कटशृङ्गी च गुरुश्चोर्द्ध्वसमीरजित्। कासश्वासार्त्तियक्ष्मघ्नी वान्तितृष्णारुचीर्जयेत्॥

धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ तिक्ता कर्कटशृङ्गी तु गुरुरुष्णानिलापहा। हिमातिसारकासघ्नी श्वास-पित्तास्रनाशिनी॥ राजनिघण्टुः॥ शृङ्गी कषाया तिक्तोष्णा कफवातक्षयज्वरान्। श्वासोर्द्ध्व-वाततृट्कासहिक्कारुचिवमीन् हरेत्॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः–वमने कर्कटशृङ्गी–"...मुस्तायुतां कर्कटकस्य शृङ्गीम्। ...मधुसम्प्रयुक्तां लिह्यात् कफच्छर्दिविनिग्रहार्थम्॥" (चि. २३ अ.)। चरकः॥ रतिवर्द्धनार्थं कर्कटशृङ्गी–"कुलीरशृङ्गचा यः कल्कमालोड्य पयसा पिबेत्। सिताधृतपयोऽन्नाशी स नारीषु वृषायते॥" (उ. ४० अ.)। वाग्भटः॥ शिशोः श्वासे कुलीरशृङ्गी–"कुलीरशृङ्गीचूर्णञ्च मूलकस्य फलं तथा। युक्तोऽयं मधुसर्पिभ्यां लेहः श्वासापहः शिशोः॥" (बालरोग-चि.)। वङ्गसेनः॥

विविध भाषाओं में नाम– सं.– शृङ्गी, कर्कटशृङ्गी, अजशृङ्गी, कर्कटाख्या। हि.– काकडासिंघी, कक्कड सीङ्गी। म.– काकड़ाशिङ्गी। क.– कर्कटी शृङ्गी, कर्काटक शृङ्गी। गु.म.– काकड़ा शीङ्गी। ले.– Pistacia integerrima (पिस्टेसिया इन्टिजिरिमा)।

गुण-दोष–

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार– काकड़ा सिङ्गी तिक्त रस प्रधान तथा गुरु है और ऊर्ध्ववात को दूर करती है। यह कास, श्वास पीड़ा तथा यक्ष्मा का नाश करती है और वमन, तृष्णा एवं अरुचि को जीत लेती है।

राजनिघण्टु के अनुसार– काकड़ा सिङ्गी तिक्त रस प्रधान है, गुरु है तथा वात रोग को दूर करती है। यह शीत, अतिसार तथा कास रोग को नष्ट करती है और स्वास, पित्त विकार एवं रक्त विकार का नाश करती है।

भाव प्रकाश के अनुसार– काकड़ा सिङ्गी कषाय तथा तिक्त रस प्रधान है, उष्ण है और कास विकार, वात विकार तथा क्षय रोग एवं ज्वर रोग, श्वास, ऊर्ध्व वात, प्यास, कास, हिक्का, अरुचि तथा वमन को दूर करती है।

वैद्यक शास्त्र में काकड़ा सिङ्गी का प्रयोग–

कान में काकड़ा सिङ्गी का प्रयोग– नागर मोथा चूर्ण के साथ काकड़ा सिङ्गी के चूर्ण को शहद मिलाकर चाटे। यह कफ विकार तथा वमन को दूर करता है (च.चि.अ.२३)।

रतिवर्द्धन के लिए काकड़ा सिंगी का प्रयोग– काकड़ा सिंगी के कल्क को दूध में मिलाकर जो व्यक्ति पान करता है और मिश्री, घृत, दूध तथा अन्न को खाता है वह वृषवत् संभोग करने में समर्थ होता है। अर्थात् यह योग उत्तम वाजीकरण है (वा.उ.अ.४०)।

बालकों के श्वास रोग में काकड़ा सिङ्गी का प्रयोग– काकड़ा सिङ्गी का चूर्ण तथा मूली के फल का चूर्ण मिलाकर मधु तथा घृत के साथ चाटे। यह बालकों के श्वास रोग को दूर करता है (वंगसेन, बालरोग चिकित्सा)।

कर्पूरः

Cinnamomum camphora

पक्वकर्पूरः– *Cinnamomum camphora*. **अपक्वकर्पूरः**– Camphor found in the trunk of *Dryobalanops aromatica*.

कर्पूरं कटु तिक्तञ्च मधुरं शिशिरं विदुः। तृण्मेदोविषदोषघ्नं चक्षुष्यं मदकारकम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ कर्पूरभेदाः-पोतासो भीमसेनस्तदनु शितकरः शङ्करावाससंज्ञः। प्रांशुः पिञ्जोऽब्दसारस्तदनु हिमयुता वालुका जुटिका च। पश्चादस्यास्तुषारस्तदुपरि सहिमः शीतलः पक्विकान्या। कर्पूरस्येति भेदा गुणरसमहसां वैद्यदृश्येन दृश्याः॥ गुणाः-कर्पूरः शिशिरस्तिक्तः स्निग्धश्चोष्णोऽस्त्रदाहदः। चिरस्थो दाहदोषघ्नः स धौतः शुभ्रकृत् परः॥ कर्पूरलक्षणानि-शिरो मध्यं तलञ्चेति कर्पूरस्त्रिविधिः स्मृतः। शिरस्तम्भाग्रसञ्जातं मध्यं पर्णतले तलम्॥ भास्वद्विशदपुलकं शिरोजातन्तु मध्यमम्। सामान्यपुलकं स्वच्छं तले चूर्णन्तु गौरकम्॥ स्तम्भगर्भस्थितं श्रेष्ठं स्तम्भबाह्ये च मध्यमम्। स्वच्छमीषद्धरिद्राभं शुभं तन्मध्यमं स्मृतम्॥ सुदृढं शुभ्ररूक्षञ्च पुलकं बाह्यजं वदेत्॥ स्वच्छं भृङ्गारपत्रं लघुतरविशदं तोलने तिक्तकञ्चेत्। स्वादे शैत्यं सुहृद्यं बहलपरिमलामोदसौरभ्यदायि। निःस्नेहं दार्ढ्यपत्रं शुभतरमिति चेद्राजयोग्यं प्रशस्तम्। कर्पूरं चान्यथा चेद्बहुतरमशने स्फोटदायि व्रणाय॥ चीनक'श्चीनकर्पूरः' कृत्रिमो धवलः पटुः। मेघसारस्तुषारश्च द्वीपकर्पूरजः स्मृतः॥ चीनकः कटुतिक्तोष्ण ईषच्छीतः कफापहः। कण्ठदोषहरो मेध्यः पाचनः क्रिमिनाशनः॥ कर्पूरतैलं कटुकोष्णकफापहारि। वातामयघ्नरददार्ढ्यदपित्तहारि। राजनिघण्टुः॥ कर्पूरः शीतलो वृष्यश्चक्षुष्यो लेखनो लघुः। सुरभिर्मधुरस्तिक्तः कफपित्तविषापहः। दाहतृष्णास्यवैरस्यमेदोदौर्गन्ध्यनाशनः॥ कर्पूरो द्विविधः प्रोक्तः 'पक्वापक्वप्रभेदतः'। पक्वात् कर्पूरतः प्राहुरपक्वं गुणवत्तरम्॥ भावप्रकाशः॥ कर्पूरं शीतलं पाके चक्षुष्यं कफनाशनम्। पक्वकर्पूरतः प्राहुरपक्वं गुणवत्तरम्॥ राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः-सद्यःशस्त्रक्षते कर्पूरः-"कर्पूरपूरितं बद्धं सघृतं सम्प्ररोहति। सद्यःशस्त्रक्षतं पुंसां व्यथापाकविवर्जितम्॥" (व्रणशोथ-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) परिलेह नामकर्णपालीरोगे कर्पूरः-"बहुशो गोमयैस्तप्तैः स्वेदितं परिलेहितम्। घनसारैः समालिम्पेदजामूत्रेण कल्कितैः॥" (कर्णरोग-चि.)। (२) शुक्रनामनेत्ररोगे कर्पूरः-"वटक्षीरेण संयुक्तं श्लक्ष्णकर्पूरजं रजः। क्षिप्रमञ्जनतो हन्ति शुक्रं वापि घनोन्नतम्॥" (नेत्ररोग-चि.)। वङ्गसेनः॥

विविध भाषाओं में नाम- सं.- कर्पूरः, हिमध्वः, हिमवालुकः, घनसारः, चन्द्रसंज्ञः। हि.- कपूर। बं.- कर्पूर। मा.- कपूर। ते.- कर्पूरमु, कपूरमु। गु.- कपूर। फा.- कापूर। द्रा.- कपूरम्। अं.- Camphor (कैम्फार)। ले.- Cinnamomum camphora।

गुण-दोष-

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- कपूर कटु तथा तिक्त रस वाला है और मधुर एवं शीतल कहा गया है। यह प्यास, मेदोविकार तथा विष दोष का नाश करने वाला है तथा नेत्र के लिए हितकर एवं मद कारक होता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- कर्पूर के भेद- पोतास, भीमसेन, शीतकर, हिमाशय के सभी नाम, प्रांशु, पिञ्ज, अब्दसार, हिमवालुका, त्रुटिका, तुषार हिम शीतल ये सब कर्पूर के भेद हैं। एक अन्य प्रकार पक्व कर्पूर भी इसी का भेद है। कर्पूर के भेद गुण एवं रस के महानता के अनुसार वैद्यक के दृष्टिकोण से देखें। **कर्पूर के गुण**- कर्पूर शीतल है तथा तिक्तरस वाला है, स्निग्ध है, उष्ण है, रक्त विकार तथा दाह उत्पन्न करने वाला है, अधिक समय तक रहने पर दाह को नष्ट करता है और धौत वर्ण का सफेद होता है। **कर्पूर के लक्षण**- कर्पूर तीन प्रकार का होता है- सिर, मध्य तथा तल। सिर अग्रभाग में स्थित है, मध्य मध्य भाग में स्थित है और तल पर्वतल

में स्थित है। चमकता हुआ विशद तथा पुलकित सिर से उत्पन्न कर्पूर होता है, मध्यम कर्पूर सामान्य पुलकित तथा स्वच्छ होता है, तल में गौर वर्ण का चूर्ण होता है। स्तम्भ गर्भ में स्थित कपूर श्रेष्ठ होता है। स्तम्भ के बाहर स्थित कर्पूर मध्यम होता है तथा सफेद एवं थोड़ा हल्दी के रंग का शुभ्र है वह मध्यम होता है। दृढ़, शुभ्र, रूक्ष तथा पुलकित कपूर बाह्य से उत्पन्न होता है। स्वच्छ भृंगार पत्र तौलने में हल्का तथा विशद होता है और स्वाद में तिक्त रस वाला होता है, शीतल होता है, हृदय को बल देने वाला होता है। अधिक सफेद तथा मधुर सुगन्ध देने वाला है। स्नेहहित, दृढ़ पत्र वाला, अधिक सफेद कर्पूर प्रशस्त राजाओं के योग्य हैं। कर्पूर इनके विपरीत अधिक खाने से फोडिया तथा व्रण को उत्पन्न करता है। **चीनक कर्पूर**- चीनक कपूर कृत्रिम होता है; धवल वर्ण का होता है। इसको धवल पटु, मेघसार तुषार तथा द्वीप कपूर रज कहते हैं। **चीनक कपूर** कटु तथा तिक्त रस वाला, उष्ण, थोड़ा शीतल है तथा कफ को दूर करने वाला है। यह कण्ठ के विकार को दूर करता है; मेधावर्द्धक है, पाचक है तथा क्रिमि रोग नाशक है। **कर्पूर का तैल**- कटु रस वाला, उष्ण तथा कफ नाशक है; वातरोग का नाश करने वाला, दांतों को दृढ़ बनाने वाला तथा पित्त का नाश करने वाला है।

भावप्रकाश के अनुसार- कपूर शीतल, वीर्यवर्द्धक, नेत्र के लिए हितकर, लेखन तथा लघु है, सुगन्धित है, मधुर है, तिक्तरस वाला है तथा कफ विकार, पित्त विकार एवं विष विकार को दूर करता है। इनके अतिरिक्त यह दाह, प्यास, मुख की विरसता, मेदोविकार तथा दुर्गन्ध का नाश करता है। **कर्पूर दो प्रकार का होता है**- पक्व, अपक्व भेदसे कपूर दो प्रकार का होता है। पक्व कपूर से अपक्व कपूर अधिक गुणवान् होता है।

राजवल्लभ के अनुसार- कपूर पाक में शीतल, नेत्रों के लिए हितकर तथा कफ नाशक होता है। अत: पक्व कपूर से अपक्व कपूर अधिक गुणवान् होता है।

वैद्यकशास्त्र में कपूर का प्रयोग-

सद्य शस्त्र से कट जाने पर कर्पूर का प्रयोग- सद्य शस्त्र से क्षत होने पर घी के साथ कपूर मिलाकर बांधने से व्यथा तथा पाक से रहित शस्त्रक्षत शीघ्र ही भर जाता है (चक्र.व्रणशोथ चि.)।

(१) परिलेह नामक की कर्ण पाली रोग में कपूर का प्रयोग- अनेक बार गोवर से संतप्त कर तथा परिलहित रोग को स्वेदित कर बकरी के मूत्र के साथ कपूर का कल्क बनाकर लेप करे (बंगसेन, कर्णरोग चि.)। **(२) शुक्र नामक रोग में कपूर का प्रयोग**- वट के दूध के साथ महीन कपूर का चूर्ण मिलाकर अंजन करने से शीघ्र ही कड़ा तथा उठा हुआ शुक्र नामक नेत्र रोग नष्ट हो जाता है (वंगसेन-नेत्ररोग चि.)।

Actions and uses—Camphor is locally rubefacient and resolvent. In medical doses is stimulates the heart respiration, and the vasomator ganglia; and stimulates and increases the sexual appetite; after a time in depresses the generative function. It stimulates the uterus and increases the menstrual flow. On the skin it produces increased diaphoresis. As an anodyne it allays pain, relieves sexual excitements as chrodee and other neurotic affections. It is eliminated by the skin, kidneys and bronchi; often causes dysuria. In large does it produces gastro-enteritis and symptoms of irritant poison. It depresses the heart gives rise to cold sweats, cold hands and feet, coma, convulsions and death. In comparatively large doses it is given in puerperal mania. An enema of camphor is given to expel worms (ascarides). Externally, it is used as a wash for ulcers. In toothache, camphor dissolved in alcohol and applied to the cavites of carious teeth gives relief; used as a snuff it checks coryza. The liniment is useful for sprains, bruises for rheumatic pains of joints, also in spasmodic pains in muscles. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 526).

कसेरुः

Scirpus kysoor, Roxb.

कसेरुः। *Scirpus kysoor*, Roxb.

परिचयज्ञापिका संज्ञा-"क्षुद्रमुस्ता", "शूकरेष्टः"। गुणप्रकाशिका संज्ञा-"गन्धकन्दकः"। कसेरु द्विविधं तत्तु महद्रा'जकसेरुकम्'। मुस्ताकृति लघु स्याद्यत्तच्चिचोड़मिति स्मृतम्॥ 'कसेरुकद्वयं' शीतं मधुरं तुवरं गुरु। पित्तशोणितदाहघ्नं नयनामयनाशनम्॥ ग्राहि शुक्रानिलश्लेष्मरुचिस्तन्यकरं स्मृतम्॥ भावप्रकाशः॥ ...क्रोञ्चादनकसेरुकम्। ...गुरुविष्टम्भि शीतलम्॥ राजवल्लभः॥ वैद्यके व्यवहारः- विसर्पे कसेरुः- "...सघृता च कसेरुका।" (चि. ११ अ.)। चरकः॥ रक्ताभिष्यन्दे कसेरुः-"कसेरुमधुकाभ्यां वा चूर्णमम्बरसंवृतम्। नस्तमप्स्वन्तरीक्षासु हितमाश्च्योतनं भवेत्॥" (उ. १२ अ.) सुश्रुतः॥

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- कसेरुः। हि.- कसेरु, नागर मोथे की जड़। बं.- कसरुक, केसुठ। म.- कचड़ा, कुरड़वा। क.- सेकिन गड़े, कसरुवा। ते.- इहिकोति। गु.- कसेला। ले.- Scirpus grossus (स्क्रीपस ग्रोसस)।

परिचय ज्ञापिका संज्ञा- क्षुद्रमुस्त, शूकरेष्ट।

गुणप्रकाशिका संज्ञा- गन्धकन्दक।

गुण-दोष-

भावप्रकाश के अनुसार- कसेरु दो प्रकार का होता है। वह महद् राज कसेरुक है। यह मोथे के आकार का होता है तथा हल्का है। इस को चिचोड़ कहा जाता है। दोनों प्रकार के कसेरुक शीतल, मधुर, कसैला तथा गुरु होते हैं। यह पित्तविकार, रक्तविकार तथा दाह का नाश करता है और नेत्ररोग का नाश करता है। यह ग्राही है और शुक्र, वात, कफ को बढ़ाने वाला है तथा रुचिकारक एवं दूधवर्द्धक है।

राजवल्लभ के अनुसार- क्रोञ्चादन कसेरुक गुरु है, विष्टम्भकारक है तथा शीतल है।

वैद्यक शास्त्र में कसेरु का प्रयोग-

विसर्प में कसेरु का प्रयोग- विसर्प में कसेरुक को पीसकर तथा घी में मिलाकर प्रयोग करे (च.चि. अ.११)।

रक्ताभिष्यन्द में कसेरुक का प्रयोग- कसेरुक तथा मुलेठी के चूर्ण का अम्बर के साथ आकाशीय जल में मिलाकर रक्ताभिष्यन्द में आश्च्योतन करना हितकर है (सु.उ.अ.१२)।

काकजङ्घा

Leea hirta, Roxb.

काकजङ्घा। *Leea hirta*, Roxb.

परिचयज्ञापिका संज्ञा-"काकजङ्घा," "पारावतपदी", "लोमशा"। उत्पत्तिबोधिका संज्ञा-

"नदीकान्ता"। काकजङ्घा च तिक्तोष्णा रक्तपित्तज्वरापहा। कृमिदोषहरी वर्ण्या विषदोषहरा मता॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ काकजङ्घा तु तिक्तोष्णा कृमिव्रणकफापहा। वाधिर्याजीर्णजिज्जीर्ण-विषमज्वरहारिणी॥ राजनिघण्टुः॥ काकजङ्घा हिमा तिक्ता कषाया कफपित्तजित्। निहन्ति ज्वरपित्तास्त्रव्रणकण्डूविषकृमीन्॥ भावप्रकाशः॥ काकजङ्घा हिमा हन्ति रक्तपित्तकफज्वरान्। मदनविनोदः॥

वैद्यके व्यवहारः- (१) निद्रानाशे काकजङ्घा-"काकजङ्घाजटा निद्राञ्जनयेच्छिरसि स्थिता" (ज्वर-चि.)। (२) यक्ष्मणि काकजङ्घा-"दुग्धेन केवलेन तु वायसजङ्घा निपीतैव" (यक्ष्म-चि.)। (३) प्लीह्नि शार्ङ्गेष्टा- "शार्ङ्गेष्टानिर्यूहः ससैन्धवस्तिन्तिडीकसम्मिश्रः। प्लीहव्युपरमो योगः" (प्लीह-चि.)। (४) दशनकृमिपातनार्थं काकजङ्घा-"नीलीवायसजङ्घा ...मूलमेकैकम्। सञ्चर्व्य दशनविधृतं दशनकृमिपातनमाहुः" (दन्तरोग-चि.)। (५) पाण्डुप्रदरे काकजङ्घा-"काकजानुक-(जाङ्घक)-मूलं वा। पाण्डुप्रदरशान्त्यर्थं प्रपिबेत्तण्डुलाम्बुना" (असृग्दर-चि.)। चक्रदत्तः॥

विविध भाषाओं में नाम- सं.- काकजङ्घा, नदीक्रान्ता, सुलोमशा, पारावतपदी। हि.- काकजङ्घा, मसी, कौआढेंगा। बं.- केउआ ढेंगा, काटा, गुड़का अली। म.- कांगाचे झाड़। गु.- अघोड़ी, काली अघोड़ी, कांग। क.- चिलेच। तै.- नालादुधीणीके। यू.- इतरेलाल। म.- धाड सेके।

परिचय ज्ञापिका संज्ञा- पारावतपदी, काकजङ्घा, लोमशा। **उत्पत्तिबोधिका संज्ञा-** नदी कान्ता।

गुण-दोष-

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- काकजङ्घा तिक्तरस प्रधान तथा उष्ण है और रक्तपित्त एवं ज्वर को दूर करती है; क्रिमि दोष का नाश करने वाली, वर्ण बढ़ाने वाली तथा विष दोष को दूर करने वाली है।

राजनिघण्टु के अनुसार- काकजङ्घा तिक्तरस प्रधान तथा उष्ण है और क्रिमिरोग, व्रण तथा कफ विकार को दूर करती है। यह वाधीर्य तथा अजीर्ण को जीत लेती है और जीर्ण ज्वर एवं विषमज्वर को दूर करती है।

भावप्रकाश के अनुसार- काकजङ्घा शीतल, तिक्त तथा कषाय रस प्रधान है और कफ पित्त को जीत लेती है। इनके अतिरिक्त ज्वर, पित्तविकार, रक्त विकार, व्रण, कण्डू, विष विकार तथा क्रिमिरोग को नष्ट करती है।

मदन विनोद के अनुसार- काकजङ्घा शीतल है तथा रक्तपित्त, कफ विकार तथा ज्वर को नष्ट करती है।

वैद्यक शास्त्र में काकजङ्घा का प्रयोग- (१) निद्रा नाश में काकजङ्घा का प्रयोग- काकजङ्घा की जड़ को सिर के नीचे रखने से अवश्य ही नींद आ जाती है (चक्र. ज्वर चि.)। **(२) यक्ष्मा रोग में काकजङ्घा का प्रयोग-** यक्ष्मा रोग में काकजङ्घा को दूध के साथ पीसकर पान करने मात्र से लाभ होता है (चक्र. यक्ष्मा चि.)। **(३) प्लीहा रोग में शार्ङ्गेष्टा का प्रयोग-** शार्ङ्गेष्ट का क्वाथ सेन्धा नमक तथा तिन्तिडीक मिलाकर पान करने से यह योग प्लीहा रोग को शान्त करता है (चक्र.प्लीहा चि.)। **(४) दांत की कीड़ी को गिराने के लिए काकजङ्घा का प्रयोग-** नीलीवायस (काकजङ्घा) का मूल एक-एक को बराबर लेकर तथा चबाकर दांतो में धारण करने से दांत की क्रिमि को अवश्य ही गिरा देती है (चक्र.दन्तरोग चि.)। **(५) पाण्डुरोग तथा प्रसर में काकजङ्घा का प्रयोग-** काकजङ्घा का मूल पाण्डुरोग तथा प्रदर रोग को शान्त करने के लिए चावल के धोअन के साथ पान करे।

काकमाची

Solanum nigrum

काकमाची, काकाह्वा, वायसी। *Solanum nigrum*, Linn. *Solanum dulcamara*, Linn.

परिचयज्ञापिका संज्ञा-"बहुफला", "गुच्छफला," "कटुफला"। गुण-प्रकाशिका संज्ञा-"रसायनवरा", "कुष्ठनाशनी"। काकमाची त्रिदोषघ्नी सरा स्वर्या सतिक्तका। हन्ति दोषत्रयं कुष्ठं वृष्या सोष्णा रसायनी॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ काकमाची कटुस्तिक्ता रसोष्णा कफनाशनी। शूलार्शःशोफदोषघ्नी कुष्ठकण्डूतिहारिणी॥ राजनिघण्टुः॥ काकमाची त्रिदोषघ्नी स्निग्धोष्णा स्वरशुक्रदा। तिक्ता रसायनी शोथकुष्ठार्शोज्वरमेहजित्॥ कटुर्नेत्रहिता हिक्काच्छर्दिहृद्रोगनाशनी। भावप्रकाशः॥ त्रिदोषशमनी तृष्या काकमाची रसायनी। राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः- (१) कुष्ठे काकमाची-"पिष्ट्वा च काकमाची चतुर्विधः कुष्ठनुल्लेपः" (चि. ७ अ.)। (२) विसर्पे काकमाची- "इन्द्राणीशाकं काकाह्वां...। पृथगालेपनं कुर्याद्द्वन्द्वशः सर्वशोऽपि वा। प्रदेहाः सर्व एवैते देयाः स्वल्पघृताप्लुताः" (चि.११अ.)। (३) शोथे काकमाची-"सवायसीमूलकवेत्रनिम्बं शाकार्थिनां शाकमतिप्रशस्तम्" (चि. १७ अ.)। (४) ऊरुस्तम्भे काकमाची- "शाकैरलवणैरद्याज्जलतैलोपसाधितैः। वायसी वासुकैः..." (चि. २७ अ.)। चरकः॥ आखोः विषे काकमाची-"काकादनी काकमाची स्वरसेष्वथवा कृतम्" (क. ६ अ.)। सुश्रुतः॥ पिल्ले काकमाचीफलम्-"काकमाचीफलैकेन घृतयुक्तेन बुद्धिमान्। धूपयेत् पिल्लरोगार्त्तं पतन्ति क्रिमयोऽपि च॥" (नेत्ररोग-चि.)। चक्रदत्तः॥

विविध भाषाओं में नाम– सं.- काकमाची, ध्वाङ्क्षमाची, वायसी। हि.- मकोय, कवैयानी, भटकोइया। बं.- काकमाची, मदन मधुनी। म.- कागोणी, लघु कावली, कांगोरणी। गु.- पीलुडीनीजात। क.- कवईकाके, कपाया। फा.- रेखतरीख। अं.- एनपुस्सालन, अम्बु सअलव, अनवुस्साल। ले.- Solanum nigrum (सोलेनम निग्रम)।

परिचय ज्ञापिका संज्ञा– बहुफला, गुच्छफला, कटुफला। **गुणप्रकाशिका संज्ञा–** रसायनवरा, कुष्ठनाशिनी।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार– काकमाची त्रिदोष का नाश करने वाली है, दस्तावर है, स्वर के लिए हितकर है तथा तिक्तरस वाली है। यह त्रिदोष को नष्ट करती है, कुष्ठ रोग का नाश करती है, वीर्यवर्द्धक है, उष्ण है तथा रसायन है।

राजनिघण्टु के अनुसार– काकमाची कटुरस तथा तिक्तरस वाली है, उष्ण है तथा कफ का नाश करने वाली है। यह शूल रोग, अर्श रोग तथा शोथ दोष का नाश करने वाली है और कुष्ठ एवं कण्डू को दूर करने वाली है।

भावप्रकाश निघण्टु के अनुसार– काकमाची त्रिदोष का नाश करने वाली, स्निग्ध तथा उष्ण है और स्वर एवं शुक्र को बढ़ाने वाली है। यह तिक्त रस वाली तथा रसायनी गुण वाली है और शोथ, कुष्ठ रोग, अर्श, ज्वर तथा प्रमेह को जीत लेती है। यह अति कटु रस वाली है, नेत्र के लिए हितकर है और हिचकी, छर्दि तथा हृदय रोग का नाश करने वाली है। **राजवल्लभ के अनुसार–** काकमाची त्रिदोष को शान्त करने वाली, वृष्य तथा रसायन गुण वाली है।

वैद्यक शास्त्र के अनुसार काकमाची का प्रयोग-

(१) कुष्ठ रोग में काकमाची का प्रयोग- काकमाची को पीसकर चारों प्रकार से कुष्ठ में लेप करे (च. चि.अ.७)। **(२) विसर्प रोग में काकमाची का प्रयोग-** इन्द्रायणशाक तथा काकमाची को पीसकर अलग-अलग द्विदोषण एवं त्रिदोषण विसर्प में थोड़ा घृत मिलाकर लेप करे (चि.अ.११)। **(३) शोथ में काकमाची का प्रयोग-** शोथ रोग में काकमाची, मूली, वेत तथा नीम के शाक शाक खाने वालों के लिए अधिक हितकर है (च.चि.अ. १७)। **(४) ऊरुस्तम्भ में काकमाची का प्रयोग-** काकमाची तथा वथुआ का शाक तैल तथा जल में सिद्धकर विना नमक मिलाये सेवन कराये (च.चि.अ.२७)।

मूषक विष में काकमाची का प्रयोग- मूषक विष में काकादनी तथा काकमाची के स्वरस का प्रयोग लाभदायक है (सु.क.अ.६)।

पिल्ल रोग में काकमाची का प्रयोग- काकमाची के एक फल को घृत में डुबोकर पिल्ल रोग से पीडित व्यक्ति को धूप दे और नेत्र क्रिमि रोग में भी धूप दे (चक्र.नेत्र रोग चि.)।

Constituents—The berries contain solanin, which is compound of sugar and solanidine—an alkaloid having the property of dilating the pupils.

Actions and uses—The herb is alterative, sedative, diaphoretic, diuretic, hydragogue and expectorant, locally anodyne. Solanine is a powerful protoplasmic poison, acting upon amoeboid organisms and ciliated epithelial cells. Its solution 1 p.c. prevents the growth of bacteria. It coagulates albumen. If kept for sometime in contact with blood, it dissolves the red corpuscles. As an alterative the herb is given in skin diseases such as psoriasis, eczema and in syphilis; as a diuretic in gout, rheumatism, dropsy, gonorrhoea, renal and vesical catarrh, coughs, splenic and hepatic enlargements, &c. The syrup is used as a cooling drink and as a diaphoretic in fevers. The leaves made hot are applied to painful and swollen testicles and on swelled legs and hands. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 451). In India the juice of *S. Nigrum* is given in doses of from 6-8 ounces in the treatment of chronic enlargements of the liver, and is considered a valuable alterative and diuretic. The juice after expression is warmed in an earthen vessel until it loses its green colour and becomes redish brown; when cool it is strained and administered in the morning. It is said to act as a hydrogogue, cathartic and diuretic, *Mr. M. Sheriff* in his supplement to the *Pharmacopoeia of India* speaks very favourably of it when used in this way. I smaller doses (1-2 ozs) it is a valuable alternative in the chronic skin diseases, such as psoriasis. In the Concan the young shoots are cooked as a vegetable and given in these diseases. **Dr. D. B. Master** of Bombay informs us that he has seen them used with great success in psoriasis. **Loureiro** states that the herb is anodyne, and should be used with caution; he notices its used externally to allay yain. (*Pharmacographia Indica*—part II., p. 550). ***Taxicology***—Burton Brown (Punjab Poisons) records the death of three children after eating the berries of *S. nigrum*; the symptoms observed were a feeling of sickness followed by vomiting, pain in the belly and intense thirst, pupils dilated with impaired vision, headache, giddiness, delirum, purging and convulsions, sleep ending in coma. (*Pharmacographia Indica*—Part II., p. 555).

कारवेल्लः

Momordica charantia

कारवेल्लः, *Momordica charantia* (longer one) **कारवेल्ली** *M. muricata* (smaller one).

परिचयज्ञापिका संज्ञा-"चिरितपत्रः", "सूक्ष्मवल्ली," "काण्ड-कटुकः," "पीत-पुष्पः"। काण्डीरः कटुतिक्तोष्णः सरो दुष्टव्रणार्त्तिजित्। लूतागुल्मोदरप्लीहशूलमन्दाग्निनाशनः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टू राजनिघण्टुश्च॥ तत्फलगुणाः-कारवेल्लञ्चातितिक्तमग्निदीप्तिकरं लघु। उष्णं शीतं भेदकञ्च स्वादु पथ्यं समीरितम्॥ अरुचिञ्च कफं वातं रक्तदोषं ज्वरं क्रिमीन्। पित्तं पाण्डुञ्च कुष्ठञ्च नाशयेत्...॥ वैद्यकनिघण्टुः॥ कारवेल्लं हिमं भेदि लघु तिक्तमवातलम्। ज्वरपित्तकफास्त्रघ्नं पाण्डुमेहक्रिमीन् हरेत्॥ तद्गुणा कारवेल्ली स्याद्विशेषाद्दीपनी लघुः। भावप्रकाशः॥ कारवेल्लमवृष्यञ्च रोचनं कफपित्तजित्। राजवल्लभः।

वैद्यके व्यवहारः-वातशोणिते कारवेल्लम्-कारवेल्लकक्वाथमात्रसिद्धं वा" (चि. १ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) ज्वरिणः शाकार्थं कारवेल्लम्- "...कारवेल्लकम्। ...शाकार्थे ज्वरिताय प्रदापयेत्" (ज्वर-चि.)। (२) मसूरिकायां कारवेल्लम्-"सुषवीपत्रनिर्यासं हरिद्राचूर्णसंयुतम्। रोमान्ती-ज्वरविस्फोटमसूरीशान्तये पिबेत्" (मसूरिका-चि.)। (३) योनावन्तःप्रविष्टे कारवेल्लकम्-"सुषवीमूललेपेन प्रविष्टान्तर्बहिर्भवेत्" (योनिव्यापत्-चि.)। चक्रदत्तः॥ विसूचीकायां कारवेल्लम्-"सतैलं कारवेल्ल्यम्बु नाशयेद्धि विसूचीकाम्" (म. ख. २यः भा.)। भावप्रकाशः॥

विविध भाषाओं में नाम– सं- कारवेल्लः, करिवेल्ली। हि.- करैला, करइला, करेली। बं.- करोला, बड़ करेला, छोट करेला। म.- कारले, करली। गु.- करेला, करेलू। क.- हागल, हागेल। ते.- कारकचेट्टू, करिला, काकरकाया। उ.- भलए। फा.- कारेलाह। अ.- किरसा उल्हिमार, कसायुल्हिमार। अं.- Hairy mordica (हेयरी मोर्डिका)। ले.- Momordica charantia (ममोर्डिका केरेण्टिया)।

परिचय ज्ञापिका संज्ञा- चिरितपत्र, सूक्ष्म वल्ली, काण्ड कटुक, पीत पुष्प।

गुण-दोष–

धन्वन्तरी निघण्टु तथा राज निघण्टु के अनुसार- काण्डीर (करेला), कटु तथा तिक्त रस वाला, उष्ण तथा दस्तावर है और दुष्ट व्रण की पीड़ा को जीत लेता है। यह लूता विष, गुल्म रोग, उदर रोग, प्लीहा रोग, शूल तथा मन्दाग्नि का नाश करता है। **करेला के फल का गुण-** करैला अत्यधिक रस वाला, जाठराग्नि दीपक तथा लघु उष्ण तथा शीतल है और मलभेदक, स्वादिष्ट तथा पथ्य कहा गया है। यह अरुचि, कफ विकार, वात विकार, रक्त दोष, क्रिमिरोग, ज्वरपित्त विकार, पाण्डु रोग तथा कुष्ठ रोग को नष्ट करता है।

वैद्यक निघण्टु के अनुसार- करैला शीतल, मल भेदक, लघु तथा तिक्त रस वाला है और वात रोग को बढ़ाता है। यह ज्वर, पित्त विकार, कफ विकार तथा रक्त विकार का नाश करता है और पाण्डुरोग, प्रमेह, एवं क्रिमिरोग को दूर करता है।

भाव प्रकाश के अनुसार- करैला विशेषकर जाठाराग्नि दीपक है तथा हल्का है।

राजवल्लभ के अनुसार- करैला वीर्य वर्द्धक नहीं है, रोचक है तथा कफ विकार एवं पित्त विकार को दूर करता है।

वैद्यक शास्त्र में करैला का प्रयोग-

वात-रक्तविकार में करैला का प्रयोग- वात रक्त में करैला के सिद्ध क्वाथ का प्रयोग लाभदायक होता है (सु.-चि.अ.१)।

(१) ज्वर के रोगी के लिए शाकार्थ करैला का प्रयोग- करैला का शाक ज्वर के रोगी को दे (चक्र. ज्वर चि.)। **(२) मसूरिका में करैला का प्रयोग-** करैला के पत्र का स्वरस हल्दी का चूर्ण मिलाकर रोमन्तिका ज्वर, विस्फोटक तथा मसुरिका की शान्ति के लिए प्रयोग करे। (चक्र.मसूरिका.चि.) **(३) योनि में अन्तःप्रवेश के लिए करैला का प्रयोग-** करैला मूल लेप करने पर अन्तः प्रवेश की हुई योनि बाहर हो जाती है। (चक्र. योनिव्या. चि.)।

विसूचिका में करैला का प्रयोग- तेल में भूना हुआ करैला का जल विसूचिका का नाश करता है। (भावप्रकाश म.ख.२ यः भा)

Constituents—A bitter glucoside, soluble in water, insoluble in ether, a yellow acin, resin, ash 6 p.c.

Actions and uses—Stimulant and alterative; the fruit pulp and juice of the leaves and also seeds are anthelmintic and given in lumbrici. The fruit is also tonic and alterative and given in rheumatism, gout and disease of the liver and spleen. The whole plant powdered is used for dusting over leprous and other intractable ulcers. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 314).

कार्पासी

Cossypium herbaceum

कार्पासी- *Cossypium herbaceum.* **अरण्यकार्पासी, भारद्वाजी-** *Hibiscus truncatus,* Roxb., *Hibiscus vitifolius*, Roxb.

कार्पास्या गुणप्रकाशिका संज्ञा-"गुणसूः"। कार्पासी मधुरा शीता स्तन्या पित्तकफापहा। तृष्णादाहश्रमभ्रान्तिमूर्च्छाहृद्‌बलकारिणी॥ 'भारद्वाजी' हिमा रुच्या व्रणशस्त्रक्षतापहा। राजनिघण्टुः॥ कार्पासकी लघुः कोष्णा मधुरा वातनाशनी। तृष्णादाहारतिश्रान्तिभ्रान्तिमूर्च्छाप्रणाशनी॥ तत् 'पलाशं' समीरघ्नं रक्तकृन्मूत्रवर्द्धनम्। तत् कर्णपीडकानादपूयास्त्रावविनाशनम्॥ 'तद्‌बीजं' स्तन्यदं वृष्यं स्निग्धं कफकरं गुरु। भावप्रकाशः।

वैद्यके व्यवहारः-कुष्ठे कार्पासी-"...त्वक्पुष्पं कार्पास्याः। पिष्ट्वा चतुर्विधः कुष्ठनुल्लेपः" (चि. ७ अ.) चरकः॥ कर्णस्त्रावे कार्पासीफलम्- "सर्जत्वक्‌चूर्णसंयुक्तः कार्पासीफलजो रसः। योजितो मधुना वापि कर्णस्त्रावे प्रशस्यते॥" (उ. २१ अ.)। सुश्रुतः॥ कफजातिसारे कार्पासी-"तद्वत् कार्पास-पर्कटच्योः स्वरसः समधुर्मतः" (अतिसार-चि.)। वृन्दः॥ (१) श्वेतप्रदरे कार्पासीमूलम्- "...मूलं कार्पासमेव वा। पाण्डुप्रदरशान्त्यर्थं प्रपिबेत् तण्डुलाम्बुना" (असृग्दर-चि.)। (२) स्तन्यवर्द्धनार्थम् अरण्यकार्पासमूलम्-"वनकार्पासकीक्षूणां मूलं सौवीरकेण वा" (स्त्रीरोग-चि.)। चक्रदत्तः॥ अपच्याम् अरण्यकार्पासीमूलम्- "वनकार्पासजं मूलं तण्डुलैः सह योजितम्। पक्त्वाऽऽज्ये पूपिकां खादेदपचीनाशनाय च॥" (गण्डमालादि-चि.)। वङ्गसेनः।

विविध भाषाओं में नाम– सं.– कार्पासी, तुण्डकेशी, समुद्रान्ता। हि.– कपास, रूई, आंगा, नरमा, वाड़ी केनीर। म.– कावसी, करपूस। बं.– कार्पोस, तूल। ते.– पत्ति चेट्टू। क.– इत्ति। फा.– कुतन प्रवेदोन, कुन्तुन। अ. – पम्पाह, हवुस, कुतन। गु.– वण, कपास। ता.– पठत्ति। अं.– Cotton plant (काटन प्लाण्ट), Indian cotton (इण्डियन काटन)। ले.– Cossypium herbaceum (कोसीपियम हरवेसियम)।

कपास की गुणप्रकाशिका संज्ञा– गुण सूत्र।

गुण-दोष–

राजनिघण्टु के अनुसार– कपास मधुर, शीतल, दूधवर्द्धक तथा पित्त विकार तथा कफ विकार को दूर करती है। यह प्यास, दाह, थकावट, भ्रम, मूर्च्छा को दूर करने वाली तथा बल बढ़ाने वाली है। **भारद्वाजी (अरण्य कार्पासी)** शीत है, रुचिकारक है और व्रण तथा शस्त्रक्षत को दूर करने वाली है।

भावप्रकाश के अनुसार– कपास, हल्का, उष्ण तथा मधुर है और वात का नाश करने वाली है। यह प्यास, दाह, अरुचि, थकावट, भ्रम तथा मूर्च्छा का नाश करने वाली है। कपास का पत्ता वातनाशक, रक्तवर्द्धक तथा मूत्रवर्द्धक है। यह कान की पीड़ा, कर्णनाद, कर्णपूय तथा कर्णरक्त स्राव को नष्ट करती है। कार्पासी का बीज दूध, रक्त वर्द्धक, वीर्यवर्द्धक तथा स्निग्ध है और कफवर्द्धक एवं गुरु है।

वैद्यक शास्त्र में कार्पासी का प्रयोग–

कुष्ठ रोग में कार्पासी का प्रयोग– कार्पासी (कपास) की छाल तथा पुष्प को पीस कर चार प्रकार का (प्रदेह प्रलेपादि) लेप कुष्ठ रोग को दूर करता है। (च.चि.अ.७)।

कर्णस्राव में कपास के फल का प्रयोग– सर्जवृक्ष की छाल का चूर्ण को कपास के फल के रस में मिलाकर मधु के साथ प्रयोग करने से कर्णस्राव में लाभ होता है। (सु.चि.अ.२१)।

कफज अतिसार में कपास का प्रयोग– कपास तथा पकड़ी के छाल का स्वरस मधु मिलाकर चाटने से अतिसार में लाभ होता है। (वृन्दमाधव, अति.चि.)।

(१) श्वेत प्रदर में कपास के मूल का प्रयोग– कपास के मूल का पाण्डु रोग तथा श्वेत प्रदर की शान्ति के लिए चावल के धोअन के साथ पान करे। (चक्र. असृग्दर चि.)। **(२) दूध बढ़ाने के लिए अरण्य कपास मूल का प्रयोग–** वन कपास के मूल का चूर्ण सैवीर (काञ्जी) के साथ दूध को बढ़ाने के लिए प्रयोग करे। (चक्र.स्त्री रोग चि.)।

अपची रोग में अरण्य कपास मूल का प्रयोग– अरण्य कपास के मूल का चूर्ण चावल के धोअन के साथ अपची रोग में प्रयोग कर अथवा अरण्य कपास के मूल के चूर्ण को चावल के धोअन मिलाकर उसको घी में पकाकर पूआ बनावें और अपची के नाश के लिए भक्षण करे। (बंगसेन-गण्डमा.चि.)

Constituents—The root bark contains starch, chromogene 28 p. c.; fixed oil, resin, glucose, tannin, starch and ash 6 p.c. (*Materia medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 64).

Actions and uses—A syrup of cotton flowers is given in hypochondriasis; their poultice is applied to burns and scalds. The carpels are astringent. An unripe capsule with opium and nutmeg inserted into its interior, incinerated and reduced to powder, is used in Dysentery. Decoction of the root bark is used as abortifacient, emmenagogue and oxytocic, it increases labour pains during delivery, and is given in amenorrhoea, dysmenorrhoea, uterine haemorrhages

and to procure abortion. The seeds, made into tea, are mucilaginous and used in dysentery and diarrhoea. They are demulcent, laxative, aphrodisiac, expectorant and galactagogue. The juice of the leaves is used in scanty lactation. Pounded cotton seed mixed with ginger is applied to orchitic swelling. The leaves with oil are applied to gouty joints. Burnt cotton is applied round dropsical and paralyzed limbs, swollen legs, rheumatic and gouty joints, and in children to the chest in bronchitis and pneumonia to preserve heat and moisture and also to act as a sort of fomentation. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 96).

कासमर्दः

Cassia occidentalis

कासमर्दः, तुषा– *Cassia sophera*, *C. occidentalis*, senna Sophera.

गुणप्रकाशिका संज्ञा–"कासारिः"॥ कासमर्दः सुतिक्तः स्यान्मधुरः कफवातजित्। विशेषतः पित्तहरः पाचनः कण्ठशोधनः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ कासमर्दः सतिक्तोष्णो मधुरः कफवातजित्। अजीर्णकासपित्तघ्नः पाचनः कण्ठशोधनः॥ राजनिघण्टुः॥ कासमर्ददलं रुच्यं वृष्यं कासविषास्त्रनुत्। मधुरं कफवातघ्नं पाचनं कण्ठशोधनम्॥ विशेषतः कासहरं पित्तघ्नं ग्राहकं लघु।

वैद्यके व्यवहारः- (१) हिक्काश्वासयोः कासमर्दपत्रम्-"कासमर्दकपत्रानां यूषः....। ... हिक्का-श्वासनिवारणः"। (चि. २१ अ.)। (२) कासे कासमर्दपत्रस्वरसः–"कासमर्दाश्ववविट्...। सक्षौद्राः कफकासघ्नाः....॥ (चि. २२ अ.)। चरकः॥ (१) दद्रुकिटिमकुष्ठेषु कासमर्दमूलम्– "कासमर्दकमूलञ्च सैवीरेण च पेषितम्। दद्रुकिटिमकुष्ठानि जयेदेतत् प्रलेपनात्॥" (कुष्ठ-चि.)। (२) वृश्चिकविषे कासमर्दमूलम्-"यः कासमर्दमूलं वदने प्रक्षिप्य कर्णे फुत्कारम् मनुजो दधाति शीघ्रं जयति विषं वृश्चिकानां सः" (विष-चि.)। चक्रदत्तः॥ वातजश्लीपदे कासमर्दमूलम्- "कासमर्दशिफाकल्कं गव्येनाऽऽज्येन यः पिबेत्। श्लीपदं वातजं तस्य नाशमायाति सत्वरम्॥" वङ्गसेनः।

विविध भाषाओं में नाम– सं.- कासमर्दः, अरिमर्दः, कासारि। हि.- कसौंदी, कासिंदा, चकौड़ी। बं.- कालका सुन्दा, कालका-कसोंदा। म.- कासवंदा, राजकासविंदा। गु.- कासोन्दरी, कूजी, कालसुन्दराना पानड़ा। क.- कास वंदी, एलहुरी, आलवरी। तै.- गुरपुटाढ्या, कासीविन्दचेट्टू, पोडितांगेड्डु। मला.- पोन्नावीर। पं.- फन(ज) छल। ते.- अनकेजंकु। अं.-Round poddedcassia (राउडपोडेडकैसिया)। ले.-Cassia occidentalis (कैसिया आक्सीडेन्टेलिस)।

गुणप्रकाशिका संज्ञा- कासारिः।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- कासमर्द तिक्त तथा मधु रस वाला है और कफ तथा वात रोग को जीत लेता है। विशेषकर यह पित्तहर, पाचक एवं कण्ठ शोधक है।

राजनिघण्टु के अनुसार- कासमर्द तिक्त तथा मधुर रस वाला है, उष्ण है तथा कफ, वात को जीत लेता है; इनके अतिरिक्त अजीर्ण, कास तथा पित्त का नाश करने वाला है, पाचन है तथा कण्ठ शोधन है। **कासमर्द**

का दल (पत्र)- रुचिकारक, वीयवर्द्धक, कास, विष विकार एवं रक्त-विकार को दूर करता है। यह मधुर है, कफ एवं वातनाशक, पाचक तथा कण्ठ शोधक है और विशेषकर कासनाशक, पित नाशक है, ग्राही है तथा लघु है।

वैद्यक शास्त्र के अनुसार कासमर्द का प्रयोग-

(१) हिक्का श्वास में कासमर्द के पत्र का प्रयोग- कासमर्द के पत्रों का यूष हिक्का तथा श्वास को दूर करता है। (च.चि.अ.२१)। **(२) कास में कासमर्द के पत्र का स्वरस**- कासमर्द तथा अश्व का विट, शहद मिलाकर प्रयोग करने से कफ तथा कास का नाश करता है। (च.चि.अ.२२)।

(१) दद्रुकिटिम तथा कुष्ठ में कासमर्द के मूल का प्रयोग- कासमर्द के मूल को सौंवीर (काञ्जी) के साथ पीसकर लेप करने से किटिम तथा कुष्ठ का नाश करता है। (चक्र.कास चि.) **(२) वृश्चिक विष में कासमर्द के मूल का प्रयोग**- जो पुरुष कासमर्द के मूल को मुख में रख कर वृश्चिक विष ग्रस्त रोगी के कानों में फूत्कार शब्द करता है वह वृश्चिक के विष को दूर कर देता है। (चक्र.विष चि.)।

वातजश्लीपद में कासमर्द मूल का प्रयोग- कासमर्द के टूसा के कल्क को गाय के घी के साथ जो पान करता है उसका वातजश्लीपद शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। (वंगसेन)।

Constituents—The root contains a resinous substance; a bitter, non-alkaloid principle. Leaves contain cathartin, colouring matter and salts. The seeds contain tannin, sugar, gum, starch, cellulose, chrysophanic acid, calcium, sulphate and phosphate and fatty matter (olein and margarin), malic acid, sodium, chloride, magnesium, sulphate, iron, silica, & c. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II, p. 201).

Actions and uses—The whole plant is purgative, alterative and expectorant, given in hysteria and whopping cough. The seeds are purgative and given to children with cow's or human milk in convulsions. The root is antiperiodic and given in fevers and neuralgia. The whole plant is used in cutaneous maladies as ringworm, scabies, pltyriasis and psoriasis; also as an application over boils and carbuncles. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Parr II., p. 201).

कुङ्कुमम्

Crocus sativus

कुङ्कुमम्, घुसृणम्, रुधिरम्–*Crocus sativus.*

उत्पत्तिबोधिका संज्ञा–"काश्मीरम्" "वाह्लीकम्"।

कुङ्कुमं कटुकं तिक्तमुष्णं श्लेष्मसमीरजित्। व्रणदृष्टिशिरोरोगविषहृत् कायकान्तिकृत्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ कुङ्कुमं सुरभि तिक्तकटूष्णं कासवातकफकण्ठरुजाघ्नम्। मूर्द्धशूलविषदोषनाशनं रोचनं च तनुकान्तिकारकम्॥ राजनिघण्टुः॥ कश्मीरदेशजक्षेत्रे कुङ्कुमं यद्भवेद्धि तत्। सूक्ष्मकेसरमारक्तं पद्मगन्धि 'तदुत्तमम्'॥ वाह्लीकदेशसञ्जातं कुङ्कुमं पाण्डुरं भवेत्। केतकीगन्धयुक्तं तत् 'मध्यमं' सूक्ष्मकेसरम्॥ भावप्रकाशः॥ कुङ्कुमं रेचकं प्रोक्तं कण्डूवैवर्ण्यनाशनम्। राजवल्लभः॥ कुङ्कुमं कटुकं सिध्मशिरोरुग्व्रणजन्तुजित्। उष्णं हास्यकरं बल्यं व्यङ्गदोषत्रयापहम्॥ मदनविनोदः॥

वैद्यके व्यवहारः–सर्वेषु कृच्छ्रेषु कुङ्कुमम्–"...सुकुङ्कुमम् ...पेयः॥ द्राक्षारसेनाश्मरीशर्करासु सर्वेषु कृच्छ्रेषु प्रशस्त एषः।" (चि. २६ अ.)। चरकः॥ **(१) मूत्ररोधजे उदावर्त्ते कुङ्कुमम्–**"कषायं कुङ्कुमस्य च" (उ. ५५ अ.)। **(२) मूत्राघाते कुङ्कुमम्–**"पिबेत् कुङ्कुमकर्षं वा मधूदकसमायुतम्। रात्रिपर्युषितं प्रातस्तथा सुखमवाप्नुयात्॥" (उ. ५८ अ.)। सुश्रुतः॥ **शिरोरोगे कुङ्कुमम्–**"सशर्करं कुङ्कुममाज्यभृष्टं नस्यं विधेयं पवनासृगुत्थे। भ्रूशङ्खकर्णाक्षिशिरोऽर्द्धशूले दिनाभिवृद्धिप्रभवे च रोगे॥" (शिरोरोग–चि.)। चक्रदत्तः॥

विविध भाषाओं में नाम– सं.– कुङ्कुमम्, घुसृणम्, काश्मीरम्, पीतकम्, घरम, वाह्लीकम्। हि.– केशर। बं.म.गु.– केशर। क.– कुंकुम, कंकु–मदहु। मु.– सरफरान। द्रा.– कंकुमप्पु। ते.– कुंकमपूवु। फा.– करकीमास। अं.– जाफरान। अं.– Saffron (सेफ्रान)। ले.– Crocus sativus (क्रोकस सेटीवस)।

उत्पत्ति बोधिका संज्ञा– काश्मीरम्, वाह्लीकम्।

गुण–दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार– कुंकुम कटु तथा तिक्त रस वाला एवं उष्ण है और कफ विकार तथा वात विकार को नष्ट करता है। यह व्रण, दृष्टि विकार, शिरोरोग तथा विष विकार को दूर करता है और शरीर की कान्ति को बढ़ाता है।

राजनिघण्टु के अनुसार– कुंकुम सुगन्धित होता है और कटु तथा तिक्त रस वाला है एवं उष्ण है और कास, वात रोग, कफ रोग तथा कण्ठ के रोग को नष्ट करता है। यह मूर्द्धा के शूल तथा विष विकार का नाश करता है, रोचक है और शरीर की कान्ति को बढ़ाने वाला है।

भावप्रकाश के अनुसार– काश्मीर देश में उत्पन्न जो कुंकुम (केशर) होता है वह सूक्ष्म केशर वाला रक्तवर्ण का होता है तथा उसका गन्ध कमल के फूल की तरह होता है और वह केशर उत्तम होता है। वाह्लीक देश में उत्पन्न कुंकुम पाण्डुर वर्ण का होता है और वह केतकी के गन्ध के समान गन्ध वाला होता है और यह मध्यम है। सूक्ष्म केशर वाला कुंकुम पारसीक देश में उत्पन्न होता है। वह मधु के समान गन्ध वाला होता है ऐसा कहा गया है। थोड़ा पाण्डुर वर्ण का जो कुंकुम होता है तथा मोटा केशर वाला होता है वह अधम है।

राजवल्लभ के अनुसार– कुंकुम रेचक कहा गया है। यह कण्डू रोग तथा विवर्णता का नाश करता है।

मदन विनोद के अनुसार– कुंकुम कटु रस प्रधान होता है तथा सिध्म रोग, शिरोरोग, व्रण तथा क्रिमि रोग को नष्ट करता है। यह उष्ण है, प्रसन्न करने वाला है, बलकारक है, व्यंग रोग तथा तीनो दोषों को दूर करने वाला है।

वैद्यक शास्त्र के अनुसार कुंकुम का प्रयोग–

सभी प्रकार के कृच्छ्ररोग में कुंकुम का प्रयोग– कुंकुम का मुनक्का के रस के साथ अश्मरी रोग, शर्करा रोग तथा सभी प्रकार के मूत्रकृच्छ्र में पान करे। (च.चि.अ.२६)।

(१) मूत्र रोधज उदावर्त में कुंकुम का प्रयोग– कुंकुम का कषाय मूत्ररोधज उदावर्त में पान करे। (सु.उ.अ.५५) **(२) मूत्राघात में कुंकुम का प्रयोग–** कुंकुम का चूर्ण एक कर्ष (१० ग्राम) की मात्रा में मधु तथा जल मिलाकर तथा रात्रि में रख कर तथा वासी कर पान करे। इसके सेवन से सुख होता है। (सु.उ.अ.५८)।

शिरोरोग में कुंकुम का प्रयोग– कुंकुम को घी में भूनकर तथा शक्कर मिलाकर वात एवं रक्त जन्य

शङ्खप्रदेशं कर्ण, नेत्र तथा शिरोरोग एवं अर्धशिरोरोग (अधकपारी) जन्य शूल में तथा सूर्यावर्त (दिन के साथ बढ़ने वाले शिरोरोग) में नस्य ले। (चक्र.शिरोरोग चि.)।

Constituents—A volatile oil, crocin—a glucoside also called polychroita (many colours), which is the colouring matter, picrocrocin—bitter principle, wax, proteids, fixed oil, mucilage, sugar, ash 5 p.c., moisture 12 p.c. (*Materia Medica of India*—R.N. Khory, Part II., p. 602).

Actions and uses—Stimulant, aromatic, and antispasmodic, also used as a colouring agent; given in amenorrhea, chlorosis, seminal weakness, leucorrhoea, dysmenorrhoea, in flatulent, colic, spasmodic, asthma and cough. Owing to its containing the volatile oil, it is used in rheumatism and neuralgic pains. It is given to children with ghee in looseness of the bowels. It is reputed to promote exanthematous eruptions in specific fevers as measles. Externally a paste of it is used in removing bruises and superficial sores and in headache. Pessaries of saffron are used in painful affections of the uterus. It gives the urine a yellow colour. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II. p. 602).

कुटजः

Holarrhena antidysenterica

सितकुटजः–*Holarrhena antidysenterica*, *Well.* **असितकुटजः** *Wrightia tinctoria*, Br.

उत्पत्तिबोधिका संज्ञा–"कुटजः" ("कूटे शृङ्गे जायते स्म")। 'सितस्य' परिचयज्ञापिका संज्ञा–"पाण्डुरद्रुमः," "वरतिक्तः", "यवफलः"। गुणप्रकाशिका संज्ञा–"सङ्ग्राही"। 'असितस्य' परिचय-ज्ञापिका संज्ञा–"महागन्धः"। कुटजः कटुतिक्तोष्णः कषायो रूक्षशीतलः। कुष्ठातिसारपित्तास्रगुदजानि विनाशयेत्॥ तत्फलगुणाः–शक्राह्वाः कटुतिक्तोष्णास्त्रिदोषघ्नाश्च दीपनाः। रक्तार्शांस्यतिसारं च घ्नन्ति शूलवमी तथा॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ कुटजः कटुतिक्तोष्णः कषायश्चातिसारजित्। तत्रासिताऽस्रपित्तघ्नस्त्वग्दोषार्शोनिकृन्तनः॥ तत्फलगुणाः–इन्द्रयवः कटुस्तिक्तः शीतः कफवातरक्तपित्तहरः। दाहातिसारशमनः नानाज्वरदोषशूलघ्नोः॥ राजनिघण्टुः॥ कुटजः कटुको रूक्षो दीपनस्तुवरो हिमः। अर्शोऽतिसारपित्तास्रकफतृष्णामकृष्ठनुत्॥ भावप्रकाशः॥ तत्-"पुष्पं" शीतलं तिक्तं कषायं लघुदीपनम्। वातलं कफपित्तास्रत्वग्दोषार्शोऽतिसारजित्॥ तस्य 'शिम्बी-भवं शाकं' व्यञ्जनञ्चामवातजित्। रुच्यं कफघ्नं रक्तातिसारकुष्ठक्रिमीञ्जयेत्॥ मदनविनोदः॥ कुटजः कफपित्तास्रत्वग्दोषार्शोऽतिसारजित्। 'तद्बीजं' ज्वरजित्तिक्तं रक्तपित्तातिसारजित्॥ राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) रक्तपित्ते इन्द्रयवः–"...वत्सककल्कसिद्धं तद्वत्" (चि. ४ अ.)। (२) कुष्ठे इन्द्रयवः–"...वत्सकबीजस्य...। कल्कं... कुष्ठेषूद्वर्त्तनालेपः॥" (चि. ७ अ.)। (३) यक्ष्मिणोऽतिसारे इन्द्रयवः–"सनागरान् इन्द्रयवान् पिबेद् वा तण्डुलाम्बुना" (चि. ८ अ.)। (४) अर्शःसु रक्तस्रुतौ कुटजत्वक्–"कुटजत्वङ्निर्यूहः सनागरः स्निग्धरक्तसङ्ग्रहणः" (चि. ९ अ.)। (५) पित्तातिसारे कुटजफलम्– "पलं वत्सकबीजस्य श्रपयित्वा जलं पिबेत्। यो रसाशी जयेच्छीघ्रं स पैत्तं जठरामयम्।" (चि. १० अ.)। (६) व्रणरोपणे कुटजत्वक्– "करवीरार्ककुटजाः कषायाः रोपणाः स्मृताः" (चि. १३ अ.)। (७) मांसगते विषे कुटजमूलत्वक्–"...कौटजं मूलमम्भसा..."

(चि. २५ अ.)। चरकः॥ (१) कफपित्तानुबन्धरक्तजेषु अर्शःसु कुटजफाणितम्– "कुटजमूलत्वक् फाणितम्" (चि. ६ अ.)। (२) सर्वेषु अर्शःसु कुटजत्वक्– "तथैवाऽर्शांसि सर्वाणि वृक्षकारुष्करी हतः" (चि. ६ अ.)। (२) बहुश्लेष्मणि सरक्ते अतिसारे कुटजफाणितम्–"बहुश्लेष्मसरक्तश्च मन्दवातं चिरोत्थितम्। कौटजं फाणितञ्चापि हन्त्यतिसारमोजसा॥" (उ. ४० अ.)। सुश्रुतः॥ शुक्राश्मर्यां कुटजत्वक्–"पिबतः कुटजं दध्ना पथ्यमन्नञ्च खादतः। निपतन्त्यचिरात्तस्य नियतं मेढ्रशर्कराः॥" (म.ख. ३ भा.)। भावप्रकाशः॥

विविध भाषाओं में नाम– सं.- कुटजः, कौटः, वत्सकः गिरिमल्लिका, कलिङ्गः। हि.- कोरैया, कूड़ा। बं.- कुरचि, कडची, कुटराज। म.- कूड़ा। गु.- कडि। क.- कोडेसिगेय महनु। ते.- इङ्गुडचेट्टु, चंगल कुष्ठ। ता.- वेप्पाले, कुलफ्रलर्डविरे। फा.- जवाने वुजरखे तरुख। अ.- लसनुल्लासकिसलमुर्र, तिवाज। अं. Oval leaved rose bay (ओवल लीब्ज रोजवे)। ले.- Holarrhena antidysenterica.

उत्पत्तिबोधिका संज्ञा- कुटजः (कूट शृङ्गे जायते सः)। **सितकुटजाकी परिचयज्ञापिका संज्ञा-** पाण्डुरद्रुमः, वरतिक्तः, यवफलः। **गुणप्रकाशिका संज्ञा-** संग्राही। **असितकुटजकी परिचयज्ञापिका संज्ञा-** महागन्धः।

गुण-दोष–

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- कुटज कटु तथा तिक्त रस वाला एवं कषाय रस वाला है और रूक्ष तथा शीतल है। यह कुष्ठ रोग, अतिसार, पित्त विकार, रक्त विकार तथा गुदज रोग (अर्श) का नाश करता है। **कुटज के फल का गुण-** शक्राह्व (कुटज फल) कटु तथा तिक्त रस वाला, उष्ण, त्रिदोष नाशक तथा दीपन है और यह रक्तार्श (खूनी बवासीर), अतिसार, शूल तथा वमन का नाश करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- कुटज कटु, तिक्त, एवं कषाय रस प्रधान तथा उष्ण है और अतिसार रोग को जीत लेता है और असित कुटज रक्त विकार तथा पित्त विकार का नाश करता है तथा रक्त दोष एवं अर्श रोग को नष्ट करता है। **कुटज के फल का गुण-** कुटज फल (इन्द्रजव) कटु तथा तिक्त रस वाला, शीतल है तथा कफ विकार, वात विकार, रक्त विकार एवं पित्त विकार को दूर करता है। यह दाह तथा अतिसार को शान्त करता है और अनेक प्रकार के ज्वर तथा शूल का नाश करता है।

भाव प्रकाश के अनुसार- कुटज कटुरस प्रधान, रूक्ष, जाठराग्नि दीपक, कसैला तथा शीतल है। यह अर्शरोग, अतिसार, पित्तातिसार, रक्तातिसार, कफ विकार, प्यास, आम विकार तथा कुष्ठरोग को दूर करता है।

मदनविनोद के अनुसार– कुटज का फूल शीतल है, तिक्त तथा कषाय रस वाला लघु तथा जाठराग्नि दीपक है, वातकारक है, कफ विकार, पित्त विकार, रक्त विकार, कुष्ठ रोग, अतिसार तथा क्रिमिरोग को जीत लेता है। **कुटज का फल शाक तथा व्यञ्जन** आमवात को दूर करता है। यह रुचिकारक है, कफ नाशक है और रक्तातिसार, कुष्ठरोग एवं क्रिमि रोग को दूर करता है।

राजवल्लभ के अनुसार- कुटज कफ विकार, पित्त विकार, रक्त विकार, त्वचा विकार, अर्श रोग तथा अतिसार को जीत लेता है। **कुटज बीज** ज्वर को दूर करता है, तिक्तरस वाला है और रक्त पित्त एवं अतिसार का नाश करता है।

वैद्यक शास्त्र के अनुसार कुटज का प्रयोग-

(१) रक्त पित्त में इन्द्रजव का प्रयोग- कुटज कल्क से सिद्ध पदार्थ रक्त-पित्त को शान्त करता है। (चक्र

चि. अ. ४)। **(२) कुष्ठ रोग में इन्द्रयव का प्रयोग**- कुटज बीज के कल्क को कुष्ठ रोग में उद्वर्तन तथा लेप करे। (च.चि.अ.७) **(३) यक्ष्मारोगी के अतिसार में इन्द्रयव का प्रयोग**- नागरमोथा तथा इन्द्रयव के चूर्ण का चावल के धोवन के साथ पान करे (चि.चि.अ.८)। **(४) अर्श रोग में रक्त निकलने पर (रक्तार्श) में कुटज के छाल का प्रयोग**- कुटज के छाल का स्वरस नागरमोथा का चूर्ण मिलाकर तथा स्निग्ध कर सेवन करने से रक्त स्राव को रोकता है। (च.चि.अ.९)। **(५) पित्तातिसार में कुटज फल का प्रयोग**- इन्द्रयव का एक फल (५० ग्राम) को जल में पकाकर पान करे या रस का सेवन करने वाला है वह शीघ्र ही पैत्तिक उदर रोग को शान्त करता है। (च.चि.अ.१०)। **(६) व्रणरोपण के लिए कुटज छाल का प्रयोग**- कनइल, मदार तथा कुटज के छाल कषाय व्रण का रोपण करता है। (च.चि.अ.१३)। **(७) मांसगत विष में कुटज के मूल की छाल का प्रयोग**- कुटज के मूल की छाल का क्वाथ मांसगत विष में पान करे। (च.चि.अ.२५)। **(१) कफपित्तानुबन्धि रक्तज अर्श में कुटज का फाणित कषाय**- कफ पित्तानुबन्धि रक्तज अर्श में कुटज मूल की छाल का फाणित कषाय पान करे। (सु.चि.अ.६)। **(२) सभी प्रकार के अर्श में कुटज के छाल का प्रयोग**- पूर्वोक्त प्रकार से सभी प्रकार के अर्श रोग का वृक्षक (कुटज) की छाल तथा अरुष्कर (भिलावा) चूर्ण सेवन करने से नष्ट होती है। (सु.चि.अ.६)। **(३) अधिक कफयुक्त रक्तातिसार में कुटज की फाणित का प्रयोग**- कुटज का फाणित कफाधिक्य, मन्दवात, पुराना रक्तातिसार का नाश करता है। (सु.चि.अ.४०)।

शुक्राश्मरी में कुटज की छाल का प्रयोग- कुटज की छाल का चूर्ण दही के साथ पान करने से तथा पथ्यपूर्वक अन्न खाने से लिङ्ग में स्थित शर्करा शीघ्र ही गिर जाते हैं, यह निश्चित है। (भा.प्र.ख.म.भार)।

Constituents—*of H. antidysenterica*—A non oxygenated alkaloid. Wrightine.

Actions and uses—The bark and seeds are antiperiodic, similar to cinchona alkaloids, but do not produce nausea, vomiting and headache. They are given in fever, chronic Diarrhoea, Dysentery, worms, internal Haemorrhages; also in chronic chest diseases, as Asthma, in renal colic, and to allay the vomiting in cholera. They are used after delivery to give tone to the genital soft parts (vagina). It is seldom given alone, generally in combination with a number of aromatics and astringents. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 387).

Actions and uses of *W. tinctoria*—Stomachic tonic and febrifuge in combination with other vegetable bitters, given in bowel complaints and during convalescence from fever, and other acute diseases. The seeds are tonic and are given in seminal weakness. Leaves when chewed relieve toothache. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part, II. p. 392).

कुलत्थः

Dolichos biflorus

कुलत्थः, कुलत्था, कुलत्थिकः। *Dolichos biflorus.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा–"ताम्रबीजः"। गुणप्रकाशिका संज्ञा– "दृक्प्रसादा", "लोचनहिता"। कुलत्थभेदाः–कुलत्थश्च शुक्लकृष्णचित्रलोहितभेदेन चतुर्विधो भवति। तथा ग्राम्यवन्यभेदेन च द्विविधोऽपि।" चरकटीकायां चक्रः॥ कुलत्थिका कटुस्तिक्ता स्यादर्शःशूलनाशनी। विबन्धाऽऽध्मानशमनी चक्षुष्या व्रणरोपणी॥ राजनिघण्टुः। उष्णाः कषायाः पाकेऽम्लाः कफशुक्रनिलापहाः। कुलत्थाः

ग्राहिणः कासहिक्काश्वासार्शसां हिताः॥ (चरकः–सू. २७ अ.)। उष्णः कुलत्थो रसतः कषायः कटुर्विपाके कफमारुतघ्नः। शुक्राश्मरीगुल्मनिसूदनश्च सङ्ग्राहकः पीनसकासहारी॥ आनाह-मेदोगुदकीलहिक्काश्वासापहः शोणितपित्तकृच्च। कफस्य हन्ता नयनामयघ्नो विशेषतो वन्यकुलत्थ उक्तः॥ (सुश्रुतः–सू. ४६ अ.)। कषायस्वादुरूक्षोष्णाः कुलत्था रक्तपित्तलाः। पीनसश्वास-कासार्शोहिध्माऽऽनाहकफानिलान्॥ घ्नन्ति शुक्राश्मरीं शुक्रं दूष्टिं शोफं तथोदरम्। ग्राहिणो लघवस्तीक्ष्णा विपाकेऽम्ला विदाहिनः॥ वृद्धवाग्भटः (अष्टाङ्गसङ्ग्रहः– सू. ७ अ.)। कुलत्थः कटुकः पाके कषायः पित्तरक्तकृत्। लघुर्विदाही वीर्योष्णः श्वासकासकफानिलान्॥ हन्ति हिक्काश्मरीशुक्रदाहानाहान् सपीनसान्। स्वेदसङ्ग्राहको मेदोज्वरकृमिहरः परः॥ भावप्रकाशः॥ कुलत्थः कफवातघ्नो ग्राह्युष्णो वृंहणः कटुः। गुल्मशुक्राश्मरीमेदः श्वासकासप्रमेहजित्॥ राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः-अर्शःसु कौलत्थयूषम्–"...यूषं कौलत्थमेव वा" (चि. ९ अ.)। चरकः॥ (१) वातशूले कुलत्थः–"कुलत्थयूषो युक्ताम्लो लावकीयूषसंस्कृतः। ससैन्धवः समरिचो वात-शूलविनाशनः॥" (उ. ४२ अ.)। (२) कृमिषु कुलत्थः–"कुलत्थक्वाथसंसृष्टं क्षीरपानञ्च पूजितम्।" (उ. ५४ अ.)। सुश्रुतः॥ नेत्रकोपे कुलत्थः–"आरण्याश्छगणरसे पुटावबद्धाः सुस्विन्ना नखवितुषीकृताः कुलत्थाः। तच्चूर्णं सकृदवचूर्णनान्निशीथे नेत्रानां विधमति सद्य एव कोपम्॥" (उः १६ अः)। वाग्भटः॥ स्वेदागमरोधार्थं कुलत्थः-"स्वेदोद्गमे ज्वरे देयश्चूर्णो भृष्टकुलत्थजः।" (ज्वर–चि.)। (२) शीतपित्ते कुलत्थः–"...कौलत्थेन रसेन वा। भोजनं सर्वदा पथ्यम्।" (शीतपित्त–चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) आमवाते कोलत्थयूषः–"हितञ्च यूषं कौलत्थ" (आमवात–चि.)। (२) अन्नद्रवाख्ये शूले कुलत्थः– "कुलत्थशक्तूनथवा दध्नाऽद्याद्विस्तरेण तु।" (अन्नद्रवाख्य-शूल–चि.)। (३) कफगुल्मे कुलत्थः– "कुलत्थान्...। कफगुल्मे प्रयोजयेत्।" (गुल्म–चि.)। (४) गण्डमालायां कुलत्थः– "भोजनञ्चानभिष्यन्दि यूषः कौलत्थ इष्यते।" (गण्डमाला–चि.)। वङ्गसेनः॥

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– कुलत्थिका, कुलत्थः। हि.– कुरथी, कुल्थी, कुर्था। म.– कुलिव, कुलाथ, हुलगे। क.– हवुर्लेतीसी, हुरुली। तै.– बुलावुलु, बुलम्वुज ओलबलु। गु.– कुलथी। यू.– गुलथी। फा.- किल्लत, मुखहिन्दी, मासहिन्दी। अ.– हल्वुल्कतल, हव्वुल किलत। अं.– Two flowered dolicos (टू फ्लावर्ड डोलीकास)। ले.– Dolichos biflorus (डोलीकोस वाई फ्लारेस)।

परिचयज्ञापिका संज्ञा- ताम्रबीज। **गुणप्रकाशिका संज्ञा**- दृक्प्रसादा, लोचनहिता।

गुण-दोष–

कुलत्थ के भेद- कुलत्थ (कुरथी) चार प्रकार की होती है। (१) कुलत्थ, (२) शुक्ल कुलत्थ (३) कृष्ण कुलत्थ (४) चित्रलोहित कुलत्थ और यह ग्रामीण तथा जंगली भेद से दो प्रकार का भी होता है। (चरक टी. चक्रदत्त)।

राज निघण्टु के अनुसार- कुलत्थ (कुरथी) कटु तथा तिक्त रस वाला है और अर्श रोग तथा शूल को दूर करने वाला है। यह विबन्ध तथा आध्मान को शान्त करने वाला, नेत्र के लिए हितकर एवं व्रण का रोपण करने वाला है।

चरक के अनुसार- कुरथी उष्ण वीर्य वाली, कषाय रस वाली तथा पाक में अम्ल रस वाली है और यह कफ विकार, शुक्र विकार तथा वात विकार को दूर करती है। कुरथी ग्राही होती है और कास रोग, हिचकी, श्वास रोग तथा अर्श रोग में हितकर है। (च.सू.अ.२७)।

सुश्रुत के अनुसार- कुलत्थ उष्ण है, रस में कषाय है, विपाक में कटु है तथा कफ विकार एवं वात विकार का नाश करता है; इनके अतिरिक्त शुक्राश्मरी तथा गुल्म रोग का नाश करता है। यह संग्राहक है, पीनस तथा कास को दूर करता है; आनाह मेदोविकार, गुदकील, हिक्का एवं श्वास का नाश करता है और रक्त विकार तथा पित्त विकार को बढ़ाता है। यह कफ विकार का नाश करता है तथा नेत्र रोग का नाश करता है। विशेषकर वन्य कुलत्थ लाभदायक है। (सु.अ.४६, सू.)।

वाग्भट्ट के अनुसार- कुलत्थ कषाय तथा मधु रस वाला, रूक्ष तथा उष्ण है और रक्त पित्त रोग को उत्पन्न करता है। यह पीनस रोग, श्वास, कास, अर्श, हिचकी, आनाह, कफ विकार, वात विकार, शुक्राश्मरी, शुक्र दृष्टि, शोथ तथा उदर रोग का नाश करता है। यह ग्राही, हल्का, तीक्ष्ण, विपाक में अम्ल तथा विदाही होता है। (अ. हृ.सू.अ.७)।

भावप्रकाश के अनुसार- कुलत्थ कटु रस वाला पाक में कषाय रस वाला तथा पित्त विकार एवं रक्तविकार को बढ़ाता है। यह लघु है, विदाही है, उष्ण वीर्य है तथा श्वास, कास, कफ विकार, वात विकार, हिक्का, अश्मरी, शुक्र विकार, दाह, आनाह तथा पीनस रोग का नाश करता है। यह स्वेद को रोकने वाला और मेदो विकार तथा क्रिमि रोग को अच्छी तरह दूर करता है।

राजवल्लभ के अनुसार- कुलत्थ कफ-वात नाशक, ग्राही, उष्ण तथा कटु रस वाला है और गुल्म रोग, शुक्राश्मरी, मेदोविकार, श्वास, कास तथा प्रमेह को जीत लेता है।

वैद्यक शास्त्र के अनुसार कुलत्थ का प्रयोग-

अर्श रोग में कुलत्थ के यूष का प्रयोग- कुलत्थ के यूष का अर्श रोग में प्रयोग करे। (च.चि.अ.९)।

(१) वातशूल में कुलत्थ का प्रयोग- कुरथी के यूष में अम्लरस मिलाकर तथा लावकी के यूष से संस्कृत कर और सेन्धानमक एवं काली मरिच का चूर्ण मिलाकर प्रयोग करने से वातज शूल का नाश होता है। (सुश्रुत उ.अ.४२)। **(२) क्रिमिरोग में कुलत्थ का प्रयोग**- कुलत्थ के क्वाथ में दूध मिलाकर पान करना प्रशस्त है। (सु.उ.उ.५०)।

नेत्र कोप में कुलत्थ का प्रयोग- कुलत्थ का जंगली गोवर के रस में पुट के द्वारा बांधकर तथा स्वदेन कर और नख से उसका छिलका निकालकर उसके चूर्ण को एक बार रात में चबाने से नेत्र कोप का शीघ्र ही नाश होता है। (वाग्भट्ट उ.अ.१६)।

(१) स्वेद पसीना को रोकने में कुलत्थ का प्रयोग- ज्वर में पसीना के अधिक निकलने पर भूनी हुई कुरथी का प्रयोग करे। (चक्र.ज्वर चि.)। **(२) शीत पित्त में कुलत्थ का प्रयोग**- शीत पित्त में कुरथी के रस के साथ भोजन करना सर्वथा पथ्य है। (चक्र.शीत.)।

(१) आम वात में कुलत्थ यूष का प्रयोग- आमवात में कुरथी के यूष का प्रयोग हितकर होता है। (बंगसेन)। **(२) अन्न द्रव नामक शूल में कुलत्थ का प्रयोग**- अन्नद्रव नामक शूल में कुरथी के सत्तू का दही के साथ अच्छी तरह भक्षण करे। (वंगसेन-अन्नद्रवाख्यशूल चि.)। **(३) कफज गुल्म में कुलत्थ का प्रयोग**- कुलत्थका

यूष या चूर्ण कफज गुल्म में प्रयोग करे। (वंगसेन-गुल्म चि.) **(४) गण्डमाला में कुलत्थ का प्रयोग-** गण्डमाला रोग (ग्लैण्ड टी.वी.) में अभिष्यन्दी भोजन न करे और कुलत्थ का यूष प्रयोग करे। (वंगसेन-गण्डमाला चि.)।

Constituents—Albuminoids, starch, oil, ash and phosphoric acid.

Actions and uses—Astringent, diuretic and tonic. The decoction is used in urinery diseases and menstrual derangements. Parturient women use it to promote lochia; also given to check profuse leucorrhoea and menstrual fluxes. A powder of these seeds is applied to the skin to check cold sweats. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 210).

कुश-काशादयः

Andropogon nardaldes

कुशः, मृदुदर्भः—*Poa ciliaris*, Roxb. दर्भः, खरदर्भः—*Poa cynosuroides*, Roxb., *Eragrostis cynosuroides*, Pram, काशः—*Saccharum spontaneum*, Linn., शरपत्रः—*Saccharum cylindricum*, Linn. खाडगः (काशभेदः)—*Saccharum fusum*, R.

पूर्वाचार्यकृतवर्णनम्—कुशः, हस्वो मृदुः सूचीपत्रः। काशः, चामरपत्रः। दर्भः, पृथुलः खरपत्री दीर्घः। (डल्वणः—निबन्धसङ्ग्रहः सू. ३८ अ.)। परिचयज्ञापिका संज्ञा—कुशस्य—"सूचीमुखः"। खरदर्भस्य—"दीर्घपत्रः", "पृथुलः"। काशस्य—"शारदः", "सितपुष्पकः", "नादेयः"। खाडगस्य—(काण्डेक्षुनाम्नः काशभेदस्य) "लेखनीकाण्डकः"। "दर्भयुग्मं" पवित्रं स्यान्मूत्रकृच्छ्रघ्नशीतलम्। रक्तपित्तप्रशमनं केवलं पित्तनाशनम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ 'यज्ञमूलं' हिमं रुच्यं मधुरं पित्तनाशनम्। रक्तज्वरतृषाश्वासकामलादोषशोषहृत्॥ दर्भौ द्वौ च गुणे तुल्यौ तथाऽपि च सितोऽधिकः। यदि श्वेतकुशाभावस्त्वपरं योजयेद्भिषक्॥ राजनिघण्टुः॥ 'काशः' स्वादू रसे तिक्तो विपाके वीर्यतो हिमः। तर्पणो बलकृद्वृष्यः श्रमशोषभयापहः॥ 'काशद्वयञ्च' पित्तास्रकृच्छ्रजिन्मधुरं हिमम्। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ 'काशश्च' शिशिरो गौल्यो रुचिकृत् पित्तदाहनुत्। तर्पणो बलकृद्वृष्य आमशोषक्षयापहः॥ 'मिशि'र्मधुरशीतः स्यात् पित्तदाहक्षयापहः। राजनिघण्टुः॥ 'दर्भद्वयं' त्रिदोषघ्नं मधुरं तुवरं हिमम्। मूत्रकृच्छ्राश्मरीतृष्णावस्तिरुक्प्रदरास्रजित्॥ 'काशः' स्यान्मधुरस्तिक्तः स्वादुपाको हिमः सरः। मूत्रकृच्छ्राश्मदाहास्रक्षयपित्तजरागजित्॥ 'एरका' शिशिरा वृष्या चक्षुष्या वातकोपिना। मूत्रकृच्छ्राश्मरीदाहपित्तशोणितनाशनी॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः— व्रणशोधनार्थं कुशः—"...न्यग्रोधादिर्वलाकुशः। ...कषायाः शोधना मताः॥" (चि. १३ अ.)। चरकः॥ प्रदरे कुशमूलम्- "कुशमूलं समुद्धृत्य पेषयेत्तण्डुलाम्बुना। एतत् पीत्वा त्र्यहान्नारी प्रदरात् परिमुच्यते॥" (असृग्दर-चि.)। चक्रदत्तः॥ कपोतादिमांसभोजनजे अजीर्णे काशमूलम्—"कपोतपारावतनीलकण्ठ-कपिञ्जलानां पिशितानि भुक्त्वा। काशस्य मूलं परिपिष्य पीतं सुखी भवेन्ना बहुशो हि दृष्टम्॥" (म. ख. २ यः भागः)। भावप्रकाशः॥ अर्शसां शोणितस्रावे कुशमूलम्— "कुशमूलं वलायुक्तं पानं तण्डुलधावनम्। रुणद्धि गुदजा स्रावं प्रदरं वापि सर्वजम्॥" (अर्श-चि.)। बङ्गसेनः॥

विविध भाषाओं में नाम– कुशः– सं.– कुशः, दर्भः, वर्हिः सूच्यग्रः, यज्ञभूषणः। हि.– कुशा, दाभ, डाभ, कूस, घास। बं.– वारीकदर्भ, मोढ़े दर्भ, श्वेत दर्भ। गु.– कुश डाभड़ो, दरभ। क.– विलीय, वट्टशशि। तै.– कुश, दर्भालु, कुश दुर्वालु। ता.– दर्भ। ले.– Andropogon nardaldes (एन्ड्रोपोगननार्डल्डस)।

कास– सं.– कासः, कासेक्षुः, इक्षुरकः, इक्ष्वालिका, पारेगलः। हि.– कास, कास तृण, कास घास। बं.– केस-घास। म.– कसडी, कासेगवण। गु.– कासलो। क.– करयिको गाछ, कासलु। तै.– रेलु। ता.– नाणलू। मा.– कास। ले.– Saccharum spontaneum (साकरम स्पान्टेनियम)।

कुश-कासादि के सम्बन्ध में पूर्वाचार्य कृत वर्णन– कुशः, ह्रस्वो मृदुः, सूचीपत्रः, **कासः**, चामरपत्रः। **दर्भः**– पृथुलः, खरपत्री, दीर्घः। (डल्वणः निबन्ध संग्रह सु.सू.अ.२८)।

कुशकी परिचय ज्ञापिका संज्ञा– सूचीमुख। **खरदर्भ की परिचयज्ञापिका संज्ञा–** दीर्घपत्रः, पृथुलः। **कास का–** शारदाः, सितपुष्पकः, नादेयः। **खाडग (काण्डेक्षु नामक कास भेद) की परिचयज्ञापिका संज्ञा–** लेखनी-कण्टकः।

गुण-दोष–

धन्वन्तरीनिघण्टु के अनुसार– दोनों प्रकार के दर्भ पवित्र हैं, मूत्रकृच्छ्र तथा व्रण को शान्त करने वाले हैं, रक्त पित्त को शान्त करने वाले हैं तथा केवल पित्त का नाश करने वाले हैं।

राजनिघण्टु के अनुसार– यज्ञसूत्र (कुश) शीतल है, रुचिकर है, मधुर है तथा पित्तनाशक है। यह रक्त विकार, ज्वर, प्यास, श्वास, कामला रोग तथा शोथ को दूर करता है। दोनों प्रकार के दर्भ गुण में समान हैं किन्तु सफेद दर्भ अधिक गुणवान् है। यदि सफेद कुश न मिले तो दूसरे प्रकार के कुश का प्रयोग करे।

धन्वन्तरी निघण्टु के अनुसार– कास रस में स्वादिष्ट है, तिक्त रस वाला है, कफ तथा वीर्य में शीतल है, तर्पण है, बलकारक है, वीर्यवर्द्धक है, श्रम, शोथ तथा भय को दूर करने वाला है। दोनों प्रकार के कास पित्त विकार, रक्त विकार एवं मूत्रकृच्छ्र को दूर करने वाले, मधुर तथा शीतल हैं।

राजनिघण्टु के अनुसार– कास शीतल है, गले के लिए हितकर है, रुचिकारक है तथा पित्त एवं दाह को शान्त करता है। यह तृप्ति कारक है, बलकारक है, वृष्य है तथा आम विकार, शोष (सूखा रोग) एवं क्षय रोग को दूर करता है। मिशि मधुर तथा शीतल है और पित्त, दाह एवं क्षय रोग नाशक है।

भावप्रकाश के अनुसार– दोनों प्रकार के दर्भ त्रिदोषनाशक, मधुर, कसैला तथा शीतल हैं और ये मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, प्यास, वस्ति शूल तथा रक्त प्रदर को दूर करते हैं। कास मधुर, तिक्त रस वाला, पाक में स्वादिष्ट, शीतल तथा दस्तावर है। यह मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, दाह, रक्त क्षय तथा पित्त रोग को दूर करता है। एरका शीतल है, वीर्यवर्द्धक, नेत्र के लिए हितकर तथा वातप्रकोपक है। यह मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, दाह, पित्त विकार तथा रक्त विकार का नाश करती है।

वैद्यक शास्त्र में कुश-कासादि का प्रयोग–

व्रण शोधन के लिए कुश का प्रयोग– न्यग्रोधादिगण की औषधियों, बला तथा कुश इन सब का कषाय व्रण को शोधन करने वाला है। (च.चि.अ.१३)।

प्रदर में कुश के मूल का प्रयोग– कुश की जड़ को उखाड़कर तथा चावल के धोअन के साथ पीसकर पान करने से रोगी प्रदर रोग से मुक्त हो जाता है। (चक्र.असृग्दर चि.)।

कपोतादि के मांस भक्षण से अजीर्ण होने पर कास मूल का प्रयोग- कबूतर, परेवा, नील कण्ठ, कपिञ्जल इन सब के मांस के खाने वाले कास के मूल को पीस कर पान करें तो इससे उनको सुख मिलता है अर्थात् कबूतर आदि मांस भक्षण जन्य अजीर्ण में लाभ होता है। (भा.प्र.म.ख. २य भाग)।

अर्श रोग में रक्त स्राव होने पर कुश के मूल का प्रयोग- अर्श रोग में कुश का मूल तथा बला की जड़ को पीस कर पान करने से तथा चावल के धोअन से धोने से अर्श का रक्तस्राव बन्द होता है तथा सर्व दोष जन्य प्रदर का रक्तस्राव भी बन्द हो जाता है। (बंगसेन अर्श चि.)।

कुष्ठम्

Saussurea lappa clarke

कुष्ठम्– *Saussurea lappa*, Clarke, *Aplotaxis auriculata*, Jacqu.

उत्पत्तिबोधिका संज्ञा–"वाप्यम्"। गुणप्रकाशिका संज्ञा– "व्याधि:" ("विगत आधिरनेन"), "पाकलम्" ("पाकं लाति"), "अगद:"। कुष्ठं कटूष्णं तिक्तं स्यात् कफमारुतरक्तजित्। त्रिदोषविष-कण्डूंश्च कुष्ठरोगांश्च नाशयेत्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टु:॥ कुष्ठं कटूष्णं तिक्तं स्यात् कफमारुतकुष्ठजित्। विसर्पविषकण्डूतिखर्जूदद्रुघ्नकान्तिकृत्॥ राजनिघण्टु:॥ कुष्ठमुष्णं कटु स्वादु शुक्रलं तिक्तकं लघु। हन्ति वातास्त्रविसर्पकासकुष्ठमरुत्कफान्॥ भावप्रकाश:॥ कुष्ठं वातकफश्वासका- सहिक्काज्वरापहम्। राजवल्लभ:॥

वैद्यके व्यवहार:– (१) वातहरत्वाद्यर्थे कुष्ठम्–"कुष्ठं वातहराभ्यङ्गोपानाहयोगिनाम्" (सू. २५ अ.)। (२) मण्डलकुष्ठे कुष्ठम्– "लोपो योज्य: कुस्तुम्बुरुणि कुष्ठञ्च मण्डलनुत्"। (चि. ७ अ.)। (३) अर्श:सु कुष्ठम्–"अभ्यज्य कुष्ठतैलेन स्वेदयेत्"। (चि. ९ अ.)। (४) अपस्मारे कुष्ठम्– "...कुष्ठरसं वचां वा मधुसंयुताम्"। (चि. १५ अ.)॥ (५) वातस्थानगते विषे कुष्ठम्–"वातस्थाने स्वेदो दध्ना नतकुष्ठकल्कपानञ्च"। (चि. २५ अ.)। चरक:॥ (१) अरुंषिकायां कुष्ठम्–"कपालभृष्टं कुष्ठं वा चूर्णितं तैलसंयुतम्। रूंषिकालेपनं कण्डूक्लेददाहार्त्तिनाशनम्।" (उ. २४ अ.)। (२) मुखकान्तिकरत्वे कुष्ठम्–"सप्ताहं मातुलुङ्गस्थं कुष्ठं वा मधुनाऽन्वितम्"। (उ. ३२ अ.)। वाग्भट:॥ शिर:पीड़ायां कुष्ठम्– "कुष्ठमैरण्डमूलञ्च लेपात् काञ्जिकपेषितम्। शिरोऽर्त्ति नाशयत्याशु..."। (शिरोरोग-चि.)। वङ्गसेन:।

विविध भाषाओं में नाम– सं.- कुष्ठम्, रोगाह्वयम्, वाप्यम्, उत्पलम्। हि.- कूठ, कूट, कुष्ठ। बं.- कुड़, कुठ, पंचक, कुर। म.- कोष्ठ। गु.- कुठ, उपलटे। द्रा.- संगल्व कोष्ठम्। फा.- कातह। अ.- कुस्तबहेरी। काश्मी.- पासाख। अं.- Costus Root (कोस्टस रूट)। ले.- Saussurealappa (सेसूरियालप्पा) या Aplotaxislappa (एप्लोटेक्सिसलप्पा)।

उत्पत्ति बोधिका संज्ञा- वाप्यम्। **गुणप्रकाशिका संज्ञा**- व्याधि (विगत आधिरनेन), पाकलम् (पाकं लाति), अगद:।

गुण-दोष–

धन्वन्तरी निघण्टु के अनुसार– कुष्ठ (कूट) कटु तथा तिक्त रस वाला, उष्ण वीर्य है और कफ विकार, वात विकार को दूर करता है। यह त्रिदोष, विष विकार, कण्डु तथा कुष्ठ रोग का नाश करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार– कुष्ठ कटु तथा तिक्त रस वाला एवं उष्ण है और कफ रोग, वात रोग तथा कुष्ठ रोग को दूर करता है। यह विसर्प, विष विकार, कण्डू, खुजली तथा दाह का नाश करने वाला तथा कान्ति को बढ़ाने वाला है।

भावप्रकाश के अनुसार– कुष्ठ कटु, स्वादिष्ट तथा उष्ण है एवं तिक्त है और शुक्रवर्द्धक तथा लघु है। यह वातरक्त, विसर्प, कास, कुष्ठ, वात तथा कफ विकार का नाश करता है।

राजवल्लभ के अनुसार– कुष्ठ (कूट) वात विकार, कफ विकार, श्वास, कास, हिक्का तथा ज्वर को दूर करता है।

वैद्यक शास्त्र के अनुसार कूट का प्रयोग–

(१) वातविकार आदि के दूर करने के लिए कूट का प्रयोग– कूट वातनाशक अभ्यङ्ग तथा उपनाह के लिए उत्तम है। (च.सू.अ.२५)। **(२) मण्डल कुष्ठ में कूट का प्रयोग**– कुस्तुम्बु तथा कूट का लेप मण्डल कुष्ठ को दूर करता है। (च.चि.अ.७)। **(३) अर्श रोग में कूट का प्रयोग**– अर्श रोग में अभ्यङ्ग कर कूट के तेल से सेवन करे। (च.चि.अ.९)। **(४) अपस्मार में कुष्ठ का प्रयोग**– अपस्मार में कूट का रस तथा वच का रस मधु मिलाकर प्रयोग करे। (च.चि.अ.१५)। **(५) वातस्थान में विष के जाने पर कुष्ठ का प्रयोग**– वात स्थान में विष के जाने पर दही से स्वेदन करे तथा अगर तथा कूट के कल्क का पान करे। (च.चि.अ.२५)।

(१) अरूंषिका में कूट का प्रयोग– खपर में भूना हुआ कूट का चूर्ण तैल मिलाकर अरूंषिका में लेप करे। यह कण्डु, क्लेद तथा दाह पीड़ा आदि का नाश करता है। (वाग्भट उ.अ.२५)। **(२) मुख की कान्ति बढ़ाने के लिए कूट का प्रयोग**– विजोरा नीबू के मध्य में एक सप्ताह रखा हुआ कूट का चूर्ण मुख कान्ति को बढ़ाता है अथवा कूट का चूर्ण शहद मिलाकर प्रयोग करने पर मुख की कान्ति को बढ़ाता है। (वाग्भट उ. अ.२२)।

सिरकी पीड़ा में कूट का प्रयोग– कूट तथा एरण्ड की जड़ को काञ्जी के साथ पीस कर लेप करने से यह सिर की पीड़ा का शीघ्र ही नाश करता है। (बंगसेन-शिरोरोग चि.)।

Constituents—An odorous principle, composed of two liquid resins, an alkaloid, a solid resin, salt of valeric acid, an astringent principle, and ash which contains manganese. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 369).

Actions and uses—As an stimulant it is given in spasmodic diseases as cough, asthma, cholera and deranged digestion. As an alterative it is used in chronic skin diseases and rheumatism. Locally a paste of it made in rose water is applied to swollen hands and feet and to swelled abdomen in obesity, and as a cooling lotion to sprains, contusion, and to the head in headache. It is also smoked like opium. Externally it is used as an astringent ointment on ulcers. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 369).

कुष्माण्डः

Benincasa cerifera, Savi. Cucurbita pipo, Willd

कुष्माण्डः, कुष्माण्डी–*Benincasa cerifera*, Savi. *cucurbita pipo*, Willd. White Pumpkin.

परिचयज्ञापिका संज्ञा–"स्थिरफला"। कुष्माण्डस्य धन्वन्तरीयनिघण्टु-राजनिघण्टूक्तगुणाः "एर्वारूप्रभृतयः" इति प्रकरणे लिखिताः।

कुष्माण्डमुक्तं सक्षारं मधुराम्लं तथा लघु। सृष्टमूत्रपुरीषञ्च सर्वदोषनिवर्हणम्॥ चरकः–(सू. २७ अ.)॥ पित्तघ्नं तेषु कुष्माण्डं "बालं" "मध्यं" कफापहम्। "पक्वं" लघूष्णं सक्षारं दीपनं वस्तिशोधनम्॥ सर्वदोषहरं हृद्यं पथ्यञ्चेतोविकारिणाम्॥ सुश्रुतः–(सू. ४६ अ.)॥ कुष्माण्डं वृंहणं वृष्यं गुरु पित्तास्त्रवातनुत्। 'बालं' पित्तहरं शीतं 'मध्यमं' कफकारकम्॥ 'वृद्धं' नातिहिमं स्वादु सक्षारं दीपनं लघु। वस्तिशुद्धिकरञ्चेतोरोगहृत् सर्वदोषजित्॥ भावप्रकाशः॥ कुष्माण्डकं पित्तहरं बालं मध्यं कफापहम्। पक्वं लघूष्णं सक्षारं दीपनं वस्तिशोधनम्॥ सर्वदोषहरं हृद्यं पथ्यञ्चेतोविकारिणाम्॥ राजवल्लभः॥ कुष्माण्डबीजतैलगुणाः–त्रपुस्येर्वारुकुष्माण्डश्लेष्मातकप्रियालजम्। वातपित्तहरं केश्यं श्लेष्मलं गुरुशीतलम्॥ राजनिघण्टुः॥ कुष्माण्डनाडिका गुर्वी शर्कराश्मरीनाशनी। राजवल्लभः॥ कुष्माण्डवटकगुणाः-कुष्माण्डं कर्त्तयित्वाऽस्य जलं निष्काश्य यत्नतः। कुस्तुम्बुरुनिशामाषचूर्णं सतिलसैन्धवम्॥ निक्षिप्य वटकाः कार्या आतपे शोषयेत्ततः। रुचिदा वातहन्तारस्तिलतैले सुपाचिताः॥ वैद्यकनिघण्टुः॥ कुष्माण्डस्य सुरा गुर्वी धातुवर्द्धनकारिणी। अग्निमान्द्यकरी वृष्या प्रोक्ता दृष्टिप्रदा बुधैः॥ वैद्यकनिघण्टुः॥ पक्वं पित्तहरं शीतं दीपनं वस्तिशोधनम्। शोफं वातकफौ हन्ति रक्तपित्तनिवर्हणम्॥ हारीतः॥

वैद्यके व्यवहारः- (१) मदनकोद्रवजमदे कुष्माण्डरसः–"कुष्माण्डरसः सगुडः शमयति मदमाशु मदनकोद्रवजम्"। (मदात्यय-चि.)। (२) उन्मादे कुष्माण्डरसः–"कुष्माण्डो... स्वरसाः। उन्मादहृतो दृष्टाः पृथगेते कुष्ठमधुमिश्राः"। (उन्माद-चि.)। (३) अश्मर्या कुष्माण्डरसः–"यवक्षारगुडोपेतं पिबेत् पुष्पफलोद्भवम्। रसं मूत्रविबन्धघ्नं शर्कराश्मरीनाशनम्॥" (अश्मरी-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) श्वासे कुष्माण्डमूलम्–"कुष्माण्डकशिफाचूर्णं पीतं कोष्णेण वारिणा। शीघ्रं शमयति श्वासं कासञ्चापि सुदारुणम्॥" (श्वास-चि.)। (२) मूत्रनिग्रहे कुष्माण्डबीजम्–"कुष्माण्डस्य तु बीजानि बीजानि त्रपुषस्य च। वस्तौ सन्धारयेत् तेन प्रशाम्येन्मूत्रनिग्रहः॥" (वातव्याधि-चि.)। (३) शूले कुष्माण्डक्षारः–"कुष्माण्डं तनुकृत्वा तु क्षिप्त्वा द्यर्मे विशोषयेत्। स्थाल्यां निःक्षिप्य तत् सर्वं पिधानेन पिधाय च॥ चूल्यां निवेश्य वह्निञ्च ज्वालयेत् कुशलो जनः। यथा यन्न भवेत् भस्म किन्त्वङ्गारो दृढो भवेत्॥ तदा निर्वापयेच्छीतं सर्वथा चूर्णितन्तु तत्। माषद्वयमितं तावत् शुण्ठचूर्णेन मिश्रितम्॥ जलेन भक्षयेन्नित्यं महाशूलाकुलो नरः। असाध्यमपि यच्छूलं तदप्येतेन शाम्यति॥" (शूल-चि.)। भावप्रकाशः॥

विविध भाषाओं में नाम– सं.- कुष्माण्डः, पुष्पफलः, वृहत्फलम्। हि.- पेठा, भूरकोहड़ा, भूरा कुम्हड़ा, भतुआ, कोला, कुह्मड़ा। बं.- कुमड़ा, साची कुमड़ा, कुमड़ गाछ। म.- कोहला। गु.- पदकोला, मुरु कोलु। क.-

दारकोइला, कर्गवल। तै.- वल्ले गुम्भड़ि, पुल्लाह। फा.- भूरा कुदु, कुद्दूय, रुमी, रुमाकुदु। अं.- मइद दैवा। अ.- The White Melon (दी ह्वाइट मिलन), White pumpkin (ह्वाइट पम्पकिन)। ले.- Benincasa cerifera, Cucurbita pipo willd।

परिचय ज्ञापिका संज्ञा- स्थिर फला।

गुण-दोष-

कुष्माण्ड का धन्वन्तरि निघण्टु तथा राज-निघण्टु के अनुसार कहे गये गुण 'एर्वारूप्रभृतय:' इस प्रकरण में लिखे गये हैं।

चरक सू.अ.२७ के अनुसार- कुष्माण्ड क्षारयुक्त, मधुर तथा अम्ल रस वाला एवं लघु है और यह मूत्र तथा मल का सृजन करता है तथा सभी दोषों को दूर करता है।

सुश्रुत सू.अ. ४६ के अनुसार- बाल कुष्माण्ड पित्तनाशक है, मध्य कुष्माण्ड कफ नाशक है तथा पका हुआ कुष्माण्ड हल्का, उष्ण, क्षार युक्त, दीपन तथा वस्ति शोधन है। यह सभी दोषों को दूर करता है, हृदय को बल देने वाला है, चित्त के विकार वालों के लिए पथ्य है।

भाव प्रकाश के अनुसार- कुष्माण्ड मांसवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक तथा गुरु है और यह पित्तविकार, रक्तविकार तथा वातविकार को दूर करता है। बाल कुष्माण्ड पित्त को दूर करता है तथा शीतल है। मध्यम कुष्माण्ड कफ कारक है। वृद्ध कुष्माण्ड अधिक शीतल नहीं है, स्वादिष्ट है, क्षार युक्त है, दीपन एवं लघु है। वस्ति को शुद्ध करने वाला है, मानसिक रोग को दूर करता है और सभी दोषों को दूर करता है।

राजवल्लभ के अनुसार- बाल कुष्माण्ड पित्त नाशक, मध्यम कुष्माण्ड कफनाशक तथा पक्व कुष्माण्ड लघु, उष्ण, क्षारयुक्त, दीपन तथा वस्ति शोधक है। यह सभी दोषों को दूर करने वाला, हृदय को बल देने वाला तथा मानसिक विकार वाले के लिए पथ्य है।

राजनिघण्टु के अनुसार- कुष्माण्ड बीज के तैल का गुण- खीरा, ककड़ी, कुष्माण्ड, लिसोडा तथा प्रियाल (चिरौंजी) का तैल वात-पित्त को दूर करने वाला, बालों के लिए हितकर, कफकारक तथा गुरु एवं शीतल है।

राजवल्लभ के अनुसार- कुष्माण्ड की नाडी गुरु है तथा शर्करा एवं पथरी का नाश करने वाली है।

वैद्यक निघण्टु के अनुसार- कुष्माण्ड वटक के गुण- कुष्माण्ड को काट कर तथा उसके रस को निकाल कर धनिया, हल्दी, उड़द तथा तिल का चूर्ण एवं सेन्धा नमक मिलाकर वटक बनावे और धूप में सुखा ले। यह तिल के तैल में पकाने पर रुचि कारक होता है तथा वात विकार का नाश करता है।

वैद्यक निघण्टु के अनुसार- कुष्माण्ड की सुरा भारी होती है तथा धातु को बढ़ाने वाली है, जाठराग्नि को मन्द करने वाली है, वीर्यवर्द्धक है तथा दृष्टि को बल देने वाली है।

हारीत संहिता के अनुसार- पक्व कुष्माण्ड पित्त नाशक है, शीतल है, जाठराग्नि दीपक है, शीत शोधक है और शोथ तथा वात-कफ को शान्त करती है एवं रक्त पित्त को दूर करने वाली है।

वैद्यक शास्त्र में कुष्माण्ड का प्रयोग-

(१) मदनफल फल तथा कोदो से उत्पन्न मद में प्रयोग- कुष्माण्ड का रस गुड़ मिलाकर पान करने से मदन फल तथा कोदो के सेवन से उत्पन्न मद को शान्त करता है। (चक्र.मदात्यय चि.)। **(२) उन्माद में कुष्माण्ड**

रस का प्रयोग- कुष्माण्ड स्वरस, कुष्ठ तथा मधु मिलाकर सेवन करने से उन्माद को दूर करने वाले देखे गये हैं। (चक्र.उन्माद चि.)। **(३) अश्मरी में कुष्माण्ड रस का प्रयोग**- कुष्माण्ड के पुष्प तथा फल के रस में यवक्षार तथा गुड़ मिलाकर पान करे। यह मूत्र विबन्धजन्य शर्करा तथा अश्मरी का नाश करता है। (चक्र. अश्मरी चि.)।

(१) श्वास रोग में कुष्माण्ड मूल का प्रयोग- कुष्माण्ड की जड़ का चूर्ण थोड़ा गरम जल के साथ पान करने से शीघ्र ही भयंकर श्वास तथा कास को शान्त करता है। (भा.श्वास चि.)। **(२) मूत्रनिग्रह में कुष्माण्ड के बीज का प्रयोग**- कुष्माण्ड बीज तथा खीरा का बीज वस्ति प्रदेश में धारण करे। इससे मूत्र का निग्रह (रुकावट) शान्त होता है (भा.वातव्या.चि.)। **(३) शूल में कुष्माण्ड का क्षार**- कुष्माण्ड को पतला-पतला बनाकर धूप में सुखा ले। इसके बाद किसी पत्र में रख कर ऊपर से दूसरे पात्र से बन्द करे ओर चूल्हा पर चढा कर नीचे से आग प्रज्ज्वलित करे, जब वह भस्म न हो जाय किन्तु दृढ़ अंगार हो जाय तब निकालकर चूर्ण कर ले। इसके बाद उसमें से दो मासा (२ ग्राम) की मात्रा में लेकर तथा सोंठ का चूर्ण मिलाकर जल के साथ नित्य भक्षण करे। यह महाशूल का नाश करता है। जो असाध्य शूल भी होता है वह भी शान्त हो जाता है। (भा.प्र.शू.चि.)।

Constituents—Fixed oil 44 p.c.; starch 32 p.c., an alkaloid cucurbitine, an acrid resin, proteids, myosin, vittlin, sugar, ash 4 p.c. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 304).

Actions and uses—Fruit is nutritive, tonic and diuretic. The seeds deprived of the outer covering are vermifuge, and are given in tapeworms and lumbrici; as a diuretic it is given in gonorrhoea and urinary diseases. The oil has been used for the same purposes. The fresh juice with sugar and saffron is given in insanity, epilepsy, nervous diseases and in diabetes. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 304). "According to **Dr. Savinge** of Rajamundry it has been used with success in diabetes, 4 0zs, of the juice with100 grs. each of a saffron, and the bran of red rice, are given morning and evening and a strict diet enjoined" (*Pharmacographia Indica*—Dymock, Part II., p. 70). This is so universally believed to be useful in pulmonary consumption that some trials should be made in order to discover whether it has any effect on the bacillus of pthisis discovered by **Dr. Koch.** I have seen it, produce a decided effect in arresting pulmonary tuberculosis. (Surgeon **K. D. Ghose**).

कुसुम्भः

Carthamus tinctorius, Linn.

कुसुम्भः–*Carthamus tinctorius*, Linn., *C. oxycantha*, (willd form of the plant) Bieb.

परिचयज्ञापिका संज्ञा–"ग्राम्यकुङ्कुमः", "कुक्कुटशिखम्", "वह्निशिखम्"। व्यवहारबोधिका संज्ञा–"वस्त्ररञ्जनम्"। कुसुम्भं वातलं रूक्षं रक्तपित्तकफापहम्। 'कुसुम्भतैलमुष्णञ्च विपाके कटुकं गुरु॥ विदाहि च विशेषेण तच्च रोगप्रकोपनम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ कौसुम्भः कटुकः पाके श्लेष्महृद्दीपनश्च सः॥ 'कौसुम्भशाकं' मधुरं कटूष्णं विण्मूत्रदोषापहरं मदघ्नम्। दृष्टिप्रसादं कुरुते विशेषाद् रुचिप्रदं दीप्तिकरञ्च वह्नेः॥ 'कुसुम्भतैलं' कृमिहारि तेजो-बलावहं यक्ष्ममलापहञ्च। त्रिदोषकृत् पुष्टिबलक्षयञ्च करोति दृष्टेः...॥ राजनिघण्टुः॥ कुसुम्भो वातलो रूक्षो विदाही कटुकः स्मृतः। मूत्रकृच्छ्रं कफं रक्तपित्तञ्चैव विनाशयेत्॥ 'कुसुम्भपुष्पं' सुस्वादु त्रिदोषघ्नञ्च भेदकम्।

रूक्षमुष्णं पित्तलञ्च केशरञ्जनकारकम्॥ कफनाशकरञ्चैव लघु प्रोक्तं मनीषिभिः॥ 'कुसुम्भपत्रं' मधुरं नेत्र्यमुष्णं कटु स्मृतम्। अग्निदीप्तिकरञ्चातिरुच्यं रूक्षं गुरु स्मृतम्॥ सरं पित्तकरञ्चाम्लं गुदरोगकरं मतम्। कफविण्मूत्रमेदसां नाशकं परमं मतम्॥ वैद्यकनिघण्टुः॥ कुसुम्भं वातलं कृच्छ्ररक्तपित्तकफापहम्। भावप्रकाशः॥ 'कुसुम्भतैलं' कटुकं गुरूष्णाञ्च त्रिदोषदम्। राजवल्लभः॥ 'कुसुम्भबीजं' मधुरं स्निग्धं शीतं कषायकम्। अवृष्यं गुरु च प्रोक्तं कफवातास्त्रपित्तनुत्॥ वृहन्निघण्टुरत्नाकरः॥

वैद्यके व्यवहारः–अश्मरीमूत्रकृच्छ्रयोः कुसुम्भबीजम्– "एर्वारुबीजं त्रपुषात् कुसुम्भात्...। द्राक्षारसेनाश्मरीशर्करासु सर्वेषु कृच्छ्रेषु प्रशस्त एषः॥" (चि. २६ अ.)। चरकः॥ प्रमेहे कुसुम्भस्नेहः–"कुसुम्भसर्षपातसी... स्नेहाः प्रमेहेषु" (चि. ३१ अ.)। सुश्रुतः॥ निर्लोमकरणार्थं कुसुम्भतैलम्–"कुसुम्भतैलाभ्यङ्गो वा रोम्णामुत्पादितेऽन्तकृत्"। (स्त्रीरोग-चि.)। चक्रदत्तः॥

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– कुसुम्भबीजम्, वरटा। हि.– कुसम्भ के बीज, बरै, बरे, कर कई, करइ। बं.– कुसम फल। म.– कर्डया। गु.– करड, कुसुम्बाना बीज। यू.– कर्ड। म.– कुसुम्बो। फा.– तुख्म कापसा, खेरूक दाना। अ.– इव्वुल अस्फर, हव्वुल भास्कर। ले.– Carthamus tinctorius, Linn. C. Oxycantha (willd form of the plant Bieb).

परिचयज्ञापिका संज्ञा– ग्राम्यकुङ्कुमः, कुक्कुटशिखम्, वह्निशिखम्। **व्यवहारबोधिका संज्ञा–** वस्त्ररञ्जनम्।

गुण-दोष–

धन्वन्तरिनिघण्टु के अनुसार– कुसुम्भ (बर्र) वातकारक, रूक्ष तथा रक्त पित्त नाशक है। कुसुम्भ का तैल उष्ण है, विपाक में कटु है, गुरु है, विदाही है और वह रोग को प्रकुपित करने वाला है।

राजनिघण्टु के अनुसार– कौसुम्भ (बर्र) पाक में कटु है, कफ को दूर करने वाला है, जाठराग्नि को प्रदीप्त करने वाला है। कुसुम्भ का शाक मधुर तथा कटु रस वाला एवं उष्ण है, मल-मूत्र के दोष को दूर करने वाला है तथा मद का नाश करता है, विशेषकर दृष्टि को ठीक करता है, रुचि को बढ़ाता है तथा जाठराग्नि को प्रदीप्त करता है। **कुसम्भ का तैल** क्रिमि को दूर करता है तेज तथा बल को बढ़ाने वाला है और यक्ष्मा रोग को दूर करता है, त्रिदोष को बढ़ाता है।

वैद्यक निघण्टु के अनुसार– कुसम्भ वातकारक है, रुचिकारक है, विदाही है तथा कटु रस वाला कहा गया है। यह मूत्रकृच्छ्र, कफ विकार तथा रक्त पित्त का नाश करता है। **कुसम्भ का फूल** स्वादिष्ट, त्रिदोष नाशक, मल भेदक, रूक्ष, उष्ण, पित्त कारक तथा केशरंजक है। इसको विद्वानों ने कफ नाशक तथा लघु कहा है। **कुसम्भ का पत्र** मधुर, नेत्र के लिए हितकर, उष्ण तथा कटु है। यह जाठराग्नि को प्रदीप्त करता है, अत्यन्त रुचिकारक है, रूक्ष है तथा गुरु है। यह दस्तावर है, पित्तकारक है, अम्ल है तथा गुद रोग (अर्शरोग) को उत्पन्न करता है। कफ विकार, मेदो विकार, मल, मूत्र तथा मेदोरोग का नाश करता है।

भावप्रकाश के अनुसार– कुसुम्भ वातकारक, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त तथा कफ का नाश करने वाला है।

राजवल्लभ के अनुसार– कुसुम्भ का तैल कटु, गुरु, उष्ण तथा त्रिदोषप्रद है।

वृहन्निघण्टु रत्नाकर के अनुसार– कुसम्भ का बीज मधुर, स्निग्ध, शीतल तथा कषाय है और यह अवृष्य है, गुरु है और कफ-वात, रक्त विकार, पित्त विकार को दूर करता है।

वैद्यक शास्त्र के अनुसार कुसुम्भ का प्रयोग-

अश्मरी तथा मूत्रकृच्छ्र में कुसुम्भ बीज का प्रयोग- एर्वारु का बीज, खीरा का बीज तथा कुसुम्भ का बीज का प्रयोग मुनक्का के रस के साथ अश्मरी रोग तथा शर्करा रोग में करे। (च.चि.अ.२६)।

प्रमेह में कुसम्भ तैल का प्रयोग- कुसुम्भ सरसों तथा तीसी तैल का प्रयोग प्रमेह में करे। (सु.चि.अ. २१)। **निर्लोम करने के लिए कुसुम्भ तैल का प्रयोग-** रोमों के उत्पादन होने पर कुसुम्भ का तैल लगाने से रोम निर्मूल हो जाते हैं। (च.स्त्रीरोग चि.)।

Constituents—The flowers contain a red colouring principle carthamin, a yellow colouring matter, cellulose, extractive matters, albumen, silica, manganese, iron, & c. The seeds contain a fixed oil. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II, 356).

Actions and uses—The seeds are purgative. Medicated oil (the plant boiled in sesamum oil) is locally applied to rheumatic and painful joints, paralytic limbs and intractable ulcers. The hot infusion of dried flowers is given as a diaphoretic in jaundice, nasal catarrh and muscular rheumatism. A cold infusion is used as a laxative and tonic in measles and scarlatina to favour efflorescence of eruptions. The leaves have the property to curdle milk like rennet, hence it can be used in making cheese. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 356). **Barham** tells us that a dram of the dried flowers taken cures the jaundice. (*Pharmacographia Indica*—Dymock, Part II., p. 309).

केतकीद्वयम्

Pandanus odoratissimus

केतकीद्वयम्– *Pandanus odoratissimus.* **केतकी(कः), सितकेतकी(कः)–** The male plant. **स्वर्णकेतकी, हेमकेतकी–** The female plant.

परिचयज्ञापिका संज्ञा–सितकेतक्याः–"विफला", "धूलिपुष्पिका", "स्थिरगन्धा", "गन्धपुष्पा" (रा. नि.)॥ स्वर्णकेतक्याः– "कनकप्रसवा", "लघुपुष्पा", सुगन्धिनी" (ध. नि.)। अन्वर्थसंज्ञा (स्त्रीपुंसोः)–"क्रकचच्छदा", दीर्घपत्रा", "दलपुष्पा", "छिन्नरुहा", "शिवद्विष्टा", "नृपप्रिया"। केतकी कटुका पाके लघुतिक्ता कफापहा। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ केतकीकुसुमं वर्ण्यं केशदौर्गन्ध्यनाशनम्। हेमाभं मदनोन्मादवर्द्धनं सौख्यकारि च॥ तस्य स्तनोऽति शिशिरः कटुः पित्तकफापहः। रसायनकरो बल्यो देहदार्ढ्यकरः परः॥ राजनिघण्टुः॥ केतकः कटुकः स्वादुर्लघुस्तिक्तः कफापहः। उष्णा तिक्तरसा ज्ञेया चक्षुष्या हेमकेतकी॥ भावप्रकाशः॥ केतकी वातला वृष्या तन्द्रानिद्राकरीमता। आत्रेयसंहिता॥ फलकेसरयोश्चैव गुणाः पूर्वोक्तवन्मताः। निघण्टुरत्नाकरः॥

वैद्यके व्यवहारः–वातगुल्मे केतकीक्षारः–"...क्षारः केतकीजोऽपि वा। तैलेन पीतः शमयेद् गुल्मं पवनसम्भवम्"। (गुल्म-चि.)। चक्रदत्तः॥

विविध भाषाओं में नाम– सं.- केतकः, सूचिकापुष्पः, जम्बूकः, सुवर्णकेतकी। हि.- केवड़ा, गगनधूल, पीलादकेवड़ा, पीलीकेतकी। बं.- केयागाछ, सोनाकेया। म.- प्रढिरा केवड़ा। गु.- केवड़ी। ते.- भोगलि चेट्टु। ता.-

तालम्बु। के.- केवलतोल। द्रा.- तालता लई। फा.- करज। अ.- कादी। ले.- Pandanus odoratissimus (पेन्डेनस आडोरेटिसिमस)।

परिचय ज्ञापिका संज्ञा- सितकेतक्या: विफला, धूलि-पुष्पिका, स्थिर-गन्धा, गन्ध पुष्पा (रा.नि.), स्वर्णकेक्या: कनकप्रसवा, लघुपुष्पा, सुगन्धिनी (ध.नि.)। **अन्वर्थ-संज्ञा** (स्त्रीपुसो:) क्रकचच्छदा, दीर्घपत्रा, दलपुष्पा, छिन्नरुहा, शिवद्विष्टा, नृपप्रिया।

गुण-दोष-

धन्वन्तरी निघण्टु के अनुसार- केतकी कटु तथा तिक्त रस तथा लघु है और कफ को दूर करती है।

राजनिघण्टु के अनुसार- केतकी का पुष्प वर्ण के लिए हितकर, केश के दुर्गन्ध का नाश करने वाला, स्वर्ण सदृश, कामदेव के उन्माद को बढ़ाने वाला तथा सुख कारक है। उसकी स्तनी (पुष्पदल) अतिशीतल कटु , पित्त तथा कफ दूर करता है, रसायन गुण वाला है, बलकारक है, अच्छी तरह देह को मजबूत करने वाला है।

भावप्रकाश, के अनुसार- केतक, कटुतिक्त तथा स्वादिष्ट है तथा कफ नाशक है, उष्ण है, तिक्त रस है तथा हेमकेतकी नेत्र के लिए हितकारक है।

आत्रेय संहिता के अनुसार- केतकी वातकारक, वृष्य तथा तन्द्रा एवं निद्रा को बढ़ाने वाली है।

निघण्टुरत्नाकर के अनुसार- केतकी के फल तथा केशर के गुण पहले बताये गये के समान जानना चाहिए।

वैद्यकशास्त्र के अनुसार केतकी का प्रयोग-

वातगुल्म में केतकी का प्रयोग- केतकी का क्षार क्वाथ तैल के साथ पान करने से गुल्मरोग शान्त होता है। (चक्र.गुल्म चि.)।

Actions and uses—Stimulant, diaphoretic and antispasmodic; given in general debility, faintness, giddiness, often with javarasha. Locally it is used for the relief of long-standing headache. The oil is dropped into the ear in earache and in otorrhoea; the root brayed in milk is given in cases of threatened abortion. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 634).

कोकिलाक्ष:

Ruellia longifolia

कोकिलाक्ष:, इक्षुरक:- *Ruellia longifolia*, Roxb., *Hygrophila spinosa*, Prain.

परिचयज्ञापिका संज्ञा-"वज्रकण्टक:", "छत्रक:"। बीजस्य- "पिच्छिलम्"। कोकिलाक्षस्तु मधुर: शीत: पित्तातिसारनुत्। वृष्य: कफहरो बल्यो रुच्य: सन्तर्पण: पर:॥ राजनिघण्टु:॥ क्षुरक: शीतलो वृष्य: स्वाद्वम्ल: पित्तलस्तथा। तिक्तो वातामशोथाश्मतृष्णारुच्यनिलास्त्रजित्॥ भावप्रकाश:॥ आमवातानिलापहौ कोकिलाक्षहलीनकौ। राजवल्लभ:॥ 'पर्णञ्च' स्वादु तिक्तं स्याच्छोथशूलविषापहम्। आनाहवातमुदरं पाण्डुरोगञ्च नाशयेत्॥ कोकिलाक्षस्य 'बीजन्तु' शीतं स्वादु कषायकम्। तिक्तं वृष्यं गुरु ग्राहि गर्भस्य स्थापनन्तथा॥ वृहन्निघण्टुरत्नाकर:॥

वैद्यके व्यवहार:- अश्मर्यां कोकिलाक्षमूलम्-"मूलं श्वदंष्ट्रेक्षुरकोरुवूकात्। क्षीरेण पिष्टं..."।

(चि. २६ अ.)। चरकः॥ बाजीकरणार्थं कोकिलाक्षबीजम्–"स्वयङ्गुप्तेक्षुरकयोः फलचूर्णं सशर्करम्। धारोष्णेण नरः पीत्वा पयसा न क्षयं व्रजेत्॥" (चि. २६ अ.)। सुश्रुतः॥ वातरक्ते कोकिलाक्षमूलम्–"कोकिलाक्षकनिर्यूहः पीतस्तच्छाकभोजिना। कृपाभ्यास इव क्रोधं वातरक्तं नियच्छति॥" (चि. २२ अ.)। वाग्भटः॥ शोथे कोकिलाक्षक्षारः–शोथनुत् कोकिलाक्षस्य भस्म मूत्रेन वाऽम्भसा"। (शोथ-चि.)। चक्रदत्तः॥ सुखप्रसवार्थं कोकिलाक्षमूलम्–"सितया चर्वणं कृत्वा कोकिलाक्षस्य मूलकम्। तत्कर्णपूरणेनाशु सुखं नारी प्रसूयते॥" (स्त्रीरोगाधि.)। वङ्गसेनः॥ निद्राजननार्थं कोकिलाक्षमूलम्–"काकजङ्घात्वपामार्गः कोकिलाक्षः....। क्वाथो निद्राकरः शीघ्रं मूलं वा बान्धयेच्छिखाम्॥" (चि. १६ अ.)। हारीतः॥

विविध भाषाओं में नाम– सं.- कोकिलाक्षः, काकेक्षुः, क्षुरिका, इक्षुगन्धा। हि.- ताल मखाना, कैलया। बं.- कुलिया खाड़ा, शूलमर्दन। म.- विखोरा, कालसन्द। तै.- गोलिमिडि चेट्टदु, गोव्विचेट्टहु। गु.- पखरी। क.- कलुगोलिको, नीरगोल। ता.- नीरमुल्ली। म.- तालमखाड़ा। अं.- Long leaved Barlaria। ले.- Ruellia longifolia, Roxb. Hygrophila spinosa, Brawn.

परिचय ज्ञापिका संज्ञा- वज्रकण्टकः, छत्रकः। **बीजस्य-** पिच्छिलम्।

गुण-दोष–

राजनिघण्टु के अनुसार- कोकिलाक्ष (तालमखाना) मधुर है तथा शीतल है और पित्त विकार को दूर करता है। वीर्यवर्द्धक है तथा कफ नाशक, बलकारक, रुचिकारक तथा उत्तम संतर्पक है।

भावप्रकाश के अनुसार- कोकिलाक्ष शीतल, वृष्य, मधुर तथा अम्ल रस प्रधान तथा पित्तकारक है। यह तिक्त रस वाला, वातरोग, आमरोग, शोथ, पथरी, प्यास, अरुचि तथा वात रक्त विकार को जीत लेता है।

राजवल्लभ के अनुसार- कोकिलाक्ष आमवात रोग तथा वातरोग दूर करता है।

बृहन्निघण्टु रत्नाकर के अनुसार- कोकिलाक्ष का पत्र स्वादिष्ट तथा तिक्त रस प्रधान है और शोथ, शूल एवं विष विकार को दूर करता है। यह आनाह, वात रोग, उदर रोग तथा पाण्डु रोग का नाश करता है। कोकिलाक्ष का बीज शीतल, स्वादिष्ट, कषाय रस, मधुर रस तथा तिक्त रस प्रधान है और वृष्य है, गुरु है, भारी है, ग्राही है तथा गर्भ को स्थापित करने वाला है।

वैद्यक शास्त्र के अनुसार कोकिलाक्ष का प्रयोग-

अश्मरी रोग में कोकिलाक्ष के मूल का प्रयोग- गोखरु, ताल मखाना तथा एरण्ड के मूल को दूध के साथ पीसकर सेवन करने से अश्मरी रोग शान्त होता है। (च.चि.अ.२६)।

वाजीकरण के लिए कोकिलाक्ष के बीज का प्रयोग- केवालू तथा तालमखाना के बीज के चूर्ण को शर्करा मिलाकर धारोष्ण दूध के पान कर मनुष्य क्षीण नहीं होता है अर्थात् उसका वीर्य क्षय नहीं होता है। (सू. वि.अ.२६)।

वातरक्त में कोकिलाक्ष के मूल का प्रयोग- कोकिलाक्ष के मूल का क्वाथ पान करने से तथा शाक का सेवन करने से वातरक्त को दूर करता है, जैसे कृपा का अभ्यास करने से क्रोध शांत हो जाता है। (वा.चि.अ.२२)।

शोथ में कोकिलाक्ष के क्षार का प्रयोग- कोकिलाक्ष के भस्म को गोमूत्र के साथ अथवा जल के साथ पान करने से शोथ को दूर करता है। (चक्र.शोथ चि.)।

सुख प्रसवार्थ कोकिलाक्ष के मूल का प्रयोग- कोकिलाक्ष के मूल को मिश्री के साथ चबाकर और उसके मूल को कान में रखने से स्त्री सुखपूर्वक प्रसव करती है। (वंगसेन-स्त्रीरोगाधिकार)।

नींद लाने के लिए कोकिलाक्ष के मूल का प्रयोग- काकजङ्घा, अपामार्ग तथा कोकिलाक्ष के मूल का क्वाथ पान करने से तथा उनके मूल को शिखा में बांधने से शीघ्र ही नीद आ जाती है। (हारीत संहिता)

Constituents—The seeds contain mucilage, albuminoids, traces of alkaloid and a yellow fixed oil. The root and stem exhausted with alcohol deposit red shaped crystals. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 465).

Actions and uses—The root is demulcent and diuretic, and given in dropsy, gonorrhoea, hepatic obstruction, rheumatism, and in urinary affections. The seeds are used as aphrodisiac; a paste of the seeds is applied to Rheumatic joints. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 466).

"In the *Pharmacopoeia of India* several European contributors bear testimeny to the diuretic properties of the plant, but no mention is made of the use of the seeds as an aphrodisiac and diuretic." (Dymock—Part III., p. 37).

कोविदारः

Bauhinia veriegata

श्वेतकोविदारः (निर्गन्धः) *Bauhinia acuminata*, Roxb. **श्वेतकोविदारः (सुरभिकुसुमः)**–*B. candida,* Roxb. **ताम्रपुष्पकोविदारः**–*B. veriegata*, Roxb. **पीतपुष्पकोविदारः**–*B. purpurea*, Roxb.

अन्वर्थसंज्ञा– पीतपुष्पस्य– "गिरिजः", "महापुष्पः", "महायमलपत्रकः" (रा. नि.)। ताम्रपुष्पस्य– "स्वल्पकेसरी", "गण्डारिः"। कोविदारः कषायस्तु सङ्ग्राही व्रणरोपणः। गण्डमालागुदभ्रंशशमनः कुष्ठकेशहा॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ कोविदारः कषायः स्यात् सङ्ग्राही व्रणरोपणः। दीपनः कफवातघ्नो मूत्रकृच्छ्रनिवर्हणः॥ राजनिघण्टुः॥ काञ्चनारो हिमो ग्राही तुवरः श्लेष्मपित्तनुत्। कृमिकुष्ठगुदभ्रंशगण्डमालाव्रणापहः॥ 'कोविदारोऽपि' तद्वत् स्यात्तयोः पुष्पं लघु स्मृतम्। रूक्षं सङ्ग्राहि पित्तास्त्रप्रदरक्षयकासनुत्॥ भावप्रकाशः॥ 'पीतस्तु काञ्चनो' ग्राही दीपनो व्रणरोपणः। तुवरो मूत्रकृच्छ्रस्य कफवाय्वोश्च नाशनः। वृहन्निघण्टु-रत्नाकरः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) अर्शःसु कोविदारमूलम्–"कोविदारस्य मूलानां मथितेन रजः पिबेत्" (चि. ८ अ.)। (२) मेधावर्द्धनार्थं काञ्चनपत्रम्– "सर्पिश्च तु कुवलयं सहिरण्यपत्रं मेध्यं गवामपि भवेत् किमु मानुषानाम्"। (उ. ३९ अ.)। वाग्भटः॥ गण्डमालायां काञ्चनारत्वक्– "पिष्ट्वा ज्येष्ठाम्बुना पेयाः काञ्चनारत्वचः शुभाः। विश्वभेषजसंयुक्ता गण्डमालाहराः पराः॥" (गलगण्ड-चि.) चक्रदत्तः॥ मसूरिकायां काञ्चनारत्वक्-"काञ्चनारत्वचः क्वाथस्ताप्यचूर्णावचूर्णितः" (म. ख. ४ भा.)। भावप्रकाशः॥

विविध भाषाओं में नाम– सं.– काचनारः, कोविदारः, शोणपुष्पकः, युगपत्रकः। हि.– कचनार। बं.– कांचन।

म.- कारेल, गु.- चम्पाकारी। क.- कीचाले। ते.- देवकाचनु। ता.- सूग्रेसुग्रम्बरी। ले.- Bauhinia veriegata (बोहिनिया वेरीगेटा)।

अन्वर्थसंज्ञा पीतपुष्प की- गिरिजः, महापुष्पः, महायमलपत्रकः (रा.नि.)। **ताम्रपुष्प की अन्वर्थ संज्ञा**- स्वल्पकेशरी, गण्डारी।

गुण-दोष-

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- काञ्चनार कषाय रसवाला, ग्राही तथा व्रण रोपक है और यह गण्डमाला तथा गुदभ्रंश को शान्त करने वाला, कुष्ठ रोग का नाश करने वाला है।

राजनिघण्टु के अनुसार- कोविदार कषाय रस वाला, ग्राही तथा व्रण रोपक है, जाठराग्नि दीपक है और कफ-वात नाशक तथा मूत्रकृच्छ्र को दूर करने वाला है।

भावप्रकाश के अनुसार- कांचनार शीतल, ग्राही, कषाय रस वाला है और कफ-पित्त विकार को दूर करता है। यह क्रीमिरोग, कुष्ठरोग, गुदभ्रंश, गण्डमाला तथा व्रण को दूर करता है। कोविदार भी कंचनार के गुण के अनुसार गुण वाला है। काचनार तथा कोविदार का पुष्प हल्का है, रूक्ष है, ग्राही है और पित्त विकार, रक्त प्रदर, क्षय रोग तथा कास को दूर करता है।

बृहन्निघण्टु रत्नाकर के अनुसार- पीला काञ्चनार ग्राही, दीपन, व्रण रोपण, कषाय रस वाला तथा मूत्रकृच्छ्र, कफ विकार एवं वात विकार का नाश करता है।

वैद्यक शास्त्र में कोविदार का प्रयोग-

(१) अर्श रोग में कोविदार के मूल का प्रयोग- कोविदार के मूल का चूर्ण मथित (दही का तोड़) के साथ पान करे। (वागभट्ट चि.अ.८)। **(२) मेधा बढ़ाने के लिए काञ्चनार पत्र का प्रयोग**- चारों प्रकार के कमल तथा हिरण्य पत्र के कल्क तथा क्वाथ के साथ विधिवत सिद्ध घृत सेवन करने से गाय की भी मेधा बढ़ जाती है तो मनुष्यों की मेधा बढ़ने में क्या संदेह है। (वा.चि.अ.३९)।

गण्डमाला में काञ्चनार त्वक् का प्रयोग- काञ्चनार की छाल को वर्षा के जल के साथ पीस कर सोंठ के साथ पान करे। यह गण्डमाला रोग को शीघ्र ही अच्छी तरह शान्त करता है (चक्र.चि.)।

मसूरिका में काञ्चनार का प्रयोग- काञ्चनार के छाल का क्वाथ लण्टे का भस्म मिलाकर सेवन करने से मसूरिका में लाभ होता है। (म.ख.भा.४.भावप्रकाश)।

Constituents—The bark contains tannin.

Actions and uses—The bark and buds are alterative and astringent. The decoction of the bark is given in leprosy, scrofula, skin disease, and ulcers. In scrofulaus enlargements of the cervical glands, the bark with suntha and rice-water, is given as an emulsion or in combination with *Boswellia serrata*, myrobalans, and a number of aromatics. A gargle of the bark with pomegranate flowers and akakia is used in sorethroat and and salivation. A decoction of the buds is given in Menorrhagia, Haemorrhoids and bleeding from the mucous surfaces. A decoction of the buds is given in cough, bleeding Piles, Haematuria and Menorrhagia. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 193).

कोशातकी

Luffa echinata

कोशातकी (श्वेतपुष्पा पीतपुष्पा च), कृतवेधनः, क्ष्वेडः, घोषा–*Luffa echinata*, Roxb., **क्षुद्रफला कोशातकी, "ज्योत्स्निका"**– *Luffa bindaal*, Roxb., **वृहत्फला कोशातकी**–*Luffa graveolens*, Roxb., **राजकोशातकी (धामार्गवः)**–*Luffa amara*, Roxb., **धाराकोशातकी**–*Luffa acutangula*, Roxb.

अन्वर्थसंज्ञा--पीतश्वेतपुष्पकोशातक्याः–"सुतिक्ता", "जालिनी", "मृदङ्गफलिका", "कृतच्छिद्रा"। राजकोशातक्याः–"कोशफला", "पीतपुष्पा", "हस्तिघोषा", "कटुफला" (दृढबलः), "महाफला"। धाराकोशातक्याः–"स्वादुफला", "सुपुष्पा", "पीतपुष्पा", "धाराफला", "दीर्घफला", "सुकोशा"। क्ष्वेडस्तिक्तः कटुस्तीक्ष्णोऽप्रगाढश्च प्रशस्यते। कुष्ठपाण्ड्वामयप्लीहशोफगुल्मगरादिषु॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ कोशातकी तु शिशिरा कटुकाऽल्पकषायका। पित्तवातकफघ्नी च मलाध्मानविशोधिनी॥ 'धाराकोशातकी' स्निग्धा मधुरा कफपित्तनुत्। ईषद्वातकरी पथ्या रुचिकृद्बलवीर्यदा॥ राजनिघण्टुः॥ '...राजकोशातकी'। गरे गुल्मोदरे कासे वातश्लेष्मामये स्थिते। कफे च कण्ठवक्त्रस्थे कफसञ्चयजेषु च॥ दृढबलः॥ कोशातकी कफार्शोघ्नी पक्वामाशयशोधिनी। राजवल्लभः॥ शिरःपाण्ड्वर्त्तिशमनं जानीयाज् जालिनीफलम्। इति कश्चित्।

वैद्यके व्यवहारः–कुष्ठे कोशातकीतैलम्–"सर्षपकरञ्जकोशातकानां तैलानि...। कुष्ठेषु हितान्याहुः..." (चि. ७ अ.)। चरकः॥ (१) अर्शःसु कोशातक्याः फलं मूलञ्च–"कोशातकीरजोघर्षान्निपतन्ति गुदोद्भवाः" (अर्शश्चि.), "योज्यं रक्तार्शसैस्तद्वत् ज्योत्स्निकामूललेपनम्" (अर्शश्चि.)। (२) सहजार्शःसु घोषाक्षारः–"स्विन्नं वार्त्ताकुफलं घोषायाः क्षारजेन सलिलेन। तद्घृतभृष्टं युक्तं गुडेन वा तृप्तितो योऽत्ति। पिबति च तक्रं न्यूनं तस्याश्वेवातिवृद्धगुदजानि। यान्ति विनाशं पुंसां सहजान्यपि सप्तरात्रेण॥" (अर्शश्चि.)। (३) कामलायां जालिनीफलम्–"घ्रेयं वा जालिनीफलम्" (पाण्डु-चि.)। (४) गण्डमालायां कोशातकीफलम्– "कोशातकीनां स्वरसेन नस्यं...। ...पिप्पलीसंयुतेन" (गलगण्ड-चि.)। चक्रदत्तः॥ योनिकन्दे घोषकस्वरसः–"घोषकस्वरसः पीतो मस्तुना च समन्वितः। योनिकन्दं निहन्त्याशु तन्नाडी चैव धूपतः॥" (स्त्रीरोग-चि.)। वङ्गसेनः॥

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– महाकोशातकी, हस्तिघोषा। हि.– नेनुआ, बड़ी तरोइ, घिया तरोई, गलका तोरई, घिउरा, घेवड़ा। बं.– हस्ति घोष, घुघुल, घुन्दरु। म.– घीशा के घोसाली, पारोशी, पारेसा, घड़ेकाव। गु.– अलका, घीसौड़ा। क.– अरहिटे, तुप्पिटी। ते.– एगुनवीर, पुच्छावीर काया। फा.– खियार। ले.– Luffa aceguptica.

अन्वर्थ संज्ञा– पीत श्वेत कोशातकी– सुतिक्ता, जालिनी, मृदंगफलिका, कृतच्छिद्रा। **राजकोशातकी की अन्वर्थ संज्ञा–** कोशफला, पीतपुष्पा, हस्तिघोषा, कटुफला (दृढ़बल), महाफला। **धारा कोशातकी की अन्वर्थ संज्ञा–** स्वादुफला, सुपुष्पा, पीतपुष्पा, धाराफला, दीर्घफला, सुकोशा।

गुण-दोष-

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- क्ष्वेड (कोशातकी-नेनुआ) तिक्त तथा कटु रस प्रधान तथा तीक्ष्ण होता है और अप्रगाढ कोशातकी है। यह कुष्ठरोग, पाण्डु रोग, प्लीहा वृद्धि, शोथ तथा विष आदि विकार में प्रशस्त है।

राजनिघण्टु के अनुसार- कोशातकी शीतल, कटु रस वाला तथा थोड़ा कषाय रसवाला है। यह पित्त-विकार, कफ-विकार तथा वात विकार का नाश करने वाली है और मल तथा आध्मान को शुद्ध करने वाली है। **धारा कोशतकी** स्निग्ध, मधुर है और कफ-पित्त को दूर करने वाली है। यह थोड़ी वातकारक है, पथ्य है और रुचि, बल एवं वीर्य को बढ़ाने वाली है।

दूढ़ बल के अनुसार- राजकोशातकी विष विकार, गुल्म रोग, उदर रोग, कास, वात-कफज रोग, कफ के कण्ठ तथा गले में स्थित होने पर एवं कफ के संचय होने पर लाभकारी है।

राजवल्लभ के अनुसार- कोशातकी कफ विकार तथा अर्शरोग का नाश करती है और पक्वाशय एवं आमाशय को शुद्ध करने वाली है। **जालिनि फल** शिरः शूल तथा पाण्डु रोग को शान्त करने वाली है, ऐसे समझें।

वैद्यक शास्त्र में कोशातकी का प्रयोग-

कुष्ठ रोग में कोशातकी तैल का प्रयोग- सरसो, करञ्ज तथा कोशातकी की तैल कुष्ठ रोग में हितकर है। (च.चि.अ.७)।

(१) अर्श रोग में कोशातकी के फल तथा मूल का प्रयोग- कोशातकी के चूर्ण से घर्षण करने पर अर्श के मस्से गिर जाते हैं। (चक्र.अर्श)। **(२) सहज अर्श में घोषाक्षार का प्रयोग-** वैगन के फल को घोषा (नेनुआ) के क्षार के जल में उबालकर और उसको घी में भून कर तथा गुड़ मिलाकर जो पुरुष भक्षण करता है और उसके ऊपर से मट्ठा पीता है उसका अधिक पुराना अर्शरोग शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है। (चक्र.अर्श.चि.)। **(३) कामला में जालिनी फल (कोशातकी) का प्रयोग-** कामला रोग में जालिनी फल (कोशातकी फल) के चूर्ण सूँघाना चाहिए। (चक्र.पा.चि.)। **(४) गण्डमाला में कोशातकी फल का प्रयोग-** कोशातकी के फल के स्वरस का नस्य पीपर का चूर्ण मिलाकर गलगण्ड रोग में लें (चक्र. गलगण्ड-चि.)।

योनिकन्द में घोषक के स्वरस का प्रयोग- घोषक फल (कोशातकी फल) के स्वरस को मस्तु (दही के तोड़े) के साथ पान करने से तथा उसकी माड़ी का धूप देने से योनिकन्द नष्ट होता है। (बंगसेन-स्त्री रोग चि.)।

Actions and uses—Every part of the plant is bitter, tonic and diuretic and combined with nitrohydrochloric acid, is given in dropsy and in enlargement of the liver and spleen due to malarial poison. The juice of the leaves is applied to sores and to the bites of venomous animals. The pulp is emetic and cathartic. The infusion of rice seeds is used as a purgative and emetic. The dried fruit powdered is used as a snuff in jaundice. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II. p. 312).

I have been using *Luffa bindaal* or the stems and the fruits of Ghosalata for a long time in the **Campbell Hospital** and in private practice. From prolonged use, I have come to the conclusion that the fruits or even stems, if used as a tincture or hot or cold infusion, are superior to many remedies that I have used in the treatment of ascites and enlarged liver and spleen. I make the tincture with rectified spirit. The strength I generally use is 1 in 20. The usual dose is 10 to 20 minims or more. The cold infusion is made by infusing two bruised fruits in a pint

of water. In obstinate cases the dose is to be increased gradually. I have used it in larger doses to get the desired effect. Externally I have used to cold infusion as a stimulating and antiseptic lotion in carbuncles and other unhealthy ulcers. The result is very promising. I can strongly recommend this drug to the medical world in the treatment of foul ulcers after a prolonged use of many years, both in hospital and outside. In congestion of the brain causing intense headache and in jaundice I have used this infusion as an errhine. It is a very efficient errhine remedy. Profuse discharge is noticed under its influence from the nasal mucous membrane. In 10 to 15 minim doses the tincture acts as a purgative. In still larger doses it is emetic and drastic purgative. In cases of enlarged liver and spleen I have found this drug to be very useful. It is to be stopped when it produces Diarrhoea. In chronic cases I generally use iodide of potassium and arsenic with tincture or infusion of luffa. If used carelessly, it may produce Diarrhoea, The dose is to be regulated according to the effect produced. In infantile cirrhosis of the liver I have used the tincture as a purgative and diuretic. It is very useful in commencing cirrhosis. It is a very useful diuretic in dropsy of hepatic origin. Owing to its diuretic and drastic purgative properties, I have used it in many cases of ascites with highly satisfactory results. I have used many diuretics in ascites, but very few of them appear to me to be so efficient as *Luffa bindaal*. Often in a fortnight many ascites cases improve considerably. It is to be used in gradually increasing doses until the desired diuretic and purgative effect is obtained. (H. C. Sen—*Original Researches in the Treatment of Topical Diseases with Indigenous Drugs, p.p. 97-98*).

खदिरः

Acacia catechu

खदिरः, गायत्री–*Acacia catechu*, Mimosa catechu, Roxb., **सोमवल्कः**–*M. sama*, Roxb., *Acacia polycantha*, Willd. **विट्खदिरः**–*Acacia farnesiana*, Prain., **वल्लीखदिरः**–*Mimosa dumosa*. **खदिरसारः, खादिरः**–Catechu.

अन्वर्थसंज्ञा–खदिरस्य–"दन्तधावनः", "कण्टकी", "वक्रकण्टः", "बालपत्रः", "कुष्ठारिः", "मेध्यः", "रक्तसारः"। सोमवल्कस्य– "श्वेतसारः", "नेमिवृक्षः", "कार्मुकः," "पथिद्रुमः" "कुञ्जकण्टकः"। विट्खदिरस्य– "काम्बोजी", "मरुजः", "बहुसारः"। खदिरभेदाः–खदिरः, सोमवल्कः, ताम्रकण्टकः, विट्खदिरः, अरिः, वल्लीखदिरः। गुणाः– खदिरः स्याद्रसे तिक्तो हिमपित्तकफास्त्रनुत्। कुष्ठामकासकण्डूतिकृमिदोषहरः स्मृतः॥ खदिरः कृमिकुष्ठघ्नः कफरेतो-विशोषणः। 'श्वेतस्तु' खदिरस्तिक्तः शीतपित्तकफापहः॥ रक्तदोषहरश्चैव कण्डूकुष्ठविनाशनः। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ खदिरस्तु रसे तिक्तः शीतः पित्तकफापहः। पाचनः कुष्ठकासा-स्त्रशोफकण्डूव्रणापहः॥ श्वेतस्तु खदिरस्तिक्तः कषायः कटुरुष्णकः। कण्डूतिभूतकुष्ठघ्नः कफवातव्रणापहः॥ 'ताम्रकण्टकस्य' गुणाः– कटूष्णो रक्तखदिरः कषायो गुरुतिक्तकः। आमवातास्त्रवातघ्नो व्रणभूतज्वरापहः॥ 'विट्खदिरः' कटूरुष्णस्तिक्तो रक्तव्रणोत्थदोषहरः। कण्डूतिविषविसर्पज्वरकुष्ठोन्मादभूतघ्नः॥ 'अरिः' कषायकटुका तिक्ता रक्तार्त्तिपित्तनुत्। कटुकः खादिरः सारस्तिक्तोष्णः कफवातहृत्॥ व्रणकण्ठामयघ्नश्च रुचिकृद्दीपनः परः। राजनिघण्टुः॥ खदिरः

शीतलो दन्त्यः कण्डूकासारुचिप्रणुत्। तिक्तः कषायो मेदोघ्नः कृमिमेहज्वरव्रणान्॥ श्वित्रशोथामपित्तास्रपाण्डुकुष्ठकफामयान्। वह्निमान्द्यमतीसारं प्रदरञ्च विनाशयेत्॥ 'इरिमेदः' (विट्खदिरः) कषायोष्णो मुखदन्तगदास्रजित्। हन्ति कण्डूविषश्लेष्म-कृमिकुष्ठविषव्रणान्॥ शोथातिसारकासांश्च विसर्पञ्चाप्यसृग्दरम्। 'कदरो' विशदो वर्ण्यो मुखरोगकफास्रजित्॥ भावप्रकाशः॥ इरिमेदस्य 'निर्यासो' मधुरस्तु बलप्रदः। धातुवृद्धिकरश्चैव मुनिभिः सम्प्रभाषितः॥ 'वल्लीखदिरक'स्तिक्तः कटुश्चोष्णः कषायकः। रसेऽम्लः श्वासकासघ्नः पित्तरक्तत्रिदोषजित्॥ निघण्टुरत्नाकरः॥ खदिरः कुष्ठविसर्पमेहपित्तकफापहः। राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) कुष्ठे खदिरसारः–"...खदिरसारस्य। ...इति षट्कषाययोगाः कुष्ठघ्नाः निर्द्दिष्टाः"। (चि. ७ अ.)। (२) कृमिकुष्ठे खदिरत्वक्काष्ठे–"पानाहारविधाने प्रसेचने धूपने प्रदेहे च। ...विशिष्यते कुष्ठहृत् खदिरः" (चि. ७ अ.)। (३) व्रणशोधने खदिरत्वक्काष्ठे–"त्रिफला खदिरः ...कषायाः शोधना मताः"। (चि. १३ अ.)। (४) वातजकासे खादिरः–"पिबेत् खदिरसारं वा मदिरादधिमस्तुभिः" (चि. २२ अ.)। चरकः॥ (१) सर्वेषु कुष्ठेषु खदिरत्वक्काष्ठे–"दिदृक्षुरन्तं कुष्ठस्य खदिरं कुष्ठपीडितः। सर्वथैव प्रयुञ्जीत स्नानपानाशनादिषु॥" (चि. ९ अ.)। (२) शनैर्मेहे खदिरत्वक्काष्ठे–"शनैर्मेहिनं खदिरकषायम्"। (चि. ११ अ.)। (३) क्षौद्रमेहे खदिरत्वक्काष्ठे–"क्षौद्रमेहिनं खदिरक्रमुककषायम्" (चि. ११ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) रक्तपित्ते खदिरपुष्पम्–"खदिरस्य...। पुष्पचूर्णन्तु मधुना लीढ्वा चारोग्यमश्नुते॥" (रक्तपित्त-चि.)। (२) स्वरभेदे खदिरत्वक्काष्ठे–"तैलाक्तं स्वरभेदे वा खदिरं धारयेन्मुखे"। (स्वरभेद-चि.)। (३) विस्फोटे खदिरत्वक्काष्ठे–"...खदिरेन्द्रयवाम्बु वा। विस्फोटान्नाशयत्याशु वायुर्जलधरानिव॥" (विसर्पविस्फोट-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) दन्तरोगे खदिरत्वक्काष्ठे– "खदिरस्य तथा क्वाथो...। ...दन्तरोगनिवारणः॥" (चि. ४५ अ.)। (२) स्थावरविषप्रतिषेधे खदिरमूलत्वक्–"खदिरस्य च मूलञ्च तथा निम्बफलानि च। उष्णोदकेन पीतानि जयेयुस्तत्क्षणाद्विषम्॥" (चि. ५५ अ.)। हारीतः॥

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– खादिरः, रक्तसारः, गायत्री, दन्तधावनः, कण्टकी, बहुशल्यः याशिकः। हि.– खैर, खयर। बं.– खयेरगाछ, खदिर। म.– खेर, गुखेर, खैरियो। क.– केथिन खैरे, कगालिमर। ते.– चण्डचेट्टु। द्रा.– काशुकहि। ता.– वादेलई वाडेलम्। ले.– Acacia catechu (एकेशिय कैटच्यू), Mimosa catachu Roxb. (मिमोसा कैटच्यू)।

खैर की अन्वर्थ संज्ञा– दन्तधावनः, कण्टकी, वक्रकण्टः, बालपत्रः, कुष्ठारिः, मेध्यः, रक्तसारः। **सोमवल्क की अन्वर्थ संज्ञा–** श्वेतसारः, नेमिवृक्षः, कार्मुकः, पथिद्रुमः, कुञ्जकण्टकः। **विट्खदिर की अन्वर्थ संज्ञा–** काम्बोजी, मरुजः, बहुसारः। **खैर के भेद–** खदिरः, सोमवल्कः, ताम्रकण्टकः, विट्खदिरः, अरिः, वल्लीखदिरः।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार– खैर रस में तिक्त रस है तथा शीत-पीत, कफ विकार एवं रक्त विकार को दूर करता है। यह कुष्ठरोग, आमविकार, कास, कण्डू तथा क्रिमि विकार को दूर करता है। खैर क्रिमि रोग एवं कुष्ठ रोग को नष्ट करता है। कफ, रेतस (वीर्य) का शेषण करता है। **श्वेत खदिर** तिक्त रस वाला है तथा

शीत, पित्त तथा कफ विकार को दूर करता है, रक्त विकार को दूर करता है और कण्डू एवं कुष्ठ रोग को नष्ट करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- खैर तिक्तरस वाला है, शीतल है और पित्त विकार एवं कफ विकार को दूर करता है। यह पाचन है और कुष्ठ रोग, कास, रक्त विकार, शोथ, कण्डू तथा व्रण को दूर करता है। **श्वेत खदिर** तिक्त तथा कषाय रस वाला है, कटु है तथा उष्ण है। यह कण्डू, भूतग्रह तथा कुष्ठ रोग को नष्ट करता है, कफ विकार, वात विकार एवं व्रण को दूर करता है। **ताम्र कण्टक** (रक्तखदिर) कटु रस, कषाय रस तथा तिक्त रस वाला, उष्ण एवं गुरु है। यह आमवात, वात रक्त तथा वात रोग को नष्ट करता है और व्रण तथा भूत ज्वर को नष्ट करता है। **विट् खदिर** कटु तथा तिक्त रस वाला एवं उष्ण है और यह रक्त विकार एवं व्रणजन्य दोष को दूर करता है। इनके अतिरिक्त यह कण्डू, विष विकार, विसर्प, ज्वर, कुष्ठ, उन्माद तथा भूत ग्रह को शान्त करता है। **अरिः (खदिरभेद)** कषाय, कटु तथा तिक्त रस वाला है, और रक्त विकार एवं पित्त विकार को दूर करता है। खैर (खदिर) कटु तथा तिक्त रस वाला है और उष्ण तथा दस्तावर है एवं कफ विकार, वात विकार को दूर करता है। यह व्रण तथा कण्ठ रोग को नष्ट करता है तथा रुचिकारक एवं उत्तम जाठराग्निदीपक है।

भावप्रकाश के अनुसार- खैर शीतल, दांत के लिए हितकर है तथा कण्डू, कास तथा अरुचि को दूर करता है। यह तिक्त तथा कषाय रस वाला है और मेदोवृद्धि रोग का नाश करने वाला और क्रिमिरोग, प्रमेह, ज्वर, व्रण, श्वित्र रोग, शोथ, आम वात, पित्त विकार, रक्त विकार, पाण्डु रोग, कुष्ठ रोग, कफ विकार, मन्दाग्नि, अतिसार तथा प्रदर रोग को नष्ट करता है। **इरिमेद (विट्खदिर)** कषाय रसवाला तथा उष्ण है और यह मुख रोग, दन्त रोग तथा रक्त विकार को दूर करता है। यह कण्डू, विष विकार, कफ विकार, क्रिमि रोग, कुष्ठ रोग, व्रण, शोथ, अतिसार, कास, विसर्प तथा प्रदर का नाश करता है। **कदर (खदिरभेद)** विशद, वर्णकारक, मुख रोग, कफविकार तथा रक्त विकार को दूर करता है।

निघण्टुरत्नाकर के अनुसार- **इरिमेद (खदिर भेद)** का निर्यास (गोद) मधुर है तथा बल कारक है। यह धातुवर्द्धक है ऐसा मुनियों ने कहा है। **वल्ली खदिर** तिक्त, कटु तथा कषाय रस वाला है तथा उष्ण है, रस में अम्ल रस है और यह श्वास तथा कास को नष्ट करता है तथा पित्त विकार, रक्त विकार तथा त्रिदोष को शान्त करता है।

राजवल्लभ के अनुसार- कुष्ठ रोग, विसर्प रोग, प्रमेह, पित्त विकार तथा कफ विकार को दूर करता है।

वैद्यक शास्त्र के अनुसार खैर का प्रयोग-

(१) कुष्ठ रोग में खदिरसार का प्रयोग- खैरसार के छः कषाय योग कुष्ठनाशक कहे गये हैं। (च.चि. अ.७)। **(२) कृमि-कुष्ठ में खदिर त्वक् तथा काष्ठ का प्रयोग**- पान तथा आहार-विधान, प्रसेचन, प्रधूपन एवं प्रदेह में खदिर विशेष कर कुष्ठ को दूर करने वाला है। (च.चि.अ.७)। **(३) व्रणशोधन में खैर की छाल तथा काष्ठ का प्रयोग**- त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला) तथा खैर का क्वाथ व्रणशोधक कहे गये हैं। (च.चि. अ.१३)। **(४) वातज कास में खैर का प्रयोग**- वातज कास में मदिरा, दही या मस्तु (दही के तोड़) के साथ पान करे। (च.चि.अ.२२)। **(१) सभी प्रकार के कुष्ठ रोग में खैर की छाल तथा काष्ठ का प्रयोग**- कुष्ठ रोग का नाश करने वाला, कुष्ठरोग से पीड़ित व्यक्ति खैर का खान-पान तथा स्नान आदि में सर्वथा प्रयोग करे। (सु.चि.अ.९)। **(२) शनैः मेह में खैर की छाल तथा काष्ठ का प्रयोग**- शनैर्मेह के रोगी को खैर का कषाय पान कराये। (सु.चि.अ.२१)। **(३) क्षौद्र मेह में खैर की छाल तथा काष्ठ का प्रयोग**- क्षौद्रमेह का रोगी खैर

तथा सुपारी का कषाय पान करे। (सु.चि.अ.११)। **(१) रक्त पित्त में खदिर पुष्प का प्रयोग**- रक्त पित्त में खैर के पुष्प का चूर्ण मधु के साथ चाटकर मनुष्य रक्त पित्त रोग से मुक्त हो जाता है। (चक्र.रक्त-पित्त चि.)। **(२) स्वरभेद में खैर की छाल तथा काष्ठ का प्रयोग**- स्वर भेद में खैर की छाल या लकड़ी को तैल में भिंगोकर मुख में धारण करे। (चक्र.स्वरभेद चि.)। **(३) विस्फोट में खदिर की छाल तथा काष्ठ का प्रयोग**- खैर तथा इन्द्रयव का क्वाथ सेवन करने से या प्रक्षालन करने से शीघ्र ही विस्फोट का नाश होता है जैसे वायु जल की धारा को नष्ट करता है। (चक्र.विसर्प विष्फोट चि.)। **(१) दन्तरोग में खैर की छाल तथा काष्ठ का प्रयोग**- खैर का क्वाथ मुख में धारण करने से दन्त रोग दूर होता है। (हारीत-संहिता चि.अ.४५) **(२) स्थावर विष के प्रतिषेध में खैर के मूल के छाल का प्रयोग**- खैर के मूल की छाल तथा नीम के फल के चूर्ण को गरम जल के साथ पान करने से शीघ्र ही स्थावर विष जन्य विकार का नाश होता है। (हारीत अं. ५५)।

Constituents—Catechu tannic acid 35 p.c., catechu acid or catechin catechu red gum, puercetin and ash.

Actions and uses—Powerful astringent stronger than kino, anti-periodic and digestive. Its action is due to the tannic acid it contains. It is a powerful astringent to the mucous membranes, given in dyspepsia attended with pyrosis, and also diarrhoea in children in dysentery, intermittent fever and scurvy; as a gargle in hoarseness of voice and sorethroat. Locally as a dusting powder hypertrophied relaxed tonsils, ulcerated and spongy gums, as a gargle in salivation and as an injection in leucorrhoea and to control passiva haemorrhages. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 184).

खर्जूरी

Phoenix sylvestris, Roxb.

खर्जूरी–*Phoenix sylvestris*, Roxb., राजखर्जूरी, द्वीप्या (पिण्ड-खर्जूरी), सुलेमानी, छोहारा–*Phoenix dactylifera*, Roxb. भूखर्जूरी–*Phoenix acculls*, *P. farinifera*, Roxb.

अन्वर्थसंज्ञा–खर्जूर्याः–"खरस्कन्धा", "दुरारोहा", "स्वादुमस्तका", "यवनेष्टा"। पिण्डखर्जूर्याः–"मधुस्त्रवा", "फलपुष्पा", "हयभक्ष्या"। सुलेमान्याः–"मृदुला", "दलहीनफला"। क्षतक्षयापहं हृद्यं शीतलं तर्पणं गुरु। रसे पाके च मधुरं 'खर्जूरं' रक्तपित्तजित्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ 'खर्जूरी' तु कषाया च पक्वा गौल्यकषायका। पित्तघ्नी कफदा चैव कृमिकृद्वृष्यवृंहणी॥ "पिण्डखर्जूरिकायुग्मं" (पिण्डखर्जूरी राजखर्जूरी च) गौल्यं स्वादे हिमं गुरु। पित्तदाहार्त्तिश्वासघ्नं श्रमहृद्वीर्यवृद्धिदम्॥ अन्यच्च-दाहघ्नी मधुराऽस्त्रपित्तशमनी तृष्णार्त्तिदोषापहा। शीता श्वासकफ- श्रमोदयहरा सन्तर्पणी पुष्टिदा। वह्नेर्मान्द्यकरी गुरुर्विषहरा हृद्या च दत्ते बलं स्निग्धा वीर्यविवर्द्धनी च कथिता 'पिण्डाख्यखर्जूरिका॥ मधुखर्जूरी मधुरा वृष्या सन्तापपित्तशान्तिकरी। शिशिरा च जन्तुकरी बहुवीर्यविवर्द्धनं तनुते। भूखर्जूरी मधुरा शिशिरा च विदाहपित्तहरा॥ राजनिघण्टुः॥ खर्जूरीत्रितयं (भूमिखर्जूरी पिण्डखर्जूरी छोहारा च) शीतं मधुरं रसपाकयोः। स्निग्धं रुचिकरं हृद्यं क्षतक्षयहरं गुरु॥ तर्पणं रक्तपित्तघ्नं पुष्टिविष्टम्भशुक्रदम्। कोष्ठमारुतहृद्बल्यं वान्तिवातकफापहम्॥ ज्वरातिसारक्षुत्तृष्णाकासश्वासनिवारकम्। मदमूर्च्छामरुत्पित्तमद्योद्भृतगदान्तकृत्॥ महतीभ्यां गुणैरल्पा

'स्वल्पखर्जूरिका' स्मृता। 'खर्जूरीतरुतोयन्तु' मदपित्तकरं भवेत्॥ वातश्लेष्महरं रुच्यं दीपनं बलशुक्रकृत्। नारिकेलस्य तालस्य खर्जूरस्य 'शिरांसि' तु। कषायस्निग्धमधुरवृंहणानि गुरूणि च॥ 'सुलेमानी' श्रमभ्रान्तिमदमूर्च्छास्त्रपित्तहृत्॥ भावप्रकाशः॥ क्षतक्षयापहं हृद्यं शीतलं तर्पणं गुरु। रसे पाके च मधुरं खर्जूरं रक्तपित्तजित्॥ सुश्रुतः-(सू. ४६ अ.)। मधुरं वृंहणं वृष्यं खर्जूरं गुरु शीतलम्। क्षयेऽभिघाते दाहे च वातपित्ते च तद्धितम्॥ चरकः- (सू. २७ अ.)।

वैद्यके व्यवहारः-हिक्कासु खर्जूरमध्यम्-"खर्जूरमध्यं मागध्यः...। मधुद्वितीया कर्त्तव्यास्ते हिक्कासु विजानता॥" (उ. ५० अ.) सुश्रुतः॥ रक्तपित्ते खर्जूरम्-"...खर्जूरगोस्तनाः। मधुना घ्नन्ति संलीढा रक्तपित्तं पृथक् पृथक्॥" (रक्तपित्त-चि.)। चक्रदत्तः॥

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- खर्जूरी। हि.- खजूर, देशी खजूर। बं.- खजूर गाछे। म.- शिन्दी। कं.- इचुली, करिइचुल। ते.- इण्टा चेट्टु। गु.- खजूरी। फा.- तमरसतव, खुरभाय हिन्दी। अ.- खुरभातर। अं.- Wild date (वाइल्ड डेट)। ले.- Phoenix sylvestris. Roxb.

खर्जूरी की अन्वर्थ संज्ञा- खरस्कन्धा, दुरारोहा, स्वादुमस्तका, यवनेष्टा। **पिण्ड खर्जूरी की अन्वर्थ संज्ञा-** मधुस्रवा, फलपुष्पा, हयभक्ष्या। **सुलेमानी की अन्वर्थ संज्ञा-** मृदुला, दलहीनफला।

गुण-दोष-

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- खर्जूर क्षत तथा क्षय रोग को दूर करने वाला, हृदय को बल देने वाला, शीतल, तृप्ति कारक तथा गुरु है। यह रस तथा पाक में मधुर है और रक्तपित्त को दूर करता है।

राज निघण्टु के अनुसार- खर्जूर कषाय रस वाली और पकी हुई खर्जूरी गले के लिए हितकर कषाय रस वाली है। यह पित्त नाशक, कफप्रद, क्रिमिकारक, वीर्यवर्द्धक तथा बलवर्द्धक है।

दोनों प्रकार की पिण्ड खर्जूर- पिण्ड खर्जूरी तथा राज खर्जूरी, गले के लिए हितकर, स्वाद में शीतल तथा गुरु है और पित्त, दाह विकार तथा श्वास को नाश करने वाली है तथा श्रम को दूर करने वाली एवं वीर्यवर्द्धक है।

अन्यत्र भी- खजूर दाह नाशक है, मधुर रसवाली है तथा रक्त-पित्त को शान्त करने वाली है और प्यास पीड़ा तथा दोषों को शान्त करने वाली है। यह शीतल है, श्वास, कफ विकार, थकावट को दूर करने वाली है, संतर्पण तथा पुष्टि कारक है। **पिण्डाख्य खर्जूरिका के गुण-** पिण्ड खर्जूरी जाठराग्नि को मन्द करती है, गुरु है, विष नाशक है, हृदय को बल देने वाली है, बलवान बनाती है, स्निग्ध है तथा वीर्यवर्द्धक कही गयी है। **मधु खर्जूरी के गुण-** मधु खर्जूरी मधुर, वीर्यवर्द्धक, संताप तथा पित्त को शान्त करने वाली, शीतल, जन्तु कारक है तथा अधिक वीर्य को बढ़ाने वाली है। **भूखर्जूरी के गुण-** भूखर्जूरी मधुर तथा शीतल है और विदाह एवं पित्त को दूर करती है।

भावप्रकाश के अनुसार- खर्जूरी त्रितय (भूमि खर्जूरी, पिण्ड-खर्जूरी तथा छोहाड़ा) शीतल है तथा रस तथा विपाक में मधुर है, स्निग्ध है, रुचि कारक है, हृदय को बल देने वाला है तथा क्षत एवं क्षय रोग को दूर करने वाला है और गुरु है। यह तृप्तिकारक है, रक्त पित्त का नाश करने वाला है, पुष्टि कारक है, विष्टम्भ कारक है तथा शुक्रवर्द्धक है। यह कोष्ठगत वायु को दूर करता है। हृदय को बल देता है तथा वमन, वात विकार एवं कफ विकार को दूर करता है। यह ज्वर, अतिसार, भूख, प्यास, कास तथा श्वास का निवारण करता है, मद,

मूर्च्छा, वात, पित्त, मद्यजन्य विकार का नाश करता है। बड़े खर्जूरी की अपेक्षा खर्जूरिका के अल्प गुण होते हैं। खजूर वृक्ष का जल मदकारक तथा पित्त कारक होता है। नारियल, ताड़, तथा खजूर के सिर का भाग वात कफ को दूर करने वाला, रुचि कारक, दीपक, बल एवं शुक्र को बढ़ाने वाला है। यह कषाय रस वाला, स्निग्ध, मधुर, बलवर्द्धक तथा भारी होता है। सुलेमानी, श्रम, भ्रम, मद, मूर्च्छा तथा रक्त पित्त को दूर करता है।

सुश्रुत के अनुसार- खजूर क्षत रोग, क्षय रोग को दूर करने वाला, हृदय को बल देने वाला, शीतल, तर्पण तथा गुरु है। यह रस तथा विपाक में मधुर है। (सु.सू.अ.४६)।

चरक के अनुसार- खजूर मधुर, बलवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक, गुरु तथा शीतल है। यह क्षय रोग में, अभिघात में, दाह में तथा वात पित्त में हितकर है। (च.सू.अ.२७)।

वैद्यक शास्त्र में खजूर का प्रयोग-

हिक्का में खजूर के मध्य का प्रयोग- खर्जूर का मध्य भाग तथा पीपर इन दोनों को मधु के साथ विद्वान चिकित्सक हिक्का रोग में प्रयोग करे। (सु.अ.अ.५०)।

रक्त पित्त में खजूर का प्रयोग- खजूर तथा छोहाड़ा को शहद के साथ चाटने से (अलग-अलग चाटने से) रक्त-पित्त नष्ट होता है। (चक्र.रक्त-पित्त चि.)।

Constituents—Tannin, extractive, mucilage, insoluble matters and lime.

Actions and uses—Khajur is nutritive, tonic and diuretic; used as dessert. Kharaka is used as an ingredient in various aphordisiac and tonic confections. Boiled with milk it is given during convalescence from fevers and small-pox. The juice or toddy obtained from the stem is a good diuretic. A spirit known as Khajura-no-daru (lagbi) is obtained by distilation of the fruits. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 626).

गणिकारिका

Premna spinosa, Roxb.

गणिकारिका, तर्कारी, वैजयन्ती, अग्निमन्थः—*Premna spinosa, Roxb.,* **क्षुद्राग्निमन्थः**—*Premna serratifolia, Linn.*

अन्वर्थसंज्ञा—"तनुत्वचा", "गन्धपुष्पा", "गन्धपत्रा"। तर्कारी कटुरुष्णा च तिक्तानिलकफापहा। शोफश्लेष्माग्निमान्द्यार्शोविड्बन्धाऽऽध्माननाशनी॥ 'अग्निमन्थद्वयञ्चैव तुल्यं' वीर्यरसादिषु। तत्प्रयोगानुसारेण योजयेत् स्वमनीषया॥ राजनिघण्टुः॥ तर्कारी कटुका तिक्ता तथोष्णाऽनिलपाण्डुजित्। शोथश्लेष्माग्निमान्द्यामविबन्धांश्च विनाशयेत्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ अग्निमन्थः श्वयथुनुद्वीर्योष्णः कफवातहृत्। पाण्डुनुत् कटुकस्तिक्तस्तुवरो मधुरोऽग्निदः॥ भावप्रकाशः॥ गणिकारी तु शोथघ्नी हिता वातविकारिणाम्। राजवल्लभः॥ लघ्वग्निमन्थस्य गुणाः प्रोक्ता वृद्धाग्निमन्थवत्। विशेषाल्लेपने चोपनाहे शोफे च पूजितः॥ निघण्टुरत्नाकरः॥

वैद्यके व्यवहारः—अर्शःसु अग्निमन्थः—"अग्निमन्थस्य... पत्राणि। जलेनोत्क्वाथ्य शूलार्त्तं स्वभ्यक्तमवगाहयेत्॥" (चि. ९ अ.)। चरकः॥ (१) इक्षुमेहे गणिकारिका—"इक्षुमेहिनं वैजयन्तीकषायम्"

(चि. ११ अ.)। सुश्रुतः॥ वातव्रणे गणिकारिकामूलम्– "मातुलुङ्गाग्निमन्थौ च... काञ्जिकेन च। ...लेपो वातव्रणे हितः" (चि. ३५ अ.)। हारीतः॥ (१) वसामेहे गणिकारिकामूलम्– "अग्निमन्थकषायन्तु वसामेहे प्रयोजयेत्" (प्रमेह-चि.)। (२) शीतपित्ते गणिकारिकामूलम्– "अग्निमन्थभवं मूलं पिष्टं पीतञ्च सर्पिषा। शीतपित्तोदर्दकोठान् सप्ताहादेव नाशयेत्॥" (शीतपित्तोदर्द-चि.)। (३) स्थौल्ये गणिकारिकामूलम्– "स्थौल्यनुत् स्यादग्निमन्थरसो वापि शिलाजतु॥" (स्थौल्य-चि.)। चक्रदत्तः॥

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– अग्निमन्थः, जया, श्रीपर्णी, गणिकारिका। हि.– अरणी, अगेथु, गभियारी। बं.– गणिरे। मा.– अरणी। म.– टांफला, थारेएरण। गु.– अरणी, एरण। क.– नरुवला। ता.– इरु मै मुल्लई। मा.– चामारि। ते.– नेलीचेट्टू। द्रा.– तरुंगलै। ले.– Premna integrifolia (प्रीम्ना इन्टेग्रीफोलिया)।

अन्वर्थ संज्ञा– तनुत्वचा, गन्धपुष्पा, गन्धपत्रा।

गुण-दोष–

राजनिघण्टु के अनुसार– अरणी कटु तथा तिक्त रस वाली एवं उष्ण है और यह वातविकार एवं कफ विकार को दूर करने वाली है। यह शोथ, कफज रोग, अग्निमान्द्य, अर्शः, विड्विबन्ध तथा आध्मान का नाश करने वाली है। दोनों प्रकार के अग्निमन्थ (अरणी) वीर्य एवं रस आदि में तुल्य गुणवाले हैं। उसका प्रयोग के अनुसार अपनी बुद्धि से विचार कर प्रयोग करे।

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार– तर्कारी (अरणी) कटु तथा तिक्त रस वाली एवं उष्ण है और वात विकार तथा पाण्डु रोग को दूर करने वाली है। यह शोथ, कफज विकार, मन्दाग्नि, आम विबन्ध का नाश करती है।

भावप्रकाश के अनुसार– अग्निमन्थ (अरणी) शोथ का नाश करने वाली, उष्ण वीर्य है और कफ एवं वात को दूर करती है। यह पाण्डु रोग को दूर करने वाला कटु तथा तिक्त रस वाला, कषाय रस वाला तथा मधुर है।

राजवल्लभ के अनुसार– गणिकारी (अरणी) शोथनाशक तथा वात रोगियों के लिए हितकर है।

राजनिघण्टु के अनुसार– अग्निमन्थ लघु तथा वृद्ध अग्निमन्थ के समान गुण वाला है। इसका प्रयोग विशेष कर लेप तथा उपनाह के लिए होता है और शोथ रोग में प्रशस्त है।

वैद्यक शास्त्र के अनुसार अरणी का प्रयोग–

अर्श रोग में अग्निमन्थ का प्रयोग– अरणी के पत्र को जल के साथ क्वाथ कर अर्श शूल से पीड़ित व्यक्ति को लेप कर स्नान कराये। (च.चि.अ.९)।

(१) इक्षुमेह में गणिकारिका का प्रयोग– इक्षुमेह रोगी के लिए वैजयन्ती (अरणी) के क्वाथ का प्रयोग करे। (सु.चि.अ.११)।

वातज व्रण में गणिकारिका के मूल का प्रयोग– मातलुंग तथा अग्निमन्थ के मूल को काञ्जी के साथ पीसकर वात व्रण में लेप करना हितकर है। (हा.स.चि.अ.३५)।

(१) वसामेह में गणिकारिका (अरणी) मूल का प्रयोग– अग्निमन्थ कषाय का वसामेह में प्रयोग करे। (चक्र. प्रमेह चि.)। **(२) शीत पित्त में गणिकारिका का प्रयोग**– अग्निमन्थ के मूल को पीस कर घी के साथ

पान करने से शीत पित्त, उदर्द तथा कोष्ठ रोगों का एक सप्ताह में नाश होता है। (चक्र.शीतपित्त चि.)। (३) **स्थौल्य में गणिकारिका के मूल का प्रयोग**- अग्निमन्थ का रस तथा शिलाजीत मिलाकर पान करना स्थूलता को दूर करता है। (चक्र. स्थौल्य- चि.)।

Constituents—A resin, a bitter alkaloid and tannin.

Actions and uses—Stomachic, alterative and tonic. The infusion of the leves is used in eruptive fevers, colic and flatulence; the decoction of the root is given in Gonorrhoea during convalescence from fevers, also in Rheumatism and Neuralgia. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 472). **Ainslie** states that the root has a worm bitter taste and agreeable smell, and is prescribed in decoction as a gentle cordial and stomachic in fevers. **Rheede** calls the plant Apeel, and notices the use of a decoction of the leaves for flatulence. **Atkinson** states that the leaves rubbed with pepper are administered in colds and fevers, and that externally a decoction of the whole plant is used in Rheumatism and Neuralgia." (*Dymock*, Part III., p. 67).

गम्भारी

Gmelina Arborea, Linn.

श्रीपर्णी, काश्मर्यः—*Gmelina arborea, Linn.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा—"सुदृढत्वचा", "स्थूलत्वचा", "क्षीरिणी", "कृष्णवृन्ता", "महाकुसुमिका", "पीतपुष्पा", "पीतफला", "स्निग्धपर्णी"। गुणप्रकाशिका संज्ञा—"वातहा"। श्रीपर्णी स्वरसे तिक्ता गुरूष्णा रक्तपित्तजित्। त्रिदोषश्रमदाहार्त्तिज्वरतृष्णाविषाञ्जयेत्॥ अन्यच्च—श्रीपर्णी स्वादु तिक्ता च रक्तपित्तज्वरापहा। काश्मर्यं 'कुसुमं' वृष्यं बल्यं पित्तास्त्रनाशनम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ काश्मरी कटुका तिक्ता गुरूष्णा कफशोफनुत्। त्रिदोषविषदाहार्त्तिज्वरतृष्णास्त्रदोषजित्॥ राजनिघण्टुः॥ काश्मरी तुवरा तिक्ता वीर्य्योष्णा मधुरा गुरुः। दीपनी पाचनी मेध्या भेदिनी भ्रमशोषजित्॥ दोषतृष्णाऽऽमशूलार्शोविषदाहज्वरापहा। तत् 'फलं' वृंहणं वृष्यं गुरु केश्यं रसायनम्॥ वातपित्ततृषारक्त-क्षयमूत्रविबन्धनुत्। स्वादु पाके हिमं स्निग्धं तुवराम्लविशुद्धिकृत्॥ हन्याद्दाहतृषावातरक्तपित्तक्षतक्षयान्। भावप्रकाशः॥ गम्भारिका'फलं' ग्राहि सतिक्तं मधुरं गुरु। केश्यं रसायनं मेध्यं शीतलं दाहपित्तजित्॥ राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) रक्तातिसारे गम्भारीफलम्–"काश्मर्याः फलयूषो वा किञ्चिदम्लः सशर्करः"। (चि. १० अ.)। (२) गर्भे शुष्के शुष्यति बाले च गम्भारीफलम्–"गर्भे शुष्के तु वातेन बालानाञ्चापि शुष्यताम्। सिताकाश्मर्यमधुकैर्हितमुत्थापने पयः॥" (चि. २८ अ.)। (३) वातरक्ते गम्भारीत्वक्– "सिद्धं (तैलं) मधुककाश्मर्यरसैर्वा वातरक्तनुत्॥" (चि. २९ अ.)। चरकः॥ दाहतृष्णान्विते पित्तज्वरे गम्भारीफलम्–"...काश्मर्यस्याथवा पुनः। ...कषायैः शर्करायुतैः। सुशीतैः शमयेत्तृष्णां प्रवृद्धां दाहमेव च॥" (उ. ३९ अ.)। सुश्रुतः। टीका– "यद्यपि काश्मरीफलमवलिखितं तथापि काश्मरीफलमज्जा गृह्यते अत्यन्तपित्तहरत्वात्"–डल्वणः। (१) रक्तपित्ते गम्भारीफलम्–"पक्वोदुम्बरकाश्मर्य...। मधुना घ्नन्ति संलीढा रक्तपित्तं पृथक् पृथक्॥"

(रक्तपित्त-चि.)। (२) शीतपित्ते गम्भारीफलम्–"गम्भारिकाफलं पक्वं शुष्कमुत्स्वेदितं पुनः। क्षीरेण शीतपित्तघ्नं खादितं पथ्यसेविना॥" (शीतपित्तादि-चि.)। चक्रदत्तः॥ अङ्गुलिवेष्टे गम्भारीपत्रम्– "काश्मर्याः सप्तभिः पत्रैः कोमलैः परिवेष्टिताः। अङ्गुलिवेष्टकः पुंसां ध्रुवमाशु प्रशाम्यति॥" भावप्रकाशः॥ पतितयोः पयोधरयोः गम्भारीत्वक्–"श्रीपर्णीरसकल्काभ्यां तैलं सिद्धं तिलोद्भवम्। तत्तैलं तूलके न्यस्य स्तनयोः परिधारयेत्॥ पतितावुत्थितौ स्त्रीणां भवेयातां पयोधरौ। गजकुम्भसमाकारावुन्नतौ परिमण्डलौ॥" वङ्गसेनः॥

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– गम्भारी, भद्रपर्णी, श्रीपर्णी, मधुपर्णिका, काश्मरी। हि.– गम्भारि, खम्भारि, कुम्भरे, गम्भार। म.– शिवण गम्भारी। क.– सीवनी। गु.– सीवनी, सीवन, सवन। ते.– साल्लाङ्गे, वुटी चटे, गम्भारि, पेगुमुड़ढ़ा। ता.– गुमड़ी, कुम्भी। मा.– कुम्भेरन। लें.– Gmelina Arborea.

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा– सुदृढत्वचा, स्थूलत्वचा, क्षीरिणी, कृष्णवृन्ता, महाकुसुमिका, पीतपुष्पा, स्निग्धपर्णी। **गुण प्रकाशिका संज्ञा**- वातहा।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- श्रीपर्णी (गम्भारी) तिक्त रस वाली, गुरु तथा उष्ण है और रक्त पित्त को दूर करने वाली है। त्रिदोष (वात-पित्त-कफ), श्रम (थकावट), दाह, पीड़ा, ज्वर, प्यास तथा विष विकार को जीत लेता है और भी श्रीपर्णी स्वादिष्ट, तिक्त रस प्रधान है तथा रक्तपित्त एवं ज्वर को दूर करती है। गम्भारी का फूल वीर्यवर्द्धक, बलवर्द्धक, पित्त विकार तथा रक्त विकार का नाश करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- गम्भारी कटु तथा तिक्त रस प्रधान, गुरु एवं उष्ण वीर्य है और कफ विकार एवं शोथ को दूर करती है; इनके अतिरिक्त त्रिदोष (वात-पित्त-कफ) विकार, विष दोष, दाह पीड़ा, ज्वर, प्यास तथा रक्त विकार को जीत लेती है।

भावप्रकाश के अनुसार- गम्भारी कसैला, तिक्त रस प्रधान, उष्ण वीर्य, मधुर तथा गुरु है, यह दीपन, पाचन, मध्य, दस्तावर तथा भ्रम एवं शोथ को जीत लेती है। यह त्रिदोष, प्यास, आमशूल, अर्श विकार, विष विकार, दाह तथा ज्वर को दूर करती है। गम्भारी का फल बलवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक, गुरु, बालों के लिए हितकर तथा रसायन है। यह वात, पित्त, प्यास, रक्त-विकार, क्षय रोग, मूत्र विकार तथा विबन्ध को दूर करता है। यह पाक में स्वादिष्ट, शीतल वीर्य, स्निग्ध, कसैला तथा अम्ल विकार को शुद्ध करता है। इनके अतिरिक्त यह दाह, प्यास, वात रक्त, पित्त विकार, क्षत रोग तथा क्षय रोग को नष्ट करता है।

राज वल्लभ निघण्टु के अनुसार- गम्भारी का फल ग्राही, तिक्त रस प्रधान, मधुर तथा गुरु है। यह बालों के लिए हितकर, रसायन, मेधावर्द्धक तथा शीतल है और दाह एवं पित्त विकार को जीत लेता है।

वैद्यक शास्त्र में प्रयोग-

(१) रक्तातिसार में गम्भारी फल का प्रयोग- गम्भारी के फल का यूष या थोड़ा अम्ल यूष शक्कर मिलाकर पान कराये। (च.चि.अ.१०)। **(२) गर्भ के सूख जाने पर या बालक के सूख जाने पर गम्भारी के फल का प्रयोग**- वात दोष के द्वारा गर्भ के सूख जाने पर तथा बालक के सूखा रोग हो जाने पर मिश्री, गम्भारी फल तथा मधु मिलाकर प्रयोग करना हितकर है और यह दूध बढ़ाने में भी हितकर है। (च.चि.अ.२८)। **(३) वातरक्त**

में गम्भारी छाल का प्रयोग- मुलेठी का कल्क तथा क्वाथ के साथ या गम्भारी के छाल रस के साथ सिद्ध तैल वात रक्त को दूर करता है। (च.चि.अ.२९)।

दाह तृष्णा युक्त पित्तज्वर में गम्भारि फल का प्रयोग- दाह तथा प्यास युक्त पित्त ज्वर में गम्भारी के फल का प्रयोग या उसके कषाय का प्रयोग शक्कर मिलाकर तथा शीतल कर पान करने से बढ़ी हुई प्यास तथा दाह शान्त होता है। (सु.उ.अ.३९)। **सुश्रुत डल्वण टीका के अनुसार-** यद्यपि गम्भारी के फल का प्रयोग लिखा गया है फिर गम्भारी की मज्जा का ग्रहण करते हैं; क्योंकि गम्भारी फल की मज्जा प्रवृद्ध पित्त विकार को दूर करती है। (डल्वण टीका)।

(१) रक्तपित्त में गम्भारी फल- पका गूलर का फल तथा गम्भारी फल मधु के साथ सेवन करने से अथवा अलग-अलग शहद के साथ चाटने से रक्त-पित्त का नाश होता है। (चक्र.रक्त-पित्त चिकित्सा)। **(२) शीत पित्त में गम्भारी फल का प्रयोग-** पका गम्भारी का सूखा फल स्वादित कर तथा दूध के साथ सेवन करने तथा पथ्य सेवन करने से शीतादि रोग नष्ट होते हैं। (च.शीतपित चिकित्सा)।

अङ्गुली वेष्टक में गम्भारी के पत्र का प्रयोग- गम्भारी के मुलायम सात पत्रों के अंगुली पर लपेटने पर पुरुषों का अंगुली वेष्टक रोग अवश्य ही शीघ्र शान्त हो जाता है। (भावप्रकाशः)।

स्तनों के शिथिल होने पर गम्भारी के छाल का प्रयोग- गम्भारी के त्वक् के रस तथा कल्क के साथ विधिवत् सिद्ध तिल का तैल रूई में लिप्त कर स्तनों के ऊपर धारण करने से स्त्रियों के गिरे हुए शिथिल स्तन उठ जाते हैं। स्तन हाथी के गण्ड स्थल के समान उन्नत मण्डल वाले होते हैं। (वंगसेन)।

Constituents—The root contains a yellow viscid oil, resin, an alkaloid, a trace of Benzoic acid, and ash free from manganese; the fruit contains butyric and tartaric acids, an alkaloid, saccharine matter, resin and a trace of tannin.

Actions and uses—Demulcent, stomachic, tonic, refrigerant and laxative. The root bark is given in Fevers, Indigestion and Anasarca. With liquorice it is given to increase the secretion of milk in women. The juice of the leaves is demulcent and given in Gonorrhoea; other properties are similar to those of Arani. The fruits are bitter and cooling and given in Fever and burning heat of the body. The bark is used to regulate fermentation of toddy. The wood is used for making artificial limbs, stethescopes & c. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 470).

गुग्गुलुः

Amyris Commiphora, Roxb.

गुग्गुलुः, पलङ्कषा, पुरः–*Amyris commiphora, Roxb. Balsamodendron mukal.*

अन्वर्थसंज्ञा–गुग्गुलोः–"मरुदेश्यः", "कालनिर्यासः", "महिषाक्षः"। कणगुग्गुलोः– "गन्धराजः", "स्वर्णकणः", "सुरसः"। भूमिजस्य–"दुर्गाह्लादः"। सुगन्धिः सुलघुः सूक्ष्मस्तीक्ष्णोष्णः कटुको रसः। कटुपाकः सरो हृद्यो गुग्गुलुः स्निग्धपिच्छिलः॥ स 'नवो' वृंहणो वृष्यः पुराणस्त्वपकर्षणः। तैक्ष्णौष्ण्यात् कफवातघ्नः सरत्वात् मलपित्तनुत्॥ सौगन्ध्यात् पूतिकोष्ठघ्नः सौक्ष्मात् चानलदीपनः। सुश्रुतः (चि. ५ अ.)। गुग्गुलुः पिच्छिलः प्रोक्तः कटुस्तिक्तः कषायवान्। वर्ण्यः स्वर्यो लघुः सूक्ष्मो

रूक्षो वातवलासजित्॥ अन्यच्च—गुग्गुलुः प्रथितः स्निग्धः सरोष्णोऽथ कफानिल। वस्तिमेदो-व्रणान्मेहशोफभूतविकारजित्॥ गुग्गुलुर्विशदस्तीक्ष्णः कषायः पिच्छिलः कटुः। वर्ण्यः स्वर्यो लघुर्भेदी स्निग्धो वातवलासजित्॥ स नवो वृंहणो वृष्यः पुराणस्त्वतिलेखनः। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ गुग्गुलुः कटुतिक्तोष्णः कफमारुतकासजित्। कृमिवातोदरप्लीहशोफार्शोघ्नो रसायनः॥ कणगुग्गुलुः कटूष्णः सुरभिर्वातनाशनः। शूलगुल्मोदराऽऽध्मानकफघ्नश्च रसायनः॥ गुग्गुलुर्भूमिजस्तिक्तः कटूष्णः कफवा नित्। उमाप्रियश्च भूतघ्नो मेध्यः सौरभ्यदः सदा॥ राजनिघण्टुः॥ 'महिषाक्षो' 'महानीलः' 'कुमु :' 'पद्म' इत्यपि। 'हिरण्यः' पञ्चमो ज्ञेयो गुग्गुलोः पञ्चजातयः॥ भृङ्गाञ्जनसवर्णस्तु 'महिषाक्ष' इति स्मृतः। 'महानीलस्तु' विज्ञेयः स्वनामसमलक्षणः॥ 'कुमुदः' कुमुदाभः स्यात् 'पद्मो' म णिक्यसन्निभः। 'हिरण्याक्षस्तु' हेमाभः पञ्चानां लिङ्गमीरितम्॥ महिषाक्षो महानीलो गजेन्द्राणां हितावुभौ। हयानां कुमुदः पद्मः स्वस्त्यारोग्यकरी परी॥ विशेषेण मनुष्याणां कनकः परिकीर्त्तितः। अभावान्महिषाक्षश्च मतः कैश्चिन्नृणामपि॥ गुग्गुलुर्विशदस्तिक्तो वीर्योष्णः पित्तलः सरः। भग्नसन्धानकृद् वृष्यः कफवातव्रणापची॥ मेदोमेहाश्मवातांश्च क्लेदकुष्ठाममारुतान्। पीडकाग्रन्थिशोफार्शः-गण्डमालाक्रिमीन् जयेत्॥ माधुर्याच्छमयेद्वातं कषायत्वाच्च पित्तहा। तिक्तत्वात् कफजित्तेन गुग्गुलुः सर्वदोषहा॥ स नवो वृंहणो वृष्यः पुराणस्त्वतिलेखनः। स्निग्धः काञ्चनसङ्काशः पक्वजम्बूफलोपमः॥ नूतनो गुग्गुलुः प्रोक्तः सुगन्धिर्यस्तु पिच्छिलः। शुष्को दुर्गन्धिकश्चैव त्यक्तप्रकृतवर्णकः॥ पुराणः स तु विज्ञेयो गुग्गुलुर्वीर्यवर्जितः। अम्लं तीक्ष्णमजीर्णञ्च व्यवायं श्रममातपम्। मद्यं दोषन्त्यजेत् सम्यग् गुणार्थी पुरसेवकः॥ जायन्ते पुरपादपा मरुभुवि ग्रीष्मेऽर्कसन्तापिता। शीतार्त्ता शिशिरेऽपि गुग्गलुरसं मुञ्चन्ति ते पञ्चधा। हेमाभं महिषाक्षतुल्यमपरं सत्पद्मरागोपमम्। भृङ्गाभं कुमुदद्युतिञ्च विधिना ग्राह्या 'परीक्षा' ततः॥ वह्नौ ज्वलन्ति तपने विलयं प्रयान्ति क्लिद्यन्ति कोष्णसलिले पयसः समानाः। ग्राह्याः शुभाः परिहरेच्चिरकालजातानङ्गारवर्णसमपूयविगन्धवर्णान्॥ भावप्रकाशः॥ गुग्गुलुर्दीपनस्तिक्तः सकषायो रसायनः। कटुर्मेदोऽनिलश्लेष्मकुष्ठघ्नः स्रंसनो लघुः॥ सुस्वादः पीडकाघ्नश्च सोष्णश्च स्पर्शशीतलः। वर्ण्यः स्वर्यः कटुः पाके रूक्षस्तीक्ष्णोऽग्निदीपनः॥ क्लेदमेहापचीग्रन्थिशोफ-क्रिमिविनाशनः। स्निग्धः काञ्चनसङ्काशः पक्वजम्बूफलोपमः॥ नूतनो गुग्गुलुः प्रोक्तः सुगन्धिश्चापि पिच्छिलः। पुराणः शुष्को दुर्गन्धी मलानां नापकर्षकः॥ राजवल्लभः।

वैद्यके व्यवहारः—उदररोगे गुग्गुलुः—"शिलाजतु विधानेन गुग्गुलुं वा प्रयोजयेत्" (चि. १८ अ.)। चरकः॥ (१) ऊरुस्तम्भे गुग्गुलुः— "मूत्रैर्वा गुग्गुलुं श्रेष्ठम्" (चि. ५ अ.)। (२) शोथे गुग्गुलुः—"गुग्गुलुं वा मूत्रेण" (चि. २३ अ.)। (३) कर्णदौर्गन्ध्ये गुग्गुलुः—कर्णदौर्गन्ध्ये धूपनं श्रेष्ठमुच्यते" (उ. २१ अ.)। सुश्रुतः। श्वासे गुग्गुलुः—"गुग्गुलुं वा...। ...घृतप्लुतम्॥" (चि. ४ अ.)। वाग्भटः। गृध्रस्यां गुग्गुलुः—"रास्नायास्तु पलञ्चैकं कर्षान् पञ्च च गुग्गुलोः। सर्पिषा गुड़िकां कृत्वा स्वदेहा गृध्रसीहराम्"। (वातव्याधि-चि.)। (२) क्रोष्टुकशीर्षे गुग्गुलुः—"गुग्गुलुं क्रोष्टुशीर्षे च गुडू-चीत्रिफलाम्भसा" (वातव्याधि-चि.)। (३) विद्रधौ गुग्गुलुः—"गुग्गुलुं मूत्रयुक्तं वा विद्रधौ कफसम्भवे" (विद्रधि-चि.)। चक्रदत्तः।

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– गुग्गुलुः, देवधूपः, जटायुः कौशिकपुरः। हि.– गुगल, गूगर। बं.– गुग्गुलु। क.– इडबोल। ते.– गुग्गिलगु चेट्टू, महिषाक्षी। द्रा.– गुग्गुलु। ता.– मैशाक्षी, गुक्कल। फा.– दोवज हुदान, वूयज, हूजा। अ.– मुश्किले अर्जक। अं.– Indian lelium (इन्डियन लेलियम)। ले.– Balsamodendron mukul (बालसामोडेण्ड्रोन मुकुल)।

गुग्गुलु की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा– मरुदेश्यः, कालनिर्य्यासः, महिषाक्षः। **कण गुग्गुलुकी अन्वर्थ संज्ञा**– गन्धराजः, स्वर्णकणः, सुरसः। **भूमिज गुग्गुलु की अन्वर्थ संज्ञा**– दुर्गाह्लादः।

गुण-दोष–

सुश्रुत के अनुसार– गुग्गुल सुगन्धित, लघु, सूक्ष्म, तीक्ष्ण, उष्ण वीर्य तथा कटु रस प्रधान है। यह पाक में कटु रस प्रधान, सारक, हृदय को बल देने वाला, स्निग्ध तथा पिच्छिल होता है। नया गुग्गुल बलवर्द्धक तथा वीर्यवर्द्धक होता है। पुराना गुग्गुलु कर्षण करने वाला होता है, तीक्ष्ण तथा उष्ण होने से कफ तथा वातनाशक है, सारक होने से मल एवं पित्त को दूर करता है, सुगन्धी होने से पूति कोष्ठक का नाश करता है ओर सूक्ष्म होने से जाठराग्नि दीपक है। (सु.चि.अ.५)।

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार– गुग्गुल पिच्छिल कहा गया है। यह कटु रस, तिक्तरस तथा कषाय रसवाला है। यह वर्ण को बढ़ाने वाला, स्वर को ठीक रखने वाला, हल्का, सूक्ष्म तथा रूक्ष है और यह वात एवं कफ को दूर करता है। इसके अतिरिक्त गुग्गुलु स्निग्ध है, सारक है और उष्ण है। यह कफ विकार, वात विकार, वस्ति रोग, मेदो रोग, व्रण, प्रमेह, शोथ तथा भूतवाधा को दूर करता है। गुग्गुलु विशद है, तीक्ष्ण है, कषाय रस प्रधान है, पिच्छिल है, कटु रस वाला है, वर्णवर्द्धक तथा स्वरवर्द्धक है, हल्का है, मलभेदक है, स्निग्ध है और वातकफ को दूर करता है। नवीन गुग्गुलु बलवर्द्धक एवं वीर्य वर्द्धक है और पुराना गुग्गुलु अधिक लेखन करने वाला है।

राज निघण्टु के अनुसार– गुग्गुल कटु तथा तिक्त रस प्रधान तथा उष्ण है और कफ विकार, वात विकार एवं कास को दूर करता है। यह कृमि रोग, वात रोग, उदर रोग, प्लीहा वृद्धि, शोथ तथा अर्श रोग को नष्ट करता है और रसायन है। **कण गुग्गुलु** कटु रस प्रधान, ऊष्ण तथा सुगन्धित है और वात का नाश करता है। यह शूल, गुल्म रोग, उदर रोग, आध्मान रोग तथा कफ का नाश करता है तथा रसायन है। **भूमिज गुग्गुलु** तिक्त तथा कटु रस प्रधान है और उष्ण है तथा कफ एवं वात का नाश करता है। यह उमा का प्रिय है, भूत वाधा नाशक है, मेधावर्द्धक है और सर्वथा सुगन्धवर्द्धक है।

भावप्रकाश के अनुसार– महिषाक्ष (गुग्गुलु), महानील, कुमुद, पद्म तथा पाँचवा हिरण्यगुग्गुल होता है। इसकी ये पांच जातियाँ हैं। मृग राज तथा अंजन के वर्ण का गुग्गुलु महिषाक्ष कहलाता है, महानील गुग्गुल अपने नाम के अनुसार अधिक नील वर्ण का होता है। कुमुद नामक गुग्गुलु कुमुद के वर्ण का होता है। पद्म नामक गुग्गुलु माणिक्य के समान वर्ण वाला होता है। हिरण्याक्ष नामक गुग्गुलु हेम के समान वर्ण वाला होता है। ये पाँचों प्रकार के गुग्गुलु के स्वरूप हैं। महिषाक्ष गुग्गुलु तथा महानील गुग्गुलु गजेन्द्र (हाथी) के लिए हितकर है। कुमुद नामक गुग्गुलु घोड़ों के लिए हितकर है। पद्म नामक गुग्गुलु कल्याण कारक तथा आरोग्य कारक है। हिरण्याक्ष (कनक) नामक गुग्गुलु विशेषकर मनुष्यों के लिए हितकर है। हिरण्याक्ष गुग्गुलु न मिलने पर महिषाक्ष नामक गुग्गुल मनुष्यों के लिए हितकर है, ऐसा कुछ लोगों का कहना है। गुग्गुलु विशेष तीक्ष्ण तथा उष्ण वीर्य है ओर पित्तवर्द्धक तथा दस्तावर है। यह भग्नसन्धान कारक, वीर्यवर्द्धक तथा कफ, वात विकार, व्रण एवं अपची रोग का नाश करता है, इनके अतिरिक्त मेदो रोग, प्रमेह, पथरी रोग, वात रोग, क्लेद, कुष्ठ रोग तथा आम वात,

पिडिका, ग्रन्थि, शोथ, अर्श, गण्डमाला तथा कृमिरोग को जीत लेता है। यह मधुर रस होने से वात रोग को शान्त करता है, कषाय रस होने से पित्त विकार को दूर करता है, तिक्त रस होने से कफ को दूर करता है। अत: गुग्गुलु सभी दोषों को दूर करने वाला है। नया गुग्गुलु बलवर्द्धक तथा वीर्यवर्द्धक है और पुराना गुग्गुलु अधिक लेखन करने वाला है, स्निग्ध है, कुछ काञ्चन के समान है और कुछ जामुन के फल के समान है। नूतन गुग्गुल सुगन्धित कहा गया है और पिच्छिल है। शुष्क गुग्गुल दुर्गन्धित होता है और यह अपने प्राकृतिक वर्ण त्याग देता है। पुराना गुग्गुलु उस को कहते हैं जो वीर्य रहित गुग्गुल होता है। गुग्गुल के गुण को चाहने वाला व्यक्ति अम्ल रस प्रधान द्रव्य, तीक्ष्ण पदार्थ, अजीर्ण भोजन, व्यवाय (मैथुन), परिश्रम, धूप सेवन तथा मद्यपान अच्छी तरह छोड़ दे। गुग्गुल के पेड़ मरूभूमि में उत्पन्न होते हैं। वे ग्रीष्म ऋतु में सूर्य से संतप्त होकर तथा शिशिर ऋतु में शीत से संतप्त होकर गुग्गुल के रस को छोड़ते हैं। वे पांच प्रकार के होते हैं। हमाम, महिषाक्ष तुल्य, पद्मराग के समान वर्णवाला, मृगराज के वर्ण के समान तथा कुमुद की कान्ति के समान उत्पन्न होते हैं। उनका विधिपूर्वक परीक्षा कर ग्रहण करे। ये गुग्गुल आग में जलते हैं, धूप में पिघल जाते हैं, गरम जल में डालने पर गल जाते हैं और जल में दूध के समान वर्ण वाले हो जाते हैं, ऐसे प्रशस्त गुग्गुल का ग्रहण करे और पुराने गुग्गुल को त्याग दे। जो गुग्गुल अंगार के वर्ण के समान, पूय के गन्ध तथा वर्ण के समान हो उसको ग्रहण न करे।

राजवल्लभ निघण्टु के अनुसार- गुग्गुलु जाठराग्नि दीपक है तिक्त तथा कषाय रस प्रधान है और रसायन है। यह कटुरस वाला, मेदो रोग, वात रोग, कफ विकार तथा कुष्ठ का नाश करने वाला है। यह स्रंसन तथा लघु है, स्वादिष्ट है, पिडिका नाशक है, ऊष्ण है तथा स्पर्श में शीतल है। यह वर्ण को शुद्ध करने वाला, स्वर को बढ़ाने वाला, पाक में कटुपाकी, तीक्ष्ण, उष्ण तथा जाठराग्नि दीपक है। यह क्लेद, प्रमेह, अपची रोग, ग्रन्थि विकार, शोथ तथा क्रिमि रोग का नाश करने वाला है। गुग्गुलु सोने के वर्ण के समान है तथा पके जामुन के फल के समान होता है। नूतन गुग्गुल सुगन्धित पिच्छिल कहा गया है। पुराना गुग्गुलु सूखा, दुर्गन्धियुक्त तथा दोषों को दूर नहीं करता है।

वैद्यक शास्त्र में गुग्गुलु का प्रयोग-

उदर रोग में गुग्गुलु का प्रयोग- उदररोग में गुग्गुलु का प्रयोग होता है जैसे शिलाजीत प्रयोग किया जाता है। उसी के अनुसार गुग्गुलु का भी प्रयोग करें। (च.चि.अ.१८)।

(१) ऊरुस्तम्भ में गुग्गुलु का प्रयोग- ऊरुस्तम्भ में गोमूत्र के साथ गुग्गुलु का सेवन करना श्रेष्ठ है। (सु.चि.अ.५) **(२) शोथ में गुग्गुल का प्रयोग-** शोथ में गोमूत्र के साथ गुग्गुल का प्रयोग करे। (सु.चि.अ.२३)।

कर्ण दुर्गन्ध में गुग्गुलु का प्रयोग- कर्ण दुर्गन्ध में गुग्गुलु का धूप देना उत्तम है। (सु.अ.२१)।

श्वास रोग में गुग्गुल का प्रयोग- श्वास रोग में गुग्गुलु को घृत में मिलाकर प्रयोग करे। (वाग्भट चि. अ.४)।

(१) गृध्रसी रोग में गुग्गुलु का प्रयोग- रास्ना एक पल (५० ग्राम) तथा गुग्गुलु पांच कर्ष (५०० ग्राम) दोनों को गुड़ के साथ मिलाकर गुटिका बनाये और भक्षण करे। यह गृध्रसीवात (स्याटिका) को दूर करता है। (चक्र.वात-व्या.चि.)। **(२) क्रोष्टु शीर्ष में गुग्गुलु का प्रयोग-** क्रोष्टु-शीर्ष रोग में गुग्गुलु का गुडूची का रस तथा त्रिफला के क्वाथ के साथ सेवन करे। (चक्र.वातव्याधि चि.)। **(३) विद्रधि में गुग्गुलु का प्रयोग-** कफजन्य विद्रधि में गुग्गुलु का गोमूत्र में मिलाकर पान करे। (चक्र.विद्रधि चि.)।

Constituents—Volatile oil, gum resin, bitter principle.

Actions and uses—Alterative, demulcent, stimulant, tonic, anti-spasmodic and emmenagogue, often combined with aromatics and given in Rheumatism, scrofulous affections and nervous diseases. The compound pill known as **Yogaraja Gugala**, used as an alterative in enlarged glands in the neck, chronic Rheumatism, Dropsy, Gleet & c. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 179).

गुञ्जा

Abrus Precatorius, Willd.

रक्तगुञ्जा, चुड़ामणिः, उच्चटा। श्वेतगुञ्जा, श्वेतकाम्भोजी, सितोच्चटा–*Abrus precatorius*, Willd.

अन्वर्थसंज्ञा–रक्तगुञ्जायाः–"कृष्णचूडिका", "रक्तिका", "भिल्लभूषणी"। गुञ्जा रूक्षा तथा तिक्ता वीर्योष्णा च प्रकीर्त्तिता। विषवैषम्यजन्तुघ्नी रोगग्रामभयापहा॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ 'गुञ्जाद्वयञ्च' शीतोष्णं 'बीजं' वान्तिकरं 'शिफा'। शूलघ्नी विषहृत् 'पत्रं' वश्ये श्वेता प्रशस्यते। धन्वन्तरीयनिघण्टू राजनिघण्टुश्च॥ गुञ्जाद्वयन्तु केश्यं स्यात् वातपित्तज्वरापहम्। मुखशोषभ्रमश्वास-तृष्णामदविनाशनम्। नेत्रामयहरं वृष्यं बल्यं कण्डूव्रणं हरेत्। क्रिमीन्द्रलुप्तकुष्ठानि रक्ता च धवलाऽपि च॥ भावप्रकाशः॥ मुखशीर्षरुजं वातं भ्रमं श्वासं तृषान्तथा। ...बीजं वान्तिकरं मतम्। शूलनाशकरं मूलं पर्णञ्च विषनाशनम्॥ वृहन्निघण्टुरत्नाकरः।

वैद्यके व्यवहारः– (१) इन्द्रलुप्ते गुञ्जापत्रम्–"प्रच्छयित्वावगाढं वा गुञ्जाकल्कैर्मुहुर्मुहुः। लेपयेदुपशान्त्यर्थं...॥" (चि. २० अ.)। (२) वाजीकरणार्थं गुञ्जाफलम्–"उच्चटाचूर्णमप्येवं क्षीरेणोत्तममिष्यते" (चि. २६ अ.)। (३) पूतनाग्रहप्रतिषेधार्थं गुञ्जाफलम्–"...गुञ्जाञ्च धारयेत्" (उ. ३२ अ.)। सुश्रुतः॥ कर्णपालीविवर्द्धनार्थं गुञ्जाफलम्– "गुञ्जाचूर्णयुते जाते माहिषे क्षीर उद्गतम्। नवनीतं तदभ्यङ्गात् कर्णपालीविवर्द्धनम्॥" (कर्णरोग-चि.)। चक्रदत्तः॥ पित्तविसर्पे गुञ्जापत्रम्– "...पित्तविसर्पे वा गुञ्जापत्रैस्तु लेपनम्"। (चि. ३३ अ.)। हारीतः॥ दारुणके गुञ्जाफलम्– "गुञ्जाफलैः शृतं तैलं भृङ्गराजरसेन च। कण्डूदारुणहृत् कुष्ठकपालव्याधिनाशनम्॥" भावप्रकाशः॥ (१) गण्डमालायां गुञ्जाफलमूले–"गुञ्जाफलमूलैस्तैलं तोये द्विगुणिते पचेत्। नस्याभ्यङ्गेन शमयेद्गण्डमालां सुदारुणाम्॥" (गण्डमाला-चि.)। (२) गृध्रस्यां गुञ्जापत्रम्–"द्वित्रिस्थानेषु गृध्रस्यां शिरां प्रच्छन्नवेधिताम्। गुञ्जाकल्केन लिप्ता च सद्यस्त्यजति वेदनाम्॥" वङ्गसेनः।

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– गुञ्जा। **रक्तगुञ्जा**– चूर्डामणिः, उच्चटा। **श्वेतगुञ्जा**– श्वेतकाम्भोजी, सितोच्चटा। हि.– गुञ्जा, घुन्धकी, चिरमी, चिरमिटी, चोंटली, घुमची, करज़नी, रत्ती। बं.– कुच, कुञ्चे। म.– गुञ्ज, माडलवेल। क.– गुलगुञ्ज। एरडु, चणोठी, उलु विन्दे। उ.– रुच्च। गु.– कुन्दमाण। ते.– गुरुगिञ्च। फा.– चश्मे-खरुस। गु.– गुमची। अ.– एनुद्दीकद्दव। ले.– Abrus prectorius (एब्रस प्रिक्टोरियस)।

रक्तगुञ्जा की परिचय ज्ञापिका संज्ञा– कृष्णचूडिका, रक्तिका, भिल्लभूषणी।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार– गुञ्जा रूक्ष है तथा तिक्त रस प्रधान, ऊष्ण वीर्य कही जाती है। विष विकार तथा विषैले जन्तु का नाश करने वाली है तथा रोग समूह के भय को दूर करने वाली है।

धन्वन्तरि निघण्टु तथा राज निघण्टु के अनुसार– दोनों प्रकार की गुञ्जा (रक्तगुञ्जा तथा श्वेत गुञ्जा) शीत तथा ऊष्ण होती है, उसका बीज वमन कारक है। उसकी जड़ शूलनाशक है और पत्ता विष विकार को दूर करने वाला है। श्वेतगुञ्जा वशीकरण के लिए उत्तम है।

भावप्रकाश के अनुसार– दोनों प्रकार की गुञ्जा केश के लिए हितकर है तथा वात, पित्त एवं ज्वर को दूर करने वाली है। यह मुखशोष, भ्रम, श्वास, प्यास तथा मद का नाश करती है। यह नेत्र विकार को दूर करती है, वीर्य वर्द्धक है, बलवर्द्धक है तथा कण्डू एवं व्रण को दूर करती है। यह क्रीमि रोग नाशक है, इन्द्रलुप्त तथा कुष्ठरोग को दोनों प्रकार की गुञ्जा नष्ट करती हैं।

वृहन्निघण्टु रत्नाकर के अनुसार– गुञ्जा, मुख रोग, सिर रोग, वात रोग, भ्रम, श्वास रोग तथा प्यास को शान्त करती है। गुञ्जाबीज वमनकारक है। गुञ्जा की जड़ शूल नाशक है और गुञ्जा का पत्र विष नाशक है।

गुञ्जा का वैद्यक शास्त्र में प्रयोग–

(१) इन्द्र लुप्त रोग में गुञ्जा पत्र का प्रयोग– इन्द्रलुप्त रोग को अच्छी तरह पोंछकर (अपरेटकर) गुञ्जा के कल्क से इन्द्रलुप्त की शान्ति के लिए बार-बार लेप करे। (सु.चि.अ.२८)। **(२) वाजीकरण के लिए गुञ्झा फल का प्रयोग–** उच्चटा के चूर्ण का भी वाजीकरण के लिए दूध के साथ प्रयोग करे। (सु.चि.अ.२६)। (३) **पूतनाग्रह प्रतिषेध के लिए गुञ्जा फल का प्रयोग–** पूतना ग्रह से गृहीत होने पर बालक गुञ्जा फल का धारण करे। (सु.उ.अ.३२)।

कर्णपाली को बढ़ाने के लिए गुञ्जा फल का प्रयोग– भैंस के दूध में गुञ्जा फल को पका कर उसमें से निकले नवनीत (मक्खन) का अभ्यंग करने से कर्णपाली की वृद्धि होती है। (चक्र.कर्णरोग चि.)।

पैत्तिक विसर्प में गुञ्जा पत्र का प्रयोग– पित्तज विसर्प रोग में गुञ्जा पत्र का लेप करे। (हारीत चि. अ.३३)।

दारुण के रोग में गुञ्जा फल का प्रयोग– गुञ्जा फल के कल्क तथा भृंगराज के रस के साथ विधिवत् पकाया हुआ तिल का तैल लेप करने से कण्डू तथा दारुणक रोग दूर होता है और कुष्ठ कपाल रोग को नष्ट करता है। (भावप्रकाश)।

(१) गण्डमाला में गुञ्जा के फल तथा मूल का प्रयोग– गुञ्जा फल तथा गुञ्जा मूल के कल्क के साथ दुगुना जल मिलाकर तैल पाक करे। इस तैल के अभ्यङ्ग से भयंकर गण्डमाला रोग शान्त होता है। (वंगसेन, गण्डमालां चि.)। **(२) गृध्रसी रोग में गुञ्जा पत्र का प्रयोग–** गृध्रसी को दो या तीन स्थान पर पोंछकर शिरावेध करे और गुञ्जा के कल्क का लेप करे। इससे सद्यः गृध्रसी वात की वेदना शान्त होती है। (वंगसेन)।

Constituents—The seeds contains some fixed oil, arabic acid, two proteid poisons, called aphyt-albuminose and paraglobulin, closely allied to principles found in snake venom, like ricin and to proteids contained in papaw juice. The root, leaves and branches contain sugar, and glycyrrhizic acid.

Actions and uses—The seeds are harmless when eaten, but poisonous when a paste of them is applied to open wounds. Applied to the eyes they set up inflammation, oedema of the lids and ulceration of the cornea. The face and neck becomes swollen and the maxillary glands enlarged. Internally the seeds are demulcent, expectorant like liquorice; used in cough and gonorrhoea. The fresh leaves are chewed with cubebs and sugar to relieve hoarseness of voice as in sore-throat and aphthae in the mouth. In spermatorrhoea with bloody discharges, the white Abrus leaves and Henna leaves triturated with the powder of the root of holostemma rheedii with cumin seeds and sugar are given internally. With chitrakamula the paste of the leaves is applied in skin diseases as leucoderma, and also recommended as a cure for baldness over the scalp. The infusion of the seeds should be used fresh, as in a short time it decomposes and swarms with bacteria. Boric acid may be added to prevent decomposition. It is used as an application for the eyes for the cure of pannus and old granular lids. Its use should be followed by weak solution of Alum or Borax. When applied to the inner surface it produces artifical purulent ophthalmia, varying in intensity with the frequency of the applications. It is also used for the cure of lupus and unhealthy ulcers. The paste of the seeds (1 in 4) is used as a rubefacient in sciatica, stiff shoulders and paralysis. The dried roots are made use of in the same manner as liquorice root. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 181).

गुडूची

Tinospora Cordifolia

गुडूची, अमृता, छिन्नरुहा, वत्सादनी–*Tinospora cordifolia, Prain.*

अन्वर्थसंज्ञा–वल्लीगुडूच्याः–"छिन्नरुहा", "वत्सादनी", "ज्वरनाशनी"। कन्दोद्भवायाः–"पिण्डामृता", "कन्दरोहिणी", "रसायनी"। गुडूची स्वरसे तिक्ता कषायोष्णा गुरुस्तथा। त्रिदोषजन्तुरक्तार्शःकुष्ठज्वरहरा परा॥ गुडूच्यायुष्पदा मेध्या तिक्ता सङ्ग्राहिणी बला। ज्वर-तृट्पाण्डुवातासृक्छर्दिमेहत्रिदोषजित्॥ गुडूची कफवातघ्नी पित्तमेदोविशोषिणी। रक्तवातप्रशमनी कण्डूविसर्पनाशनी॥ 'कन्दोद्भवागुडूची' च कटूष्णा सन्निपातहा। विषघ्नी ज्वरभूतघ्नी वलीपलितनाशिनी॥ अन्यच्च–घृतेन वातं सगुडा विबन्धं पित्तं सिताढ्या मधुना कफञ्च। वातास्र-मुग्रं रुवुतैलमिश्रा शुण्ठ्याऽऽमवातं शमयेद् गुडूची॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ ज्ञेया गुडूची गुरुरुष्णवीर्या तिक्ता कषाया ज्वरनाशिनी च। दाहार्त्तितृष्णावमिरक्तवात-प्रमेहपाण्डुभ्रमहारिणी च॥ राजनिघण्टुः॥ गुडूची कटुका तिक्ता स्वादुपाका रसायनी। सङ्ग्राहिणी कषायोष्णा लघ्वी बल्याऽग्निदीपनी॥ दोषत्रयामतृड्दाहमेहकासांश्च पाण्डुताम्। कामलाकुष्ठवातास्रज्वरक्रिमिवमीन् हरेत्॥ प्रमेहश्वास-कासार्शःकृच्छ्रहृद्रोगवातनुत्। भावप्रकाशः॥ गुडूची ग्राहिणी बल्या त्रिदोषघ्नी रसायनी। दीपनी ज्वरतृट्छर्दिकामलावातपित्तनुत्॥ राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) रसायने गुडूची–"रसो गुडूच्यास्तु" (चि. १ अ.)। (२) विषमज्वरे गुडूची–"...गुडूच्या रसमेव वा" (चि. ३ अ.)। (३) कामलायां गुडूची–"...गुडूच्या वा रस॥ शीतं मधुयुतं प्रातः कामलार्त्तः पिबेन्नरः॥" (चि. २० अ.)। (४) पित्तात्मिकाया छर्द्यां गुडूची–"...गुडूच्या

जलं" (चि. २३ अ.)। (५) वातरक्ते गुडूची-"गुडूचीरसदुग्धाभ्यां तैलं ...वातरक्तनुत्॥" (चि. २९ अ.)। (६) स्तन्यशुद्ध्यर्थं गुडूची- "अमृतासप्तपर्णत्वक्क्वाथश्चैव सनागरम्"। (चि. ३० अ.)। चरकः॥ (१) पित्तप्रबले वातरक्ते गुडूची-"पित्तप्रबले... गुडूचीकषायं वा" (चि. ५ अ.)। (२) अर्शःसु गुडूची-"एष एव... गुडूचीषु तक्रकल्पः" (चि. ६ अ.)। (३) वातज्वरे गुडूची-"शृतशीतकषायं वा गुडूच्याः पेयमेव तु" (उ. ३९ अ.)। सुश्रुतः॥ मेहे गुडूची-"मधुयुक्तं गुडूच्या वा रसं" (चि. १२ अ.)। वाग्भटः॥ (१) बलाधानार्थं गुडूची-"अमृतायाः शतं चूर्णं वाससा परिशोधितम्। पृथक् षोडशभागाः स्युर्गुडमाक्षिकसार्पिषाम्॥ यथाग्निं भक्षयेदेतन्नरो हितमिताशनः। नास्य कश्चिद्भवेद्व्याधिर्न जरापलितं न च॥ (म. ख. १मः भा.। (२) जीर्णज्वरे गुडूची-"पिप्पली मधुसंयुक्तः क्वाथश्छिन्नोद्भवोद्भवः। जीर्णज्वरकफध्वंसी..." (ज्वर-चि.)। (३) कामलायां गुडूचीपत्रम्-"गुडूचीपत्रकल्कं वा पिबेत्तक्रेण कामली" (कामला-चि.)। भावप्रकाशः॥ (१) आमवाते गुडूची-"गुडूचीं नागरेण वा" (आमवात-चि.)। (२) ज्वरिणः शाकार्थं गुडूची-"पत्रं गुडूच्याः शाकार्थं ज्वरिताय प्रदापयेत्" (ज्वर-चि.)। (३) श्लीपदे गुडूची-"श्लीपदघ्नो रसोऽभ्यासात् गुडूच्यास्तैलसंयुतः" (श्लीपद-चि.)। (४) कुष्ठे गुडूची-"छिन्नायाः स्वरसो वापि सेव्यमाना यथाबलम्। जीर्णे घृतेन भुञ्जीत स्वल्पं यूषोदकेन वा। अतिपूतिशरीरोऽपि दिव्यरूपो भवेन्नरः।" (कुष्ठ-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) तिसृष्वपि छर्दिषु गुडूची-"कृतं गुडूच्या विधिवत् कषायं हिमसंज्ञितम्। तिसृष्वपि भवेत् पथ्यं माक्षिकेण समन्वितम्॥" (छर्दि-चि.)। (२) हृदयस्थिते वायौ गुडूची-"हृदयानिलनाशाय गुडूची मरिचान्वितम्। पिबेत् प्रातः प्रयत्नेन सम्यगुष्णाम्भसा सह॥" (वातव्याधि-चि.)। वङ्गसेनः।

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- गुडूची, मधुपर्णी, अमृता, अमृतवल्लरी, छिन्नरुहा, छिन्नोद्भवा, वत्सादिनी, जीवन्ति, तन्त्रिका, सोमा, कुण्डली, चक्रलक्षणिका, धारा, चन्द्रहासा। हि.- गुरच, गुडुच, गिलोय, जुडवेल, गुलवेलू, गिलोई। बं.- गुलच, गुरच, गिलो। म.- गरुडवेल, गरोल। गु.- गुलो, गुलवेल। क.- अमरहवल्ली, अमृतवल्ली। ते.- तिप्पतोगे, तिधातिजे, गोमुची। ता.- सिन्दिल कोदि, तिप्पतिमा। उ.- गिरुलि। द्रा.- सीदल, कुढि। म.- गुलवेला। फा.- गिई, गिलोय। अं.- गिलादे। ले.- Tinospora Cordifolia (टिनोस्पारा कार्डिफोलिया)।

वल्ली गुडूची की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा- छिन्नरुहा, वत्सादिनी, ज्वरनाशिनी। **कन्दोद्भव गुडूची की अन्वर्थ संज्ञा-** पिण्डामृता, कन्दरोहिणी, रसायनी।

गुण-दोष-

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- गुडूची तिक्त रस वाली, कषाय रसयुक्त, उष्ण वीर्य तथा गुरु है। यह त्रिदोष (वात, पित्त, कफ) विकार, क्रिमि रोग, रक्तार्श, कुष्ठरोग तथा ज्वर को अच्छी तरह दूर करने वाली है। गुडूची आयु को देने वाली, मेधावर्द्धक, तिक्त रस प्रधान तथा ग्राही है। यह ज्वर, प्यास, पाण्डु रोग, वात-रक्त विकार, वमन, प्रमेह तथा त्रिदोष का नाश करने वाली है। गुडूची कफ एवं वात को नष्ट करने वाली है, पित्त विकारादि रोग सुखाने वाली है, रक्त वात शान्त करने वाली है, कण्डू रोग तथा विसर्प का नाश करने वाली है। कन्दोद्भव कटु रस प्रधान तथा उष्ण है और सन्निपात को दूर करती है। यह विष नाशक है, ज्वर तथा भूत विकार

को दूर करने वाली है तथा वलि (मुख में झूर्री पड़ना) पलित (असमय में बाल पकना) को नष्ट करती है और भी कहा गया है कि गुडूची घृत के साथ सेवन करने से वात रोग को नष्ट करती है, गुड़ के साथ सेवन करने से विबन्ध को नष्ट करती है, मिश्री के साथ सेवन करने से पित को शान्त करती है और मधु के साथ सेवन करने से कफ का नाश करती है; ऐरण्ड तैल के साथ सेवन करने से भयंकर वात रक्त को दूर करती है। गुडूची सोंठ के साथ सेवन करने से आम वात को शान्त करती है।

राजनिघण्टु के अनुसार- गुडूची गुरु, उष्ण वीर्य, तिक्त तथा कषाय रस प्रधान है और यह ज्वर का नाश करती है। इनके अतिरिक्त यह दाह, पीड़ा, प्यास, वमन, रक्त, वात, प्रमेह, पाण्डुरोग तथा भ्रम को दूर करती है।

भावप्रकाश के अनुसार- गुडूची कटु तथा तिक्त रस प्रधान, स्वाद में मधुर, रसायन तथा ग्राही है; कषाय रस वाली, उष्ण, हल्की, बल कारक तथा जाठराग्नि दीपक है। यह तीनों दोष, आम विकार, प्यास, दाह, प्रमेह, कास, पाण्डुरोग, कामला रोग, कुष्ठ रोग, वात रक्त, ज्वर, क्रिमि रोग, वमन को दूर करती है; इनके अतिरिक्त प्रमेह, श्वास रोग, कास, अर्शरोग, मूत्रकृच्छ्र, हृदय रोग तथा वात रोग को दूर करती है।

राजवल्लभ के अनुसार- गुडूची, ग्राही, बलकारक, त्रिदोष नाशक, रसायन, जाठराग्नि दीपक तथा ज्वर, प्यास, वमन, कामला रोग एवं वात-पित्त विकार को दूर करती है।

वैद्यक शास्त्र में गुडूची का प्रयोग-

(१) रसायन में गुडूची का प्रयोग- रसायन कार्य के लिए गुडूची का प्रयोग करे। (च.चि.अ.१)। **(२) विषमज्वर में गुडूची का प्रयोग**- विषम ज्वर में गुडूची के रस का प्रयोग करे। (च.चि.अ.३)। **(३) कामला में गुडूची का प्रयोग**- कामला रोग से पीड़ित व्यक्ति शीतल गुडूची का रस मधु मिलाकर प्रातः काल पान करे। (च.चि.अ.२०)। **(४) पित्तज वमन में गुडूची का प्रयोग**- पित्तज छर्दि में गुडूची या गुडूची ज़ल प्रयोग करे। (च.चि.अ.२३)। **(५) वात रक्त में गुडूची का प्रयोग**- गुडूची का रस तथा दूध के साथ विधिवत सिद्ध तैल वात रक्त को दूर करती है। (च.चि.अ.२९)। **(६) स्तन्य शुद्धि के लिए गुडूची का प्रयोग**- गुडूची तथा छतिवन की छाल का कषाय सोंठ का चूर्ण मिलाकर प्रयोग करे। (च.चि.अ.३०)।

(१) पित्त प्रधान प्रबल वात रक्त में गुडूची का प्रयोग- प्रबल पित्तजन्य वात रक्त में गुडूची के कषाय का प्रयोग करे। (सु.चि.अ.५)। **(२) अर्श रोग में गुडूची का प्रयोग**- अर्श रोग में गुडूची के साथ तक्रका प्रयोग करे। (सु.चि.अ.६)। **(३) वात ज्वर में गुडूची का प्रयोग**- गुडूची का क्वाथ वात ज्वर में पान करे। (सु.चि. अ.३९)।

प्रमेह में गुडूची का प्रयोग- प्रमेह में शहद मिलाकर गुडूची के रस का प्रयोग करे। (वाग्भट)

(१) बलाधान के लिए गुडूची का प्रयोग- अमृता (गुडूची) का चूर्ण बनाकर वस्त्र से छान ले और उसमें सोरह भाग गुड, घृत तथा शहद मिलाकर अग्नि बल के अनुसार भक्षण करे और हितकर पौष्टिक भोजन करे। इसके सेवन करने से कोई रोग नहीं होता है और जरा तथा पलित रोग नहीं होता है। (भा.प्र.म.ख.१म:भा.)। **(२) जीर्ण ज्वर में गुडूची का प्रयोग**- गुडूची के क्वाथ में पीपर का चूर्ण तथा मधु मिलाकर सेवन करने से जीर्ण ज्वर तथा कफ नष्ट होता है। (भा.प्र.ज्वर चि.)। **(३) कामला रोग में गुडूची के पत्ते का प्रयोग**- गुडूची के पत्ते का कल्क कामला रोग से पीड़ित व्यक्ति मट्ठा के साथ पान करे। (भा. कामला चि.)।

(१) आमवात में गुडूची का प्रयोग- गुडूची का सोंठ के साथ आम वात में सेवन करे। (चक्र. आमवात

चि.)। (२) **ज्वर रोग के लिए गुडूची का प्रयोग**- ज्वर से पीडित रोगी के लिए गुडुची के पत्ते के शाक का प्रयोग करे। (चक्र.ज्वर चि.)। (३) **श्लीपद में गुडूची का प्रयोग**- तैल मिलाकर गुडूची के स्वरस का निरन्तर सेवन करने से श्लीपद रोग (फीलपाव) नष्ट होता है। (चक्र.श्लीपद चि.)। (४) **कुष्ठ रोग में गुडूची का प्रयोग**- गुडूची का स्वरस अपने अग्नि बल के अनुसार सेवन करने से तथा जीर्ण हो जाने पर घृत के साथ थोड़ा यूष तथा भात खाय। अत्यन्त दुर्गन्धित शरीर भी दिव्य रूप हो जाता है। (चक्र.कुष्ठ.चि.)।

(१) तीन प्रकार के वमन में गुडूची का प्रयोग- गुडूची का विधिवत् हिम कषाय बना कर तीनों प्रकार के वमन में पथ्य पूर्वक शहद के साथ पान करे। (वङ्गसेन, छर्दि चि.)। (२) **वायु के हृदय में स्थित होने पर गुडूची का प्रयोग**- हृदयस्थ वात की शान्ति के लिए गुडूची का मरिच का चूर्ण मिलाकर प्रातःकाल प्रयत्न पूर्वक जल से सेवन करे। (वङ्गसेन, वात चि.)।

Constitutents—The root and stem contains starchy extract, bitter principle and a trace of berberine.

Actions and uses—Fresh stem is more efficacious than the dry and is a good substitute for calumba. It is a stomachic bitter tonic, alterative, aphrodisiac, antiperiodic and demulcent, given in dyspepsia and in debility caused by repeated attacks of fever. Like peruvian barks it is a good febrifuge; used in enlarged spleen. As an alterative given in secondary Syphilis, Rheumatism, Leprosy, skin diseases, such as Impetigo, and in Jaundice. As a diuretic and demulcent it is given in dysuria in scanty high-coloured urine due to catarrh of the bladder. The juice of the stem combined with Pakanbhed and honey, is given in Gonorrhoea. The starchy extract is nutritious, la'gely used in na' ve practive in cold fevers, and seminal weakness, also in urinary affections. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., P. 31.) "Favourably spoken of by those who have tried it (*T. cordifolia*) as a tonic, antiperiodic and diuretic." (*Dymock*—Part I. P. 55).

गोक्षुरः

Tribulus Terrestris

गोक्षुरः, त्रिकण्टकः, श्वदंष्ट्रः–*Tribulus terrestris, Linn. T. lanuginosus, Linn.*

अन्वर्थसंज्ञा–"गोक्षुरः", "त्रिकण्टकः", "वनशृङ्गाटः", "कण्टफलः", "क्षुरकः", "श्वदंष्ट्रः", "चणपत्रकः"। श्वदंष्ट्रः वृंहणो वृष्यस्त्रिदोषशमनोऽग्निकृत्। शूलहृद्रोगकृच्छ्रघ्नः प्रमेहविनिवर्त्तकः॥ अन्यच्च–गोक्षुरो मूत्रकृच्छघ्नो वृष्यः स्वादुः समीरजित्। शूलहृद्रोगशमनी वृंहणो मेहनाशनः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ स्यातामुभौ गोक्षुरकौ सुश।तलौ बलप्रदौ तौ मधुरौ च वृंहणौ। कृच्छ्राश्मरीमेहविदाहनाशनौ रसायनौ तत्र वृहद्गुणः परः॥ राजनिघण्टुः॥ गोक्षुरः शीतलः स्वादुर्बलकृद्वस्तिशोधनः। मधुरो दीपनो वृष्यः पुष्टिदश्चाश्मरीहरः॥ प्रमेहश्वासकासार्शःकृच्छ्रहृद्रोगवातनुत्। त्रिकण्टशाकं वृष्यं स्यात्तिक्तं स्त्रोतोविशोधनम्॥ भावप्रकाशः॥ गोक्षुरो मूत्रकृच्छ्रघ्नो बल्यो वृष्योऽनिलापहः। तिक्तं गोक्षुरकं शाकं वृष्यं स्त्रोतोविशोधनम्॥ राजवल्लभः॥ बीजं गोक्षुरकं शीतं मूत्रलं शोथवारणम्। वृष्यमायुष्करं शुक्रमेहनुत् कृच्छ्रनाशनम्॥ आत्रेयसंहिता।

वैद्यके व्यवहार– (१) अग्र्यग्रन्थे गोक्षुरः–"गौक्षुरको मूत्रकृच्छ्रानिलहरानाम्" (सू. २५ अ.)। (२) मूत्रमार्गात् सरुजं प्रवृत्ते मूत्रे गोक्षुरः–"गोक्षुरकैः शृतं वा" (चि. ५ अ.)। (३) अश्मर्यां गोक्षुरः–"घृतं श्वदंष्ट्रास्वरसेन सिद्धम्। क्षीरेण चैवाष्टगुणेन पेयम्॥" (चि. २६ अ.)। चरकः॥ अश्मरीभेदनार्थं गोक्षुरः–"त्रिकण्टकस्य बीजानि चूर्णं माक्षिकसंयुतम्। अविक्षीरेण सप्ताहमश्मरीभेदनं पिबेत्॥" (चि. ७ अ.) सुश्रुतः॥ (१) शकृज्जे मूत्रकृच्छ्रे गोक्षुरः–"क्वाथं गोक्षुरबीजस्य यवक्षारयुतं पिबेत्। मूत्रकृच्छ्रं शकृज्जञ्च पीतः शीघ्रं विनाशयेत्॥" (मूत्रकृच्छ्र-चि.)। (२) आमवाते गोक्षुरः– "शुण्ठीगोक्षुरकक्वाथः प्रातः प्रातर्निषेवितः। सामे वाते कटीशूले पाचनं रुक्प्रणाशनम्॥" (आमवात-चि.)। चक्रदत्तः॥

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– गोक्षुरः, क्षुरकः, त्रिकण्टः, स्वादुकण्टकः, वनशृङ्गाटः। हि.– गोखरु, गोखलु, हरचिक्कार। बं.– गोक्षुरी। म.– सराटे। गु.– गोखरु। फा.– खुरेखसक, तम्वेखार खरक। अ.– वनरउत खलक, वजरूरल खरक। ले.– Tribulus Terrestris (ट्रिव्यूलस टेरेस्ट्रिस)।

गोखरु का अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा– गोखरुः, त्रिकण्टकः, वनशृङ्गाटः, कण्टपत्रः, क्षुरकः श्वदंष्ट्रः, चणकपत्रः।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार– श्वदंष्ट्र (गोखरु) बल वर्द्धक, वीर्य वर्द्धक, त्रिदोष शामक, जाठराग्नि दीपक है तथा शूल, हृदय रोग एवं मूत्रकृच्छ्र तथा प्रमेह का नाश करने वाला है। और भी-गोखरु मूत्रकृच्छ्र नाशक, वीर्य वर्द्धक, स्वादिष्ट तथा वात को जीतने वाला है। यह शूल तथा हृदय रोग को शान्त करने वाला, बल वर्द्धक तथा प्रमेह नाशक है।

राजनिघण्टु के अनुसार– दोनों प्रकार के गोखरु शीतल हैं, बलप्रद हैं, मधुर हैं तथा बलवर्द्धक हैं। यह मूत्रकृच्छ्र, पथरी, प्रमेह तथा दाह का नाश करने वाला है। इसमें रसायन का महान गुण है।

भावप्रकाश के अनुसार– गोखरु शीतल, स्वादिष्ट, बल कारक, वस्ति शोधक, मधुर, जाठराग्नि दीपक, वीर्य वर्द्धक, पुष्टिकारक तथा अश्मरी नाशक है। यह प्रमेह, श्वास रोग, कास रोग, अर्श विकार, मूत्र कृच्छ्र, हृदय रोग तथा वात को दूर करने वाला है। गोखरु का शाक वीर्य वर्द्धक, तिक्तरस प्रधान तथा स्रोतसों का विशोधन करने वाला है।

राजवल्लभ के अनुसार– गोखरु मूत्रकृच्छ्र नाशक, बल कारक, वीर्य वर्द्धक तथा वात को दूर करने वाला है। यह तिक्त रस प्रधान है तथा गोखरु का शाक वीर्य वर्द्धक तथा स्रोतसों का शोधन करने वाला है।

आत्रेय संहिता के अनुसार– गोखरु का बीज शीतल, मूत्र कारक, शोथ निवारक, वीर्य वर्द्धक, आयु कारक, शुक्र प्रमेह को दूर करने वाला तथा मूत्रकृच्छ्र नाशक है।

वैद्यक शास्त्र में गोखरु का प्रयोग–

(१) चरक के अनुसार– गोखरु मूत्रकृच्छ्र दूर करने वालों में एक है। (च.सू.अ.२५)। **(२) मूत्रमार्ग से पीड़ायुक्त मूत्र की प्रवृति होने पर गोखरु का प्रयोग–** पीडायुक्त मूत्र निकलने पर गोखरु का क्वाथ पान

करे। (३) **पथरी में गोखरु का प्रयोग**- पथरी रोग में गोखरु के स्वरस तथा कल्क के साथ आठ गुना जल मिलाकर घृत सिद्ध कर प्रयोग करे। (च.चि.अ.२६)।

अश्मरी भेदने के लिए गोखरु का प्रयोग- गोखरु के बीज का चूर्ण शहद मिलाकर भेड़ के दूध के साथ एक सप्ताह तक अश्मरी भेदन के लिए प्रयोग करे। (सु.चि.अ.७)।

(१) पुरीषजन्य मूत्र कृच्छ्र में गोखरु का प्रयोग- गोखरु के बीज का क्वाथ यवक्षार मिलाकर पान करने से पुरीष जन्य मूत्रकृच्छ्र का नाश होता है। (चक्र.मूत्रकृच्छ्र चि.)। (२) **आमवात में गोखरु का प्रयोग**- गोखरु का क्वाथ सोंठ का चूर्ण मिलाकर प्रातःकाल आमवात तथा कटि शूल में सेवन करने से आम दोष का पाचन करता है तथा पीड़ा का नाश करता है। (चक्र. आमवात चि.)।

Constituents—The extract of the powdered fruits contains an alkaloid, a resion, probaly the source of the aroma, fat and mineral matter 14 p.c.

Actions and uses—Alterative, diuretic, demulcent, and aphrodisiac. An infusion is used to releive painful micturition to increase the flow of urine, and as a vehicle for diuretic medicines in Dysuria, Gonorrhoea, urinary disorders, and for the relief of noctnrual emissions, incontinence of urine and impotence; its action closely resembles that of buchu and nva ursi. It is generally given with hyoscyamus and opium (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, part II., p. 149).

गोधापदी

Cissus Vitiginea, Linn.

गोधापदी, हंसपादी, गोधावती–Cissus Vitiginea, Linn.

पूर्वाचार्यकृतवर्णनम्–"गोधावती गोहालिया इति ख्याता" शिवदासः। हंसपादी कटूष्णा स्याद्विषभूतविनाशनी। भ्रान्त्यपस्मारदोषघ्नी विज्ञेया च रसायनी॥ राजनिघण्टुः॥ हंसपादी गुरुः शीता हन्ति रक्तविषव्रणान्। विसर्पदाहातीसारलुताभूताग्निरोहिणीः॥ भावप्रकाशः।

वैद्यके व्यवहारः– (१) मूत्राघाते गोधावतीमूलम्– "गोधावत्या मूलं क्वथितं घृततैलगोरसैर्मिश्रम्। पीतं निरुद्धमचिरादि्भनत्ति मूत्रस्य सङ्घातम्॥" (मूत्राघात-चि.)। (२) श्लीपदकोपोत्थे ज्वरे गोधावतीमूलम्– "गोधावतीमूलयुक्तां खादेन्माषेण्डरीं नरः। जयेत् श्लीपदकोपोत्थं ज्वरं सद्यो न संशयः॥" चक्रदत्तः॥

विविध भाषाओं में नाम– सं.– हंसपादी, कीटभाताः त्रिपादिका, गोधापदी। हि.– हंसपरी, हंसराज, गोधापदी, लालरंग का लज्जालु। बं.– गोयालेलता। गु.– हंसरागा। म.– लाललज्जलु। क.– नविलदि। तै.– हंसपादमु हंसपादि चेट्टु। फा.– परस्याशान। अ.– भारुलजीनन, भारुल अर्द। अं.– Maiden heir (मैडन हेयर), ले.– Adiantum Venesum (एडियण्टम वनेषम)।

परिचय ज्ञापिका संज्ञा- हंसपादी- जलभुक्तदेशे हंसपादकरा स्यात्। **शिवनिघण्टु। पूर्वाचार्यों के द्वारा हंसपादी का वर्णन**- गोधावती, गोहालिया इति स्व्यात शिवदासः।

गुण-दोष–

राजनिघण्टु के अनुसार– हंसपादी कटुरस प्रधान, ऊष्ण वीर्य है और यह भूतबाधा का नाश करती है। यह भ्रान्ति तथा अपस्मार दोष का नाश करती है तथा यह रसायन गुणवाली है।

भावप्रकाश के अनुसार– हंसपादी गुरु तथा शीतल है। यह रक्त विकार, विष विकार तथा व्रण को नष्ट करती है; इनके अतिरिक्त विसर्प, दाह, अतिसार, लूता विष, भूतबाधा तथा अग्नि रोहिणी को नष्ट करती है।

हंसपादी का वैद्यक शास्त्र में प्रयोग–

(१) चक्रदत्त के अनुसार मूत्राघात में गोधावती मूल का प्रयोग– गोधावती के मूल का क्वाथ घृत, तैल तथा गोदुग्ध में मिलाकर पान करने से मूत्राघात को नष्ट करती है। (चक्र.मूत्राघात चि.)। **(२) श्लीपद प्रकोप जन्य ज्वर में गोधावती मूल का प्रयोग–** गोधावती मूल का क्वाथ माषेण्डरी के साथ खाय। यह श्लीपद दोषजन्य ज्वर को शीघ्र ही नष्ट करती है। (चक्र.श्लीपद चि.)।

Actions and uses—The leaves are astringent. The decoction is used to check uterine and other fluxes. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 136).

गोधूमः

Triticum Vulgari

गाधुमः–*Triticum vulgari, Linn. T. stivum, Lam.*

वृष्यः शीतो गुरुः स्निग्धो जीवनो वातपित्तहा। सन्धानो वृंहणो बल्यो गोधुमः स्थैर्यकृत् सरः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ गोधूमः स्निग्धमधुरो वातघ्नः पित्तदाहकृत्। गुरुः श्लेष्मामदो बल्यो रुचिरो वीर्यवर्द्धनः॥ स्निग्धोऽन्यो लघुगोधूमो गुरुर्वृष्यः कफापहः। आमदोषकरो बल्यो मधुरो वीर्यपुष्टिदः। राजनिघण्टुः॥ सन्धानकृद्वातहरो गोधूमः स्वादुशीतलः। जीवनो वृंहणो वृष्यः स्निग्धः स्थैर्यकरो गुरुः॥ 'नान्दीमुखी' 'मधुली' च मधुरस्निग्धशीतले। चरकः–सू. २७ अ.॥ गोधूम उक्तो मधुरो गुरुश्च बल्यः स्थिरः शुक्ररुचिप्रदश्च। स्निग्धोऽतिशीतोऽनिलपित्तहन्ता सन्धानकृत् श्लेष्महरः सरश्च॥ सुश्रुतः–सू. ४६ अ.॥ गोधूमो मधुरः शीतो वातपित्तहरो गुरुः। कफशुक्रप्रदो बल्यः स्निग्धः सन्धानकृत् सरः॥ जीवनो वृंहणो वर्ण्यो व्रण्यो रूच्यः स्थिरत्वकृत्। 'मधुली' शीतला स्निग्धा पित्तघ्नी मधुरा लघुः॥ शुक्रला वृंहणी पथ्या तद्व'न्नान्दीमुखः' स्मृतः॥ भावप्रकाशः॥ गोधूमः स्थैर्यकृद्वृष्यः स्निग्धः शीतः सरो गुरुः। सन्धाता वृंहणो बल्यो जीवनो वातपित्तहा॥ चक्रपाणिः॥ गोधुमो वृंहणो बल्यो जीवनो वातपित्तहा। वृष्यो स्निग्धो गुरुः शीतः सन्धाता स्थैर्यकृत् सरः॥ राजवल्लभः॥ गुरुर्मधुरविष्टम्भी वृष्यो बल्योऽथ वृंहणः। ईषत्कषायमधुरो गोधूमः स्यात् त्रिदोषहा॥ हारीतः॥

वैद्यके व्यवहारः–अस्थिभग्ने गोधूमः–"सघृतेन... गोधूमं...। सन्धियुक्तेऽस्थिभग्ने च पिबेत् क्षीरेण मानवः॥" (भग्न-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) कफशूले जीर्णगोधूमः–"मधुना जीर्णगोधूमं कफशूले प्रयोजयेत्" (शूल-चि.)। (२) हृदामये गोधूमः–"तैलाज्यगुडविपक्वं चूर्णं गोधूमपार्थोत्थम्। पिबति पयोभुक् स भवति गतसकलहृदामयः पुरुषः॥" भावप्रकाशः॥

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– गोधूमः। हि.– गेहू, गहूम, गेहूँ। बं.– गम। मं.– गेहूं। गु.– बल, धेऊ। क.– गोधी, शोधि, गोदी। तै.– गोदुमु, गोधुम, गोधु, मतु। फा.– गंदुम। अ.– हिन्ता, हिताह, बुर्र। अं.– Wheat (ह्वीट)। ले.– Triticum Vulgari (ट्रीटिकम वुल्गेरी)।

गुण–दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार– गेहूं वीर्यवर्द्धक, शीतल, भारी, स्निग्ध तथा जीवनीय है और यह वात-पित्त को नष्ट करने वाला है। यह संधान कारक, ओज वर्द्धक, बल कारक तथा आयु को स्थिर करने वाला है।

राजनिघण्टु के अनुसार– गेहूं स्निग्ध तथा मधुर है और यह वात नाशक है और पित्त तथा दाह करने वाला है। यह गुरु, कफ विकार, मद तथा आम दोष को बढ़ाने वाला, बलकारक है, रुचि कारक है तथा वीर्य वर्द्धक है। दूसरे प्रकार का गेहूं स्निग्ध, लघु, गुरु, वीर्य वर्द्धक तथा कफ नाशक है। यह आम दोष कारक, बल कारक, मधुर, वीर्य तथा पुष्टिकारक है।

चरक के अनुसार– गेंहू संधान कारक, वात नाशक, स्वादिष्ट तथा शीतल है। यह जीवनीय, ओज वर्द्धक, वीर्य वर्द्धक, स्निग्ध, आयुस्थिर कारक तथा गुरु है। यह नान्दीमुखी, मधुली तथा मधुर, स्निग्ध तथा शीतल है। (च.सू.अ.२७)।

सुश्रुत के अनुसार– गेहूं को मधुर तथा गुरु कहा गया है, बल्य है, स्थिर है, शुक्र वर्द्धक है तथा रुचिकारक है। यह स्निग्ध है, अति शीतल है, वात तथा पित्त का नाश करने वाला है; संधान कारक है, कफ को दूर करने वाला तथा सारक है।

भाव प्रकाश के अनुसार– गेहूं मधुर रस प्रधान, शीतल, वात-पित्त नाशक तथा गुरु है। यह कफ तथा शुक्र को बढ़ाने वाला, बल कारक, स्निग्ध, संधान कारक, सारक, जीवनीय, बल वर्द्धक, वर्ण कारक, व्रण के लिए हितकर, रुचिकारक तथा आयु को स्थिर करने वाला है। मधुली गेहूं शीतल है, स्निग्ध है, पित्त नाशक है, मधु रस प्रधान तथा लघु है। यह शुक्र को बढ़ाने वाली, बल को बढ़ाने वाली तथा पथ्य है। इसी प्रकार नान्दीमुख गेहूं भी पूर्व गुणों से युक्त है।

चक्रपाणि के अनुसार– गेहूं आयु स्थिरकारक, वीर्य वर्द्धक, स्निग्ध, शीतल, सारक तथा गुरु है। यह संधान कारक, मांस वर्द्धक, बल वर्द्धक, जीवनीय है तथा वात पित्त नाशक है।

राजवल्लभ के अनुसार– गेहूं मांस वर्द्धक, बल कारक, जीवनीय, वात-पित्त नाशक, वीर्य वर्द्धक, स्निग्ध, गुरु, शीतल, संधान कारक, आयु स्थिर कारक तथा सारक है।

हारीत संहिता के अनुसार– गेहूं गुरु, मधुर, विबन्ध कारक, वीर्य वर्द्धक, बल कारक, मांस वर्द्धक, थोड़ा कषाय रस युक्त स्वादिष्ट तथा त्रिदोष नाशक है।

वैद्यक शास्त्र के अनुसार गेहूं का प्रयोग–

अस्थि भग्न में गोधूम का प्रयोग– सन्धि भग्न तथा अस्थि भग्न में गेहूं का घृत मिलाकर दूध के साथ पान करे। (चक्र.भग्न चि.)।

(१) कफज शूल में पुराने गेहूं का प्रयोग– पुराने गेहूं का विविध प्रकार से कफज शूल में प्रयोग करे।

(२) हृदय रोग में गेहूं का प्रयोग- गेहूं के चूर्ण का गुड़ मिलाकर घृत तथा तैल में पूआ पकाकर दूध के साथ पान करे। इसके सेवन से पुरुष सभी प्रकार के हृदय रोग से रहित हो जाता है।

Constituents—Wheaten flour contains all the constituents of wheat except cellulose, a part of starch, sugar and a large proportion of gluten, hence of less nutritive value than brown bread. It contains albuminoids 13.4 p.c., starch 68.4, oil 1.2, fibre 2.7, ash 1.7, free extractive 6.7, and sachhorine matter. The ash contains phosphoric acid. The flower contains nitrogenated principles chiefly gluten or vegetable fibrin, vegetable coseine and fat.

Actions and uses—Wheat starch is nutritive, restorative, demulcent and emollient. It is used by women to check profuse menstruation and in Leucorrhoea. As an emollient, it is dusted over the inflamed skin as in burns, scalds & c. It also makes an excellent binding material in bandage. The bran is used for making poultices. Starches—These are hydrocarbons found in vegetable food and represent fats in animal food. They are heat-producing agents, and do not enter into the structure or into the repair of the waste of tissues; for the well being of humane frame about 14 ozs. of hydrocarbon is necessary. In vegetable food, starch and sugar exists in four or five times the quantity of proteid material. Wheat contains starch in very large quantity. When taken in excess it delays tissue metamorphosis, deposits fat and increases the production of adipose tissue and leads to flatulence and acidity. It often produces sugar in the urine. Given in disorders of the stomach and intestines as Diarrhoea, Dysentery, in hepatic disorders, in Bright's disease, Alcoholism, gout and Rheumatism. In fevers, these carbohydrates are very useful in supporting life and in preventing starvation and exhaustion due to want of fuel food. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 646).

घृतकुमारी

Aloe Indica

कुमारी, गृहकन्या, कन्या–*Aloe indica*, Royle, *A. perfoliata,* Roxb., *A. vera* (Common Aloe). Perryi (Socotrine Aloe). *A. abyssinica* (Jaferabod Aloe).

उत्पत्तिबोधिका संज्ञा–"स्थलेरुहा"। परिचयज्ञापिका संज्ञा–"स्थूलदला", "दीर्घपत्रिका", "कण्टकप्रावृत्ता", "विपुलस्त्रवा"। गृहकन्या हिमा तिक्ता मदगन्धिकफापहा। पित्तकासविष-श्वासकुष्ठघ्नी च रसायनी॥ राजनिघण्टुः॥ कुमारी भेदिनी शीता तिक्ता नेत्रा रसायनी। मधुरा वृंहणी बल्या वृष्या वातविषप्रणुत्॥ गुल्मप्लीहयकृद्वृद्धिकफज्वरहरी हरेत्। ग्रन्थ्यग्निदग्धविस्फोट-पित्तरक्तत्वगामयान्॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) कामलायां कुमारी–"अपहरति कामलार्त्ति नस्येन कुमारीका जलं सद्यः" (कामला-चि.)। (२) गुल्मे कुमारी–"गुल्मी कुमारिकामांसं कर्षार्द्धं गोघृतान्वितम्" (गुल्म-चि.)। भावप्रकाशः॥ प्लीह्नि कुमारी–"निशाचूर्णयुतः कन्यारसः प्लीहाऽपचीहरः"। शार्ङ्गधरः॥

विविध भाषाओं में नाम–

सं.- कुमारी, घृतकुमारिका, गृहकन्या। हि.- घीकुआर, घीगुआर, कुआर पाठा, घीग्वार, क्वार पाठी। बं.-

घृतकुमारी। म.- कोरफड़, कोरकाड़ा। गु.- कुंवार। क.- लोविसर, नोविसर। ते.- पिन्नगोरिण्ड, तावकतालै। अ.- मुसम्बर, सिवसुकुतेरी ता.- कहाले। फा.- दरखते सिन्त, मुसव्वीर। यू.- फेकर। ले.- Aloe barcedense (एलोइ वार्कडेन्स)।

उत्पत्ति बोधिका संज्ञा- स्थलेरुहा। **परिचय ज्ञापिका संज्ञा-** स्थूलदला, दीर्घपत्रिका, कण्टकप्रावृत्ता, विपुलस्रवा।

गुण-दोष-

राजनिघण्टु के अनुसार- घृतकुमारी शीतल, तिक्त रस प्रधान, मदगन्धि तथा कफ नाशक है। यह पित्त विकार, कास, विष विकार, श्वास तथा कुष्ठ रोग का नाश करने वाली है तथा रसायन है।

भावप्रकाश के अनुसार- घृतकुमारी मल का भेदन करने वाली, शीतल, तिक्त रस प्रधान, नेत्र के लिए हितकर तथा रसायन है और यह मधुर रस वाली, मांस वर्द्धक, बल वर्द्धक, वीर्य वर्द्धक है तथा वात विकार एवं विष विकार को दूर करती है। यह गुल्म रोग, प्लीहा विकार, यकृत विकार तथा कफ ज्वर को हरने वाली है।

वैद्यक शास्त्र के अनुसार घृतकुमारी का प्रयोग-

कामला रोग में घृत कुमारी का प्रयोग- घृतकुमारी के रस का नस्य लेने से सद्यः कामला की पीड़ा दूर होती है। (भावप्रकाश कामला चि.)।

(१) गुल्म रोग में घृतकुमारी का प्रयोग- गुल्म रोग से पीड़ित व्यक्ति घृत कुमारी के गूदा के आधा कर्ष (५० ग्राम की मात्रा में) की मात्रा में गाय के घृत के साथ सेवन करे। **(२) प्लीहा में घृत कुमारी का प्रयोग-** घृत कुमारी का रस हल्दी का चूर्ण मिलाकर पान करने से प्लीहा को दूर करता है। (शार्ङ्गधर संहिता)।

Constitutents—Aloin; resins 30 to 50 p.c., volatile oil and ash 1 p.c., also aloetic and chrysammic acids. The odour is due to the volatile oil.

Actions and uses—Hepatic, stimulant, cathartic, emmenagogue and vermifuge; in small doses stomachic. Hepatic, tonic and astringent. It stimulates the mammae, liver and the pelvic organs, giving rise to abortion, haemorrhoids, and priapism in the male; and the milk in the female assumes a purgative quality; in large doses it is an indirect emmenagogue and cathartic. It acts chiefly on the lower half of the large intestines and especially on the rectum producing copious soft stools with some griping and pain. It diffuses into the blood and is eliminated by the mucous membranes of the colon. It is chiefly given in fevers and enlarged glands as the liver, spleen & c. It is rubbed round the naval to open the bowels in young children. It is commonly given with honey to children (newly born) to hasten expulsion of the meconium. I has a slow but certain action in constipation, dependant upon fever and debilitating diseases due to old age, to sedentary habits and to repeated pregnancies. In haemorrhoids with mucous discharges it is very useful. As an enema it is used to expell ascarides. Aloes with myrrh nuxvomica and iron is useful in amenorrhoea, hypochondriasis, atonic dyspepsia and constipation. As a local stimulant it acts favourably in skin diseases. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., pp. 609-10).

चक्रमर्दः

Cassia Alata, C. Foetida

चक्रमर्दः, एडगजः, प्रपुन्नाटः–*Cassia alata, C. foetida.*

अन्वर्थसंज्ञा–"मेषाक्षिकुसुमः", "दद्रुघ्नः", "शकुनाशनः", "दृढबीजः", "खर्जूघ्नः"। चक्रमर्दः कटूष्णः स्यात् प्रोक्तो वातकफापहः। दद्रुकण्डूहरः कान्तिसौकुमार्यकरो मतः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ चक्रमर्दः कटुस्तीव्रमेदोवातकफापहः। व्रणकण्डूतिकुष्ठार्त्तिदद्रुपामादिदोषनुत्॥ राजनिघण्टुः॥ चक्रमर्दो लघुः स्वादू रूक्षः पित्तानिलापहः। हृद्यो हिमः कफश्वासकुष्ठदद्रुक्रिमीन् हरेत्॥ हन्त्युष्णं तत्'फलं' कुष्ठकण्डूदद्रुविषानिलान्। गुल्मकासकृमिश्वासनाशनं कटुकं स्मृतम्॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः–सिध्मकुष्ठे एडगजफलम्–"एडगजसर्जरसः...। काञ्जिके युक्तन्तु पृथङ्म-तमिदमुद्वर्त्तनं क्रमशो लेपाः॥" (चि. ७ अ.)। चरकः॥ (१) गण्डमालायां चक्रमर्दमूलम्–"चक्रमर्दकमूलस्य कल्कं कृत्वा विपाचयेत्। केशराजरसे तैलं कटुकं मृदुनाऽग्निना॥ पक्त्वा शेषे विनिक्षिप्य सिन्दूर-मवतारयेत्। एतत् तैलं निहन्त्याशु गण्डमालां सुदारुणाम्॥" (२) दद्रौ चक्रमर्दबीजम्–"चक्रमर्दकबीजञ्च मूलकाम्बुप्रपेषितम्। दद्रुघ्नं लेपनं कुर्यात्...॥" (कुष्ठ-चि.)। (३) अर्द्धावभेदे चक्रमर्दबीजम्–"...अर्द्धवभेदजित्। चक्रमर्दकबीजैर्वा लेपः काञ्जिकसाधितः॥" (शिरोरोग-चि.)। वङ्गसेनः।

विविध भाषाओं में नाम– सं.– चक्रमर्दः, प्रपुन्नाटः, दद्रुघ्नः, मेषलोचनः, चक्री, पुन्नाटः। हि.– चकवड़, पवाड़, पामा, पुवनार। बं.– चकुन्दा, चाटकाटा, एडाची। म.– टांकला, तरोटा, टायकना। गु.– कुवाधियो, पवाडियो। क.– चाक्यठकरिके, हुसलगी। ता.– उवित गरमी, उशिटूगरमी। फा.– संजीसवोया। अं.– Oval leaved cassia (ओवल लीव्ड केसिया)। ले.– Cassia Obtisifolia (केशिया आब्टिसिफोलिया)।

चक्रमर्द का अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा– मेषाक्षिकुसुमः, दद्रुघ्नः, शकुनाशनः, दृढबीजः, खर्जूघ्नः।

गुण-दोष–

धन्वन्तिरि निघण्टु के अनुसार– चकवड़ कटु रस वाला तथा उष्ण कहा गया है। यह कफ वात नाशक, दाद तथा कण्डूहर, और कान्ति एवं सुकुमार कारक है।

राजनिघण्टु के अनुसार– चकवड़ कटु रस वाला, मेदो रोग तथा वात-कफ नाशक है। यह व्रण, कण्डू कुष्ठ, दाह तथा पामा आदि दोषों को दूर करता है।

भाव-प्रकाश के अनुसार– चकवड़ लघु, स्वादिष्ट, रूक्ष तथा पित्त-वात नाशक है। यह हृदय के लिए हितकर है, शीतल है और कफ विकार, श्वास रोग, कुष्ठ रोग, दाद तथा क्रिमिरोग को दूर करता है। चक्रमर्द का फल उष्ण होता है और वह कुष्ठ, कण्डू, दाद, विष विकार तथा वात विकार को नष्ट करता है; इनके अतिरिक्त गुल्म रोग, कास, क्रिमि रोग तथा श्वास रोग का नाश करता है और यह कटु रस कहा गया है।

वैद्यक शास्त्र में चक्रमर्द का प्रयोग–

सिध्म कुष्ठ में चकमर्द का प्रयोग– चक्रवड़ तथा सर्जरस को काञ्जी में मिलाकर मर्दन करना तथा लेप करना सिध्म कुष्ठ को नष्ट करता है। (च.चि.अ.७)।

(१) गण्डमाला में चकमर्द के मूल का प्रयोग– चक्रमर्द के मूल का कल्क बनाकर पकावे और उसको

भृंगराज के रस में तिल तथा सरसों का तैल विधिवत मन्दाग्नि में पकावे, इसके बाद पके हुए शेष तेल में सिन्दूर मिला दे। यह तैल भयंकर गण्ड माला को शीघ्र ही नष्ट करता है। (वंगसेन, गण्डमाला चि.)। (२) **दाद में चकवड़ बीज का प्रयोग-** चकवड़ के बीज को चकवड़ के जड़ के रस के साथ पीसकर लेप करने से दाद नष्ट होता है। (वंगसेन, कुष्ठ चि.)। (३) **अर्द्धावभेदक में चक्रमर्द बीज का प्रयोग-** चकवड़ के बीज को काञ्जी के साथ सिद्धकर लेप करने से अर्द्धावभेदक रोग नष्ट होता है।

Constituents—The seeds contain a glucosidal substance similar to emodin which agrees with chrysophanic acid in most of its properties. The leaves contain a principle similar to cathartin and a red colouring matter as in senna leaves, also mineral matters.

Actions and uses—It has a great effect as an alterative in all kinds of skin diseases accompanied with induration as leprosy, cheloid, psoriasis & c. The juice of the leaves is applied to relieve cutaneous inflammation caused by bhilamo. The seeds, mixed, with Karanja tela (*Pongamia glabra*) are used locally as an application for ring worm. With sour milk it is used externally in eczema. A paste of the root with lime juice is used for ring worm also for buboes in plague. The decoction of the leaves is aperient and given to children during teething. Locally they are used as a poultice over the boils to hasten suppuration. Lately, the seeds have been used as a substitute for coffee. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 202).

चन्दनम्

Santalum Album, Linn.

श्वेतचन्दनम्, श्रीखण्डम्, भद्रश्रीः–*Santalum album* Linn., **रक्तचन्दनम्**–*Pterocarpus santalinus* Linn. **कुचन्दनम्**– *Adenanthera pavonina* Willd.

अन्वर्थसंज्ञा–श्वेतचन्दनस्य– "गन्धराजम्", "सर्पावासम्", "गन्धसारम्"', "मलयजम्"। रक्तचन्दनस्य–"तिलपर्णम्", "प्रवालफलम्", "रक्तसारम्", "ताम्रसारम्", "क्षुद्रचन्दनम्"। कुचन्दनस्य– "रक्तकाष्ठम्", "पट्टरञ्जनम्"। कालीयकस्य–"नारायणप्रियम्", "पीतकाष्ठम्"। वर्वरिकस्य– "श्वेतम्", "निर्गन्धम्"। हरिचन्दनस्य–"महागन्धम्", "लोहितम्"॥ 'श्रीखण्डं' शीतलं स्वादु तिक्तं पित्तविनाशनम्। रक्तप्रसादनं वृष्यमन्तर्दाहापहारकम्॥ पित्तास्रविषतृड्दाहकृमिघ्नं गुरु रूक्षणम्। सर्वं सतिक्तमधुरं चन्दनं शिशिरं परम्॥ 'रक्तचन्दन'मप्याह रक्षोघ्नं तिक्तशीतलम्। रक्तोद्रेकहरं हन्ति पित्तकोपं सुदारुणम्॥ आदर्शान्तरे पठ्यते–रक्तचन्दनमेवं स्याद्वृष्योष्णं शीतलं मृदु। चक्षुष्यं रक्तपित्तघ्नं वर्ण्यं 'लोहितचन्दनम्'॥ स्वादु पाके रसे शीतं 'पतङ्गं' नातिशीतलम्। 'कुचन्दनं' तु तिक्तं स्यात् सुगन्धि व्रणरोपणम्॥ आदर्शविशेषे दृश्यते–स्वादु पाके रसे शीतं श्लेष्मलं नाति पित्तलम्। वातसाधारणे प्रोक्तं मुखरोगेषु शस्यते॥ 'कालीयकं' पवित्राढ्यं शीतलं रक्तपित्तजित्॥ 'वर्वरिकस्य' गुणाः–पित्तासृक्कफदाहघ्नं कृमिघ्नं गुरु रूक्षणम्। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ 'श्रीखण्डं'' कटुतिक्तशीतलगुणं स्वादे कषायं कियत्। पित्तभ्रान्तिवमिज्वरकृमितृषासन्तापशान्तिप्रदम्। वृष्यं वक्त्ररुजापहं प्रतनुते कान्तिं तनोर्देहिनाम्। लिप्तं सुप्तमनोजसिन्धुरमदारम्भादिसंरम्भदम्॥ 'श्रेष्ठं' कोटरकर्परोपकलितं सुग्रन्थि सद्गौरवम्। छेदे रक्तमयं तथा च विमलं पीतञ्च यद्घर्षणे। स्वादस्तिक्तकटुः सुगन्धवहलं

शीतं यदल्पं गुणे। क्षीणं चार्द्धगुणान्वितं तु कथितं तच्चन्दनं 'मध्यमम्'॥ चन्दनं द्विविधं प्रोक्तं वेट्टसुक्कडिसंज्ञकम्। 'वेट्ट' तु सार्द्रविच्छेदं स्वयं शुष्कं तु 'सुक्कडि'॥ मलयाद्रिसमीपस्थाः पर्वता वेट्टसंज्ञकाः। तज्जातं चन्दनं यत्तु वेट्टवाच्यं क्वचिन्मते॥ वेट्टचन्दनमतीवशीतलं दाहपित्तशमनं ज्वरापहम्। छर्दिमोहतृषिकुष्ठतैमिरात् कासरक्तशमनञ्च तिक्तकम्॥ 'सुक्कडि' चन्दनं तिक्तं कृच्छ्रपित्तास्रदाहनुत्। शैत्यसुगन्धदं चार्द्रं शुष्कं लेपे तदन्यथा॥ रक्तचन्दनमतीवशीतलं तिक्तमीक्षणगदास्रदोषनुत्। भूतपित्तकफकासज्वरभ्रान्तिजन्तुवमिजित्तृषापहम्॥ 'पत्राङ्गं' (कुचन्दनम्) कटुकं रूक्षमम्लं शीतं तु गौल्यकम्। वातपित्तज्वरघ्नञ्च विस्फोटोन्मादभूतहृत्॥ 'पीतञ्च' शीतलं तिक्तं कुष्ठश्लेष्मानिलापहम्। कण्डूविचर्चिकादद्रुकृमिहृत् कान्तिदं परम्॥ 'वर्वरं' शीतलं तिक्तं कफमारुतपित्तजित्। कुष्ठकण्डूव्रणान् हन्ति विशेषाद्रक्तदोषजित्॥ 'हरिचन्दनं' तु दिव्यं तिक्तहिमं तदिह दुर्लभं मनुजैः। पित्ताटोपविलेपि च दवथुश्रमशोषमान्द्यतापहरम्॥ चन्दनसामान्यगुणाः– सर्वान्येतानि तुल्यानि रसतो वीर्यतस्तथा। गन्धेन तु विशेषः स्यात् पूर्वं श्रेष्ठतमं गुणैः॥ अन्यच्च–चन्दनानि समानानि रसतो वीर्यतस्तथा। भिद्यन्ते किन्तु गन्धेन तत्राद्यं गुणवत्तरम्॥ राजनिघण्टुः॥ (श्वेत) चन्दनं शीतलं रूक्षं तिक्तमाह्लादनं लघु। श्रमशोषविषश्लेष्मतृष्णापित्तास्रदाहनुत्॥ स्वादे तिक्तं कषे पीतं छेदे रक्तं तनौ सितम्। ग्रन्थिकोटरसंयुक्तं चन्दनं 'श्रेष्ठ'मुच्यते॥ 'कालीयकं' रक्तगुणं विशेषाद्व्यङ्गनाशनम्। 'रक्तं' (चन्दनं) शीतं गुरु स्वादु छर्दितृष्णास्रपित्तहृत्॥ तिक्तं नेत्रहितं वृष्यं ज्वरव्रणविषापहम्। 'पत्राङ्गं' मधुरं शीतं पित्तश्लेष्मव्रणास्रनुत्॥ हरिचन्दनवद्वेद्यं विशेषाद्दाहनाशनम्। चन्दनानि तु सर्वाणि सदृशानि रसादिभिः। गन्धेन तु विशेषोऽस्ति पूर्वं श्रेष्ठतमं गुणैः॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) रक्तपित्ते चन्दनम्–"उशीरकालीयक...। पृथक् पृथक् चन्दनतुल्यभागिकाः। सशर्करास्तण्डुलधावनाप्लुताः रक्तं सपित्तं शमयन्ति सद्यः॥" (चि. ४ अ.)। (२) रक्तार्शसां स्निग्धरक्तसङ्ग्रहणे चन्दनम्–"...सनागरश्चन्दनरसञ्च"। (चि. ९ अ.)। (३) हिक्कायां चन्दनम्– "नावयेच्चन्दनं वापि नारीक्षीरेण संयुतम्"। (चि. २१ अ.)। (४) वमने चन्दनम्–"धात्रीरसेनोत्तमचन्दनं वा"। (चि. २३ अ.)। (५) रक्तातिसारे चन्दनम्–"पीत्वा सशर्कराक्षौद्रं चन्दनं तण्डुलाम्भसा। दाहतृष्णाप्रमेहेभ्यो रक्तस्रावाद्विमुच्यते॥" (चि. १० अ.)। चरकः॥ (१) प्रदरे भद्रश्रीश्चन्दनञ्च– "दुर्गन्धिपूयसङ्काशे मज्जतुल्ये तथाऽऽर्त्तवे। पिबेद्भद्रश्रियः क्वाथं चन्दनक्वाथमेव वा॥" (शा. २ अ.)। (२) शुक्रमेहे चन्दनम्–"ककुभचन्दनकषायं वा" (चि. ११ अ.)। (३) मञ्जिष्टामेहे चन्दनम्– "मञ्जिष्टामेहिनं मञ्जिष्टाचन्दनकषायम्"। (चि. ११ अ.)। सुश्रुतः॥ पित्तोत्क्लिष्टे च नेत्ररोगे चन्दनम्–"...क्षीरं चन्दनसाधितम्"। वाग्भटः॥ मूत्राघाते चन्दनम्–"शृतशीतपयोऽन्नाशी चन्दनं तण्डुलाम्बुना। पिबेत् सशर्करं श्रेष्ठमुष्णवाते सशोणिते॥" (मूत्राघात-चि.)। भावप्रकाशः॥ (१) मसूरिकायां श्वेतचन्दनम्–"श्वेतचन्दनकल्केन हिलमोचाभवं रसम्। पिबेन्मसूरिकारम्भे..."। (२) शिशोर्नाभिपाके चन्दनम्–"...नाभिपाकेऽवचूर्णनम्। त्वक्चूर्णैः क्षीरिणां वापि कुर्याच्चन्दनरेणुना॥" (बालरोगाधिः)। वङ्गसेनः॥

विविध भाषाओं में नाम–

सं.- श्रीखण्डम्, चन्दनम्, गन्धसारम्, मलयजम्, चन्द्रद्युति। हि.- चन्दन, सफेद चन्दन। बं. म. तै.- चन्दन।

क.- वेट्टपञ्चो गन्ध, श्रीगन्ध, मारा। गु.- सुखडा, सुखण्ड। द.- संदल। ता.- चन्दनमार। अ.- सन्दले अवीयद। फा.- सन्दले सफेड़ा। अं.- Sandal wood (सेण्डल ऊड)। ले.- Santalum Album (सेन्टलम् एलवम)।

सफेद चन्दन की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा- गन्धराजः, सर्पावासः, गन्धसारम्, मलयजम्। **रक्तचन्दन की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा-** तिलपर्णम्, प्रवालफलम्, रक्तसारम्, ताम्रसारम्, क्षुद्रचन्दनम्। **कुचन्दन की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा-** रक्तकाष्ठम्, पट्टरञ्जनम्। **कालीयक चन्दन की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा-** नारायणप्रियम्, पीतकाष्ठम्। **वर्वरिक चन्दन की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा-** श्वेतम्, निर्गन्धम्। **हरिचन्दन की अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा-** महागन्धम्, लोहितम्।

गुण-दोष-

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- श्रीखण्ड (सफेद चन्दन) शीतल, स्वादिष्ट तथा तिक्त रस प्रधान है और पित्त विकार का नाश करने वाला है। यह रक्त को स्वच्छ बनाता है, वीर्य वर्द्धक है तथा अन्तर्दाह को दूर करता है; इनके अतिरिक्त रक्तपित्त विकार, विष विकार तथा प्यास, दाह का नाश करता है, क्रिमिरोग नाशक, गुरु तथा रूक्ष है। सभी चन्दन तिक्त रस प्रधान, मधुर रस तथा अच्छी तरह शीतल है। रक्त चन्दन भी रक्षोग्रह नाशक, तिक्त रस प्रधान तथा शीतल है। यह रक्त को बढ़ाता है तथा भयंकर पित्त प्रकोप को नष्ट करता है।

आदर्शान्तर में कहा गया है- रक्त चन्दन वीर्य वर्द्धक, उष्ण, शीतल तथा मृदु है। यह नेत्र के लिए हितकर, रक्त पित्त नाशक तथा वर्ण वर्द्धक है। **चन्दन** पाक में स्वादिष्ट, रस में शीतल है। **पतङ्ग चन्दन** अधिक शीतल नहीं है। **कुचन्दन** तिक्त रस प्रधान तथा सुगन्धित है और व्रण का रोपण करने वाला है।

आदर्श विशेष में देखा जाता है कि कुचन्दन पाक में स्वादिष्ट रस में शीतल तथा कफ कारक है, किन्तु अधिक पितकारक नहीं है। इसका प्रयोग सभी वात रोग में होता है और यह मुख रोग में प्रशस्त है। **कालीयक चन्दन** पवित्र तथा शीतल है और रक्त पित्त को दूर करता है। **वर्वरिक चन्दन के गुण-** वर्वरिक चन्दन रक्त पित्त विकार, कफ विकार तथा दाह नाशक है। यह क्रिमिरोग नाशक, गुरु एवं रूक्ष है।

राज निघण्टु के अनुसार- श्वेत चन्दन कटु तथा तिक्त रस प्रधान, शीतल गुणवाला, स्वाद में थोड़ा कषाय है। यह पित्त विकार, भ्रम, वमन, ज्वर, क्रिमि विकार, प्यास तथा संताप को शान्त करने वाला है। यह वीर्य वर्द्धक है, मुख के रोग का नाश करने वाला है और यह मनुष्यों के शरीर की कान्ति को बढ़ाता है। यह शरीर में लेप करने से सुप्त कामदेव के मद को रम्भा आदि के रमण करने योग्य बनाता है। चन्दन गुहा में कपड़ा से बन्द करने पर सुगन्धित देने वाला है, काटने पर रक्तमय हो जाता है। यह घर्षण करने से पित्त को शान्त करता है। यह स्वादिष्ट, तिक्त तथा कटु रस प्रधान, सुगन्ध कारक तथा शीतल है और थोड़ा गुण वाला है। **श्रीचन्दन** आधा गुण से युक्त होता है। यह चन्दन मध्यम गुण वाला है। चन्दन दो प्रकार का होता है- वेट्ट संज्ञक तथा सुक्कडि संज्ञक। वेट्ट संज्ञक चन्दन काटने पर आर्द्र (गीला) होता है और सुक्कडि संज्ञक चन्दन शुष्क होता है। मलयाचल के समीपस्थ पर्वत वेट्ट संज्ञक होते हैं। वहा पर उत्पन्न जो चन्दन होता है उसे वेट्ट चन्दन कहते हैं। यह किसी-किसी के मत के अनुसार है। वेट्ट चन्दन अधिक शीतल है तथा यह दाह, पित्त को शान्त करने वाला तथा ज्वर नाशक है। यह तिक्त रस होने से वमन, मोह, प्यास, कुष्ठरोग, तिमिर रोग, कास रक्त को शान्त करता है। सुक्कडि संज्ञक चन्दन तिक्त रस प्रधान, मूत्रकृच्छ्र, पित्त विकार, रक्त विकार तथा दाह को दूर करता है। यह आर्द्रावस्था में शीतल तथा सुगन्धप्रद होता है तथा सूखा चन्दन लेप के लिए होता है। रक्त चन्दन अत्यधिक शीतल है। यह तिक्त रस वाला है, नेत्र रोग तथा रक्त दोष को दूर करता है। यह भूत वाधा, पित्त विकार, कफ

विकार, कास, ज्वर, भ्रम रोग, क्रिमि विकार तथा वमन को जीत लेता है और प्यास को शान्त करता है। **पत्रांग (कुचन्दन)** कटु रस प्रधान, रूक्ष, अम्ल रस वाला, शीतल तथा गले के लिए हितकर है। यह वात, पित्त तथा ज्वर का नाश करता है और विस्फोट एवं उन्माद को दूर करता है। **पीत चन्दन** शीतल तिक्त रस प्रधान है तथा कुष्ठ रोग, कफ विकार एवं वात विकार को दूर करता है। यह कण्डू, विचर्चिका, दद्रु, क्रिमि विकार को दूर करता है तथा उत्तम कान्ति को देने वाला है। **हरिचन्दन** दिव्यगुण से युक्त तिक्त रस प्रधान तथा शीतल है। यह मनुष्य लोक में दुर्लभ है। यह पित्त विकार, आटोप, विलेपि, दवथु (दावाग्नि), श्रम, सूखा रोग, मन्दाग्नि तथा ताप का नाश करने वाला है। **चन्दन के सामान्य गुण**- ये सभी प्रकार के चन्दन रस से तथा वीर्य से समान गुण वाले हैं, गन्ध से इसमें विशेषता प्रतीत होती है। पहले वाला चन्दन गुणों में उत्तम है। और भी कहा गया है- सभी प्रकार के चन्दन रस से तथा गुण से समान हैं। इनका भेद गन्ध से होता है। यहाँ पर आद्य चन्दन उत्तम गुण वाला है।

भाव प्रकाश के अनुसार- सफेद चन्दन शीतल, रूक्ष, तिक्त रस प्रधान, आह्लादकारक तथा लघु है और श्रम, सूखा रोग, विष विकार, कफ विकार, प्यास, रक्त, पित्त तथा दाह को दूर करता है। यह स्वाद में तिक्त, घिसने पर पीला, कटने पर रक्त तथा तना में सफेद होता है। ग्रन्थि (गांथ) तथा कोटर से युक्त चन्दन श्रेष्ठ कहा गया है। **रक्त चन्दन** शीतल, गुरु तथा स्वादिष्ट है और यह वमन, प्यास तथा रक्त पित्त को दूर करता है। यह तिक्त रस प्रधान है, नेत्र के लिए हितकर है, वीर्यवर्द्धक है तथा ज्वर, व्रण तथा विष दोष को दूर करता है। **पत्रांग चन्दन** मधुर तथा शीतल है और यह पित्त विकार, कफ विकार, रक्त व्रण एवं रक्त पित्त को दूर करता है। यह हरिचन्दन की ही तरह है, विशेषकर यह दाह का नाश करता है। सभी प्रकार के चन्दन रस आदि गुणों से समान हैं। केवल इनमें गन्ध मात्र विशेष है। प्रथम चन्दन (श्वेत चन्दन) उत्तम गुण वाला है।

वैद्यक शास्त्र में चन्दन का प्रयोग-

(१) रक्त पित्त में चन्दन का प्रयोग- खस तथा कालीयक चन्दन को अलग-अलग समान भाग लेकर समान भाग शक्कर मिलाकर चावल के धोअन में मिलाकर प्रयोग करने से शीघ्र ही रक्त पित्त को शान्त करता है। (च.चि.अ.४)। (२) **रक्तार्श में स्निग्ध रक्त के संग्रह होने पर चन्दन का प्रयोग**- चन्दन के रस में सोंठ का चूर्ण मिलाकर प्रयोग करने से स्निग्ध रक्त निकलता हुआ रक्तार्श शान्त होता है। (च.चि.अ.९)। (३) **हिक्का में चन्दन का प्रयोग**- चन्दन को स्त्री के दूध के साथ घिस कर सेवन करने से हिक्का रोग शान्त होता है। (च.चि.अ.२१)। (४) **वमन में चन्दन का प्रयोग**- उत्तम चन्दन को आँवला के रस के साथ वमन में पान कराये। (च.चि.अ.२३)। (५) **रक्तातिसार में चन्दन का प्रयोग**- समान भाग शक्कर तथा मधु मिलाकर चन्दन का पान कर मनुष्य दाह, प्यास तथा प्रमेह एवं रक्त-स्रावादि (रक्तातिसार आदि) से मुक्त हो जाता है। (च.चि.अ.१०)।

(१) प्रदर में श्रीचन्दन (श्वेत चन्दन) का प्रयोग- दुर्गन्ध युक्त, पूय के समान तथा मज्जा के समान आर्तवके आने पर सफेद चन्दन का क्वाथ या चन्दन का क्वाथ पान करे। (सु.श.अ.२)। (२) **शुक्रमेह में चन्दन का प्रयोग**- शुक्रप्रमेह में अर्जुन छाल तथा चन्दन के क्वाथ का प्रयोग करे। (सु.चि.अ.११)। (३) **मञ्जिष्टा मेह में चन्दन का प्रयोग**- मञ्जिष्ठा मेह में मनुष्य को मंजीष्ठ तथा चन्दन का क्वाथ पान कराये। (सु.चि.अ.११)।

पित्तोल्वण नेत्र रोग में चन्दन का प्रयोग- पित्तोल्वण नेत्र रोग में चन्दन के क्वाथ के साथ सिद्ध दूध का प्रयोग करे। (वाग्भट)।

मूत्राघात में चन्दन का प्रयोग- अन्न को खाने वाला व्यक्ति चन्दन के साथ पकाया हुआ दूध चावल के

धोअन के साथ शक्कर मिलाकर पान करे। रक्तयुक्त उष्णवात में यह श्रेष्ठ है। (भावप्रकाश, मूत्राघात चि.)।

(१) मसूरिका में सफेद चन्दन का प्रयोग- सफेद चन्दन के कल्क को हिलमोचिका (केला) के रस के साथ मसूरिका के प्रारम्भ में पान करे। (वंगसेन-बा.रोगाधि.)। (२) **शिशु के नाभि पाक में चन्दन का प्रयोग**- बालक के नाभि पाक में चन्दन के चूर्ण का अवचूर्णन करे अथवा क्षीरणी वृक्षों के छाल के चूर्ण के साथ चन्दन के चूर्ण का अवचूर्णन करे। (वंगसेन-बालरोगाधिकार)।

Constituents—The wood contains a volatile oil 2 to 2.5 p.c., a dark resin and tannic acid.

Actions and uses—The wood is bitter, cooling, sedative and astringent. The oil is an astringent to the mucous membrane. It causes dryness in the fauces, great thirst, colicky pains and fulness in the lions; a paste of it is applied to the body in pains in limbs during high fever; with rose-water and camphor or with Sarcocolla, to the head in headache, to inflammatry swellings, or to the skin in skin affections. The oil is astringent, diuretic, expectorant and stimulant; given internally with cardamoms and bamboo-manna in gonorrhoea, bronchitis, in inflammation of the mucous membranes as cystisis, pyelitis and chronic diarrhoea. The seeds are used as a pessaries by native women to procure abortion. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 536).

Constituents of *Pterocarpus santalinus*—Santalin, Santal, Pterocarpin, Homopterocarpin or Santalic acid.

Actions and uses—Refrigerant and astringent. A paste of the powder is used as a cooling application to the head in headache and to inflamed and swollen limbs. As an astringent it is used in combination with other astringent medicines in dysentery, diarrhoea & c. Its chief use, however, is a colouring agent in pharmacy. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 227).

चविका

Piper Chaba

चविका–*Piper chaba*, **गजपिप्पली**–Fruit of *Piper chaba*, **अन्वर्थसंज्ञा–चविकायाः–"वल्ली", "कुटलमस्तकम्"। गजपिप्पल्याः–"चव्यफला", "चव्यजा", "छिद्रवैदेही", "दीर्घग्रन्थिः", "वर्त्तूली", "स्थूलवैदेही"। चव्यं च कटुकोष्णं स्याज्जन्तुहृद्दीपनं परम्। कफोद्रेककरं वातप्रकोपशमनं भवेत्॥ गजपिप्पलीका स्वादुः कटुरुष्णा च कीर्त्तिता। वलासं हन्ति वातेन जसार्धन्तु जयप्रदा॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ चव्यं स्वादूष्णकटुकं लघु रोचनदीपनम्। ज़न्तूद्रेकापहं कासश्वासशूलार्त्तिकृन्तनम्॥ गजोषणा कटूष्णा च रूक्षा मलविशोषणी। वलासवातहन्त्री च स्तन्यवर्णविवर्द्धिनी॥ राजनिघण्टुः॥ चविकागजपिप्पल्यौ पिप्पलीमूलवत् स्मृते। राजवल्लभः॥ कणामूलगुणं चव्यं विशेषाद् गुदजापहम्। गजकृष्णा कटुर्वातश्लेष्महृद्वह्निवर्द्धिनी॥ उष्णा निहन्त्यतिसारं श्वासकण्ठामयक्रिमीन्। भावप्रकाशः॥**

वैद्यके व्यवहारः–अर्शःसु चव्यम्–"चव्यं वा शीधुसंयुक्तं पिबेत्"। (चि. ९ अ.) चरकः॥

विविध भाषाओं में नाम–

चविका– सं.– चव्यम्, चविका, ऊष्णा। हि.– चव्य, चाय, चव। बं.– चई, चोई, चईगाछु। म.– चवल, भिराविलीचे मूल। द्रा.– शव्ये। गु.– चवका। ते.– सेवासु, चौकासी, चव्यमु। मु., कं.– कल। ले.– Piper chaba (पाईपर चव)।

गजपीपर– सं.– गजपिप्पली, कपिवल्ली, कोलवल्ली, श्रेयसी। हि.– गजपीपर, हाथी पिप्पली, चव्य का फूल। बं.– गजपीपुल, करिपीपुल। म.– मोरवेलिका। क.– गजपिप्पली। गु.– गजपीपर, मोटी पीपर। ते.– गजपिप्पलु पेदू पिप्पलु। ता.– अतिवितप्पली। द्रा.– यावे तिप्पली। ले.– Seindapass officinalis (सिंडेपास आफिसिनेलिस)।

चव्य की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा– वल्ली, कुटलमस्तक। **गजपिप्पलीकी अन्वर्थ संज्ञा**– चव्यफला, चव्यजा, छिद्रवैदेही, दीर्घग्रन्थिः, वर्तूली, स्थूलवैदेही।

गुण-दोष–

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार– चव्य कटु रस प्रधान तथा ऊष्ण है और क्रिमि रोग नाशक तथा जाठराग्नि दीपक है, कफ को निकालने वाला है तथा वात प्रकोप को शान्त करने वाला है। गज पिप्पली स्वादिष्ट, कटु रस प्रधान तथा उष्ण कही गयी है। यह कफ विकार का नाश करता है। वायु के साथ प्रयोग करने से जय देने वाली है।

राज निघण्टु के अनुसार– चव्य स्वादिष्ट, उष्ण, कटु रस प्रधान, लघु, रोचक तथा जाठराग्नि दीपक है। यह क्रिमि विकार का नाश करती है तथा कास, श्वास एवं शूल को दूर करती है। गजपीपर कटु रस प्रधान, उष्ण तथा रूक्ष है और यह मल को शुद्ध करने वाली, कफ तथा वात का नाश करने वाली है और वर्ण तथा दूध को बढ़ाने वाली है।

राजवल्लभ के अनुसार– चविका तथा गजपीपर पिपरामूल के गुण के समान गुण वाली है।

भावप्रकाश के अनुसार– पिपरामूल के गुण के समान गुणवाली चविका है। यह विशेषकर गुदजरोग (अर्शरोग) को दूर करती है। गजपीपपर कटु रस प्रधान है तथा वात तथा कफ रोग को दूर करने वाली है और जाठराग्नि को बढ़ाने वाली है। यह उष्ण है और अतिसार, श्वास, कण्ठरोग तथा क्रिमि रोग को नष्ट करती है।

वैद्यक शास्त्र में चविका का प्रयोग–

अर्श रोग में चव्य का प्रयोग– अर्शरोग में सीधु के साथ चव्य का चूर्ण पान करे। (च.चि.अ.९)।

Actions and uses—Carminative and stimulant; given in colic, tympanitis and in renal disease. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 517).

चित्रकः

Plumbago zeylanica, Linn.

चित्रकः, अग्निः–*Plumbago zeylanica*, Linn. **रक्तचित्रः**– *Plumbago rosea*, Willd.

अन्वर्थसंज्ञा चित्रकस्य–"शिखी"। रक्तचित्रकस्य–"महाङ्गः", "अतिदीप्यः", "गुणाढ्यः"। चित्रकोऽग्निसमः पाके कटुकः कफशोफजित्। वातोदरार्शोग्रहणीक्षयपाण्डुविनाशनः॥ धन्वन्तरीय-निघण्टुः॥ 'चित्रको'ऽग्निसमः पाके कटुः शोफकफापहः। वातोदरार्शोग्रहणीकृमिकण्डूविनाशनः॥

स्थूलकायकरो रुच्यः कुष्ठघ्नो 'रक्तचित्रकः'। रसे नियामकः लौहे वेधकश्च रसायनः॥ राजनिघण्टुः॥ चित्रकः कटुकः पाके वह्निकृत् पाचनो लघुः। रूक्षोष्णो ग्रहणीकुष्ठशोथार्शःकृमिकासनुत्॥ वातश्लेष्महरो ग्राही वातार्शःश्लेष्मपित्तहृत्। भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) अग्र्यग्रन्थे चित्रकमूलम्–"चित्रकमूलं दीपनीयगुदशोफहराणाम्" (सू. २५ अ.)। (२) अर्शःसु चित्रकमूलम्–"सनागरं चित्रकं वा शीधुयुक्तं प्रयोजयेत्" (चि. ९ अ.)। चरकः॥ (१) कुष्ठे चित्रकमूलम्–"एवं पेयश्चित्रकः श्लक्षपिष्टः" (चि. ९ अ.)। (२) सिकतामेहे चित्रकमूलम्–"सिकतामेहिनं चित्रककषायम्" (चि. ११ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) अर्शःसु चित्रकमूलम्–"यो जातो गोरसः क्षीराद्वह्निचूर्णावचूर्णितात्। पिबंस्तमेव तेनैव भुञ्जानो गुदजान् जयेत्॥" (चि. ८ अ.)। (२) रसायनार्थं चित्रकमूलम्–"यथास्वं चित्रकः पुष्पैर्ज्ञेयः पीतसितासितैः। यथोत्तरं स गुणवान् विधिना च रसायनम्॥ छायाशुष्कं ततो मूलं मासं चूर्णीकृतं लिहन्। सर्पिषा मधुसर्पिर्भ्यां पिबन् वा पयसा यतिः॥ अम्भसा वा हितान्नाशी शतं जीवति नीरुजः। मेधावी बलवान् कान्तो वपुष्मान् दीप्तपावकः॥ तैलेन लीढो मासेन वातान् हन्ति सुदुस्तरान्। मूत्रेण श्वित्रकुष्ठानि पीतस्तक्रेण पायुजान्॥ (उ. ३९ अ.)। वाग्भटः॥ (१) ग्रहण्यां चित्रकमूलम्–"चित्रकक्वाथकल्काभ्यां ग्रहणीघ्नं शृतं हविः। गुल्मशोथोदरप्लीहशूलार्शोघ्नं प्रदीपनम्॥" (ग्रहणी-चि.)। (२) श्लीपदे चित्रकमूलम्–"हितश्चालेपने नित्यं चित्रको देवदारु वा" (श्लीपद-चि.)। (३) व्रणशोथदारणार्थं चित्रकमूलम्–"...चित्रको हयमारकः ...दारणम्"। (व्रणशोथ-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) ग्रहण्यां चित्रकक्षारः–"वृहतीचित्रकक्षारः सप्तवारपरिस्रुतः। द्विगुणेन घृतं पक्वं वर्द्धयत्याशु पावकम्॥" (ग्रहणी-चि.)। (२) मेदोरोगे चित्रकमूलम्–"मधुना चित्रकमूलं तथैव हितभोजनो भुङ्क्ते" (मेदोऽधिका.)। (३) शोथे शाकार्थं चित्रकपत्रम्–"शाकं वह्निपुनर्नवा" (शोथ-चि.)। वङ्गसेनः।

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– चित्रकः, अनलनामा, पाठी, व्यालः, उष्णः। हि.– चांत, चीता, चितरक, चितउर। बं.– चितग, चितु, चितेरगाछु। म.– चित्रकु। क.– चित्रमूल। तै.– चित्रमूलम, चित्रमूल। उ.– धुवचिता। गु.– चित्रो, चित्रापीतरे। फा.– वरेब वरन्दा, विखुवरंदह, शीतरह, शीतरक, शीतरूह। अ.– सितरज, शैतरज। ले.– Plumbago zeylanica, P. Ouriculata (प्लुम्बागो जिलानिका, पी. आवरीकुलाटा)।

चित्रक की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा– शिखी। **रक्त चित्रक की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा–** महाङ्गः, अतिदीप्यः, गुणाढ्यः।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार– चित्रक अग्नि के समान गुण वाला है, पाक में कटु है और कफ तथा शोथ को दूर करता है। यह वातोदर रोग, अर्श, ग्रहणी, क्षयरोग तथा पाण्डुरोग का नाश करने वाला है।

राजनिघण्टु के अनुसार– रक्तचित्रक अग्नि के समान गुणवाला तथा पाक में कटु रस प्रधान है और यह शोथ तथा कफ का नाश करता है। यह वातोदर, अर्श, ग्रहणी, क्रिमि रोग तथा कण्डू का नाश करता है। यह शरीर को स्थूल बनाता है, रुचिकारक है तथा कुष्ठ नाशक है, रस में नियमन करने वाला है, लौहवर्द्धक है तथा रसायन है।

भावप्रकाश के अनुसार- चित्रक पाक में कटु रस प्रधान, अग्नि वर्द्धक, पाचक तथा लघु है। यह रूक्ष तथा उष्ण वीर्य है और ग्रहणी रोग, कुष्ठरोग, शोथ, अर्श रोग, क्रिमि रोग तथा कास को दूर करता है। यह वात कफ को दूर करने वाला ग्राही तथा वातार्श एवं कफ-पित्त विकार का नाश करता है।

वैद्यक शास्त्र के अनुसार चित्रक का प्रयोग-

(१) अग्निवर्द्धन के लिए चित्रक मूल का प्रयोग- चित्रकमूल जाठराग्निदीपक, अर्श तथा शोथ रोग को दूर करने वालों में एक है। (च.चि.अ.२५)। (२) **अर्श रोग में चित्रक मूल का प्रयोग**- अर्श रोग में चित्रक मूल को सोंठ का चूर्ण मिलाकर सीधु के साथ प्रयोग करे। (च.चि.अ.९)।

(१) कुष्ठ रोग में चित्रकमूल का प्रयोग- कुष्ठरोग में चित्रक मूल को महीन पीसकर पान करे। (सु. चि.अ.९)। (२) **सिकतामेह में चित्रक मूल के कषाय का प्रयोग**- सिकतामेह के रोगी को चित्रक का कषाय पान कराये। (सु.चि.अ.११)।

(१) अर्श रोग में चित्रक मूल का प्रयोग- दूध से बनाया हुआ गोरस (मट्ठा) को चित्रक का चूर्ण मिलाकर पान करने से तथा उसी के साथ भोजन करने से गुदज रोगों (अर्श रोग) को जीत लेता है। (वाग्भट, चि. अ.८)। (२) **रसायन के लिए चित्रक मूल का प्रयोग**- चित्रक पीला, सफेद तथा काले पुष्पों वाले क्रमशः उत्तरोत्तर उत्तम रसायन गुण वाले होते हैं। छाया में सुखाया हुआ चित्रक मूल चूर्ण बनाकर एक मास घृत के साथ चाटने से अथवा शहद एवं घृत (विषम मात्रा में) के साथ चाटने से या दूध के साथ या जल के साथ पान करने से तथा हितकर पथ्य सेवन करने से मनुष्य सौ वर्ष तक जीवित रहता है। इसके सेवन से मनुष्य मेधावी, बलवाला, कान्तिमान् व आयुष्मान् तथा प्रदीप्त जाठराग्नि वाला होता है। एक मास तक तैल के साथ चाटने से भयंकर वात रोग को नष्ट करता है। गोमूत्र के साथ सेवन करने से श्वित्रकुष्ठ का नाश करता है तथा मट्ठा के साथ पान करने से अर्श रोग को नष्ट करता है। (वाग्भट, चि.अ.३९)।

(१) ग्रहणी में चित्रक मूल का प्रयोग- चित्रक के कल्क तथा क्वाथ के साथ विधिवत सिद्ध घृत सेवन करने से गुल्म रोग, शोथ, उदर रोग, प्लीहा रोग, शूल तथा अर्श का नाश होता है और जाठराग्नि प्रदीप्त होता है। (चक्र.ग्रहणी चि.)। (२) **श्लीपद में चित्रक मूल का प्रयोग**- चित्रक तथा देवदारु का लेप श्लीपद रोग में हितकर है। (चक्र.श्लीपद चि.)। (३) **व्रणशोथदारण के लिए चित्रक मूल का प्रयोग**- चित्रक तथा कनेर के कल्क का लेप व्रणशोथ का दारण करता है। (चक्र.व्रणशोथ चि.)।

(१) ग्रहणी में चित्रक क्षार का प्रयोग- बड़ी कटेरी तथा चित्रक मूल का क्षार सात बार धोकर दुगने जल के साथ विधिवत् सिद्ध घृत सेवन करने से शीघ्र ही जाठराग्नि को प्रदीप्त करता है। (बंगसेन ग्रहणी चि.) (२) **मेदो रोग में चित्रकमूल का प्रयोग**- चित्रक के मूल के चूर्ण का मधु के साथ सेवन करने तथा हितकर भोजन करने से मेदो रोग को शान्त करता है। (बंगसेन, मेदोरोगाधिकार)। (३) **शोथ में शाक के लिए चित्रक के पत्र का प्रयोग**- चित्रक के पत्र तथा पुनर्नवा के पत्र का शाक शोथ रोग का नाश करता है। (बंगसेन, शोथ चि.)।

Constituents—Plumbagin, an acrid principle.

Actions and uses—Alterative and gastric stimulant; given in chronic diarrhoea, dyspepsia and general anasurra. Locally as a vesicant the root causes more pain than the ordinary blisters and the vesication does not heal readily. A paste of the root is used as a stimulant application

to rheumatic joints, leprosy, paralytic limbs and to abscesses to promote suppuration. The compound powder is alterative and given in flatulence, rheumatism. The root is acrid and if introduced into the os uteri causes abortion. Lal Chitraka is a more powerful vesicant than chitro or safed chitraka and is used in the preparation of caustic application. Taken internally it is said to expel the foetus whether dead or alive. In large doses it is a narcotico irritant poison. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 381).

चुक्र:

Oxalis corniculata

चुक्रम् , चाङ्गेरी–*Oxalis corniculata*. **वास्तुक:**–*Chenopodium album*. **तद्भेदा:**–**पलाशलोहिता चिल्ली**–*Chenopodium album* (Purple), **श्वेतचिल्ली**–*C. album* (Green), **शुनकचिल्ली**–*C. laciniatum*.

अन्वर्थसंज्ञा– चुक्रस्य– "अम्लवास्तुकम्", "दलाम्लम्"। 'वास्तुकस्य'–"शाकराज:"। 'पलाशलोहिताया:'–"मृदुपत्री", "क्षारदला", "चोरपत्री"। "श्वेतचिल्ल्या:'–सुपथ्या", "क्षुद्रवास्तुकी", "ज्वरघ्नी"। 'चुक्रं' स्यादम्लपत्रन्तु लघूष्णं वातगुल्मनुत्। रुचिकृद्दीपनं पथ्यमीषत्पित्तकरं परम्॥ 'वास्तुकं' तु मधुरं सुशीतलं क्षारमीषदम्लं त्रिदोषजित्। रोचनं ज्वरहरं महार्शसां नाशनञ्च मलमूत्रशुद्धिकृत्॥ 'चिल्ली' वास्तुकतुल्या च सक्षारा श्लेष्मपित्तनुत्। प्रमेहमूत्रकृच्छ्रघ्नी पथ्या च रुचिकारिणी॥ 'श्वेतचिल्ली' सुमधुरा क्षारा च शिशिरा च सा। त्रिदोषशमनी पथ्या ज्वरदोषविनाशनी॥ 'शवचिल्ली' कटुतीक्ष्णा च कण्डूतिव्रणहारिणी॥ 'चाङ्गेरी'शाकमत्युष्णं कटु रोचनपाचनम्। दीपनं कफवातार्श:सङ्ग्रहण्यतिसारजित्॥ राजनिघण्टु:॥ ...त्रिदोषघ्नं भिन्नवर्च्चस्तु 'वास्तुकम्'। प्रशस्यतेऽम्ल'चाङ्गेरी' ग्रहण्यर्शोहिता च सा॥ सू. २७ अ.-चरक:॥ कटुर्विपाके कृमिहा मेधाग्निबलवर्द्धन:। सक्षार: सर्वदोषघ्नो 'वास्तुको' रोचक: सर:॥ चिल्ली वास्तुकवज्ज्ञेया...॥ सु. ४६ अ.–सुश्रुत:॥ वास्तुकस्तु सरो हृद्यो दोषनुत् पाकतो लघु:। सक्षार: कृमिहा मेध्यो रुच्योऽग्निबलवर्द्धन:॥ लघुपत्रा तु या 'चिल्ली' सा वास्तुकसमा मता। 'चाङ्गेरी' तु कषायोष्णा मधुरा वह्निदीपनी॥ साम्ला वातकफो हन्ति ग्रहण्यर्शोविकारनुत्। 'चुक्रकं' दुर्जरं भेदि अम्लं पित्तकरं गुरु॥ 'चक्रपाणि:॥ "चाङ्गेरी" दीपनी रुच्या रूक्षोष्णा कफवातनुत्। पित्तलाम्ला ग्रहण्यर्श:कुष्ठातिसारनाशिनी॥ 'वास्तुकद्वितयं' स्वादु क्षारं पाके कटूदितम्। दीपनं पाचनं रुच्यं लघु शुक्रबलप्रदम्॥ सरं प्लीहास्त्रपित्तार्श:कृमिदोषत्रयापहम्। 'चुक्रा' त्वम्लतरा स्वाद्वी वातघ्नी कफपित्तकृत्॥ रुच्या लघुतरा पाके कट्वी च नातिरोचनी। भावप्रकाश:॥ कटुर्विपाके कृमिहा मेधाग्निबलवर्धन:। संस्कारे सर्वदोषघ्नी 'वास्तुको' रोचन: सर:॥ 'चाङ्गेरी' कफवातघ्नी वह्निकृद् ग्राहिणी हिता। राजवल्लभ:॥

वैद्यके व्यवहार:– (१) अर्श:सु चाङ्गेरी–"...चाङ्गेर्याश्चित्रकस्य च। सुभृष्टं यमके दद्याच्छाकं दधिसरायुतम्॥" (चि. ९ अ.)। (२) रक्तार्श:सु वास्तुक:– "छागलीपय:प्रयुक्तं निहन्ति रक्तं सवास्तुकं रसञ्च" (चि. ९ अ.)। (३) प्रवाहिकायां वास्तुक:–"...यमान्या वास्तुकस्य वा। ...शुष्कशाकेन वा पुन:॥ दधिदाडिमसिद्धेन बहुस्नेहेन भोजयेत्।" (चि. १० अ.)। (४) ...वातजकासे

वास्तुकः–"वास्तुकं शस्यते वातकासे तु..."। (चि. २२ अ.)। ऊरुस्तम्भे वास्तुकः–"शाकैरलवणैरद्याज्जलतैलोपसाधितैः...। वायसीवास्तुकैः... ऊरुस्तम्भविनाशनाः॥" (चि. २७ च.)। चरकः॥ कर्णशूले चुक्रः–"कर्णे कोष्णेण चुक्रेण पूरयेत् कर्णशूलिनः।" (उ. २१ अ.)। सुश्रुतः॥ चातुर्थकज्वरे चाङ्गेरी–"अम्लोटजसहस्त्रेण दलेन सुकृतां पिबेत्। पेयां घृतप्लुतां जन्तुश्चातुर्थकहरां त्र्यहम्॥" (ज्वर-चि.)। चक्रदत्तः॥

विविध भाषाओं में नाम–

चुक्र– सं.- चुक्रम्, सहस्त्रवेधिभुक्तम्। हि.- चूक, चूका। मा.- चूका, गु.- चुका।

चांगेरी– सं.- चाङ्गेरी, चुक्रिका, दन्तशका, अम्वष्ठा, अम्ललोणिका। हि.- चांगेरी, अम्लिलोण, अम्लि लोना, अम्ली, खट्टी बूटी। प.- खटकल, छोटा चूका, अमला, चौपतिया। बं.- आमरुल। म.- आम्वती। गु.- चूकी, आंवोती। क.- पुणुवुंणितो, पुल्ल पुलुचे। तै.- पुलिचिन्ता। द्रा.- पुदिवरी। अं.- Indian sorel (इन्डियन सोरेल)। ले.- Oxalis corniculata (ओक्सेलिस कोर्निकुलेटा)।

चुक्र की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा- अम्लवास्तूकम्, दलाम्लम्। **वास्तुक की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा-** शाकराजः। **पलाशलोहिता की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा-** मृदुपत्री, क्षारदला, चोरपत्री। **श्वेतचिल्ली की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा-** सुपथ्या, क्षुद्रवास्तुकी, ज्वरघ्नी।

गुण-दोष–

राजनिघण्टु के अनुसार- चुक्र अम्लपत्र वाला, हल्का तथा उष्ण है और वात गुल्म को दूर करता है। यह रुचिकारक, जाठराग्नि दीपक, पथ्य तथा थोड़ा पित्तवर्द्धक है। वास्तूक (वथुआ) शाक मधुर, शीतल, क्षारीय तथा थोड़ा अम्ल है और त्रिदोष को दूर करता है। यह रुचिकारक, ज्वरहर, बढ़े हुए अर्श रोग का नाश करने वाला तथा मल एवं मूत्र को शुद्ध करता है। चिल्ली वास्तूक शाक के गुण के समान है, क्षारीय है तथा कफ तथा पित्त विकार को दूर करती है। यह प्रमेह रोग तथा मूत्रकृच्छ्र का नाश करती है, पथ्य है तथा रुचिकारक है। श्वेत चिल्ली शाक मधुर रस वाली, क्षारीय तथा शिशिर (शीतल) है और त्रिदोष शामक, पथ्य तथा ज्वर दोष नाशक है। श्वेत चिल्ली कटु रस प्रधान तथा तीक्ष्ण गुण वाली है और यह कण्डू तथा व्रण को दूर करने वाली है। चाङ्गेरी शाक अत्यन्त उष्ण, कटु रस प्रधान है तथा रोचक एवं पाचक है। यह जाठराग्नि दीपक है और कफ, वात विकार, अर्श रोग, संग्रहणी रोग तथा अतिसार का नाश करती है।

चरक के अनुसार- बास्तूक त्रिदोष नाशक तथा मलभेदक है। अम्ल चांगेरी प्रशस्त है और ग्रहणी तथा अर्श रोग के लिए हितकर है। (च.चि.अ.२७)।

सुश्रुत के अनुसार- वास्तुक शाक पाक में कटु, क्रिमि नाशक, मेधा, जाठराग्नि तथा बल को बढ़ाने वाला है। यह क्षारीय गुण वाला है, सभी दोषों का नाश करने वाला है तथा रोचक एवं सारक है। चिल्ली शाक वास्तूक के गुण के समान गुण वाला है। (सू.सू.अ.४६)।

चक्रपाणि के अनुसार- वास्तूक शाक सारक, हृदय के लिए हितकर दोष नाशक तथा पाक में लघु है। यह क्षारीय गुण वाला, कृमिनाशक है तथा मेधा, जाठराग्नि एवं बल को बढ़ाने वाला है। छोटी पत्ते वाली चिल्ली वास्तुक के समान गुण वाली है। चाङ्गेरी शाक कषाय रस प्रधान, उष्ण तथा मधुर है और यह जाठराग्नि दीपक है। यह अम्ल रस प्रधान होने से वात का नाश करता है और ग्रहणी एवं अर्श विकार को दूर करता है। चुक्र शाक दुर्जर, मलभेदक, अम्ल है तथा पित्त कारक एवं गुरु है।

भाव प्रकाश के अनुसार- चाङ्गेरी शाक जाठराग्नि दीपक, रुचि कारक रूक्ष तथा उष्ण है और यह कफ-वात रोग को दूर करता है। यह पित्त कारक है, अम्ल है और ग्रहणी, अर्शरोग, कुष्ठ रोग तथा अतिसार रोग का नाश करता है। दोनों प्रकार का वास्तुक शाक स्वादिष्ट, क्षारीय तथा पाक में कटु है। यह जाठराग्नि दीपक, पाचक, रुचि कारक, लघु तथा शुक्र एवं बल को बढ़ाने वाला है। यह सारक है और प्लीहा विकार, रक्त पित्त, अर्श, क्रिमि रोग तथा तीनों दोषों का नाश करने वाला है। चुक्र अधिक अम्ल, स्वादिष्ट, वात नाशक तथा कफ पित्त को बढ़ाता है। यह रुचिकर, हल्का, पाक में कटु तथा अधिक रुचि कारक नहीं है।

राजवल्लभ के अनुसार- वास्तूक शाक पाक में कटु रस प्रधान, क्रिमि नाशक तथा मेधा, जाठराग्नि एवं बलवर्द्धक है। यह संस्कार करने पर सभी दोषों का नाश करता है, रोचक तथा सारक है। चांगेरी शाक कफ-वात नाशक, वह्निकारक, ग्राही तथा हितकर है।

वैद्यक शास्त्र में चाङ्गेरी का प्रयोग-

(१) चाङ्गेरी शाक का अर्श में प्रयोग- चाङ्गेरी शाक तथा चित्रक के पत्ते का शाक घी तथा तैल में भूनकर दही के तोड़ के साथ अर्श रोग में दे। (च.चि.अ.९)। (२) **रक्तार्श में वास्तूक शाक का प्रयोग**- वास्तूक के शाक का रस बकरी का दूध मिलाकर प्रयोग करने से रक्तार्श का नाश करता है। (च.चि.अ.९)। (३) **प्रवाहिका में वास्तूक शाक का प्रयोग**- वास्तूक का शाक अजवायन के साथ अथवा सूखा शाक तथा आधि तैल घी के साथ अनार का रस मिलाकर सिद्ध किया हुआ शाक प्रवाहिक रोग में सेवन कराये। (चि.चि.अ.१०)। (४) **वातज कास में वास्तूक का शाक**- वातज कास में वास्तूक शाक प्रशस्त होता है। (च.चि.अ.२२)। (५) **उरुस्तम्भ में वास्तूक के शाक का प्रयोग**- वास्तूक का शाक तथा मकोय का शाक नमक रहित जल तथा तैल में सिद्ध ऊरुस्तम्भ रोग में प्रयोग करे। यह शाक ऊरुस्तम्भ रोग का नाश करता है। (च.चि.अ.२७)।

कर्णशूल में चुक्र का प्रयोग- कर्णशूल के रोगी के कान में चुक्र का थोड़ा गरम जल छोड़े। (सु.उ.अ.२१)।

चतुर्थिक ज्वर में चांगेरी का प्रयोग- चाङ्गेरी के एक हजार पत्तों से बनायी हुई तथा घृत मिलायी हुई मेवा चातुर्थिक ज्वर में पान करे। यह चातुर्थिक ज्वर का नाश करता है। (चक्र.ज्वर चि.)।

Constituents of *Oxalis corniculata*—It contains acid potassium oxalate.

Actions and uses—Cooling, refrigerant, appetizing and astringent; given in mild cases of dysentery, prolapse of the rectum and vagina, and as a stomachic in fever and billiousness. The fresh juice is given as an antidote to poisoning by Dhatura, (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 153).

Constituents of *Chenopodium ambrosioides*—Oleum Chenopodii, a volatile oil, 3 p.c., obtained by distilling the fruit with water or steam. It is a thin yellowish liquid, of a highly comphoraceous odour and pungent bitter taste, It consists of a hydrocarbon and a liquid oxygenated oil. Dose, 4 to 10 ms.

Actions and uses—Anthelmintic; used chiefly for round worms. As an antispasmodic and stimulant, the oil is given in hysteria, chorea,.flatulent dyspepsia and malarial and intermitten fevers. It increases the action of the heart and promotes the secretion of the skin, kidneys and bronchi. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 507).

Many plants of Chenopodiaceae order are succulent, as the beet-root; some of them are

used as pot herbs; seeds of some are nutritious. Several contain a volatile oil which renders them anthelmintic, antispasmodic, aromatic, carminative and stimulant. Several of them inhabit salt marshes and yield on combustion an ash called Barilla, known to the Greeks as salt-wort. The Arabs called it elkali, arkali, of ushnar, sujikhara (Hindi)—a mixture of potash and soda. (*Materia medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 506).

जम्बूः

Eugenia jambolana

राजजम्बूः, महाजम्बूः– *Eugenia jambolana*, Lamarck., काकजम्बूः– *Eugenia caryophyllifolia*, Lamarck. भूमिजम्बूः– *Eugenia fruticosa*, Roxb.

पूर्वाचार्यकृतवर्णनम्– "जम्बूस्त्रिविधा, राजजम्बूर्महाफला, काकजम्बूर्वनजम्बूरितिख्याता, भूमिजम्बूरल्पफला" (चक्रदत्तकृतद्रव्यगुणसङ्ग्रहटीकायां शिवदासः)। अन्वर्थसंज्ञा राजजम्ब्वाः– "सुरभिपत्रा", "महाफला", "महास्कन्धा", "नीलफला", "राजार्हा", "शुकप्रिया", "मेघमोदिनी"। काकजम्ब्वाः– "नादेयी", "काकवल्लभा", "भृङ्गेष्टा"। भूमिजम्ब्वाः– 'ह्रस्वफला", "भृङ्गवल्लभा", "पिकभक्ष्या", "काष्ठजम्बूः"। जाम्बवं (जम्बूफलं) कफपित्तघ्नं ग्राहि वातकरं परम्। (चरकः–सू. २७ अ.–फ. व.)॥ अत्यर्थं वातलं ग्राहि जाम्बवं कफपित्तजित्। (सुश्रुतः–सू. ४६ अ. फ. व.)॥ जाम्बवं वातलं ग्राहि स्वाद्वम्लं कफवातजित्। हृत्कण्ठघर्षणं चान्यत् कषायं 'क्षुद्रजाम्बवम्'॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ जम्बूः कषायमधुरा श्रमपित्तदाह-कण्ठार्त्तिशोषशमनी क्रिमिदोषहन्त्री। श्वासातिसारकफकासविनाशनी च विष्टम्भिनी भवति रोचनपाचनी च॥ 'महाजम्बू'रुष्णा समधुरकषाया श्रमहरा। निरश्यत्यास्यस्थं झटिति जडिमानं स्वरकरी। विधत्ते विष्टम्भं शमयति च शोषं वितनुते। श्रमातिसारार्त्ति-श्वसितकफकासप्रशमनम्॥ 'काकजम्बूः' कषायाम्ला पाके तु मधुरा गुरुः। दाहश्रमातिसारघ्नी वीर्यपुष्टिबलप्रदा॥ 'भूमिजम्बूः' कषाया च मधुरा श्लेष्मपित्तनुत्। हृद्या सङ्ग्राहिहृत्कण्ठदोषघ्नी वीर्यपुष्टिदा॥ राजनिघण्टुः॥ जम्बूः सङ्ग्राहिणी रूक्षा कफपित्तास्त्रदाहजित्। राजजम्बूफलं स्वादु विष्टम्भि गुरु रोचनम्॥ भावप्रकाशः॥ जाम्बवं गुरु विष्टम्भि कषायं स्वादु शीतलम्। अग्निसन्दूषणं रूक्षं वातलं कफपित्तजित्॥ राजवल्लभः॥ जाम्बवं वातलं ग्राहि रूक्षं पित्तकफापहम्। द्रव्यगुणसङ्ग्रहः॥ 'तन्मज्जा' कषायो ग्राही विशेषान्मधुमेहहा। वृहन्निघण्टुरत्नाकरः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) अग्र्यग्रन्थे जाम्बवम्– "जाम्बवं वातजननानाम्" (सू. २५ अ.)। (२) व्रणरोपणार्थं जम्बूत्वक्– "...लोध्रजाम्बवकट्फलैः। त्वचमाश्वेव गृह्णन्ति त्वक्चूर्णैश्चूर्णिता व्रणाः॥" (चि. १३ अ.)। (३) पित्तजे वमने जम्बूपल्लवम्– "जम्ब्वाम्रयोः पल्लवजं कषायं पिबेत् सुशीतं मधुसंयुतं वा॥" (चि. २३ अ.)। चरकः॥ (१) अतिसारे शोणितस्त्रुतिवारणार्थं जम्बूत्वक्– "शल्लकीवदरीजम्बूत्वचः। पीताः क्षीरेण मध्वाढ्याः पृथक् शोणितनाशनाः॥" (अतिसार-चि.)। (२) बालग्रहण्यां जम्बूत्वक्– "तद्वदजाक्षीरसमो जम्बूत्वगुद्भवो रसः" (बालरोग-चि.)। चक्रदत्तः॥

विविध भाषाओं में नाम– सं.– जम्बूः, जम्बु, जाम्बवम्। हि.– जामून, बड़ाजामुन। हि.– बडाजामुन, बं.–

बड जाम, काल जाम। गु.- राजजाम्बू। क.- निरलू। म.- पोरजाम्भूह। ते.- पेद्दानेरडि। ले.- Eugenia jambolana, Lamarck. छोटी जामुन की- छोटी जामुन। बं.- वनजाम, छोटजाम। गु.- वेलरोवा जाम्बू।

जम्बू के सम्बन्ध में पूर्वाचार्यों का वर्णन- जम्बू तीन प्रकार का है- १. राज जम्बू बड़ा फल वाला होता है, २. काकजम्बू बनजम्बू कहा जाता है, ३. भूमि जम्बू अल्प फल वाली होती है। चक्रदत्त कृत द्रव्यगुण संग्रह टीका में है ऐसा शिवदास का कहना है।

तीनों जम्बू की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा- (१) राजजम्बू- सुरभिपत्रा, महाफला, महास्कन्धा, नीलफला, राजार्हा, शुकप्रिया, मेघमोदिनी (२) **काकजम्बू**- नादेयी, काकवल्लभा, भृङ्गेष्टा। (३) **भूमिजम्बू**-ह्रस्वफला, मृदुवल्लभा, पिकभक्ष्या, काष्ठजम्बूः।

गुण-दोष-

चरक के अनुसार- जामुन का फल कफ तथा पित्त नाशक है, ग्राही है तथा अच्छी तरह पित्त कारक है। (च.सू.अ.२७)।

सुश्रुत के अनुसार- जामुन का फल अत्यधिक वातकारक तथा ग्राही है और कफ विकार तथा पित्त विकार को दूर करती है। (सु.सू.अ.४६)।

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- जामुन का फल वात कारक, ग्राही तथा अम्ल रस वाला है और कफ विकार तथा वात विकार को दूर करता है। यह हृदय तथा कण्ठ का घर्षण करने वाला है तथा अन्य क्षुद्र जामुन का फल कषाय रस वाला है।

राजनिघण्टु के अनुसार- जामुन कषाय तथा मधुर रस वाली है और यह श्रम, पित्त विकार, दाह, कण्ठ पीड़ा एवं शोथ को शान्त करने वाली है और क्रिमि दोष का नाश करने वाली है। यह श्वास, अतिसार, कफ विकार तथा कास का नाश करने वाली है। यह विष्टम्भ कारक है तथा रोचक एवं पाचक है। **महाजम्बू** उष्ण, मधुर तथा कषाय रस वाली है और श्रम, थकावट को दूर करने वाली है। यह मुख की जड़ता का शीघ्र ही नाश करती है, और स्वर को बढ़ाती है। यह विष्टम्भ कारक है शोथ को शान्त करती है। यह थकावट तथा अतिसार का नाश करती है श्वास तथा कास को शान्त करती है। **काकजम्बू** कषाय तथा अम्ल रस वाली है और पाक में मधुर है तथा गुरु है। यह दाह, श्रम तथा अतिसार को नष्ट करती है और वीर्य, बल एवं पुष्टि प्रदान करती है। **भूमिजम्बू** कषाय तथा मधुर रस वाली तथा कफ एवं पित्त विकार को नष्ट करती है। यह हृदय को बल देने वाली, ग्राही, हृदय तथा कण्ठ दोषों को नष्ट करती है तथा वीर्य तथा पुष्टि को देने वाली है।

भावप्रकाश के अनुसार- जामुन ग्राही तथा रूक्ष है और कफ-पित्त-रक्त तथा दाह को जीत लेती है। **राज-जम्बू** फल स्वादिष्ट, विष्टम्भ कारक, गुरु तथा रोचक है।

राजवल्लभ के अनुसार- जामुन का फल गुरु, विष्टम्भकारक, कषाय तथा स्वादिष्ट एवं शीतल है। यह जाठराग्नि को दूषित करने वाली, रूक्ष, वात कारक तथा कफ पित्त को दूर करने वाली है।

द्रव्यगुण रत्नाकर के अनुसार- जामुन का फल वात कारक, ग्राही, रूक्ष तथा पित्त विकार एवं कफ विकार का नाशक है।

वृहन्निघण्टु रत्नाकर के अनुसार- जामुन की मज्जा कषाय रस वाली तथा ग्राही है और विशेषकर मधुमेह का नाश करने वाली है।

वैद्यक शास्त्र में जामुन का प्रयोग-

(१) **अग्र ग्रन्थों में जामुन-** जामुन का फल वात बढ़ाने वालो में प्रथम है। (च.सू.अ.२५)। (२) **व्रण रोपणार्थ जम्बू फल का प्रयोग-** लोध, जामून तथा कायफल के छाल का चूर्ण अवचूर्ण करने से शीघ्र ही व्रण में त्वचा को उत्पन्न करता है। (च.चि.अ.१३)। (३) **पित्तज वमन में जामुन के पल्लव का प्रयोग-** जामुन तथा आम के पल्लव का कषाय पित्तज वमन में शीतल कर तथा शहद मिलाकर पान करे। (च.चि.अ. २३)।

(१) **अतिसार में रक्तस्राव को दूर करने के लिए जामुन के छाल का प्रयोग-** शल्लकी, वैर तथा जामुन के छाल का चूर्ण दूध तथा मधु मिलाकर पान करने से, अलग-अलग पान करने से अतिसार रोग में रक्तस्राव को रोकता है। (चक्र.अतिसार चि.)। (२) **बालग्रहणी में जम्बू छाल का प्रयोग-** जामुन की छाल का चूर्ण समान भाग बकरी का दूध मिलाकर पान करने से बालकों का ग्रहणी रोग शान्त होता है। (चक्र. वालरोग चि.)।

Constituents—The seed contains jambulin a glucoside; also a trace of essential oil, chlorophyll, fat, resin, gallic acid, albumen etc. The bark contains tannin 12 p.c. and a kino-like gum.

Actions and uses—The juice of the ripe fruit or syrup is stomachic, astringent, and diuretic acid given in scanty urine. The decoction of bark is astringent and used in diarrhoea of children, in chronic dysentery, as a gargle mixed with Dhumaso for the relief of spongy gums, and sore, cracked or irritable tongue. A paste of the leaves is used to promote healthy discharges from indolent sores or from unhealthy ulcers. The extract of the powdered seeds and dried fruits is used in diabetes. It checks diastatic conversion of starch into sugar in cases depending on increased production of glucose. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 269).

जम्बीर:

Citrus Acida

जम्बीर:, महाजम्बीर:, लिम्पाक:–*Citrus acida.* अन्वर्थसंज्ञा– "दन्तहर्षण:"। मातुलुङ्ग:, बीजपूर:–*Citrus medica.* नागरङ्ग:–*C. aurantium.* मधुकर्कटिका–*C. decumana.* मिष्टनिम्बू:–*C. nobilis.* अन्वर्थसंज्ञा मातुलुङ्गस्य–"गन्धकुसुम:", "दन्तुरत्वच:", "वराम्ल:", "केसराम्ल:", "कृमिघ्न:", "रोचनफल:"। जम्बीरभेदा: धन्वन्तरीयनिघण्टूक्ता:–(१) जम्बीर:, (२) मधुजम्बीर:, (३) नारङ्ग:, (४) बीजपुर: (मातुलुङ्ग:), (५) मधुकर्कटी॥ राजनिघण्टूक्ता:–(१) जम्बीर:, (२) मधुजम्बीर:, (३) निम्बूक:, (४) नारङ्ग:, (५) बीजपुर:, (मातुलुङ्ग:), (६) मधुकर्कटी, (७) वनबीजपूरक:॥ भावप्रकाशोक्ता:–(१) निम्बू:, (२) मिष्टनिम्बू:, (३) बीजपुर: (मातुलुङ्ग:), (४) मधुकर्कटिका, (५) जम्बीरद्वयम्॥ राजवल्लभोक्ता:–(१) मातुलुङ्ग:, (२) जम्बीर:, (३) मधुकर्कटिका, (४) नागरङ्ग:॥ तृष्णाशूलकफोत्क्लेशच्छर्दिश्वासनिवारण:। वातश्लेष्मविबन्धघ्नं 'जम्बीरं' गुरु पित्तलम्॥ अम्लं समधुरं हृद्यं विषदं भक्तरोचनम्। वातघ्नं दुर्जरं प्रोक्तं 'नागरङ्गफलं' गुरु॥ श्वासकासारुचिहरं तृष्णाघ्नं कण्टशोधनम्। लघूष्णं दीपनं हृद्यं 'मातुलुङ्ग'मुदाहृतम् ॥ 'त्वक्' तिक्ता दुर्जरा तस्य वातकृमिकफापहा। स्वादु शीतं गुरु स्निग्धं 'मांसं' मारुतपित्तजित्॥ मेध्यं

शूलार्तिछर्दिघ्नं कफारोचकनाशनम्। दीपनं लघु सङ्ग्राहि गुल्मार्शोघ्नं तु 'केसरम्'॥ पित्तमारुतकृद्बल्यं पित्तलं 'बद्धकेसरम्'। हृद्यं वर्णकरं रुच्यं रक्तमांसबलप्रदम्॥ शूलाजीर्णविबन्धेषु मन्दाग्नी कफमारुते। अपचीश्वासकासेषु 'रसंस्तस्योपयुज्यते॥ 'रसो'ऽति मधुरो हृद्यो वीर्यपित्तनिलापहः। कफकृद्दुर्जरा पाके 'मातुलुङ्गजटा' कटुः॥ 'मूल'ञ्चैव क्रिमीन् हन्ति 'पुष्पबीजञ्च' गुल्मजित्॥ अन्यच्च–चेतोहारी 'रसेन' प्रथयति कटुतामम्लताञ्चापि धत्ते। हृद्रोगोदानगुल्मश्वसनकफहरः प्लीहकोपापहन्ता। 'वीर्यादर्शांसि कासग्रहणीमपहरत्यग्निकृत् पाचनोऽयम्। सन्धत्ते रक्तपित्तं 'परिणतिसमये' केसरो मातुलुङ्ग्याः॥ 'मधुकर्कटिका' स्वादुः शीता पित्तास्रजिद् गुरुः। एषा त्रिदोषजिद् वृष्या रुचिकृच्चैव दुर्जरा। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ मधुरो 'मधुजम्बीरो' शिशिरः कफपित्तजित्। अर्शोघ्नस्तर्पणो वृष्यः श्रमघ्नः पुष्टिकारकः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टू राजनिघण्टूश्च॥ जम्बीरस्य 'फलं' रसेऽम्लमधुरं वातापहं पित्तकृत्। पथ्यं पाचनरोचनं बलकरं वह्नेर्विवृद्धिप्रदम्। 'पक्वं' चेन्मधुरं कफार्त्तिशमनं पित्तास्त्रदोषापनुत्। वर्ण्यं वीर्यविवर्द्धनं च रुचिकृत् पुष्टिप्रदं तर्पणम्॥ निम्बूफलं प्रथितमम्लरसं कटूष्णं गुल्मामवातहरमग्निविवृद्धिकारि। चक्षुष्वमेतदथ कासकफार्त्तिकण्ठ-विच्छर्दिहारि परिपक्वमतीव रुच्यम्॥ 'नारङ्गं' मधुरञ्चाम्लं गुरूष्णं चैव रोचनम्। वातामकृमिशूलघ्नं श्रमहृद्बलरुच्यकम्॥ 'बीजपूरफल'मम्लकटूष्णं श्वासकासशमनं पाचनञ्च। कण्ठशोधनपरं लघु हृद्यं दीपनं च रुचिकृत् पाचनञ्च॥ तथाच–'बालं' पित्तमरुत्कफास्त्रकरणं 'मध्यञ्च' तादृग्विधम्। 'पक्वं' वर्णकरञ्च हृद्यमथ तत् पुष्णाति पुष्टिं बलम्। शूलाजीर्णविबन्धमारुतकफश्वासार्त्तिमन्दाग्निजित्। कासारोचकशोकशान्तिदमिदं स्यान्मातुलिङ्गं सदा॥ अन्यच्च–'त्वक्' तिक्ता दुर्जरा स्यात् कृमिकफपवनध्वंसिनी स्निग्धमुष्णम्। 'मध्यं' शूलार्त्तिपित्तप्रशमनमखिलारोचकघ्नञ्च गौल्यम्। वातार्त्तिघ्नं कटूष्णं जठरगदहरं 'केसरं' दीप्यमम्लं 'बीजं' तिक्तं कफार्शःश्वयथुशमकरं बीजपूरस्य पथ्यम्॥ 'मधुकर्कटी' मधुरा शिशिरा दाहनाशिनी। त्रिदोषशमनी रुच्या वृष्या च गुरुदुर्जरा॥ अम्लः कटूष्णो 'वनबीजपुरो' रुचिप्रदो वातविनाशनश्च। स्यादम्लदोषः कृमिनाशकारी कफापहः श्वासनिषूदनश्च॥ राजनिघण्टुः॥ निम्बूकं कृमिसमूहनाशनं तीक्ष्णमम्लमुदरग्रहापहम्। वातपित्तकफशूलिने हितं कष्टनष्टरुचिरोचनं परम्॥ त्रिदोषवह्निक्षयवातरोगनिपीडितानां विषविह्वलानाम्। मन्दानले बद्धगुदे प्रदेयं विसूचीकायां मुनयो वदन्ति॥ 'मिष्टनिम्बूफलं' स्वादु गुरुमारुतपित्तनुत्। गररोगविषध्वंसि कफोत्क्लेशि च रक्तहृत्॥ शोषारुचितृषाच्छर्दिहरं बल्यञ्च वृंहणम्॥ 'बीजपूरफलं' स्वादु रसेऽम्लं दीपनं लघु। रक्तपित्तहरं कण्ठजिह्वाहृदयशोधनम्॥ श्वासकासारुचिहरं हृद्यं तृष्णाहरं स्मृतम्॥ 'मधुकर्कटिका' स्वाद्वी रोचनी शीतला गुरुः। रक्तपित्तक्षयश्वासकासहिक्काश्रमापहा॥ 'जम्बीर'-मुष्णं गुर्वम्लं वातश्लेष्मविबन्धनुत्। शूलकासकफोत्क्लेशच्छर्दितृष्णामदोषजित्॥ आस्यवैरस्य-हृत्पीडावह्निमान्द्यक्रिमीन् हरेत्। 'स्वल्पजम्बीरिका' तद्वत् तृष्णाछर्दिनिवारणी॥ भावप्रकाशः॥ मातुलुङ्गफलं हृद्यमम्लं लघ्वग्निदीपनम्। श्वासकासारुचिहरं तृष्णाघ्नं कण्ठशोधनम्॥ विबद्धे चैव हिक्कायां शूले छर्द्याञ्च शस्यते॥ 'लिम्पाकं' सुरभि स्वादु नात्यम्लं भक्तरोचकम्। वातश्लेष्महरं हृद्यं छर्दिघ्नं नातिपित्तकृत्॥ जम्बीरं मधुरं किञ्चिदत्यम्लं पित्तकृद् गुरु। सुगन्धि दुर्जरं वह्निकफवातविबन्धनुत्॥ 'मधुकर्कटिका' शीता श्लेष्मास्यस्य प्रसादनी। रुच्या स्वादुर्गुरुः स्निग्धा वातपित्तविनाशिनी॥

'नागरङ्ग'न्तु सुरभि विपाके दुर्जरं गुरु। नात्यम्लमीषन्मधुरं वृष्यं वातविनाशनम्॥ राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) गुल्मानाहयोः मातुलुङ्गमूलम्–"चूर्णानि मातुलुङ्गस्य भावितस्य रसेन वा। कुर्याद्वर्त्तीः सगुडिका गुल्मानाहार्त्तिशान्तये।" (चि. ५ अ.)। (२) पित्तं स्वमाशयमाननाय मातुलुङ्गरसः–"मातुलुङ्गरसं क्षौद्रं पिप्पलीमरिचान्वितम्। सनागरं पिबेत् पित्तं तथास्यैति स्वमाशयम्॥" (चि. २१ अ.)। चरकः॥ ज्वरकृते आस्यवैरस्ये मातुलुङ्गकेसरम्–"केसरं मातुलुङ्गस्य मधुसैन्धवसंयुतम्। वैरस्ये धारयेत् कल्कं...॥" (उ. ३९ अ.)। (२) रक्तपित्ते मातुलुङ्गपुष्पमूले–"मूलानि पुष्पाणि च मातुलुङ्ग्याः पिष्ट्वा पिबेत् तण्डुलधावनेन"। (उ. ४७ अ.)। सुश्रुतः॥ कर्णशूले मातुलुङ्गरसः–"रसेन बीजपुरस्य... पूरयेत्"। (उ. १८ अ.)। वाग्भटः॥ (१) पित्तज्वरिणः पिपासायां मातुलुङ्गकेसरम्–"केसरं मातुलुङ्गस्य मधुसैन्धवसंयुतम्। पेष्यमानं तालुलेपः सद्यः पित्ततृषापहः॥" (चि. २ अ.)। (२) तालुशोषे मातुलुङ्गकेसरम्–"केसरं मातुलुङ्गस्य पिष्टं तण्डूलवारिणा। प्रतप्तं मधुना तालुलेपः शोषापहः परः॥" (चि. १४ अ.)। (३) शर्कराय मातुलुङ्गमूलम्–"यो मातुलुङ्गिकामूलं पिबेत् पर्युषिताम्बुना। तस्यान्तः शर्करोद्भूतं दुःखं सद्यो विलीयते॥" (चि. २९ अ.)। (४) वातविसर्पे मातुलुङ्गरसः–"मातुलुङ्गरसेनापि धावनं वातसर्पिषु"। (चि. ३३ अ.)। (५) पित्तजे शिरोरोगे मातुलुङ्गकेसरम्–"केसरैर्मातुलुङ्गश्च पित्तजे शीतलेपनम्"। (चि. ३९ अ.)। (६) गुर्विणीनामरुचौ मातुलुङ्गकेसरम्–"...सकटुकं मातुलुङ्गस्य केसरम्। मार्जनं दन्तजिह्वासु गण्डूषश्चोष्णवारिणा॥ गुर्विणीनाञ्च सर्वासामरुचिञ्च नियच्छति।" (चि.५० अ.)। हारीतः॥ (१) ज्वरिणः अरुचौ मातुलुङ्गकेसरम्–"अरुचौ मातुलुङ्गस्य केसरं साज्यसैन्धवम्। ...आस्येन धारयेत्॥" (ज्वर-चि.)। (२) वातभवे शूले बीजपूरकमूलम्–"बीजपूरकमूलञ्च घृतेन सह पाययेत्। जायेद् वातभवं शूलं कर्षमेकं प्रमाणतः॥" (शूल-चि.)। (३) पार्श्वहृद्वस्तिशूले मातुलुङ्ग-रसः–"मातुलुङ्गरसो वापि...। सक्षारो मधुना पीतः पार्श्वहृद्वस्तिशूलनुत्॥" (शूल-चि.)। (४) अम्लपित्ते जम्बीररसः–"जम्बीरस्वरसः पीतः सायं हन्त्यम्लपित्तकम्" (अम्लपित्त-चि.)। (५) मसूरिकापाचनार्थं मातुलुङ्गकेसरम्–"सौवीरेण तु सम्पिष्टं मातुलुङ्गस्य केसरम्। प्रलेपात् पाचयत्याशु दाहञ्चाशु नियच्छति॥" (मसूरिका-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) घृतस्य परिपाकाय जम्बीररसः–"घृतस्य परिपाकाय जम्बीरस्य रसो हितः।" (अजीर्ण-चि.)। (२) हिक्कासु मातुलुङ्गरसः–"मधुसौवर्चलोपेतं मातुलुङ्गरसं पिबेत्।" (हिक्का-चि.)। भावप्रकाशः॥ (१) वमने मातुलुङ्गरसः–"मातुलुङ्गरसो लाजाशर्करामधुसंयुतः। पिप्पलीचूर्णसंयुक्तः श्रेष्ठ-श्छर्दिनिवारणः॥" (छर्दि-चि.)। (२) कृमिदन्तरुजायां बीजपूरकमूलम्–"बीजपूरकमूलस्य वाकूचीनां तथैव च। भागाभ्यां तु समं कृत्वा पिष्ट्वा वर्त्तिन्तु कारयेत्॥ एषा रदस्थवर्त्तिस्तु दन्तैर्दन्तैर्निपीडयेत्। सद्योऽवस्थितमात्रा तु कृमिदन्तरुजापहा॥" (मुखरोग-चि.)। वङ्गसेनः॥

विविध भाषाओं में नाम– सं.- जम्बीरः, दन्तशंठः, जम्भः, जम्भीरः-जम्भलः, जम्भदः, मातुलुङ्ग। सं.- फलपूरः, बीजपुरः, रुचकः, मातुलुङ्गकः। हि.- बिजौरा नीबु, मातुलुङ्ग। बं.- लेबू, टावालेबू।

जम्बीर आदिकी अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा– जम्बीरः–दन्तहर्षणः। **मातुलुङ्गः**– गन्धकुसुमः, दन्तूरत्वचः, वराम्लः, केसराम्लः, क्रिमिघ्नः, रोचनफलः। **धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार कहे गये जम्बीरादि के नाम–** १. जम्बीरः। २. मधुजम्बीरः। ३. नारङ्गः। ४. बीजपूरः (मातुलुङ्गः)। ५. मधुकर्कटी। **राजनिघण्टु के अनुसार–**

१. जम्बीर। २. मधुजम्बीरः। ३. निम्बूकः। ४. नारङ्गः। ५. बीजपूरः (मातूलुङ्ग)। ६. मधुकर्कटी। ७. बनवीजपूरकः। **भावप्रकाश के अनुसार–** १. निम्बुः। २. मिष्टनिम्बुः। ३. बीजपूरः (मातुलुङ्गः)। ४. मधुकर्कटिका। ५. जम्बीरद्वयम्। **राजवल्लभ के अनुसार–** १. मातुलुङ्गः। २. जम्बीरः। ३. मधुकर्कटिका। ४. नारङ्गः।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार– जम्बीर का गुण– जम्बीरी नीम्बू प्यास, शूल, कफ विकार, उत्क्लेश, वमन तथा श्वास को दूर करता है और वात विकार, कफ विकार एवं विबन्ध को नष्ट करता है तथा गुरु एवं पित्त कारक है। **नारङ्ग का फल** अम्ल रस प्रधान, मधुर पाकी, हृदय को बल देने वाला, विकार, प्यास नाशक तथा भोजन में रुचि बढ़ाने वाला है। यह वात नाशक है, दुष्पच है तथा गुरु है। मातुलुङ्ग श्वास, कास तथा अरुचि नाशक, तृष्णा नाशक तथा कफ शोधक है। यह हल्का है, उष्ण है, जाठराग्नि दीपक है तथा हृदय को बल देने वाला है। **मातुलुङ्ग की त्वचा** तिक्त रस प्रधान तथा दुर्जर और वात विकार क्रिमि रोग तथा कफ विकार को दूर करती है। यह स्वादिष्ट, शीतल, भारी, स्निग्ध है और इसका मसल्स (मांस) भाग वात तथा पित्त को दूर करने वाला है। **मातुलुङ्ग का केशर** मेधा को बढ़ाने वाला, शूल, पीड़ा तथा वमन का नाश करने वाला तथा कफ विकार एवं अरोचक का नाश करने वाला है। यह जाठराग्नि दीपक, लघु तथा ग्राही है और गुल्मरोग एवं अर्शरोग का नाश करता है। **मातुलुङ्गबद्ध केशर** पित्त विकार तथा वात विकार को बढ़ाने वाला है, पित्त वर्द्धक है, हृदय को बल देने वाला, वर्णकारक, रुचिकारक, तथा रक्त, मांस एवं बल को बढ़ाने वाला है। **मातुलुङ्ग का रस-** मातुलुङ्ग के रस का प्रयोग शूल, अजीर्ण, विबन्ध, मन्दाग्नि, कफ विकार वात विकार, अपची, श्वास रोग तथा काश रोग में होता है। इसका रस अधिक मधुर, हृदय को बल देने वाला, वीर्य, पित्त विकार तथा वात विकार का नाश करने वाला है। **मातुलुङ्ग की जटा** कफ कारक, पाक में दुष्पच तथा कटु रस प्रधान है। **मातुलुङ्ग का मूल** क्रिमि रोग का नाश करता है। उसका पुष्प तथा बीज गुल्म रोग को दूर करता है।

अन्यत्र भी कहा गया है- मातुलुङ्ग चित्त का हरण करने वाला है, रस में कटु प्रतीत होता है, अम्लता को भी बढ़ाता है। यह हृदय रोग, उदान वायु, गुल्मरोग, श्वास रोग तथा कफ विकार को दूर करता है और प्लीह के प्रकोप का नाश करता है; वीर्य, अर्श विकार, कास तथा ग्रहणी को दूर करता है, जाठराग्नि को बढ़ाता है तथा पाचन है। मातुलुङ्ग का केशर पाक के समय में रक्त पित्त को बढ़ाता है। **मधुकर्कटिका** स्वादिष्ट तथा शीतल है और रक्त पित्त को दूर करता है तथा गुरु है। यह तीनों दोषों को शान्त करने वाली, वीर्यवर्द्धक, रुचिकारक एवं दुष्पच है।

धन्वन्तरि निघण्टु तथा राज निघण्टु के अनुसार- मधुजम्बीर मधुर तथा शीतल है और कफ विकार एवं पित्त विकार को दूर करता है। यह अर्श रोग का नाश करता है, तृप्ति कारक है, वीर्य वर्द्धक है, श्रम नाशक है तथा बलकारक है।

राजनिघण्टु के अनुसार- जम्बीरी नींबू का फल रस में अम्ल है तथा मधुर है। यह वातनाशक है तथा पित्त कारक है; पथ्य है, पाचक है, रुचि कारक है, बल वर्द्धक है तथा जाठराग्नि को बढ़ाने वाला है। **पका हुआ जम्बीर का फल** मधुर होता है, कफ तथा पीड़ा को शान्त करने वाला है और रक्त पित्त के दोष को दूर करता है। यह वर्णकारक है, वीर्य वर्द्धक है, रुचिकारक है, पुष्टिकारक है तथा तृप्ति कारक है। **निम्बू का फल** अम्ल रस वाला, कटु तथा उष्ण होता है और यह गुल्म तथा आम वात को दूर करता है तथा जाठराग्नि

को बढ़ाने वाला है। यह नेत्र के लिए हितकर है और कास कफ विकार एवं कण्ठ रोग को नष्ट करता है। **पका हुआ निम्बू** अधिक रुचिकारक होता है। नारङ्ग (नारङ्गी) मधुर, अम्ल रस वाला, गुरु तथा उष्ण है और रुचि कारक है; इनके अतिरिक्त आमवात, क्रिमि रोग तथा शूल का नाश करता है, श्रम को दूर करता है तथा बल वर्द्धक एवं रुचि कारक है। **बीजपूर का फल** अम्ल रस, कटु तथा उष्ण है ओर यह श्वास-कास को शान्त करने वाला एवं पाचक है। कण्ठ को शुद्ध करने वाला है, लघु है, हृदय को बल देने वाला है, जाठराग्नि दीपक, रुचिकारक तथा पाचक है। और भी इसके गुण हैं- **बाल निम्बू फल** पित्त विकार, वात विकार तथा रक्त पित्त को बढ़ाने वाला है। **नीम्बू का मध्य भाग** पूर्वोक्त गुण से युक्त होता है। **पका हुआ नीम्बू** वर्णकारक, हृदय को बल देने वाला है और पुष्टि तथा बल को पुष्ट करता है। यह शूल, अजीर्ण, विबन्ध, वात विकार, कफ विकार, पीड़ा तथा मन्दाग्नि को शीघ्र ही दूर करता है। मातुलुंग हमेशा कास, अरोचक तथा शक्ति को देता है। और भी- **नारङ्गी का छिलका** तिक्त रस प्रधान तथा दुष्पच होता है। यह क्रिमि रोग, कफ विकार तथा वात विकार का नाश करने वाली है, स्निग्ध है तथा उष्ण है। **नारंगी का मध्य भाग** शूल, पीड़ा तथा पित्त को शान्त करने वाला, सम्पूर्ण अरोचक का नाश करने वाला तथा गले के लिए हितकर है। **नारंगी का केशर** वात विकार का नाश करने वाला, कटु रस प्रधान तथा उष्ण है; उदर विकार को दूर करने वाला तथा जाठराग्नि दीपक है। **नारंगी का बीज** तिक्त रस वाला है तथा कफ विकार, अर्श रोग एवं शोथ को शान्त करने वाला है। बीजपुर का बीज पथ्य है। **मधु कर्कटी** मधुर तथा शीतल है और दाह को शान्त करने वाली है, त्रिदोष शामक है, रुचि कारक है, वीर्य वर्द्धक है, गुरु तथा दुर्जर है। वन बीजपुर रुचिप्रद तथा वातनाशक है और अम्ल रोग एवं क्रिमि नाशकारक है, कफ नाशक है तथा श्वास को दूर करने वाला है।

भावप्रकाश के अनुसार- नीम्बू क्रिमि समूह का नाश करने वाला, तीक्ष्ण है, अम्ल रस वाला है तथा उदर रोग एवं ग्रह वाधा को दूर करने वाला है, वात विकार, कफ विकार तथा शूल के रोगियों के लिए हितकर है, कष्ट से नष्ट रुचि को बढ़ाने वाला है। यह त्रिदोष, मन्दाग्नि तथा वातरोग से पीड़ित व्यक्तियों के लिए और विष विकार से विकल लोगों के लिए मन्दाग्नि, विबन्ध तथा विसूचिका रोग में प्रयोग करे, ऐसे मुनियों ने कहा है। **मीठा नींबू** फल स्वादिष्ट तथा गुरु है और वात-पित्त को दूर करता है; गर रोग तथा विष विकार का नाश करने वाला, कफ को बढ़ाने वाला तथा रक्त विकार को दूर करता है। यह शोष, अरुचि, प्यास तथा वमन को दूर करता है, बल कारक है एवं श्वास वर्द्धक है। **बिजौरा निम्बू का फल** स्वादिष्ट, रस में अम्ल है तथा दीपक एवं लघु है। यह रक्त पित्त को दूर करता है, कण्ठ, जिह्वा तथा हृदय को शुद्ध करता है। यह श्वास, कास तथा अरुचि को दूर करता है, हृदय को बल देता है और प्यास को शान्त करता है। मधुकर्कटिका स्वादिष्ट, रुचि कारक, शीतल तथा गुरु है। यह रक्त-पित्त, क्षय रोग, श्वास, कास, हिक्का तथा थकावट को दूर करता है। **जम्बीरी नीबू** उष्ण, गुरु तथा अम्ल रस है और वात विकार, कफ विकार एवं विबन्ध को दूर करता है। यह शूल, कास, कफ निकलना, वमन, प्यास तथा आम दोष को जीत लेता है। इनके अतिरिक्त यह मुख की विरसता को, हृदयशूल, मन्दाग्नि तथा क्रिमि रोग को दूर करता है। **स्वल्प जम्बीरिका** पूर्वोक्त गुण वाली है तथा प्यास एवं वमन को दूर करने वाली है।

राजवल्लभ के अनुसार- मातुलुंग का फल हृदय को बल देने वाला, अम्ल रस प्रधान, लघु तथा अग्नि दीपक है; श्वास, कास तथा अरुचि को दूर करता है; प्यास का नाश करता है तथा कण्ठ को शुद्ध करता है। यह विबन्ध में, हिक्का में, शूल में तथा वमन में प्रशस्त है। **लिम्पाक** सुगन्धि तथा स्वादिष्ट है तथा यह अधिक अम्ल नहीं है और भोजन में रुचि कारक है। यह वात-कफ विकार का नाश करने वाला, हृदय को

बल देने वाला, वमन का नाश करने वाला तथा अधिक पित्त कारक नहीं है। **जम्बीर** मधुर, थोड़ा अम्ल है तथा पित्त कारक एवं गुरु है। यह सुगन्धित, दुष्पच, तथा मन्दाग्नि, कफ विकार, वात विकार एवं विबन्ध को दूर करता है। **मधुकर्कटिका** शीतल है और कफ तथा मुख को प्रसन्न करने वाली है, रुचिकारक है, स्वादिष्ट है, गुरु है, स्निग्ध है तथा वात पित्त का नाश करने वाली है। **नारङ्गी** सुगन्धित, विपाक में दुष्पच तथा गुरु है। यह अधिक अम्ल नहीं है, थोड़ा मधुर है, वीर्य वर्द्धक है तथा वातनाशक है।

वैद्यक शास्त्र में मातुलुङ्ग का प्रयोग– (१) गुल्म तथा आनाह रोग में मातुलुङ्ग के मूल का प्रयोग- मातुलुङ्ग के मूल के चूर्ण को मातुलुङ्ग के रस में भावित कर तथा गुड़ मिलाकर वर्ति बनावे। यह वर्ति गुल्म, आनाह तथा पीड़ा को नष्ट करती है। (च.चि.अ.५)। (२) **पित्त को पित्ताशय में लाने के लिए मातुलुङ्ग के रस का प्रयोग-** मातुलुंग का रस शहद, पीपर तथा मरिच का चूर्ण तथा सोंठ का चूर्ण मिलाकर पान करे। यह पित्त को पिताशय में ले जाता है। (च.चि.अ.२१)।

(१) ज्वरजन्य मुख की विरसता में मातुलुङ्ग के केशर का प्रयोग- मुख की विरसता में मातुलुंग के केशर को मधु तथा सेन्धा नमक मिलाकर उसके कल्क का मुख में धारण करे। (सु.उ.अ.३९)। (२) **रक्त पित्त में मातुलुंग के पुष्प तथा मूल का प्रयोग-** मातुलुङ्ग के मूल तथा पुष्प को पीसकर चावल के धोअन के साथ पान करे। (सु.सू.अ.९)।

मातुलुंग के रस का प्रयोग- विजौरा नीम्बू के रस को कर्ण शूल में कान में छोड़े। (वाग्भट, उ.अ.१८)।

(१) पित्तज्वर के रोगी के पिपासा में मातुलुंग के केशर का प्रयोग- मातुलुंग के केशर को मधु तथा सेन्धा नमक मिलाकर तथा पीस कर तालु में लेप करे। यह शीघ्र ही पैतिक तृषा शान्त करता है। (हा.चि. अ.२)। (२) **तालु शोष में मातुलुंग के केशर का प्रयोग-** मातुलुंग के केशर को चावल के धोअन के साथ पीसकर गरम कर तथा मधु मिलाकर तालु में लेप करे। यह तालु शोष को दूर करता है। (हा.चि.अ.१४)। (३) **शर्करा रोग में मातुलुंग के मूल का प्रयोग-** जो मनुष्य मातुलुंग के मूल का चूर्ण वासी जल से पान करता है उसके अन्दर की शर्करा जन्य दुःख शीघ्र ही नष्ट होता है (हा.चि.अ.२९)। (४) **वात विसर्प में मातुलंग के रस का प्रयोग-** वात विसर्प में मातुलुंग के रस से प्रक्षालन करे। (हा.चि.अ.३३) (५) **पित्तज शिरो रोग में मातुलुंग के केशर का प्रयोग-** मातुलुंग के केशर को पित्तज शिरो रोग में शीतल कर लेप करे। (हा.चि. अ.३९)। (६) **गुर्विणी (गर्भवती) स्त्रियों के अरुचि में मातुलुंग केशर का प्रयोग-** मातुलुंग के केशर मरिच का चूर्ण मिलाकर दन्त तथा जिह्वा में मार्जन करने से तथा गरम जल के साथ गण्डूष धारण करने से गर्भिणी के सभी प्रकार के अरुचि को दूर करता है। (हा.चि.अ.५०)।

(१) ज्वर रोगी के अरुचि में मातुलुंग के केशर का प्रयोग- मातुलुंग के केशर को घी तथा सेन्धा नमक मिलाकर ज्वर रोगी के अरुचि में मुख में धारण करे। (चक्र.ज्वर चि.)। (२) **वातजन्य शूल में बीजपूर के मूल का प्रयोग-** बिजौरा नींबू के मूल को घृत के साथ एक कर्ष की मात्रा में पान कराये। यह वातजन्य शूल को दूर करता है। (चक्र.शूल–चि.)। (३) **पार्श्व हृदय तथा वस्ति शूल में मातुलुंग के रस का प्रयोग-** मातुलुंग का रस क्षार मिलाकर मधु के साथ पान करे। यह पार्श्व शूल, हृदय शूल तथा वस्ति शूल को नष्ट करता है। (चक्र.शूल चि.)। (४) **अम्ल पित्त में जम्बीर रस का प्रयोग-** सायंकाल जम्बीर का रस पान करने से अम्ल पित्त को दूर करता है। (चक्र.अम्लपित्त चि.)। (५) **मसूरिका के पाक के लिए मातुलुंग के केशर का प्रयोग-** मातुलुंग का केशर सौवीर के साथ पीसकर लेप करने से मसुरिका का शीघ्र ही पाक करता है तथा दाह का नाश करता है। (चक्र.मसू.चि.)।

(१) घृत के परिपाक के लिए जम्बीरी नीम्बू के रस का प्रयोग- घृतजन्य अजीर्ण की शान्ति के लिए जम्बीरी नीम्बू के रस का प्रयोग हितकर होता है। (भाव.अजीर्ण चि.) **(२) हिक्का में मातुलुंग के रस का प्रयोग-** हिक्का रोग में मातुलुंग के रस में मधु तथा सौवर्चल नमक मिलाकर पान करे। (भाव.हिक्का चि.)।

(१) वमन में मातुलुंग के रस का प्रयोग- मातुलुंग का रस, धान का लावा, शक्कर तथा मधु मिलाकर और पीपर का चूर्ण मिलाकर पान करना वमन दूर करने में श्रेष्ठ है। (वंग. छर्दि चि.)। **(२) क्रिमि दन्त रोग की पीड़ा में बीजपूर के मूल का प्रयोग-** बिजोरा नीम्बू का मूल तथा वाकुची का मूल सम भाग दोनों को पीस कर वर्ति बनावे और इस वर्ति को दांत पर रखकर दांत से चबाये। यह उचित मात्रा में दांत से दांत पर दबाने से दन्त क्रिमि को दूर करता है। (वंगसेन, मुखरोग चि.)।

Constituents of *C. medica*—Lemon juice contains citric acid 7 to 10 p.c., phosphoric and malic acids; also citrates of potassium and other bases; sugar mucilage and ash. Dose 4 to 6 drs. Lemon peel contains a volatile oil, hesperidin, a bitter crystaliine glucoside chiefly in the white of the rind; and ash 4 p.c. Hesperidin a bitter principle 5 to 8 p.c. in yellow crystals, sparringly soluble in boiling water and ether, readily soluble in hot acetic acid, also in alkaline solutions.

Actions and uses—The juice, rind of the fruits and volatile oil are used in medicine. The peel is bitter tonic and stomachic, used for favouring tinctures and infusions. It is also stimulant and carminative given in indigestion, flatulence, and as a corrective to purgatives. It is also extensively used to disguise the taste of medicines such as quinine, & c. The lemon juice is refrigerant, cooling and antiscorbutic, analogous to orange juice, but it contains more citric acid, less syrup, and hence called acid of lemons. The juice taken internally enters the blood as alkaline citrates, potassium salts and phosphoric acid. The citrates are partly oxidized into carbonic acid and water. The potassium salts and phosphoric acid act upon the red corpuscles. They precipitate uric acid and thus promote the formation of calculi. If long continued the juice or citric acid impairs digestion and impoverishes the blood. It is supposed to dissolve organic matters in the system; hence used in the treatment of atheroma. The fresh juice is useful in scarvy. It is an ingredient in many refrigerant and diuretic effervescing drinks, used allaying febrile heat and thirst in saponing restlessness, promoting the action of the skin and kidneys. It is given in inflamatory affections and in Dyspepsia with vomiting. Its power of conveying alkalies into the blood renders it useful in acute Rheumatic affections, Sciatica, Lumbago, & c., also given in obesity in large quantities with good results. It is often used with potassium bicarbonate and honey by the natives as a gargle in Diphtheria and sore throat. Externally it relieves itching if applied in sun-burn, and to check post partem haemorrhage. The essential oil is a stimulating liniment for the relief of Rheumatic pains. The juice of baked lemon is used in bilious affections and to stop diarrhoea. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., pp. 125-26).

जवा

Hibiscus Rosa Sinensis

जवा (पा)—*Hibiscus rosa sinensis, Shoe-flower.* **जातिः**—*Jasminum grandiflorum. Spanish Jasmine, Chambeli.*

अन्वर्थसंज्ञा–जवाया:–"ओड्रपुष्पम्" ("आ ईषदुनत्ति, उन्दी क्लेदने, ओडं पुष्पमस्य"), "रक्तपुष्पी", "अर्कप्रिया", "हरिवल्लभा", "सूर्याराधनसाधनी"। जवा तु कटुरुष्णास्या-दिन्द्रलुप्तकनाशकृत्। विच्छर्दिजन्तुजननी सूर्याराधनसाधनी॥" राजनिघण्टु:॥ जवा सङ्ग्राहिणी केश्या...। 'जातियुगं' (जाति: स्वर्णजातिश्च) तिक्तमुष्णं तुवरं लघु दोषजित्। शिरोऽक्षिमुखदन्तार्त्ति-विषकुष्ठानिलास्त्रजित्॥ भावप्रकाश:॥

वैद्यके व्यवहार:– (१) केशकृष्णीकरणे जवापुष्पम्–(भृङ्गराजे द्रष्टव्यम्)। (२) आर्त्तवलाभाय जवापुष्पम्–"सकाञ्जिकं जवापुष्पं... प्राश्य वनिता त्वार्त्तवं लभेत्"। (योनिव्यापत्-चि.)। चक्रदत्त:॥ (१) पूतिकर्णे जातीपत्ररस:–"जातीपत्ररसैस्तैलं विपक्वं पूतिकर्णजित्" (कर्णरोग-चि.)। (२) 'मुखपाके' जातिपत्रम्–"कार्यञ्च वहुधा नित्यं जातिपत्रस्य चर्वणम्" (मुखरोग-चि.)। भावप्रकाश:॥ सदाहमूत्रोष्ण्यवेदनाशमनार्थं जातीमूलम्–"अजाक्षीरेण सम्मिश्रं जातिमूलं प्रपेषितम्। पिबेत् सदाहमूत्रौष्ण्यवेदनाशमनं यत:॥" हारीत:॥

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– औड्रपुष्पम्, जपा। हि.– ओढ्रहुल, आढहुल, गुड़हल, जवाकुसुम। बं.– जवाकूलरे गाछ। म.– जासवन्द। गु.– जासव। ते.– मन्दारणु। क.– पीसनला। ता.– शुष्प पुष्पु। फा.– आन्धरी विन्ध, अं.– Shoe-flower, ले.– Hibiscus rosa sinensis.

जपाकुसुम की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा– जवाया: ओढ्रपुष्पम् (आ ईषदुनत्ति, उन्दी क्लेदने ओढ्रं पुष्पमस्य), रक्तपुष्पी, अर्कप्रिया, हरिवल्लभा, सूर्याराधनसाधनी।

गुण-दोष–

राजनिघण्टु के अनुसार– जवा (जपा) कटु रस प्रधान तथा उष्ण वीर्य है। यह इन्द्रलुप्त (गञ्जा) रोग का नाश करती है। यह वमन कारक है, जन्तुओं को उत्पन्न करती है तथा सूर्य की आराधना की साधन है।

भावप्रकाश के अनुसार– जवा ग्राही है तथा केश के लिए हितकर है। दोनों प्रकार की जाति (जाति, स्वर्ण जाति) तिक्त रस प्रधान, उष्ण, कसैला तथा लघु है और यह दोषों को जीत लेती है। यह सिर रोग, अक्षि रोग, मुख रोग तथा दन्त रोग की पीड़ा को, विष विकार, कुष्ठ रोग तथा वात रक्त को दूर करती है।

वैद्यक शास्त्र में जवा का प्रयोग–

(१) केश को काला करने में जवा कुसुम का प्रयोग– भृंगराज के वर्णन में बाल काला करने की विधि जवाकुसुम की लिखी गयी हैं। **(२) आर्तवलाभ के लिए जवाकुसुम का प्रयोग–** स्त्री जवाकुसुम को खाकर आर्तव को प्राप्त करती है। (चक्र.योनिव्यापत्ति चि.)।

(१) पूतिकर्ण में जातीपत्र के रस का प्रयोग– जातीपत्र के रस के साथ पकाया हुआ तैल पूतिकर्ण को जीत लेता है। (भावप्रकाश, कर्णरोग चि.)। **(२) मुखपाक में जातीपत्र का प्रयोग–** मुखरोग में अनेक बार जातीपत्र को चबाये। (भा. मुखरोग चि.)।

दाहयुक्त उष्ण मूत्र की वेदना नाश के लिए जातीमूल का प्रयोग– जाती (चमेली) के मूल को बकरी के दूध के साथ पीस कर पान करे। यह दाह युक्त उष्ण मूत्र की वेदना को शान्त करता है। (हा.सं.)।

Actions and uses of Shoe-flower—The petals are demulcent and emollient. As a refrigerant drink its infusion is given in fevers, as a demulcent in cough and cystitis; combined with milk, sugar and cumin; it is given in gonorrhoea. In menorrhagia, combined with lotus root the bark of *Eerisdendron anfractuosum*, it is of benefit. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 98).

Constituents *of Jasminum grandiflorum*—Resin, salicylic acid, an alkaloid—named jasminine and an astringent principle.

Actions and uses—Astringent. The juce of the leaves or the oil is dropped into the ear in otorrhoea. The leaves are chewed, or locally applied to aphthous sores or ulcers in the mouth. As uterine sedative a poultice of the leaves and flowers is applied over the genitals, pubis and loins, in painful menstruation, and in loss of venereal desire. The fresh juice of the leaves is applied to soft corns with relief. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 435).

जया

Sesbania Aegyptiaca Pers.

जया, जयन्ती–*Sesbania aegyptiaca Pers. Aeschynomene sesban Roxb.*

अन्वर्थसंज्ञा– "सूक्ष्ममूला", "केशरुहा", "विषमोहप्रशमनी"। विषघ्नी तिक्तकटुका कफपित्तसमीरजित्। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ ज्ञेया जयन्ती गलगण्डहारी (मदगन्धयुक्ता) तिक्ता कटूष्णाऽनिलनाशनी च। भूतापहा कण्ठविशोधनी च कृष्णा तु सा तत्र रसायनी स्यात्॥ राजनिघण्टुः॥ जयन्ती कफपित्तघ्नी क्रिमिशोथविषप्रणुत्। मदगन्धवती तिक्ता कटूष्णा कण्ठशोधिनी॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यववहारः– (१) ज्वरे जयन्तीमूलम्–"मूलं जयन्त्याः शिरसा धृतं सर्वज्वरापहम्।" (ज्वर-चि.)। (२) इक्षुमेहे जयन्तीमूलम्–"पारिजातजया...। जलेक्षुमद्य... मेहान् क्रमादघ्नन्ति चाष्टौ क्वाथाः समाक्षिकाः।" (प्रमेह-चि.)। (३) मेढ्रपाके जयापत्रम्–"जयाजात्यश्वमारार्क... दलैः पृथक्। कृतं प्रक्षालने क्वाथं मेढ्रपाके प्रयोजयेत्॥" (उपदंश-चि.)। (४) श्वित्रे श्वेतजयन्तीमूलम्–"श्वेतजयन्तीमूलं पिष्टं पीतञ्च गव्यपयसैव। श्वित्रं निहन्ति नियतं रविवारे वैद्यनाथाज्ञा॥" (कुष्ठ-चि.)। (५) प्रथममघगदे दृश्यमाने जयन्तीबीजम्–"पीतं बीजं जयायाः सघृतं..." (मसूरिका-चि.)। (६) प्रतिश्याये जयन्तीपत्रम्–"पुटपक्वं जयापत्रं सिन्धुतैलसमन्वितम्। प्रतिश्यायेषु सर्वेषु शीलितं परमौषधम्॥" (नासारोग-चि.)। चक्रदत्तः॥ गर्भधारणवारणाय जयन्तीकुसुमम्–"आरणालपरिपेषितं त्र्यहं या जयाकुसुममत्ति पुष्पिनी। सह पुराणगुडमुष्टिसेविनी सन्दधाति न हि गर्भमङ्गना॥" (बन्ध्या-चि.)। भावप्रकाशः॥

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– **जया**– जयन्ती, तर्कारी, नादेयी, वैजयन्तिका। हि.– जाही। जैन्तिगाछ। म.– शिभारी। ता.– चम्पाई। ते.– सोमान्ति। अ.– हर्–एल्ककृद। फा.– सिमिरन्। ले.– Sesbania aegyptiaca Pers.

जया, जयन्ती की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा- सूक्ष्ममूला, केशरुहा, विषमोहप्रशमनी।

गुण-दोष-

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- जया (जयन्ती) विषनाशक है। यह तिक्त तथा कटु रस वाली है और कफ-पित्त एवं वात विकार को दूर करती है।

राजनिघण्टु के अनुसार- जयन्ती मदगन्ध से युक्त गलगण्ड रोग का नाश करने वाली है। यह तिक्त तथा कटु रस वाली है तथा वात रोग का नाश करती है। यह भूत बाधा का नाश करती है, कण्ठ को शुद्ध करने वाली है और कृष्णा जयन्ती रसायन गुण वाली है।

भाव प्रकाश के अनुसार- जयन्ती कफ तथा पित्त का नाश करने वाली, क्रिमि रोग, शोथ तथा विष विकार को दूर करने वाली है। मदगन्ध वाली जयन्ती तिक्त तथा कटु रस प्रधान तथा उष्ण है और कण्ठ को शुद्ध करती है।

वैद्यक शास्त्र में जयन्ती का प्रयोग-

(१) ज्वर में जयन्ती मूल का प्रयोग- जयन्ती के मूल का सिर पर धारण करने से सभी प्रकार के ज्वर को दूर करती है। (चक्र.ज्वर चि.)। (२) **इक्षुमेह में जयन्ती मूल का प्रयोग**- पारिजात तथा जया का जलमेह, इक्षुमेह तथा मद्यमेह में मधु के साथ प्रयोग करे। यह आठ प्रकार के मेहों का नाश करता है। (चक्र.प्रमेह चि.)। **(३) मेढ्रपाक में जया पत्र का प्रयोग**- जया, जाती तथा अश्वमार (कनैल) के पत्तों से अलग-अलग बनाया क्वाथ मेढ्रपाक में प्रक्षालन करने के लिए प्रयोग करे। (चक्र.उपदंश चि.)। (४) **शिवत्र रोग में जयन्ती मूल का प्रयोग**- श्वेत जयन्ती मूल को पीस कर गाय के दूध के साथ रविवार को पान करते हैं। शिवत्र कुष्ठ को अवश्य नष्ट करता है ऐसा वैद्यनाथ जी की आज्ञा है। (चक्र.कुष्ठ चि.)। (५) **प्रथम अद्यगद (मसूरिका) के दिखाई देने पर जयली बीज का प्रयोग**- जया के बीज को पीस कर घी के साथ पान करे। (चक्र.मसूरिका चि.)। (६) **प्रतिश्याय में जयन्ती पत्र का प्रयोग**- जयन्ती पत्र के पुटपाक के द्वारा रस निकाल कर तथा उसमें सेन्धा नमक एवं तेल मिलाकर नस्य लेने से सभी प्रकार के प्रतिश्याय में परम औषध है अर्थात् अच्छी तरह लाभ करता है। (चक्र.नासारोग चि.)। **भावप्रकाश के अनुसार- गर्भधारण को रोकने के लिए जयन्ती पुष्प का प्रयोग**- आरनाल (काञ्जी) के साथ जयन्ती के पुष्प को पीस कर जो स्त्री (पुष्पिणी) तीन दिन तक पान करती है तथा पुराने गुड़ का एक मुष्टि की मात्रा में सेवन करती है वह गर्भ को नहीं धारण करती है। (भा. बन्ध्या चि.)।

Constituents—The seeds contain a fixed oil, an odorous body, resin, sugar, an organic acid, gum, proteids and ash 5 p.c.

Actions and uses—The seeds and the juice of the bark are astringent and given in diarrhoea. The leaves are used as a poultice to promote suppuration. The powdered seeds are applied to relieve the pain of the scorpion bites. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., p. 230).

जातिः

Myristica Fragrans

जातिफलम्–*Myristica fragrans, Nutmeg.* **जातिपत्री**–*Mace.*

अन्वर्थसंज्ञा– 'जातिफलस्य'–"मदशौण्डम्"। 'जातिपत्र्याः–"मलनाशिनी"। 'जातीफलं' कषायोष्णं कटु कण्ठामयार्त्तिजित्। वातातिसारमेहघ्नं लघु वृष्यञ्च दीपनम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टू राजनिघण्टुश्च॥ 'जातिपत्री' कटुका स्यात् सुरभिः कफनाशिनी। वक्त्रदौर्गन्ध्यहृद्व्रण्यर्या विषहृत् कायकान्तिदा॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ 'जातिपत्री' कटुस्तिक्ता सुरभिः कफनाशनी। वक्त्रवैशद्यजननी जाड्यदोषनिकृन्तनी॥ राजनिघण्टुः॥ 'जातिफलं' रसे तिक्तं तीक्ष्णोष्णं रोचनं लघु। कटुकं दीपनं ग्राहि स्वर्यं श्लेष्मानिलापहम्॥ निहन्ति मुखवैरस्यमलदौर्गन्ध्यकृष्णताः। क्रिमिकासवमिश्वासशोषपीनसहृद्रुजः॥ 'जातिपत्री' लघुः स्वादुः कटूष्णा रुचिवर्णकृत्। कफकास-वमिश्वासतृष्णाक्रिमिविषापहा॥ वक्त्रवैशद्यजननी तिक्ता दौर्गन्ध्यहारिणी। भावप्रकाशः॥ 'जातीफलं' तृषाछर्दिशूलघ्नं वातपित्तजित्। 'जातीपत्री' लघुस्तृष्णातोददौर्गन्ध्यजिन्मता॥ राजवल्लभः॥ 'तैलं' जातिफलोद्भूतं समुत्तेजनमग्निदम्। जीर्णातिसारशमनमाध्मानाक्षेपशूलहृत्॥ आमवातहरं बल्यं दन्तवेष्टव्रणार्त्तिनुत्। आत्रेयसंहिता॥

वैद्यके व्यवहारः–पिपासोत्क्लेशयोर्जातिफलम्–"पिपासायामथोत्क्लेशे जातिफलस्य वा शीतम्।" (अग्निमान्द्य-चि.)। चक्रदत्तः॥ व्यङ्गनीलिकायाः जातिफलम्–"जातिफलस्य लेपस्तु हरेद् व्यङ्गञ्च नीलिकाम्" (मुखरोग-चि.)। भावप्रकाशः॥ विपादिकायां जातिफलम्–"पिष्ट्वा जातीफलं लेपाद्विनिहन्ति विपादिकाम्" (कुष्ठाधिकारः) वङ्गसेनः।

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– जातीफलम्, जातीकोषः, मालवीफलम्। हि.-ब.-म.-पं.– जायफल। गु.-क.– जाईफल। ते.– जाजीकाया। ता.– जादिकराय, जाति वकाया। ब्रह्मी– जादिक्षु। द्रा.– जादिकाई। फा.– जोजा वोया। अं.– जोग उतलीया। अं.– Nutmeg (नटमेग)। ले.– Myristica malabarica (मिरिष्टिका मालवेरिका)।

जातिपत्री–सं.– जातिपत्री, जातीफलत्वक्। हि.– जावित्री, जयित्री, जयित्रो। म.– वड़ इलाज, जौड़ी। म. क.ते.– जायपत्री। गु.– जावत्री। फा.– जावित्री। अ.– विसवासहे। अं.– Mace (मेस)। ले.– Myristica fragrans (मिरिष्टिका फ्रेगरेन्स)।

जातीफल की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा– मदशौण्डम्।

जातीपत्री की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा– मलनाशिनी।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु तथा राजनिघण्टु के अनुसार– जातीफल कषाय तथा कटु रस वाला एवं उष्ण है और कण्ठ रोग की पीड़ा को दूर करता है। यह वातातिसार तथा प्रमेह को नष्ट करता है, लघु है, वीर्य वर्द्धक है तथा जाठराग्नि दीपक है।

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार जाति पत्री– जावित्री कटु रस वाली है, सुगन्धित है तथा कफ का नाश करने वाली है। यह मुख के दुर्गन्ध को दूर करती है, विष नाशक है तथा शरीर कान्तियुक्त बनाती है।

राजनिघण्टु के अनुसार– जावित्री कटु तथा तिक्त रस वाली सुगन्धित है तथा कफ विकार का नाश करती है। यह मुख को स्वच्छ बनाती है तथा मुख की जड़ता को दूर करती है।

भावप्रकाश के अनुसार– जातीफल रस में तिक्त, तीक्ष्ण, उष्ण वीर्य, रोचक तथा लघु है और यह कटु

रस, जाठराग्नि दीपक, ग्राही, स्वरवर्द्धक तथा कफ विकार एवं वात विकार का नाश करती है। मुख की विरसता का नाश करता है और मल, दुर्गन्ध, कृष्णता, क्रिमिरोग, कास, वमन, श्वास, शोष तथा पीनस की पीड़ा को दूर करता है। जातीपत्री, लघु, स्वादिष्ट, कटु रस तथा उष्ण है और रुचि एवं वर्णवर्द्धक है। यह कफ, कास, वमन, श्वास, प्यास, क्रिमि रोग तथा विष विकार को दूर करती है। यह मुख को स्वच्छ बनाती है, तिक्त है तथा दुर्गन्ध को दूर करती है।

राजवल्लभ के अनुसार- जायफल प्यास, वमन तथा शूल का नाश करने वाली है तथा वात पित्त को दूर करती है। जावित्री लघु है तथा प्यास, ताप तथा दुर्गन्ध को दूर करती है।

आत्रेय संहिता के अनुसार- जायफल का तैल उत्तेजना देने वाला तथा जाठराग्नि वर्द्धक है, जीर्णातिसार को शान्त करता है; आध्मान, आक्षेप तथा शूल को दूर करता है। यह आमवात को दूर करता है, बल को बढ़ाने वाला है, तथा दन्तवेष्ट के व्रण की पीड़ा को दूर करता है।

वैद्यक शास्त्र में जातीफल का प्रयोग-

पिपासा तथा उत्क्लेश में जातीफल का प्रयोग- पिपसा तथा उत्क्लेश में जाती फल का शीत कषाय पान करायें। (चक्र.अग्निमान्द्य चि.)।

व्यङ्ग तथा नीलिका रोग में जाती फल का प्रयोग- जातीफल का लेप व्यङ्ग तथा नीलिका को नष्ट करता है। (भा.मु.चि.)।

विपादिका में जातीफल का प्रयोग- जायफल को पीसकर लेप करने से विपादिका का नाश होता है। (वंगसेन, कुष्ठाधि.)।

Constituents—The kernel contains a volatile oil, 2 to 8 p.c., a fixed oil, proteids, fat, starch, mucilage and ash; concrete oil, called oil of mace, 20 p.c. The mace contains a volatile oil (by distillation) identical with the volatile oil from the kernel, a fixed oil (by pressure), resin, fat, sugar, dextrine and mucilage.

Actions and uses—Aromatic, stomachic and stimulant. In small doses it stimulates digestion, increases appetite, relieves flatulence, dyspepsia and colic. In large doses it causes stupor and delirium. As a carminative, anodyne and astringent, it is given in diarrhoea and dysentery, to allay nausea and vomiting, small doses frequently given relieves strangury. A paste of it is used as an external application to the head in headache, palsy cramps & c. The wood is used as an astringent to check diarrhoea. The oil is stimulant and carminative, and in large doses, narcotic and is given in a tonic dyspepsia, diarrhoea and as an adjunct to other stimulant medicines. Locally diluted with bland oil, it is applied in rheumatism, paralysis, sprains &c. Butter of nutmeg is externally applied in rheumatism, contusions, sprains etc. Mace is used for the same purposes as the kernel. (*R. N. Khory—Part II., p. 524*).

जीरकत्रयम्

Cuminum Cyminum

जीरकः (कम्), अजाजी *Cuminum cyminum, Linn.*, **उपकुञ्चिका**—*Carum carui, Linn.*, **कृष्णाजाजी**—*Nigella sativa, Sibthorp., N. indica, Roxb.*

भेदाः–जीरकपञ्चकं यथा–"जीरकः" (पीताभः), "शुक्लाजाजी", "कृष्णाजाजी", "उपकुञ्चिका", "वनजीरकः"। जीरकत्रयं यथा–"जीरकः", "कृष्णाजाजी", "उपकुञ्चिका"। पूर्वाचार्यकृतवर्णनम्–"जीरकशब्देन च प्रसिद्धं महज्जीरकम्", "कारवी, ईषत्कृष्णक्षुद्रजीरकम्" (उदररोगोक्तनारायणचूर्णस्य टीकायां 'शिवदासः')। "उपकुञ्चिका, स्थूलकृष्णजीरकम्" (ग्रहण्युक्ता- यामकाञ्जिकस्य टीकायां 'शिवदासः')। जीरकानां पर्यायाः–जीरकस्य–"अजाजी"। 'कृष्णजीरकस्य'–"कृष्णाजाजी", "कारवी" (शिवदासः)। कृष्णजीरकस्य 'शाजीरा कलौजी इति ख्यातस्य'–"कालाजाजी" "कारवी", "सुषवी", "पृथ्वीका" "उपकुञ्चिका"–(राजनिघण्टु भावप्रकाशश्च)। अन्वर्थसंज्ञा–जीरकस्य–उत्पत्तिबोधिका–"मागधम्"। परिचयज्ञापिका– "पीताभम्"। गुणप्रकाशिका–"रुच्यम्", "मनोज्ञम्", "दीप्यम्"। 'शुक्लजीरकस्य'–"गौरजीरकः", "दीर्घकणा", "स्तन्या", "दीप्यः"। 'कृष्णजीरकस्य'–उत्पत्तिबोधिका–"काश्मीरजीरकः", "सुगन्धः"। 'उपकुञ्च्याः"–"कालिका", "स्थूलजीरकः"। 'जीरकं' कटु रूक्षं च वातहृद्दीपनं परम्। गुल्माध्मानातिसारघ्नं ग्रहणीक्रिमिहृत् परम्॥ 'गौराजाजी' हिमा रुच्या कटुर्मधुरदीपनी। क्रिमिघ्ना विषहन्त्री च चक्षुष्याऽऽध्माननाशिनी॥ जरणा (कृष्णाजाजी) कटुरुष्णा च कफशोफनिकृन्तनी। रुच्या जीर्णज्वरघ्नी च चक्षुष्या ग्राहिणी परा॥ 'वन्यजीरः' कटुः शीतो व्रणहा पञ्चनामकः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ 'जीरकः' कटुरुष्णश्च वातहृद्दीपनः परः। गुल्माध्मानातिसारघ्नो ग्रहणीक्रिमिहृत् परः॥ 'गौराजाजी' हिमा रुच्या कटूर्मधुरदीपनी। क्रिमिघ्नी विषहन्त्री च चक्षुष्याऽऽध्माननाशनी॥ जरणा (कृष्णाजाजी) कटुरुष्णा च कफशोफनिकृन्तनी। रुच्या जीर्णज्वरघ्नी च चक्षुष्या ग्राहिणी परा॥ 'जीरकादिगुणाः'–जीरकाः कटुकाः पाके क्रिमिघ्ना वह्निदीपनाः। जीर्णज्वरहरा रुच्या व्रणहाऽऽध्माननाशनाः॥ राजनिघण्टुः॥ 'जीरकत्रितयं' रूक्षं कटूष्णं दीपनं लघु। सङ्ग्राहि पित्तलं मेध्यं गर्भाशयविशुद्धिकृत्॥ ज्वरघ्नं पाचनं वृष्यं बल्यं रुच्यं कफापहम्। चक्षुष्यं पवनाऽऽध्मानगुल्मछर्द्यतिसारहृत्॥ भावप्रकाशः॥ जीरकं रुचिकृत् स्वादु गन्धाढ्यं कफवातजित्। पाके कटु च तीक्ष्णोष्णं लघुपित्ताग्निवर्द्धनम्॥ राजवल्लभः।

वैद्यके व्यवहारः– (१) विषमज्वरे अजाजी–"अजाजी गुडसंयुक्ता विषमज्वरनाशनी। अग्निसादं जयेत् सम्यग्वातरोगांश्च नाशयेत्॥" (ज्वर-चि.)। (२) रक्तपित्ते पृथ्वीका–"लोहगन्धिनी निःश्वासे उद्गारे रक्तगन्धिनि। पृथ्वीकां शानमात्रान्तु खादेद्द्विगुणशर्कराम्॥" (रक्तपित्त-चि.)। (३) वृश्चिकदंशने जीरकः–"जीरकस्य कृतः कल्को घृतसैन्धवसंयुतः। सुखोष्णो वृश्चिकार्त्तानां सुखलेपो व्यथापहः॥" (विष-चि.)। चक्रदत्तः॥ विषमज्वरे कृष्णाजाजी– "कालाजाजी तु सगुडा विषमज्वरनाशनी"। (ज्वर-चि.)। भावप्रकाशः॥ (१) मुखपाके जीरकः–"कृष्णजीरककुष्ठेन्द्र-यवचर्वणतस्त्र्यहात्। मुखपाकव्रणक्लेददौर्गन्ध्यमुपशाम्यति॥" (मुखरोग-चि.)। (२) प्रतिश्याये कृष्णजीरकः–"प्रतिश्याये... घ्रेयं वा कृष्णजीरकम्" (नासारोग-चि.)। वङ्गसेनः।

विविध भाषाओं में नाम–

शुक्लजीरक– सं.– जीरकम्, जरणम्, अजाजी, कणा, दीर्घजीरकम्। हि.– जीरा, सादा-जीरा, सफेद जीरा। बं.– सादा जीरा, शाहा जीरा। म.– जीरै पाण्डरे, जीरे जीरो। गु.– जीरूं, शाकनुजीठ, सादुजीरूम्, घालु जीरुं। क.– जिरिगे, विलिय जींरगे। ते.– जीलकारा, जीलकरर। द्रा.– शीरीम। यू.– खामुने। ता.– शिरगम। फा.– जीरेय

सफेद। अं.- कमून अवियज। अं.- Cumin seeds (क्यूमीन सीडस)। ले.- Cuminum cyminum (क्यूमिनम सिमिनम)।

कृष्णजीरक- सं. कृष्णजीरकम्, अजाजी, जरणा, सगन्धा, कालाजीरकम्। हि.- काला जीरा, स्याह जीरा, कृष्ण जीरा। म.- शहां जीरे, शाहाजीर, कालेजीरे। गु.- श्याजीरु। क.- करिजीरके। ते.- मल्लजीर तल्लजीरकरं। ता.- शिमड, शोम्बु। मा.- श्याजीरो। द्रा.- करुशीराम। फा.- जीरयेस्याह, सियाद जीरा। अ.- कमूने किरमानी, कमून आस्वद। अं.- Black caraibay seeds (ब्लैक कराइवे सीडस), Crum seeds (क्रम सीडस)। ले.- Carum Bulbo Castenum (कारम बल्बो कास्टेनम्)।

स्थूलजीरक- सं.- स्थूलजीरकः, पृथ्वीका। हि.- कलौंजी, मंगरैला, मंगरेला। बं.- मीटा काले जीरे। म.- कलौंजी जीरे। गु.- कलौंजी जीरूं। क- कडुजीरिगे। ते.- नल्लाजीराकारा। फा.- शनिल, स्यादाने, सोनिम, शओनीज। अं.- इनतुस्तोदा, इत्वुलस्सादोगा हव्वं तुरसोदा। अं- Small black cumin (स्माल ब्लैक क्यूमिन)। ले.- Nigella sativa (निगेला साटिवा)।

जीरक के पाँच भेद- १. जीरक (पीताभ)। २. शुक्लाजाजी। ३. कृष्णाजाजी। ४. उपकुञ्चिका। ५. वनजीरक। **जीरकत्रयम्-** १. जीरक। २. कृष्णाजाजी। ३. उप कुञ्चिका।

जीरक के सम्बन्ध में पूर्वाचार्य कृत वर्णन- जीरक शब्द से महाजीरक प्रसिद्ध है। कारवी थोड़ा काला क्षुद्रजीरक है (उदररोगोक्त नारायण चूर्ण की टीका में शिव दास ने कहा है)। उपकुञ्चिका स्थूल कृष्ण जीरक है (ग्रहणी रोग में काञ्जीक की टीका में शिवदास ने कहा है)। **जीरा के पर्याय-** जीरक- अजाजी, कृष्णजीरक- कृष्णाजाजी, कारवी (शिवदास), काला जीरा, शाजीरा, कलौजी इस प्रकार प्रसिद्ध कालाजाजी, कारवी, सुषवी, पृथ्वीका, उपकुञ्चिका (राजनिघण्टु तथा भावप्रकाश)।

जीरा की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा- पीताभम्।

उत्पत्ति बोधिका संज्ञा- मागधम्।

गुण प्रकाशिका संज्ञा- रुच्यम्, मनोज्ञम्, दीप्यम्। **शुक्ल जीराकी-** गौरजीरकः, दीर्घकणा, स्तन्या, दीप्यः। **कृष्ण जीरक की उत्पत्ति-बोधिका संज्ञा-** काश्मीरजीरकः, सुगन्धः। **उपकुञ्ची की-** कालिका, स्थूलजीरकः।

गुण-दोष-

धन्वन्तरिनिघण्टु के अनुसार- जीरा कटु रस वाली तथा रूक्ष है और वात कारक है एवं उत्तम जाठराग्नि दीपक है। यह गुल्म रोग, आध्मान तथा अतिसार का नाश करने वाली है तथा ग्रहणी एवं क्रिमि रोग को जीत लेती है। **गौराजाजी (सफेद जीरा)** शीतल, रुचि कारक, कटु तथा मधुर रस वाली एवं जाठराग्नि दीपक है। यह क्रिमि नाशक, विष नाशक, नेत्र के लिए हितकर तथा आध्मान नाशक है। **जरण (काला जीरा)** कटु रस तथा उष्ण है और कफ विकार एवं शोथ का नाश करने वाली है। यह रुचि कारक, जीर्ण ज्वर नाशक, नेत्र के लिए हितकर तथा ग्राहिणी है। **वन्यजीरक** कटु रस तथा शीतल है और व्रण नाशक है। यह जीरक पांच नाम वाली है।

राज निघण्टु के अनुसार- जीरक कटु रस तथा उष्ण है और वात कारक तथा जाठराग्नि दीपक है। यह गुल्म रोग, आध्मान तथा अतिसार नाशक है और ग्रहणी एवं क्रिमि रोग को दूर करती है। **सफेद जीरा**

शीतल, रुचिकारक कटु तथा मधुर रस है और जाठराग्नि दीपक है। यह क्रिमि रोग नाशक, विष नाशक, नेत्र के लिए हितकर तथा आध्मान नाशक है। **जरणा (कालाजीरा)** कटु रस तथा उष्ण है और कफ विकार तथा शोथ का नाश करती है। यह रुचिकारक, जीर्ण ज्वर नाशक, नेत्र के लिए हितकर तथा उत्तम ग्राहिणी है। **जीरक आदि के गुण-** जीरा पाक में कटु रस प्रधान, क्रिमि नाशक तथा जाठराग्नि दीपक है। यह जीर्ण ज्वर को दूर करने वाली, रुचि कारक, व्रण नाशक तथा आध्मान नाशक है।

भाव प्रकाश के अनुसार- तीनों प्रकार का जीरा रूक्ष, कटु, उष्ण, दीपक तथा लघु है। यह ग्राही है, पित्तवर्द्धक है, मेधावर्द्धक तथा गर्भाशय को शुद्ध करने वाला है। यह ज्वर नाशक है, पाचक है, वीर्य वर्द्धक है, बल वर्द्धक है, रुचि कारक है और कफ नाशक है। यह नेत्र के लिए हितकर, वात विकार, आध्मान, गुल्म, वमन तथा अतिसार को दूर करता है।

राजवल्लभ के अनुसार- जीरक रुचि कारक, स्वादिष्ट, अधिक गन्धवाला तथा कफ वात को नष्ट करता है। यह पाक में कटु है, तीक्ष्ण तथा उष्ण है, लघु है और पित्त तथा जाठराग्नि वर्द्धक है।

वैद्यक शास्त्र में जीरा का प्रयोग-

(१) विषम ज्वर में अजाजी का प्रयोग- जीरा चूर्ण गुड़ मिलाकर प्रयोग करने से विषम ज्वर का नाश करती है, अग्निसाद (मन्दाग्नि) को जीत लेती है और अच्छी तरह वात रोग का नाश करती है। (चक्र.ज्वर चि.)। (२) **रक्त पित्त में काला जीरा का प्रयोग-** लोह के गन्ध सदृश निःश्वास में तथा रक्त गन्धी उद्गार में पृथ्वीका (काला जीरा) एक शाण मात्र (उम्मान) में गुड़ तथा शक्कर के साथ खाय। (चक्र.रक्त पित्त चि.) (३) **वृश्चिक दंश में जीरक का प्रयोग-** जीरक का कल्क घृत तथा सेन्धा नमक मिलाकर थोड़ा गरम कर वृश्चिक दंश में लेप करने से व्यथा को दूर करता है। (चक्र.विष चि.)।

विषम ज्वर में कृष्णाजाजी (काला जीरा) का चूर्ण गुड़ मिलाकर सेवन करने से विषम ज्वर का नाश करती है। (भा.ज्वर चि.)।

(१) मुखपाक में जीरक का प्रयोग- काला जीरा, कूट तथा इन्द्रयव चबाने से तीन दिन में मुख पाक व्रण, उत्क्लेद तथा मुख का दुर्गन्ध शान्त होता है। (वंगसेन, मुखरोग चि.)। (२) **प्रतिश्याय में काला जीरा का प्रयोग-** काला जीरा को प्रतिश्याय रोग में सूंघे (बंगसेन, नासा रोग चि.)।

Constitutents *of C. cyminum*—The seeds yield 7.7 p.c. fat oil, 13.5 p.c. resin, 8 p.c. mucilage and gum, 15.5 protein compounds, malates and an essential oil, on which the peculiar aromatic odour and taste depends. This essential oil contains cuminol or cuminaldehyde 56 p.c. a mixture of hydrocarbons, cymene or cymol, terpene, &c.

Actions and uses—Carminative, aromatic, stomachic and stimulant, used in hoarseness of voice, dyspepsia, flatulence and diarrhoea. (R.N. Khory, Part II., p. 286).

Constituents *of Nigella sativa*—The seeds contain a fixed oil 37.5 and volatile oil 1.5, albumen 8.25, mucilage 2, albumen 1.8, organic acids 0.9, metarabin 1.4, melanthin, resembling helleborin, 1.4, ash 4.5, moisture 7.4, sugar glucose 2.5 and arabic acid 3.2 &c.

Actions and uses—Anthelmintic, diuretic, galactagogue, emmenagogue and carminative. It is an aromatic adjunct to purgative and bitter remedies. A decoction of the seeds just after delivery is given to stimulate the uterus to contraction and to increase the secretion of the milk;

also in worms. As a carminative and stomachic with plumbago root it is given in dyspepsia, loss of appetite, diarrhoea and intermittent fevers, As an emmenagogue it is used in amenerrhoea and in dysmenorrhoea. In large doses it causes abortion. Locally it is largely used prayed in water to remove painful swellings of hands and feet. The seeds are scattered between woollen shawls and clothes as a protection against insect. (R. N. Khory—Part II., p. 17.).

जीवन्ती

Dendrobium Macraci

जीवन्ती–*Dendrobium macraci, Lsndl.*

अन्वर्थसंज्ञा–"जीववर्द्धनी", "शाकश्रेष्ठा", "शृङ्गाटी", "जीवपृष्ठा", "शशशिम्बिका", "सुपिङ्गला"।

चक्षुष्या सर्वदोषघ्नी जीवन्ती मधुरा हिमा। शाकानां प्रवरा यूनां 'द्वितीया' किञ्चिदेव तु॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ जीवन्ती मधुरा शीता रक्तपित्तानिलापहा। क्षयदाहज्वरान् हन्ति कफ-वीर्यविवर्द्धनी॥ एवमेक 'बृहत्पूर्वा' रसवीर्यवलान्विता। भूतविद्रावणी ज्ञेया वेगाद्रसनियामिका॥ राजनिघण्टुः॥ जीवंन्ती शीतला स्वादुः स्निग्धा दोषत्रयापहा। रसायनी बलकरी चक्षुष्या ग्राहिणी लघुः॥ रक्तपित्तं क्षयं हन्ति दाहहृत् स्वरशोधिनी। भावप्रकाशः॥ जीवन्ती श्वासकासघ्नी स्वर्या च क्षयनाशिनी। राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) अतिसारे जीवन्ती–"...जीवन्त्याश्चिर्भिटस्य वा। ...शुष्कशाकेन वा पुनः। दधिदाडिमसिद्धेन बहुस्नेहेन भोजयेत्॥ (चि. १० अ.)। (२) विषदोषे जीवन्ती–"तण्डुलीयकजीवन्तीवार्त्ताकुसुनिषणकाः... शाकञ्च कुलकं हितम्" (विष-चि.)। चरकः॥ नक्तान्ध्ये जीवन्ती–"घृते सिद्धानि जीवन्त्याः पल्लवानि च भक्षयेत्" (उ. १३ अ.)। वाग्भटः॥ मुखरोगे जीवन्ती–"जीवन्तीकल्कं पयसा समांशं तैलं विपक्त्वा मधुना विमिश्रम्। ओष्ठास्ययोः सर्जरसाष्टभागं व्रणं निहन्यात् सकृदेव लेपात्॥" (मुखरोग-चि.)। वङ्गसेनः। पार्श्वशूले जीवन्ती–"जीवन्तीमूलकल्को वा सतैलः पार्श्वशूलनुत्" (शूल-चि.)। चक्रदत्तः।

विविध भाषाओं में नाम– सं.– जीवन्ती, जीवनी, जीवः, शाकश्रेष्ठा। हि.– जीवन्ती, वोड़ी, बं.– जीवई, जीमातीन। गु.– राडा रूवी, खरेखोडी। क.– हेड़ हाले। ले.– Dendrobium Macraci (डेन्ड्रोवियम मेक्रासि)।

जीवन्ती शाक की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा– जीववर्द्धिनी, शाकश्रेष्ठा, शृङ्गाटी, जीवपृष्ठा, शशशिम्बिका, सुपिङ्गला।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार– जीवन्ती नेत्र के लिए हितकर, सभी दोषों का नाश करने वाली, मधुर तथा शीतल है। यह सभी शाकों में उत्तम शाक है। जवानों के लिए इससे बढ़कर कोई दूसरा शाक नहीं है।

राज निघण्टु के अनुसार– जीवन्ती शाक मधुर, शीतल, रक्त-पित्त तथा वात का नाश करने वाली है और क्षय रोग, दाह, तथा ज्वर का नाश करती है और कफ एवं वीर्य को बढ़ाती है। इसी प्रकार यह वृहत्

पूर्व है; रस, वीर्य तथा बल से युक्त है, भूत को द्रवित करने वाली है और यह रस (पारद) को नियन्त्रित करने वाली है।

भावप्रकाश के अनुसार- जीवन्ती शीतल, स्वादिष्ट तथा स्निग्ध है और तीनों दोषों को दूर करने वाली है। यह रसायन गुण वाली है, बलकारक है, नेत्र के लिए हितकर है, ग्राही तथा लघु है। यह रक्त पित्त तथा क्षय रोग को नष्ट करती है, दाहकारक है तथा स्वर शोधक है।

राजवंल्लभ के अनुसार- जीवन्ती श्वास-कास नाशक, स्वर कारक तथा क्षय रोग नाशक है।

वैद्यक शास्त्र में जीवन्ती का प्रयोग–

(१) अतिसार में जीवन्ती शाक का प्रयोग- जीवन्ती तथा ककड़ी का शाक या सूखा शाक दही तथा अनार के रस से सिद्ध तथा अधिक घृत मिलाकर अतिसार रोग में पान कराये। (च.चि.अ.१०)। (२) **विष दोष में जीवन्ती का प्रयोग**- तण्डुलीय (चौराई) शाक, जीवन्ती शाक, वैगन का शाक तथा सुनिषणक का शाक विष रोग में हितकर है। (च.विष.चि.)।

नक्तान्ध्य में जीवन्ती का प्रयोग- जीवन्ती के पत्तों को घृत में सिद्ध कर नक्तान्ध्य रोग में खिलाये। (वा.उ.अ.१३)।

मुखरोग में जीवन्ती का प्रयोग- जीवन्ती का समभाग दूध के साथ मिलाकर तैल पकावे और मधु मिला दे और सर्जरस (राल) आठवां भाग मिला दे। यह ओठ तथा मुख के व्रण का एक ही बार लगाने से नाश करता है। (वंगसेन, मुख चि.)।

पार्श्व शूल में जीवन्ती का प्रयोग- जीवन्ती मूल का कल्क तैल मिलाकर लेप करने से पार्श्व शूल को नष्ट करता है। (चक्र, शू.चि.)।

Constituents—Two resinous principles termed alpha and beta jibantic acids and an alkaloid called jibantine.

Actions and uses—As a tonic given in debility due to siminal discharges. (R. N. Khory, Part II., p. 588).

ज्योतिष्मती

Celastrus Paniculata

कटभी, ज्योतिष्मती, अलवणा–*Celastrus paniculata, Willd.*

पूर्वाचार्यकृतवर्णनम्–"ज्योतिष्मती वर्त्तुलपक्वरक्तफला पीततैला काकुमर्दनिकेति लोके प्रसिद्धा"। (डल्वणः–सु. सू. ३८ अ.)। अन्वर्थसंज्ञा–"वायसादनी", "पीततैला", "अग्निफला", "मेध्या", "दुर्जरा"। कटभी कटुतीक्ष्णोष्णा कफजिच्च विरेचनी। मेधाकरी वर्णकरी व्रण्या जठरनाशिनी॥ ज्योतिष्मती कटुस्तिक्ता सरा कफसमीरजित्। अत्युष्णा वमनी तीक्ष्णा वह्निबुद्धिस्मृतिप्रदा॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ ज्योतिष्मती तिक्तरसा च रूक्षा किञ्चित् कटुर्वातकफापहा च। दाहप्रदा दीपनकृच्च मेध्या प्रज्ञाञ्च पुष्णाति तथा द्वितीया॥ कटु ज्योतिष्मती'तैलं' तिक्तोष्णं वातनाशनम्। पित्तसन्तापनं मेधाप्रज्ञाबुद्धिविवर्द्धनम्॥ राजनिघण्टुः॥ ज्योतिष्मती कटुस्तिक्ता सरा कफसमीरजित्।

अत्युष्णा वमनी तीक्ष्णा वह्निबुद्धिस्मृतिप्रदा॥ भावप्रकाश:॥ मेध्या ज्योतिष्मती तीक्ष्णा व्रणविस्फोटनाशनी। राजवल्लभ:॥

वैद्यके व्यवहार:—आर्त्तवलाभाय ज्योतिष्मतीपत्रम्—"सकाञ्जिकं... भृष्टं ज्योतिष्मतीदलम्। ...प्राश्य वनिता त्वार्त्तवं लभेत्"। (योनिव्यापत्-चि.)। चक्रदत्त:॥ सन्निपातोदरे ज्योतिष्मतीतैलम्—"ज्योतिष्मत्या: पिबेत्तैलं पयसा वा दिनाष्टकम्" (उदर-चि.)। वङ्गसेन:।

विविध भाषाओं में नाम—

सं.– ज्योतिष्मती, कटभी, कङ्गुनी, पारावतपदी, पण्या, लता, ककुन्दनी हि.– मालकाङ्गनी, मलकौनी, मालटाङ्कुनी, उभिजिनी। बं.– लताकटकी, वनउच्छो। म.– काकामर्दनिका, ककन्दलितिरे, पेगी। गु. मा.– मालकाङ्गनी। द्रा.– काणि। फा.– काल। अ.– हत्वेर्किलकिल। अं.– Staff tree (स्टाफ ट्री)। ले.– Celastrus paniculata (सिलेस्ट्रस पेनिक्यूलेटा)।

पूर्वाचार्यों के वर्णन के अनुसार ज्योतिष्मती का वर्णन– ज्योतिष्मती का वटुला के आकार का पका हुआ रक्त फल, पीततैला, काकुमर्दनिका इति लोक में प्रसिद्ध है। (डल्वण सु.सू.अ.३८)। **ज्योतिष्मती की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा**– वायसादनी, पीततैला, अग्निफला, मेध्या, दुर्जरा।

गुण-दोष—

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार– कटभी (मालकाङ्गुनी), कटु रस वाली तीक्ष्ण तथा उष्ण है और कफ को दूर करती है तथा विरेचक है, मेधाकारक है, वर्णकारक है, व्रण के लिए हितकर है तथा जठररोग का नाश करती है। ज्योतिष्मती कटु तथा तिक्त रस वाली एवं सारक है और कफ विकार एवं वात विकार को जीत लेती है। यह अधिक उष्ण है, वामक है, तीक्ष्ण गुण वाली है और जाठराग्नि, बुद्धि तथा स्मृति को बढ़ाने वाली है।

राजनिघण्टु के अनुसार– ज्योतिष्मती तिक्तरस वाली, रूक्ष तथा थोड़ा कटु रस प्रधान है। यह वात तथा कफ रोग का नाश करती है। यह दाहकारक, जाठराग्नि दीपक तथा मेधा और प्रज्ञा (बुद्धि) को पुष्ट करती है। दूसरे प्रकार के ज्योतिष्मती कटु रस वाली है। उसका तैल तिक्त रस तथा उष्ण है और वात नाशक है, पित्त को बढ़ाने वाली है, मेधा, प्रज्ञा तथा जाठराग्नि को बढ़ाने वाली है।

भावप्रकाश के अनुसार– ज्योतिष्मती कटु तथा तिक्त रस वाली तथा सारक है और कफ तथा वात को दूर करती है। यह अधिक उष्ण, वामक तथा तीक्ष्ण गुण वाली है और जाठराग्नि, बुद्धि तथा स्मृति को बढ़ाने वाली है।

राजवल्लभ के अनुसार– ज्योतिष्मती मेध्य है तथा तीक्ष्ण है और व्रण एवं विस्फोट का नाश करती है।

वैद्यक शास्त्र में ज्योतिष्मती का प्रयोग–

आर्तव प्राप्ति के लिए ज्योतिष्मती पत्र का प्रयोग– ज्योतिष्मती के पत्तों को भूनकर तथा काञ्जी में मिलाकर खाने से स्त्री आर्तव (ऋतुधर्म) को प्राप्त करती है। (चक्र.योनि व्यापद चि.)।

सन्निपातोदर में ज्योतिष्मती तैल का प्रयोग– सन्निपातोदर रोग में ज्योतिष्मती के तैल का दूध के साथ आठ दिन तक पान करे। (वंगसेन, उदर चि.)।

Constituents—The seeds contain an oil, a bitter resinous principle tannin and ash 5 p.c. *Oleum nigrum*—an empyreumatic. Black oil—is obtained by the destructive distillation of the seeds of *C. paniculatus* to which Loban, lavang, jaiphal and javantri are often added. Dose 5 to 15 ms. Pomatum—1 in 8 of butter known as Magz Sudhi or brain-polisher, So named under the belief that it promotes the intelligence of pundits and learned men who use it as an application for the head.

Actions and uses—The seeds are alterative, stimulant and nervine tonic, combined with aromatics and given in rheumatism, gout, paralysis and leprosy. The oil is used as pomade and also as rubefacient for relieving rheumatic pains of a malarious character and in paralysis. *Oleum nigrum* has been tried in berberi with some benefit. (R. N. Khory, Part II., p. 155).

झिण्टिकाचतुष्टयम्

Barleria Dichotoma

सैरेयकः (श्वेतपुष्पः)। आर्त्तगलः, दासी (नीलपुष्पः)। कुरण्टकः, किङ्किरातः (पीतपुष्पः), कुरवकः (रक्तपुष्पः)।

सैरेयकः—*Barleria dichotoma;* दासी—*B. caerulea, B. cristata;* कुरण्टकः—*B. prionitis;* कुरवकः—*B. ciliata.*

'कुरण्टकः' हिमस्तिक्तः शोफतृष्णाविदाहनुत्। केश्यो वृष्योऽथ बल्यश्च त्रिदोषशमनी मतः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ उष्णः कटुः 'कुरवको' वातामयशोफनाशनी ज्वरनुत्। आध्मानशूलकास-श्वासार्त्तिप्रशमनी वर्ण्यः॥ 'किङ्किरातः' कषायोष्णस्तिक्तश्च कफवातजित्। दीपनः शोफकण्डूतिरक्तत्व-ग्दोषनाशनः॥ 'आर्त्तगलः' कटुस्तिक्तः कफमारुतशूलनुत्। कण्डूकुष्ठव्रणान् हन्ति शोफत्वग्दोषनाशनी॥ 'झिण्टिकाः' कटुकास्तिक्ता दन्तामयशान्तिदाश्च शूलघ्न्यः। वातकफशोफकासत्वग्दोषविनाशकारिण्यः॥ राजनिघण्टुः॥ 'सैरेयकः' कुष्ठवातास्रकफकण्डूविषापहः। तिक्तोष्णो मधुरो दन्त्यः सुस्निग्धः केशरञ्जनः॥ भावप्रकाशः॥ 'श्वेतकुरण्टक'स्तिक्तः केश्यः स्निग्धो लघुः स्मृतः। कटुश्चोष्णो दन्तहितो वलीपलितनाशनः॥ कुष्ठं वातं रक्तदोषं कफं कण्डूं विषन्तथा। नाशयेद्दारुणञ्चैव ऋषिभिः परिकीर्त्तितम्॥ 'पीतःकुरण्टक' श्चोष्णस्तिक्तश्च तुवरः स्मृतः। अग्निदीप्तिकरो वातकफकण्डूहरः स्मृतः॥ शोथं रक्तविकारञ्च त्वग्दोषञ्चैव नाशयेत्। 'नीलः कुरण्टक'स्तिक्तः कटुर्वातकफापहः॥ शोथकण्डूशूलकुष्ठव्रणत्वग्दोषनाशनः। 'रक्तः कुरण्टक'स्तिक्तो वर्ण्यश्चोष्णः कटुः स्मृतः॥ शोथं ज्वरं वातरोगं कफं रक्तरुजन्तथा। पित्तमाध्मानकं शूलं श्वासं कासञ्च नाशयेत्॥ निघण्टुरत्नाकरः॥

वैद्यके व्यवहारः— (१) वातजे क्षये आर्त्तगलः—"साधितं (घृतं) कासजित् स्वर्यं सिद्धमार्त्तगलेन वा" (चि. ५ क.)। (२) आखोर्विषे सैरेयकमूलम्—"अथवा सैर्यकान्मूलं सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना" (उ. ३८ अ.)। वाग्भटः॥ (१) सिध्मनाशाय नीलझिण्टिकापत्रस्वरसः— "नीलकुरण्टकपत्रं स्वरसेनालिप्य गात्रमतिबहुशः। लिम्पेन्मूलकबीजैः पिष्टैस्तक्रेण सिध्मनाशाय॥" (कुष्ठ-चि.)। (२) दन्तचाले आर्त्तगलदलः—"आर्त्तगलदलक्वाथगण्डूषो दन्तचालनुत्" (दन्तरोग- चि.)। चक्रदत्तः॥

विविध भाषाओं में नाम– सं.- सैरेयकः, आतगलः। हि.- कूठसरैया, सैरेयक, झिण्टी, पियावासा। बं.- झिण्टी, वाटी। म.- कोराण्टा। गु.- असेलियो। कांटा, असेलियो। क.- गोरण्टे, गारेटगल्लू। ते.- गोरंडा। ले.- Barleria prionitis (वारलेरिया प्रायोनिटिस)।

गुण-दोष–

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- सैरेयक शीतल है और तिक्त रस है तथा शोथ, प्यास और विदाह को दूर करने वाला है। यह केश के लिए हितकर, वीर्यवर्द्धक तथा त्रिदोष को शांत करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- कुरबक (सैरेयक) उष्ण है, कटु रस है तथा वात रोग, शोथ का नाश करता है और ज्वर को दूर करता है। यह आध्मान, शूल, कास, श्वास तथा पीड़ा को शांत करता है और वर्ण को शुद्ध करता है। किङ्किरात (पीत पुष्पा) कषाय रस प्रधान, उष्ण तथा तिक्त रस है और कफ तथा वात रोग को दूर करता है। यह जाठराग्नि दीपक है और शोथ, कण्डू, रक्तविकार तथा त्वचा के विकार का नाश करता है। आर्त्तगल (सैरेयक) कटु तथा तिक्त रस वाला है और कफ, वात विकार एवं शूल को दूर करता है। यह कण्डू , कुष्ठ तथा व्रण का नाश करता है और शोथ एवं त्वचा विकार को शांत करता है। झिंटिका (सैरेयक) कटु तथा तिक्त रस प्रधान है और दन्त रोग को शांत करता है और शूल का नाश करता है। यह वात विकार, कफ विकार, शोथ, कास तथा त्वचा रोग का नाश करने वाली है।

भावप्रकाश के अनुसार- सैरेयक कुष्ठ रोग, वातरक्त रोग, कफ विकार, कण्डू तथा विष विकार को दूर करता है। यह तिक्त रस प्रधान है, उष्ण है, मधुर है, दांत के लिए हितकर है, स्निग्ध है और केश रंजन है।

निघण्टु रत्नाकर के अनुसार- श्वेत कुरंटक तिक्त रस प्रधान है, केश के लिए हितकर है, स्निग्ध है और लघु है। यह कटु रस प्रधान, उष्ण वीर्य है। दांत के लिए हितकर है, बलि पलित (बालों का असमय पकना और बालों का गिरना) का नाश करता है। यह कुष्ठ रोग, वात रोग, रक्त दोष, कफ, कण्डू तथा विष विकार का नाश करता है, दारुणक रोग का नाश करता है ऐसा ऋषियों ने कहा है। पीत कुरंटक उष्ण है और तिक्त एवं कषाय रस प्रधान है। यह अग्नि को प्रदीप्त करता है, वात रोग, कफ रोग और कण्डू को दूर करता है। यह शोथ, रक्त विकार तथा त्वचा दोष का नाश करता है। रक्त कुरंटक तिक्त रस वाला है, वर्ण को बढ़ाने वाला है, उष्ण है, तथा कटु रस कहा गया है। यह शोथ, ज्वर, वात रोग, रक्त विकार, पित्त विकार, आध्मान, शूल, श्वास तथा काश का नाश करता है।

वैद्यक के अनुसार सैरेयक का प्रयोग–

(१) वातज क्षय रोग में आर्तगल (सैरेयक) का प्रयोग- आर्तगल (सैरेयक) के क्वाथ एवं कल्क के साथ विधिवत सिद्ध घृत का प्रयोग वातज क्षय रोग में करे। (वागभट्ट चिकि.अ.५)। (२) **मूषक के विष में सैरेयक मूल का प्रयोग**- मूस के विष में सैरेयक मूल के चूर्ण को मधु में मिलाकर चावल के धोअन के साथ पान करे। (वागभट्ट उ.अ.३८)।

(१) सिध्म रोग के नाश के लिए नील झिंटी पत्र के स्वरस का प्रयोग- नील कुरंटक के स्वरस से शरीर को अनेक बार लिप्त कर उसके मूल और बीज को मट्ठा के साथ पीस कर सिध्म रोग के नाश के लिए लेप करे। (चक्र.कुष्ठ चिकित्सा)। (२) **दांत के हिलने पर आर्तगल के पत्र का प्रयोग**- आर्तगल के पते के क्वाथ का गण्डूष धारण करने से दांत का हिलना ठीक हो जाता है। (चक्र. दन्तरोग चिकि.)।

Constituents—Neutral and acid resins, soluble in petroleum and ether.

Actions and uses—The plant is slightly bitter and astringent, and given in catarrhal affections of children accompanied with fever; also in anasarca. Locally the juice of the leaves is applied to the feet to prevent the cracking of the soles and with common salt to strengthen the gums when spongy. The paste of the root is applied to the boils and glandular swellings to cause their dispersion. The medicated oil is used as an application to unhealthy wounds. (R. N. Khory Part II., p. 466).

"Ainslie says that the juice of the leaves, which is slightly bitter and acid, is a favourite medicine of the Hindus of Lower India in those catarrhal affections of children which are accompanied with fever and much phlegm; it is generally administered in a little honey or sugar and water in the quantity of two table-spoonfuls twice daily. Dr. Bidie observes that it acts as a diaphoretic and expectorant. (Dymock—Part III., p. 44).

तण्डुलीयः

Amaranthus polygamus

तण्डु(न्दु)लीयः, अल्पमारिषः—*Amaranthus polygamus Willd.* जलतण्डुलीयम् , कञ्चटम्—*Jussieua repens. Willd., Commelina, bengalensis, Linn.* मारिषः—*Amaranthus spinosus Linn.*

अन्वर्थसंज्ञा—तण्डुलीयस्य—"बहुवीर्यः"। कञ्चटस्य— "जलजम्"। मारिषस्य—"दीर्घनालः", "रक्तपर्णः", "बिन्दुपर्णः"। तण्डुलीयो विषघ्नश्च रूक्षः शीततरुः शुचिः। मधुरो रसपाकाभ्यां रक्तपित्तापघातकः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ तण्डुलीयस्तु शिशिरो मधुरो पिषनाशनः। रुचिकृद्दीपनः पथ्यः पित्तदाहभ्रमापहः॥ तण्डुलीयक'दलं' हिममर्शःपित्तरक्तविषकासविनाशि। ग्राहकञ्च मधुरञ्च विपाके दाहदोषशमनं रुचिदायि। राजनिघण्टुः॥ 'तण्डुलीयो' लघुः शीतो रूक्षः पित्तकफास्त्रजित्। सृष्टमूत्रमलो रुच्यो दीपनो विषहारकः॥ 'मारिषो' मधुरः शीतो विष्टम्भी पित्तनुत् गुरुः। वातश्लेष्मकरी रक्तपित्तनुत् विषमाग्निजित्॥ 'रक्तमार्षो' नातिगुरुः सक्षारो मधुरः सरः। श्लेष्मलः कटुकः पाके स्वल्पदोष उदीरितः॥ 'पानीयतण्डुलीयन्तु कञ्चटं" समुदाहृतम्। कञ्चटं तिक्तकं रक्तपित्तानिलहरं लघु॥ भावप्रकाशः॥ 'तण्डुलीय'मसृक्पित्तविषनुत् स्वादुपाकतः। 'मारिषो' मधुरः शीतो विष्टम्भी पित्तजिद्गुरुः॥ रक्तनाड्यादयश्चान्ये तज्जातीयाश्च तद्गुणाः। राजवल्लभः॥ तण्डुलीयकमूलं स्यादुष्णं श्लेष्मविनाशनम्। रजोरोधकरं रक्तपित्तप्रदरसंहरम्॥ इति कश्चित्।

वैद्यके व्यवहारः— (१) रक्तपित्ते तण्डुलीयकमूलम्—"...वेतसतण्डुलीयकम्॥ निशिस्थिता वा स्वरसीकृता वा कल्कीकृता वा मृदिता श्रृता वा। एते समस्ता गणशः पृथग्वा रक्तं सपित्तं शमयन्ति योगाः॥" (चि. ४ अ.)। (२) सर्वविषदोषे तण्डुलीयकदलम्—"तण्डुलीयकजीवन्ती ...हितम्" (चि. २५ अ.)। (३) प्रदरे तण्डुलीयकमूलम्—"तण्डुलीयकमूलञ्च सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना" (चि. ३० अ.)। चरकः॥ (१) अर्शःसु तण्डुलीयकदलम्—"यथादोषशाकैर्वास्तुकतण्डुलीयक... अन्यैर्वा" (चि. ६ अ.)। (२) मूषिकविषे तण्डुलीयकमूलम्—"तण्डुलीयककल्कन्तु लिह्यात्तत्र समाक्षिकम्" (क. ५ अ.)। सुश्रुतः॥ अतिसारे तण्डुलीयकमूलम्—"ज्येष्ठाम्बुना तण्डुलीयम् पीतञ्च ससितामधु"

(अतिसार-चि.)। (२) ग्रहण्यां कञ्चटपल्लवम्–"जम्बूदाडिमशृङ्गाटपाठाकञ्चटपल्लवैः। पक्वं पर्युषितं बालबिल्वं सगुडनागरम्। हन्ति सर्वानातीसारान् ग्रहणीमतिदुस्तराम्॥" चक्रदत्तः॥ रक्तपित्ते तण्डुलीयदलम्–"शाकार्थे शाकसात्म्यानां तण्डुलीयादयो हिताः" (रक्तपित्त-चि.)। भावप्रकाशः॥ विषशमनार्थं तण्डुलीयक मूलम्– तण्डुलीयक-मूलानि पिष्ट्वा कोष्णेण वारिणा। पीतं पीतविषं हन्ति वमने लाघवं भवेत्॥" (चि. ५५ अ.)। हारीतः॥ पूतिनखे तण्डुलीयकमूलम्–"तण्डुलीयकमूलस्य चूर्णं पूतिनखापहम्" (क्षुद्ररोग-चि.)। वङ्गसेनः।

विविध भाषाओं में नाम–

स.– तण्डूलीयः, मेघनादः, तण्डूलेकः, अभण्डीरः। हि.–चौलाई शाक, चौराई, गेन्ड्डी शाक। बं.– क्षुदेनटे, काटांनेट। म.– तांडुलजा, ताण्डुलजा। गु.– तान्दलजानि भाजी, तान्जलजो। क.– किसकुशाल, तापलू, मुल्लुकिरई रई। ते.– मोलाकुश। ता.– मूलक्कीरई। फा.– सफेद मर्ज, सुपेद मर्ज। अ.– बुकलेयमानियां, बुकल्यजमानियां। अं.– Prickly Amarnath (प्रिकली अमेरेन्थ)। ले.– Amaranthus spinosus (अमेरेन्थस स्पाइनोसस)।

तण्डूलीय की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा– बहुवीर्य। **कंचट की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा–** जलजम्। **मारिष की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा–** दीर्घनाल, रक्तपर्ण, विन्दुपर्ण।

गुण–दोष–

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार– तण्डूलीय (चौराई) विषनाशक तथा रूक्ष है, शीतल है और पवित्र है। यह रस और पाक में मधुर है तथा रक्त और पित्त का नाश करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार– चौराई शीतल तथा मधुर है और विष का नाश करता है। यह रुचिकारक, जाठराग्नि दीपक तथा पथ्य है और पित्त विकार, दाह तथा भ्रम को दूर करता है। चौराई का पत्ता शीतल है और अर्श विकार, रक्त पित्त, विष-विकार तथा कासरोग का नाश करता है। यह ग्राही है, विपाक में मधुर है तथा दाह को शांत करता है और रुचिकारक है।

भावप्रकाश के अनुसार– चौराई शाक लघु, शीतल तथा रूक्ष है और पित्त विकार, कफ विकार तथा रक्त विकार को दूर करता है। यह मल तथा मूत्र को निकालने वाली है, रुचिकारक है, जाठराग्नि दीपक है तथा विष नाशक है। मारिष मधुर रस वाला, शीतल तथा विष्टम्भी है और पित्त को दूर करता है एवं गुरु है। यह वात-कफ-कारक, रक्त-पित्त नाशक तथा विषमाग्नि को जीत लेता है। रक्त मारिष अधिक गुरु नहीं है, क्षारीय है तथा मधुर रस एवं सारक है। यह कफ कारक, पाक में कटुरस तथा थोड़ा दोष वाला कहा गया है। पानीय तण्डूलीय कञ्चट कहा गया है। कञ्चट तिक्त रस प्रधान है तथा रक्त विकार तथा वात विकार को दूर करता है और हलका है।

राजवल्लभ के अनुसार– तण्डूलीय शाक रक्त विकार, पित्त विकार तथा विष विकार को दूर करता है और पाक में स्वादिष्ट है। मारिष शाक मधुर, शीतल तथा विषटम्भी है, पित्त का नाश करता है तथा गुरु है। रक्त तना वाला मारिष शाक तण्डूलीय के गुण के समान ही गुण वाला होता है। तण्डूलीयक मूल उष्ण है तथा कफ नाशक है। यह रजोरोधक है और रक्तपित्त प्रदर को दूर करता है, ऐसा कुछ लोगों का मत है।

वैद्यक शास्त्र में तण्डूलीयक का प्रयोग–

(१) रक्त-पित्त में तण्डूलीयक मूल का प्रयोग– बेत तथा तण्डूलीयक को रात भर पानी में रख कर

या उसके स्वरस निकाल कर अथवा उसका कल्क बनाकर अथवा उसका मर्दन कर पकाकर एक साथ या अलग-अलग प्रयोग करने से ये योग रक्त पित्त को शांत करते हैं (च.ची.अ.४)। (२) **सम्पूर्ण विष दोष में तण्डूलीयक के पत्ते का प्रयोग**- तण्डूलीयक और जीवन्ती का पत्र शाक सभी प्रकार के विष दोष में हितकर है (च.ची.अ.२५)। (३) **प्रदर में तण्डूलीयक् मूल का प्रयोग**- प्रदर रोग में तण्डूलीयक मूल को शहद मिलाकर चावल के धोअन के साथ पान करें (च.चि.अ.३०)।

(१) अर्श रोग में तण्डूलीयक के पत्ते का प्रयोग- दोषों के अनुसार बथुए का शाक या तण्डूलीयक के शाक अथवा अन्य शाकों के पत्ते का रस अर्श रोग में पान कराये (सू.चि.अ.६)। (२) **मूषक विष में तण्डूलीयक मूल का प्रयोग**- मूषक के विष में तण्डूलीयक मूल के कल्क को मधु मिलाकर चाटें (सू.क.अ.५)।

(१) अतिसार में तण्डूलीयक मूल का प्रयोग- तण्डूलीयक के मूल को उत्तम जल से पीसकर, मधु और मिश्री मिलाकर अतिसार रोग में पान करे (चक्र.अतिसार चिकित्सा)। (२) **ग्रहणी में कञ्चट पल्लव का प्रयोग**- जामुन, अनार, सिंघाड़ा, पाल तथा कञ्चट के पल्लवों के साथ पका हुआ और वासी किया हुआ बाल बिल्व को गुड़ और सोंठ का चूर्ण मिला कर खाने से सभी अतिसारों का तथा दुःस्तर ग्रहणी का नाश करता है (चक्र.)।

रक्तपित्त में तण्डूलीय के पत्ते का प्रयोग- रक्त पित्त में शाक के समान तण्डूलीयक आदि पत्तों का शाक हितकर है (भावप्रकाश)।

विषशान्ति के लिए तण्डूलीयक के मूल का प्रयोग– विषशांति के लिए तण्डूलीयक मूल को गरम जल के साथ पीस कर पान करने से पिया हुआ विष के दोष का नाश करता है, वमन कराने में लघु है (हा. चि.अ.५५)।

पूतिनख में तण्डूलीयक मूल का प्रयोग- तण्डूलीयक मूल का चूर्ण सेवन करने से पूतिनख रोग दूर होता है (बंगसेन, क्षुद्र रोग चिकित्सा)।

Actions and uses *of A. spinosus.*—Demulcent, astringent and diuretic. A poultice of the leaves is used as an application over unhealthy sores. The root is given in combination with other astringents in menorrhagia and in gonorrhoea. Its ashes are used for the same purposes as the ashes of Aghada, a paste of which is applied in eczema (R. N. Khory, Part II., p. 505). "The *authors* of the *Pharmacopoeia of India* regard the plant as a simple emollient, and inferior to many others, but recently the root has been found to be of great service in the treatment of gonorrhoea and eczema. In gonorrhoea it is said to stop the muco-purulent discharge and all the concomitant symptoms, such as heat, scalding and general irritation. (Dymock, Part III., p. 138).

तामलकी

Phyllanthus niruri

तामलकी, भूधात्री, भ्वामलकी–*Phyllanthus niruri, P. urinaria Linn.*

अन्वर्थसंज्ञा–"बहुपत्रिका", "बहुफला", "वृष्या", "विषघ्नी"। भूधात्री मधुरा तिक्ता वीर्यतः शिशिरा स्मृता। पित्तं हन्ति कफास्रघ्नी दृष्टिदाहविनाशनी॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ भूधात्री तु

कषायाम्ला पित्तमेहविनाशनी॥ भूधात्री वातकृत् तिक्ता कषाया मधुरा हिमा। पिपासा-कासपित्तास्त्रकफकण्डूक्षतापहा॥ भावप्रकाशः॥ भूधात्री तु विशेषेण विषघ्नी पुत्रदायिनी। शोढलनिघण्टुः।

वैद्यके व्यवहारः–हिक्काश्वासयोः तामलकी–"सशर्करां तामलकीं प्राशयेन्नावयेत् तथा"। (चि. २१ अ.)। चरकः॥ नेत्रपीडायां भूम्यामलकी–"भूम्यामलकी घृष्टा ससैन्धवगृहवारियोजिता ताम्रे। जाता घनत्वमक्ष्णोर्जयति बहिर्लेपतः पीडाम्॥" (नेत्ररोग-चि.)। चक्रदत्तः॥ रक्त-प्रदरे भूम्यामलकीबीजम्–"भूम्यामलकीबीजन्तु पीतं तण्डुलवारिणा। दिनद्वयत्रयेणैव स्त्रीरोगं नाशयेद् ध्रुवम्॥" (स्त्रीरोग-चि.)। वङ्गसेनः।

विविध भाषाओं में नाम– सं.– भूम्यामलकिका, शिवा, तामलकी, बहुपत्रा, बहुफला। हि.– भूई आंवला, भद्र आवला, जर आवला। ब.– भूई आ़वली। क.– आरुनेलि। तै.– नेला उसीरिके, नेल बुसरिक। गु.– भो आमली। म.– भूम आवली, भूयांवली। यू.– फूल आवला। द्रा.– क्रीडामनैलि। लै.– Phiyllanthus niruri (फाईलेन्थस नीरुरी)।

तामलकी की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा– बहुपत्रिका, बहुफला, वृष्या, विषघ्नी।

गुण-दोष–

धन्वन्तरि निघंटु के अनुसार– भुई आवला (भूधात्री) मधुर, तिक्तरस, शिशिर वीर्य कही गयी है। यह पित्त का नाश करती है, कफ विकार तथा रक्त विकार का नाश करती है और नेत्र के दाह को शांत करती है।

भावप्रकाश के अनुसार– भुई आंवला कषाय रस तथा अम्ल रस वाली है। यह पित्त विकार तथा प्रमेह का नाश करती है। भुई आंवला वात कारक, तिक्त रस, कषाय रस, मधुर रस तथा शीतल है। यह प्यास, कास, रक्तपित्त, कफ विकार, कण्डू तथा क्षत का नाश करती है।

सोढल निघण्टु के अनुसार– भुई आंवला विशेष कर विष नाशक तथा पुत्रप्रद है।

वैद्यक शास्त्र में भुई आंवला का प्रयोग–

हिचकी तथा श्वास रोग में भूम्यामलकी का प्रयोग– भुई आंवला के चूर्ण को हिक्का तथा श्वास में शक्कर मिलाकर खिलाये और नस्य दे (च.चि.अ.२१)।

नेत्र पीड़ा में भूम्यामलकी का प्रयोग– भूम्यामलकी को सेन्धा नमक के साथ पीसकर तथा ताम्र पात्र में काञ्जी मिलाकर गाढ़ा हो जाने पर नेत्र के ऊपर लेप करे। यह नेत्र की पीड़ा को दूर करता है (चक्र.नेत्र रोग चि.)।

रक्त प्रदर में भूम्यामलकी के बीज का प्रयोग– भूम्यामलकी के बीज को चावल के धोअन के साथ पान करने से दो तीन दिन में ही स्त्री रोग का नाश होता है (वङ्गसेन, स्त्रीरोग चि.)।

Constituents—A bitter principle, pseudo chiratin, an alkaloid, fat and colouring matter.

Actions and uses—Antiperiodic, diuretic, stomachic and demulcent. It is used in intermittent fevers, to prevent paroxysms; also given in diseases of the spleen and liver, in dropsy, gonorrhoea, acid urine and in jaundice. A poultice of the leaves mixed with salt is used

for itch and scaly affections of the skin. The infusion mixed with methi, is used as a stomachic, bitter and astringent, and also given as a remedy in chronic dysentery. (R. N. Khory, Part II. P. 552).

ताम्बूलवल्ली

Piper betel

ताम्बूलवल्ली–*Piper betel.*

तद्भेदाः–कृष्णपर्णं शुभ्रपर्णम् (धन्वन्तरिः)। श्रीवाटी, अम्लवाटी, सतसा, गुहागरे, अम्लसरा, पटुलिका, ह्वेसनीया च (नरहरिः)। अन्वर्थसंज्ञा–"मुखरागकरी", "कामजननी", "आमोदजननी", "श्रमभञ्जनी", "तीक्ष्णमञ्जरी", "सप्तशिरा", "भक्ष्यपत्री"। ताम्बूलं कटु तिक्तमुष्णमधुरं क्षारं कषायान्वितम्। वातघ्नं कफनाशनं कृमिहरं दुर्गन्धिनिर्नाशनम्॥ वक्त्रस्याभरणं विशुद्धिकरणं कामाग्निसन्दीपनम्। ताम्बूलस्य सखे ! त्रयोदशगुणाः स्वर्गेऽपि ते दुर्लभाः॥ 'कृष्णं पर्णं' तिक्तमुष्णं कषायं धत्ते दाहं वक्त्रजाड्यं मलञ्च। 'शुभ्रं पर्णं' श्लेष्मवातामयघ्नं पथ्यं रुच्यं दीपनं पाचनञ्च॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ ताम्बूल पत्रं तीक्ष्णोष्णं कटु पित्तप्रकोपनम्। सुगन्धि विशदं तिक्तं स्वर्यं वातकफापहम्॥ स्त्रंसनं कटुकं पाके कषायं वह्निदीपनम्। वक्त्रकण्डूमलक्लेददौर्गन्ध्यादिविशोधनम्॥ सुश्रुतः॥ नागवल्ली कटुस्तीक्ष्णा तिक्ता पीनसवातजित्। कफकासहरा रुच्या दाहकृद्दीपनी परा॥ 'श्रीवाटी' मधुरा तीक्ष्णा वातपित्तकफापहा। रसाढ्या सरसा रुच्या विपाके शिशिरा स्मृता॥ 'स्यादम्लवाटी' कटुकाम्लतिक्ता तीक्ष्णा तथोष्णा मुखपाककर्त्री। विदाहपित्तास्त्रविकोपनी च विष्टम्भदा वातनिवर्हणी च॥ 'सतसा' मधुरा तीक्ष्णा कटुरुष्णा च पाचनी। गुल्मोदराध्मानहरा रुचिकृद्दीपनी परा॥ 'गुहागरे' सप्तशिरा प्रसिद्धा तत्पर्णचूर्णातिरसाऽतिरुच्या। सुगन्धितीक्ष्णा मधुरातिहृद्या सन्दीपनी पुंस्त्वकराऽतिबल्या॥ नाम्नाऽन्या'ऽम्लसरा' सुतीक्ष्णमधुरा रुच्या हिमा दाहनुत्। पित्तोद्द्रेकहरा सुदीपनकरी बल्या मुखामोदिनी। स्त्री-सौभाग्य-विवर्द्धनी मदकरी राज्ञां सदा वल्लभा। गुल्माऽऽध्मानविबन्धजिच्च कथिता सा मालवे तु स्थिता॥ आन्ध्रे 'पटुलिका' नाम कषायोष्णा कटुस्तथा। मलापकर्षा कण्ठस्य पित्तकृद्वातनाशनी॥ 'ह्वेसनीया' कटुस्तीक्ष्णा हृद्या दीर्घदला च सा। कफवातहरा रुच्या कटुर्दीपनपाचनी॥ 'अन्यच्च'–सद्यस्त्रोटितभक्षितं मुखरुजाजाड्यावहं दोषकृत्। दाहारोचकरक्तदायि मलकृद्विष्टम्भि वान्तिप्रदम्। यद्भूयो जलपानपोषितरसं तच्चेच्चिरात् त्रोटितम्। ताम्बूलीदलमुत्तमं च रुचिकृद्वर्ण्यं त्रिदोषार्त्तिनुत्॥ राजनिघण्टुः॥ नागवल्लीफलं हृद्यं सुगन्धि कफवातजित्। आत्रेयसंहिता॥ न नेत्ररोगे न च रक्तपित्ते क्षते न वाते न विषे न शोषे। मदात्यये नापि च मोहमूर्च्छाश्वासेषु ताम्बूलमुशन्ति वैद्याः॥ सुषेणदेवः॥ ताम्बूलं विशदं रुच्यं तीक्ष्णोष्णं तुवरं सरम्। वश्यं तिक्तं कटु क्षारं रक्तपित्तकरं लघु॥ बल्यं श्लेष्मास्यदौर्गन्ध्यं मलवातश्रमापहम्। भावप्रकाशः॥ ताम्बूलपत्रं तीक्ष्णोष्णं कटुवातकफापहम्। पित्तकृत् स्त्रंसनं वृष्यं वह्निकृद्वस्तिशोधनम्॥ राजवल्लभः।

वैद्यके व्यवहारः–श्लीपदे ताम्बूलम्–"सप्तताम्बूलपत्राणां कल्कं तप्तेण वारिणा। संसृष्ट-लवणोपेतं श्लीपदं हन्ति सेवनात्॥" (श्लीपद-चि.)। वङ्गसेनः।

विविध भाषाओं में नाम– सं.– ताम्बूलम्, ताम्बुलवल्ली, नागिनी, नागवल्ली। हि.– पान, नागवेल। ब. – पान। म.– नागवला। गु.– पानवेला, नागरवेला, नागरवेलनाम् , पान। क.– विल्लदेले। द्रा.– वेत्तिले। ते.– तमाल पाकु। फ.– वर्गन्तवाले, तम्बोल। अ.– कान फान। अं.– Betel leaf (वेटल लीफ)। ले.– Piper betel (पीपर वेटल)।

ताम्बूलवल्ली के भेद– कृष्णपर्णम् , शुभ्रपर्णम्। (धन्वन्तरिः)। श्रीवाटी, अम्लवाटी, सतसा, गुहागरे, अम्लसरा, पटुलिका, ह्वेसनीया (नरहरिः)।

ताम्बूल वल्ली की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा– मुखरागकरी, कामजननी, आमोद जननी, श्रमभञ्जनी, तीक्ष्णमञ्जरी, सप्तशिरा, भक्ष्यपत्री।

गुण-दोष–

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार– ताम्बूल कटु रस वाला तिक्त रस प्रधान, उष्ण तथा मधुर रस है। यह क्षारीय एवं कषाय रस वाला है। यह वात नाशक, कफ नाशक, क्रिमिहर तथा दुर्गन्ध का नाश करने वाला है। ताम्बूल मुख का आभूषण है, मुख शुद्धिकारक है तथा कामाग्नि का दीपक है। हे मित्र! ताम्बूल के तेरह गुण हैं और यह स्वर्ग में भी दुर्लभ है। **ताम्बूल का काला पत्र** तिक्त रस वाला, उष्ण, कषाय रस है और यह दाह, मुख की जड़ता तथा मल का धारण करता है। **ताम्बूल का सफेद पत्र** कफ विकार तथा वात विकार का नाश करता है, पथ्य है, रुचिकारक है, जाठराग्नि दीपक है तथा पाचक है।

सुश्रुत के अनुसार– ताम्बूल पत्र तीक्ष्ण वीर्य, उष्ण वीर्य तथा कटु रस वाला है और पित्त को प्रकुपित करता है। यह सुगन्धित है, विशद है, तिक्त रस वाला है, स्वर वर्द्धक है तथा वात एवं कफ को दूर करता है, स्त्रंसन है, पाक में कटु रस है, कषाय रस है तथा जाठराग्नि प्रदीपक है। यह मुख की कण्डू, मल, क्लेद तथा दुर्गन्ध आदि का शोधन करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार– नागवल्ली कटुरस, तीक्ष्ण, तिक्तरस तथा पीनस रोग एवं वात रोग को नष्ट करती है। यह कफ एवं कास रोग को दूर करने वाली, रुचिकारक, दाह कारक तथा उत्तम जाठराग्नि प्रदीपक है। श्रीवाटी नामक नागवल्ली मधुर रस, तीक्ष्ण, कटु रस तथा उष्ण है और वात विकार, पित्त विकार तथा कफ विकार को दूर करती है। यह अधिक रस वाली है, सरस है, रुचिकारक है तथा विपाक में शीतल है। अम्लवाटी नामक नागवल्ली कटु , अम्ल तथा तिक्त रस वाली है। यह तीक्ष्ण तथा उष्ण है और मुखवास करने वाली है, विदाह तथा रक्त पित्त को प्रकुपित करने वाली है, विष्टम्भ कारक है तथा वात रोग को दूर करने वाली है। सतसा नामक नागवल्ली मधुर है, तीक्ष्ण है, कटु है, उष्ण तथा पाचक है। यह गुल्म रोग, उदर रोग तथा आध्मान को दूर करती है, रुचिकारक है तथा उत्तम जाठराग्नि दीपक है। सप्तशिरा नामक नागवल्ली गुहागर में प्रसिद्ध है उसके पत्ते का चूर्ण अत्यधिक रस वाला है तथा अत्यधिक रुचिकारक है, सुगन्धित है, तीक्ष्ण है, मधुर है तथा अत्यधिक हृदय को बल देने वाली है। यह जाठराग्नि दीपक है, पुंस्त्वकारक है तथा बलकारक है। दूसरी अम्लसरा नामक नागवल्ली तीक्ष्ण तथा मधुर रस है और रुचिकारक है, शीतल है एवं दाह को दूर करती है। यह पित्त के स्राव को रोकने वाली है, अच्छी तरह जाठराग्नि प्रदीपक है, बलकारक है तथा मुख को सुगन्धित करने वाली है, स्त्री के सौभाग्य को बढ़ाने वाली है, मेदकारक है और राजाओं के लिए हमेशा प्रियकारक है। यह गुल्म रोग, आध्मान रोग तथा विबन्ध को दूर करने वाली है। यह मालव देश में स्थित है। आन्ध्र में पटुलिका नामक नागवल्ली है। यह कषाय रस, उष्ण तथा कटु रस है, कण्ठके मल को दूर करने

वाली है, पित्त कारक है तथा वात नाशक है। ह्वेसनीय नामक नागवल्ली कटु रस, तीक्ष्ण, हृदय को बल देने वाली एवं बड़े पत्ते वाली होती है। यह कफ-वात नाशक, रुचि कारक है, कटु रस है और दीपन-पाचन है और भी कहा गया है कि सद्यः तोड़कर खाने पर मुख की पीड़ा तथा जड़ता को दूर करती है तथा त्रिदोष कारक है। यह दाह, अरोचक तथा रक्त को बढ़ाने वाली है, मल कारक है, विष्टम्भी है तथा वमन कारक है। जो बार-बार जल में रखा हुआ है और बहुत समय के बाद तोड़ा गया है वह ताम्बूल पत्र उत्तम, रुचि कारक है, वर्ण कारक है तथा त्रिदोष की पीड़ा को नष्ट करता है।

आत्रेय संहिता के अनुसार- नागवल्ली का फल हृदय को बल देने वाला, सुगन्धित तथा कफ-वात को दूर करने वाला है।

सुषेणदेव के अनुसार- ताम्बूल पत्र का प्रयोग नेत्र रोग, रक्त पित्त-रोग, क्षत, वात रोग, विष विकार, शोथ रोग, मदात्यय, मोह, मूर्च्छा तथा श्वास रोग में वैद्यगण निषेध करते हैं।

भावप्रकाश के अनुसार- ताम्बूल पत्र अत्यन्त तिक्त तथा कटु रस वाला है, क्षारीय है, रक्त-पित्त कारक है तथा लघु है। यह बल कारक है, कफ विकार, मुख का दुर्गन्ध तथा मल, वात-विकार तथा थकावट को दूर करता है।

राजवल्लभ के अनुसार- ताम्बूल का पत्र तीक्ष्ण, उष्ण तथा कटु रस है और वात एवं कफ को दूर करता है। यह पित्त कारक है, स्रंसन है, वीर्यवर्द्धक है, जाठराग्नि कारक है तथा वस्ति शोधक है।

वैद्यक शास्त्र में नागलवल्ली पत्र का प्रयोग-

श्लीपद में ताम्बूल का प्रयोग- सात ताम्बूल के पत्र का कल्क मद्य के साथ मिलाकर तथा सेन्धा नमक मिलाकर सेवन करने से श्लीपद का नाश करता है।

Constitutents—The leaves yield on distillation, a light aromatic and volatile oil known as betel oil and chavicol a very volatile pale essential oil. Betel oil contains terpene, betel phenol and sesquiterpene.

Actions and uses—Stimulant, carminative and antiseptic; given in flatulence, foetor of the mouth, dyspepsia, colic &c., mostly used as a masticatory by the natives of India. Chavicol is a powerful antiseptic, 5 times stronger than carbolic acid, and twice as strong as eugenol. The juice is also antiseptic and used in catarrhal affections and inflammation of the throat and bronchi in diphtheria &c. (R. N. Khory, Part II., p. 516).

"Of late years the medicinal properties of betel leaves have been investigated in Europe. Dr. Kleinstuck of Zwatzen, near Jena, has found that the essential oil is of much use in catarrhal affections, inflammations of the throat, larynx and bronchi; it has an antiseptic action. He has used it in diphtheria as a gargle and by inhalation. The dose is one drop in one hundred grams of water. In India the juice of four leaves may be used similarly diluted." (Dymock, Part III., p. 186).

"Being always at hand, Pan leaves are used as a domestic remedy in various ways, the stalk of the leaf smeared with oil is introduced into rectum in constipation and tympanitis of children, with the object of inducing the bowels to act. The leaves are applied to the temples in headache for relieving pain, to painful and swollen glands for promoting the secretion, and to the

mammary gland with the object of checking the secretion of milk. Pan leaves are used as a reado dressing for foul ulcers, which seem to improve under them." (*Hind. Mat. Med.*, p. 245).

पाटला

Stereospermum suaveolens

पाटला, ताम्रपुष्पा पाटला—*Stereospermum suaveolens, D. C., Bignonia suaveolens, Roxb.* **पीतपुष्पा पाटला**—*Bignonia chelonoides, S. Willd. Chelonoides.* **सितपुष्पा पाटला, काष्ठपाटला, मुष्ककम्**—*Schrebera swietenioides. Roxb.*

अन्वर्थसंज्ञा—ताम्रपुष्पायाः—व्यवहारज्ञापिका—"अम्बुवासिनी; परिचयज्ञापिका— "वसन्तदूती", "कालवृन्तिका", "स्थिरगन्धा", "अलिवल्लभा"। मुष्ककस्य—"क्षारश्रेष्ठः"। पाटलाऽपि रसे तिक्ता गुरूष्णा पवनास्त्रजित्। पित्तहिक्कावमिशोफकफारोचकनाशनी॥ 'पाटलायुगलं हृद्यं सुगन्धं कफवातजित्। पाटलाया गुणस्तद्वत् किञ्चिन्मारुतकोपजित्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ पाटली तु रसे तिक्ता कटूष्णा कफवातजित्। शोफाऽऽध्मानवमिश्वासशमनी सन्निपातनुत्॥ 'सितपाटलिका' तिक्ता गुरूष्णा वातदोषजित्। वमिहिक्काकफघ्नी च श्रमशोषापहारिका॥ राजनिघण्टुः॥ पाटला तुवरा तिक्ताऽनुष्णा दोषत्रयापहा। अरुचिश्वासशोथास्त्रच्छर्दिहिक्कातृषाहरी॥ 'पुष्पं' कषायं मधुरं हिमं हृद्यं कफास्त्रनुत्। पित्तातिसारहृत् कण्ठ्यं 'फलं' हिक्कास्त्रपित्तहृत्॥ भावप्रकाशः॥ पाटला कफवातघ्नी। राजवल्लभः।

वैद्यके व्यवहारः—व्रणप्रच्छादनार्थं पाटलीपत्रम्—"...पाटल्याः...। व्रणप्रच्छादने विद्वान् पत्राणि ...चादिशेत्" (चि. १३ अ.)। चरकः॥ (१) शर्करायां पाटलीक्षारः—"क्षारः पेयोऽविमूत्रेण शर्करानाशनः परः। पाटली करवीराणाम्" (चि. ७ अ.)। (२) हिक्कासु पाटलाफलपुष्पे—"पाटलायाः फलं पुष्पं...। चत्वारो यूषयोगाः स्युः प्रतिपादप्रदर्शिताः। मधुद्वितीया कर्त्तव्यास्ते हिक्कासु विजानता॥" (उ. ५० अ.)। (३) मूत्राघाते पाटलाक्षारः—"पाटलाक्षारमाहृत्य सप्तकृत्यः परिस्त्रुतम्। पिबेन्मूत्रविकारघ्नं संसृष्टं तैलमात्रया॥" (उ. ५८ अ.)। सुश्रुतः॥ दग्धव्रणे पाटलामूलत्वक्—"सिद्धं कल्ककषायाभ्यां पाटल्याः कटुतैलकम्। दग्धव्रणरुजास्त्रावदाहविस्फोटनाशनम्॥" (नाडीव्रण-चि.)। चक्रदत्तः॥ अम्लपित्ते पाटलात्वक्—"पटोलपाटलाक्वाथो धान्यनागरकान्वितः। जलेन हितकः प्रोक्तश्चाम्लपित्तनिवारणः॥" (चि. २५ अ.)। हारीतः।

विविध भाषाओं में नाम—

सं.— पाटली, पाटला, मोघा, मधुदूती। हि.— पाढ़ला, पाढ़र, पारल, पड़रिया। बं.— पारुलगाछ, पाढल। म.— पाढल, रक्तपाढल। गु.— राता फूलना, पाढ़ल। क.— हादरी। ते.— कलगोरु चेट्टु। ता.— पड्री, पढ़ी। ले.— Stereospermum suaveolens (स्टेरियोस्पर्मम सुवियोलेन्स)।

परिचय ज्ञापिका संज्ञा— वसन्तदूती, कालवृन्तिका, स्थिरगन्धा, अतिवल्लभा। **व्यवहारज्ञापिका संज्ञा**— अम्बुवासिनी।

श्वेत पाटला। सं.— श्वेतपाटला, मुष्ककः, पाटलिः, काष्ठपाटला। हि.— सफेद पाढ़ल, घण्टा पाढ़ल, कठ

पाढ़ल। बं.- घंपटा पारुल। म.- मोखा। गु.- मरखो। क.- मोख दलाई। ते.- मुष्कतण्डु चेट्टू। ले.- Stereospermum chelonoides (स्टेरियोस्पर्मम चेलोनियोडिस)।

ताम्रपुष्मी की अन्वर्थ ज्ञापिका सं.- व्यवहार ज्ञापिका- अम्बु वासिनी। **मुष्कक की परिचय ज्ञापिका-** क्षारश्रेष्ठः।

गुण-दोष-

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- पाटला तिक्त रस, गुरु तथा उष्ण है और वात रक्त को जीत लेती है। यह पित्त विकार, हिचकी, वमन, शोथ, कफ विकार तथा अरोचक का नाश करती है। दोनों प्रकार की पाढ़ल हृदय को बल देने वाली, सुगन्धित हैं तथा कफ वात का नाश करती हैं। पाटला का गुण पूर्वोक्त प्रकार से ही है, किन्तु यह थोड़ा वात प्रकोपक है।

राज निघण्टु के अनुसार- पाटली तिक्तरस वाली तथा कटु रस युक्त है, उष्ण है और कफ तथा वात रोग का नाश करती है। यह शोथ, आध्मान, वमन तथा श्वास रोग को शान्त करती है एवं सन्निपात को दूर करती है। यह वमन, हिचकी तथा कफ का नाश करने वाली है और श्रम तथा शोथ को दूर करने वाली है।

भावप्रकाश के अनुसार- पाटला, कषाय रस, तिक्त रस तथा अनुष्ण है और तीनों दोषों को दूर करती है। यह अरुचि, श्वास, शोथ, रक्त विकार, वमन, हिक्का तथा प्यास शान्त करती है। पाटला का पुष्प कषाय रस तथा मधुर रस है, शीतल है और हृदय को बल देने वाला है एवं कफ तथा रक्त विकार को दूर करती है। यह पित्तातिसार नाशक है, कण्ठ के लिए हितकर है। पाटली का फल हिक्का तथा रक्तपित्त को दूर करता है।

राजवल्लभ के अनुसार- पाटला कफ वात नाशक है।

वैद्यक शास्त्र में पाटला का प्रयोग-

व्रण को ढकने के लिए पाटली पत्र प्रयोग- चिकित्सक पाटली के पत्तों का व्रण को ढकने के लिए प्रयोग करे (च.चि.अ.१३)।

(१) शर्करा रोग में पाटली पत्र के क्षार का प्रयोग- पाढ़ली तथा करवीर (कनइल) के पत्तों का क्षार भेड़ के दूध के साथ पान करे। यह शर्करा का अच्छी तरह नाश करता है (सु.चि.अ.७)। (२) **हिक्का रोग में पाटला पुष्प तथा फल का प्रयोग-** पाटला के फल तथा पुष्प को प्रतिपाद से प्रदर्शित चार कषाय योग कहे गये हैं। उसमें मधु मिलाकर हिक्का रोग में प्रयोग करे (सु.उ.अ.५०)। (३) **मूत्राघात में पाटला के क्षार का प्रयोग-** पाटला के क्षार को सात बार जल में प्रक्षालन कर उसमें थोड़ी मात्रा में तैल मिलाकर मूत्र विकार का नाश करने के लिए पान करे (सु.उ.अ.५८)।

दग्ध व्रण में पाटला मूल के छाल का प्रयोग- पाटला के कल्क तथा कषाय के साथ विधिवत सिद्ध सरसों का तैल लेप करने से दग्ध व्रण की पीड़ा, स्राव, दाह तथा विस्फोट का नाश होता है (चक्र.नाडी.चि.)।

अम्लपित्त में पाटला की छाल का प्रयोग- परवल का पत्ता तथा पाटला का क्वाथ धनिया तथा सोंठ मिलाकर जल के साथ पान करने को अम्ल पित्त का निवारण करने वाला कहा गया है (हारीत, चि.अ.२५)।

Constituents : The flowers contain albuminous, saccharine and mucilaginous matters and wax.

Actions and uses—Refrigerant and diuretic; used in dyspepsia fever, cough, dropsy, & c. The flowers with honey stop troublesome hiccough. (R. N. Khory, Part II., p. 460).

ताल:

Borassus Flabelliformis

ताल:, तृणराज:—*Borassus flabelliformis.*

अन्वर्थसंज्ञा—"दीर्घस्कन्ध:", "चिरायु:", "दीर्घपत्र:", "दृढच्छद:" "लेख्यपत्र:", "मधुररस:", "आसवद्रु:"। 'फलं' स्वादु रसं पाके तालजं गुरु पित्तजित्। 'तद्बीजं' स्वादु पाके तु 'मूलं' स्याद्रक्तपित्तजित्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टु:॥ तालश्च मधुर: शीतपित्तदाहश्रमापह:। सरश्च कफपित्तघ्नो मदकृद्दाहशोषनुत्॥ राजनिघण्टु:॥ पक्वं ताल'फलं' पित्तरक्तश्लेष्मविवर्द्धनम्। दुर्जरं बहुमूत्रञ्च तन्द्राभिष्यन्दशुक्रदम्॥ 'तालमज्जा' तु तरुण: किञ्चिन्मदकरो लघु:। श्लेष्मलो वातपित्तघ्न: सस्नेहो मधुर: सर:॥ तालजं तरुणं 'तोय'मतीवमदकृन्मतम्। अम्लीभूतं तदा तु स्यात् पित्तकृद्वातदोषहृत्॥ भावप्रकाश:॥ वातहा वृंहणो बल्य: क्रिमिहा कुष्ठनाशन:। रक्तपित्तहर: स्वादुस्ताल: सप्तगुणान्वित:॥ 'तालशस्यन्तु' मधुरं मूत्रलं वातपित्तजित्। तालास्थि'मज्जा' मधुरा मूत्रला शीतला गुरु:॥ कफक्रिमिहरा वृष्या वातला दुर्जरा मता॥ राजवल्लभ:।

वैद्यके व्यवहार:—मूत्रस्य वैवर्ण्ये कृच्छ्रे च तालशस्यम्—"...तालशस्यैस्तथा शृतम्। घृतं पयश्च मूत्रस्य वैवर्ण्ये कृच्छ्र एव च॥" (चि. २२ अ.)। चरक:॥ मूत्राघाते तरुणतालमूलम्—"पिष्ट्वाऽथवा सुशीतेन शालितण्डुलवारिणा। तालस्य तरुणं मूलं..."। (उ. ५८ अ.)। सुश्रुत:॥ (१) उन्मादे तालशाखाभवो रस:—"उन्मादे समधु: पेय: शुद्धो वा तालशाम्बुज:। रस:..."। (उन्माद-चि.)। (२) प्लीहोदरे ताल-पुष्पभव: क्षार:—"तालपुष्पभव: क्षार: सगुड: प्लीहनाशन:"। (प्लीह-चि.)। चक्रदत्त:। सुखप्रसवार्थं तालमूलम्—"तालश्यं चोत्तरं मूलं स्त्रीप्रमाणेन तन्तुना। बद्ध्वा कटच्याञ्च नियतं सुखं नारी प्रसूयते॥" (स्त्रीरोग-चि.)। वङ्गसेन:।

विविध भाषाओं में नाम— सं.- ताल:, लेखपत्र:, तृणराज:, महोन्नत:। हि.- ताड़, ताल। बं.- ताल। म.- ताड़ खरताल। ता.- पनैभरम, पनम। क.- तालिभारा, वालेभर। ते.- ताति, ताडि। गु.- तड़। द्रा.- पानम्भरम:। फा.- ताल। अ.- तार। अं.- Palm tree (पाम ट्री)। ले.- Borassus flabelliformis (वोरेसस फ्लेविल्लीफार्मिस)।

ताड़ की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा- दीर्घस्कन्ध:, चिरा ु:, दीर्घपत्र:, दृढच्छद:, लेख्यपत्र:। मधुररस:, आसवद्रु:।

गुण-दोष-

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- ताड़ का फल पाक में स्वादु (मधुर) रस वाला है, गुरु है तथा पित्त विकार को दूर करता है। ताड़ का बीज पाक में स्वादिष्ट है। ताड़ का मूल रक्त पित्त को दूर करता है।

राज निघण्टु के अनुसार- ताड़ मधुर है, शीतल है तथा पित्त विकार, दाह तथा थकावट को दूर करता है। ताड़ का रस कफ-पित्त नाशक है, मद कारक है तथा दाह एवं शोथ को दूर करता है।

भावप्रकाश के अनुसार- पका हुआ ताड़ का फल पित्त विकार तथा कफ विकार को बढ़ाता है, दुष्पच है, अधिक मूत्र को बढ़ाने वाला है, तन्द्रा, अभिष्यन्द तथा शुक्र को बढ़ाने वाला है। ताल की मज्जा (तरुण ताल की मज्जा) थोड़ी मेद कारक तथा लघु है। यह कफ कारक है, वात-पित्त नाशक है, स्निग्ध है, मधुर

है तथा सारक है। तरुण ताड़ का रस अधिक मद कारक है। अम्लीभूत ताड़ का जल पित्त कारक होता है तथा वात दोष को दूर करता है।

राजवल्लभ के अनुसार- ताल वात-नाशक, मांसवर्द्धक, बल कारक, क्रिमिरोग नाशक, कुष्ठ रोग नाशक, रक्तपित्त को दूर करने वाला तथा स्वादिष्ट है। ताड़ सात गुणों से युक्त है। ताड़ का शस्य मधुर तथा मूत्रल एवं वात-पित्त को दूर करता है। ताड़ की अस्थि तथा मज्जा मधुर है, मूत्रल है, शीतल है तथा गुरु है। यह कफ विकार तथा क्रिमि विकार को दूर करने वाली है, वीर्यवर्द्धक है, वातकारक है तथा दुष्पच है।

वैद्यक शास्त्र में ताड़ का प्रयोग-

मूत्र की विवर्णता तथा मूत्रकृच्छ्र में तालशस्य का प्रयोग- ताड़ के शस्य के साथ पकाया हुआ घृत तथा दूध मूत्र की विवर्णता तथा मूत्रकृच्छ्र को दूर करता है (च.चि.अ.२२)।

मूत्राघात में तरुण ताल मूल का प्रयोग- ताड़ के तरुण मूल को जल के साथ या जड़हन धान के चावल के धोअन के साथ पीसकर मूत्राघात रोग में पान करे (सु.उ.अ.५८)।

(१) उन्माद में ताल शाखा के रस का प्रयोग- उन्माद रोग में ताल शाखा के शुद्ध रस का पान करे (चक्र.उन्माद चि.)। **(२) प्लीहोदर रोग में ताल पुष्प क्षार का प्रयोग**- ताड़ के पुष्प का क्षार गुड़ मिलाकर खाने से प्लीहोदर का नाश करता है (चक्र.प्लीहोदर चि.)।

सुखपूर्वक प्रसव के लिए ताल मूल का प्रयोग- ताड़ के उपर की जड़ को स्त्री के बराबर सूत के साथ बांधकर कटि में बांधने पर अवश्य ही स्त्री सुखपूर्वक प्रसव करती है (बंगसेन, स्त्री रोग चि.)।

Constituents—Gum, like tragaconth, fat, albuminoid.

Actions and uses—Demulcent, refrigerant and diuretic; the root is cooling and restorative; the juice is cooling and diuretic when fresh; the pulp obtained from the unripe fruit is diuretic and demulcent, and nutritive; given in gonorrhoea, leucorrhoea &c., the tody when fermented is converted into Tada-no-daru (*Artak*), a country drink. It is used as diuretic in gonorrhoea. The terminal bud of the tree and embryo of the germinating seed are used as vegetable and are nutritive and diuretic. The ash of the spathe is used by the natives in the treatment of enlarged spleen. (R. N. Khory, Part II., 622).

तालीसकम्

Abies webbiana

तालीसकम् , तालीसम्–*Abies webbiana Linn.*

अन्वर्थसंज्ञा–"आमलकीपत्रम्" "पत्राढ्यम्" "शुकोदरम्", "घनच्छदम्", "मुखरोगहरम्", "हृद्यम्"। तालीसं श्वासकासघ्नं दीपनं श्लेष्मपित्तजित्। मुखरोगहरं हृद्यं सुपत्रं पत्रसंवृतम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ तालीसपत्रं तिक्तोष्णं मधुरं कफवातनुत्। कासहिक्काक्षयश्वासच्छर्दि-दोषविनाशकृत्॥ राजनिघण्टुः॥ तालीसं लघु तीक्ष्णोष्णं श्वासकासकफानिलान्। निहन्त्य-रुचिगुल्मामवह्निमान्द्यक्षयामयान्॥ भावप्रकाशः॥ तालीसपत्रं मधुरं तिक्तञ्चोष्णं लघु स्मृतम्। तीक्ष्णं स्वर्यञ्च हृद्यञ्च अग्निदीप्तिकरं मतम्॥ ...श्वासं कफं वातं क्षयगुल्मारुचीस्तथा। रक्तदोषं वमिञ्चाममग्निमान्द्यञ्च नाशयेत्॥ मुखरोगञ्च पित्तञ्च नाशयेदिति कीर्त्तितम्। निघण्टुरत्नाकरः॥

वैद्यके व्यवहारः—अरोचके तालीसपत्रम्—"तालीसचूर्णवटकाः सकर्पूरसितोपलाः। … रुचिकरा भृशम्॥" (चि. ५ अ.)। वाग्भटः॥ **रक्तपित्ते तालीसपत्रम्—**"तालीसचूर्णसंयुक्तः पेयः क्षौद्रेण वासकस्वरसः। कफपित्ततमकश्वासस्वरभेदरक्तपित्तहरः॥ (रक्तपित्त–चि.)। चक्रदत्तः।

विविध भाषाओं में नाम—

सं.– तालीसपत्रम्, धात्रीपत्रम्। हि.ब.म.क.– तालीसपत्र। ता.– तालीसपत्री। द.– पनियल। गु.– ताम्वद। द्रा.– पनियल, तालीस पत्रै। फा.– जरनव। अ.– तालीसफर, तालीसत्व। ले.– Abies webbiana (एविस वेब्बियाना)।

तालीस की अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा– आमलकीपत्रम्, पत्राढ्यम्, शुकोदरम्, घनच्छदम्, मुखरोगहरम्, हृद्यम्।

गुण–दोष–

धन्वन्तरिनिघण्टु के अनुसार– तालीसपत्र श्वास कास नाशक, जाठराग्नि दीपक है तथा कफ–पित्त को दूर करता है। यह मुख रोग को दूर करता है, हृदय को बल देता है।

राजनिघण्टु के अनुसार– तालीस पत्र तीक्ष्ण रस, उष्ण मधुर रस है और कफ–वात विकार को दूर करता है। यह कास, हिक्का, क्षयरोग, श्वास रोग तथा वमन दोष का नाश करता है।

भावप्रकाश के अनुसार– तालीस पत्र लघु, तीक्ष्ण तथा उष्ण है और श्वास, कास, कफ विकार एवं वात विकार को दूर करता है। यह अरुचि, गुल्म रोग, आमविकार, मन्दाग्नि तथा क्षय रोग का नाश करता है।

निघण्टु रत्नाकर के अनुसार– तालीस पत्र मधुर तथा तिक्त रस है और उष्ण एवं लघु है। यह तीक्ष्ण, स्वर के लिए हितकर, हृदय को बल देने वाला तथा जाठराग्नि को प्रदीप्त करने वाला है। यह श्वास, कफ विकार, वात विकार, क्षयरोग, गुल्म रोग, अरुचि, रक्तविकार, वमन, आम विकार तथा मन्दाग्नि का नाश करता है। यह मुख रोग तथा पित्त विकार का नाश करता है ऐसा कहा गया है।

वैद्यक शास्त्र में तालीस पत्र का प्रयोग–

अरोचक में तालीसपत्र का प्रयोग– तालीस पत्र के चूर्ण को कपूर तथा मिश्री के साथ वटक बनाकर सेवन करने से अत्यधिक रुचि को बढ़ाता है (वाग्भट, चि.अ.५)।

रक्तपित्त में तालीस पत्र का प्रयोग– तालीस पत्र के चूर्ण का अडूस का स्वरस मिलाकर शहद के साथ पान करे। यह कफ विकार, पित्त विकार, तमक श्वास, स्वाद भेद तथा रक्त पित्त को दूर करता है (चक्र. रक्तपित्त चि.)।

Actions and uses—Antispasmodic given in asthma, haemoptysis, epilepsy and other spasmodic affections. (R. N. Khory, Part II., p. 584).

तिन्तिडी

Tamarindus indica

तिन्तिडी, अम्लिका, चिञ्चा—*Tamarindus indica, Linn.* **वृक्षाम्लम्—***Garcinia purpurea, Roxb.*.

अन्वर्थसंज्ञा वृक्षाम्लस्य– "शाकाम्लम्", "चूडाम्लम्", "फलाम्लम्", "अम्लबीजम्"। अम्लिकायाः फलञ्चाम्लमत्यन्तं पित्तकृल्लघु। रक्तकृद्वातशमनं वस्तिशुद्धिकरं परम्॥ 'पक्वन्तु' मधुराम्लञ्च भेदि विष्टम्भि वातजित्। 'त्वग्भस्म' स्यात् कषायोष्णं कफघ्नन्त्वनिलापहम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ चिञ्चाऽत्यम्ला भवे'दामा' 'पक्वा' तु मधुराम्लिका। वातघ्नी पित्तदाहास्त्रकफदोषप्रकोपनी॥ अम्लिकायाः फलन्त्वाममत्यम्लं लघु पित्तकृत्। 'पक्वन्तु' मधुराम्लं स्याद् भेदि विष्टम्भवातजित्॥ 'पक्वचिञ्चाफलरसो' मधुराम्लो रुचिप्रदः। शोफपाककरो लेपाद् व्रणदोषविनाशनः॥ 'चिञ्चापत्रञ्च' शोफघ्नं रक्तदोषव्यथापहम्। तस्य शुष्क'त्वचाक्षारः' शूलमन्दाग्निनाशनः॥ राजनिघण्टुः॥ तिन्तिडीकं (वृक्षाम्लं) च वातघ्नं ग्राह्युष्णं रुचिकृल्लघु। धन्वन्तरिः॥ वृक्षाम्लमम्लं कटुकं कषायं सोष्णं कफार्शोघ्नमुदीरयन्ति। तृष्णासमीरोदरहृद्गदादिगुल्मातिसारव्रणदोषनाशि॥ राजनिघण्टुः॥ 'वृक्षाम्लमाम' मम्लोष्णं वातघ्नं कफपित्तलम्। 'पक्वन्तु' गुरु सङ्ग्राहि कटुकं तुवरं लघु॥ वृक्षाम्लमुष्ण-रोचनं दीपनं कफवातकृत्। तृष्णार्शोग्रहणीगुल्मशूलहृद्रोगजन्तुजित्॥ भावप्रकाशः॥ अम्लिकाम्ला गुरुर्वातहरी पित्तकफास्त्रकृत्। 'पक्वा' तु दीपनी रूक्षा सरोष्णा कफवातनुत्॥ भावप्रकाशः॥ 'वृक्षाम्लं' ग्राहि रूक्षोष्णं वातश्लेष्मणि शस्यते। 'अम्लिकायाः' फलं पक्वं तस्मादल्पान्तरं गुणैः॥ (सूः २७ अः)। चरकः॥ चिञ्चा'पुष्पन्तु' तुवरं स्वाद्वम्लञ्च रुचिप्रदम्। विशदं चाग्निजनकं लघुवातकफापहम्॥ प्रमेहघ्नं समुद्दिष्टं पर्णं शोथहरं मतम्। चिञ्चा तु 'नूतना' वातकफस्य कारिणी मता। सा 'वार्षिकी' वातपित्तनाशिनी परिकीर्त्तिता॥ निघण्टुरत्नाकरः।

वैद्यके व्यवहारः—शोथे तिन्तिडीपत्रम्–"संस्वेदनक्रिया कार्या सा कार्या च पुनः पुनः। अथवा तिन्तिडीच्छदैः"। (चि. २६ अ.)। हारीतः॥ अरोचके अम्लिका–"अम्लिकागुडतोयञ्च त्वगेलामरिचान्वितम्। अभक्तच्छन्दरोगेषु शस्तं कवलधारणम्॥" (अरोचक-चि.)। (२) मसूरिकायां चिञ्चाच्छदः– "निशाचिञ्चाच्छदे शीतवारिपीते तथैव तु। (मसूरिका-चि.)। (३) नवे प्रतिश्याये चिञ्चापत्रम्–"नवे प्रतिश्याये शस्तो यूषश्चिञ्चादलोद्भवः। ततः पक्वं कफं ज्ञात्वा हरेच्छीर्षविरेचनैः॥" (नासारोग-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) गुल्मे चिञ्चाक्षारः–"पलाशवज्रिशिखरीचिञ्चार्कतिलनालजाः। यवजः स्वर्जिका चेति क्षारा अष्टौ प्रकीर्त्तिताः॥ एते गुल्महराः क्षारा अजीर्णस्य च पाचकाः॥" (गुल्म-चि.)। (२) अस्थिभग्ने अम्लिका–"अम्लिकाफलकल्कैः सौवीरतैलमिश्रितैः स्वेदात्। भग्नाभिहतरुजाघ्नैः..."। (भग्न-चि.)। भावप्रकाशः॥ वातव्याधौ तिन्तिडीपत्रम्–"तिन्तिडीकदलैः सिद्धं तालमण्डिकया सह। पिष्ट्वा सुखोष्णमालेपं दद्याद्वातरुजापहम्॥" (वातव्याधि-चि.)। वङ्गसेनः।

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– वृक्षाम्लम्, तिन्तिडीकाम्, चुक्रम, अम्लवृक्षकम्। हि.– विषाम्बिल, कोक, महाद। बं.– अमलकुटा, चकार्त तुल। म.– आमसोल, कोकम, आमटै। गु.– कोकम। क.– तित्ती डिक। मा.– कोकन, डासर्या। अं.– Kokambutter tree (कोकम वटर ट्री)। ले.– Garcinia indica (गारसिनिया इन्डिका)।

तिन्तिडीक की अन्वर्थ संज्ञा- शाकाम्लम्, चूडाम्लम्, फलाम्लम्, अम्लबीजम्।

गुण-दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- अम्लिका का फल अम्ल रस वाला अत्यन्त पित्त कारक तथा लघु है। यह रक्त कारक, पित्त शामक तथा उत्तम वस्ति शोधक है। पका हुआ अम्लिका का फल मल भेदक, विष्टम्भि तथा वातकारक है। अम्लिका के छाल का भस्म कषाय रस वाला तथा उष्ण है और यह कफ विकार का नाश करता है तथा वात विकार को दूर करता है।

राज निघण्टु के अनुसार- आम चिञ्चा अम्ल रस वाली होती है और पक्व चिञ्चा मधुर तथा अम्ल होती है। यह वातनाशक है तथा पित्त विकार, दाह, रक्त विकार एवं कफ दोष को प्रकुपित करती है। अम्लिका का आम फल में अत्यधिक अम्ल होता है, लघु है तथा पित्त कारक है। पका हुआ अम्लिका फल मधुर तथा अम्ल रस वाला है, मल भेदन कर, विष्टम्भ कारक है तथा वात को जीत लेता है। पका हुआ चिञ्चा फल का रस मधुर तथा अम्ल रस वाला होता है और रुचिकारक है। यह शोथ तथा पाक कारक है, लेप करने से व्रण विकार का नाश करता है। चिञ्चा पत्र शोथ नाशक है, रक्त दोष तथा व्यथा को दूर करता है। चिञ्चा के सूखे त्वचा का क्षार शूल तथा मन्दाग्नि का नाश करता है।

धन्वन्तरि निघण्टु के अनुसार- तिन्तिडीक (वृक्षाम्ल) वातनाशक, ग्राही है, उष्ण है, रुचिकारक है तथा लघु है।

राजनिघण्टु के अनुसार- वृक्षाम्ल अम्ल रस वाला, कटु रस तथा कषाय रस वाला है। यह उष्ण है और कफ विकार तथा अर्श रोग का नाश करने वाला कहलाता है। यह प्यास, वात विकार, उदर विकार, हृदय रोग, गुल्म रोग, अतिसार रोग तथा व्रण दोष का नाश करता है।

भाव प्रकाश के अनुसार- आम वृक्षाम्ल अम्ल रस वाला, उष्ण, वात नाशक तथा कफ एवं पित्तवर्द्धक है। पका हुआ वृक्षाम्ल गुरु, ग्राही, कटु तथा कषाय रस एवं लघु है। यह अम्ल है, उष्ण है, रोचक, दीपक तथा कफ विकार एवं वात विकार कारक है। यह प्यास, अर्श रोग, ग्रहणी रोग, गुल्म रोग, शूल, हृदय रोग तथा क्रिमि विकार को दूर करता है। अम्लिका अम्ल रस वाली, गुरु, वातहर, पित्त-विकार, कफ विकार तथा रक्त विकार को करने वाला है। पका हुआ अम्लिका फल जाठराग्नि दीपक, रूक्ष, सारक, उष्ण तथा कफ एवं वात को दूर करता है।

चरक के अनुसार- वृक्षाम्ल ग्राही, रूक्ष तथा उष्ण है और यह वात-कफ रोग में प्रशस्त है। अम्लिका का पका फल कच्चे फल की अपेक्षा अल्पगुण वाला है।

निघण्टु रत्नाकर के अनुसार- चिञ्चाक पुष्प कषाय रस होता है, उष्ण है तथा रुचिप्रद है। यह विशद है, जाठराग्नि जनक है, लघु तथा वात-कफ को दूर करता है। यह प्रमेह नाशक कहा गया है। चिञ्चा का पत्ता शोथहर माना गया है। चिञ्चा का बीज वात तथा कफ कारक है। एक वर्ष की चिञ्चा वात पित्त नाशक कहलाती है।

वैद्यक शास्त्र में तिन्तिडी का प्रयोग-

शोथ में तिन्तिडी पत्र का प्रयोग- शोथ रोग में तिन्तिडी पत्र से बार-बार स्वेदन कर्म करे। (हा.चि.अ.२६)।

(१) अरोचक में अम्लिका का प्रयोग- अम्लिका (इमली) तथा गुड़ का जल, दाल चीनी, इलायची तथा काली मरिच का चूर्ण मिलाकर भोजन में अरुचि होने पर कवल धारण करना प्रशस्त है (चक्र.अरो.चि.)। (२)

मसूरिका में चिञ्चापत्र का प्रयोग- रात्रि में चिञ्चा के पत्रों से आच्छादन करना तथा शीतल जल पीना मसूरिका रोग में लाभप्रद है (चक्र-मसूरिका चि.)। (३) **नवीन प्रतिश्याय में चिञ्चा पत्र का प्रयोग**- चिञ्चा पत्र का यूष कफ पका हुआ जानकर नवीन प्रतिश्याय में शीरोविरेचन द्वारा निकाले (चक्र.नासारोग चि.)।

(१) गुल्म रोग में चिञ्चा क्षार का प्रयोग- पलास, वज्र, अपामार्ग, चिञ्चा, मदार, तिल तथा नाल यव तथा सज्जीखार ये आठ क्षाराष्टक हैं। ये सब गुल्मरोग को दूर करने वाले हैं तथा अजीर्ण को पचाने वाले हैं (भावप्रकाश, गुल्म चि.)। (२) **अस्थिभग्न में अम्लिका (इमली) का प्रयोग**- अम्लिका के फल के कल्क को सौवीर (काञ्जी) तथा तैल में मिलाकर स्वेदन करने से अस्थिभग्नजन्य पीड़ा का नाश होता है (भावप्र. भग्न चि.)।

वातव्याधि में तिन्तिडीक पत्र का प्रयोग- तिन्तिडी के पत्तों से सिद्ध तालमण्डिक के साथ पीस कर तथा थोड़ा गरम कर लेप करने से वातज पीड़ा दूर होती है।

Constituents—The pulp contains tartaric 5 p.c., citric 4 p.c., malic and acetic acids, bitartrate of potassium, sugar, gum and pectin, the seed's testa contains tannin, a fixed oil and insoluble matter.

Actions and uses—Pulp antiscorbutic refrigerant and laxative; used in fever to quench thirst, in sun-stroke and in bilious vomiting. As an aperient, it is given in habitual constipation. The pulp and the leaves made hot are applied locally to inflammatory swellings. A gargle of it is given in aphthous sores, and for the relief of sore-throat. The seeds are given in dysentery. The ash obtained from the suber is used as an alkaline medicine in acidity of urine and in gonorrhoea. (R. N. Khory, Part II., p. 231).

तिन्दुकम्

Diospyros embryopteris

तिन्दुकम्–*Diospyros embryopteris, Pers.*, **विषतिन्दुकम्, कारस्करः**–*Strychnos nux-vomica, Linn.*

अन्वर्थसंज्ञा–कारस्करस्य–"विषद्रुमः", "रम्यफलः", "कालकुटकः"। तिन्दुकस्य– "नीलसारः", "कालस्कन्धः"। 'आमं' कषायं साङ्ग्राहि तिन्दुकं वातकोपनम्। विपाके गुरुः 'सम्पक्वं' मधुरं कफपित्तजित्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ 'तिन्दुकस्तु' कषायः स्यात् सङ्ग्राही वातकृत् परः। 'पक्वन्तु' मधुरः स्निग्धो दुर्जरः श्लेष्मलो गुरुः॥ 'कारस्करः' कटूष्णश्च तिक्तः कुष्ठविनाशनः। वातामयास्रकण्डूतिकफामार्शोव्रणापहः॥ राजनिघण्टुः॥ 'स्यादामं' तिन्दुकं ग्राहि वातलं शीतलं लघु। 'पक्वं' पित्तप्रमेहास्रश्लेष्मघ्नं मधुरं गुरु॥ 'कुपीलु' (विषतिन्दुकम्) शीतलं तिक्तं वातलं मदकृल्लघु। परं व्यथाहरं ग्राहि कफपित्तास्रनाशनम्॥ भावप्रकाशः॥ 'विषतिन्दु'र्हिमस्तिक्तः कफवातविषापहः। कारस्कारो मदकरस्तुवरो ग्राहकः स्मृतः॥ कटुस्तिक्तो लघुश्चोष्णः कुष्ठरक्तविकारहा। कण्डूं कफं वातरोगं व्रणञ्चार्शोज्वरं जयेत्॥ निघण्टुरत्नाकरः।

वैद्यके व्यवहारः–गात्रसवर्णकरत्वे तिन्दुकम्–"लेपः सवर्णकृत् पिष्टं स्वरसेन च तिन्दुकम्"

(उ. ३२ अ.)। वाग्भटः॥ अतिसारे तिन्दुकम्–"तिन्दुकत्वचमाहृत्य काश्मरीपत्रवेष्टितम्। मृदा विलिप्य विधिवद्दहेन्मृद्वग्निना भिषक्॥ रसं गृहीत्वा सक्षौद्रं सर्वातिसारनाशनम्"। (चि. ३ अ.)। हारीतः॥ अग्निदग्धे तिन्दुकम्–"तिन्दुकस्य कषायैर्वा घृतमिश्रैः प्रलेपयेत्। सर्वेषामग्निदग्धानामेतद्रोपणमुत्तमम्॥" (आगन्तुव्रण-चि.)। भावप्रकाशः॥ शिशोर्हिक्कासु तिन्दुकपुष्पफले–"जम्बूकतिन्दुकानाञ्च पुष्पाणि च फलानि च। घृतेन मधुना लीढ्वा मुच्यते हिक्कया शिशुः॥" (बालरोग-चि.)। वङ्गसेनः।

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– तिन्दुकः, स्फूर्जकः, कालस्कन्धः, शितिसारकः। हि.– तेन्दू, गावः। बं.– गाव, तेंदू। म.– टेमुणी, आयना, देम्वरूपणी। गु.– टीम्वरवो, टीवरु, टेमरु। क.– तुम्बरु, तुम्बर। ते.– तामिक, तुमि। फा.– अवनु सुझाड़। अ.– अवुनूस। अं.– Abony (एवोनी)। ले.– Diospyros embryopteris (डायोस्पारास-एम्ब्रियोप्टेरिस)।

कारस्कर की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा– विषद्रुमः, रम्यफलः, कालकूटकः। **तिन्दुक की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा–** नीलसारः, कालस्कन्धः।

गुण-दोष–

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार– आम तिन्दुक कषाय रस वाला तथा ग्राही है और वात को प्रकुपित करता है, विपाक में गुरु है। पका हुआ तिन्दुक मधुर है तथा कफ तथा पित्त को दूर करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार– तिन्दुक कषाय रस वाला है, ग्राही है तथा उत्तम वात कारक है। पका हुआ तिन्दुक फल मधुर रस, स्निग्ध, दुष्पच, कफ कारक तथा गुरु है। कारस्कर कटु रस, उष्ण तथा कटु रस है और कुष्ठरोग का नाश करता है। यह वात रोग, रक्त-विकार, कण्डू, कफ विकार, अर्श विकार तथा व्रण रोग को दूर करता है।

भावप्रकाश के अनुसार– आम तिन्दुक ग्राही, वात कारक, शीतल तथा लघु है। पका तिन्दुक पित्त विकार, प्रमेह, रक्त विकार तथा कफ विकार को नष्ट करता है, मधुर है तथा लघु है। यह उत्तम व्यथानाशक है, ग्राही है, कफ विकार, पित्त विकार तथा रक्त विकार का नाश करता है।

निघण्टु रत्नाकर के अनुसार– विषतिन्दुक शीतल है, तिक्त रस है तथा कफ विकार, वात विकार एवं विष विकार का नाश करता है। कारस्कर मदकारक, कषाय रस तथा ग्राही है। यह कटु, तिक्त रस, लघु तथा उष्ण है और कुष्ठ एवं रक्त विकार को नष्ट करता है। यह कण्डू, कफ विकार, वात रोग, व्रण, अर्श रोग तथा ज्वर का नाश करता है।

वैद्यक शास्त्र में विषतिन्दुक का प्रयोग–

शरीर को सवर्ण बनाने में तिन्दुक का प्रयोग– तिन्दुक (विषतिन्दुक) को उसी के रस के साथ पीसकर उसका लेप करना वर्ण समान बनता है (वाग्भट, चि. अ. ३२)।

अतिसार में तिन्दुक का प्रयोग– विष तिन्दुक की त्वचा को लेकर गम्भारी के पत्तों से वेष्टित कर मिट्टी का लेप लगाकर मन्द आंच पर जलाये। इसके बाद उसको निचोड़कर रस निकाल ले और मधु मिलाकर चाटे। यह सभी प्रकार के अतिसार का नाश करता है (हा.चि.अ.३)।

अग्नि दग्ध में तिन्दुक का प्रयोग- तिन्दुक के कषाय में घृत मिलाकर अग्नि दग्ध व्रण पर लेप करे। यह सभी प्रकार के दग्ध व्रण को उत्तम रोपण करने वाला है (भाव. आगन्तुक व्रण चि.)।

बच्चे के हिक्का रोग में तिन्दुक के पुष्प तथा फल का प्रयोग- जामुन तथा तिन्दुक के पुष्प एवं फल को पीसकर घृत तथा मधु के साथ चटाये। इसके चाटने से बालक हिक्का रोग से छुटकारा पा जाता है (वंगसेन, बालरोग चि.)।

***Constituents** of Strychnos nuxvomica*—The seeds contain strychnine 1/2 p.c.; Brucine 1/4 to 1 p.c., Igasurine or impure frucine in combination with igasuric or strychnic acid. Loganin, a glucoside; proteids II p. c.; yellow colouring matter a concrete oil or fat, gum starch, sugar 6 p.c.; wax, earthy phosphates and ash 2 p.c. The wood bark and leaves contain brucine but no strychnine.

Actions and uses—The seeds are nervine, stomachinc, tonic and aphrodisiac. Externally the paste is antiseptic; the solution is highly irritant to the tissues. If injected subcutaneously it is poisonous. The action of nuxvomica is that of strychnine. In small doses it stimulates the stomach and intestines, increases the gastric, the pancreatic, the intestinal and the biliary secretions. Strychnine promotes digestion, sharpens appetite, increases peristalsis and acts as a purgative. It stimulates the uterus and the genito urinary organs, promotes menstruation and increases virile powers. It increases the flow of urine and is often found in the urine, saliva and sweats. It is a cumulative poison, it contracts the renal arteries and thus hinders its own excretion by the kidneys. In large doses it produces tetanic spasms with relaxation between the paroxysms. During the paroxysm is causes contraction of the arterioles and thereby raises the blood pressure. The pupils are dilated, there are jerking movements of the limbs, the respiration becomes spasmodic, the lower jaw becomes stiff and there is risus sardonicus or an unmeaning smile depicted on the face.

In poisonous doses there is an addition a sense of suffocation, great dyspnoea and rigidity of the limbs (which are stuck out) the hands are clenchid, the feet arched and the belly tense. There is oposthotenos, and the breathing becomes arrested. In the height of the paroxysm the face becomes cyanosed and the eye-balls protrude. The pulse is frequent, there is increased blood heat, but the intellect remains clear to the last. These is a feelig of a sense of approaching death. In the interval of the paroxysms there is great prostration with profuse sweating. And slight cause, as a breath of wind, some noise or even bright light, brings on the recurrence of the paroxysm. Death may be due to exhaustion or asphyxia due to prolonged rigidity of the respiratory muscles.

As a general stimulant it is given in acute or chronic fevers, anaemia, chlorosis, wasting and other exhausting diseases; also in hysteria, chorea, epilepsy, infra-orbital neuralgia or in neuralgia of the viscera &c. In local paralytic affections it should be given only after the acute stage has passed away. In prolapsus ani, in incontinence of urine, due to atony of the bladder and sometimes in impotence and spermatorrhoea it may be given wit' nefit. It is administered internally or injected subcutaneously in impending cardiac failu. rom any cause. With an imperceptible pulse, clammy breath and cold extremities, liquor strychninae has been given with advantage. It is a nice bitter tonic, in atonic dyspepsia. Given as an adjunct to purgatives

in constipation, in increases their peristaltic effects. In vomiting of pregnancy and of phthisis it is the best agent. In torpid liver with foul breath, coated and ferred tongue, pale coloured and offensive stools, if given with blue pill it is very useful. In sick headache or in headache occurring in women at the climateric period it is a very valuable agent. As a neurotic it influences the pneumogastric nerve and is useful in cough of phthisis, in bronchitis, pneumonia, emphysema; also in bronchial asthma, in cardiac or pulmonary dyspnoea, cardiac palpitation with irregular heart and in hypochondriasis; strychnine is of great service in acute and chronic alcoholism, under its use the morning vomiting, dyspepsia of drunkards and delirium tremens disappear. It removes the craving for stimulants. (R. N. Khory, Part II., pp. 407-8).

तिलः

Sesamum indicum

कृष्णतिलः—*Sesamum indicum, Linn., S. orientale, Roxb.*

अन्वर्थसंज्ञा—"होमधान्यम्", "वनोद्भवः"। तद्भेदाः—"कृष्णः", "सितः", "रक्तः", "वन्यः"। तिलो रसे कटुस्तिक्तो मधुरस्तुवरो गुरुः। विपाके कटुकः स्वादुः स्निग्धोष्णः कफपित्तनुत्॥ बल्यः केश्यो हिमस्पर्शस्त्वच्यः स्तन्यो व्रणे हितः। दन्त्योऽल्पमूत्रकृद्ग्राही वातघ्नोऽग्निमतिप्रदः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ 'स्निग्धो' वर्णबलाग्निवृद्धिजननः स्तन्यानिलघ्नो गुरुः। सोष्णः पित्तकरोऽल्पमूत्रकरणः केश्योऽतिपथ्यो व्रणे। सङ्ग्राही मधुरः कषायसहितस्तिक्तो विपाके कटुः। 'कृष्णः' पथ्यतमः 'सितो'ऽल्पगुणदः क्षीणास्तथान्ये तिलाः॥ राजनिघण्टुः॥ तिलः कृष्णः सितो रक्तः स वन्योऽल्पतिलः स्मृतः॥ तिलो रसे कटुस्तिक्तो मधुरस्तुवरो गुरुः। विपाके कटुकः स्वादुः स्निग्धोष्णः कफपित्तनुत्॥ बल्यः केश्यो हिमस्पर्शस्त्वच्यः स्तन्यो व्रणे हितः। दन्त्योऽल्पमूत्रकृद् ग्राही वातघ्नोऽग्निमतिप्रदः॥ 'कृष्णः' श्रेष्ठतमस्तेषु शुक्रलो मध्यमः 'सितः'। अन्ये हीनतराः प्रोक्तास्तज्ज्ञैः रक्तादयस्तिलाः॥ भावप्रकाशः॥ 'पिण्याकं' मधुरं रुच्यं तीक्ष्णं नेत्रविकारकृत्। मलापष्टम्भकं रुक्त-कफवातप्रमेहनुत्॥ पित्तास्रबलपुष्टिञ्च ददातीति भिषङ्मतम्। निघण्टुरत्नाकरः॥ तिलो विपाके मधुरो बलिष्ठः स्निग्धो व्रणालेपन एव पथ्यः। दन्त्योऽग्निमेधाजननोऽल्पमूत्र-स्त्वच्योऽथ केश्योऽनिलहा गुरुश्च॥ राजवल्लभः॥ तिलतैलगुणाः—तैलं स्नेहोत्तमं प्रोक्तं तिलजं तिलसम्भवम्। कषायं च रसे स्वादु सूक्ष्ममुष्णं व्यवायि च॥ पित्तलं बद्धविण्मूत्रं न च श्लेष्मविवर्द्धनम्। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ स्नानाभ्यङ्गावगाहेषु तिलतैलं विशिष्यते। तद्वद्वस्तिष्वपानेषु नस्यकर्णाक्षिपूरणे॥ अन्नपानविधौ वाऽपि प्रयोज्यं वातशान्तये। छिन्नभिन्नयुतापिष्टमथितक्षतपातिते॥ भग्ने स्फुटितविद्धाग्निदग्धविश्लिष्टदारिते। भयाभिहतनिर्भुग्ने मृगव्यालादिभिः क्षते॥ तैलयोगश्च संस्कारात् सर्वरोगापहो मतः। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ तिलतैलमलं करोति केश्यं मधुरं तिक्तकषायमुष्णतीक्ष्णम्। बलकृत् कफवातजन्तुखर्जुव्रणकण्डूतिहरं च कान्तिदायि॥ राजनिघण्टुः॥ तिलतैलं गुरुस्थैर्यबलवर्णकरं सरम्। वृष्यं विकाशि विशदं मधुरं रसपाकयोः॥ सूक्ष्मं कषायानुरसं तिक्तं वातकफापहम्। वीर्येनोष्णं हिमं स्पर्शे वृंहणं रक्तपित्तकृत्॥ लेखनं बद्धविण्मूत्रं गर्भाशयविशोधनम्। दीपनं बुद्धिदं मेध्यं व्यवायि व्रणमेहनुत्॥ श्रोत्रयोनिशिरःशूलनाशनं लघुताकरम्। त्वच्यं केश्यञ्च चक्षुष्यमभ्यङ्गे भोजनेऽन्यथा॥ छिन्नभिन्नच्युतोत्पिष्टमथिते क्षतपिच्छिते।

भग्नस्फुटितविद्धाग्निदग्धविश्लिष्टदारिते॥ तथाभिहतनिर्भुग्नमृगव्याघ्रादिविक्षते। बस्तौ पानेऽन्नसंस्कारे नस्ये कर्णाक्षिपूरणे। सेकाभ्यङ्गावगाहेषु तिलतैलं प्रशस्यते॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) अर्शसुः तिलः–"...तिलकल्कैः... सुखोष्णैः स्नेहसंयुतैः... स्वेदयेत् पोट्टलीकृतैः" (चि. ९ अ.)। "नवनीततिलाभ्यासात्... अर्शांस्यपयान्ति रक्तानि" (चि. ९ अ.)। (२) प्रवाहिकायां तिलः–"कल्कः स्याद्बालबिल्वानां तिलकल्कश्च तत्समः। दध्नः सरोऽम्लस्नेहाढ्यः खडो हन्यात् प्रवाहिकाम्॥" (चि. १० अ.)। (३) व्रणोपनाहने तिलः–"सतिलाः... दध्यम्ला... सक्तुपिण्डिका। ...शस्ता स्यादुपनाहने॥" (चि. १३ अ.)। (४) मारुतोत्तरे व्रणे तिलः–"सदाहा वेदनावन्तो ये व्रणा मारुतोत्तराः। तेषां तिलान्युमाञ्चैव भृष्टान् पयसि निर्वृतान्॥" (चि. १३ अ.)। चरकः॥ (१) वातरक्ते तिलः–"लेपः पिष्टाः तिलास्तद्वत् भृष्टाः पयसि निर्वृताः" (चि. २२ अ.)। (२) पोषणार्थं दन्तदृढीकरणार्थञ्च तिलः–"दिने दिने कृष्णतिलप्रकुञ्चं समश्नतां शीतजलानुपानम्। पोषः शरीरस्य भवत्यनल्पो दृढीभवन्त्यामरणाच्च दन्ताः॥ (उ. ३९ अ.)। तृष्णायां तिलपिण्याकम्– "सर्वाण्यङ्गानि लिम्पेच्च तिलपिण्याककाञ्जिकैः"। (चि. ३ अ.)। वाग्भटः॥ मूत्ररोधे तिलकाण्डक्षारः– "यस्तिलकाण्डक्षारं दधिमधुसम्मिश्रितं पिबेत्। स नरश्च मूत्ररोधं हत्वा सद्यः सुखमाप्नोति॥" (चि. ३० अ.)। हारीतः॥ (१) वातशूले तिलः–"तिलैश्च गुडिकां कृत्वा भ्रामयेज्जठरोपरि। गुडिका शमयत्येषा शूलञ्चैवातिदुःसहम्॥" (शूल-चि.)। (२) अश्मर्यां तिलनालक्षारः–"तद्वन्मधुदुग्धयुक्ता त्रिरात्रं तिलनालभूतिश्च" (अश्मरी-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) आमवाते तिलः–"कल्कमद्याद्वा तिलविश्वयोः" (आमवात-चि.)। (२) व्रणशोधनरोपणे तिलः–"वर्त्तिस्तिलानां कल्को वा शोधयेद्रोपयेद्व्रणम्"। (व्रणशोथ-चि.)। (३) सूर्यावर्त्ते तिलः–"क्षीरपिष्टैस्तिलैः स्वेदः" (शिरोरोग-चि.)। (४) मांसभक्षणजाजीर्णे तिलनालक्षारः–"मांसानि सर्वाण्यपि यान्ति पाकं क्षारेण सद्यस्तिलनालजेन" (विशिष्टद्रव्याजीर्ण-चि.) (५) इन्द्रलुप्ते तिलपुष्पम्–"गोक्षुरस्तिलपुष्पाणि तुल्ये च मधुसर्पिषी। शिरःप्रलेपितं तेन केशैः समुपचीयते।" (क्षुद्ररोग-चि.)। भावप्रकाशः॥ (१) रक्तातिसारे तिलः– "वदरीमूलकल्कन्तु तिलकल्कं तथैव च। संगृह्य सरसं तेषामजाक्षीरेण योजयेत्॥" (अतिसार-चि.)। (२) नेत्ररोगे तिलः–"स्थानं कृष्णतिलैश्चापि चक्षुष्यं तिमिरापहम्" (नेत्ररोग-चि.)। वङ्गसेनः॥

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– तिलः, होमधान्यम्, पितृतर्पणः। हि.– तिल, तिल्ली, तील, मीठा तिल। बं.– तिलगाछ। म.– तिल, तील। गु.– तैल। द्रा.क.– एलु, एल्लु। ते.– तोवुलु, मचिनूने, जुव्वुलु। ता.– वल्लेनेव, वल्लेन्नेव। द्रा.– वाटिक तिल। फा.– कुन्दजखस खास। स्याह, कोकिनार। अ.– सिमोसिम, वजरुखस। अं.– Sesamum nige seeds (सिसेमम निगर सीड्स)। ले.– Sesamum indicum (सिसेमम इण्डिकम)।

तिल की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा– होमधान्यम्। वनोद्भवः।

तिल के भेद– कृष्णः, सितः, रक्तः, वन्यः।

गुण-दोष–

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार– तिल रस में कटु, तिक्त, मधुर तथा कषाय है और गुरु है। विपाक में

कटु है, स्वादिष्ट है, स्निग्ध तथा उष्ण है और कफ विकार एवं पित्त विकार को दूर करता है। तिल बल कारक है, केश वर्द्धक है, स्पर्श में शीतल है, त्वचा के लिए हितकर है, दूध वर्द्धक है तथा व्रण के लिए हितकर है। यह दांत के लिए हितकर, थोड़ा मूत्र कारक, ग्राही, वातनाशक तथा अत्यधिक जाठराग्नि को बढ़ाने वाला है।

राजनिघण्टु के अनुसार– तिल स्निग्ध, वर्ण, बल तथा जाठराग्नि वर्द्धक है, दूध विकार तथा वात विकार का नाश करता है। यह उष्ण है, पित्त कारक है, थोड़ा मूत्रकारक है, केश के लिए हितकर है तथा व्रण के लिए अधिक पथ्यकर है। यह ग्राही है, मधुर तथा कषाय एवं तिक्त रस है तथा विपाक में कटु है। काला तिल पथ्यकारक है, सफेद तिल थोड़ा गुणकारक है, अन्य सभी प्रकार के तिल क्षीण गुण वाले हैं।

भावप्रकाश के अनुसार– काला तिल, सफेद तिल, रक्त तिल, वन्द तिल या अल्प तिल इस प्रकार तिल चार प्रकार का होता है। तिल–रस में कटु, तिक्त, मधुर तथा कषाय रस है और गुरु है। विपाक में कटु रस, स्वादिष्ट, स्निग्ध तथा उष्ण है और कफ एवं पित्त कारक है। यह बल कारक, केशवर्द्धक, शीतस्पर्श त्वचा के लिए हितकर, दूध बढ़ाने वाला तथा व्रण के लिए हितकर है। यह दांत के लिए हितकर, थोड़ा मूत्रकारक, ग्राही तथा वात नाशक है और अधिक जाठराग्नि वर्द्धक है। काला तिल सभी तिलों में श्रेष्ठ है तथा शुक्रवर्द्धक है। सफेद तिल मध्यम गुण वाला है। अन्य रक्त आदि तिल हीन गुणवाले हैं ऐसा तिल के गुण को जानने वाले कहते हैं।

निघण्टु रत्नाकर के अनुसार– पिण्याक तिल की खली मधुर है, रुचिकारक है, तीक्ष्ण है तथा नेत्र विकार को उत्पन्न करता है। यह मल को रोकने वाला है, रक्त विकार, कफ विकार, वात विकार तथा प्रमेह को नष्ट करता है। यह रक्त पित्त को बढ़ाता है, बल कारक तथा पुष्टि कारक है ऐसा चिकित्सकों का मत है।

राजवल्लभ के अनुसार– तिल विपाक में मधुर, बलकारक है, स्निग्ध है तथा इसे व्रण के ऊपर लेप करना ही पथ्य है। यह दांत के लिए हितकर है, जाठराग्नि तथा मेधावर्द्धक है, थोड़ा मूत्रल है, रुचिकारक है, केश के लिए हितकर है, वातनाशक है तथा गुरु है।

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार– तिल के तैल को उत्तम स्नेह कहा गया है। यह कषाय रस वाला, रस में स्वादिष्ट, सूक्ष्म तथा उष्ण है और व्यवायि है। इनके अतिरिक्त पित्त कारक है, मलमूत्र को रोकने वाला है किन्तु कफ को नहीं बढ़ाता है। तिल का तैल स्नान, अभ्यङ्ग तथा अवगाहन के लिए विशेष लाभदायक है। इसी प्रकार यह अपानबस्ति में तथा नस्य कर्म, कर्ण पूरण तथा नेत्र पूरण तथा अन्न पान विधि में वात शान्ति के लिए प्रयोग करने योग्य है। छिन्न, भिन्न, पिष्ट, भक्षित, क्षत, पातित, भग्न, फुटित, विद्ध, अग्नि दग्ध, विश्लिष्ट, दारित, भय आदि से अभिहत, भुग्न, मृत तथा व्याघ्र आदि के द्वारा क्षत होने पर इस तैल के योग से तथा तैल के संस्कार से सभी रोगों को दूर करने वाला है।

राजनिघण्टु के अनुसार– तिल का तैल केश को अलंकृत बनाता है, मधुर है, तिक्त है, कषाय है, उष्ण है, तीक्ष्ण है, बल कारक है, कफ विकार, वात विकार, क्रिमि विकार, खुजली तथा कण्डू को दूर करता है तथा कान्ति दायक है।

भावप्रकाश के अनुसार– तिल का तैल गुरु, बल तथा वर्ण को स्थिर करने वाला एवं दस्तावर है, वीर्यवर्द्धक है, विकाशि है, विशद है और रस तथा विपाक में मधुर है; सूक्ष्म है, कषाय रस वाला है तथा तिक्त रस वाला है और वात कफ नाशक है। यह उष्ण वीर्य है, स्पर्श में शीतल है, बलवर्द्धक है तथा रक्त–पित्त कारक है, लेखन है, मल–मूत्र को रोकने वाला है तथा गर्भाशय को शुद्ध करने वाला है; जाठराग्नि दीपक है, बुद्धिवर्धक,

मेधावर्द्धक है, व्रण तथा प्रमेह रोग को दूर करता है, योनि विकार तथा शिर:शूल का नाश करता है तथा हल्का करता है; त्वचा के लिए हितकर, केश के लिए हितकर है, नेत्र के लिए हितकर अभ्यङ्ग करने से होता है; भोजन करने पर अन्य गुण होते हैं। यह छिन्न, भिन्न, च्युत, उत्पिष्ट, मथित, क्षत, पिच्छित, भग्न, स्फुटित, विद्ध, अग्नि दग्ध, विश्लिष्ट, दारित, अभिहत, निर्भुग्न तथा मृग-व्याघ्र आदि से क्षत होने पर, वस्ति कर्म में, पान करने तथा अन्न का संस्कार करने, नस्य में, कर्ण तथा नेत्र पूरण में, सेक, अभ्यङ्ग तथा अवगाहन में तिल का तैल प्रशस्त है।

वैद्यक शास्त्र में तिल का प्रयोग-

(१) अर्श रोग में तिल का प्रयोग- तिल के कल्क को थोड़ा गरम कर तथा तेल मिलाकर पोटली में रखकर स्वेदन करे (च.चि.अ.९)। मक्खन तथा तिल का कल्क प्रतिदिन सेवन करने से रक्तार्श शान्त होते हैं (च.चि.अ.९)। (२) **प्रवाहिका में तिल का प्रयोग-** कच्चा बेल तथा तिल का कल्क समान भाग लेकर दही का अम्ल पानी तथा स्नेह को मिलाकर खंड बनावे और सेवन करे। यह प्रवाहिका का नाश करता है (च. चि.अ.१०)। (३) **व्रण के उपनाह के लिए तिल का प्रयोग-** तिल का कल्क अम्ल दही तथा सत्तू की पीड़ी एक साथ मिलाकर व्रण का उपनाहन (बाँधना) हितकर है (च.चि.अ.१३)। (४) **वातज व्रण में तिल का प्रयोग-** जो व्रण वातजन्य दाह तथा वेदना वाले हैं उनको तिल तथा तीसी के कल्क को दूध में पकाकर (पुल्टिस) बाँधे। यह व्रण को शान्त करता है (च.चि.अ.१३)।

(१) वातरक्त में तिल का प्रयोग- तिल को पीस कर तथा दूध में पकाकर वात रक्त में लेप करे (वाग्भट, चि.अ.२२)। **(२) पोषण के लिए तथा दांतो को मजबूत बनाने के लिए तिल का प्रयोग-** काले तिल को कूटकर शीतल जल के साथ जो खाते हैं उनके शरीर का अच्छी तरह पोषण होता है तथा दांत जीवन पर्यन्त मजबूत रहते हैं (वाग्भट, उ.अ.३९)।

तृष्णा में तिल पिण्याक का प्रयोग- तृष्णा रोग में तिल की खली तथा काञ्जी मिलाकर पूरे शरीर में लेप करे (वाग्भट.चि.अ.३)।

मूत्र रोग में तिलकाण्ड क्षार का प्रयोग- जो व्यक्ति तिल के काण्ड (शाखा) के क्षार को दही तथा मधु मिलाकर पान करता है उसका मूत्रावरोध शान्त हो जाता है और वह शीघ्र ही सुख का अनुभव करता है (हा.चि.अ.३०)।

(१) वातशूल में तिल का प्रयोग- तिल के कल्क की गुटिका बनाकर उदर के ऊपर घुमाये। यह गुटिका पेट के ऊपर घुमाने से अतिदु:सह उदर की पीड़ा को शान्त करती है (चक्र.शूल चि.)। (२) **अश्मरी में तिल नाल क्षार का प्रयोग-** तिल के नाल का क्षार मधु तथा दूध मिलाकर सेवन करने से तीन दिन में अश्मरी रोग नष्ट होता है (चक्र.अश्मरी चि.)।

(१) **आमवात में तिल का प्रयोग-** तिल तथा सोंठ के कल्क को आमवात रोग में भक्षण करे (भाव. आमवा.चि.)। (२) **व्रण शोधन तथा रोपण में तिल का प्रयोग-** तिल की वर्ति या कल्क व्रण का शोधन तथा रोपण करते हैं (भाव.व्रण शोथ.चि.)। (३) **सूर्यावर्त में तिल का प्रयोग-** सूर्यावर्त रोग में तिल को दूध के साथ पीस कर स्वेदन करे (भाव.शिरोरोग चि.)। (४) **मांस भक्षण जन्य अजीर्ण में तिल नाल क्षार का प्रयोग-** तिल के नाल का क्षार सेवन करने से सभी प्रकार के मांस भक्षण जन्य अजीर्ण का पाचन होता है (भाव.विशिष्ट द्रव्याजीर्ण चि.)। (५) **इन्द्रलुप्त रोग में तिल पुष्प का प्रयोग-** गोखरु तथा तिल का पुष्प समभाग

लेकर मधु तथा घृत मिलाकर सिर के ऊपर लेप करने से इन्द्रलुप्त रोग में सिर के ऊपर बाल उग आते हैं (भाव.क्षुद्ररोगचि.)।

(१) रक्तातिसार में तिल का प्रयोग- बरे के मूल का कल्क तथा तिल का कल्क लेकर बकरी के दूध के साथ सरस बनाकर रक्तातिसार में सेवन करे (वंगसेन, अतिसार चि.)। **(२) नेत्ररोग में तिल का प्रयोग**- आंख के ऊपर कृष्ण तिल के कल्क का लेप करना नेत्र के लिए हितकर है तथा तिमिर रोग (मोतिया बिन्द) को शान्त करता है (बंगसेन, नेत्र रोग चि.)।

Constituents—Fixed oil 50 to 60 p.c.; proteid 22 p.c., mucilage 4 p.c., and ash 48 p.c.

Actions and uses—The seeds are used as food. As laxative they are used in removing constipation and in piles. As demulcent they are given in dysentery, and as diuretic in urinary diseases. The oil is used as a hair oil in place of olive oil for which it is a very good substitute. It is useful in preparing plasters, and other medicated fragrant or scented oils. (R. N. Khory, Part II., p. 462).

तुलसी

Ocymum sanctum

तद्भेदाः–सुरसा(सः), कुठरेका(अर्जकाः)स्त्रयः; मरुवकः, सुमुखा, वर्वरः। सुरसा, तुलसी–*Ocymum sanctum,* **कुठेरकाः (अर्जकाः)**–*O. villosum,* **मरुवकः फणिज्जकः**–*O. gratissimum Willd.* **सुमुखः, वनवर्वरिका**–*O. caryophyllatum Roxb.* **वर्वरः**–*O. pilosum Roxb.*

अन्वर्थसंज्ञा–सुरसायाः–"ग्राम्या", "सुलभा", "बहुमञ्जरी", "बहुपत्री", "पावनी", "विष्णुवल्लभा", "शूलघ्नी"। फणिज्जकस्य–"खरपत्रः", "गन्धपत्रः", "बहुवीर्यः", "प्रस्थकुसुमः", "आजन्मसुरभिपत्रः"। त्रयाणां कुठेरकानां–"क्षुद्रपर्णः", "कठपत्रः", "बिल्वगन्धः", "कृष्णमल्लिका"। सुमुखस्य (वनवर्वरकस्य)–"कठपत्रः", "सुगन्धि"। वर्वरस्य–"ज्वरघ्नः", "सूक्ष्मपत्रकः", "निद्रालुः" "शोफहारी"। 'तुलसी' लघुरुष्णा च रूक्षा कफविनाशनी। क्रिमिदोषं निहन्त्येषा रुचिकृद्वह्निदीपनी॥ 'फणिज्जको' हिमस्तिक्तो रूक्षः कफविनाशनः। रक्तहारी तथा हन्ति सुघोरं कृत्रिमं विषम्। 'मरुवकः' कफहरी रुच्यो मुखसुगन्धकृत्। 'अर्ज्जकः' शीतलस्तिक्तः श्लेष्मामयविनाशनः॥ द्विविधञ्च विषं हन्याद्दुष्टरक्त-विनाशनः॥ 'कुठेरकाः' सुगन्धाः स्युः कटुपाकरसाः स्मृताः। पित्तघ्ना लघुरूक्षाश्च तीक्ष्णोष्णाः पित्तवर्द्धनाः॥ पित्तकृत् पार्श्वशूलघ्नः 'सुमुखः' समुदाहृतः। कफानिलविषश्वासकासदौर्गन्ध्यनाशनः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ 'तुलसी' कटुतिक्तोष्णा तुलसी श्लेष्मवातजित्। जन्तुभूतकृमिहरा रुचिकृद्वात-शान्तिकृत्॥ 'मरुवः' कटुतिक्तोष्णः क्रिमिकुष्ठविनाशनः। विड्बन्धाऽऽनाहशूलघ्नो मान्द्यत्वग्दोषनाशनः॥ त्रयोऽर्ज्जकाः कटूष्णाः स्युः कफवातामयापहाः। नेत्रामयहरा रुच्याः सुखप्रसवकारकाः॥ कृत्रिमञ्च विषं हन्यू रक्तदोषविनाशनाः॥ 'वनवर्वरिका' चोष्णा सुगन्धी कटुका च सा। पिशाचवान्तिभूतघ्नी घ्राणसन्तर्पणी परा॥ राजनिघण्टुः॥ 'तुलसी' कटुका तिक्ता हृद्योष्णा दाहपित्तकृत्। दीपनी कुष्ठकृच्छ्रास्रपार्श्वरुक्कफवातजित्॥ 'शुक्ला' 'कृष्णा' च तुलसी गुणैस्तुल्या प्रकीर्त्तिता। वर्वरत्रितयं रूक्षं शीतं कटु विदाहि च। तीक्ष्णं रुचिकरं हृद्यं दीपनं लघुपाकि च॥ पित्तलं

कफवातास्त्रकण्डूक्रिमिविषापहम्। भावप्रकाशः॥ तुलसी पित्तकृद्वातक्रिमिदौर्गन्ध्यनाशनी। पार्श्वशूलाऽरतिश्वासकासहिक्काविकारजित्॥ राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः– कफजकासे असितसुरसः– "दक्षीद्राः कफकासघ्नाः सुरसस्यासितस्य च"। (चि. २२ अ.)। चरकः॥ नासारोगे सुरसा– "श्लैष्मिके सुरसावासारसेन विहितञ्च तत्" (चि. ४२ अ.)। हारीतः॥ (१) पोथक्यां फणिज्जकदलम्– "फणिज्जकरसोनस्य रसैः पोथकिनाशनः" (नेत्ररोग-चि.)। (२) वृश्चिकदंशे कुठेरमूलम्– "दंशे भ्रामणविधिना वृश्चिकविषहृत् कुठेरपादगुडिकाः" (विष-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) वातव्याधौ– "वृहत्फणिज्जकोत्थेन रसेन परिलेपयेत्। प्रदेशं वायुना ग्रस्तं नरः सम्यक् प्रशान्तये॥" (वातव्याधि-चि.)। (२) शुक्रनामाक्षिरोगे फणिज्जकदलस्वरसः– "फणिज्जकरसे बीजं पलाशस्य विभावितम्। शोषयित्वा सुपिष्टं तत् चाञ्जनाच्छुक्रहृत् परम्॥" (नेत्ररोग-चि.)। (३) वरटीविषे फणिज्जकरसः– "फणिज्जकरसं हन्याल्लेपनाद्वरटीविषम्"। (विषाधिका.)। वङ्गसेनः॥

विविध भाषाओं में नाम–

सं.- तुलसी, सुरसा, ग्राम्या, सुलभा, बहुमञ्जरी। हि.- तुलसी, वरण्डा। बं.गु.- तुलसी, पेझा, तुलस। क.- एरहे तुलसी। द्रा.- तुल्सी। ते.- गगभरे चेट्टु। ता.- तुलशी। फा.- शाह सिपरम्। अ.- तुलसी वदरुत, शाह सफरस। अं.- Holy bisil (होली विसील)। ले.- Ocymum sanctum (ओसिमम सेंक्टम)।

तुलसी की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा- सुरसा- ग्राम्या, सुलभा, बहुमञ्जरी, बहुपत्री, पावनी, विष्णुवल्लभा। शूलघ्नी। **फणिपत्रक-** खरपत्रः, गन्धपत्रः, बहुवीर्यः, प्रस्थकुसुमः, आजन्मसुरभिपत्रः। **तीनों प्रकार के कुठेरक की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा-** क्षुद्रपर्णः, कठपत्रः, बिल्वगन्धः कृष्णमल्लिका। **सुमुख (वर्वरक) की अन्वर्थ संज्ञा-** कठपत्रः, सुगन्धि। **वर्वरक की अन्वर्थ संज्ञा-** ज्वरघ्नः, सूक्ष्मपत्रकः, निद्रालुः, शोफहारी।

गुण-दुष–

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- तुलसी, लघु, उष्ण तथा रूक्ष है और कफ नाशक है, यह क्रिमि विकार को नष्ट करती है, रुचिकारक है तथा जाठराग्नि दीपक है। **फणिज्जक** शीतल, तिक्तरस तथा रूक्ष है और कफ का नाश करता है। यह रक्त विकार को दूर करता है। भयंकर क्रित्रिम विष को नष्ट करता है। **मरुवक** कफ विकार को दूर करने वाली, रुचिकारक तथा मुख को सुगंधित करने वाला है। **अर्जक** शीतल तथा तिक्तरस वाला है और कफ विकार का नाश करता है। यह दोनों प्रकार के विष को नष्ट करता है तथा सर्पदंश विष का नाश करता है। **कुठेरक** सुगन्धित होता है, पाक में कटु रस कहा गया है, पित्त नाशक है, लघु है, रूक्ष है, तीक्ष्ण तथा उष्ण है और पित्त वर्द्धक है। यह पित्त कारक, पार्श्व शूल नाशक तथा मुख को सुगन्धित करने वाला है। यह कफ विकार, वात विकार, विष विकार, श्वास रोग, कास रोग तथा दुर्गन्ध का नाश करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- तुलसी कटु तथा तिक्त रस तथा उष्ण है तथा कफ विकार एवं वात विकार का नाश करती है। यह जन्तु रोग, भूत बाधा तथा क्रिमि रोग को दूर करती है, रुचिकारक है तथा वात विकार शांति कारक है। **मरुव** कटु तथा तिक्त रस तथा उष्ण है और क्रिमि रोग एवं कुष्ठ रोग का नाश करता है। यह बड़े बिवन्ध (मलावरोध) आनाह तथा शूल का नाश करता है और मन्दाग्नि एवं त्वचा विकार को दूर करता है। **तीनों प्रकार के अर्जक** कटु रस तथा उष्ण हैं और कफ विकार एवं वात विकार का नाश करते

हैं। ये नेत्र रोग को दूर करते हैं, रुचिकारक हैं तथा सुख पूर्वक प्रसव कराने वाले हैं। ये क्रित्रिम विष का नाश करते हैं तथा रक्त दोष को दूर करते हैं। **वनवर्वरिका**- उष्ण तथा सुगन्धित है और यह कटु रस है। यह पिशाच बाधा, वमन तथा भूत बाधा का नाश करती है और अच्छी तरह घ्राण को तृप्त करने वाली है।

भावप्रकाश के अनुसार- शुक्ल तुलसी कटु रस, तिक्त रस, हृदय को बल देने वाली तथा उष्ण है और यह दाह एवं पित्त विकार का नाश करती है। यह जाठाराग्नि दीपक है, कुष्ठरोग, मूत्रकृच्छ्र, रक्त विकार, पार्श्व शूल, कफ विकार एवं वात विकार को दूर करती है। **कृष्णा तुलसी** सफेद तुलसी के गुण के समान गुण वाली है। **तीनों प्रकार की वर्वरिका** रूक्ष, शीतल, कटु रस तथा विदाह कारक है। यह तीक्ष्ण है, रुचि कारक है, हृदय को बल देने वाली है, जाठराग्नि दीपक तथा लघुपाकी है। यह पित्तवर्द्धक है, कफ विकार, वात विकार, रक्त विकार, कण्डू , क्रिमि रोग तथा विष विकार को दूर करती है।

राजवल्लभ के अनुसार- तुलसी पित्त कारक है, वात विकार, क्रिमि रोग तथा दुर्गन्ध का नाश करने वाली है। यह पार्श्व शूल, अरति, श्वास रोग, कास रोग तथा हिक्का के विकार का नाश करती है।

वैद्यक शास्त्र में तुलसी का प्रयोग-

कफज कास में काली तुलसी के रस का प्रयोग- काली तुलसी का रस शहद के साथ सेवन करने से कफज कास का नाश होता है (च.चि.अ.२२)।

(१) नासारोग में सुरसा (तुलसी) का प्रयोग- कफज नासा रोग में तुलसी तथा अडूसा के रस का नस्य दे (चक्र.नेत्र.चि.)। (२) **वृश्चिक दंश में कुठरेक मूल का प्रयोग-** कुठरेक मूल की गुटिका वृश्चिक दंश के ऊपर घुमाने से वृश्चिक विष को दूर करता है (चक्रदत्त, विषरोग चि.)।

(१) वातव्याधि में वृहद फणिज्जक के रस का प्रयोग- मनुष्य वायु से ग्रसित स्थान के ऊपर, वृहद् फणिज्जक के रस का लेप करे (वंग. वातव्याधि चि.)। (२) **शुक्रनामक नेत्र रोग में फणिज्जक दल के स्वरस का प्रयोग-** पलाश के बीज को फणिज्जक के रस में भावित कर तथा सुखाकर पीस लें। इसके बाद नेत्रगत शुक्ररोग में अंजन करे। यह नेत्रगत शुक्ररोग को शान्त करता है (वंगसेन, नेत्र चि.)। (३) **वरदी के विष में फफिज्जक के रस का प्रयोग-** फणिज्जक का रस लेप करने से वरटी का विष नष्ट होता है (वंगसेन, विषाधिकार)।

Actions and uses of *O. album*—Stimulant, diaphoretic and carminative; given to children in cold and catarrh.

Constituents of *O. basilicum*—The leaves contain a yellowish green oil, which if kept for a time crystallizes, and is then known as Basil Camphor.

Actions and uses—Diaphoretic, mucilaginous, carminative and stimulant; given in intestinal fluxes, gonorrhoea, catarrh and to relieve after-pains in parturition; also given during the cold stage of intermittent fever and to alloy vomiting. It is dropped into the ear in ear-ache.

Actions and uses of *O. gratimum*—Demulcent and carminative; generally combined with other expectorants, in cough mixtures; also used in urinary disorders such as gonorrhoea, scanty and scalding urine, &c. Locally, the juice mixed with Gul-i-armani is used as an application to swollen hands or feet. Baths and fumigation of tulsi are used in Rheumatism.

Actions and uses of *O. sanctum*—Demulcent, expectorant and antiperiodic; with Kalamiri

it is given in catarrhal affections of the lungs and cough. The powder of dry leaves is used by the natives ns snuff in ozaena and for destroying maggots. The paste of the leaves with Suntha and Saphedamiri is given in intermittent and remittent fevers. The medicated oil is used as drops into the ears in ear-ache and in purulent discharges and into the nose in ozaena. With lime juice the leaves are rubbed over ring-worm. The seed are mucilaginous and used as a diuretic in scanty urine and in cough.

Actions and uses of *O. pilosum*—Demulcent, expectorant and gonorrhoea, strangury and kidney diseases; also in dysentery and cough. The jelly is given in speamatorrhoea. (R. N. Khory—Part II., p.p. 490—3).

तुवरकः

Cynocardia Odorata

तुवरकः–*Cynocardia odorata. R. Br.*

गुणप्रकाशिका संज्ञा–"कुष्ठला"। तुवरस्तुवरश्चोष्णो रसे पाके च तिक्तकः। कफव्रणकृमिमेह-कुष्ठज्वरविनाशनः॥ आनाहमर्शःशोफञ्च नाशयेदिति ते जगुः॥ निघण्टुरत्नाकरः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) कुष्ठे मधुमेहे च तुवरकतैलम्–"पञ्चकर्मगुणातीतं श्रद्धावन्तं जिजीविषुम्। योगेनानेन मतिमान् साधयेत् कुष्ठिनं नरम्॥ वृक्षास्तुवरका ये स्युः पश्चिमार्णवभूमिषु। वीचीतरङ्गविक्षेपमारुतोद्धूतपल्लवाः॥ तेषां फलानि गृह्णीयात् सुपक्वान्यम्बुदागमे। मज्जस्तेभ्योऽपि संहृत्य शोषयित्वा विचूर्ण्य च॥ तिलवत् पीडयेद्द्रोण्यां स्त्रावयेद्वा कुसुम्भवत्। तत्तैलं संहृत्य भूयः पचेदातोयसङ्क्षयात्॥ अवतार्य करीषे च पक्षमात्रं निधापयेत्। स्निग्धः स्विन्नो हृतमलः पक्षादूद्र्ध्वं प्रयत्नवान्॥ चतुर्थभक्तान्तरितः शुक्लादौ दिवसे शुभे। मन्त्रपूतस्य तैलस्य पिबेन्मात्रां यथाबलम्॥ तेनास्योद्र्ध्वमधश्चापि दोषा यान्त्यसकृत्ततः। अस्नेहलवणां सायं यवागूं शीतलां पिबेत्॥ पञ्चाहं प्राशयेत्तैलमनेना विधिना नरः। पक्षं परिहरेच्चापि मुद्गयूषौदनाशनः॥ पञ्चभिर्दिवसैरेवं सर्वकुष्ठैर्विमुच्यते। तदेव खदिरक्वाथे त्रिगुणे साधु साधितम्॥ निहन्ति पूर्ववत् पक्वं पिबेन्मासमतन्द्रितः। तेनाभ्यक्तशरीरश्च कुर्वीताहारमीरितम्॥ भिन्नस्वरं रक्तनेत्रं विशीर्णं कृमिभक्षितम्। अनेनाशु प्रयोगेण साधयेत् कुष्ठिनं नरम्॥ सर्पिर्मधुयुतं पीतं तदेव खदिराम्बुना। पक्षिमांसरसाहारं करोति द्विशतायुषम्॥ तदेव नस्ये पञ्चाशद्दिवसानुपयोजितम्। वपुष्मन्तं श्रुतिधरं करोति त्रिशतायुषम्॥ शोधयन्ति नरं पीता मज्जानस्तस्य मात्रया। महावीर्यस्तुवरकः कुष्ठमेहापहः परः॥ (चि. १३ अ.)। (२) कुष्ठे तुवरास्थीनि–"रसायनप्रयोगेन तुवरास्थीनि शीलयेत्" (चि. १९ अ.)। वाग्भटः।

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– अरुष्करः, भल्लातकः, अरुष्कः, अग्निकः, अग्निमुखी, वीरवृक्षः, भल्ली। हि.– भिलामा, भिलाया, भेला, भिलौरा। बं.– भेला, भेलेर गाछ, भेलतुभी। गु.– भिलामा, भियालु। क.– गोडम्बी, करेबीजा, गरेवीजा, गिरु। ते.– चिडिचेट्टू। नालाजीड़ी। द्रा.– सोन कीट्टे। फा.– भिलादर, भिलाडर। अ.– हव्वुल कल्वा। ले.– Cynocardia Odorata.

तुवरक की गुण प्रकाशिका संज्ञा- कुष्ठला।

गुण-दोष–

निघण्टु रत्नाकर के अनुसार- तुवरक रस में उष्ण है तथा पाक में तिक्त रस है। यह कफ विकार, व्रण, क्रिमि रोग, प्रमेह, कुष्ठ रोग तथा ज्वर का नाश करता है। यह आनाह, अर्श तथा शोथ का नाश करता है।

वैद्यक शास्त्र में तुवरक का प्रयोग–

(१) कुष्ठरोग तथा प्रमेह में तुवरक तैल का प्रयोग- पञ्चकर्म कराने के बाद श्रद्धालु तथा जीवन चाहने वाले बुद्धिमान मनुष्य आगे कहे जाने वाले योग से कुष्ठ के रोगी का उपचार करे। जो तुवरक के वृक्ष, पश्चिम समुद्र की भूमि पर है, समुद्र के लहरों के विक्षेप से तथा वायु के झोकों से जिनके पल्लव उड रहे हैं उनके परिपक्व फलों का वर्षा काल के उदय होने पर ग्रहण करे और उन फलों से मज्जा को लेकर तथा सुखाकर चूर्ण बना ले। इसको द्रोणी में रखकर तिल की तरह पीड़ित कर (पेरकर) या कुसुम्भ (वर) की तरह भूधर यन्त्र द्वारा तेल निकाल ले। इसके बाद उस तैल को एकत्र कर पुनः जलीयांश जल जाने तक पका ले। इसके बाद उतार कर गोहरी के मध्य में एक पक्ष तक रक्खे। जब तैल मलरहित स्निग्ध तथा स्विन्न तैल रह जाय तब एक पक्ष के बाद छान कर रख ले। इसके बाद चार दिन उपवास करने के बाद शुक्ल पक्ष की शुभ तिथि तथा दिन में मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित तैल को बल के अनुसार उचित मात्रा में पान करे। इसके पान करने से ऊर्ध्व दोष तथा अधो दोष एक ही बार में शान्त हो जाते हैं। इसके बाद सायंकाल स्नेह तथा लवण से रहित शीतल यवागू पान करे। इस विधि से पांच दिन तक तैल का पान करे और एक पक्ष तक पथ्य पूर्वक रहे और मूंग का यूष तथा भात खाये। इस प्रकार पथ्य पूर्वक तैल सेवन करने से कुष्ठ का रोगी सभी प्रकार के कुष्ठ रोगों से मुक्त हो जाता है। उसी तैल को खैर के तीन गुने क्वाथ में विधि पूर्वक सिद्ध करे और परिपक्व इस तैल को आलस्य रहित होकर पूर्ववत् विधि से पान करे। यह कुष्ठ रोग को नष्ट करता है। इसी तैल का शरीर पर अभ्यंग कर पूर्वोक्त आहार-विहार का सेवन करे। इसके सेवन से क्षीण स्वर, रक्त नेत्र, जीर्ण शीर्ण शरीर तथा क्रिमियों द्वारा भक्षित शरीर वाला कुष्ठ के रोगी को इस प्रयोग से सिद्ध करे। इस प्रकार घृत तथा मधु मिलाकर खदिर के क्वाथ के साथ पान करने से तथा आहार में पक्षियों के मांस रस सेवन करने से कुष्ठ का रोगी दो सौ वर्ष तक जीवित रहता है। इसी तैल को पचास दिन तक नस्य में प्रयोग करने पर स्वच्छ शरीर को प्राप्त कर तथा श्रुतिधर होकर तीन सौ वर्ष जीवित रहता है। तुवरक (भल्लातक) की मज्जा का मात्रा पूर्वक पान करने से मनुष्य को शुद्ध कर देती है। यह महान पराक्रम वाला तुवरक कुष्ठ रोग तथा प्रमेह रोग को नष्ट करता है (वाग्भट, चि.अ.१३)। **(२) कुष्ठ रोग में तुवरास्थि का प्रयोग**- रसायन योग के साथ तुवरक की अस्थि (गुठली) का प्रयोग करे (वाग्भट, चि.अ.१९)।

Constituents—Oleum Gynocardiae, ohaulmogra oil—It is a fixed oil, very bulky, of a sherry wine or brownish colour. The odour is nauseous and peculiar. Dose 2 to 15 ms. The oil deposits on keeping crystalline fat and contains palmitic acid 60 p.c. and therefore solid in cold climates. It contains Gynocardic acid II p.c., the active ingredient; cocinic acid 2.5 p.c. and hypogoeic acid 4 p.c. Both of the latter acids are found either combined with glycerides as fats or in a free state. Gynocardic acid is a fatty acid crystallizes in yellowish flakes, and has an acrid burning taste Dose 1/2 to 2 grs. (R. N. Khory—Part II., p. 56).

Actions and uses—The seeds and oil are alterative and tonic, used to improve the state of

the blood as in leprosy, phthisis, skin diseases, &c. By some the oil is regarded as a specific in leprosy, and, no doubt, in some cases it has very beneficial effects. It is also used in scrofula, secondery syphilis, phthisis and Rheumatism with stiff joints both externally as an inunction or ointment, and internally with mucilage or as capsules or pearls. Gynocardic acid ointment, 15 to 25 grains to an ounce of vaseline is used in herps, tinea, leprosy and other skin affections. It should be given after meals in milk or with Cod-liver oil. (R. N. Khory—art II., p. 57).

त्रायमाणा
Delphinium Zalil

त्रायमाणा–*Delphinium Zalil.*

अन्वर्थसंज्ञा–"गिरिसानुजा"। उत्पत्तिस्थानम्–"हिमवति प्रसिद्धा"। त्रायन्ती कफपित्ता-स्रगुल्मज्वरहरा मता। उष्णा कटुकषाया च सूतिकाशूलनाशिनी॥ रक्तपित्तमच्छर्दिविषघ्नी तिक्तवल्कला। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ भ्रमतृष्णाक्षयग्लानिविषच्छर्दिविनाशिनी। अन्यच्च–त्रायन्ती शीतमधुरा गुल्मज्वरकफास्त्रनुत्। भ्रमतृष्णाक्षयग्लानिविषच्छर्दिविनाशिनी॥ हिमवति प्रसिद्धा। राजनिघण्टुः॥ त्रायन्ती तुवरा तिक्ता सरा पित्तकफापहा। ज्वरहृद्रोगगुल्मास्त्रभ्रमशूलविषप्रणुत्॥ भावप्रकाशः॥ हृद्रोगं रक्तपित्तञ्च दुर्नामानि विनाशयेत्। निघण्टुरत्नाकरः॥ ...त्रायन्ती कफवातनुत्। राजवल्लभः।

वैद्यके व्यवहारः– (१) ज्वरे त्रायमाणा–"...त्रायमाणां वा पयसा ज्वरितः पिबेत्" (चि. ३ अ.)। (२) रक्तपित्ते त्रायमाणा–"त्रायमाणागवाक्ष्योर्वा मूलं...। विरेचनं प्रयुञ्जीत प्रभूतमधुशर्करम्॥" (चि. ४ अ.)। (३) गुल्मे त्रायमाणा–"द्विपलं त्रायमाणाया जलद्विप्रस्थसाधितम्। अष्टभागस्थितं पूतं कोष्णं क्षीरसमं पिबेत्॥ पिबेदुपरि तस्योष्णं क्षीरमेव यथाबलम्। तेन निर्हृते दोषेऽस्य गुल्मः शाम्यति पैत्तिकः॥" (चि. ५ अ.)। (४) पैत्तिकातिसारे त्रायमाणा–"पलाशवत् प्रयोज्या वा त्रायमाणा विशोधिनी" (चि. १० अ.)। (५) विसर्पे त्रायमाणा–"त्रायमाणाशृतं वापि पयो दद्याद्विरेचनम्"। (चि. ११ अ.)। चरकः।

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– त्रायमाणा, बलभद्रा। हि.– त्रायमाण, त्रायमान, पखुर। बं.– बलाडुमुर, बालाडुमर। म.– त्रायमाण। गु.– त्राहिमान। क.– चायमाणा, हिमबती, निरामे वल्लि। फा.– अस्प्रका, असफाक। मा.– दत्री। ते.– कलिगा नमु। ले.– Ficus heterophylla (फाइकस हेटरोफीला)।

त्रायमाणा की अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा– गिरिसानुजा। **उत्पत्ति स्थान**– हिमालय में प्रसिद्ध है।

गुण-दोष–

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार– त्रायन्ती (त्रायमाणा) कफ विकार, पित्त विकार, रक्त विकार, गुल्म रोग तथा ज्वर रोग को दूर करने वाली है। यह उष्ण है, कटु तथा कषाय रस है और सूतिका के शूल का नाश करने वाली है। यह रक्त पित्त तथा वमन एवं विष दोष का नाश करती है और तिक्त वल्कल (छाल) वाली है।

राजनिघण्टु के अनुसार- त्रायमाणा भ्रम, प्यास, क्षय रोग, ग्लानि, विष विकार तथा वमन का नाश करती है। और भी- त्रायमाणा शीतल तथा मधुर है और यह गुल्म रोग, ज्वर, कफ तथा रक्त विकार को दूर करती है। यह भ्रम, प्यास, क्षय रोग, ग्लानि, विष विकार तथा वमन का नाश करती है। यह त्रायमाणा हिमालय में प्रसिद्ध है।

भावप्रकाश के अनुसार- त्रायन्ती कषाय तथा तिक्त रस तथा सारक है और पित्त कफ नाशक है। यह ज्वर, हृदय रोग, गुल्म रोग, रक्त विकार, भ्रम, शूल तथा विष दोष का नाश करती है।

निघण्टु रत्नाकर के अनुसार- त्रायमाण हृदय रोग, रक्त पित्त तथा अर्श रोग को शान्त करती है।

राजवल्लभ के अनुसार- त्रायन्ती, कफ वात को दूर करती है।

वैद्यक शास्त्र में त्रायन्ती का प्रयोग-

(१) ज्वर में त्रायमाणा का प्रयोग- ज्वर से पीड़ित व्यक्ति त्रायमाणा का दूध के साथ पान करे (च.चि.अ.३)। **(२) रक्त पित्त में त्रायमाणा का प्रयोग**- त्रायमाणा या गवाक्षी के मूल का प्रचुर मात्रा में मधु तथा शक्कर मिलाकर विरेचन का प्रयोग करे (च.चि.अ.४)। **(३) गुल्म रोग में त्रायमाणा का प्रयोग**- त्रायमाणा दो पल (१०० ग्रा.), जल दो प्रस्थ (२ किलो) में पाक करे। अष्टमांश शेष रहने पर छान कर थोड़ा गरम-गरम समभाग दूध मिलाकर गुल्म रोग में पान करे। इसके सेवन के बाद अपने बल के अनुसार गरम दूध ही पान करे। इसके प्रयोग से दोषों के शान्त हो जाने पर पैत्तिक गुल्म शान्त होता है (च.चि.अ.५)। **(४) पैत्तिक अतिसार में त्रायमाणा का प्रयोग**- अतिसार रोग में शोधन करने वाली त्रायमाणा को पलाश की तरह प्रयोग करें (च.चि.अ.१०)। **(५) विसर्प में त्रायमाणा का प्रयोग**- विसर्प रोग में त्रायमाणा के साथ पकाया हुआ दूध विरेचनार्थ दें (च.चि.अ.११)।

Actions and uses—A bitter tonic, alterative, anodyne, diuretic and parasiticide. As a tonic it is used in fevers and dyspepsia; as an alterative and diuretic in enlargement of the abdominal viscera as liver and spleen, in jaundice and dropsy. Locally mixed with lime juice the ash is used in parasitic affections of the skin, as scabies, itch, etc. With barley meal a poultice of it is used in inflammatory swellings. (R. N. Khory—Part II., p. 12)

त्रिवृत्

Ipomoea Turpethum, R. Br. Convolvulus Turpethum, Linn.

त्रिवृत्—*Ipomoea turpethum, R. Br., Convolvulus turpethum, Linn.*

पर्यायाः—रक्तायाः—"कालिन्दी", "त्रिपुटा"। श्वेतायाः—"त्रिभण्डी", "त्रिपुटा", "सरला", "सर्वानुभूतिः"। कृष्णायाः—"कालमेषी", "सुषेणी"। अन्वर्थसंज्ञा—रक्तायाः—"ताम्रपुष्पिका", "कुलवर्णा", "मसूरी", "कासनाशिका"। श्वेतायाः—"कुमुदगन्धिनी"। कृष्णायाः—"मालविका", "मसूरविदला"। त्रिवृता (श्यामा) कटुरुष्णा तु कृमिश्लेष्मोदरज्वरान्। शोफपाण्ड्वामयप्लीहान् हन्ति श्रेष्ठा विरचने॥ कषाया मधुरा चोष्णा विपाके कटुका त्रिवृत् (श्वेता)। कफपित्तप्रशमनी रूक्षा चानिलकोपिनी॥ कफपित्तहरा रूक्षा मधुरा बहुरेचनी। वातकृत् कटुका पाके कषाया त्रिवृताऽरुणा॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ त्रिवृत् (श्यामा) तिक्ता कटूष्णा च क्रिमिश्लेष्मोदरार्त्तिजित्। कुष्ठकण्डूव्रणान् हन्ति प्रशस्ता च

विरेचने॥ 'रक्ता' त्रिवृद्रसे तिक्ता कटूष्णा रेचनी च सा। ग्रहणीमलविष्टम्भहारिणी हितकारिणी॥ राजनिघण्टुः॥ 'श्वेता त्रिवृद्रे'चनी स्यात् स्वादुरुष्णा समीरहृत्। रूक्षा पित्तज्वरश्लेष्मपित्तशोथोदरापहा॥ 'श्यामा' त्रिवृत्ततो हीनगुणा तीव्रविरेचनी। मूर्च्छादाहमदभ्रान्तिकण्ठोत्कर्षणकारिणी॥ भावप्रकाशः॥ 'अरुणा त्रिवृता' स्वादुः कषाया मृदुरेचनी। रूक्षा च कटुका चैव पाके तिक्ता कफापहा॥ तस्याश्चाल्पान्तरगुणा विज्ञेया 'त्रिवृता सिता'। ज्वरहृद्रोगवातासृगुदावर्त्तादिरोगनुत्॥ राजवल्लभः॥ विरेचने त्रिवृन्मूलं श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः। कषाया मधुरा रूक्षा विपाके कटुका च सा॥ कफपित्तप्रशमनी रौक्षाच्चानिलकोपनी। मेदानामौषधैर्युक्ता वातपित्तकफापहैः॥ फलवैशिष्यमासाद्य सर्वरोगहरा भवेत्। मूलन्तु द्विविधं तस्याः श्यामञ्चारुणमेव च॥ तयोर्मुख्यतरं विद्धि मूलं यदरुणप्रभम्। सुकुमारे शिशौ वृद्धे मृदुकोष्ठे च तच्छुभम्॥ मोहयेदाशुकारित्वा'च्छ्यामा' कण्ठं क्षिणोत्यपि। तैक्ष्ण्यात् कर्षति हृत्कण्ठमाशु दोषं हरत्यपि॥ शस्यते बहुदोषाणां क्रूरकोष्ठाश्च ये नराः। गुणवत्यां तयोर्भूमौ जातं मूलं समुद्धरेत्॥ गम्भीरानुगतं श्लक्ष्णं न तिर्यग्विसृतञ्च यत्। गृहीत्वा विसृजेत् काष्ठं त्वचं शुष्कां निधापयेत्॥ स्निग्धस्विन्नो विरेच्यस्तु पेयामात्राशितः सुखम्। अक्षमात्रं तयोः पिण्डं विनीयाम्लेन ना पिबेत्॥" दृढबलः (च. क. ७ अ.)।

वैद्यके व्यवहारः– (१) ज्वरे त्रिवृन्मूलम्–"...मृद्वीकानां रसेन वा। त्रिवृतां ज्वरितः पिबेत्॥" (चि. ३ अ.)। (२) रक्तपित्ते त्रिवृन्मूलम्–"त्रिवृतां... विरेचनं प्रयुञ्जीत प्रभूतमधुशर्करम्" (चि. ४ अ.)। (३) अर्शःसु त्रिवृन्मूलम्–"पाययेत त्रिवृच्चूर्णं त्रिफलाया रसेन वा। हृते गुदाश्रये दोषे गच्छन्त्यर्शांसि सङ्क्षयम्" (चि. ९ अ.)। (४) अर्शःसु त्रिवृच्छाकम्–"त्रिवृद्दन्तीपलाशानां...। सुभृष्टं यमके दद्याच्छाकं दधिसरायुतम्॥" (चि. ९ अ.)। (५) विसर्पे त्रिवृन्मूलम्–"त्रिवृच्चूर्णं समालोडच सर्पिषा पयसाऽपि वा। धर्माम्बुना वा संयोज्य मृद्वीकानां रसेन वा॥ विरेकार्थं प्रयोक्तव्यं सिद्धं विसर्पनाशनम्।" (चि. ११ अ.)। (६) पित्तोदरे त्रिवृन्मूलम्–"पयसा सत्रिवृत्कल्केन" (चि. १८ अ.)। (७) गाढपुरीषाय उदररोगिणे त्रिवृच्छाकम्–"शङ्खिनीस्नुक् त्रिवृद्दन्ती...। शाकं गाढपुरीषाय प्राग्भक्तं दापयेद् भिषक्॥" (चि. १८ अ.)। (८) पित्तपाण्डुरुजि त्रिवृन्मूलम्–"द्विशर्करं त्रिवृच्चूर्णं पलार्द्धं पैत्तिकः पिबेत्।' (चि. २० अ.)। चरकः॥ (१) वातशोफे त्रिवृत्तैलम्–"तत्र वातश्वयथौ त्रैवृतमैरण्डतैलं वा मासमर्द्धमासं वा पाययेत्॥" (चि. २३ अ.)। (२) प्रबलज्वरे त्रिवृन्मूलम्–"शान्तिं नयेत् त्रिवृच्चापि सक्षौद्रा प्रबलं ज्वरम्" (उ. ३९ अ.)। (३) गुल्मे त्रिवृन्मूलम्– "पिबेत् त्रिवृन्नागरं वा" (उ. ४२ अ.)। (४) गुल्मे त्रिवृच्छाकम्–"त्रिवृच्छाकेन वा स्निग्धमुष्णं भुञ्जीत भोजनम्" (उ. ४२ अ.)। (५) कामलायां त्रिवृन्मूलम्–"सशर्करा कामलिनां त्रिभण्डी" (उ. ४४ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) राजयक्ष्मनि त्रिवृन्मूलम्–"...विरेचनं दद्यात् त्रिवृच्छ्यामानृपद्रुमान्। सर्करामधुसर्पिर्भिः पयसा तर्पणेन वा॥ द्राक्षाविदारीकाश्मर्यमांसानां वा रसैर्युतम्॥" (चि. ५ अ.)। (२) नेत्ररोगे त्रिवृन्मूलम्–"त्रिस्त्रिवृद्वारिणा पक्वं क्षतशुक्रे घृतं पिबेत्" (ब. ११ अ.)। (३) कीटविषे त्रिवृन्मूलम्–"तण्डुलीयकतुल्यांशां त्रिवृतां सर्पिषा पिबेत्" (उ. ३७ अ.)। वाग्भटः॥ (१) सुकुमाराणां रेचनार्थं त्रिवृन्मूलम्–"शर्कराक्षौद्रसंयुक्तं त्रिवृच्चूर्णावचूर्णितम्। रेचनं सुकुमाराणां त्वक्पत्रमरिचांशिकम्॥" (विरेचनाधिकारे)। (२) पित्तविकृतौ त्रिवृन्मूलम्–"छित्वा द्विधेक्षुं परिलिप्य

कल्कैः त्रिभण्डीजातैः परिवेष्टय रज्ज्वा। पक्वन्तु सम्यक् पुटपाकयुक्त्या खादेत्तु तं पित्तगदी सुशीतम्॥" (विरेचनाधिकारे)। चक्रदत्तः॥ विषमज्वरे त्रिवृन्मूलम्–"शान्तिं नयेत्रिवृच्चापि सक्षौद्रा विषमज्वरम्" (ज्वर-चि.) वङ्गसेनः।

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– श्वेता– त्रिवृत्, त्रिभण्डी, त्रिवृता, त्रिपुटा, निशोथः। हि.– निशोत, निशोथ, पनिलर। बं.– तेड्डी, तिड्डी, नकषत्तर, पिवोरी। म.– निशोतर तेंड। क.– तिगड़े, तियड़। ते.– आलतेगड़। ता.– शिवदड्। गु.– निशोतर। फा.– निशोत। अ.– तुर्वुद। सं.– श्याम त्रिवृत्– अर्धचन्द्रा, पालिन्दी, सुषणिका। हि.- निशोथ, श्याम पनिलर। बं.– कालतोड़ली। क.– केश्यतेय निगडे। ले.– Ipomoea Turpethum.

त्रिवृत् के पर्याय– रक्तत्रिवृत्– कालिन्दी, त्रिपुटा। **श्वेता त्रिवृत्–** त्रिभण्डी, त्रिपुटा, सरला, सर्वानुभूति। **कृष्णा त्रिवृत्–** कालमेषी, सुषेणी। **त्रिवृत् की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा–** रक्ता– ताम्रपुष्पिका, कुलवर्णा, मसूरी, कासनासिका। श्वेता– कुमुदगन्धी, कृष्णा–मालविका, मसूरविदला।

गुण-दोष–

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार– श्याम त्रिवृत् कटु रस तथा उष्ण है और यह क्रिमि रोग, कफ विकार, उदर रोग, ज्वर रोग, शोथ, पाण्डु रोग तथा प्लीहा रोग का नाश करता है। यह विरेचन कराने में श्रेष्ठ है। यह कषाय रस, मधुर रस तथा उष्ण है और विपाक में कटु रस है। श्वेता त्रिवृत् कफ तथा पित्त को शान्त करने वाली है, रूक्ष है तथा वात को प्रकुपित करने वाली है। यह कफ तथा पित को दूर करती है, रूक्ष है, मधुर है तथा अधिक रेचन कराने वाली है। यह वात कारक है, पाक में कटु रस है, रक्त त्रिवृत् कषाय रस है।

राजनिघण्टु के अनुसार– त्रिवृत् (निशोथ) तिक्त रस, कटु रस तथा उष्ण है और यह क्रिमि रोग, कफ विकार तथा उदर की पीड़ा को शान्त करती है। यह कुष्ठ रोग, कण्डू तथा व्रण का नाश करती है और विरेचन में प्रशस्त है। रक्त निशोथ रस तिक्त कटु है तथा उष्ण है एवं विरेचक है। यह ग्रहणी रोग तथा मल विबन्ध को दूर करती है तथा हितकर है।

भावप्रकाश के अनुसार– सफेद निशोथ विरेचक, स्वादिष्ट, उष्ण तथा वात नाशक है। यह रूक्ष है तथा पित्त ज्वर, कफ विकार, पित्त विकार तथा शोथ रोग एवं उदर रोग को दूर करती है। श्याम निशोथ सफेद निशोथ की अपेक्षा न्यून गुण वाली है और यह तीव्र विरेचक है। इनके अतिरिक्त यह मूर्च्छा, दाह, मद, भ्रान्ति तथा कण्ठ को उत्कर्षित करने वाली है।

राजवल्लभ के अनुसार– रक्त निशोथ स्वादिष्ट तथा कषाय रस है और यह मृदु विरेचक है, रूक्ष है, कटु रस है तथा पाक में तिक्त रस है और कफ नाशक है। सफेद निशोथ का गुण रक्त निशोथ की अपेक्षा न्यून गुण वाली है। यह ज्वर रोग, हृदय रोग, वात रोग, रक्त विकार तथा उदावर्त आदि रोगों को नष्ट करती है।

दृढ़बल चरक के अनुसार– विद्वान् चिकित्सकों ने निशोथ को उत्तम विरेचक माना है। यह कषाय रस तथा मधुर रस है, रूक्ष है तथा पाक में कटु है। यह कफ विकार तथा पित्त विकार को शान्त करती है तथा रूक्ष होने से वात रोग को प्रकुपित करती है। यह इस समय वात-पित्त तथा कफ नाशक गुण से युक्त है। यह विशेष फल को प्राप्त कर सभी रोगों को दूर करती है। निशोथ मूल दो प्रकार का है– श्याम निशोथ तथा रक्त निशोथ। उन दोनों में रक्त निशोथ मूल अधिक गुणकारक है। इसका प्रयोग सुकुमार व्यक्ति, बालक, वृद्ध

तथा मृदु कोष्ठ वालों के लिए शुभकारक है। श्यामा आशुकारी होने से मोह को उत्पन्न करती है तथा कण्ठ (स्वर) को क्षीण करती है, तीक्ष्ण होने से हृदय तथा कण्ठ का कर्षण करती है तथा शीघ्र ही दोषों को दूर करती है। यह क्रूर कोष्ठ (कठोर कोष्ठ) वालों के लिए तथा अधिक दोष वालों के लिए हितकर है। गुणयुक्त भूमि में उत्पन्न दोनों निशोथ मूल का ग्रहण करे। गहराई में उत्पन्न, श्लक्ष्ण हो तथा तिरछा फला हुआ न हो ऐसे निशोथ को लेकर काष्ठ को छोड़ दे तथा सूखी त्वचा को रख ले। मनुष्य को स्नेहन तथा स्वेदन कराने के बाद मात्रा पूर्वक खाने वाला पेया का पान कर सुख पूर्वक विरेचन करे। निशोथ का कल्क एक अक्ष (१० ग्राम) की मात्रा में लेकर अम्ल रस के साथ पान करे।

वैद्यक शास्त्र में निशोथ का प्रयोग-

(१) ज्वर में त्रिवृत् (निशोथ) मूल का प्रयोग- निशोथ के चूर्ण को मुनक्का के रस के साथ ज्वर का रोगी पान करे (च.चि.अ.३)। (२) **रक्त पित्त में त्रिवृत् मूल का प्रयोग-** निशोथ के चूर्ण का पर्याप्त मधु तथा शक्कर मिलाकर विरेचन के लिए प्रयोग करे (च.चि.अ.४)। (३) **अर्श रोग में निशोथ मूल का प्रयोग-** निशोथ मूल के चूर्ण को त्रिफला के रस के साथ पान कराये। इससे गुदा में आश्रित दोष के दूर हो जाने पर निःसन्देह अर्श रोग नष्ट हो जाते हैं (च.चि.अ.९)। (४) **अर्श रोग में निशोथ के शाक का प्रयोग-** अर्श रोग में निशोथ, दन्ती तथा पलाश के शाक को घृत तथा तेल में भूनकर दही का पानी मिलाकर प्रयोग करे (च.चि.अ.९)। (५) **विसर्प में निशोथ मूल का प्रयोग-** निशोथ चूर्ण को घी में या दूध में मिलाकर या धर्माम्बु (आकाशीय जल) के साथ अथवा मुनक्का के रस के साथ विरेचन के लिए प्रयोग करे। यह विसर्प नाशक सिद्ध योग है (च. चि.अ.११)। (६) **पित्तोदर में निशोथ मूल का प्रयोग-** पित्तोदर में निशोथ मूल के कल्क का दूध के साथ पान कराये (च.चि.अ.१८)। (७) **उदर रोगी के मल को गाढ़ा करने के लिए निशोथ के शाक का प्रयोग-** शङ्खिनी, सेहुड़, निशोथ तथा दन्ती इन सब के शाक को मल को गाढ़ा करने के लिए भोजन के पहले खिलाये (च.चि.अ.१८)। (८) **पित्तज पाण्डुरोग में निशोथ मूल का प्रयोग-** निशोथ चूर्ण को दुगुना शक्कर मिलाकर आधा पल (२५ ग्राम) की मात्रा में पैतिक पाण्डु रोग में पान कराये (च.चि.अ.२०)।

(१) वातज शोथ में निशोथ तैल का प्रयोग- वात्तज शोथ रोग में निशोथ का तैल या एरण्ड का तैल एक मास तक या आधा मास तक पान कराये (सु.चि.अ.२३)। (२) **प्रवल ज्वर में निशोथ मूल का प्रयोग-** त्रिवृत् (निशोथ) का चूर्ण शहद मिलाकर खाने से प्रवल ज्वर को शान्त करता है (सु.उ.अ.३९)। (३) **गुल्म में त्रिवृत् (निशोथ) मूलका प्रयोग-** गुल्म रोग में निशोथ का चूर्ण या सोंठ का चूर्ण पान करे (सु.उ.अ.४२)। (४) **गुल्म रोग में निशोथ के शाक का प्रयोग-** गुल्म रोग में निशोथ के शाक के साथ स्निग्ध तथा उष्ण भोजन करे (सु.उ.अ.४२)। (५) **कामला रोग में त्रिवृत् मूल का प्रयोग-** त्रिभण्डी (निशोथ) का शर्करा मिलाकर सेवन करना कामला रोगी के लिए हितकर है (सु.उ.अ.४४)।

(१) राजयक्ष्मा में निशोथ मूल का प्रयोग- श्यामा निशोथ तथा अमलतास का शर्करा, मधु तथा घी के साथ या तर्पण दूध के साथ अथवा मुनक्का, विदारीकन्द तथा गम्भारी के साथ या मांस रस के साथ राजयक्ष्मा में प्रयोग करे (वाग्भट, चि. अ.५)। (२) **नेत्र रोग में त्रिवृत् मूल का प्रयोग-** निशोथ के क्वाथ के साथ तीन बार पकाया हुआ घृत क्षत शुक्र नेत्र रोग में प्रयोग करे (वाग्भट, अ. ११)। (३) **कीट विष में त्रिवृत् मूल का प्रयोग-** तण्डूलीयक का चूर्ण सम भाग निशोथ का चूर्ण मिलाकर कीट जन्य विष विकार में घृत के साथ पान करे (वाग्भट, अ. ३७)।

(१) सुकुमारों के रेचन के लिए त्रिवृत् मूल का प्रयोग- निशोथ चूर्ण से अवचूर्णित कर दाल चीनी, तेज पत्र तथा मरिच का एक भाग मिलाकर शक्कर तथा मधु के साथ सुकुमारों के रेचन के लिए पान कराये (चक्र.विरेचनाधिकार)। (२) **पित्त विकृति में त्रिवृत् मूल का प्रयोग**- गन्ना को दो भाग कर निशोथ के कल्क से लिप्तकर तथा उसको रज्जु से बाँध कर पुट पाक विधि से पकावे और उस गन्ना को शीतल कर पित्त विकार का रोगी खाय (चक्र.विरेचनाधिकार)।

विषम ज्वर में निशोथ मूल का प्रयोग- निशोथ का चूर्ण मधु मिलाकर सेवन करने से विषम ज्वर को शान्त करता है (वंगसेन, ज्वर चि.)।

Constituents—Turpeth resin consists of a soft resin soluble in ether, and of a substance insoluble in ether, benzine, sulphide of carbon, and essential oils. This substance is called Turpeth or Turpethine; a volatile oil and yellow colouring matter. Turpethin, a resin, a grey substance; analogous to jalapine and convolvuline. It is named as having some resemblance in colour to turpeth mineral. Alkaline bases convert it into turpeth acid and mineral acid into glucose and turpetholic acid. The root contains it to the extent of 4 p.c.

Actions and uses—Turpeth is cathartic, given either alone, or in combination with other purgatives. With Harade, it is particularly beneficial in rheumatic and paralytic affections, melancholia, gout, dropsy and leprosy, it is more powerful and drastic than jalap. (R. N. Khory—Part II., p. 420).

दन्ती

Croton Polyandrum, Roxb.

दन्ती, निकुम्भा, मकूलकः, उपचित्रा–*Croton polyandrum Roxb,* **द्रवन्ती, आखुपर्णिका, चित्रा**–*A variety of C. polyandrum, with many fleshy roots.* **रेचकः दन्तीबीजम्, जयपालः**–*The seeds of Danti and Drabanti. Croton tiglium, Linn.*

तद्भेदाः–दन्ती, अरणी, द्रवन्ती। अन्वर्थसंज्ञाः–दन्त्याः–"उदुम्बरपर्णी", "एरण्डफला", "एरण्डपत्रिका", "निःशल्या", "विशोधनी"। द्रवन्त्याः–"शतमूलिका", "आखुपर्णिका"। रेचकस्य–"मलद्रावी", "बीजरेचकः"। 'दन्ती' तीक्ष्णोष्णकटुका कफवातोदराञ्जयेत्। अर्शोव्रणाश्मरीशूलान् हन्ति दीपनशोधनी॥ 'दन्ती' (अरणी नाम) रसेषु तिक्तोष्णा शूलत्वग्दोषनाशनी। कफवातोदरार्शांसि हन्ति दीपनशोधनी॥ 'जैपालः' कटुरुष्णश्च क्रिमिहारी विरेचनः। दीपनः कफवातघ्नी जठरामयशोधनः॥ 'द्रवन्ती' ग्रहणीतृष्णात्रिदोषशमनी हिता। अभिच्छिन्नतनौ ग्रन्थ्यां प्रमेहे जठरे गरे॥ कफपित्तामये पाण्डौ कृमिकोष्ठभगन्दरे। 'द्रवन्ती' हृद्रोगहरा कफक्रिमिविनाशनी॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ 'दन्ती' कटूष्णा शूलामत्वग्दोषशमनी च सा। अर्शोव्रणाश्मरीशल्यशोधनी दीपनी परा॥ 'अन्या दन्ती' कटूष्णा च रेचनी क्रिमिहा परा। शुलकुष्ठामदोषघ्नी तन्द्रामयविनाशनी॥ 'जैपालः' कटुरुष्णश्च क्रिमिहारी विरेचनः। दीपनः कफवातघ्नी जठरामयशोधनः॥ 'द्रवन्ती' मधुरा शीता रसबन्धकरी परा। ज्वरघ्नी क्रिमिहा शूलशमनी च रसायनी॥ राजनिघण्टुः॥ 'क्षुद्रदन्तीफलन्तु' स्यान्मधुरं रसपाकयोः। शीतलं सृष्टविण्मूत्रं गरशोथकफापहम्॥ 'जयपालो' गुरुः स्निग्धो रेची पित्तकफापहः। 'दन्तीद्वयं'

सरं पाके रसे च कटुदीपनम्॥ गुदाङ्कुरामशूलामकण्डूकुष्ठविदाहनुत्। तीक्ष्णोष्णं हन्ति पित्तास्रकफशोथोदरक्रिमीन्॥ भावप्रकाशः॥ दन्ती साष्ठीलिकाऽऽध्मानगुल्मोदरहरा सरा। 'कानकं' कफनुत् क्लेदि तीक्ष्णमुष्णं विरेचनम्। राजवल्लभः॥ दन्ती वह्निसमा पाके शोफदद्रुविनाशनी। कण्डूपामाहरा कुष्ठनाशिनी क्रिमिहृत् परा॥ गणनिघण्टुः॥ तैलं निकुम्भबीजोत्थमत्युग्रं रेचनं परम्। आनाहमुदरं हन्ति संन्यासञ्च शिरोगदम्॥ धनुस्तम्भज्वरोन्मादं गदमेकाङ्गसंज्ञकम्। आमवातञ्च शोषञ्च मर्दनात् कासनाशनम्॥ आत्रेयसंहिता।

वैद्यके व्यवहारः– (१) अर्शःसु दन्तीशाकम्–"त्रिवृद्दन्तीपलाशानां...। सुभृष्टं यमके दद्याच्छाकं दधिसरायुतम्॥" (चि. ९ अ.)। (२) दुष्योदरे दन्तीद्रवन्तीफलतैलम्–"दन्तीद्रवन्तीफलजं तैलं दूष्योदरे हितम्" (चि. १८ अ.)। (३) पाण्डुरोगे दन्तीशलाटुः–"दन्त्याश्च तत्फलरसैः पिष्टैर्दन्तीशलाटुभिः। तद्वत् प्रस्थो घृतात् सिद्धः प्लीहपाण्ड्वर्त्तिशोफजित्॥" (चि. २० अ.)। (४) कामलायां दन्तीमूलम्–"दन्त्यर्द्धपलकल्कं द्विगुणं शीतवारिणा। कामली... पिबेत्"। (चि. २० अ.)। (५) गुल्मोदरे दन्तीमूलम्–"तयो(दन्तीद्रवन्त्योः)र्मूलानि सङ्गृह्य स्थिरानि बहुलानि च। हस्तिदन्तप्रकाराणि श्यावताम्राणि बुद्धिमान्॥ पिप्पलीमधुलिप्तानि स्वेदयेन्मृत्कुशान्तरे। शोषयेदातपेऽर्काग्नौ हतो ह्येषां विकाशिताम्... दधितक्रसुरामण्डैः पिण्डमक्षसमं तयोः। पियालकोलवदरपीलुशीधुभिरेव च। पिबेद्गुल्मोदरी दोषैरभिखिन्नश्च यो नरः।" (कल्प. १२ अ.)। (६) विरेचनार्थं दन्तीमूलकल्कम्–"पाटयित्वेक्षुकाण्डं वा कल्केनालिप्य चान्तरा। स्वेदयित्वा ततः खादेत् सुखं तेन विरिच्यते॥" (कल्प. १२ अ.)। (७) पक्वशोथप्रभेदने दन्तीमूलम्–"विट्पलाशभवः क्षारो हेमक्षीरी मुकूलकः। इत्युक्तो भेषजगणः पक्वशोथप्रभेदनः॥" (चि. १३ अ.)। चरकः॥ क्रिमिषु द्रवन्तीदलम्–"आखुपर्णीदलैः पिष्टैः पिष्टकेन च पूपिकाम्। जग्ध्वा सौवीरकञ्चानु पिबेत् क्रिमिहरं परम्॥" (कृमि-चि.)। चक्रदत्तः।

विविध भाषाओं में नाम–

सं.- लघ्वी दन्ती, विशल्या, उदुम्बरपर्णी, शीघ्रा, श्वेतघण्टा, घुणप्रिया, निकुम्भः, मुकूलकः। हि.- दन्ती, छोटी दन्ती, लघु दन्ती, तिरिफल, जमाल गोटे की जड़। म.- दन्ती, लघु दन्ती। बं.- दन्ती गाछ हकुम। ते.- दन्ति चटेटु, दन्ती चेट्टु, कोडअमडुम। गु.- दान्ती, दाँत एटले, नेपाल- नामूल। फा.- दन्तवेल, वेदजीर खताई। अ.- हकुल मुकुल। अं- Croton tree (क्रोटन ट्री)। लें.- Croton Polyandrum.

अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा- दन्ती- उदुम्बरपर्णी, एरण्डफला, एरण्डपत्रिका, निशल्या, विशोधनी। द्रवन्ती- शत- मूलिका, आखुपर्णिका। रेचक- मलद्रावी, बीजरेचकः।

गुण-दोष–

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- दन्ती तीक्ष्ण, उष्ण तथा कटु रस है और यह कफ विकार, वात विकार तथा उदर विकार का नाश करती है। यह अर्श रोग, व्रण, अश्मरी एवं शूल का नाश करती है और जाठराग्नि दीपक एवं शोधक है। दन्ती (अरणीनाम) रस में तिक्त तथा उष्ण है और शूल एवं त्वक् विकार का नाश करती है, कफ विकार, वात विकार, उदर विकार तथा अर्श रोग का नाश करती है और दीपनी एवं संशोधन करने वाली है। जैपाल कटु रस तथा उष्ण है और यह क्रिमि रोग नाशक तथा विरेचक है। यह जाठराग्नि दीपक

है, कफ तथा वात नाशक है और उदर रोग का शोधन करती है। द्रवन्ती ग्रहणी रोग, प्यास तथा त्रिदोष को शान्त करने में हितकर है। यह अभिखिन्न शरीर में, ग्रन्थि रोग में, प्रमेह में, उदर रोग में, क्रित्रिम विष में, कफ तथा पित्त रोग में, पाण्डु रोग में, क्रिमि कोष्ठ तथा भगन्दर में हितकर है। द्रवन्ती हृदय रोग को दूर करती है तथा कफ रोग एवं क्रिमि रोग का नाश करती है।

राज निघण्टु के अनुसार- दन्ती कटु रस तथा उष्ण है और यह शूल, आम दोष, त्वचा रोग को शान्त करती है। यह अर्श रोग, व्रण, अश्मरी तथा शल्य का शोधन करती है और उत्तम दीपिका है। दूसरी दन्ती कटु रस उष्ण तथा रेचक है और क्रिमि रोग का अच्छी तरह नाश करती है। यह शूल, कुष्ठ रोग तथा आम दोष का नाश करती है और तन्द्रा को शान्त करती है। जयपाल कटु तथा उष्ण है और क्रिमि रोग को दूर करता है और विरेचक है। यह जाठराग्नि दीपक है, कफ-वात नाशक है और उदर रोग का शोधन करने वाला है। द्रवन्ती मधुर रस तथा शीतल है और पारद को बांधने वाली है, ज्वर नाशक है, क्रिमि नाशक है, शूल शामक है तथा रसायन गुण वाली है।

भावप्रकाश के अनुसार- क्षुद्रदन्ती का फल रस तथा परिपाक में मधुर है, शीतल है, मलमूत्र को निकालने वाला है, क्रित्रिम विष, शोथ तथा कफ विकार को दूर करता है। जयपाल गुरु है, स्निग्ध है, रेचक है और पित्त एवं कफ रोग को दूर करता है। दोनों प्रकार की दन्ती दस्तावर, पाक तथा रस में कटु है और जाठराग्नि दीपक है। यह गुदाङ्कुर (अर्श की मस्सा), आम विकार, शूल, कण्डू, कुष्ठ रोग तथा विदाह को दूर करता है। यह तीक्ष्ण तथा उष्ण है और रक्त पित्त, कफ विकार, शोथ तथा उदर क्रिमि का नाश करता है।

राजवल्लभ के अनुसार- दन्ती अष्ठीलिका ग्रन्थि आध्मान तथा उदर रोग को दूर करती है और दस्तावर है। यह कफ को दूर करती है, क्लेदि है, तीक्ष्ण है, उष्ण है तथा विरेचक है।

गण निघण्टु के अनुसार- दन्ती पाक में चित्रक के समान है और यह शोथ तथा दद्रु का नाश करती है। यह कण्डू, पामा को दूर करती है, कुष्ठ रोग का नाश करती है और क्रिमि रोग को शान्त करती है।

आत्रेय संहिता के अनुसार- निकुम्भ बीज (दन्ती बीज) का तैल अत्यधिक उग्र है तथा उत्तम रेचक है। यह आनाह, उदर रोग, संन्यास रोग, शिरो रोग, धनुष्टम्भ, ज्वर, उन्माद, एकाङ्ग वात, आम वात, शोष रोग का मर्दन करता है तथा कास नाशक है।

वैद्यक शास्त्र में दन्ती का प्रयोग-

(१) अर्श रोग में दन्ती शाक का प्रयोग- निशोथ, दन्ती तथा पलाश का शाक यमक (तैल तथा घी) में अच्छी तरह भून कर दही का पानी मिलाकर अर्श रोग में खिलाये (च.चि.अ.९)। **(२) दूष्योदर रोग में दन्ती-द्रवन्ती फल के तैल का प्रयोग**- दन्ती-द्रवन्ती फल का तैल दूष्योदर रोग में हितकर है (च.चि.अ.१८)। **(३) पाण्डुरोग में दन्ती शलाटु का प्रयोग**- दन्ती का रस एक पल तथा दन्ती की छाल का कल्क के साथ विधिवत् घृत एक प्रस्थ (१ किलो) सिद्ध करे। यह प्रयोग करने से प्लीहा रोग, पाण्डु रोग, पीड़ा तथा शोथ को दूर करता है। **(४) कामला में दन्ती मूल का प्रयोग**- दन्ती मूल आधा पल (२५ ग्राम) का कल्क दुगुने शीतल जल के साथ कामला से पीड़ित मनुष्य पान करे (च.चि.अ.२०)। **(५) गुल्मोदर में दन्ती मूल का प्रयोग**- बुद्धिमान् चिकित्सक दन्ती-द्रवन्ती के स्थिर अधिक हाथी के दाँत के समान श्याव वर्ण तथा ताम्र वर्ण के तना को लेकर पीपर तथा मधु से लिप्त कर कुशा के अन्दर रखकर तथा मिट्टी का लेप लगाकर स्वेदन करे। इसके बाद धूप में सूर्य के ताप से सुखाये। इसके बाद इसको कूटकर तथा एक अक्ष (१० ग्राम) का पिण्ड

लेकर दही, मट्ठा तथा सुरामण्ड के साथ सेवन करे अथवा चिरौंजी काले, बेर-पीलु तथा शीघ्रु के साथ दोषों से खिन्न गुल्मोदर का रोगी पान करे (च.चि.कल्प.अ.१२)। (६) **विरेचनार्थ दन्ती मूल के कल्क का प्रयोग-** गन्ने को चीर कर उसमें दन्ती-मूल का कल्क भरकर तथा कपड़ मिट्टी कर स्वेदन करे। इसके बाद इस गन्ना को खाय। इससे सुख पूर्वक विरेचन हो जाता है (च.उ.अ.१२)। (७) **पक्व शोथ का भेदन करने में दन्ती मूल का प्रयोग-** विट्, पलाश का क्षार, भड़भाड़ का क्षार तथा मुकुलक का क्षार ये भेषजगण पक्व शोथ का भेदन करने वाले हैं (च.चि.अ.१३)।

क्रिमिरोग में दन्ती पत्र का प्रयोग- आखुपर्णी (दन्ती) के पत्तों को पीस कर उस पीठी का पूआ बनावे और उसको पका कर सैवीरक (काञ्जी) के साथ पान करे। यह अच्छी तरह क्रिमि रोग को दूर करता है (चक्र.क्रिमि.चि.)।

Constituents of *C. polyandrum*—The root contains resin and starch.

Actions and uses—The root is purgative often used with aromatics in constipation with flatulence and in anasarca and jaundice. The seeds are drastic purgative and given with trikatu and tankana khara, &c. Dose 1 to 3 grs. (R. N. Khory—-Part II., p. 539).

Constituents of *Croton tiglium*—The entire seed contains expressed or fixed oil—oleum crotonis 30 to 40 p.c. and the kernel alone contains the oil 50 to 70 p.c.; proteids albumin, &c.

Actions and uses—The seeds are never used until the testa and embryo are removed, and the kernel boiled in milk. It is a powerful drastic cathartic and the rubefacient. The oil is highly irritant, Applied to the skin it pustulates, leaving unsightly scab. In small doses as a cathertic it acts promptly, producing copious watery stools. In large doeses it causes vomiting and produce gastritis; it also irritates the intestinal glands as well as setting up inflammation of the intestinal mucous membrane and giving rise to increased peristalsis. The addition of an alkali increases hypercatharsis where prompt derivative action is desired, with speedy discharge of alvine evacuations and lowering of blood pressure. It is given in apoplexy, mania, coma, intestinal obstruction, paralysis, dropsy and constipation. It should not be given in inflammation of the stomach or intestines or if any organic obstruction exists. It may be used where bulky doses can not be taken. In persons who refuse to take purgatives, the oil may be dropped upon the tongue with benefit. The seeds and the oil are especially used in fever, constipation, intestinal worms, anasarca, ascites, dropsy, enlargement of the abdominal viscera tymponitis, colic calculous affections and gout. Externally as a vesicant it is applied to the scalp in acute cerebral diseases, to the cord in spinal meningitis, to the chest in chronic bronchitis, and to the throat in laryngitis. Its liniment is used as a powerful counter-irritant in neuralgia, sciatica, ovaritis, gout, glandular swellings, chronic articular rheumatism, pulmonary diseases as bronchitis, pleurisy and tinca tonsurans of the scalp (R. N. Khory,—Part II., p. 542).

दाडिमः

Punica Granatum

दाड़िमः–*Punica granatum.*

तद्भेदाः–"द्विविधं तच्च विज्ञेयं मधुरञ्चाम्लमेव च" (ध. नि.)। "तत्फलं त्रिविधं स्वादु

स्वाद्वम्लं केवलाम्लकम्" (भावप्रकाशः)। अन्वर्थसंज्ञा–"नीलपत्रः", "लोहितपुष्पकः", "स्वाद्वम्लः", "रक्तबीजः", "दन्तबीजः", "मणिबीजः", "मधुबीजः", "सुफलः", "कुचफलः", "वृत्तफलः", "वल्कफलः", "शुकवल्लभः"। अम्लं कषायमधुरं वातघ्नं ग्राहिदीपनम्। स्निग्धोष्णं दाडिमं हृद्यं कफपित्ताविरोधि च॥ रूक्षाम्लं दाडिमं यत्तु तत् पित्तानिलकोपनम्। मधुरं पित्तनुत्तेषां तद्धि दाडिममुत्तमम्॥ (चरकः–फ. व. सू. २७ अ.)॥ कषायानुरसं तेषां दाडिमं नातिपित्तलम्। दीपनीयं रुचिकरं हृद्यं वर्च्चो विबन्धनम्॥ द्विविधं तत्तु विज्ञेयं मधुरं चाम्लमेव च। त्रिदोषघ्नञ्च मधुरमम्लं वातकफापहम्॥ (सू. ४६ अ.) सुश्रुतः॥ स्निग्धोष्णं दाडिमं हृद्यं कफपित्तविरोधि च॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ दाडिमं मधुराम्लकषायं कासवातकफपित्तविनाशि। ग्राहि दीपनकरं च लघूष्णं शीतलं श्रमहरं रुचिदायि॥ तत्र वातकफहारि किलाम्लं तापहारि मधुरं लघु पथ्यम्। ग्रन्थान्तरे–अम्लं कषायं मधुरं वातघ्नं ग्राहि दीपनम्। राजनिघण्टुः॥ तत्तु स्वादु त्रिदोषघ्नं तृड्दाहज्वरनाशनम्। हृत्कण्ठमुखरोगघ्नं तर्पणं शुक्रलं लघु॥ कषायानुरसं ग्राहि स्निग्धं मेधाबलावहम्। स्वाद्वम्लं दीपनं रुच्यं किञ्चित्पित्तकरं लघु॥ 'अम्लन्तु' पित्तजनकमम्लं वातकफापहम्। भावप्रकाशः॥ दाडिमं हृद्यमामाम्लं वातघ्नं ग्राहि दीपनम्। कषायानुरसं प्रोक्तं कफपित्तविरोधि च॥ 'मधुरन्तु' त्रिदोषघ्नमम्लं वातकफापहम्। ज्वरघ्नं दीपनं पथ्यं पाके लघ्वग्निदीपनम्॥ राजवल्लभः।

वैद्यके व्यवहारः– (१) घ्राणात् प्रवृत्ते रुधिरे दाडिमपुष्परसः–"...तथा दाडिमपुष्पतोयम्" (चि. ५ अ.)। (२) रक्तार्शःसु दाडिमत्वक्–"...स्निग्धरक्तसङ्ग्रहणः त्वग्दाडिमस्य तद्वत्"। (चि. ९ अ.)। चरकः॥ (१) मुखप्रवृत्ते रुधिरे दाडिमफलत्वक्–"दाडिमस्य फलत्वग्वा चूर्णं लिह्यात् सितायुतम्" (चि. ११ अ.)। (२) चलितगर्भे दाडिमपत्रम्– "पञ्चमे मासि चलिते गर्भे दाडिमीपत्राणि चन्दनं दधि मधु च पाययेत्" (चि. ४९ अ.)। हारीतः॥ (१) सरक्ते अतिसारे दाडिमत्वक्–"कषायो मधुना पीतस्त्वचो दाडिमवत्सकात्। सद्यो जयेदतीसारं सरक्तं दुर्निवारकम्॥" (अतिसार-चि.)। (२) अरोचके दाडिमफलरसः–"विट्चूर्णमधुसंयुक्तो रसो दाडिमसम्भवः। असाध्यमपि संहन्यादरुचिं वक्त्रधारितः॥" (अरोचक-चि.)। (३) उपदंशे दाडिमत्वक्–"...दाडिमत्वग्भवेन वा। गुण्डनं ...उपदंशहरं परम्॥" (उपदंश-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) ज्वरकृते आस्यवैरस्ये दाडिमबीजः– "शर्करादाडिमाभ्याञ्च द्राक्षादाडिमयोस्तथा। वैरस्ये धारयेत् कल्कं गण्डूषञ्च तथाहितम्॥" (ज्वर-चि.)। (२) रक्तातिसारे दाडिमबीजरसः–"कुटजस्य फलं ग्राह्यमष्टभागे जले शृतम्। तथैव विपचेद्भूयो दाडिमोदकसंयुतम्॥ यावच्च लसिकाभासं शृतं तमुपकल्पयेत्। तस्यार्द्धकर्षं तक्रेण पिबेद्रक्तातिसारवान्॥ अवश्यमरणीयोऽपि मृत्योर्याति न गोचरम्। कुटजक्वाथतुल्योऽत्र दाडिमस्य रसो मतः॥" वङ्गसेनः॥ (१) रक्तातिसारे दाडिमशलाटुत्वक्–"वत्सत्वग्दाडिमतरुशलाटुफलसम्भवात् त्वक् च। त्वग्युगलं पलमानं विपचेदष्टांशसम्मिते तोये। अष्टमभागशेषं क्वाथं मधुना पिबेत् पुरुषः। रक्तातीसारमुल्बणमतिशयितम्। नाशयेन्नियतम्।" (अतिसार-चि.)। (२) आमाजीर्णे दाडिमम्–"आमे अजीर्णे... अथ दाडिमं वा आमेष्वजीर्णेषु गुदामयेषु वर्च्चोविबन्धेषु च नित्यमद्यात्"। (अजीर्ण-चि.)। भावप्रकाशः।

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– दाडिमः, करकः, दन्तबीजः, लोहितपुष्पकः। हि.– अनार, दाड़िम, धारिम। मं.– दाडिम, डालिम गाछ। म.– डालिम्बः। गु.– दालिमः, दाड़मनु झाड़। ते.– डानिम्ब चेट्टू, दालिम्बु काया। ता.– मादले, मुगिलम्। मा.– दाड़म्। द्रा.– दामन। अं.– Pomegranite (पोमेग्रेनिट)। ले.– Punica granatum (प्यूनिका ग्रानेटम्)।

अनार के भेद– अनार दो प्रकार का होता है। १. मधुर २. अम्ल रस (ध.नि.)। अनार का फल तीन प्रकार का होता है, मधुर रस, मधुराम्ल–रस तथा केवल अम्ल रस (भा.प्रका.)।

दाड़िम की अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा– नीलपत्रः, लोहितपुष्पकः, स्वाद्वम्लः, दन्तबीजः, मणिबीजः, सुफलः, कुचफलः, वृत्तफलः, वल्कफलः। शुक–वल्लभः।

गुण–दोष–

चरक के अनुसार– अनार अम्ल, कषाय तथा मधु रस होता है और यह वात नाशक, ग्राही तथा जाठराग्नि दीपक है। यह स्निग्ध, उष्ण, हृदय को बल देने वाला, कफ तथा पित्त का नाशक है। अनार जो रूक्ष तथा अम्ल है वह पित्त तथा वात को प्रकुपित करता है। मधुर अनार पित्त को दूर करता है और यह उत्तम अनार है (च.फ.सू.अ.२७)।

सुश्रुत के अनुसार – सभी प्रकार के अनारों में कषाय रस वाला दाडिम अधिक पित्त कारक नहीं होता है, जाठराग्नि दीपक है, रुचि कारक है, हृदय को बल देने वाला है तथा मल को रोकने वाला है। वह अनार दो प्रकार का होता है– मधुर तथा अम्ल। यह त्रिदोष नाशक है तथा मधुराम्ल अनार बात एवं कफ का नाश करने वाला है। (सु.सू.अ. ४६)।

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार– अनार स्निग्ध तथा उष्ण है और यह हृदय को बल देने वाला है तथा कफ एवं पित्त का विरोधी है।

राजनिघण्टु के अनुसार– अनार मधुर अम्ल तथा कषाय रस वाला है तथा कास–वात विकार, कफ विकार एवं पित्त विकार का नाश करता है, ग्राही है, जाठराग्नि दीपक है, लघु है, उष्ण है, शीतल है तथा श्रम को दूर करता है तथा रुचि कारक है। इनमें अम्ल रस वाला अनार वात–कफ को दूर करता है। मधुर रस वाला ताप को दूर करता है, लघु है तथा पथ्य है। अन्य ग्रन्थ के अनुसार अम्ल, कषाय तथा मधुर रस वाला, वात नाशक है, ग्राही है और तथा जाठरानिग्न दीपक है।

भाव प्रकाश के अनुसार – अनार स्वादिष्ट, त्रिदोष नाशक तथा दाह, प्यास एवं ज्वर नाशक है। यह हृदय, कण्ठ तथा मुख रोग का नाश करता है, तृप्तिकारक है, वीर्यवर्द्धक है तथा लघु है। कषाय रस वाला अनार ग्राही है, स्निग्ध है तथा मेधा एवं बल को बढ़ाने वाला है। स्वाद्वम्ल अनार जाठराग्नि दीपक, रुचिकारक तथा थोड़ा पित्त वर्द्धक एवं लघु है। अम्ल रस अनार पित्त कारक है तथा वात कफ को दूर करता है।

राजवल्लभ के अनुसार – अनार हृदय को बल देने वाला, अम्ल रस अनार वातनाशक, ग्राही है तथा जाठराग्नि दीपक है। कषाय रस वाला अनार कफ तथा पित्त वर्द्धक है। मधुर रस वाला अनार त्रिदोष नाशक है। अम्ल रस वाला वात कफ नाशक है, ज्वर नाशक है, जाठराग्नि दीपक है, पथ्य है तथा पाक में लघु है।

वैद्यक शास्त्र में अनार का प्रयोग –

१. घ्राण (नासिका) से रक्त निकलने पर अनार पुष्प रस का प्रयोग – अनार के पुष्प का रस नाक

से निकलते रक्त को रोकता है (च.चि.अ. ५)। २. **रक्तार्श मे॥ अनार की छाल का प्रयोग**- अनार की छाल का स्निग्ध रस अर्श के रक्त को रोकता है (च.चि.अ. ९)।

(१) मुख से रक्त के निकलने पर अनार फल के छिलके का प्रयोग- मुख से रक्त के निकलने पर अनार फल के छिलके का चूर्ण मिश्री मिलाकर चाटें (हारी.चि.अ. ११)। **(२) गर्भस्त्राव में अनार के पत्ते का प्रयोग**- पञ्चम मास में यदि गर्भ चलता हो (गिरता हो) तो अनार के पत्ते का चूर्ण चन्दन, दही तथा मधु मिला कर पान कराये (हा.चि.अ. ४९)।

१. रक्तातिसार में अनार की छाल का प्रयोग- रक्तातिसार में अनार की छाल का कषाय रस सेवन करने से भयंकर रक्तातिसार दूर होता है (चक्र. अतिसार चिकित्सा)। २. **अरोचक में अनार फल के रस का प्रयोग**- विट् चूर्ण मधु मिलाकर तथा अनार के फल का रस मिलाकर प्रयोग करने से (मुख में धारण करने से) असाध्य अरुचि का नाश होता है (चक्र. अरोचकाधिकार)। ३. **उपदंश में अनार के छिलका का प्रयोग**- अनार के छिलका का कल्क बनाकर तथा उसको बर्फी के आकार का बनाकर उपदंश में प्रयोग करने पर उपदंश अच्छी तरह दूर होता है (चक्र. उपदंश चि.)।

१. **ज्वरजन्य मुख की विरसता में अनार के बीज का प्रयोग** - शक्कर तथा अनार के सेवन करने से तथा अनार के बीज तथा मुनक्का के कल्क मुख की विरसता में धारण करे तथा उसके कषाय का गण्डूष धारण भी हितकर है। (वंगसेन, ज्वरचिकित्सा) २. **रक्तातिसार में अनार के बीज के रस का प्रयोग** - कुटज के बीज (इन्द्रजव) लेकर अठगुने जल में पका ले। उसी प्रकार अनार का रस मिला कर पकाले। जब लसिका के आकार का गाढ़ा हो जाय तो उसका ग्रहण कर ले। इसका आधा कर्ष (५ ग्राम) की मात्रा में मट्ठा के साथ रक्तातिसार का रोगी पान करे। इसके सेवन से अवश्य मरने वाला भी अतिसार का रोगी नहीं मरता है। यह कुटज क्वाथ के बराबर अनार का रस ग्रहण करे। (वंगसेन)

१. **रक्तातिसार में अनार के शलाटुत्वक् का प्रयोग** - कुटज की छाल तथा अनार के फल को छिलकर दोनों का छिलका दो पल (१०० ग्राम) लेकर अठगुने जल में पकावे। आठ माशे शेष क्वाथ को मधु में मिलाकर रक्तातिसार का रोगी पान करे। यह भयंकर रक्तातिसार का नाश करता है (भाव. अतिसार चि.)। २. **आमाजीर्ण में दाडिम का प्रयोग** - आमाजीर्ण में तथा गुदामय (अर्श रोग) में मलावरोध होने पर प्रति दिन अनार का सेवन करे (भाव.अजीर्ण चि.)।

Constituents—The bark contains tannin and punico tannic acid 22 p.c., mannit, sugar, gum, pectin, ash 15 p.c., an active liquid, alkaloid pelletierine and isopelletierine and two inactive alkoloids.

Therapeutics—The juice is given in dyspepsia and fevers; flowers and rind of the fruit mixed with aromatics and astringents such as cloves, cinnamon, coriander, pepper, &c, are given in chronic diarrhoea of children and in chronic dysentery unaccompanied tenesmus. The juice of the flowers with durva root juice (*Cynodon dactylon*) is used to stop bleeding from the nose. The decoction of root-bark is vermifuge and is used for expelling tape worms, (R. N. Khory, Part II., p. 278).

"Besides using the flowers and rind in a variety of ways on account of their astringency, they recommend the root bark as being the most astringent part of the plant, and a perfect specific in cases of tape-worms; it is given, in decoction, prepared with two ounces of fresh bark, boiled

in a pins and a half of water till but three quarters of a pint remain; of this when cold a wine glassful may be drunk every half hour, till the whole is taken. This dose sometimes sickens the stomach a little, but seldom fails to destroy the worm, which is soon after passed." (Dymoch, Part II., p. 45).

दारुहरिद्रा

Berberis Asiatica, Roxb.

दारुहरिद्रा, दार्वी, कटङ्कटेरी—Berberis Asiatica, Roxb.

अन्वर्थसंज्ञा—"पीतदारु", "स्थिररागा"। तिक्ता दारुहरिद्रा स्याद्रूक्षोष्णा व्रणमेहजित्। कर्णनेत्रमुखोद्भूतां रुजं कण्डुञ्च नाशयेत्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः। तिक्ता दारुहरिद्रा तु कटूष्णा व्रणमेहनुत्। कण्डूविसर्पत्वग्दोषविषकर्णाक्षिदोषनुत्॥ राजनिघण्टुः। एषोष्णा कटुका तिक्ता नेत्रकर्णास्यरोगनुत्। मेहकण्डू विसर्पघ्नी त्वग्दोषव्रणनाशनी॥ विषघ्नी स्वेदनी पित्तकफशोथविनाशनी। भावप्रकाशः। दार्वी विशेषेण कफाभिष्यन्दनाशनी। राजवल्लभः॥ दार्वीक्वाथसमुद्भवस्य रसाञ्जनस्य गुणाः—रसाञ्जनं हिमं तिक्तं रक्तपित्तकफापहम्। हिध्माश्वासहरं वर्ण्यं मुखरोगविषापहम्॥ रसाञ्जनं रसे चोष्णं चक्षुष्यं तिक्तकं कटु। रक्तपित्तविषच्छर्दिहिक्काघ्नं हृत्प्रसादनम्॥ अन्यच्च—रसाञ्जनञ्च पीताभं विषवक्त्रगदापहम्। श्वासहिध्माहरं वर्ण्यं वातपित्तास्त्रनाशनम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः। तत् नेत्रयोः परमं हितम्। रसाञ्जनं कटुश्लेष्मविषनेत्रविकारनुत्। उष्णं रसायनं तिक्तं छेदनं व्रणदोषहृत्॥ भावप्रकाशः।

वैद्यके व्यवहारः—व्रणरोपणार्थं दार्वीत्वङ्मूलत्वक्- "दार्वीत्वचश्च कल्केन प्रधानं व्रणरोपणम्" (चि. १३ अ.)। चरकः॥ पिष्टमेहे दारुहरिद्रा- "पिष्ट-मेहिनं हरिद्रादारुहरिद्राकषायं (पाययेत्)" (चि. ११ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) श्लैष्मिके वृद्धौ दारुहरिद्रा—"गोमूत्रेण पिबेत् कल्कं श्लैष्मिके पीतदारुजम्"। (चि. १३ अ.)। (२) सर्वदोषप्रकुपिते नेत्रे दारुहरिद्रा—"षोडशभिः सलिलपलैः पलं तथैकं कटङ्कटेर्याः सिद्धम्। सेकोऽष्टभागावशिष्टः क्षौद्रयुतः सर्वदोष-प्रकुपिते नेत्रे"। (उ. १६ अ.)। वाग्भटः। (१) मुखरोगासृग्दरनाडीव्रणेषु दार्वी-रसक्रिया- "स्वरसः क्वथितो दार्व्या घनीभूतो रसक्रिया। सक्षौद्रा मुखरोगासृग्दोषनाडीव्रणापहा।" (कण्ठरोगचि.)। (२) कामलायां दार्वीरसः—"दार्व्या निम्बस्य वा रसः। प्रातर्माक्षिकसंयुक्तः शीलितः कामलापहः।" (पाण्डुचि.)। चक्रदत्तः।

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- दार्वी, दारुहरिद्रा, पचन्या, कटङ्कटेरी, पचम्पचा। हि.- दारु हलदी, दार हलद। बं.- दारु हरिद्रा। म.- जरके हलद। गु.- दारु हलदर। क.- मरनरिसिन, मरद आनीसेन। ता.- मरमजिल। फा.- दारचवह। अ.- दार हलक। अं.- Barbery (वारवेरि)। ले.- Berberis aristata (वार्वरिस अरिष्टाटा)।

दारु हलदी की अन्वर्थज्ञापिका सं.- पीतदारु, स्थिररागा।

गुण एवं दोष -

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार - दारु हरिद्रा तिक्त रस प्रधान है, रूक्ष है, उष्ण है तथा व्रण एवं प्रमेह को दूर करती है। यह कान, नेत्र तथा मुख की पीड़ा एवं कण्डू का नाश करती है।

राजनिघण्टु के अनुसार - दारु हलदी तिक्त तथा कटु रस वाली एवं उष्ण है और यह व्रण तथा प्रमेह को दूर करती है। यह कण्डू, विसर्प, त्वचा विकार, विष विकार, कर्ण रोग तथा नेत्र रोग का नाश करती है।

भावप्रकाश के अनुसार - दारु हलदी उष्ण, कटु तथा तिक्त रस वाली है और यह नेत्र रोग, कर्ण रोग तथा मुख रोग को दूर करती है। यह प्रमेह, कण्डू तथा विसर्प का नाश करती है और त्वचा दोष एवं व्रण का नाश करती है। यह विषनाशक है, स्वेदकारक है तथा पित्त, कफ एवं शोथ का नाश करती है।

राजवल्लभ के अनुसार - दारु हलदी विशेषकर कफ निदान करती है।

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार दारु हलदी के क्वाथ से उत्पन्न रसाञ्जन के गुण- रसाञ्जन शीतल तथा तिक्त रस है और रक्त पित्त एवं कफ को दूर करता है। यह हिध्मा तथा श्वास को दूर करता है, वर्ण को स्वच्छ करता है, मुख रोग एवं विष विकार को दूर करता है। रसाञ्जन रस में उष्ण है, नेत्र के लिए हितकर है, तिक्त तथा कटू रस है। यह रक्त पित्त, विष विकार, वमन तथा हिक्का का नाश करता है और हृदय को प्रसन्न करता है और भी रसाञ्जन के गुण हैं- पीत वर्ण का रसाञ्जन विष विकार तथा मुख के रोग को नष्ट करता है। यह श्वास तथा हिध्मा को दूर करता है, वर्ण को प्रसन्न करता है तथा वात विकार एवं रक्त पित्त का नाश करता है।

भावप्रकाश के अनुसार रसाञ्जन वह नेत्रों के लिए बहुत हितकर है। यह कटु रस है, कफ विकार तथा नेत्र विकार को दूर करता है, उष्ण है, रसायन है, तिक्त रस है, छेदन गुण वाला है तथा व्रण दोष का नाश करता है।

वैद्यक शास्त्र में दारु हरिद्रा का प्रयोग-

व्रणरोपण के लिए दारु हलदी के मूल की छाल का प्रयोग- दारु हलदी के मूल की छाल के कल्क का पुल्टिस बाँधने से व्रण का रोपण होता है (च.चि.अ. १३)।

पिष्टमेह में दारु हलदी का प्रयोग- पिष्टमेह के रोगी को हलदी तथा दारु हलदी का क्वाथ पान कराये (सु.चि.अ. ११)।

१. श्लैष्मिक वृद्धि रोग में दारु हलदी का प्रयोग- दारु हलदी को गोमूत्र के साथ पीस कर कल्क बनाये और उस कल्क का गोमूत्र के साथ श्लेष्मिक वृद्धि रोग में पान कराये (वाग्भट, चि. अ. १३)। **२. सर्वदोष प्रकोपजन्य नेत्र रोग में दारु हलदी का प्रयोग**- एक पल (५० ग्राम) दारु हलदी को सोलह पल (८०० ग्राम) जल में पकावे और अष्टमांश क्वाथ का मधु मिलाकर सभी दोषों से प्रकुपित नेत्र रोग में प्रयोग करे (वाग्भट, चि.अ. १६)।

१. मुख, रक्त प्रदर तथा नाड़ी व्रण में दारु हलदी की रसक्रिया का प्रयोग- दारु हलदी का स्वरस क्वथित होकर घनीभूत होने का नाम रस क्रिया है। यह रस क्रिया मुख रोग, रक्त प्रदर तथा नाड़ी व्रण में शहद के साथ पान करने से मुखादि रोगों का नाश करती है (चक्र. कण्ठरोग चि.)। **२. कामला में दारु हलदी के रस का प्रयोग**- दारु हलदी या निम्ब का रस शहद मिलाकर प्रातःकाल सेवन करने से कामला रोग का नाश होता है (चक्र. पाण्डुरोग चि.)।

Constituents—The root and wood contain in great abundance a yellow alkaloid berberine or berberina, oxyacanthine, fat, resin, tannin also berbamine and another alkaloid. The fruit contains malic and citric acids and tannin. **Actions and uses**—The bark and stem—Tonic,

diaphoretic, stomachic antiperiodic, and a gentle but certain aperient, used in malarial fevers, diarrhoea, dyspepsia, ague, during convalescence from fevers and acute diseases. As an alterative it is used in bilious complaints, torpid liver dropsy and jaundice. With gypsum it is given in metrorrhagia. The berries are coolin; and acid and used as refrigerant in febrile diseases, diarrhoea, &c. The extract (Rusot) is an anodyne, tonic and febrifuge internally used like the bark. Externally rusot, mixed with alum, rock salt, chebulic myrabolams and opium is applied round the orbit in painful affections of the eye, as in black eye, &c. Mixed with honey it is applied to ulcers in the mouth. It is also applied to relieve pain of cancer and of neuralgia. (R. N. Khory Part II., p. 34).

दुरालभा यवासश्च

Alhagi Camelorum and Alhagi Maurorem

दुरालभा, दुरालम्भा, धन्ववासः (मरुद्भवा दुरालभा)—Alhagi Camelorum, Fisch. **यवासः, यासः**—Alhagi Maurorem, D.C.

अन्वर्थसंज्ञाः—'यवासस्य'—"त्रिपर्णिका", "अल्पकः", "सूक्ष्मपत्रः", "बहुकण्टकः", "विषकण्टकः", "दीर्घमूलः", "सुदूरमूलः", "विषघ्नः"। 'दुरालभायाः'— "धन्वयासः" (मरुद्भवा दुरालभा), "सूक्ष्मदला", "दुःस्पर्शा", "ताम्रमूली", "अजभक्ष्या", "उष्ट्रभक्षिका", "करभप्रिया"। 'दुरालभा' स्वादुशीता तिक्ता दाहविनाशनी। विषमज्वरतृट्च्छर्दिमेहमोहविनाशनी॥ 'यवासकः' स्वादुतिक्तो ज्वरतृड्रक्तपित्तनुत्। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ 'यवासशर्करा' मधुरकषाया तिक्तानुरसा श्लेष्महरी सरा चेति। (सुश्रुत, इक्षुवर्गः—सू. ४५ अ.)। "यवासक्वाथघनीभावात् शर्करा कृता यवासशर्करा"—डल्हणः॥ 'दुरालम्भा कटुस्तिक्ता सोष्णा क्षाराम्लिका तथा। मधुरा वातपित्तघ्नी ज्वरगुल्मप्रमेहजित्॥ दुरालभा 'द्वितीया' च गौल्याऽम्लज्वरकुष्ठनुत्। श्वासकासभ्रमघ्नी च पारदे शुद्धिकारिका॥ 'यासो' मधुरतिक्तोऽसौ शीतः पित्तार्त्तिदाहजित्। वलीदीपनकृत्तृष्णाकफच्छर्दिविसर्पजित्॥ राजनिघण्टुः॥ यासः स्वादुः सरस्तिक्तस्तुवरः शीतलो लघुः। कफमेदोमदभ्रान्तिपित्तासृक्कुष्ठकासजित्॥ तृष्णाविसर्पवातास्त्रवमिज्वरहरः स्मृतः। यवासस्य गुणैस्तुल्या बुधैरुक्ता दुरालभा॥ भावप्रकाशः॥ यासः सरो ज्वरच्छर्दिश्लेष्मपित्तविसर्पजित्। राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः—'रक्तपित्ते' दुरालभा— (१) "...दुरालभा पर्पटका मृणालम्। पृथक् पृथक् चन्दनयोजितानि। तेनैव कल्पेन हितानि तत्र"। (चि. ४ अ.)। (२) 'घ्राणात् प्रवृत्ते रुधिरे' दुरालभामूलम्—"यवासमूलानि... नस्यम्"। (चि. ४ अ.)। (३) 'मदात्यये' दुरालभा— "दुस्पर्शितेन ...शृतं वापि दद्याद्दोषविपाचनम्। ऐतदेव च पानीयं सर्वत्रापि मदात्यये॥ निरत्ययं पीयमानं पिपासाज्वरनाशनम्।" (चि. १२ अ.)। (४) 'कफजवमने' दुरालभा— "दुरालभां वा मधुसम्प्रयुक्तां लिह्यात् कफच्छर्द्दिविनिग्रहार्थम्।" (चि. २३ अ.)। चरकः॥ 'मूत्राघाते' धन्वयासः— "रसं वा धन्वयासस्य।" (चि. ११ अ.)। वाग्भटः॥ 'भ्रमरोगे' दुरालभा—"पिबेद्दुरालभाक्वाथं सघृतं भ्रमशान्तये।" (मूर्च्छा चि.)। चक्रदत्तः॥

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- यास, यवास, दुःस्पर्शः, धन्वयासः, कुनासकः। हि.- यवासा, धमासा भेद। ब.- यवासा। गु.- यवासो। म.- कांटे, चुवुक तांवाड़ा। धमासा। क.- टोरे इङ्गुलु। ते.- पिन्नरेगटि तुलगो डि। फा.- पूरावनुन। अ.- अलगुलहाल। ले.- (Alhagi mauroreum)

यवासा की अन्वर्थज्ञापिका सं.- त्रिपर्णिका, अल्पकः, सूक्ष्मपत्रः, बहुकण्टकः, विषकण्टकः, दीर्घमूलः, विषघ्नः। **दुरालभा की अन्वर्थज्ञापिका सं.-** धन्वयासः (मरुद्भवा दुरालभा), सूक्ष्मदला, दुःस्पर्शा, ताम्रमूली, अजभक्ष्या, उष्ट्रभक्षिका, करभप्रिया।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्दु के अनुसार- दुरालभा स्वादिष्ट, शीतल तथा तिक्त रस है और दाह का नाश करती है। यह विषम ज्वर, प्यास, वमन, प्रमेह तथा मोह (मूर्च्छा) का नाश करती है। यवासक स्वादिष्ट तथा तिक्त रस है और यह ज्वर, प्यास तथा रक्त पित्त को दूर करता है।

सुश्रुत के अनुसार- यवासशर्करा मधुर तथा कषाय रस है और तिक्त अनु रस है और यह कफ विकार को दूर करती है तथा दस्तावर है (सु. इक्षुवर्ग सू. अ. ४५)। यवासा के क्वाथ का गाढ़ा होने पर घनीभूत पदार्थ को यवास शर्करा कहते हैं (डल्वणः सुश्रुत टीकाकारः)।

राजनिघण्टु के अनुसार- दुरालाभा कटु तिक्तरस तथा उष्ण है और यह क्षारीय है, अम्ल है, मधुर है एवं वात पित्त नाशक है तथा ज्वर, गुल्म तथा प्रमेह रोग को दूर करती है। दूसरी प्रकार की दुरालभा गले के लिए हितकर है और अम्ल रस है तथा ज्वर एवं कुष्ठ रोग को नष्ट करती है। यह श्वास रोग, कास रोग तथा भ्रम रोग का नाश करती है एवं पारद को शुद्ध करने वाली है। यास (यवास) मधुर तथा तिक्त रस है तथा शीत है और पित्त विकार एवं दाह को दूर करता है। वलीपलित का नाश करता है, जाठराग्नि दीपक है तथा प्यास, कफ विकार, वमन एवं विसर्प का नाश करता है।

भाव प्रकाश के अनुसार - यास (यवास) स्वादिष्ट, दस्तावर, तिक्त तथा कषाय रस और शीतल तथा लघु है। यह कफ विकार, मेदो विकार, मद, भ्रान्ति, रक्त पित्त, कुष्ठ तथा कास को जीत लेता है; इनके अतिरिक्त प्यास, विसर्प, रक्त पित्त, वमन तथा ज्वर को दूर करता है। दुरालभा के गुण यवास के गुण के समान ही हैं।

राजवल्लभ के अनुसार- यास (यवास) दस्तावर है, ज्वर, वमन, कफ विकार, पित्त विकार तथा विसर्प का नाश करता है।

वैद्यक शास्त्र में दुरालभा का प्रयोग-

१. रक्त पित्त रोग में दुरालभा का प्रयोग- दुरालभा, पित्तपापड़ा तथा कमलनाल इन सब का अलग-अलग चन्दन के साथ उन्हीं कल्पों के साथ रक्तपित्त में प्रयोग करना हितकर है (च.चि.अ. ४)। **२. नासिका से रक्त निकलने पर दुरालभा मूल का प्रयोग-** नासिका से रक्त निकलने पर यवासा के मूल के रस का नस्य ले (च.चि.अ.४)। **३. मदात्यय में दुरालभा का प्रयोग-** मदात्यय में दुरालभा के साथ इसे दे। वह दोषों का पाचन करता है। मदात्यय में दुरालभा का स्वरस सर्वत्र प्रयोग करे। यह दुरालभा का क्वाथ निरन्तर पीते रहने से पिपासा तथा ज्वर को शान्त करता है (च.चि.अ. १२)। **४. कफज वमन में दुरालभा का प्रयोग** - कफ जन्य वमन को दूर करने के लिए दुरालभा के चूर्ण या रस का मधु मिलाकर पान करे (च.चि.अ.२३)।

मूत्राघात में धन्वयास का प्रयोग- मूत्राघात में धन्वयास के रस का प्रयोग करे (वाग्भट, चि. अ. ११)।

भ्रम रोग में दुरालभा का प्रयोग- भ्रम की शान्ति के लिए दुरालभा के क्वाथ का घृत मिलाकर पान करे (चक्र.मूर्च्छा चि.)।

Constituents—Manna contains mannite and cane-sugar. **Actions and uses**—The plant is laxative, diuretic and expectorant. The manna and the extract, cholagoque, aphrodisiac and demulcent, given in coughs. The fresh juice is diuretic and given in combination with aromatics in the suppression of urine; also used in opacities of the cornea, and snuffed up the nose in migraine. A poultice of the plant of its fumigation is used in the cure of piles. The plant is smoked with black dhatura, tobacco and bishom-weed seeds in asthma. (R. N. Khory, Part II., p. 189).

दूर्वा

Cynodon Dactylon

दूर्वा–Cynodon Dactylon, Pers. Panicum Dactylon, Linn. **'तद्भेदा:'–नीलदूर्वा, श्वेतदूर्वा (गोलोमी), गण्डदूर्वा, मालादूर्वा। अन्वर्थसंज्ञा–'नीलदूर्वाया:'–"हरितम्", "शतपर्वा"। 'श्वेतदूर्वाया:'–"श्वेतकाण्डा", "सितच्छदा", "सुपर्वा", "कच्छान्तरुहा", "दुर्मरा"। 'मालादूर्वाया:'–"ग्रन्थिला", "रोहत्पर्वा"। 'गण्डदूर्वाया:'–"सूचीपत्रा", "श्यामकाण्डा", "चित्रा"। 'दूर्वात्रय (नीलश्वेतगण्डदूर्वा)-गुणा:'–दूर्वा शीता कषाया च रक्तपित्तकफापहा। अनुपत्रा कषाया च शीतला श्लेष्मवातला॥ अन्यच्च-दर्भ: शरो नलश्चैव तथा दूर्वात्रयं समम्। स्वादुतिक्तकषायाणि पित्तश्लेष्महराणि च॥ दाहतृष्णास्त्रवीसर्परक्तपित्तापहाणि च॥ धन्वन्तरीयनिघण्टु:॥ 'नीलदूर्वा' तु मधुरा तिक्ता शिशिररोचनी। रक्तपित्तातिसारघ्नी कफवातज्वरापहा॥ 'श्वेतदूर्वा'ऽति शिशिरा मधुरा वान्तिपित्तजित्। आमातीसारकासघ्नी रुच्या दाहतृषापहा॥ 'वल्लीदूर्वा' (मालादूर्वा) सुमधुरा तिक्ता च शिशिरा च सा। पित्तदोषप्रशमनी कफवान्तितृषापहा॥ 'गण्डदूर्वा' तु मधुरा वातपित्तज्वरापहा। शिशिरा द्वन्द्वदोषघ्नी भ्रमतृष्णाश्रमापहा॥ दूर्वासाधारणगुणा:– दूर्वा: कषाया: मधुराश्च शीता: पित्ततृषा-रोचकवान्तिहन्त्र्य:। सदाहमूर्च्छाग्रहभूतशान्तिश्लेष्मश्रमध्वंसनतृप्तिदाश्च॥ राजनिघण्टु:॥ 'नीलदूर्वा' हिमा तिक्ता मधुरा तुवरा हरेत्। कफपित्तास्त्रवीसर्पतृष्णादाहत्वगामयान्॥ 'श्वेतदूर्वा' कषाया स्यात् स्वाद्वी बल्या च जीवनी। तिक्ता हिमा विसर्पास्त्रतृट्पित्तकफदाहहृत्॥ 'गण्डदूर्वा' हिमा लोह-द्राविणी ग्राहिणी लघु:। तिक्ता कषाया मधुरा वातकृत् कटुपाकिनी॥ दाह-तृष्णावलासास्त्रकुष्ठपित्तज्वरापहा॥ भावप्रकाश:॥ दूर्वा तु रक्तपित्तघ्नी कण्डूत्वग्दोषनाशनी॥ राजवल्लभ:।**

वैद्यके व्यवहार:–'घ्राणात् प्रवृत्ते रुधिरे' दूर्वास्वरस:– (१) "नस्यं... दूर्वास्वरसस्य चैव।" (चि. ५ अ.)। (२) 'विसर्पे' दूर्वा–"दूर्वास्वरससिद्धश्च घृतं स्याद्व्रणरोपणम्।" (चि. ११ अ.)। चरक:॥ 'रक्तपित्ते' दूर्वा– "लिह्याच्च दूर्वावटजांश्च पल्लवान्। मधुद्वितीयान्।" (उ. ४५ अ.)। सुश्रुत:॥ 'कच्छादिषु' दूर्वा– (१) "रसेन च दूर्वाया: पचेत्तैलं चतुर्गुणम्। कच्छूचिर्च्चिकापामा अभ्यङ्गादेव नाशयेत्।" (कुष्ठ-चि.)। (२) 'आर्त्तवलाभाय' दूर्वा–"दूर्वाया: पिष्टकं प्राश्य वनितात्वार्त्तवं लभेत्।" (योनिव्यापत–चि.)। चक्रदत्त:॥ 'मूत्राघाते' दूर्वा–"गोजानाम्नो मूलं पलमेकं

क्वथितशोषितं पीतम्। क्षिप्ता मधु च सितञ्च प्रणुदति मूत्रस्य संरोधम्।" (मूत्रघात-चि.)। भावप्रकाशः।

विविध भाषाओं में नाम-

नील दूर्वा

स.- नील दूर्वा, भार्गवी, शत पर्णिका, शष्पा, हस्तवीर्या, शत वल्ली। हि.- हरी दूव, नीली दूव, राम घास। बं.- नील दूर्वा, दूर्वा। म.- हरली, नीली दूर्वा। गु.- नीलाघ्नो, लीलीघ्नो। क.- इसुगरूको। तै.- दुर्वावु यरिके गाड़ि, हरित दुर्वा। ता.- अरुगम पिल्लू। अं.- क्रीपिंग साईनोडान (Creeping Cynodan)। ले.- साइनोडेन डेकाटिलो (Cynodon Dactylon)

श्वेत दूर्वा

सं- श्वेत दूर्वा, शुल्का, गोलोमी, शत वीर्या। हि.- सफेद दूव, धोली दूव। बं.- सादा दूर्वा। म.- पांडरी, हरियाली, श्वेत इरली। गु.- घ्रो, लीलीघ्रो। क.- विलिप करुके। तै.- गरिकेगुडिडा, शुक्र दूर्वालु।

दूर्वा के भेद- १. नील दूर्वा २. श्वेत दूर्वा (गोलोमी) ३. गण्ड दूर्वा ४. माला दूर्वा।

नील दूर्वा की अन्वर्थज्ञापिका सं.- हरितम्, शतपर्वा। **श्वेत दूर्वा की अन्वर्थज्ञापिका सं.-** श्वेतकाण्डा, सितच्छदा, सुपर्वा, कच्छान्तरुहा, दुर्मरा। **माला दूर्वा की अन्वर्थज्ञापिका सं.-** ग्रन्थिला, रोहत्पर्वा। **गण्डदूर्वा की अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा-** सूचिपत्रा, श्यामकाण्डा, चित्रा।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- तीनों प्रकार की दूर्वा का गुण- तीनों प्रकार की दूर्वा (नील, श्वेत तथा गण्डदूर्वा) शीतल तथा कषाय रस है और यह रक्त, पित्त तथा कफ नाशक है। अनुपत्रा (सूक्ष्म पत्रा) दूर्वा कषाय रस तथा शीतल है और कफ एवं वात कारक है। अन्यत्र भी कहा गया है - दर्भ (कुशा), शर तथा नल ये तीनों दूर्वा त्रय के समान गुणवाले हैं। ये स्वादु, तिक्त तथा कषाय रस हैं और पित्त तथा कफ को दूर करने वाले हैं। ये दाह, प्यास, रक्त विकार तथा पित्त विकार को दूर करते हैं।

राजनिघण्दु के अनुसार- नील दूर्वा मधुर तथा तिक्त रस है और शीतल है एवं रुचिकारक है; रक्त पित्त तथा अतिसार का नाश करने वाली है एवं कफ, वात तथा ज्वर को दूर करनेवाली है। **श्वेत दूर्वा** अधिक शीतल तथा मधुर है और वमन एवं पित्त को जीत लेती है, आमातिसार तथा कास का नाश करने वाली है, रुचिकारक है, दाह तथा प्यास का नाश करती है। **वल्ली दूर्वा** (माला दूर्वा) मधुर, तिक्त रस तथा शीतल है। यह पित्त दोष को शान्त करती है, कफ विकार, वमन तथा प्यास को दूर करती है। **गण्डदूर्वा** मधुर है तथा वात, पित्त एवं ज्वर का नाश करती है। यह शीतल है, द्वन्द्व दोषों का नाश करती है और भ्रम, प्यास और श्रम (थकावट) को दूर करती है। **साधारण दूर्वा के गुण-** सामान्यतः साधारण दूर्वा कषाय मधुर रस तथा शीतल है। यह पित्त विकार, प्यास, अरोचक तथा वमन का नाश करती है, दाह, मूर्च्छा, ग्रहबाधा एवं भूतबाधा को शान्त करती है, कफ विकार का नाश करती है।

भावप्रकाश के अनुसार- नीलदूर्वा शीतल, तिक्त रस, मधुर तथा कषाय रस है और कफ विकार, पित्त विकार, रक्त पित्त, विसर्प, प्यास, दाह तथा त्वचा विकार को नष्ट करती है। श्वेत दूर्वा कषाय रस, स्वादिष्ट, बलकारक, जीवनप्रद, तिक्त रस तथा शीतल है और विसर्प, रक्त विकार, प्यास, पित्त विकार, कफ विकार एवं

दाह को दूर करती है। **गण्डदूर्वा** शीतल है तथा लौह को द्रवित करने वाली है, ग्राही है, लघु है, तिक्तरस, कषाय रस तथा मधुर रस है और वात कारक है एवं पाक में कटु है। यह दाह, प्यास, कफ विकार, रक्त विकार, कुष्ठ रोग, पित्त विकार तथा ज्वर को दूर करती है।

राजवल्लभ के अनुसार- दूर्वा रक्त पित्त नाशक है, कण्डू तथा त्वचा रोग को दूर करती है।

वैद्यकशास्त्र में दूर्वा का प्रयोग-

१. **नासिका से रक्त निकलने पर दूर्वा के रस का प्रयोग** - दूर्वा स्वरस का नस्य देने से नासिका से रक्त निकलना बन्द होता है (च.चि.अ. ५)। २. **विसर्प में दूर्वा का प्रयोग** - दूर्वा के स्वरस के साथ सिद्ध घृत विसर्प के व्रण का रोपण करता है (च.चि.अ. ११)।

रक्त पित्त में दूर्वा का प्रयोग- रक्त पित्त रोग में दूर्वा तथा वट के पल्लव के रस का मधु मिलाकर प्रयोग करे (सु.सू. अ. ४५)।

१. **कच्छू आदि रोग में दूर्वा का प्रयोग**- चौगुने दूर्वा के रस के साथ तैल पाक विधि के अनुसार तैल पाक करे। यह अभ्यङ्ग मात्र से कच्छू, विचर्चिक तथा पामा आदि शान्त होते हैं (चक्र. कुष्ठ चि.)। २. **आर्तवलाभ के लिए दूर्वा स्वरस का प्रयोग**- स्त्री दूर्वा को पीस कर तथा उसके कल्क को खाकर आर्तवलाभ करती है (चक्र.योनि व्याधि चि.)।

मूत्राघात में- श्वेत दूर्वा के मूल एक पल (५० ग्राम) लेकर साफ करे तथ सुखा कर उसमें मधु तथा मिश्री मिलाकर पान करे। यह मूत्राघात को दूर करता है। (भाव प्रकाश, मूलाघात चि.)

Actions and uses—Demulcent, astringent and acid; used in checking vomiting. As a diuretic it is given in dysuria and as an astringent epistaxis and to stop bleeding from wounds. It is used as a substitute for triticum repens. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory, Part II., page 640).

देवदारु

Pinus Deodara

देवदारु, सुराह्वम् स्निग्धदारु–Pinus Deodara, Roxb. Cedrus Libani, Barrel. **'तद्भेदौ'– स्निग्धदारु, काष्ठदारु च। देवदारु रसे तिक्तं स्निग्धोष्णं श्लेष्मवातजित्। आमदोषविबन्धाऽऽध्म-प्रमेहविनिवर्त्तकम्॥ देवदार्वनिलं हन्ति स्निग्धोष्णं श्लेष्मपाकतः। धन्वन्तरीयनिघण्टुः। 'देवकाष्ठन्तु' तिक्तोष्णरूक्षं श्लेष्मानिलापहम्। भूतदोषापहं धत्ते लिप्तमङ्गेषु कालिकम्॥ 'तैलगुणाः'–तीक्ष्णं कट्वस्त्रपित्तजित्। अर्शःशुक्रकृमिश्लेष्मकुष्ठमेदोऽनिलापहम्॥ राजनिघण्टुः॥ देवदारु लघु स्निग्धं तिक्तोष्णं कटुपाकि च। विबन्धाऽऽध्मानशोथामतन्द्राहिक्काज्वरास्त्रजित्॥ प्रमेहपीनसश्लेष्म-कासकण्डूसमीरणुत्। भावप्रकाशः॥... सरलदेवदारु... 'स्नेहा'स्तिक्ता कटुकषाया दुष्टव्रणशोधनाः क्रिमिकफकुष्ठानिलहराश्च। सुश्रुतः॥**

वैद्यके व्यवहारः–'हिक्काश्वासयोः' देवदारु–"...क्वाथमथवा देवदारुणः" (चि. २१ अ.)। चरकः॥ (१) 'ज्वरे' देवदारु–"...देवदारुणि। कषायं विधिवत्कृत्वा पेयमेतज्ज्वरापहम्।" (उ. ३९

अ.)। (२) 'शोथे' देवदारु–"देवदारुशुण्ठीं वा मूत्रेण" (चि. २३ अ.)। सुश्रुतः॥ 'कफकासे' देवदारु-स्नेहः–"कफकासी पिबेदादौ सुरकाष्ठात् प्रदीपितात्। स्नेहं परिस्त्रुतं व्योषयवक्षारावचूर्णितम्।" (चि. ३ अ.)। वाग्भटः॥ 'वातव्रणे' सुरदारु–"सुरदारु तथा शुण्ठी लेपो वातव्रणे हितः" (चि. ३५ अ.)। हारीतः॥ 'श्लीपदे' देवदारु–"हितश्चालेपने नित्यं चित्रको देवदारु वा... मुखोष्णो मूत्रपेषितः।" (श्लीपद–चि.)। चक्रदत्तः॥ 'हृद्गते वाते' देवदारु देवदारुसमायुक्तं नागरं परिपेषितम्। हृद्वातवेदनायुक्तः पीत्वा सुखमवाप्नुयात्।" (वातव्याधि–चि.)। भावप्रकाशः॥ (१) 'कफजगण्डमालायां' देवदारु- "देवदारु विशाला च कफगण्डे प्रलेपनम्" (गलगण्ड–चि.। (२) 'श्लीपदे' देवदारु– "...देवदारु च। पिबेत् सर्षपतैलेन श्लीपदानां निवृत्तये।" (श्लीपद–चि.)। वङ्गसेनः॥

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- देवदारु, भद्रदारु - इन्द्रदारु, भातदारु, द्रुकिलिभं, सुरभूरुहः। हि.- देवदार, देवदारु। ते.- देवदारुचेक, देवदारिचेट्टु। म.- तेल्यादेवदारु। गु.- देवदारु, वोसियों देवदारु। फा.- देवदार। अ.- शुजर तुलजीन। अं.- हिमालयानसीडर (Himalayan Ceder), देवदार (Deodar)। ले.- Pinus Deodara.

देवदारु के भेद - स्निग्धदारु, काष्ठदारु।

गुण-दोष-

धन्वन्तरीयनिघण्टु के अनुसार- देवदारु रस में तिक्त, स्निग्ध तथा उष्ण है और कफ एवं वात विकार को नष्ट करता है। यह आम दोष, विबन्ध, आध्मान तथा प्रमेह को दूर करता है। देवदारु श्लेष्म पाकी होने से स्निग्ध तथा उष्ण है और यह वात रोग को नष्ट करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- देवकाष्ठ तिक्त रस, उष्ण तथा रूक्ष है और यह कफ विकार तथा वात विकार को दूर करता है। इसके कल्क का अंगों में लेप करने से भूत बाधा को दूर करता है। **देवदारु का तैल** तीक्ष्ण है, कटु रस है तथा रक्त पित्त को दूर करता है। यह अर्श रोग, शुक्रविकार, क्रिमिदोष, कफ विकार, कुष्ठ रोग, मेदो रोग तथा वात रोग को दूर करता है।

भाव प्रकाश के अनुसार- देव दारु लघु, स्निग्ध, तिक्त रस, उष्ण तथा कटु पाकी है। यह विबन्ध, आध्मान, शोथ, आम विकार, तन्द्रा, हिक्का, ज्वर तथा रक्त विकार को जीत लेता है। इनके अतिरिक्त प्रमेह, पीनस रोग, कफ विकार, कास, कण्डू तथा वात रोग को दूर करता है।

सुश्रुत के अनुसार- सरल देव दारु का तैल तिक्त रस, कटु रस तथा कषाय रस है और दुष्ट व्रण को शुद्ध करता है; क्रिमि रोग, कुष्ठ रोग, कफ विकार तथा वात विकार को दूर करता है।

वैद्यकशास्त्र में देवदारु का प्रयोग-

हिक्का तथा श्वास रोग में देव दारु का प्रयोग- हिक्का तथा श्वास रोग में देवदारु का क्वाथ पान करे (च.चि.अ. २१)।

१. ज्वर में देव दारु का प्रयोग- देवदारु का विधिवत् क्वाथ बना कर ज्वर रोग में पान कराये। यह क्वाथ ज्वर को दूर करता है (सू.उ.अ. ३९)। **२. शोथ में देवदारु का प्रयोग**- शोथ रोग में देव दारु तथा सोंठ का चूर्ण गोमूत्र के साथ पान करे (सु.चि.अ. २३)।

कफज कास में देव दारु स्नेह का प्रयोग- देव दारु को प्रतप्त करने से निकले हुए स्नेह में व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) चूर्ण तथा यवक्षार चूर्ण मिलाकर कफज कास में पान कराये (वाग्भट चि. अ. ३)।

वातव्रण में देव दारु का प्रयोग- वातव्रण में देव दारु तथा सोंठ का लेप करे (हारीत चि.अ.३५)।

श्लीपद में देव दारु का प्रयोग- चित्रक तथा देव दारु को गोमूत्र के साथ पीस कर तथा थोड़ा गरम कर प्रति लेप करना श्लीपद रोग में हितकर है (चक्र.श्लीपद चि.)।

हृदयगत वात रोग में देव दारु का प्रयोग- देव दारु तथा सोंठ को पीस कर पान करने से हृदयगत वातजन्य वेदना को शान्त करता है (भावप्रकाश वात व्याधि चि.)।

१. **कफज गण्डमाला में देव दारु का प्रयोग-** देवदारु तथ इन्द्रायन का लेप कफज गण्डमाला में लेप करे (वंगसेन गण्डमाला चि.)। २. **श्लीपद में देव दारु का प्रयोग-** देवदारु का चूर्ण या क्वाथ सरसों के तैल के साथ श्लीपद (पीलपाव) की निवृत्ति के लिए पान करे (वंगसेन श्लीपद चि.)।

Constituents—An acid resin. **Actions and uses**—The wood is carminative, diaphoretic and diuretic; given in fever, flatulence, drospy and urinary diseases as gravel. In ascites it is given in combination with shegata chhala and aghado. In gonorrhoea, syphilis, gout and rheumatism, the decoction (Devdari Kvātha) is given as a powerful alterative. With halada and gugala its paste is applied to indolent swellings. The tar is used as a favourite alterative and given in chronic skin diseases and in large doses, given in leprosy and also applied externally to ulcers. (R.N. Khory, Part II., p. 578).

द्राक्षा
Vitis Vinifera

द्राक्षा—Vitis Vinifera, Linn.

तद्भेदाः—(१) द्राक्षा—Grapes, **पक्वशुष्का द्राक्षा**—Sultanas, Raisins **(२) कपिलद्राक्षा**—Black large grape. **(३) क्षुद्रद्राक्षा, निर्बीजा**—Muscateles, **(४) गोस्तनी, मृद्वीका**—Raisins (Munakka). **अन्वर्थसंज्ञाः 'द्राक्षायाः'— "गुच्छफला", "चारुफला", "तापसप्रिया", "रसाला", "काश्मीरिका"। 'कपिलद्राक्षायाः'—उत्पत्तिबोधिका— "उत्तरापथिका"। 'द्राक्षा' हृद्यरसा स्वर्या मधुरा स्निग्धशीतला। रक्तपित्तज्वरश्वासतृष्णादाहक्षयापहा॥ 'मृद्वीका' मधुरा स्निग्धा शीता वृष्या तु लोमनी। रक्तानिलश्वासकासभ्रमतृष्णाज्वरापहा॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः। 'द्राक्षा'तिमधुराम्ला च शीता पित्तार्त्तिदाहजित्। मूत्र-दोषहरा रुच्या वृष्या सन्तर्पणी परा॥ 'गोस्तनी' मधुरा शीता हृद्या च मदहर्षिणी। दाहमूर्च्छाज्वरश्वासतृषाहृल्लासनाशिनी॥ शिशिरा श्वासहृल्लासनाशिनी जनवल्लभा। द्राक्षाविशेषगुणाः—द्राक्षा 'बालफलं' कटूष्णविषदं पित्तास्त्र-दोषप्रदम् 'मध्यं' चाम्लरसं 'रसान्तरगते' रुच्यातिवह्निप्रदम्। 'पक्वं' चेन्मधुरं तथाम्लसहितं तृष्णास्त्रपित्तापहं पक्वं 'शुष्कतमं' श्रमार्त्तिशमनं सन्तर्पणं पुष्टिदम्॥ अपरञ्च—शीता पित्तास्त्रदोषं शमयति मधुरा 'स्निग्धपाका'तिरुच्या। चक्षुष्या श्वासकासश्रमवमिशमनी शोफतृष्णाज्वरघ्नी। दाहाध्मानश्रमादीनपनयति परा तर्पणी 'पक्वशुष्का'। द्राक्षा सुक्षीणवीर्य्यानपि मदनकलाकेलिदक्षान् विधत्ते॥ राजनिघण्टुः॥ द्राक्षा 'पक्वा' सरा शीता**

चक्षुष्या वृंहणी गुरुः। स्वादुपाकरसा स्वर्य्या तुवरा सृष्टमूत्रविट्॥ कोष्ठमारुतवद्वृष्या कफपुष्टिरुचिप्रदा। हन्ति तृष्णाज्वरश्वासवातपित्तास्रकामलाः॥ कृच्छ्रास्रपित्तसंमेहदाहशोषमदात्ययान्। 'आमा' स्वल्पगुणा गुर्वी सैवाम्ला रक्तपित्तकृत्॥ वृष्या स्याद् 'गोस्तनी' द्राक्षा गुर्वा च कफपित्तनुत्। 'अबीजा'ऽन्या स्वल्पतरा गोस्तनी सदृशी गणैः॥ द्राक्षा 'पर्वतजा' यादृक् तादृशो करमर्द्दिका। भावप्रकाशः॥ द्राक्षा तु मधुरा स्निग्धा वृष्या शीतानुलोमनी। बल्या वृष्या क्षतक्षीणतृषा-वातास्रपित्तजित्॥ राजवल्लभः॥ तृष्णादाहज्वर-श्वासरक्तपित्तक्षतक्षयान्। वातपित्तमुदावर्त्ते स्वरभेदं मदात्ययम्॥ तिक्तास्यता-मास्यशोषं कासञ्चाशु व्यपोहति। मृद्वीका वृंहणी वृष्या मधुरस्निग्धशीतला॥ चरकः—फ. व.। तेषां द्राक्षा सरः स्वर्या मधुरा स्निग्धशीतला। रक्तपित्तज्वरश्वासतृष्णादाहक्षयापहा॥ सुश्रुतः।

वैद्यके व्यवहारः—'मूत्ररोधज उदावर्त्ते' द्राक्षा—"...द्राक्षारसमथापि वा।" (उ. ५५ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) 'मदात्ययस्य पिपासायां' द्राक्षा—"तृष्यते चातिबलवद्वातपित्ते समुद्धते। दद्याद्द्राक्षारसं पानं शीतं दोषानुलोमनम्॥" (चि. ७ अ.)। (२) 'मूत्रकृच्छ्रे' द्राक्षा—"तोयेन कल्कं द्राक्षायाः पिबेत् पर्युषितेन वा" (चि. ११ अ.)। वाग्भटः॥ 'रक्तपित्ते' द्राक्षा— "पुराणसर्पिषः प्रस्थो द्राक्षार्द्धप्रस्थसाधितः। कामलागुल्मपाण्ड्वर्त्तिज्वर-मेहोदरापहः। (रक्तपित्त-चि.)। चक्रदत्तः।

द्राक्षा (Vitis vinifera Linn.)

द्राक्षा के भेद - १. द्राक्षा, Grapes, पक्वशुष्का द्राक्षा (Sultanas raisins) २. कपिल द्राक्षा (Black Iarge grape) ३. क्षुद्रद्राक्षा, निर्बीजा (Muscateles) ४. गोस्तनी, मृद्वीका (Raisins munakka)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- द्राक्षा, मधुरसा, मृद्वीका, गोस्तनी। हि.- दाख, मुनक्का, किसमिस, अंगूर, कालीदाख, मूरीदाख। बं.- वेदाना, मनेक्का। म.- वदोख्या। गु.- धराख द्राक्ष। क.- वडेगण द्राक्षे, चिकु द्राक्षे। ता.- कोडिमण्डी। ते.- द्राक्षापण्डु। फा.- अङ्गूर, मुनक्का, दानेनबीज। अ.- इबुस सजीव, एनब्नवीव। अं.- ग्रेप्स (Grapes), राइसिन्स (Raisins)। ले.- विटिस विनिफेरा (Vitis vinifera)।

अन्वर्थज्ञापिका सं.- द्राक्षा - गुच्छफला, चारुफला, तापसप्रिया, रसाला, कश्मिरिका, कपिल द्राक्षा। **उत्पत्ति संज्ञा**- उत्तरापथिका।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीयनिघण्टु के अनुसार- मुनक्का का रस हृदय को बल देनेवाला है, स्वर वर्द्धक है, मधुर, स्निग्ध है तथा शीतल है। यह रक्त पित्त, ज्वर, श्वास, प्यास, दाह तथा क्षय रोग को दूर करती है। **मृद्वीका** - मधुर, स्निग्ध तथा शीतल है और वीर्यवर्द्धक एवं वातानुलोमक है। यह वात रक्त, श्वास, कास, भ्रम, प्यास तथा ज्वर को दूर करती है।

राजनिघण्टु के अनुसार- द्राक्षा (मुनक्का) अत्यन्त मधुर अम्लरस तथा शीतल है और पैत्तिक पीड़ा एवं दाह को दूर करती है। मूत्र विकार को दूर करनेवाली है, रुचिकारक है, वीर्य वर्द्धक है तथा उत्तम तृप्ति कारक है। **गोस्तनी**- गोस्तनी नामक मुनक्का मधुर तथा शीतल है और हृदय को बल देनेवाली एवं मद को बढ़ाने-वाली है। यह दाह, मूर्च्छा, ज्वर, श्वास, प्यास तथा उबकाई का नाश करनेवाली है और मनुष्यों के लिए प्रिय है।

द्राक्षा के विशेष गुण- द्राक्षा का बालफल कटु, उष्ण तथा विषद है और रक्त पित्त को बढ़ानेवाला है। द्राक्षा मध्य फल अम्ल रस है तथा दूसरे रस में परिवर्तित होने पर रुचिकारक होता है तथा जाठराग्नि वर्द्धक होता है। पका हुआ द्राक्षा मधुर होता है उसमें अम्लीयता रहती है और यह प्यास तथा रक्तपित्त को दूर करती है। परिपक्व शुष्क मुनक्का श्रम तथा पीड़ा को शान्त करती है तथा तृप्तिकारक एवं पुष्टिकारक है। और भी इसके गुण हैं - शीतल द्राक्षा रक्तपित्त को शान्त करती है, मधुर है, स्निग्धपाकी है तथा अतिरुचिप्रद है, नेत्र के लिए हितकर है तथा श्वास, कास, श्रम एवं वमन को शान्त करती है और शोथ, प्यास तथा ज्वर का नाश करती है। यह दाह, आध्मान, श्रम आदि का अच्छी तरह नाश करती है तथा तृप्ति कारक है। पककर सुखी हुई द्राक्षा क्षीण वीर्यवालों को भी सम्भोग काल में सक्षम बनाती है।

भावप्रकाश के अनुसार- पकी हुई द्राक्षा दस्तावर, शीतल, नेत्र के लिए हितकर तथा बल वर्द्धक एवं गुरु है, पाक में स्वादुरस, स्वरवर्द्धक तथा कषैला है और मलमूत्र को निकालनेवाला है, कोष्ठगत वात को बढ़ानेवाला, वीर्यवर्द्धक, कफ पुष्टिकारक तथा रुचि कारक है। यह प्यास, ज्वर, श्वास, वातरक्त तथा कामला रोग का नाश करती है; इसके अतिरिक्त कृच्छ्र, रक्तपित्त, प्रमेह, दाह, शोथ तथा मदात्यय रोगों को नष्ट करती है। कच्ची द्राक्षा थोड़े गुणवाली है, भारी है। वही अम्ल द्राक्षा रक्तपित्त बढ़ानेवाली है। गोस्तनी वीर्य वर्द्धक है, स्वादिष्ट है, भारी है तथा कफ पित्त नाशक है। बीज रहित मुनक्का छोटी गोस्तनी के गुण के सदृश गुणवाली है। पर्वत पर उत्पन्न द्राक्षा करमर्दिक के गुणसदृश गुणवाली है।

राजबल्लभ के अनुसार - द्राक्षा मधुर, स्निग्ध तथा वीर्य वर्द्धक है, शीतल है और वातानुलोमक है, वातवर्द्धक तथा वीर्यवर्द्धक है तथा क्षतक्षीण रोग, प्यास, वातरक्त तथा पित्त को दूर करती है।

चरक के अनुसार- द्राक्षा प्यास, दाह, ज्वर, श्वास, रक्तपित्त, क्षतरोग, वात, पित्त रोग, उदावर्त, स्वर भेद, मदात्यय रोग, मुख का तीतापन, मुख शोष तथा कासरोग को शीघ्र ही दूर करती है। मृद्वीका बल वर्द्धक है, वीर्य वर्द्धक है, मधुर तथा शीतल है।

सुश्रुत के अनुसार- द्राक्षा दस्तावर, स्वर वर्द्धक, मधुर तथा शीतल है। यह रक्तपित्त, ज्वर, श्वास, प्यास, दाह तथा क्षय रोग को दूर करती है।

वैद्यक शास्त्र में द्राक्षा का प्रयोग-

मूत्ररोधन उदावर्त में द्राक्षा का प्रयोग- मूत्रावरोधजन्य उदावर्त में द्राक्षा के रस का प्रयोग करे। (सु. उ.अ. ५५)।

१. मदात्यय जन्य पिपासा में द्राक्षा का प्रयोग- प्रबल वातपित्त रोग में अधिक प्यास लगने पर मुनक्का का शीतल रस दे। यह दोषों का अनुलोमन करता है। (वाग्भट चि. अ. ११)। **२. मूत्रकृच्छ्र में द्राक्षा का प्रयोग**- मुनक्का को जल के साथ पीसकर कल्क बनाकर तथा पर्युषितकर पान कराये (वाग्भट चि. अ. ११)।

रक्त पित्त में द्राक्षा का प्रयोग - पुराना घी एक प्रस्थ (१ किलो) को मुनक्का रस आधा प्रस्थ (५०० ग्राम) में सिद्ध करे। यह सेवन करने से कामला रोग, गुल्मरोग, पाण्डुरोग, पीड़ा, ज्वर, प्रमेह तथा उदररोग को दूर करता है। (चक्र. रक्त पित्त चि.)

Constituents— The pulp contains grape sugar, cream of tartar, gum and malic acid. The seeds contain a bland fixed oil and tannic acid; skin of the fruit contains tannic acid. **Actions and uses—**Skin and stones from the grapes should be removed before use. Raisins are refrigerant,

demulcent, cooling and also aperient, generally used to sweeten medicinal preparations and given to relieve thirst in fever and inflammatory affections and in constipation. The leaves are astringent and used in diarrhoea. The ashes of the wood are used as prophylactic against stone and in uric acid diathesis. The natives apply the paste of the ashes to swellings of testicles and to piles. Black raisin is generally used as an ingredient in purgative mixtures. Kishamis is used also as an ingredient of several confections (R. N. Khory, Part II., p. 137).

द्रोणपुष्पी

द्रोणपुष्पी, कुतुम्बा, कुम्भयोनिः–L. Zeylanica, Br. Leucas Linifolia, Spreng. L. Aspera, Spreng. **महाद्रोणा, देवद्रोणी**–Leucas Cephalotes, Spreng.

अन्वर्थसंज्ञा–'द्रोणपुष्प्याः–"क्षवपत्री", "छत्रका", "फलेपुष्पा", "दीर्घपत्रा", "चित्राक्षुपः", "सुपुष्पा", "चित्रपत्रिका"। महाद्रोणायाः– "दिव्यपुष्पी"। द्रोणपुष्पी कटुः सोष्णा रुच्या वातकफापहा। अग्निमान्द्यहरा चैव पथ्या वातापहारिणी॥ 'देवद्रोणी' कटुस्तिक्ता मेध्या वातार्त्तिभूतनुत्। कफमान्द्यापहा चैव युक्त्या पारदशोधनी॥ राजनिघण्टुः॥ द्रोणपुष्पी गुरुः स्वादू रूक्षोष्णा वातपित्तकृत्। सतीक्ष्णलवणस्वादुपाका कट्वी च भेदिनी॥ कफामकामला-शोथतमकश्वासजन्तुजित्॥ द्रोणपुष्पी 'दलं' स्वादु रूक्षं गुरु च पित्तकृत्। भेदनं कामलाशोथमेहज्वरहरं कटु॥ भावप्रकाशः॥ द्रोणपुष्पी कफार्शोघ्नी कामलाक्रिमिशोथजित्। राजवल्लभः॥ द्रोणपुष्पी कटुः सोष्णा रुच्या वातकफापहा। अग्निमान्द्यहरा चैव पक्षाघातस्य नाशिनी॥ शोढलनिघण्टुः।

वैद्यके व्यवहारः– (१) 'विषमज्वरे' द्रोणपुष्पीरसः–"द्रोणपुष्पीरसो वापि निहन्ति विषमज्वरान्" (ज्वर–चि.)। (२) 'कामलायां' द्रोणपुष्पीरसः–"अञ्जने कामलार्त्तानां द्रोणपुष्पीरसो हितः" (कामला–चि.)। भावप्रकाशः।

द्रोणपुष्पी, कुतुम्बा, कुम्भयोनि L. Zeylanica, Br. Leucas Linifolia, Spreng, L. Aspera, Spreng. महाद्रोणा, देवद्रोणी- Leucas Cephalotes, Spreng.

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- द्रोणा, द्रोषपुष्पी, फलेपुष्पा। हि.- गूमा, गोम दणइली, मेढ़ापाती। बं.- धल धसिया, हलकषा, खस खस। म.- कुम्भा, मूढ़ापाती। गु.- कुक, कुवी। क.- तुम्ब। ते.- लसुल तुम्बि। ले.- ल्यूकस लीनीफोलिया (Leucas linifolia)।

द्रोणपुष्पी की अन्वर्थज्ञापिका सं.- द्रोणपुष्पी, क्षवपत्री, छत्रका फलेपुष्पो, दीर्घपत्रा, चित्राक्षुप, सुपुष्पा, चित्रपत्रिका। **महाद्रोणा**- दिव्यपुष्पी।

गुण एवं दोष-

राजनिघण्टु के अनुसार- द्रोणपुष्पी कटुरस तथा उष्ण है और रुचिकारक तथा वात-कफ नाशक है। यह अग्निमांद्य को दूर करती है, पथ्य है तथा वात रोग को दूर करनेवाली है। देवद्रोणी कटुरस तथा तिक्तरस है, मेध्य है तथा वातपीड़ा एवं भूतबाधा को दूर करती है, कफज मन्दाग्नि को दूर करती है तथा युक्ति से पारद को शुद्ध करती है।

भावप्रकाश के अनुसार - द्रोणपुष्पी गुरु, स्वादिष्ट, रूक्ष तथा उष्ण है और यह वात-पित्त को उत्पन्न करती है। यह तीक्ष्ण वीर्य है, लवणरस है, स्वादिष्ट है तथा पाक में कटु है एवं मलभेदक है। यह कामला कफविकार, आम विकार, कामला रोग, शोथ, तमक, श्वास तथा क्रिमिविकार को दूर करती है। द्रोण पुष्पी का पत्र स्वादिष्ट, रूक्ष तथा गुरु है और पित्त कारक है। यह मलभेदक है तथा कामलारोग, शोथ, प्रमेह एवं ज्वर को दूर करती है और कटुरस है।

राज वल्लभ के अनुसार- द्रोण पुष्पी कफ विकार तथा अर्श रोग का नाश करती है और कामलारोग, शोथ तथा क्रिमीरोग को दूर करती है।

शोढल निघण्टु के अनुसार - द्रोण पुष्पी कटुरस, उष्ण तथा रुचिकर है और वात एवं कफ विकार को दूर करती है। यह अग्निमांद्यहर है तथा पक्षाघात का नाश करती है।

वैद्यक शास्त्र में द्रोण पुष्पी का प्रयोग -

१. विषमज्वर में द्रोणपुष्पी के रस का प्रयोग - द्रोण पुष्पी का स्वरस सेवन करने से विषम ज्वर का नाश होता है। (भाव. ज्वर चि.)। **२. कामला में द्रोणपुष्पी रस का प्रयोग** - कामलारोग से पीड़ित के नेत्र में द्रोण पुष्पी के रस का अञ्जन करना हितकर है। (भाव-कामला चि.)

Constituents—A small quantity of essential oil and an alkaloid. **Actions and uses**—Stimulant, expectorant and aperient; given in jaundice, cough, nasal and intestinal catarrh. It is also externally applied in skin eruptions. (R. N. Khory, Part II., p. 585).

धातकी

Woodfordia floribunda

धातकी। Woodfordia floribunda, Salisb. Lythrum fructicosum, Roxb. Grislea tomentosa, Willd.

उत्पत्तिज्ञापिका संज्ञा–"पार्वती"। 'परिचयज्ञापिका संज्ञा'– "ताम्रपुष्पी", "बहुपुष्पिका"। धातकी कटुकोष्णा च मदकृद्विषनाशिनी। अतिसारहरा गर्भस्थापनी क्रिमिरक्तनुत्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ धातकी कटुरुष्णाच मदकृद्विषनाशिनी। प्रवाहिकातिसारघ्नी विसर्पव्रणनाशनी॥ राजनिघण्टुः॥ धातकी कटुका शीता मदकृत्तुवरा लघुः। तृष्णातिसारपित्तास्त्रविषक्रिमिविसर्पनुत्॥ भावप्रकाशः॥ धातकीकुसुमं शीतं रक्तपित्तातिसारजित्। राजवल्लभः।

वैद्यके व्यवहारः–'कुष्ठे' धातकी–"लोध्रस्य धातकीनां...। कल्कं... कुष्ठेषूद्वर्त्तनालेपः"। (चि. ७ अ.)। चरकः॥ (१) 'व्रणरोपणे' धातकी– "धातकीचूर्णलोध्रैर्वा तथा रोहन्ति ते व्रणाः" (व्रणशोथ–चि.)। (२) 'असृग्दरे' धातकी–"धातक्याश्चाक्षमात्रं वा" (असृग्दर–चि.)। चक्रदत्तः॥ 'प्रवाहिकायां' धातकी–"धातकीवदरीपत्रं...। ...एकतो दध्ना पिबेत् प्रवाहिकार्दितः।" (म. ख. १ म. भा.)। भावप्रकाशः॥ 'ज्वरातिसारे' धातकी–"धातकीक्वाथसंसिद्धा विश्वभेषजसंस्कृता। दाडिमाम्लयुता पेया ज्वरातिसारशूलिनाम्॥" (ज्वरातिसार–चि.) वङ्गसेनः।

धातकी Woodfordia floribunda, Salisb. Lythrum fructicosum, Roxb. Grislea tomentosa, willd.

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- धातकी, धातुपुष्पी, वह्निज्वाला। हि.- धाय के फूल, धातकी, धवई, धाओआ, धावा, धाय बधाई फूल। म.- धायटी, धायटी फूल। गु.- धावणी, धावणीना फूल। क.- धायि, धायिफूल। ते.- धातकी पुद्दु। ले.- उडफोर्डिया फ्लोरीवण्डा (Woodfordia floribunda)। अं.- फायर फ्लेम बुश (Fire flame bush)।

धातकी की उत्पत्तिज्ञापिका सं.- पार्वती।

परिचय ज्ञापिका सं.- ताम्रपुष्पी, बहुपुष्पिका

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरी निघण्टु के अनुसार- धातकी (धाय के फूल) कटुरस तथा उष्ण है, यह मदकारक है तथा विषनाशक है। यह अतिसारनाशक, गर्भस्थापक तथा क्रिमिविकार एवं रक्तविकार को दूर करती है।

राजनिघण्टु के अनुसार- धातकी कटुरस तथा उष्ण है और यह मदकारक एवं विषनाशक है। यह प्रवाहिक तथा अतिसार का नाश करती है और विर्सप एवं व्रण का नाश करती है।

भावप्रकाश के अनुसार- धातकी कटुरस तथा शीतल है और मदकारक है, कषायरस है तथा लघु है। यह प्यास, अतिसार, रक्त पित्त, विष विकार, क्रिमिरोग तथा विसर्प का नाश करती है।

राजवल्लभ निघण्टु के अनुसार- धाय का फूल शीतल है तथा रक्तपित एवं अतिसार को दूर करता है।

वैद्यकशास्त्र में धातकी का प्रयोग-

कुष्ठरोग में धातकी का प्रयोग- धाय का फूल तथा लोध के कल्क का उद्वर्तन (उवटन) तथा लेप कुष्ठ रोग में करे। (च.चि.अ. ७)।

१. **व्रणरोपण में धातकी का प्रयोग**- धायका फूल तथा लोध का चूर्ण व्रण के ऊपर अवचूर्णन करने से व्रण का रोपण होता है। (चक्र. व्रणशोथाधिकार चि.) २. **असृग्दर में धातकी पुष्प का प्रयोग**- धायका फूल एक अक्ष (१० ग्राम) की मात्रा में स्त्रियों के प्रदररोग में दे। (चक्र. असृग्दर चि.)

प्रवाहिका में धाय के फूल का प्रयोग- धायका फूल तथा वैर के पत्तों का चूर्ण एक साथ मिला कर दही के साथ पान करे। यह प्रवाहिका में हितकर है। (भाव म.ख. १ म.भा.)

ज्वरातिसार में धाय का प्रयोग- धाय के क्वाथ के साथ सिद्ध सोंठ के चूर्ण को अनार के अम्ल रस के साथ मिलाकर पेया तैयार करे और उसको ज्वरातिसार तथा शूल के रोगी को दे। (बंगसेन ज्वर चि.)

Constituents—Tannin 20 p.c. **Actions and uses**—Stimulant and astringent given in dysentery beaten up with honey; also in checking haemorrhages, and chronic discharges, such as menorrhagia and leucorrhoea. The powder of flowers is sprinkled over vesicular eruptions and foul ulcers to diminish the discharges and promote granulations. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory—II., p. 279).

धान्यकम्

Coriandrum Sativum

कुस्तुम्बुरुः, धान्यकम्। Coriandrum Sativum.

परिचयज्ञापिका संज्ञा– "सूक्ष्मपत्रम्", "शाकयोग्यम्" 'गुणप्रकाशिका संज्ञा– "सुगन्धि"। आर्द्रा कुस्तुम्बुरुः कुर्यात् स्वादुः सौगन्ध्यहृद्यताम्। सा शुष्का मधुरा पाके स्निग्धा तृड्दाहनाशिनी॥ धान्यकं कासतृट्छर्दिज्वरहृच्चक्षुषो हितम्। कषायं तिक्तमधुरं हृद्यं रोचनदीपनम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ धान्यकं मधुरं शीतं कषायं पित्तनाशनम्। ज्वरकासतृषाछर्दिकफहारिं च दीपनम्॥ राजनिघण्टुः॥ धान्यकं तुवरं स्निग्धमवृष्यं मूत्रलं लघु। तिक्तं कटूष्णवीर्यञ्च दीपनं पाचनं स्मृतम्॥ ज्वरघ्नं रोचकं ग्राहि स्वादु पाके त्रिदोषनुत्। तृष्णादाहवमिश्वासकासामार्शःक्रिमिप्रणुत्॥ आर्द्रन्तु तद्गुणं स्वादु विशेषात् पित्तनाशनम्। भावप्रकाशः।

वैद्यके व्यवहारः–वातोल्बणेषु 'अर्शसु' धान्यकम्–"...शृतं नागर-धान्यकैः। अन्नपानं भिषग्दद्यात् वातवर्चोऽनुलोमनम्॥" (चि. ९ अ.)। चरकः॥ रोगोपसर्ग-जातायां 'तृष्णायां' धान्यकम्–"रोगोपसर्गजातायां धान्याम्बु ससितामधु। पाने प्रशस्तं...॥" (चि. ७ म.)। वाग्भटः॥ 'वातरक्ते' धान्यकम्–"धन्या कर्षञ्च जीरे द्वे गुडेन परिपाचितम्। भक्षणे वातरक्तानां दापयेद्दोषशान्तये॥" (चि. २४ अ.)। हारीतः॥ (१) 'अन्तर्दाहे' धान्यकम्–"व्युषितं धान्यकजलं प्रातःपीतं सशर्करं पुंसाम्। अन्तर्दाहं शमयत्यचिराद्दरप्ररूढमपि।" (पित्त-ज्वर–चि.)। (२) 'अतिसारे' धान्यकम्–"धान्योदीच्यशृतं तोयं तृष्णा-दाहातिसारनुत्।" (अतिसार–चि.) चक्रदत्तः॥ (१) 'पित्तातिसारे' धान्यकम्–"धान्यकल्केन संसिद्धं चतुर्गुणजले घृतम्। पित्तातिसारे सरुजं देयं दीपनपाचनम्।" (अतिसार–चि.)। (२) 'आमजीर्णे' शूले च धान्यकम्–"धान्यनागरसिद्धं वा तोयं दद्याद्विचक्षणः। आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं वस्तिशोधनम्।" (अजीर्णाधिकारे)। (३) शिशोः 'कासे श्वासे' च धान्यकम्–धान्यं शर्करया युक्तं तण्डुलोदकसंयुतम्। पानमेतत् प्रदातव्यं कासश्वासापहं शिशोः॥" (बालरोगाधिकारे) वङ्गसेनः।

कुस्तुम्बुरु - धान्यक (Coriandrum Sativum)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.– धान्यक, धानक, धाना, कुनटी, धेनुका, छत्रा, कुस्तुम्बुरु, वितुन्नकम्। हि.– धनिया। बं.– धने। म.– धने, कोथिवीर धणे। गु.– धाना, धाणा कोथमीर। ते.– कोथमिलु, धनियलु, धाणीपाणु कोचीमीरचेट्टु। ता.– काटेमल्ली, कातेमल्ली। फा.– तुख्मेक सीम, कुजवर, कश्नीज। अ.– कजबुरा कजबुरइ। अं.– कोरिएण्डर (Coriander)। ले.– कोरिआंड्रुम साटीवुम (Coriandrum sativum)।

परिचयज्ञापिका संज्ञा- सूक्ष्मपत्रम्, शाकयोग्यम्। **गुण प्रकाशिका संज्ञा-** सुगन्धि।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरी निघण्टु के अनुसार- आर्द्र कुस्तुम्बुरु (धनिया) स्वादिष्ट है, सुगन्धित है तथा हृदय को बल देनेवाली है। वही धनिया सुख जाने पर पाक में मधुर तथा स्निग्ध है और प्यास तथा दाह शान्त करती है। धनिया कास, प्यास, वमन तथा ज्वर को दूर करती है और नेत्र के लिए हितकर है। यह कषायरस, तिक्तरस तथा मधुर रस है और यह हृदय को बल देनेवाली तथा रोचक एवं दीपक है।

राजनिघण्टु के अनुसार- धनियां मधुर, शीतल तथा कषाय रस है और यह पित्त का नाश करती है। यह ज्वर, कास, प्यास, वमन तथा कफ को दूर करनेवाली है तथा जाठराग्नि दीपक है।

भावप्रकाश के अनुसार- धनिया कषाय रस तथा स्निग्ध है और यह वीर्य वर्द्धक नहीं है, मूत्रल है एवं लघु है। यह तिक्तरस तथा कटुरस है, उष्ण वीर्य है और जाठराग्नि दीपक एवं पाचक है। यह ज्वर नाशक है, रोचक है, ग्राही है तथा पाक स्वादिष्ट है एवं त्रिदोष नाशक है। यह प्यास, दाह, वमन, श्वास रोग, कास, आम विकार, अर्श रोग तथा क्रिमिरोग को दूर करती है। आर्द्र धनिया का भी यही गुण है। यह स्वादिष्ट होती है तथा पित्तनाशक है।

वैद्यकशास्त्र में धनिया का प्रयोग-

वातोल्बण अर्श रोग में धनिया का प्रयोग- सोंठ तथा धनिया के क्वाथ के साथ सिद्ध अन्नपान वातोल्बण अर्शरोग में प्रयोग करे। यह वातानुलोमक है। (च.चि.अ. ९)

रोगोपसर्ग जन्य प्यास में धनिया का प्रयोग- किसी रोग के संसर्ग से उत्पन्न प्यास में धनिया का रस मधु तथा मिश्री मिलाकर पान करायें। यह प्यास में प्रशस्त है। (वाग्भट चि. अ. ७)

वातरक्त में धनिया का प्रयोग- धनिया एक कर्ष (१० ग्राम) तथा जीरा दो कर्ष (२० ग्राम) लेकर गुड़ के साथ पकावे और दोषों की शान्ति के लिए वातरक्त के रोगी को दे। (हारीत चि. अ. २४)

१. **अन्तर्दाह में धनिया का प्रयोग**- धनिया का वासी रखा जल शक्कर मिलाकर प्रात:काल पान करने से पुरुषों के अधिक समय से जकड़ा हुआ अन्तर्दाह शान्त होता है। (चक्र. पित्तज्वर चि.) २. **अतिसार में धनिया का प्रयोग**- धनिया तथा सुगन्ध के क्वाथ का पान करने से प्यास, दाह तथा अतिसार रोग शान्त होता है। (चक्र. अतिसार चि.)

१. **पित्तातिसार में धनिया का प्रयोग**- धनियां के कल्क के साथ चौगुना जल मिलाकर विधिवत् सिद्ध किया हुआ घृत पीड़ा युक्त पित्तातिसार में प्रयोग करे। यह दीपन तथा पाचन है। (बंगसेन अतिसार चि.) २. **आमाजीर्ण जन्य शूल में धनिया का प्रयोग**- बुद्धिमान चिकित्सक धनिया तथा सोंठ के साथ पकाया जल प्रयोग करे यह आमाजीर्ण को शान्त करता है, शूलनाशक है तथा वस्तिशोधक है। (वंगसेन अजीर्णाधिकार) ३. **बच्चों के श्वास तथा कास में धनिया का प्रयोग**- धनिया का चूर्ण शक्कर मिलाकर चावल के धोअन के साथ पान कराये। यह बच्चों के श्वास तथा कास रोग को शान्त करता है। (वंगसेन बालरोगाधिकार)

Constituents—The fruits yield a volatile oil I p.c.; fixed oil 13 p.c. fatty matter 13 p.c.; mucilage tannin, malic acid and ash 5 p.c. (Materia Medica of India—R. N. Khory—II p. 283) **Actions and uses**—Aromatic stimulants. Carminative and stomachic; used in sore throat, dyspepsia, and Common catarrh, but chiefly as a flavouring agent and as a Corrective to griping medicines as jalap, rhubarb and Senna. With barley meal the leaves (kotha miri Hind,) form a useful application for indolent swellings. Dhana disguises the odour and taste of senna and of other purgatives. The oil is a carminative and aromatic, and is used in flatulent colic; also in rheumatism neuralgia. The fresh herb is called kothamiri and is used to flavour vegetables and curry. (Do)

धुस्तूरः

Datura Fastuosa

धुस्तू(स्तु)रः, धत्तू(स्तु)रः उन्मत्तः Datura Fastuosa. Var. Alba flowers white or cream

coloured; **कृष्णधुस्तूरः कनकः** Datura Fastuosa (flowers more or less purple) D. Stramonium, D. Tatula, var.

गुणप्रकाशिका संज्ञा–"महामोही" "खर्ज्जूघ्नः"। 'परिचयज्ञापिका संज्ञा–"कण्टफलः", "घण्टापुष्पः"। धत्तूरः कटुरुष्णश्च कान्तिकारी व्रणार्त्तिनुत्। कुष्ठानि हन्ति लेपेन प्रभावेन ज्वरं जयेत्॥ त्वग्दोषखर्जूकण्डूतिज्वरहारी भ्रमावहः। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ धत्तूरः कटुरुष्णश्च कान्तिकारी व्रणार्त्तिनुत्। त्वग्दोषखर्जूकण्डूतिज्वरहारी भ्रमप्रदः॥ राजनिघण्टुः॥ धुस्तरो मदवर्णाग्निवात-कृज्ज्वरकुष्ठनुत्। कषायो मधुरस्तिक्तो यूकलिक्षाविनाशकः॥ उष्णो गुरुर्व्रणश्लेष्मकण्डूक्रिमिविषापहः। भावप्रकाशः॥ धत्तूरो मदमूर्च्छाकृत् कफघ्नो वह्निपित्तकृत्। राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः–'अलर्कविषे' धत्तूरमूलम्–"श्वेतां पुनर्नवाञ्चास्य दद्याद्धत्तूरकायुतां" (क. ६ अ.)। सुश्रुतः॥ 'इन्द्रलुप्ते' धत्तूरपत्रम्– "...रसेन वा। धत्तूरकस्य पत्रानां..."। (उ. २४ अ.)। वाग्भटः॥ वात'नेत्रामये' धुस्तूरकमूलम्– "...मूलं धुस्तूरकस्य वा। अञ्जनञ्च हितं तेषां वातनेत्रामयापहम्॥" (चि. ४४ अ.। हारीतः। (१) 'स्तनीस्थितायां पीडायां' कनकदलम्– "निशाकनककल्काभ्यां लेपः प्रोक्तस्तनार्त्तिहा" (म. ख. ४ भा.)। (२) 'क्रिमिषु' धुस्तूरपत्रम्–"धुत्तूरपत्रजं वापि क्रिमिनाशन-मुत्तमम्।" (म. ख. २य भा.)। (३) विशिष्टद्रव्यभक्षणजे 'अजीर्णे' धुस्तूरबीजम्– "गोधूममाषहरिमन्थसतीनमुद्गपाको भवेज्झटिति मातुलपुत्रकेण"। (म. ख. २यः भा.)। (४) 'पाददार्याम्' धुस्तूरबीजम्– "उन्मत्तकस्य बीजेन मानकक्षारवारिणा। विपक्वं कटुतैलन्तु हन्याद्दारीं न संशयः॥" (म. ख. ४भा.)। भावप्रकाशः॥ (१) 'उन्मादे' श्वेतोन्मत्तः– "श्वेतोन्मत्तोत्तरदिङ्मूलसिद्धस्तु पायसः गुडाज्यसंयुतो हन्ति सर्वोन्मादांस्तु दोषजान्॥" (उन्माद–चि.)। (२) 'कर्णनाड्यां' धुस्तरपत्रम्– "निशागन्धपले पक्वं कटुतैलं पलाष्टकम्। धुस्तूरपत्रजरसे कर्णनाडी प्रशाम्यति॥" (कर्णरोग–चि.)। चक्रदत्तः॥ 'श्लीपदे' धुस्तूरः– "धत्तूरकस्य बीजानि पिप्पलीवर्द्धमानवत्। शीतोदकेन पीतानि श्लीपदं हन्ति दारुणम्॥" (श्लीपदाधिकारे)। वङ्गसेनः।

धुस्तूरः धुस्तुरः धत्तूरः उन्मतः– Datur Fastuosa. Var. Alba flowers white or cream coloured; कृष्णधुस्तूर कनक। Datura Fastuosa (flowers more or less purple) D. Stramonium, D. Tatula, Var.

विविध भाषाओं में नाम–

कृष्णधस्तूरः कनकः–

सं.– धतूरः, धूर्वः, धुस्तूरः, उन्मत्तः, कनकाह्वयः, महामोही, कितव, शिवप्रियः। हि.– धतूर, धतूरा। बं.– धतूरा। म.– धोना। गु.– धन्तुरो। तै.– उन्मते चाट्टु। ता.– कारुऊमते। फा.– तातूरह। अ.– ओजमासीला। अं.– थार्न एपुल (Thorn apple)। ले.– धतूरा मेटल (Datura metel. Linn.)।

धतूर की गुणप्रकाशिका संज्ञा– महामोही, खर्ज्जूघ्नः। **परिचयज्ञापिका संज्ञा–** कण्टफलः, घण्टापुष्पः।

गुण एवं दोष–

धन्वन्तरी निघण्टु के अनुसार– धतूर कटुरस तथा उष्ण है, क्रान्तिकारी है तथा व्रण की पीड़ा को दूर करती है। यह लेप करने से कुष्ठ रोग का नाश करती है तथा प्रभाव से ज्वर को जीत लेती है। यह त्वचा विकार खुजली, कण्डू तथा ज्वर को दूर करती है तथा भ्रमोत्पादक है।

राजनिघण्टु के अनुसार- धतूर कटुरस तथा उष्ण है, कान्तिकारी है तथा व्रण पीड़ा को दूर करती है। यह त्वचा विकार, खर्जू, कण्डू तथा ज्वर नाशक है और भ्रमकारक है।

भावप्रकाश के अनुसार- धतूर मदकारक, वर्णकारक, अग्निकारक तथा वात कारक है और ज्वर तथा कुष्ठरोग को दूर करती है। यह कषायरस, मधुररस तथा तिक्तरस है और जूका तथा लिक्षा (लीख) का नाश करती है। यह उष्ण है, गुरु है तथा व्रण, कफविकार, कण्डू, क्रिमिरोग एवं विष विकार को दूर करती है।

राजवल्लभ के अनुसार- धतूर मद तथा मूर्च्छा कारक है, कफ नाशक है, अग्नि तथा पित्तवर्द्धक है।

वैद्यक शास्त्र में धतूर का प्रयोग-

अलर्क विष में धतूर मूल का प्रयोग- अलर्क विष में सफेद पुनर्नवा तथा धतूर का मूल प्रयोग करे। (सु.क.अ. ६)।

इन्द्रलुप्त में धतूर पत्र का प्रयोग- इन्द्रलुप्त में धतूर के पत्ते का रस लेप के लिए प्रयोग करे। यह इन्द्रलुप्त रोग को नष्ट करता है। (वाग्भट उ. अ. २४)

वातज नेत्र रोग में धतूर मूल का प्रयोग- धतूर के मूल को पत्थर पर घिस कर अञ्जन करना वातज नेत्र रोग को नष्ट करता है। (हारीत चि. अ. ४४)

१. स्तन की पीड़ा के लिए धतूर के पत्ते का प्रयोग- हल्दी तथा धतूर के पत्ते का कल्क का लेप स्तन की पीड़ा का नाश करता है। (भाव. म. ख. अ. ४) २. **क्रिमि रोग में धतूर के पत्ते का प्रयोग**- धतूर के पत्ते का रस लेप करना क्रिमि रोग का नाश करता है। (भाव. म. ख. अ. २) ३. **विशेष द्रव्य के भक्षण करने से उत्पन्न अजीर्ण में धतूर बीज का प्रयोग**- किसी विशेष द्रव्य के खाने से उत्पन्न अजीर्ण में धतूर का बीज गेंहू, उड़द, चना, मटर तथा मूंग के साथ पकाकर उसका यूष मातुलुंग का रस या मट्ठा मिलाकर प्रयोग करे। (भाव. म. ख. अ. २) ४. **पाददारी में धतूर बीज का प्रयोग**- धतूर का बीज तथा मानक (मानकन्द) के क्षार के जल के साथ विधिवत् पकाया हुआ सरसों का तैल लेप करने से पाददारी (वेवाई) का नाश होता है। (भाव. म. ख. अ. ४)

१. उन्माद में श्वेत धतूर का प्रयोग- सफेद धतूर की उत्तर दिशा में उत्पन्न मूल के साथ सिद्ध पायस, गुड़ तथा घी मिलाकर सेवन करने से दोषज उन्माद रोग नष्ट होता है। (चक्र. उन्माद चि.) २. **कर्णनाद में धतूर के पत्ते का प्रयोग** - हलदी एक पल (५० ग्राम) के कल्क तथा धतूर के पत्ते के रस के साथ सरसों का तैल आठ पल (४०० ग्राम) विधिवत् सिद्ध करे। यह कान में छोड़ने से कर्णनाड़ी को शान्त करता है। (चक्र. कर्ण रोग चि.)

श्लीपद में धतूर बीज का प्रयोग- धतूर के शुद्ध बीज को पिप्पली वर्द्धमान योग के अनुसार शीतल जल के साथ सेवन करने से भयंकर श्लीपद (पीलपांव) रोग का नाश होता है। (वंगसेन श्लीपदाधिकार)

Constitutents—The leaves contain an alkaloid—daturine mucilage, albumen and ash, 17 p.c. which contains potassium nitrate 25 p.c. The seeds contain daturine, resin, mucilage, proteids, malic acid, scopolamine and ash, 3 p.c. (*Materia Medica of India,* R. N. Khory—II, p. 441). **Actions and uses—** Narcotic and anodyne; other properties are similar to those of belladona, but stronger. It affects sympathetic nervous system, but not the motor or the sensory nerves. In full doses, the heart's action becomes irregular, and there is furious delirium. Like

atropine, hyoscyamine, and duboisine it acts as a mydriatic. As an antispasmodic, it is given in hepatic colic, laryngeal cough, chorea, stammering, &. In dysmenorrhoea, neuralgia, ticdouloureux and sciatica it is very useful. In nymphomania and in puerperal mania with a tendency to suicide it is given with benefit. Pulvis stramonii compositus is burned on a plate and the fumes inhaled. Cigarettes of dhatura tatula are used in nervous attacks of asthma. Externally a paste of the seeds is used in urticaria and other skin diseases due to the presence of lice or other animal parasites. It is also applied to decayed teeth and to relieve toothache. Dhatura seeds are frequently used in India for Criminal purposes. The natives apply a medicated oil to the head in headache, to enlarged testicles and boils; and to the skin in skin diseases as pediculi lice and psoriasis. Dhatura juice with the root of boerhavia diffusa (satodi) and opium is used as an application for the relief of rheumatic pains and swelling over the hands and feet. In haemorrhoids fissures and other painful diseases of the rectum leading to tenesmus, its application as a local anodyne ointment gives relief (Do,—II p. 442).

नलमुञ्जशराः

Arundo karka

नलः Arundo karka, Linn. **मुञ्जः**—Saccharum Munja, Roxb. **शरः**—Saccharum Sara, Roxb.

पूर्वाचार्यकृतवर्णनम्—"नलो दूर्वाकाराङ्कुरोऽन्तःशुषिरः स्वनाम- ख्यातः" (डल्हणः सु. टी. ३८ अ.)। नलः शीतः कषायश्च पित्तमूत्रविनाशनः। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ 'देवनालो'ऽतिमधुरो वृष्य ईषत्कषायकः। नलः स्यादधिको वीर्ये शस्यते रसकर्मणि॥ राजनिघण्टुः॥ अथ निघण्टुग्रन्थेभ्यो मुञ्जस्य शरयोश्च गुणा लिख्यन्ते। 'मुञ्जो'ऽनुष्णो विसर्पास्त्रमूत्रवस्त्यक्षिरोगनुत्। 'बाणाह्वो' मधुरः शीतः पित्तदाहतृषापहः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ 'मुञ्जस्तु' मधुरः शीतः कफपित्तजदोषजित्। ग्रहरक्षासु दीक्षासु पावनो भूतनाशनः॥ राजनिघण्टुः॥ 'शरद्वयं' स्यान्मधुरं सतिक्तं कोष्णं कफभ्रान्तिमदापहारि। बलञ्च वीर्यञ्च करोति नित्यं निषेवितं वातकरञ्च किञ्चित्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टू राजनिघण्टुश्च।

वैद्यके व्यवहारः—कफज'विसर्पे' नलमूलम्—"शैवलं नलमूलादि...।...पृथगालेपनं कुर्याद्द्वन्द्वशः सर्वशोऽपि वा। प्रदेहाः सर्व एवैते देयाः स्वल्पघृतायुताः।" (चि. ११ अ.)। चरकः।

नलः – Arundokarka Linn. मुञ्जः– Saccharum Munja, Roxb. शरः– Saccharum Sara, Roxb.

विविध भाषाओं में नाम–

नल

सं.– नलः, पोटगलः, शून्यमध्यः धमनः। हि.- नरल, नरकुल, नरकट, नल। म.– देवनल, देवनाल। बं.– नल। क.– देवनाल। फा.– ने। गु.– नाली। ते.– भुङ्गडुरु। किक्सन। ता.– कोरुतके। अं.– ग्रेट रीड (Great reed)। ले.– अरुण्डो डोनेक्स (Arundo donax, Linn.)।

शर

सं.– भद्रमुञ्जः, शरः, बाणः, तेजनः, इक्षुमण्डनः। हि.– भडमुञ्ज, रामसर, सरपत, सरपत्ता, रमसरका। क.–

रामसपु, सरगोलु। तै.- मुञ्जगड्डी, पोनिक। बं.- रामशर। म.- घोरमुञ्ज तृणः, मोल। गु.- पावाजरिया। सिन्ध- सर। ले.- सैकरम मुञ्ज (Saccharum munja, Roxb.)।

मुञ्ज

सं.- मुञ्जः, मुजातकः, धूलदर्भः, सुमरेवल। हि.- मुञ्ज, झलसी, सिरकी, कांसा। बं.- मुञ्ज, शर। ते.- तिप्परेलु, अग्नि स्फुलिंग। ता.- मुञ्जि। गु.- मुञ्ज, तिरकाण्डा। म.- मोल, तिरकाण्डे। मा.- शरकण्डा। क.- लालिकङ्गि। द्रा.- वाणल।

नल के सम्बन्ध में पूर्व आचार्यों के अनुसार वर्णन- नल दूव के आकार के अंकुर के अन्दर छेद... अपने नाम से प्रसिद्ध नल। (सु.डल्हण अ. ३८)

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरी निघण्टु के अनुसार- नल शीतल तथा कषाय रस है और यह पित्त विकार एवं मूत्र विकार का नाश करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- देवनाल (नल) अधिक मधुर वीर्य वर्द्धक तथा थोड़ा कषाय रस है। नल वीर्य में अधिक बलवान है तथा रस कर्म में प्रशस्त है।

निघण्टु ग्रन्थों से मुञ्ज तथा शर के गुण को लिखते हैं-

धन्वन्तरी निघण्टु- मुञ्ज अनुष्ण है तथा विसर्प, रक्त विकार, मूत्र विकार, वस्ति विकार तथा नेत्र रोग को दूर करता है। बाण नामक शर मधुर तथा शीतल है और पित्त विकार दाह तथा प्यास को दूर करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- मुञ्ज मधुर तथा शीतल है और कफज तथा पित्तज दोष को जीत लेता है। ग्रह बालकों की रक्षा में तथा दीक्षा में पवित्र है एवं भूतबाधा नाशक है।

धन्वन्तरी एवं राजनिघण्टु के अनुसार- दोनों प्रकार के शर मधुर, तिक्तरस तथा थोड़ा उष्ण है और कफ, भ्रान्ति एवं मद को दूर करता है। यह नित्य बल तथा वीर्य को बढ़ाता है, नित्य सेवन करने से थोड़ा वात कारक है।

वैद्यक शास्त्र में नलका प्रयोग-

कफज विसर्प में नलमूल का प्रयोग- सेवाल तथा नल के मूल के कल्क का एक साथ या अलग-अलग या दो-दो का थोड़ा घी मिलाकर लेप करे या विसर्प के ऊपर पोल्टिस बाँधे। (च.चि.अ. ११)।

नागकेसरः

Mesua ferrea

नागकेसरः—Mesua ferrea, Linn.

नागकेसरमल्पोष्णं लघुतिक्तं कफापहम्। बस्तिवातामयघ्नञ्च कण्ठशीर्षरुजापहम्॥ राजनिघण्टुः। नागपुष्पं कषायोष्णं रूक्षं लघ्वामपाचनम्। ज्वरकण्डूतृषास्वेदछर्दिहृल्लासनाशनम्॥ दौर्गन्ध्यकुष्ठ- विसर्पकफपित्तविषापहम्। भावप्रकाशः।

वैद्यके व्यवहारः— 'रक्तार्शःसु' नागपुष्पम्— "केसरनवनीतशर्कराभ्यासात् अर्शांस्यपयान्ति रक्तानि"

(चि. ९ अ.)। चरकः॥ 'श्वेतप्रदरे' नागकेसरम्–"तक्रोदनाहाररता सम्पिबेन्नागकेशरम्। त्र्यहं तक्रेण सम्पिष्टं श्वेतप्रदरशान्तये॥" (म. ख. ४ भा.) भावप्रकाशः॥ 'रक्तातिसारे' नागकेसरम्–"...सितया सह। नागकेसरचूर्णं वा रक्तसङ्ग्रहणं परम्॥" (अतिसाराधिकारे)। वङ्गसेनः।

नागकेशर (Mesua ferrea, Linn.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.– नागपुष्प, नाग, नागकेशर, चाम्पेय, नागकिञ्जल्क। बं.– नागेश्वर, नागेसर, चम्पा फुलेर गाछ। म.– नागकेशर। गु.– नागकेशर। क.– नागकेशरी, नागसेम्पिगी। ते.– नागकेशरालु, नागकेशरम। ता.– नांगल, नौगल, नागशापु। द्रा.– नगकेशरं। मु.– नागचम्पा। यू.– नागेसुर। अ.– नागमुष्क। अं.– केवराजसेफोरोन। ले.– मेसुआफेरिया (mesua ferrea)।

गुण एवं दोष-

राजनिघण्टु के अनुसार- नागकेशर थोड़ा उष्ण, लघु तथा तिक्तरस है और कफनाशक है। यह बस्ति के वात का नाश करता है, कण्ठ तथा सिर की पीड़ा को दूर करता है।

भावप्रकाश के अनुसार- नागपुष्प (नागकेशर) कषाय रस, उष्ण, रूक्ष तथा लघु है और आम पाचक है। यह ज्वर, कण्डू, प्यास, स्वेद वमन तथा उबकाई का नाश करता है। यह दुर्गन्ध, कुष्ठ विकार, विसर्प, कफ विकार, पित्त विकार एवं विष विकार को दूर करता है।

वैद्यक शास्त्र में नागकेशर का प्रयोग -

रक्तार्श में नाग केशर का प्रयोग- नागकेशर का चूर्ण नवनीत (मक्खन) तथा शक्कर के साथ प्रति दिन सेवन करने से रक्तार्श नष्ट होता है। (च.चि.अ. ९)

श्वेत प्रदर में नागकेशर का प्रयोग- नागकेशर के चूर्ण को मट्ठा के साथ पीस कर तीन दिन तक सेवन करे और मट्ठा के साथ भात खाय। यह श्वेत प्रदर को शान्त करता है। (भाव.म.ख. ४)।

रक्तातिसार में नागकेशर का प्रयोग- नागकेशर के चूर्ण को मिश्री के साथ रक्तातिसार में सेवन करें। यह अच्छी तरह रक्त को रोकता है। (वंगसेन अतिसाराधिकार)

Constituents—The fruit contains an oleo resin and an essential oil. The seeds contain a fixed oil. The hard pericarp contains tannin. The resin is in tears; it sinks in water. It is partially dissolved in rectified spirit, amyl alcohol and ether, but wholly in benzol. The essential oil is very fragrant, of a pale yellow colour and of the odour of flowers and resembles chain turpentine (Materia Medica of India II. p. 78). **Actions and uses—**The dried blossoms, root, and bark are bitter, aromatic and sudorific. Unripe fruits are aromatic, acrid and purgative. Flowerbuds are used in dysentery. The oil is used as an application for rheumatic joints; an ointment of the powder of blossoms, with butter is applied to bleeding piles and for burning sensation of the feet. (Do. II p. 78).

नारिकेलः

नारिकेलः (रः)। Cocos Nucifera, Linn.

परिचयज्ञापिका संज्ञा–"रसफलः", "दृढफलः", "स्कन्धफलः" "सदाफलः", "उच्चतरुः",

"कूर्च्चशेखर:"। 'उत्पत्तिज्ञापिका संज्ञा– "दाक्षिणात्यक:"। ...नारिकेलफलानि च। वृंहणस्निग्धशीतानि बल्यानि मुधुरानि च॥ चरक: (सू. २७ अ.)। नारिकेलं गुरु स्निग्धं पित्तघ्नं स्वादु शीतलम्। बलमांसप्रदं हृद्यं वृंहणं बस्तिशोधनम्॥ सुश्रुत: (सू. ४६ अ.)। नारिकेलो गुरु: स्निग्ध: शीत: पित्तविनाशन:। 'अर्द्धपक्व'स्तृषाशोषशमनो दुर्जर: पर:॥ नारिकेल-'सलिलं' लघु बल्यं शीतलं च मधुरं गुरु पाके। पित्तपीनसतृषाश्रमदाहशान्तिशोषशमनं सुखदायि॥ 'पक्व'मेतदपि किञ्चिदिहोक्तं पित्तकारि रुचिदं मधुरं च। दीपनं बलकरं गुरु वृष्यं वीर्यवर्द्धनमिदं तु वदन्ति॥ राजनिघण्टु:॥ नारिकेरफलं शीतं दुर्जरं बस्तिशोधनम्। विष्टम्भि वृंहणं बल्यं वातपित्तास्त्रदाहनुत्॥ विशेषत: 'कोमल'नारिकेलं निहन्ति पित्तज्वर-पित्तदोषान्। तदेव 'जीर्णं' गुरु पित्तकारि विदाहि विष्टम्भि मतं भिषग्भि:॥ 'तस्याम्भ:' शीतलं हृद्यं दीपनं शुक्रलं लघु। पिपासापित्तजित् स्वादु बस्तिशुद्धिकरं परम्॥ नारिकेलस्य तालस्य खर्जूरस्य 'शिरांसि' तु। कषायस्निग्ध-मधुरवृंहणानि गुरूणि च॥ भावप्रकाश:।

वैद्यके व्यवहार:–'सूर्यावर्त्तार्द्धभेदकयो'र्नारिकेलनीरम्–"नीरं वा नारिकेलजम्" (शिरोरोगचि.)। **चक्रदत्त:। (१) 'परिणामशूले' नारिकेलम्–"नारिकेलं सतोयञ्च लवणेन सुपूरितम्। मृदाववेष्टितं शुष्कं पक्वं गोमय-वह्निना॥ पिप्पल्या भक्षितं हन्ति शूलं हि परिणामजम्।" (म. ख. ३भा.) (२) 'शर्करायां' नारिकेलकुसुमम्– "...दध्ना पीतं वा नारिकेलजं कुसुमम्। विण्मूत्रशर्कराया भवति सुखी कतिपयै-र्दिवसै:॥" (म. ख. ३भा.)। भावप्रकाश:॥**

नारिकेल: (नारिकेर:) (Cocos Nucifera, Linn.)

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– नारिकेल:, दृढ़फल:, लाङ्गली, तृणराज:। हि.– नारियल, नरियल, नखिर, खोपड़ा, गरी, गिरि। बं.– नारिकेल, नारिकोल, गाछ। म.– नारली, नारस, माड। गु.– नारिअल। ते.– टेकाया, नारि कटम टेकाई खेटटु। ता.– तेंगाई, तेन्ना। क.– तेंगिनमर। मा.– नारल। द्रा.– तेगार्ड। अं.– कोकनट पाम (Coconut palm)। ले.– कोकस् न्यूसिफेरा (Cocos nucifera)।

परिचय ज्ञापिका संज्ञा– रसफल:, दृढ़फल:, स्कन्धफल:, सदाफल:, उच्चतरु:, कूर्चशेखर। **उत्पत्तिज्ञापिका संज्ञा–** दाक्षिणात्यक:।

गुण एवं दोष–

चरक के अनुसार– नारियल के फल वृंहण (बलवर्द्धक), स्निग्ध, शीतल, बलकारक तथा मधुर है। (च. सू.अ. २७)

सुश्रुत के अनुसार– नारियल गुरु, स्निग्ध, पित्तनाशक तथा स्वादुकारक एवं शीतल है। यह बल तथा मांस वर्द्धक है हृदय को बल देनेवाला है; मांस वर्द्धक एवं बस्तिशोधक है। (सु.सू. अ. ४६)

राजनिघण्टु के अनुसार– नारियल गुरु, स्निग्ध, शीतल तथा पित्तनाशक है। अधपका नारियल प्यास, तथा शोष को शान्त करता है, अधिक दुष्पच्य है। नारियल का जल लघु, बलकारक, शीतल, मधुर तथा पाक में गुरु है।

भावप्रकाश के अनुसार– नारियल का फल शीतल, दुष्पच्य तथा बस्तिशोधक है। यह विष्टम्भ कारक

है, मांस वर्द्धक है, बल वर्द्धक है तथा वातविकार, पित्त विकार और रक्त विकार एवं दाह को दूर करता है। विशेषकर कोमल नारियल पित्तज्वर तथा पित्त दोष का नाश करता है। वही पुराना नारियल गुरु है, पित्त कारक है, विदाहकारक है तथा चिकित्सकों द्वारा विष्टम्भकारक कहा गया है। नारियल का जल शीतल तथा हृदय को बल देनेवाला है, जाठराग्निदीपक है, शुक्र वर्द्धक है तथा लघु है। यह पिपासा तथा पित्त विकार का नाश करता है, स्वादिष्ट है तथा उत्तम बस्ति शोधक है। नारियल ताड़ तथा खजूर का सिर कषाय रस, स्निग्ध, मधुर तथा मांस वर्द्धक है और गुरु है।

वैद्यक शास्त्र में नारिकेल का प्रयोग-

सूर्यावर्त तथा अर्द्धावभेदक रोग में नारियल के जल का प्रयोग- सूर्यावर्त तथा अर्द्धावभेदक रोग में नारियल के जल का पान करे। (चक्र.शिरोरोग चि.)

१. **परिणाम शूल में नारियल का प्रयोग-** जलयुक्त नारियल को सेन्धा नमक से भर दे और नारियेल को कपड मिट्टी से आवेष्टित कर सुखा ले तथा उपले के आग में पका ले। इसके बाद निकाल कर चूर्ण बना ले और पीपर के चूर्ण के साथ भक्षण करे। यह परिणाम शूल को नष्ट करता है। यह नारिकेल लवण है। (भाव.म.ख. २) २. **शर्करा रोग में नारिकेल के पुष्प का प्रयोग-** नारियल के फूल का दही के साथ पान करने से कुछ दिनों में मल तथा मूत्र की शर्करा से रोगी मुक्त हो जाता है तथा सुखी होता है। (भाव.प्र.म.ख.२)

Constituents— The fresh kernel contains nitrogenous substance, fat, ash, palm sugar, and inorganic substances. (R. N. Khory—II p. 624). **Actions and uses—** Cocoanut milk—refrigerant, nutrient, aperient, diuretic and anthelmintic. Nariela-nu-pani is cooling, refrigerant, demulcent and in large doses aperient. The oil is used as a substitute for cod-liver oil in debility and phthisis, but is not so very digestible. An inunction of it to the whole body is used in fevers, and to the chest in lung diseases. It is used as an application for the growth of hair and to prevent them from turning grey. Katali-nu-tela is applied in chronic skin diseases such as ring worm, psoriasis, pityriases. the fresh kernel or the tender pulp is nourising, cooling, diuretic and refrigerating. The pulp of the ripe fruit is hard and indigestible. The terminal buds are nourishing, agreeable and digestive and are used as vegetable. The root is diuretic. Naliera-nu-dubha, juice of the kernel, with kali giri is locally applied to freckles with relief. Kopara-ni-vati—old and dried kernel is cut into thin slices and used as an aphordisiac ingredient in confection; also as an anthelmintic, it is used in removing tapeworms. (Do—II p. 624). Cocoanut oil has been recommended as a substitute for cod-liver oil, but its prolonged use is said to induce disturbance of the digestive organs and diarrhoea; this objection may be removed by using the olein separated from the solid fats, as is doen by the natives in the preparation of what they call muthel or hand oil. To prepare this the kernel of the fresh nuts is pulped and strained and the oil prepared from the milky fluid by heating it; a preparation of the same kind is now known in Europe as coco olein. (Dymock—III p. 515).

निम्बः

निम्बः, अरिष्टः–Melia Azadiracta, Willd. **महानिम्बः** Melia Bukayun, M. Sempervirens, Willd.

अन्वर्थसंज्ञा निम्बस्य–"सुतिक्तकः", "कीरेष्टः", "विशीर्णपर्णः", "छर्द्दनः", "पवनेष्टः",

"हिङ्गुनिर्यासः"। महानिम्बस्य—"अक्षीरः"। 'निम्ब'गुणाः—निम्बस्तिक्तरसः शीतो लघुः श्लेष्मास्त्रपित्तनुत्। कुष्ठकण्डूव्रणान् हन्ति लेपाहारादिशीतलः॥ अपक्वं पाचयेच्छोफं व्रणं पक्वं विशोधयेत्। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ प्रभद्रकः प्रभवति शीततिक्तकः कफव्रणक्रिमिवमिशोफशान्तये। वलासभिद्बहु-विधपित्तदोषजिद्विशेषतो हृदयविदाहशान्तिकृत्॥ राजनिघण्टुः। निम्बः शीतो लघुर्ग्राही कटुपाकोऽग्निवातनुत्। अहृद्यः श्रमतृट्कासज्वरारुचिक्रिमिप्रणुत्॥ व्रणपित्तकफच्छर्दिकुष्ठहृल्लास-मेहनुत्। 'निम्बपत्रं' स्मृतं नेत्र्यं क्रिमिपित्तविषप्रणुत्। वातलं कटुपाकञ्च सर्वारोचककुष्ठनुत्॥ 'निम्बफलं' रसे तिक्तं पाके तु कटुभेदनम्। स्निग्धं लघूष्णं कुष्ठघ्नं गुल्मार्शःकृमिमेदनुत्॥ भावप्रकाशः। निम्बः पित्तकफच्छर्दिव्रणहृत् वातकुष्ठनुत्। राजवल्लभः॥ 'महानिम्ब' गुणाः—महानिम्बो रसे तिक्तः शीतपित्तकफापहः। कुष्ठरक्तविनाशी च विसूचीं हन्ति शीतलः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः। महानिम्बस्तु शिशिरः कषायः कटुतिक्तकः। अस्त्रदाहवलासघ्नो विषमज्वरनाशनः॥ राजनिघण्टुः॥ महानिम्बो हिमो रूक्षस्तिक्तो ग्राही कषायकः। कफपित्तभ्रमच्छर्दिकुष्ठहृल्लासरक्तजित्॥ प्रमेहश्वास-गुल्मार्शोमूषिकविषनाशनः। भावप्रकाशः। महानिम्बः परं ग्राही कषायोऽम्लश्च शीतलः। राजवल्लभः।

वैद्यके व्यवहारः- 'कुष्ठे' निम्बः— "...निम्बपटोलस्य...। ...इति षट्-कषाययोगाः कुष्ठघ्ना निर्द्दिष्टाः। ...स्नाने पाने च मताः। (चि. ७अ.)। चरकः॥ (१) 'जातसत्त्वे कुष्ठे' निम्बः—निम्बक्वाथं जातसत्त्वः पिबेद्वा...।" (चि. ९ अ.) (२) 'सुरामेहे' निम्बः—"सुरामेहिनं निम्बकषायं" (चि. ११ अ.)। (३) 'अरूंषिकायां' निम्बः—"अरूंषिकां हृते रक्ते सेचयेन्निम्बवारिणा।" (चि. २० अ.)। (४) 'पद्मिनीकण्टके' निम्बः—"निम्बारग्वधयोः क्वाथो हित उत्सादने भवेत्।" (चि. २० अ.)। (५) 'दाहज्वरे' निम्बः—"मधुफाणितयुक्तेन निम्बपत्राम्भसाऽपि वा। दाहज्वरार्त्तं मतिमान् वामयेत् क्षिप्रमेव च।" (उ. ३९ अ.)। (६) कफज'तृष्णायां' निम्बः—"हितं भवेच्छर्द्दनमेवचात्र तप्तेन निम्बप्रसवोदकेन।" (उ. ४८ अ.)। सुश्रुतः॥ 'वातरक्ते' निम्बपत्रम्—"पटोलनिम्ब-पत्राणि कथित्वा मधुसंयुतम्। पाचनं वातरक्तानां तथा च शमनानि च।" (चि. २५ अ.)। (१) "काञ्जिकेन च सम्पिष्य पिचुमर्द्ददलानि च। लेपनं शस्यते तस्य वातरक्तप्रशान्तये।" (चि. २५ अ.)। (२) 'व्रणशोधनार्थं' निम्बपत्रम्—"निम्बपत्राणि सङ्क्षिप्य मधुना व्रणशोधनम्।" (चि. ३५ अ.)। (३) 'दन्तरोगे' निम्बमूलम्—"क्वाथश्च निम्बमूलस्य दन्तरोगनिवारणः।" (चि. ४५ अ.)। (४) 'विषप्रतिकारे' निम्बः निम्बफलानि च "उष्णोदकेन पीतानि जयेयुस्तत्क्षणात् विषम्।" (चि. ५५ अ.)। हारीतः॥ (१) 'खालित्ये' पलिते च निम्बतैलम्—"मासं वा निम्बजं तैलं क्षीरभुङ् नावयेद् यतिः।" (उ. २४ अ.)। (२) व्रणसंशोधने' निम्बपत्रम्—"स-क्षौद्रनिम्बपत्राभ्यां युक्तः संशोधनं परम्।" (उ. २५ अ.)। वाग्भटः॥ (१) 'उदर्द्दकोठादौ' निम्बपत्रम्—"निम्बस्य पत्राणि सदा घृतेन धात्रीविमिश्रान्यथवोपयुञ्ज्यात्। विस्फोटकोठक्षत-शीतपित्तं कण्ड्वम्लपित्तं सहसा च हन्यात्।" (अम्लपित्त—चि.)। (२) 'कामलायां' निम्बः—"...निम्बस्य वा रसः। प्रातर्माक्षिकसंयुक्तः शीलितः कामलापहः॥" (पाण्डुरोग—चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) 'गृध्रस्यां' महानिम्बमूलम्—"वृहन्निम्बतरोर्मूलं वारिपेषितम्। पीतं तन्नाशयेत् क्षिप्रमसाध्यामपि गृध्रसीम्॥" (वातव्याध्यधिकारे)। (२) कफज'हृद्रोगे' निम्बः—"वनानिम्बकाषाताभ्यां वाम्यं हृदि कफोत्थिते" (हृद्रोगाधिकारे)। (३) 'नेत्ररोगे' निम्बः—"शुण्ठीनिम्बदलैः पिण्डः सुखोष्णः स्वल्पसैन्धवः।

धार्यश्चक्षुषि सङ्क्षेपाच्छोथकण्डूव्यथापहः॥" (नेत्ररोगाधिकारे)। (४) 'शिशोर्ज्वररोगे' निम्बः–"निम्बस्य पत्रं माक्षिकं सर्पियुक्तन्तु धूपनम्। ज्वरवेगं निहन्त्याशु बालानान्तु विशेषतः।" (बालरोगाधिकारे)। वङ्गसेनः॥ (१) 'द्रव्यविशेषपरिपाकार्थं' निम्बबीजम्–"मधूकमालूरनृपादनानां परुषखर्ज्जूर कपित्थकानाम्। पाकाय पेयं पिचुमर्द्दबीजं घृतेऽपि तक्रेऽपि तदेव पथ्यम्।" (म. ख. २ भा.)। (२) 'क्रिमिषु' निम्बपत्रम्–"निम्बपत्रसमुद्भूतं रसं क्षौद्रयुतं पिबेत्।" (म. ख. २ भा.)। (३) 'रक्तपित्ते' शाकार्थं निम्बपत्रम्– "पटोलनिम्बवेत्राग्रप्लक्षवेतसपल्लवाः। शाकार्थे शाकसात्म्यानां... हिताः।" (म. ख. २ भा.)। (४) व्रणेषु 'क्रिमिनाशार्थं' निम्बः–"लेपो हिङ्गुनिम्बकृतोऽथवा।" (म. ख. ३ भा.)। भावप्रकाशः।

निम्बः, अरिष्टः- Melia Azadiracta, Willd.

महानिम्बः- Melia Bukayun, M. Sempervirens, Willd.

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- निम्बः, पिचुमर्दः, तिक्तकः, अरिष्टः, पारिभद्रः। हि.- नीम। बं.- निम गाछ। म.- कटु निम्ब। गु.- लिम्बड़ा। क.- बडेः। ते.- वेया, वेप्पचोटउ। ता.- वेप्रम मल, वेम्वुवेप्पम। फा.- तेतवलमम तरख्त। अ.- आजाद दरख्त। अं.- निमट्री (Neem tree)। ले.- मेलिया एजाडिराक्टा (Melia Azadiracta)।

नीम की अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा- सुतिक्तकः, कीरेष्टः,विशीर्णपर्णः, छद्र्दनः पवनेष्टः, हिङ्गु-निर्यासः। **महानिम्ब की अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा-** अक्षीरः।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरी निघण्टु के अनुसार– निम्ब के गुण- नीम तिक्तरस, शीतल तथा लघु है और यह कफ विकार, रक्त विकार तथा पित्त विकार को दूर करता है। यह कुष्ठ रोग, कण्डू तथा व्रण का नाश करता है, लेप एवं आहार में प्रयोग करने से अपव्रणशोथ को पकाता है तथा पक्वव्रण का शोधन करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- प्रभद्रक (नीम) शीतल तथा तिक्तरस है और यह कफ विकार, व्रण, क्रिमी रोग तथा शोथ की शान्ति के लिए होता है। यह कफ भेदक है, बहुप्रकार के पित्त दोषो को जीत लेता है तथा यह विशेषकर हृदय के दाह को शान्त करता है।

भावप्रकाश के अनुसार- नीम, शीतल, लघु तथा ग्राही है और कटुपाकी है तथा पित्त विकार तथा वात विकार को दूर करता है। यह अहृद्य है तथा श्रमजन्य कास, ज्वर, अरुचि तथा क्रिमिरोग को दूर करता है। यह व्रण, पित्त विकार, कफ विकार, वमन, कुष्ठ रोग उबकाई तथा प्रमेह को दूर करता है। नीम का पत्र नेत्र के लिए हितकर है और क्रिमिरोग, पित्त विकार तथा विष विकार को दूर करता है। यह वातकारक है, कटुपाकी है तथा सभी प्रकार के अरोचक एवं कुष्ठ रोग को दूर करता है। नीम का फल रस में तिक्त तथा पाक में कटु है एवं मल भेदक है, स्निग्ध है, लघु है, उष्ण है, कुष्ठनाशक है तथा गुल्मरोग, अर्शरोग, क्रिमिरोग एवं प्रमेह को दूर करता है।

राजवल्लभ के अनुसार- नीम पित्त विकार, कफ विकार, वमन एवं व्रण को दूर करता है तथा वात, कुष्ठ का नाश करता है।

धन्वन्तरी निघण्टु के अनुसार– महानिम्ब के गुण- महानिम्ब रस में ति.क्तरस है तथा शीतपित्त एवं

कफ रोग को दूर करता है। यह कुष्ठरोग तथा रक्तविकार का नाश करता है और शीतल होने से विसूचिका रोग का नाश करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- महानिम्ब शीतल, कषायरस, कटुरस तथा तिक्तरस है और यह रक्तविकार, दाह तथा कफ का नाश करता है एवं विषमज्वर को शान्त करता है।

भावप्रकाश के अनुसार- महानिम्ब शीतल, रूक्ष तथा तिक्त रस है, ग्राही है एवं कषाय रस है। यह कफ विकार, पित्त विकार, भ्रम, वमन, कुष्ठ रोग, उबकाई तथा रक्त विकार का नाश करता है। यह प्रमेह, श्वास, गुल्म, अर्श रोग तथा मूषिक विष का नाश करता है।

राजवल्लभ के अनुसार- महानिम्ब उत्तमग्राही है, कषाय तथा अम्लरस है और शीतल है।

वैद्यकशास्त्र में नीम का प्रयोग-

कुष्ठ रोग में नीम का प्रयोग- नीम तथा परवल आदि के ६ कषाय योग खाने तथा पान करने से कुष्ठ नाशक कहे गये हैं। (च.चि.अ. ७)।

१. **जातसत्व कुष्ठ में नीम के क्वाथ का प्रयोग**- जातसत्व कुष्ठ में नीम का क्वाथ पान करे। (सु. चि.अ. ९) २. **सुरामेह में नीम कषाय का प्रयोग**- सुरामेह के रोगी को नीम कषाय पान कराये। (सु.चि.अ. ११) ३. **अरूंषिका में नीमजल का प्रयोग**- अरूंषिका रोग में रक्त के निर्हरण करने के बाद नीम के जल से सेचन करे। (सु.चि.अ. २०) ४. **पद्मिनी कण्टक में नीम का प्रयोग**- पद्मिनी कण्टक के उत्सादन में नीम तथा अम्लतास के क्वाथ का प्रयोग हितकर होता है। (सु.चि.अ. २०) ५. **दाहज्वर में निम्ब का प्रयोग**- नीम के पत्तों का क्वाथ मधु तथा फाणित मिलाकर बुद्धिमान चिकित्सक दाहज्वर से पीड़ित व्यक्ति को शीघ्र ही वमन कराये। (सु.उ.अ. ३९) ६. **कफज प्यास में निम्ब का प्रयोग**- नीम के पत्र के जल को थोड़ा गरम कर वमन कराना कफज तृष्णा में हितकर है। (सु.उ.अ. ४८)

१. **वातरक्त में निम्ब पत्र का प्रयोग**- परवल तथा नीम के पत्तों का क्वाथ बनाकर तथा मधु मिलाकर पान कराने से वातरक्त का पाचन होता है तथा उसका शमन होता है। (हारीत.चि.अ. २५) वातरक्त की प्रशान्ति के लिए नीम के पत्तों को काञ्जी के साथ पीसकर लेप करना प्रशस्त होता है। (हारीत.चि.अ. २५) २. **व्रण शोधनार्थ निम्बपत्र का प्रयोग** - नीम के पत्तों का शुष्क मधु मिलाकर लेप करने से व्रण का शोधन होता है। (हारीत.चि.अ. ३५) ३. **दन्त रोग में निम्ब मूलका प्रयोग**- नीम के जल का क्वाथ दन्त रोग को शान्त करता है। (हारीत.चि.अ. ४५) ४. **विष प्रतिकार में नीम का प्रयोग** - नीम के फलों का गरम जल के साथ पान करने से तत्काल विष विकार शान्त होता है। (हारीत.चि.अ. ५५)

१. **खालित्य रोग में तथा पलित रोग में निम्ब तैल का प्रयोग**- खालित्य तथा पलित रोग में एक मास तक नीम के तैल का नस्य ले और दूध भात खाय। (वाग्भट उ. अ. २४) २. **व्रण संशोधन में निम्बपत्र का प्रयोग**- नीम के कल्क में मधु मिलाकर लेप करना उत्तम व्रण शोधक होता है। (वाग्भट उ. अ. २५)

१. **उदर्द कोठ आदि में निम्बपत्र का प्रयोग**- नीम के पत्तों को पीसकर घृत के साथ आँवला का रस मिलाकर प्रयोग करे। यह शीघ्र ही विस्फोट, कोठ, क्षत, शीत पित्त, कण्डू तथा अम्ल पित्त का नाश करता है। (चक्र. अम्लपित्त चि.) २. **कामला में निम्ब का प्रयोग**- कामला रोग में नीम के पत्ते का रस मधु मिलाकर प्रातः काल सेवन करने से कामला रोग का नाश होता है। (चक्र. पाण्डुरोग चि.)

१. **गृध्रसी में महानिम्ब मूल का प्रयोग**- महानिम्ब के मूल को जल के साथ पीस कर पान करने से

शीघ्र ही असाध्य गृध्रसी रोग नाश होता है। (वंगसेन वातव्याधि अधिकार) २. **कफज हृदय रोग में नीम का प्रयोग**- हृदय में कफज पीड़ा होने पर नीम के कषाय पान कराकर वमन कराये। (वंगसेन हृद्रोगाधिकार) ३. **नेत्ररोग में निम्बका प्रयोग**- सौंठ तथा नीम के पत्तों का कल्क बनाकर उसको थोड़ा गरम कर और उसमें थोड़ा सेन्धा नमक मिलाकर नेत्र के ऊपर धारण करे। यह शोथ, कण्डू तथा पीड़ा को दूर करता है। (वंगसेन नेत्ररोगाधिकार) ४. **बच्चों के ज्वर में निम्ब का प्रयोग**- नीम के पत्तों का चूर्ण मधु तथा घृत मिलाकर धूपन करना बालकों के ज्वर के वेग को शीघ्र ही नष्ट करता है। (वंगसेन बालरोगाधिकार)

१. **द्रव्य विष के पीरपाक के लिए नीम बीज का प्रयोग**- मधूकर (महुआ), मालूर, अमलतास, परुष खजूर तथा कैथ के खाने से अजीर्ण होने पर उसके पाक के लिए नीम का बीज घृत में या मट्ठा में पान कराये। उनके लिए यही पथ्य है। (भाव. म. ख. अ. २) २. **क्रिमि रोग में निम्ब पत्र का प्रयोग**- क्रिमिरोग में नीम के पत्ते का रस मधु मिलाकर पान कराये। (भाव. म. ख. अ. २) ३. **रक्तपित्त में शाक के लिए नीम पत्र का प्रयोग**- परवल, नीम, वेंत, पकड़ी तथा वेंत के पल्लव का शाक रक्तपित्त में शाक खानेवालों के लिए हितकर है। (भाव. म. ख. २) ४. **व्रण में क्रिमि नाश के लिए निम्ब का प्रयोग**- हींग तथा नीम के पत्तों का कल्क बनाकर लेप तैयार करे। यह लेप करने से व्रण के क्रिमियों का नाश होता है। (भाव.म.ख.अ.३)

Constituents—of M. Bukayun—Noncrystalline resinous substance—the active principle, sugar, tannin. (R. N. Khory—II. p. 118). **Actions and uses**—In small doses, the bark is a bitter tonic, astringent, antiperiodic, anthelmintic, given to children in round worms, and to adults in fever and indigestion; leaves and flowers are alterative and diuretic. The juice of the leaves is used in fevers, dyspepsia, general debility, jaundice, worms, scrofula, boils, leprosy & c. Externally the flowers and leaves are discutients; as a poultice they are made worm and applied to the head in nervous headaches. A poultice of the flowers is said to kill lice and to cure eruptions of the scalp; a paste of the leaves is applied hot to unhealthy ulcers to indolent scrofulous glands and to pustular eruptions. The drug is a narcotic poison in large doses, producing giddiness, dimness of sight, mental confusion, stupor, dilated pupils and stertor. It also acts as a gastro-intestinal irritant, producing vomitting and purging. (Do—II p. 119). **Constituents**— of M, Azadirachta—The seeds contain a resinous oil known as margosa or neem oil. The bark contains a neutral resinous bitter principle, margosine, non-crystalline and without alkaloidal properties catechin gum, sugar and tannin. (R. N. Khory—p. 119). **Actions and uses**—The bark and leaf stalks are astringent bitter tonic and antiperiodic, and used in intermittent and paroxysmal fevers and for general debility and convalescence and after febrile and other diseases. The leaves are discutient and local stimulant and used as varalians or poultices to disperse indolent glands and swellings. The young trees yield a kind of sweet juice (today) which when fermented is used as stomachic and anthelmintic and is given in worms and jaundice. The pulp is applied to boils, postular eruptions, opensores and bruised joints. The compound powder *Pancha nimba churn* is tonic and given in convalescence after fever. The fruit is a purgative anthelmintic and alterative. The oil of the seed is bitter, anthelmintic and stimulant, given in leprosy, intestinal worms, piles and urinary diseases. The gum is used by lying-in women as a uterine stimulant. The seeds are used for killing pediculi, and the powdered kernel for washing the hair and as a remedy for mange in dogs. The oil, mixed with other oil is applied to skin diseases, suppurating scrofulous glands, and leprous ulcers. It is rubbed on the skin in rheumatic-affections and to the

head in headache. The oil contains sulphur, and therefore with alkalies it is used in skin diseases. (Do-II, 120).

नीलिनी

नीलिनी, नीली। Indigofera Tinctoria, Linn.

उत्पत्तिबोधिका संज्ञा–"ग्राम्या"। 'परिचयज्ञापिका संज्ञा– "नीलपुष्पी", "गन्धपुष्पा"। 'गुणप्रकाशिका संज्ञा–"रञ्जनी", "शोधनी", "केशरुहा", "रङ्गपत्री"। नीली तिक्ता रसे चोष्णा कटिवातकफापहा। केश्या विषोदरं हन्ति वातासृक्क्रिमिनाशनी॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ नीली तु कटुतिक्तोष्णा केश्या कासकफामनुत्। मरुद्विषोदरव्याधिगुल्मजन्तुज्वरापहा॥ 'महानीली' गुणाढ्या स्याद्रङ्गश्रेष्ठा सुवीर्यदा। पूर्वोक्तनीलीकादेषा सगुणा सर्वकर्मसु॥ राजनिघण्टुः॥ नीलिनी रेचनी तिक्ता केश्या मोहभ्रमापहा। उष्णा हन्त्युदरप्लीहवातरक्तकफानिलान्॥ आमवातमुदावर्त्तं विषञ्च मदमुद्धतम्। भावप्रकाशः।

वैद्यके व्यवहारः–'मूषिकविषे' नीलिनी–"वर्षाभूनीलिनीक्वाथसिद्धं तत्र घृतं पिबेत्।" (क. ६ अ.)। सुश्रुतः॥ 'दशनकृमिषु' नीलिनी–"नीलिवायसजङ्घास्नुक्दुग्धीनान्तु मूलमेकैकम्। सञ्चवर्य दशनविधृतं दशनकृमिपातनं प्राहुः॥" (दन्तरोग–चि.)। चक्रदत्तः।

नीलिनी, नीली (Indigofera tinctoria, Linn.)

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– नीली, नीलिनी, तूली, काला दोला, रञ्जनी, श्रीफली, तुत्था, मधुपर्णिका। हि.– नील, लील, नीली वृक्ष। मु.– मुलि, लघुनीलो। बं.– नीलगाछ। क.– नीली, हरिपनीली, निलोगिड़। गु.– गली। ते.– नीलीचेट्टु। नलपट्ट, गरिपेहनीली चेट्। द्रा.– नीली। अ.– नीलज। अं.– कामन इण्डिगो (Common Indigo)। ले.– इण्डिगोफेरा टिंक्टोरिया (Indigofera tinctoria)।

उत्पत्तिज्ञापिका संज्ञा– ग्राम्या।

परिचय ज्ञापिका संज्ञा– नीलपुष्पी, गन्धपुष्पा।

गुण प्रकाशिका संज्ञा– रञ्जनी, शोधनी, कशेरुहा, रंगपत्री।

गुण एवं दोष–

धन्वन्तरी निघण्टु के अनुसार– नीली वृक्ष तिक्त रस तथा उष्ण है और कटिवात तथा कफ विकार को दूर करता है। यह केश के लिए हितकर है, विष विकार का नाश करता है तथा वातरक्त एवं क्रिमिरोग का नाश करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार– नीली वृक्ष कटुरस, तिक्तरस, उष्ण तथा केश के लिए हितकर है और कास तथा कफ रोग का नाश करता है। यह वात, विषविकार, गुल्मरोग, क्रिमिरोग तथा ज्वर को दूर करता है। महानीली वृक्ष गुण में अधिक है, रंग में श्रेष्ठ है तथा बलवर्द्धक है। यह पूर्वोक्त नीलीवृक्ष की अपेक्षा सभी कर्म में अधिक गुणवाला है।

भावप्रकाश के अनुसार- नीली रेचन करानेवाली स्तर तथा केश के लिए हितकर है और मोह एवं भ्रम को दूर करती है। यह उष्ण है तथा उदर रोग, प्लीहा रोग, वात रक्त रोग, कफज रोग तथा वात रोग को नष्ट करती है। इनके अतिरिक्त आमवात, उदावर्त, विष विकार तथा उद्धतमद को शान्त करता है।

वैद्यक शास्त्र में नीली का प्रयोग-

मूषिक विष में नीलिनी का प्रयोग- मूषिक विष में पुनर्नवा तथा नीलिनी के क्वाथ तथा कल्क के साथ विधिवत सिद्ध घृत पान करे। (सू.क.अ. ६)

दाँत की क्रिमि में नीलिनी का प्रयोग- नीली तथा काकजंघा, सेहूड़ तथा दूधी (दूधिया) मूल को एक-एक कर दांत में धारण करने से दन्तक्रिमि का पतन होता है। (चक्र दन्तरोग चि.)

Constituents—Indican (a glucoside) **Actions and uses**— Plant stimulant, alterative and purgative; used in enlargement of the liver and spleen, dropsy, affections of the lungs and kidneys whooping cough and palpitation of the heart. Indigo is given in epilepsy and erysipelas and also in amenorrhoea. The natives apply indigo to the navel with castor oil in constipation also to the pubes and hypogastrium in relieving retention of urine. A poultice of the plant is used to relieve haemorrhoids. Indigo is a soothing application to burns and scalds, and the juice of the leaves is used as a poultice externally and given internally as a prophylactic against bites of venomous animals and hydrophobia. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory—II p. 215—16). The plant has a great repute in some parts of India as a prophylactic against hydrophobia so much so as to be known among the natives as "*The dogbite shrub*". A wineglassful of the juice of the leaves is administered in the morning, without milk, for three days to those who have bitten by dogs supposed to be mad. People who have taken it inform us that beyond slight headache no disagreeable effect is produced, but that when a larger dose has been given it has proved purgative. In addition to the internal administration, the expressed leaves are each day applied to the bitten part as a poultice. For Roth's observations on the use of Indigo in epilepsy and other Spasmodic affections. See *Brit,* and *For. Med. Rev.* July 1836, p. 244. His account of its Physiological effects is as follows :—"Shortly after taking it, the patient experiences a sense of constriction at the fauces, and the impression of a metalic taste on the tongue. These are followed by nausea and frequently by actual vomiting. The intensity of these symptoms varies in different cases. In some the vomiting is so violent as to preclude the further use of the remedy. The matter vomited presents no peculiarity except its blue colour. When the vomiting has subsided, diarrhoea usually occurs; the stools are more frequent liquied, and of a blue or blackish colour. The vomiting and diarrhoea are frequently accompanied by cardialgia and colic. Occasionally these symptoms increase, and the use of the remedy is in consequence obliged to be omitted. Dyspepsia and giddiness sometimes succeed. The urine has a brown, dark violet colour; but Dr. Roth never found the respiratory matter tinged with it. After the use of Indigo for a few weeks twitchings of the muscles sometimes were observed, as after the use of strychnia (*Pharmacographia Indica*. Vol. I—408-9).

पटोलः

पटोलः, कुलकः। Trichosanthes Dioica, Roxb.

परिचयज्ञापिका संज्ञा– "कर्कशच्छदः", "कटुफलः", "राजीफलः", "पाण्डुफलः"। गुणप्रकाशिका

संज्ञा– "कुष्ठहा", "कासमुक्तिदः"। पटोलं कटुकं तीक्ष्णमुष्णं पित्ताविरोधि च। कफासृक्कण्डूकुष्ठानि ज्वरदाहौ च नाशयेत्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ पटोलः कटुतिक्तोष्णो रक्तपित्तवलासजित्। कफकण्डूतिकुष्ठासृग्ज्वर दाहार्त्तिनाशनः॥ राजनिघण्टुः॥ पटोलं पाचनं हृद्यं वृष्यं लघ्वग्निदीपनम्। स्निग्धोष्णं हन्ति कासास्त्रज्वरदोषत्रयकृमीन्॥ पटोलस्य 'भवेन्मूलं' विरेचनकरं सुखात्। 'नालं' श्लेष्महरं 'पत्रं' पित्तहारि 'फलं' पुनः॥ दोषत्रयहरं प्रोक्तं तद्व'त्तिक्ता पटोलिका'। भावप्रकाशः॥ पटोलं कफपित्तास्त्रव्रणकुष्ठज्वरापहम्। विसर्पनयनव्याधित्रिदोषगरनाशनम्॥ पटोल 'पत्रं' पित्तघ्नं 'नाडी' तस्य कफापहा। 'फलं' तस्य त्रिदोषघ्नं 'मूलम्' तस्य विरेचनम्॥ राजवल्लभः॥ पटोल'पत्रं' विनिहन्ति पित्तं 'नालं' कफघ्नं प्रवदन्ति धीराः। 'फलञ्च' तस्य दोषशान्तिमेव करोति नूनं ज्वरिणो हितं स्यात्॥ हारीतः।

वैद्यके व्यवहारः– (१) 'रक्तपित्ते' पटोलपत्रं–"ह्रीवेरमूलानि पटोलपत्रम्। ...एते समस्ता गणशः पृथग्वा रक्तं सपित्तं शमयन्ति योगाः॥" (चि. ४ अ.)। (२) 'मदात्यये' पटोलस्य वल्ली पत्रञ्च– "...पटोलस्याथवा भिषक्।" (चि. १२ अ.)। (३) 'शोथे' पटोलपत्रम्–"सुवर्च्चिका गृञ्जनकं पटोलं शकार्थिनां शाकमति-प्रशस्तम्।" (चि. १७ अ.)। (४) 'विषदोषे' पटोलशाकम्–"शाकञ्च कुलकं हितं" (चि. २५ अ.)। (५) 'ऊरुस्तम्भे' पटोलशाकम्– "शाकैरलवणैरद्याज्जलतैलोपसाधितैः। कुलकादिभिः...।" (चि. २७ अ.)। चरकः॥ 'रक्तपित्तिनः' शाकार्थं पटोलपत्रम्–"पटोलशेलु... सिन्धुवारम्। हितञ्च शाकं घृतसंस्कृतं सदा।" (उ. ४५ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) पित्तश्लेष्म'ज्वरे' पटोलपत्रम्–"निम्बकुलकयूषस्तु पित्तकफात्मके हितः।" (ज्वर–चि.)। (२) 'ज्वरिणः' शाकार्थं पटोलपत्रम्–"पटोलपत्रं... शाकार्थे ज्वरिताय प्रदापयेत्।" (ज्वर–चि.)। (३) 'पित्तज्वरे' पटोलम्– "पटोलयवनिः क्वाथो मधुना मधुरीकृतः। तीव्रपित्तज्वरामर्द्दी पानात्तृड्दाहनाशनः॥ (ज्वर–चि.)। (४) 'वातव्याधौ' पटोलफलम्– "पटोलफलकैर्यूषो वृष्यो वात-हरो लघुः।" (वातव्याधि–चि.)। चक्रदत्तः॥ 'मसूरिकायां' पटोलमूलम्–"पटोलमूलं क्वथितं...। आदावेव मसूर्यान्तु पित्तजायां प्रयोजयेत्।" (म. ख. ४ भागः)। भावप्रकाशः।

पटोलः कतकः (Trichosanthes dioica, Roxb.)

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– पटोलः, कूलकः, पाण्डुकः कुष्ठहा, कासभञ्जनः। हि.– परवल, परोरा। बं.– पटोल, पजता, स्वादु पटोल। म.– सोन परवल, पडोल, पडवली। क.– सोमवल्ली, पड़वला। ता.– पुड़लै। ते.– पीटल, केन्यू पोटला। गु.– मीठा पटोला। द्रा.– कोम्बुपुडल। अं.– सेस्पडेला (Sespadela) ले.– ट्राइकोसैन्थस डायोका (Trichosanthes dioica)

गुण एवं दोष–

परिचयज्ञापिका संज्ञा– कर्कशच्छदः, कटुफलः, राजीफलः, पाण्डुफलः। **गुणप्रकाशिका संज्ञा–** कुष्ठहा, कासमुक्तिदः।

धन्वन्तरी निघण्टु के अनुसार– परवल कटुरस, तिक्तरस, तीक्ष्ण तथा उष्ण है और पित्त का अविरोधी है। यह कफ विकार, रक्त विकार, कण्डू, कुष्ठ, ज्वर तथा दाह का नाश करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- पटोल कटुरस, तिक्तरस तथा उष्ण है और रक्त पित्त तथा कफ विकार को दूर करता है। यह कफ, कण्डू, कुष्ठ, रक्त विकार, ज्वर तथा दाह की पीड़ा का नाश करता है।

भावप्रकाश के अनुसार- परवल पाचन है, हृदय को बल देनेवाला है, वीर्यवर्द्धक है, लघु है तथा जाठराग्नि दीपक है। यह स्निग्ध, उष्ण, कास, रक्त विकार, ज्वर, त्रिदोष तथा क्रिमिरोग को नष्ट करता है। परवल का मूल सुख पूर्वक विरेचन कराता है। परवल का नाल श्लेष्म नाशक, पत्र पित्तनाशक तथा फल त्रिदोष नाशक है। उसी प्रकार तिक्त पटोल में भी वही गुण है।

राजवल्लभ के अनुसार- परवल कफ पित्त रक्त विकार, व्रण कुष्ठ तथा ज्वर को दूर करता है और विसर्प, नेत्र रोग, त्रिदोष तथा विष दोष का नाश करता है। परवल का पत्ता पित्त नाशक है। परवल नाल कफ नाशक है, परवल का फल त्रिदोषनाशक है और परवल का मूल विरेचक है।

हारीत संहिता के अनुसार- परवल का पत्ता पित्त को नाश करता है। उसका नाल कफ का नाश करता है, परवल का फल दोषों की शान्ति करता है तथा यह ज्वर के रोगियों के लिए अवश्य हितकर है।

वैद्यक शास्त्र में परवल का प्रयोग-

१. **रक्तपित्त में परवल के पत्ते का प्रयोग**- ह्रीवेर के मूल तथा परवल के पत्ते इनको एक साथ या अलग-अलग प्रयोग करने से ये योग रक्तपित्त को शान्त करते हैं। (च.चि.अ. ४) २. **मदात्यय में परवल की वल्ली तथ पत्र का प्रयोग**- मदात्यय में परवल के पत्ते का प्रयोग करे। (च.चि. अ. १२) ३. **शोथ में परवल के पत्ते का प्रयोग**- सुवर्चिका, गाजर तथा परवल का शाक शाक खानेवाले लोगों के लिए प्रशस्त है। (च.चि.अ.१७) ४. **विषदोष में परवल का शाक**- विषदोष में परवल का शाक हितकर है। (च.चि.अ. २५) ५. **उरुस्तम्भ में परवल का शाक**- परवल आदि का शाक जल तथा तैल पकाकर विना नमक मिलाये उरुस्तम्भरोग में खिलाये। (च.चि.अ. २७)

रक्तपित्त के रोगियों के लिए परवल के शाक का प्रयोग- परवल शेलु (श्लेष्मान्तक) तथा सिन्धुवार का शाक घृत में पकाकर देना रक्त पित्त रोगियों के लिए सर्वथा हितकर है। (सु.उ.अ. ४५)

१. **पित्तश्लेष्म ज्वर में पटोलपत्र का शाक**- पित्त कफ ज्वर में नीम पत्र तथा परवल के पत्ते का यूष हितकर है। (चक्र. ज्वर चि.) २. **ज्वररोगी के लिए परवल के शाक का प्रयोग**- परवल के पत्ते का शाक ज्वर के रोगी के लिए दे। (चक्र.ज्वर चि.) ३. **पित्त ज्वर में परवल का प्रयोग**- परवल तथा यव का क्वाथ मधु के साथ मीठा बनाकर भयंकर पित्तज्वर से पीड़ित व्यक्ति के लिए पीने को दे। यह पान करने से प्यास तथा दाह का नाश करता है। (चक्र. ज्वर चि.) ४. **वातव्याधि में परवल के फल का प्रयोग**- परवल के फल का यूष वीर्यवर्द्धक तथा वातनाशक है। (चक्र. वातव्याधि चि.)

मसूरिका में परवल के मूल का प्रयोग- परवल के मूल का क्वाथ पित्तज मसूरिका उत्पन्न होने के पहले ही पान कराये। (भाव. म. ख. अ. ४)

पद्मम्

पद्मम्, कमलम्। Nelumbium Speciosum.

उत्पलानि कषायानि रक्तपित्तहराणि च। कुमुदोत्पल'नालास्तु' सुपुष्पाः सफला स्मृताः॥ शीताः स्वादुकषायास्तु कफमारुतकोपनाः। कषायमीषद्विष्टम्भि रक्तपित्तहरं स्मृतम्॥ पौष्करन्तु

'भवेद्बीजं' मधुरं रसपाकयोः। चरकः॥ सतिक्तं मधुरं शीतं 'पद्मं' पित्तकफापहम्। मधुरं पिच्छिलं स्निग्धं 'कुमुदं' ह्लादि शीतलम्॥ तस्मादल्पान्तरगुणे विद्यात् 'कुवलयोत्पले'। सुश्रुतः। 'पुण्डरीकं' हिमं तिक्तं मधुरं पित्तनाशनम्। दाहघ्नमस्त्रशोषघ्नं पिपासाभ्रमनाशनम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टू राजनिघण्टुश्च। 'नीलाब्जं' शीतलं स्वादु सुगन्धि पित्तनाशनम्। रुच्यं रसायने श्रेष्ठं देहदार्ढ्यञ्च केशदम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टू राजनिघण्टुश्च। पाके 'रक्तोत्पलं' शीतं तिक्तञ्च मधुरं रसे। भिनत्ति पित्तसन्तापौ ध्वंसयत्यस्त्रजां रुजम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ 'कोकनदं' कटु तिक्तं मधुरं शिशिरं च रक्तदोषघ्नम्। पित्तकफवातशमनं सन्तर्पणकारणं वृष्यम्॥ 'कमलं' शीतलं स्वादु रक्तपित्तश्रमार्त्तिनुत्। सुगन्धि भ्रान्तिसन्तापशान्तिदं तर्पणं परम्॥ राजनिघण्टुः। 'कुमुदं' शीतलं स्वादु पाके तिक्तं कफापहम्। रक्तदोषहरं दाहश्रमपित्तप्रशान्तिकृत्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टू राजनिघण्टुश्च। 'उत्पलिनी' हिमतिक्ता रक्तामयहारिणी च पित्तघ्नी। तापकफकासतृष्णाश्रमवमिशमनी च विज्ञेया॥ राजनिघण्टुः। 'पद्मिनी शिशिरा रूक्षा कफपित्तहरा स्मृता। धन्वन्तरीयनिघण्टुः। 'पद्मिनी' मधुरा तिक्ता कषाया शिशिरा परा। पित्तकृमिशोषवान्तिभ्रान्तिसन्तापशान्तिकृत्॥ राजनिघण्टुः॥ स्वादु तिक्तं 'पद्मबीजं' गर्भस्थापनमुत्तमम्। रक्तपित्तप्रशमनं किञ्चिन्मारुतकृद्भवेत्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ 'पद्मबीजं' कटु स्वादु पित्तच्छर्द्दिहरं परम्। दाहास्त्रदोषशमनं पाचनं रुचिकारकम्॥ राजनिघण्टुः॥ अविदाहि 'बिसं' प्रोक्तं रक्तपित्तप्रसादनम्। विष्टम्भि मधुरं रूक्षं दुर्जरं वातकोपनम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ 'मृणालं' शिशिरं तिक्तं कषायं पित्तदाहजित्। मूत्रकृच्छ्रविकारघ्नं रक्तवान्तिहरं परम्॥ राजनिघण्टुः॥ 'पद्मकन्दः' कषायः स्यात् स्वादे तिक्तो विपाकतः। शीतवीर्योऽस्त्रपित्तोत्थरोगभङ्गाय कल्पते॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ 'शालूकं' कटु विष्टम्भि रूक्षं रुच्यं कफापहम्। कषायं कासपित्तघ्नं तृष्णादाहनिवारणम्॥ राजनिघण्टुः। तृषाघ्नं शीतलं रूक्षं पित्तरक्तक्षयापहम्। 'पद्मकेसर'मेवोक्तं पित्तघ्नं सकषायकम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ 'किञ्जल्कं' मधुरं रूक्षं कटु चास्यव्रणापहम्। शिशिरं रक्तपित्तघ्नं तृष्णादाहनिवारणम्॥ राजनिघण्टुः॥ 'संवर्त्तिका' (नवदलं) हिमा तिक्ता कषाया दाहतृट्प्रणुत्। मूत्रकृच्छ्रगुदव्याधिरक्त-पित्तविनाशनी॥ पद्मस्य 'कर्णिका' (बीजकोषः) तिक्ता कषाया मधुरा हिमा। मुखवैशद्यकृल्लघ्वी तृष्णास्त्रकफपित्तनुत्॥ भावप्रकाशः।

वैद्यके व्यवहारः–(१) 'रक्तपित्ते' उत्पलादिकिञ्जल्कम्–"उत्पलकुमुदपद्मकिञ्जल्कं सङ्ग्राहकरक्तपित्तप्रशमनानाम्।" (सू. २५ अ.)। (२) 'रक्तपित्ते' मृणालम्–"दुरालभापर्पटकामृणालम्... एते समस्ता गणशः पृथग्वा। रक्तं सपित्तं शमयन्ति योगाः।" (चि. ४ अ.)। (३) 'मूत्रकृच्छ्रे' कमलम्–"पिबेत् कषायं कमलोत्पलानाम्।" (चि. २६ अ.)। चरकः॥ 'रक्तार्शःसु पद्मकिञ्जल्कम्–"शर्कराम्भोजकिञ्जल्कसहितं सह वा तिलैः। अभ्यस्तं रक्तगुदजान् नवनीतं नियच्छति।" (चि. ८ अ.)। वाग्भटः॥ 'गुदनिर्गमे' पद्मिनीपत्रम्–"कोमलं पद्मिनीपत्रं यः खादेच्छर्करान्वितम्। एतन्निश्चित्य निर्द्दिष्टं न तस्य गुदनिर्गमः॥" (क्षुद्ररोग–चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) 'ज्वरातिसारे' पद्मकेसरः– "उत्पलं दाडिमत्वक् च पद्मकिञ्जल्कमेव च। पीतं तण्डुलतोयेन ज्वरातिसारनाशनम्।" (म. ख. अतिसारचि.)। (२) 'शूकरदंष्ट्रोद्भूतज्वरे' पद्ममूलम्–"राजीवमूलकल्कः पीतो गव्येन सर्पिषा प्रातः। शमयति शूकरदंष्ट्रोद्भूतं ज्वरं घोरम्॥" (म. ख. ४ भा.)। भावप्रकाशः॥ (१)

'मुखप्रवृत्ते रुधिरे' पद्मकिञ्जल्कम्– "पद्मकिञ्जल्कचूर्णंवा लिह्याद्वा सितया पुनः। मुखप्रवृत्तरुधिरं रुणद्ध्याशु..."। (चि. ११ अ.)। (२) 'मूत्रनिरोधे' पद्मकन्दः– "तैलेन पद्मिनीकन्दं पक्वं गोमूत्रमिश्रितम्। पिबेन्मूत्रनिरोधे तु सतीव्रवेदनान्विते।" (चि. ३० अ.)। हारीतः।

पद्ममम्, कमलम् (Nelumbium speciosum)

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– पद्मम्, नलिनम्, अरविन्दम्। हि.– कमल, पुरइन। बं.– पद्म। म. गु.– कमल। रू.– विलियारावरे। ते.– कलावा। ता.– तावरे अम्बल। अ.– कम्बुलमा। अं.– लोटस (Lotus)। ले.– नेलुम्बिअम स्पेसीओजम (Nelumbium speciosum)।

कमल के भेद

चरक के अनुसार १. श्वेत कमल, २. रक्तकमल ३. नील कमल।

सुश्रुत के अनुसार १. पद्मम् २. उत्पलम् ३. नलिनम् ४. कुमुदम् ५. सौगन्धिकम् ६. कुवलयः ७. पुण्डरीकम्।

गुण एवं दोष–

चरक के अनुसार– उत्पल (कमल) कषाय रस है तथा रक्त पित्त को दूर करनेवाला है। कुमुद उत्पल का नाल पुष्प तथा फल के साथ शीतल स्वादिष्ट तथा कषायरस है और ये कफ तथा वात को प्रकुपित करते हैं। यह कषाय रस थोड़ा विष्टम्भकारक तथा रक्तपित्तकर कहा गया है।

सुश्रुत के अनुसार– कमल तिक्तरस मधुर तथा शीतल है पद्म पित्त तथा कफ नाशक है, मधुर है, पिच्छिल है तथा स्निग्ध है। कुमुद आह्लादकारक तथा शीतल है। कुवलय तथा उत्पन्न कुमुद के गुणों से कम गुणवाले हैं।

धन्वन्तरी निघण्टु – राजनिघण्टु के अनुसार– पुण्डरीक शीतल, तिक्तरस तथा मधुर रस है और पित्त नाशक है। यह दाहनाशक, रक्त विकार तथा शोथ नाशक एवं पिपासा तथा श्रम शामक है। नील कमल शीतल, स्वादिष्ट तथा सुगन्धि है और पित्त नाशक है, रुचिकारक है, रसायन कार्य में श्रेष्ठ है, शरीर को दृढ बनाता है और केश को बढ़ाता है।

धन्वन्तरी निघण्टु के अनुसार– रक्त कमल पाक में शीतल है, रस में तिक्त तथा मधुर रस है। यह पित्त तथा सन्ताप को तथा रक्त विकार एवं पीड़ा को नष्ट करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार– कोकनद (कमल) कटुरस, तिक्तरस तथा मधुररस है तथा शीतल है और रक्तदोषनाशक है। यह पित्त-कफ तथा वात शामक है, संतर्पणकारक है एवं वीर्य वर्द्धक है। कमल शीतल तथा स्वादिष्ट है और रक्त पित्त तथा श्रम की पीडा को दूर करता है। यह सुगन्धित है तथा भ्रान्ति एवं सन्ताप को शान्त करता है और उत्तमतर्पण (तृप्तिकारक) है।

धन्वन्तरी – राजनिघण्टु के अनुसार– कुमुद शीतल, स्वादिष्ट पाक में तिक्तरस तथा कफ को दूर करनेवाला है। यह रक्त विकार को दूर करता है, दाह, श्रम तथा पित्त विकार को शान्ति करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार– उत्पलिनी (कमलिनी) शीतल तथा तिक्तरस है और रक्तज रोग को दूर करती है तथा पित्त का नाश करती है। यह ताप, कफ विकार, रक्त विकार, प्यास, श्रम तथा वमन को शान्त करती है।

धन्वन्तरी निघण्टु के अनुसार– पद्मिनी शिशिर तथा रूक्ष है और कफ विकार एवं पित्तविकार को दूर करती है।

राजनिघण्टु के अनुसार- पद्मिनी मधु तिक्तरस, कषाय रस तथा अधिक शीतल है। यह पित्तविकार, क्रिमि रोग, शोथ, वमन भ्रान्ति तथा सन्ताप को शान्त करती है।

धन्वन्तरी निघण्टु के अनुसार- पद्म (कमल) का बीज स्वादिष्ट तथा तिक्तरस है और यह उत्तम गर्भ स्थापक है। यह रक्तपित्त को शान्त करता है तथा थोड़ा वायु को प्रकुपित करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- पद्म बीज, कटु तथा स्वादिष्ट है और पित्तज छर्दि को अच्छी तरह दूर करता है। यह दाह तथा रक्त विकार शान्त करता है और पाचन एवं रुचिकारक है।

धन्वन्तरी निघण्टु के अनुसार- कमल का बिस (तन्तु) अविदाही कहा गया है तथा रक्त पित्त को शान्त करता है। यह विष्टम्भी है, मधुर है, रूक्ष है, दुष्पच्य है तथा वातप्रकोपक है।

राजनिघण्टु के अनुसार- कमल मृणाल (तन्तु) शीतल, तिक्तरस तथा कषायरस है और पित्त विकार तथा दाह को शान्त करता है। यह मूत्रकृच्छ्र विकार का नाश करता है और रक्त विकार एवं वमन को अच्छी तरह दूर करता है।

धन्वन्तरी निघण्टु के अनुसार- पद्मकन्द (भिषोड़) स्वाद में कषाय रस है तथा विपाक में तिक्त रस है। यह शीतवीर्य है तथा रक्त पित्त से उत्पन्न उपद्रवों का नाश करनेवाला कहा गया है।

राजनिघण्टु के अनुसार- कमल शालूक, कटुरस, विष्टम्भि, रूक्ष, रुचिकारक तथा कफनाशक है। यह कषाय रस है, कास एवं पित्त नाशक है तथा प्यास एवं दाह निवारक है।

धन्वन्तरी निघण्टु के अनुसार- पद्मकेशर ही तृषानाशक, शीतल, रूक्ष तथा पित्त विकार, रक्तविकार एवं क्षयरोग का नाश करता है। यह कषाय रसवाला पित्त विकार नाशक है।

राजनिघण्टु के अनुसार- किंजल्क (पद्मकेशर), मधुर, रूक्ष, कटुरस, तथा मुख के व्रण का शोधन करता है। यह शीतल है, रक्तपित्त नाशक है तथा प्यास एवं दाह का निवारण करता है।

भावप्रकाश के अनुसार- संवर्तिका (कमल का नवदल) शीलत, तिक्तरस तथा कषाय रस है और यह दाह एवं प्यास को दूर करती है। यह मूत्रकृच्छ्र, गुदव्याधि (अर्शरोग) तथा रक्त पित्त का नाश करती है। पद्मकी कर्णिका (बीज कोष), तिक्तरस कषायरस, मधुर तथा शीतल है। यह मुख को साफ करती है और लघु है तथा प्यास, रक्त विकार, कफ विकार एवं पित्त विकार को दूर करती है।

वैद्यकशास्त्र में उत्पलादि कमल का प्रयोग-

१. रक्तपित्त में उत्पलादि (कमल आदि) के किञ्जल्क (पद्मकेसर) का प्रयोग- उत्पल कुमुद तथा कमल का किञ्जल्क (पद्म केसर) ग्राहक रक्तपित्त का शमन करनेवाला है। (च.मू.अ.२५) **२. रक्तपित्त में मृणाल (कमलनाल) का प्रयोग**- दुरालभा (यवास), पित्तपापड़ा तथा मृणाल (कमलनाल) एक साथ या अलग-अलग प्रयोग करने से ये योग रक्त पित्त को शान्त करते हैं। (च.चि.अ. ४) **३. मूत्रकृच्छ्र में कमल का प्रयोग**- कमल तथा उत्पल कमल का कषाय रक्तपित्त में पान करे। (च. चि. अ. २६)

रक्तार्श में पद्मकिंजल्क (कमलकेसर) का प्रयोग - शक्कर तथा कमल का केसर तिल के साथ नवनीत (मक्खन) मिलाकर खाने से गुदज (अर्श) रोगों को दूर करता है। (वाग्भट चि. अ. ८)

गुदा के बाहर निकलने पर पद्मिनी पत्र का प्रयोग- कमलिनी के कोमल पत्तों को शक्कर के साथ जो व्यक्ति खाता है उसका गुदा बाहर नहीं निकलता है ऐसा निश्चित है। (चक्र. क्षुद्र रोगाधिकार)

१. ज्वरातिसार में पद्मकमल का प्रयोग- उत्पल (कमल) अनार का छाल तथा किञ्जल्क (पद्मकेसर) इन सब का चूर्ण चावल के धोवन के साथ पान करने से ज्वरातिसार का नाश करता है। (भा. प्र. म. ख. अतिसार चि.) २. शूकर दंष्ट्रोद्भूत ज्वर में पद्ममूल का प्रयोग- राजीव (कमल) मूल का कल्क गाय के घी के साथ प्रातः पान करने से सूअर के दांत के काटने से उत्पन्न भयंकर ज्वर शान्त होता है। (भा. प्र. म. ख. अ. ४)

१. मुख से रक्त के निकलने पर पद्मकिञ्जल्क का प्रयोग- पद्मकिञ्जल्क (पद्मकेसर) का चूर्ण मिश्री के साथ चाटे। यह मुख से निकलते हुए रक्त को शीघ्र ही रोकता है। (हारीत चि. अ. ११) २. मूत्रावरोध में पद्मकन्द का प्रयोग- पद्मिनी कन्द (भिषोड़) को तैल के साथ पकाकर तथा गोमूत्र मिलाकर तीव्र वेदनायुक्त मूत्र निरोध में पान करे। (हारीतः चि. अ. ३०)

Constituents—The rhizome and seeds contain resins, glucose, meterabin, tannin, fat and an alkaloid similar to nupharine identical with that obtained from nupharluteum. (*Materia Medica of India* II, p. 39). **Actions and uses**—The seeds are demulcent and nutritive; the filaments and flowers are cooling, astringent, bitter, and expectorant. Syrup of flowers are used in coughs, to check haemorrhage from bleeding piles, in sanguineous fluxes from the bowels and in menorrhagia. The lotus flowers and fresh leaves with sandal wood or emblic myrobalans are used as a cooling application to the forehead in cephalalgia, to the skin in erysipelas and to other external inflamations. A cooling bed sheet made to kamala is used for fever patients with high fever. The seeds with those of Euryale ferox (Makhanna) are used as an article of diet. The starch contained in the rhizome when collected, constitutes a sort of arrowroot known to Chinese as Ghaanfeen. The powder of the seeds kamarkakri is known by the name of Bhesabola. These two products come from Shanghai, and are largely used by native women as a demulcent in leucorrhoea. (R. N. Khory—II. p. 39).

पद्मकम्

पद्मकम्, पद्मकाष्ठम्। Prunus Pudum, Roxb.

परिचयज्ञापिका संज्ञा–"पीतरक्तः" "पाटलापुष्पवर्णकः", "पद्मगन्धि"। उत्पत्तिबोधिका संज्ञा–"मालयम्" "केदारजम्"। पद्मकं शिशिरं स्निग्धं कषायं रक्तपित्तनुत्। गर्भस्थैर्यकरं प्रोक्तं ज्वरच्छर्दिविषापहम्॥ मोहदाहज्वरभ्रान्तिकुष्ठविस्फोटशान्तकृत्। पद्मकं शीतलं तिक्तं रक्तपित्त-विनाशनम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टू राजनिघण्टूश्च॥ पद्मकं तुवरं तिक्तं शीतलं वातलं लघु। विसर्पदाहविस्फोटकुष्ठश्लेष्मास्रपित्तनुत्॥ गर्भसंस्थापनं रुच्यं वमिव्रणतृषाप्रणुत्। भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः–'रक्तपित्ते' पद्मकम्–"उशीरकालीयकलोध्रपद्मक...। पृथक् पृथक् चन्दनतुल्यभागिकाः। सशर्करास्तण्डुलधावनाप्लुताः रक्तं सपित्तं शमयन्ति सद्यः।" (चि. ४ अ.)। चरकः॥ 'हिक्काश्वासयोः' पद्मकम्–"...पद्मकं वा घृतप्लुतं" (चि. ४ अ.)। वाग्भटः।

पद्मकम्, पद्मकाष्ठम् - Prunus pudum, Roxb.

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- पद्मकम्, पद्मकाष्ठम्। हि.- पद्माख, पद्मकाठ। बं.- पद्मकाठ। म.- पद्मकाष्ट, पद्मक। गु.-

पद्मकतूलाकडु, पद्मकाठी। ते.- एण्डण्डा सहदेवि, पद्मपेचुक्का, पद्मप्रचिवक। ले.- प्रूनुस पदुम (Prunus pudum)। अं.- हिमालयन चेरी (Himalayan Cherry)।

परिचयज्ञापिका संज्ञा - पीतरक्तः, पाटलापुष्पवर्णकः, पद्मगन्धिः। **उत्पत्ति बोधिका संज्ञा**- मालयम्, केदारजम्।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरी निघण्टु, राजनिघण्टु के अनुसार- पद्मक (पद्मकाठ) शीतल, स्निग्ध तथा कषाय रस है और रक्तपित्त को दूर करता है। यह गर्भ को स्थिर करता है तथा ज्वर, वमन एवं विषविकार का नाश करता है। यह मोह, दाह, ज्वर, भ्रम, कुष्ठरोग तथा विस्फोट को शान्त करता है। पद्मक शीतल तथा तिक्तरस है और रक्तपित्त का नाश करता है।

भावप्रकाश के अनुसार- पद्मक (पद्मकाठ) कसैला, तिक्तरस, शीतल, वातकारक तथा लघु है और यह विसर्प, दाह, विस्फोटक, कुष्ठरोग, कफ विकार, रक्त विकार तथा पित्त विकार को दूर करता है।

वैद्यक शास्त्र में पद्मक का प्रयोग-

रक्तपित्त में पद्मक का प्रयोग- श्वास, कालीयक (पतंग), लोध तथा पद्मकाठ इन सब को अलग-अलग चन्दन के बराबर भाग लेकर चूर्ण बना ले और समान भाग शक्कर मिलाकर चावल के धोअन के साथ पान करे। यह शीघ्र ही रक्तपित्त को शान्त करता है। (च.चि.अ.४)

हिक्का, श्वास में पद्मक का प्रयोग- पद्मक को घृत से लिप्त कर तथा उसको जलाकर उसका धूम ग्रहण करने से हिक्का तथा श्वास शान्त होता है। (वाग्भट चि. अ. ४)

Constituents—Amygdalin. **Actions and uses**—The bark is used as a bitter tonic and sedative. It is given during convalescence from acute diseases and in palpitation of the heart. (*Materia Medica of India*—II p. 244).

परूषकम्

परूषकम्, परूषम्। Grewia Asiatica, Linn.

परिचयज्ञापिका संज्ञा–"नीलवर्णम्" "मृदुफलम्" "अल्पास्थि"। परूषकं फलं चाम्लं वातघ्नं पित्तकृद् गुरु। तदेव 'पक्वं' मधुरं वातपित्तनिर्व्हणम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ परूषमम्लं कटुकं कफार्त्तिजिद्॥ वातापहं तत् 'फलमेव' पित्तद॥ सोष्णं च पक्वं मधुरं रुचिप्रदम्। पित्तापहं शोफहरञ्च पीतम्॥ राजनिघण्टुः॥ परूषकं कषायाम्ल'मामं' पित्तकरं लघु। तत्-'पक्वं' मधुरं पाके शीतं विष्टम्भि वृंहणम्॥ हृद्यन्तु पित्तदाहास्त्रज्वरक्षयसमीरहृत्। भावप्रकाशः।

वैद्यके व्यवहारः–'मदात्ययस्य पिपासायां' परूषकम्–"परूषकानां पीलूनां रसं...॥" (चि. १२ अ.)। चरकः॥ 'रोहिणी'नामकगलरोगे परूषकम्–"...कवलो द्राक्षापरूषैः क्वथितो हितः॥" (म. ख. ४ भा.)। भावप्रकाशः।

विविध भाषाओं में नाम-

सं- परूषकम्, परायरम, अल्पास्थि। हि.- फालसा परूषा, फलहे। बं.- परूष, फलसा। म.- पर्पका। क.-

वेहहा, दागल। ते.- पुटिकी चिहिद। गु.- घ्रामण। भा.- फालायः। फा.- पालसा। अ.- फालसह। ले.- ग्रीविया एसियाटिका।

परिचय ज्ञापिका सं.- नीलवर्णम्, मृदुफलम्, अल्पास्थि।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- परूषक (फालसा) का फल अम्लरस है तथा वातनाशक है, पित्तकारक है एवं गुरु है। वही परुषक फल पक जाने पर मधुररस है तथा वात पित्त को दूर करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- परूषक अम्ल रस तथा कटु रस है और कफज पीड़ा को दूर करता है। यह वात शामक है और परुषक का फल पित्तकारक है। पका हुआ परूषक फल उष्ण है, मधुर रस है तथा रुचिप्रद है। यह पित्तनाशक है तथा पान करने से शोथहर है।

भावप्रकाश के अनुसार- आम परूषक कषाय रस तथा अम्ल रस, पित्तकारक तथा लघु है। वह पका हुआ परूषक फल पाक में मधुर है, शीतल है, विष्टम्भकारक है तथा मांसवर्द्धक है। यह हृदय को बल देनेवाला है तथा पित्त विकार, दाह, रक्त विकार, ज्वर, क्षय रोग तथा वात विकार को दूर करता है।

वैद्यक शास्त्र में परूषक का प्रयोग-

मदात्यय की प्यास में परूषक का प्रयोग- मदात्यय जन्य प्यास में परूषक तथा पीलू फल का रस लाभदायक है। (च.चि.अ.१२)।

रोहिणी नामक गले के रोग में परूषक का प्रयोग- मुनक्का तथा परूषक के फल का क्वाथ रोहिणी नामक गले के रोग में कवल धारण करना हितकर है। (म. ख. ४ भा. प्र.)।

Actions and uses—Cooling refrigerant; the bark is demulcent, and given in fever and dysentery. (R. N. Khory—II. p. 88).

पर्पटकः

पर्पटः। Oldenlandia herbacea, D.L.O. biflora, Roxb.

पर्पटः शीतलस्तिक्तः पित्तश्लेष्मज्वरापहः। रक्तदाहारुचिग्लानिमदभ्रमविनाशनः॥ धन्वन्तरीय-निघण्टू राजनिघण्टुश्च॥ पर्पटो हन्ति पित्तास्त्रभ्रमतृष्णा-कफज्वरान्। सङ्ग्राही शीतकस्तिक्तो दाहनुद्वातलो लघुः॥ भावप्रकाशः॥ पर्पटो पित्तहृद्दाहज्वरजित् कफशोषणः। राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) 'रक्तपित्ते' पर्पटः–"दुरालभापर्पटकमृणालम्। ...एते समस्ता गणशः पृथग्वा रक्तं सपित्तं शमयन्ति योगाः॥" (चि. ४ अ.)। (२) 'अतिसारे' पर्पटः–"...मुस्तपर्पटकेन" (चि. १० अ.)। (३) 'मदात्यये' पर्पटः–"मुस्तपर्पटकेन वा–" (चि. १२ अ.)। चरकः॥ (१) 'ज्वरिणः' शाकार्थं पर्पटः–कर्कोटकं पर्पटकं...। ...शाकार्थे ज्वरिताय प्रदापयेत्" (ज्वर-चि.)। (२) 'पित्तज्वरे' पर्पटः–"एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशनः।" (ज्वर-चि.)। (३) 'वमने' पर्पटः–"क्वाथः पर्पटजः पीतः सक्षौद्रश्छर्द्दिनाशनः।" (छर्द्दि-चि.)। चक्रदत्तः।

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- पर्पटः, वरतिक्तः। हि.- पित्तपापड़ा, शहतरा, दमन पापड़ा, पन पप्पड़। बं.- श्वेत पापड़ा, वनसुलफा।

म.- सिरपटी। ता.- तुरा। गु.- पित पापड़ो, क्षेत्र पर्पट। क.- पर्पाटक। फा.- भ्याहतरा। अ.- वफलतल मलीज, शाहतरज। अं.- जस्टिली प्रेकेरेवेन्स। ले.- फ्यूमोरिया पर वी फ्लोरा।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु, राज निघण्टु के अनुसार- पर्पट (पित्त पापड़ा), शीतल तथा तिक्त रस है तथा पित्त विकार, कफ विकार तथा ज्वर को दूर करता है। यह रक्त विकार, दाह, अरुचि, ग्लानि, मद (मदात्यय) तथा भ्रम का नाश करता है।

भाव प्रकाश के अनुसार- पित्त पापड़ा पित्त विकार, रक्त विकार, भ्रम, प्यास, कफ विकार एवं ज्वर को नष्ट करता है। यह ग्राही है, शीतल है, तिक्त रस है तथा दाह नाशक है, वातकारक है और लघु है। **राजवल्लभ के अनुसार-** पित्त पापड़ा पित्त हर, दाह तथा ज्वर शामक एवं कफ शोषक है।

वैद्यक शास्त्र में पित्त पापड़ा का प्रयोग-

(१) रक्त पित्त में पित्त पापड़ा का प्रयोग- दुरालभा (यवासा) पित्त पापड़ा तथा कमल मृणाल इन सब को एक साथ या अलग-अलग प्रयोग करने से ये योग रक्तपित्त को शान्त करते हैं। (च.चि.अ.४)। (२) **अतिसार में पित्त पापड़ा का प्रयोग-** नागरमोथा तथा पित्त पापड़ा का क्वाथ या चूर्ण अतिसार का नाश करता है। (चि.चि.अ.१०) (३) **मदात्यय में पर्पट का प्रयोग-** नागरमोथा तथा पित पापड़ा का प्रयोग मदात्यय में करे। (च.चि.अ.१२)।

(१) ज्वर रोगियों के शाक के लिए पर्पटक का प्रयोग- कर्कोटक (च.अ.) तथा पित्त पापड़ा का शाक ज्वर के रोगी को खिलाये। (चक्र. ज्वर चि.)। (२) **पित्त ज्वर में पर्पटक का प्रयोग-** पित्त ज्वर का नाश करने के लिए एक ही पित्त पापड़ा श्रेष्ठ है। (चक्र. ज्वर चि.)। (३) **वमन में पर्पटक का प्रयोग-** पित्त पापड़ा का क्वाथ मधु के साथ पान करने से वमन का नाश करता है। (चक्र. छर्दि चि.)।

Chemical Composition—A watery extract of this plant gave coloured precipitates with alkalies, a green reaction with ferric chloride, none with gelatin or acids, an abundant cream cloured precipitate with lead acetate, and afforded indications of an alkaloid. A watery solution of an alcholic extract had similar properties; it was mawkish and saline to the taste, and when evaporated to dryness it formed a mass of cubical, deliquescent crystals. A portion of this extract ignited left a saline residue consisting of Potassium, Sodium, and a small quantity of Calcium, mostly existing as chlorides. No ammonia was detected in the herb, and the alkaloid was shaken out of an alkaline solution with ether, but had no very characteristic reaction. The value of the plant as a cooling medicine no doubt is due to the inorganic salts present. The dried herb left an unusuallylarge incombustible residue, amounting to 22 p.c., very soluble in water. (Pharmacograhia India, II, 129)

पलाण्डुः

पलाण्डुः। Allium Cepa, Linn.

गुणप्रकाशिका संज्ञा- दुर्गन्धः, मुखदूषकः। श्लेष्मलो मारुतघ्नश्च पलाण्डुर्न च पित्तहृत्। आहारयोगी बल्यश्च गुरुर्बल्योऽथ रोचनः॥ चरकः (सू. २७ अ.)। बलावहः पित्तकरोऽथ किञ्चित्

पलाण्डुरग्निञ्च विवर्द्धयेच्च। स्निग्धो रुचिस्थः स्थिरधातुकर्त्ता बल्योऽथ मेधाकफपुष्टिदश्च॥ स्वादुर्गुरुः शोणित-पित्तशस्तः स पिच्छिलः 'क्षीरपलाण्डुरुक्तः'। सुश्रुतः (सू. ४६ अ.)। पलाण्डुस्तद्‌गुणन्यूनः श्लेष्मलो नातिपित्तलः। कफवातार्शसां पथ्यः स्वेदेऽभ्यवहृतौ तथा॥ वाग्भटः (सू. ६ अ.)। पलाण्डुस्तद्‌गुणो नान्यो विपाके मधुरस्तु सः। कफं करोति नो पित्तं केवलोऽनिलनाशनः॥ पलाण्डुः कटुको बल्यो गुरुर्वातास्त्रपित्तजित्। अन्यः 'क्षीरपलाण्डु'श्च वृष्यो मधुरपिच्छलः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ पलाण्डुः कटुको बल्यः कफपित्तहरो गुरुः। वृष्यश्च रोचनः स्निग्धो वान्तिदोषविनाशनः॥ राजनिघण्टुः॥ स्वादुः पाके रसेऽनुष्णः कफ-कृन्नातिपित्तलः। हरते केवलं वातं बलवीर्यकरो गुरुः॥ भावप्रकाशः।

वैद्यके व्यवहारः– (१) 'नासिकास्रुते रक्ते' पलाण्डुः–"यवासमूलानि पलाण्डु-मूलम्। नस्यं...। (चि. ५ अ.)। (२) 'रक्तार्शःसु' पलाण्डुः– "रसस्वड़्यूषयवागूसंयुक्तः केवलोऽथवा जयति। रक्तमतिवर्त्तमानं वातञ्च पलाण्डुरुपयुक्तः॥" (चि. ९ अ.)। 'हिक्काश्वासयोः' पलाण्डुः–"रसोनस्य पलाण्डोर्वा मूलं...। नावयेत्..."। (चि. २१ अ.)। चरकः।

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– पलाण्डुः, यवनेष्टः, दुर्गन्धः, मुखदूषकः। हि.– पियाजा, प्याज। बं.– पेयाज। म.– कान्दा, पाठरा, कादा। कं.– मुल्ली, उली, इरुल्ली। गु.– इंगुली। म.– कोदो। ते.– नीरउली, उल्लिगड्डा। द्रा.– वेगाय। फा.– आज। अ.– वसल, अरुशील, वसन्त लकार। अं.– ओनियन। ले.– एल्लियान सियो।

गुण प्रकाशिका सं.– दुर्गन्ध, मुख दूषक।

गुण एवं दोष–

चरक के अनुसार– पलाण्डु कफकारक है, वातनाशक है किन्तु पित्त दूर नहीं करता है। यह आहार के साथ प्रयोग करने योग्य है, बलकारक है, गुरु है, बल्य तथा रोचक है। (च.सू.अ.२७)।

सुश्रुत के अनुसार– पलाण्डु (प्याज) बलकारक है, तथा थोड़ा पित्त कारक है। प्याज जाठराग्नि को बढ़ाता है, स्निग्ध है, रुचिकर है तथा रस रक्तादि धातु को स्थिर रखनेवाला है। यह बल कारक है, मेधा, कफ तथा पुष्टिप्रद है, स्वाद है, गुरु है, रक्त पित्त रोग में प्रशस्त है। यह पिच्छल है तथा इसको क्षीर पलाण्डु कहते हैं (सु सू.अ.४६)।

वाग्भट के अनुसार– पलाण्डु उसके गुण से कुछ न्यून है, कफकारक है, अधिक पित्तवर्द्धक नहीं है, कफ तथा वातार्श के रोगियों के लिए पथ्य है, स्वेद में तथा अभ्यवहृति में पथ्य है। (वाग्भट सू.अ.६)।

धन्वन्तरी निघण्टु के अनुसार– पलाण्डु उसका कोई ऊन्दागुण नहीं है। यह विपाक में मधुर है। यह कफ को बढ़ाता है, पित्त को नहीं बढ़ाता है, केवल वात नाशक है। पलाण्डु कटु रस, बल्य तथा गुरु है और वात रक्त तथा रक्त पित्त को दूर करता है। दूसरे प्रकार का पलाण्डु क्षीर पलाण्डु है। यह वीर्यवर्द्धक है, मधुर है तथा पिच्छिल है।

राजनिघण्टु के अनुसार– पलाण्डु कटु रस तथा बलकारक है और कफ-पित्त को दूर करता है, गुरु है, वीर्यवर्द्धक है, रोचन है तथा स्निग्ध है और वमन दोष का नाश करता है।

भावप्रकाश के अनुसार- पलाण्डु पाक में स्वादिष्ट, रस में अनुष्ण है, कफकारक है, अधिक पित्तकारक नहीं है। यह केवल वात विकार को दूर करता है और मल तथा वीर्यकारक है, गुरु है।

वैद्यक शास्त्र में पलाण्डु का प्रयोग-

(१) नासिका से रक्त निकलने पर पलाण्डु का प्रयोग- यवासा की जड़ तथा पलाण्डु के रस का नस्य-नासिका से निकलते रक्त को रोकता है। (च.चि.अ.५)। **(२) रक्तार्श में पलाण्डु का प्रयोग-** रस खड़, यूष तथा यवागू से युक्त पलाण्डु का उपयोग रक्तार्श में अधिक रक्त निकले पर करने से रक्तार्श तथा वात रोग को जीत लेता है। (च.चि.अ.९)। **(३) हिक्का तथा श्वास में पलाण्डु का प्रयोग-** लहसुन तथा पलाण्डु के मूल का नस्य देना हिक्का तथा श्वास रोग में हितकर है। (च.चि.अ.२१)

Constituents—Scillapicrine soluble in water and alcohol. Scillamarine soluble in alcohol and chloroform and Scillinine soluble in alcohol but insoluble in water and chloroform; a peculiar Carbo-hydrate, sinistrin, sugar, mucilage and citrate of Calcium ash, 3 p.c. (R. N. Khory—II, p. 616). **Actions and uses**—In small doses, stimulant, expectorant and diuretic, It slows heart's beat and increases the flow of urine. It is excreted by the bronchial, genito-urinary and gastro-intestinal secretions. In large doses, it is emetic and cathartic and in excessive doses a narcotic acrid poison, causing nausea, strangury or bloody urine, often suppression of urine, gastro enteritis followed by convulsion and paralysis of heart and death. As an expectorant it is given in chronic bronchitis, whooping cough, asthma, croup and catarrhal affections; generally combined with ammonia, ipecacuanha asafetida and benzoin. In croup it is generally given with tartar emetic. It should never be given in the acute stage of inflammation of the lungs. As diuretic it is given with digitalis and salines, in asthenic form of cardiac dropsy when there is no fever, in rhcumatism, calculous affections and skin diseases. In these it is generally mixed with figs; anise, grape juice and honey. Syrup of squills is of great value in acute bronchitis where the sputum is tenaceous and scanty; also in chronic bronchitis associated with emphysema and in spasmodic croup (R. N. Khory—II, p. 615).

पलाशः

पलाशः, किंशुकः। Butea frondosh.

व्यवहारज्ञापिका संज्ञा–"याज्ञिकः", "समिद्वरः"। परिचयज्ञापिका संज्ञा–"त्रिपर्णः" "वक्रपुष्पः" "रक्तपुष्पः"। गुणप्रकाशिका संज्ञा– "क्षारश्रेष्ठः" "बीजस्नेहः"। क्षारश्रेष्ठः कृमिघ्नश्च सङ्ग्राही दीपनः सरः। प्लीहगुल्मग्रहण्यर्शोवातश्लेष्मविनाशनः॥ किंशुकस्यापि 'कुसुमं' सुगन्धि मधुरञ्च यत्। 'बीजन्तु' कटुकं स्निग्धमुष्णं कृमिवलासजित्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ पलाशस्तु कषायोष्णः कृमिदोषविनाशनः। 'तद्बीजं' पामाकण्डुतिदद्रुत्वग्दोषनाशकृत्॥ तस्य 'पुष्पञ्च' सोष्णञ्च कण्डूकुष्ठार्त्तिनाशनम्। रक्तः पीतः सितो नीलः कुसुमैस्तु विभज्यते॥ किंशुकैर्गुण–साम्येऽपि सितो विज्ञानदः स्मृतः। राजनिघण्टुः॥ कषायः कटुकस्तिक्तः स्निग्धो गुदजरोगजित्। भग्नसन्धानकृद्दोष-ग्रहण्यर्शःकृमीन् हरेत्॥ तत् 'पुष्पं' स्वादु पाके तु कटु तिक्तं कषायकम्। वातलं कफपित्तास्त्रकृच्छ्रजिद् ग्राहि शीतलम्॥ तृड्दाहशामकं वातरक्तकुष्ठहरं परम्। 'फलं' लघूष्णं मेहार्शःकृमि-

वातकफापहम्॥ विपाके कटुकं रूक्षं कुष्ठगुल्मो-दरप्रणुत्। भावप्रकाशः॥ 'पलाशमूलस्वरसो' नेत्रच्छायान्ध्यपुष्पजित्। 'तद्बीजं' कृमिविध्वंसि 'काण्डो' रसायने हितः॥ शोढलनिघण्टुः॥ 'पलाशभवनिर्यासो' ग्राही च क्षपयेद्ध्रुवम्। ग्रहणीं मुखजान् कासाञ्जयेत् स्वेदातिनिर्गमम्॥ आत्रेयसंहिता।

वैद्यके व्यवहारः– (१) 'रक्तपित्ते'–पलाशत्वक्–"पलाशवृक्षस्य रसेन सिद्धं तथैव कल्केन मधुद्रवेन। लिह्याद्घृतं...।" (चि. ४ अ.)। (२) 'अर्शःसु' पलाशपत्रम्–"त्रिवृद्दन्तीपलाशानां...। सुभृष्टं यमके दद्याच्छाकं दधिसरायुतम्॥" (चि. ९ अ.)। (३) 'अतिसारे' पलाशफलम्– "पलाशफलनिर्यूहं पयसा पाययेत तम्। ततोऽनुपाययेत् कोष्णं क्षीरमेव यथाबलम्॥ प्रवाहिते मले तेन प्रशाम्यत्युदरामयः।" (चि. १० अ.)। चरकः॥ 'क्रिमिषु' पलाशबीजम्–"पलाशबीजस्वरसं कल्कं वा तण्डुलाम्बुना।" (उ. ५४ अ.)। सुश्रुतः॥ 'रक्तपित्ते' पलाशवल्कलम्– "पलाशवल्कलक्वाथो सुशीतः शर्करान्वितः॥ पिबेद्वा मधुसर्पिभ्यां...॥" (चि. २ अ.)। वाग्भटः॥ 'अर्शसुः' पलाशक्षारः–"व्योषगर्भं" पलाशस्य त्रिगुणे भस्मवारिणि। साधितं पिबतः सर्पिः पतन्त्यर्शांस्य-संशयम्॥" (अर्शः चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) 'रक्तगुल्मे' पलाशक्षारः–"पलाश-क्षारतोयेन सर्पिःसिद्धं पिबेच्च सा।" (गुल्मचिः)। (२) 'पुष्पाख्ये नेत्ररोगे' पलाशपुष्पम्–"पलाशपुष्पस्वरसैर्बहुशः परिभावितम्। करञ्जबीजं तद्वर्त्तिर्दृष्टेः पुष्पं विनाशयेत्॥" (म. ख. ४ भा.)। (३) 'वीर्यवत्तनयलाभार्थं' पलाशपत्रम्–"पत्रमेकं पलाशस्य पिष्ट्वा दुग्धेन गर्भिणी। पीत्वां पुत्रमवाप्नोति वीर्यवन्तं न संशयः॥" (म. ख. ४ भा.)। भावप्रकाशः॥ (१) 'पित्ताभिष्यन्दे' पलाशशोणितम्–"पालाशं स्याच्छोणितं चाञ्जनार्थं...।" (नेत्ररोगाधि.)। (२) 'योनिगाढीकरणार्थं' पलाशफलम्–"पलाशोदुम्बरफलं तिलतैलसमन्वितम्। मधुना योनि-मालिप्य गाढीकरणमुत्तमम्॥" (स्त्रीरोगाधि.)। (३) 'वृश्चिकदंशने' पलाशबीजम्–"अर्कक्षीरेण सम्पिष्टं लेपाद्बीजं पलाशजम्। वृश्चिकार्त्तिं हरेत्...॥" (विषाधिका.)। वङ्गसेनः।

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- पलाश, किंशुक, क्षार-श्रेष्ठ, ब्रह्म वृक्ष, सामवेद। हि.- ढाक, पलास, परास, टेसू., फेसू., धारा, काकरिया। बं.- पलाश गाछ। म.- पलाश। गु.- खारवरो। क.- मुत्तलु, मृदुगदगिड़! ते.- मातका चेट्टु। ता.- परशन। मा.- छिवरो। द्रा.- देवाश। फा.- फल ध। अं.- हीपोरेस्ट फेन। ले.- व्युटिका फविफ्लोरा।

व्यवहार ज्ञापिका सं.- याज्ञिका, समिद्धरः। **परिचय ज्ञापिका सं.**- त्रिपर्णः, वक्रपुष्पः, रक्त-पुष्पः। **गुण प्रकाशिका सं.**- क्षारश्रेष्ठः, बीजस्नेहः।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- क्षार श्रेष्ठ (पलाश), क्रिमिनाशक, ग्राही, जाठराग्नि दीपक तथा सारक है और प्लीहा रोग, गुल्मरोग, ग्रहणी, अर्शरोग, वातरोग तथा कफ रोग का नाश करता है। पलास का फूल सुगन्धित तथा मधुर है। पलास का बीज कटु रस स्निग्ध तथा उष्ण है और क्रिमि रोग तथा कफ रोग को जीत लेता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- पलास कषाय रस तथा उष्ण है और क्रिमि विकार का नाश करता है। पलास का बीज पामा, कण्डू, दाद तथा त्वचा दोष का नाश करता है। पलास का पुष्प उष्ण है तथा कण्डू, कुष्ठ तथा पीड़ा का नाश करता है। पलास विभाग रक्त पुष्प, पीत पुष्प, सितपुष्प तथा नील पुष्प के आधार पर किया जाता है। पुष्पों के गुण की साम्यता होने पर भी सफेद पुष्प वाला पलाश विज्ञान प्रद है।

भावप्रकाश के अनुसार- पलास कषाय रस, कटु रस तथा तिक्त रस है, उष्ण है और गुदजरोग (अर्श रोग) को दूर करता है। यह भग्न संधान कारक है, त्रिदोष, ग्रहणी, अर्शरोग तथा क्रिमिरोग को नष्ट करता है। पलास का पुष्प पाक में स्वादिष्ट, कटु रस तथा तिक्तरस है एवं कषाय रस है। यह वातकारक है तथा कफविकार, पित्त विकार, रक्त विकार और मूत्र कृच्छ्र को दूर करता है, ग्राही है तथा शीतल है। यह प्यास तथा दाह शामक है और वातरक्त एवं कुष्ठरोग को दूर करता है। पलास का फल लघु तथा उष्ण है और यह प्रमेह, अर्श, क्रिमिरोग, वातरोग तथा कफ रोग को दूर करता है। यह विपाक में कटु है, रूक्ष है तथा कुष्ठ रोग, गुल्म रोग एवं उदर रोग को दूर करता है।

सोढ़ल निघण्टु के अनुसार- पलास मूल का स्वरस नेत्रछाया, नेत्रान्ध्य तथा नेत्र पुष्प (मोतियाबिन्द) को जीत लेता है। पलास का बीज क्रिमिनाशक है। पलास का काण्ड रसायन में हितकर है।

आत्रेय संहिता के अनुसार- पलास का निर्यास (गोंद) ग्राही है तथा ग्रहणी, मुख रोग, [illegible]स रोग का नाश करता है तथा स्वेद निकलने को रोकता है।

वैद्यक शास्त्र में पलास का प्रयोग-

(१) रक्त पित्त में पलास छाल का प्रयोग- पलास छाल के रस से सिद्ध घृत शहद मिलाकर रक्त पित्त में चाटे। (च.चि.अ.४) **(२) अर्श रोग में पलास पत्र का प्रयोग**- निशोथ, दन्ती तथा पलास के पत्तों का शाक घी तथा तैल में भूनकर तथा दही का पानी मिलाकर अर्श रोग में प्रयोग करे। (च.चि.अ. ९)। **(३) अतिसार में पलास फल का प्रयोग**- पलास के फल का यूष अतिसार के रोगी को दूध के साथ पान कराये। उसके बाद गरम जल पान कराये तथा बल के अनुसार दूध का ही प्रयोग करे। इससे मल के निकल जाने पर उदर रोग शान्त हो जाता है। (च.चि.अ.१०)।

क्रिमिरोग में पलास बीज का प्रयोग- क्रिमिरोग में पलास बीज का स्वरस का कल्क चावल के धोअन के साथ पान कराये। (सु.शि.५४)।

रक्त पित्त में पलास छाल का प्रयोग- पलास के छाल का क्वाथ शीतल कर तथा शक्कर मिलाकर या मधु एवं घृत के साथ रक्त पित्त में पान करे। (वाग्भट चि.अ.२)।

अर्श रोग में पलास क्षार का प्रयोग- पलास के पत्ते के बीच में व्योष (सोठ, पीपर, मरिच) को जलाकर उसके भस्म को तीन बार जल से धोकर उसमें साधित घृत सेवन करने से अर्श रोग का नाश होता है, इसमें सन्देह नहीं है। (चक्र.अर्शरोग चि.)।

(१) रक्त गुल्म में पलास क्षार का प्रयोग- पलास क्षार के जल के साथ सिद्ध घृत रक्त गुल्म में पान कराये। (भाव प्र. गुल्म चि.)। **(२) पुष्पाख्य नेत्र रोग (मोतिया बिन्द) में पलास पुष्प का प्रयोग**- पलास के पुष्प के स्वरस के साथ अनकर करञ्ज बीज को भावित कर तथा उसकी वाति बनाकर नेत्र में लगाये। यह नेत्र के पुष्प रोग (मोतिया विन्द) को नष्ट करती है। (भावप्रकाश म.ख.४)। **(३) बलवान पुत्र की प्राप्ति**

के लिए पलास पत्र का प्रयोग- पलास के एक पत्र को पीसकर उसका दूध के साथ पान कर गर्भिणी बलवान पुत्र को प्राप्त करती है, इसमें सन्देह नहीं है। (भाव.म.ख. ४)

(१) **पित्ताभिष्यन्द रोग में पलास शोणित का प्रयोग**- नेत्र रोग में पलास रस का अञ्जनार्थ प्रयोग करे। (बंगसेन नेत्ररोगाधिकार)। (२) **योनिगाढीकरणार्थ पलास फल का प्रयोग**- पलास तथा उदुम्बर (गूलर) के फल को तिल तैल में पकाकर उस तैल का मधु मिलाकर योनि में लेप करने से स्त्रियों की योनि अच्छी तरह कड़ी बन जाती है। (बंगसेन, स्त्रीरोगाधिकार)। (३) **वृश्चिचक दंश में पलाश बीज का प्रयोग**- पलास के बीज को मदार के दूध के साथ पीसकर लेप करने से वृश्चिक (बिच्छू) दंश के विष को दूर करता है (बंगसेन, विषाधिकार)।

Constituents—The gum contains kino, tannic and gallic acids 50 p.c. mucilage and ash 2 p.c.; on dry distillation it yields pyrocate chin. The seeds contain a tasteless oil of a yellow colour; wax or fat 18 p.c. albuminoid, gum, glucose, organic acids, metarabic acid and phlobaphene, cellulose, ash 5 p.c., (*Materia Medica of India II, p.* 165).

Actions and uses—Leaves astringent and alterative used in diarrhoea, pyrosis, sweating of phthisis, diabetes, menorrhagia, worms and colic. A hot poultice of leaves is used to disperse boils and pimples. The decoction is used as an injection into the rectum in diarrhoea dysentery, and into the vagina in leucorrhoea; also used as a gargle in sore throat and ulcers of the mouth. The seeds are aperient and anthelmintic, used with success in tape-worms and round-worms. A decoction of seeds and infusion of flowers is used with nitre as a diuretic in dysuria and in retention of urine. Externally the seeds are irritant and used with lime juice in dhobie's itch, ringworm, indolent ulcers and fistula. Gum.—A powerful astringent and a good substitute for kino and may be used for all the purposes for which kino is used. The natives use this gum, combined with rock salt and other astringents in pterygium and opacities of the Cornea. Flowers are also astringent and diuretic. Varalians of flowers are applied to the pubes in dysuria and retention of urine and to promote menses. (*Do, II, p. 195*).

पाठा

पाठा, अम्बष्ठा। Clypea hernendifolia, Cissampelos, hexendra, C. pareira.

पूर्वाचार्यकृतवर्णनम्–"पाठा अविद्धकर्णी पाढ़ इति लोके" (डल्हणः ३८ सू. आरग्वधादिग. टी.)। परिचयज्ञापिका संज्ञा– "त्रिशिरा", "अविद्धकर्णी" (अविद्धोऽच्छिद्रः पर्णरूपः कर्णोऽस्याः), "वृत्तपर्णी"। गुणप्रकाशिका संज्ञा– "तिक्तपुष्पा", "वरतिक्ता", "दीपनी"। पाठा तिक्तरसा वृष्या विषघ्नी कुष्ठकण्डूनुत्। छर्दिहृद्रोगज्वरजित्त्रिदोषशमनी परा॥ पाठाऽतिसारशूलघ्नी कफपित्तज्वरापहा। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ पाठा तिक्ता गुरूष्णा च वातपित्तज्वरापहा। भग्नसन्धानकृत् पित्तदाहाति-सारशूलहृत्॥ राजनिघण्टुः॥ पाठोष्णा कटुका तीक्ष्णा वातश्लेष्महरी लघुः। हन्ति शूलज्वरच्छर्दि-कुष्ठातिसारहृद्रुजः॥ दाहकण्डूविषश्वासकृमिगुल्मगरव्रणान्। भावप्रकाशः॥ पाठाऽतिसारशमनी लघ्वी दोषत्रयापहा। राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः–'अर्शःसु' पाठा–"दुष्पर्शकेन बिल्वेन यमान्या नागरेण वा। एकैकेनापि

संयुक्ता पाठा हन्त्यर्शसां रुजम्॥" (चि. ९ अ.)। चरकः॥ (१) 'लवणमेहे' पाठा– "पाठाऽगरुकषायं लवणमेहिनं..."। (चि. ११ अ.)। (२) 'ग्रन्थीभूते शुक्रे' पाठा– "ग्रन्थीभूते पिबेत् पाठाम्।" (शा. २ अ.)। सुश्रुतः॥ अर्शःकर्त्तु'र्वायोरनुलोम्याय' पाठा– "पाठया वा युतं तक्रं वातवर्चोऽनुलोमनम्।" (चि. ८ अ.)। वाग्भटः॥ (१) 'अन्तर्विद्रधौ' पाठा– "शमयति पाठामूलं क्षौद्रयुक्तं तण्डुलाम्बुना पीतम्। अन्तर्भूतविद्रधिमुद्धतमाश्वेव मनुजस्य च।" (विद्रधिचि.)–(२) 'सुखप्रसवार्थं' पाठामूलम्– पाठायास्तु शिफां योनौ या नारी सम्प्रधारयेत्। शिरःप्रसवकाले तु सा सुखेन प्रसूयते।" (स्त्रीरोगचि.)। चक्रदत्तः॥ 'अतिसारे' पाठामूलम्– "पाठां पिष्ट्वा च गोदध्ना...। अतिसारं व्यथादाहं हन्त्येवाशु न संशयः।" (म. ख. १मः भा.)। भावप्रकाशः॥ 'अतिसारे' पाठापत्रम्– "माहिषेन तु तक्रेण पाठापत्रं तथैव" (अतिसाराधि.)। वङ्गसेनः॥

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– पाठा, अम्बष्ठा, प्राभीना, पापचेलिका। हि.– पाठा, (पाठ, रठी), पाढ, पाढी, पुरइन पाढ़ी, पुरइन पाती। बं.– आकनादि, निमक, चक्रपाठा। म.– पहाड़, पहाड़मूल। गु.– पाड, कालीपाठ, करेंटीमूल, करेंढ़ियु। क.– पांठा, अगुरु सुटि। ता.– पाड़ा। उ.– अकान्विन्धि। तु.– तिम्पले। ते.– चिर वछी। अं.– परेरा रूट।

पाठा का पूर्वाचार्यकृत वर्णन– पाठा अविद्धकर्णी पाढ़ इति लोक (डल्वण सु.टी.सू.अ. ३८ आरग्वधादिगण)। **परिचयज्ञापिका सं.–** त्रिशिरा, अविद्धकर्णी। अविद्ध अछिद्र, पर्णरूप कर्म है इसका इति अविद्धपर्णी, वृत्त पर्णी। **गुणप्रकाशिका सं.–** तिल पुष्पा, वरतिक्ता, दीपनी।

गुण एवं दोष–

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार– पाठा तिक्तरस, वीर्यवर्द्धक तथा विष नाशक है और कुष्ठरोग एवं कण्डू को दूर करती है। यह वमन, हृदय रोग तथा ज्वर को जीत लेती है और त्रिदोष को अच्छी तरह शान्त करती है। पाठा अतिसार तथा शूल का नाश करती है और कफ विकार, पित्त विकार एवं ज्वर को दूर करती है।

राजनिघण्टु के अनुसार– पाठा तिक्तरस, गुरु तथा उष्ण है और वात, पित्त एवं ज्वर को दूर करती है, भग्न संधान कारक है और पित्त विकार, दाह, अतिसार तथा शूल का दूर करती है।

भावप्रकाश के अनुसार– पाठा उष्ण, कटुरस तथा तीक्ष्ण है और वातरोग तथा कफ रोग को दूर करती है एवं लघु है। यह शूल, ज्वर, वमन, कुष्ठरोग तथा अतिसार की पीड़ा को दूर करती है।

राजवल्लभ के अनुसार– पाठा अतिसारशामक है, हल्की है तथा तीनों दोषों का नाश करती है।

वैद्यक शास्त्र में पाठा का प्रयोग–

अर्शरोग में पाठा का प्रयोग– यवासा, बिल्व यवायन या नागर (सोंठ) इनमें किसी एक के साथ पाठा का प्रयोग अर्श की पीडा का नाश करती है। (च.चि.९)।

(१) लवण मेह में पाठा का प्रयोग– पाठा तथा अगर का कषाय लवण मेही को पिलाये। (सं.चि.अ. ११)। **(२) शुक्ल के गाँठ पड़ जाने पर पाठा का प्रयोग–** शुक्ल के गाँठ पड़ जाने पर पाठा का क्वाथ पान करे। (सु.शि.अ.२)।

अर्शकारक वायु के अनुलोमन के लिए पाठा का प्रयोग– पाठा के साथ तक्र (मट्ठा) को मिलाकर वात एवं मल के अनुलोमन के लिए पान कराये। (वाग्भट.चि.अ.८)।

(१) **अन्तर्विद्रधि में पाठा का प्रयोग**- पाठा के मूल का चूर्ण मधु मिलाकर चावल के धोअन के साथ पान करने से मनुष्य की भयंकर अन्तर्विद्रधि शान्त हो जाती है। (चक्र.विद्रधि चि.)। (२) **सुखपूर्वक प्रसव के लिए पाठा मूल का प्रयोग**- जो स्त्री पाठा (पाढ़) के मूल का योनि में धारण करती है वह प्रसव काल में सुखपूर्वक प्रसव करती है। (चक्र.स्त्री रोग चि.)।

अतिसार में पाठामूल का प्रयोग- पाठा को पीसकर दही के साथ पान करने से अतिसार व्यथा तथा दाह शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं है। (भाव.म.ख.१)।

अतिसार में पत्र का प्रयोग- पाठा के पत्र के चूर्ण का या कषाय का भैंस के मट्ठा के साथ सेवन करने से अतिसार रोग शान्त होता है। (वंगसेन अतिसाराधिकार)।

पारिभद्रः

पारिभद्रः, पारिजातः, पालिधा। Erythrima Indica, Lam.

परिचयज्ञापिका संज्ञा—"कण्टकी", "कण्टकिंशुकः", "रक्तकुसुमः", "रक्तकेसरः", "बहुपुष्पः"। गुणप्रकाशिका संज्ञा—कृमिघ्नः। पारिभद्रः कटूष्णः स्यात् कफवातनिकृन्तनः। अरोचकहरः पथ्यो दीपनश्चापि कीर्त्तितः॥ राजनिघण्टुः॥ पारिभद्रोऽनिलश्लेष्मशोथमेदः-क्रिमिप्रणुत्। तत्'पत्रं' पित्तरोगघ्नं कर्णव्याधिविनाशनम्॥ भावप्रकाशः॥ पारिभद्रोऽनिलश्लेष्मशोथमेहकृमीञ्जयेत्। राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः—(१) 'उदकमेहे' पारिभद्रः—"उदकमेहिनं पारिजात-कषायं पाययेत्" (चि. ११ अ.)। (२) 'पुतना' प्रतिषेधे पारिभद्रः— "...पारिभद्रकः बालानां परिषेचने" (उ. ३२ अ.)। (३) 'कृमिषु' पारिभद्रपत्रम्—"पारिभद्रकपत्राणां क्षौद्रेण स्वरसं पिबेत्" (उ. ५४ अ.)। सुश्रुतः॥ अधोगे 'अम्लपित्ते' पारिभद्रः—"पारिभद्रदलानीति चामलक्याः फलानि च। क्वाथपानं प्रयोक्तव्यमम्लपित्तं व्यपोहति॥" (चि. २५ अ.)। हारीतः॥ (१) अवबाहुके पारिभद्रः—"अथ पारिभद्रात्...। स्वरसं पिबेद्वा "(वातव्याधिचि.)। (२) 'कफोद्भूताक्षिशूले' पारिभद्रः—"वल्कलं पारिजातस्य तैलं काञ्जिकसैन्धवम्। कफोद्भूताक्षिशूलघ्नं तरुघ्नं कुलिशं यथा॥" (नेत्रचि.)। चक्रदत्तः॥

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- पारिभद्र, मन्दार, पारिजात। हि.- फरहन्द, जलनीम। बं.- पलित मन्दार। म.- पांगरा। गु.- पाण्डरेव, पनएवेशु। क.- हरिवाल। म.- मसकृमरम्। ते.- मुलमोति चेट्टु। द्रा.- पजीर, कल्याणमुरङ्गे। ता.- मुराक। भा.- फरहद। ले.- एरिथ्रिमा इन्डिका।

परिचय ज्ञापिका सं.- कण्टकी, कण्टकिंशुकः, रक्तकुसुम, रक्तकेशर, बहुपुष्प। **गुणप्रकाशिका सं.**- क्रिमिघ्नः।

गुण एवं दोष-

राजनिघण्टु के अनुसार- पारिभद्र (फरहद) कटु रस तथा उष्ण है और कफ विकार तथा वात विकार का नाश करता है। यह अरोचक को दूर करता है, पथ्य है तथा जाठराग्नि दीपक है।

भावप्रकाश के अनुसार- पारिभद्र वात तथा कफ विकार, शोथ, मेदो विकार एवं क्रिमिरोग को दूर करता है। फरहद का पत्ता पित्तरोग का नाश करता है तथा कर्ण व्याधि को दूर करता है।

राजवल्लभ के अनुसार- वात तथा कफ विकार, शोथ, प्रमेह एवं क्रिमिरोग को दूर करता है।

वैद्यक शास्त्र में पारिभद्र का प्रयोग-

(१) उदकमेह में पारिभद्र का प्रयोग- उदकमेह के रोगी को फरहद का क्वाथ पान कराये। (सू.चि. अ.११)। **(२) पूतना प्रतिषेध के लिए पारिभद्र का प्रयोग-** बालकों के पूतनाग्रह होने पर फरहद के क्वाथ से सेचन (स्नान) कराये। (सु.उ.अ.३२)। **(३) क्रिमिरोग में पारिभद्र पत्र का प्रयोग-** क्रिमिरोग में फरहद के पत्ते का रस मधु के साथ पान कराये। (ए.उ.अ.५४)।

अधोमार्ग से निकलते अम्ल पित्त में पारिभद्र का प्रयोग- फरहद का पत्ता तथा आँवला का फल इन दोनों का क्वाथ पान कराये। यह अम्ल पित्त को शान्त करता है। (हारीतसं. अ.२५)।

(१) अवबाहुक रोग में पारिभद्र का प्रयोग- अवबाहुक रोग में पारिभद्र का स्वरस पान करे। (चक्र. वात.चि.)। **(२) कफजन्य नेत्र शूल में पारिभद्र का प्रयोग-** फरहद के छाल का तैल, काञ्जी तथा सेन्धा नमक इन सब को मिलाकर प्रयोग करने से कफजन्य नेत्र शूल का नाश होता है, जैसे वज्र से पेड़ का नाश होता है। (चक्र.नेत्र.चि.)।

Constituents— The bark contains two resins and a bitter alkaloid erytherine. (*R. N. Khory II. p.* 212). **Actions and Uses—**The leaves are alterative, laxative, diuretic, galactagogue and emmenagogue used in syphilis, fevers, amenorrhoea &c. With cocoanut milk they are used as galactagogue. The bark is astringent and tonic and given in dysentry fevers &c. The leaves made hot (varalians) are applied to disperse buboes. Erytherine has actions antagonistic to those of strychnine, and may be used as an antidote. (Do II. p. 212).

पिप्पली

पिप्पली, मागधी, कृष्णा, उपकुल्या, कणा, वैदेही। Piper longum. Chavica Roxburghii. **गजपिप्पली।**

पिप्पली कटुका स्वादुर्हिमा स्निग्धा त्रिदोषजित्। तृड्ज्वरोदर-जन्त्वामनाशनी च रसायनी॥ 'मूल'गुणाः—कटूष्णं पिप्पलीमूलं श्लेष्मसङ्घातनाशनम्। वातोच्छित्तिकरं हन्ति कृमीन् वह्निप्रदीप्तिकृत्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ पिप्पली ज्वरहा वृष्या स्निग्धोष्णा कटुतिक्तका। दीपनी मारुतश्वासकास-श्लेष्मक्षयापहा॥ 'मूल'गुणाः—कटूष्णं पिप्पलीमूलं श्लेष्मकृमिविनाशनम्। दीपनं वातरोगघ्नं रोचनं पित्तकोपनम्॥ राजनिघण्टुः॥ पिप्पली दीपनी वृष्या स्वादुपाका रसायनी। अनुष्णा कटुका स्निग्धा वातश्लेष्महरी लघुः॥ पिप्पली रेचनी हन्ति श्वासकासोदरज्वरान्। कुष्ठप्रमेहगुल्मार्शःप्लीहशूलाम-मारुतान्॥ 'आर्द्रा' कफप्रदा स्निग्धा शीतला मधुरा गुरुः। पित्तप्रशमनी सा तु शुष्का पित्तप्रकोपिनी॥ पिप्पली मधुसंयुक्ता मेदःकफविनाशिनी। श्वासकासज्वरहरा वृष्या मेध्याग्निवर्द्धिनी॥ जीर्णज्वरेऽग्निमान्द्ये च शस्यते गुडपिप्पली। कासाऽजीर्णारुचिश्वासहृत् पाण्डुकृमिरोगनुत्॥ द्विगुणः पिप्पलीचूर्णाद्गुडोऽत्र भिषजां मतः। 'मूल'-गुणाः—दीपनं पिप्पलीमूलं कटूष्णं पाचनं लघु। रूक्षं पित्तकरं भेदि कफवातोदरापहम्॥ आनाहप्लीहगुल्मघ्नं कृमिश्वासक्षयापहम्। भावप्रकाशः॥ भेदनं पिप्पली'मूलं' दीपनं कफनाशनम्। राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहार:–कासे पिप्पली–"अथवा पिप्पलीकल्कं घृतभृष्टं ससैन्धवम्" (चि. २२)। चरकः॥ (१) वातशोणिते पिप्पली– "...पिप्पलीर्वा क्षीरपिष्टा वारिपिष्टा वा पञ्चाभिवृद्ध्या दशाभिवृद्ध्या वा पिबेत् क्षीरौदनाहारो दशरात्रं भूयश्चापकर्षयेदेवं यावत् पञ्चदशचेति। तदेतत् पिप्पलीवर्द्धमानकं वातशोणितविषमज्वरारोचक-पाण्डुरोगप्लीहोदरार्शः-कासश्वासशोफशोषाग्नि-सादहृद्रोगोदराण्युपहन्ति।" (चि. ५ अ.)। (२) अर्शःसु पिप्पली पिप्पली-मूलञ्च–"पिप्पली पिप्पलीमूल... पूर्ववदेव, निरन्नो वा तक्रमहरहर्मासमुपसेवेत" (चि. ६ अ.)। (३) क्रिमिषु पिप्पलीमूलम्–"पिबेद्वा पिप्पलीमूलमजामूत्रेण संयुतम्" (उ. ५४ अ.)। (१) कफजकासे पिप्पली–"तैलभृष्टञ्च वैदेहीकल्काक्षं ससितोपलम् पाययेत् कफकासघ्नं कुलत्थसलिलाप्लुतम्॥" (चि. ३ अ.)। (२) प्रवाहिकायां पिप्पली–"पिप्पल्याः पिबतः सूक्ष्मं रजो मरिचजन्म वा। चिरकालानुषक्ताऽपि नश्यत्याशु प्रवाहिका॥" (चि. ९ अ.)। वाग्भटः॥ (१) श्लेष्मज्वरे पिप्पली–"क्षौद्रेण पिप्पलीचूर्णं लिह्यात् श्लेष्मज्वरापहम्। प्लीहानाहविबन्धार्त्तिकासश्वासविमर्द्दनम्॥" (चि. ३ अ.)। (२) कासादौ पिप्पली– "कासाजीर्णे श्वासहृत्पाण्डुरोगे मन्देवाग्नौ कामलाऽरोचके च। तेषां शस्तं पिप्पली स्याद्गुडेन हन्यान्नॄणां जीर्णमाशु ज्वरञ्च॥" (चि. २ अ.)। (३) स्तन्यवर्द्धनार्थं पिप्पलीमूलम्–"मरिचं पिप्पलीमूलं क्षीरं क्षीरविवृद्धये" (चि. ५२ अ.)। हारीतः॥ (१) वातश्लेष्मज्वरे पिप्पली–"पिप्पलीभिः शृतं तोय-मनभिष्यन्दि दीपनम्। वातश्लेष्मविकारघ्नं प्लीहज्वरविनाशनम्॥" (ज्वर-चि.)। (२) रक्तपित्ते पिप्पली–"वासकस्वरसे... सप्तधा परिभाविता। कृष्णा वा मधुना लीढा रक्तपित्तं द्रुतं जयेत्॥" (रक्तपित्त-चि.)। (३) ऊरुस्तम्भे पिप्पली–"...पिप्पलीमथ नागरम्। ऊरुस्तम्भे पिबेन्मूत्रैर्दशमूलीरसेन वा॥" (ऊरुस्तम्भ-चि.)। (४) शोथे पिप्पली–"...सेवेत पिप्पली वा पयोऽन्विता (शोथचि.)। (५) अम्लपित्ते पिप्पली–"पिप्पली मधुसंयुक्ता चाम्लपित्तविनाशिनी" (अम्लपित्त-चि.) चक्रदत्तः॥ (१) प्लीह्नि पिप्पली–"तथा दुग्धेन पातव्याः पिप्पल्यः प्लीहशान्तये" (म. ख. ३ भा.)। (२) गृध्रस्यां पिप्पली–"गोमूत्रैरण्डतैलाभ्यां कृष्णाचूर्णं पिबेन्नरः। दीर्घकालोत्थितां हन्ति गृध्रसीं कफवात-जाम्॥" भावप्रकाशः॥ (१) निद्रानाशे पिप्पलीमूलम्–"गुडं पिप्पलीमूलस्य चूर्णेनालोडितं लिहन्। चिरादपि च सन्नष्टां निद्रामाप्नोति मानवः॥" (ज्वराधिका.)। (२) परिणामशूले पिप्पली–"क्वाथेन कल्केन च पिप्पलीनां सिद्धं घृतं माक्षिकसम्प्रयुक्तम्। क्षीरानुपानं विनिहन्त्यवश्यं शूलं प्रवृद्धं परिणामसंज्ञम्॥" (परिणामशूलाधि.)। हारीतः॥

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- पिप्पली, मागधी, कृष्णा, शोण्डि, चपला, कणा, कोला। हि.- पीपर, पीपल। बं.- पिपुल। म.- पिपली। गु.- लिण्डी पीपल। क.- पिप्पली। ता.- पिंपिल। फा.- पिलपिल दराज। अ.- दारकिल किल। अं.- लांग पीपर। ले.- पाइपर लाङ्गम्।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- पीपर कटु रस, स्वादिष्ट, शीतल तथा स्निग्ध है और त्रिदोषनाशक है। यह प्यास, ज्वर, उदर विकार तथा क्रिमि रोग का नाश करती है तथा रसायन है। पिपरामूल कटुरस तथा उष्ण है और कफ समूह का नाश करता है। यह वात रोग का नाश करता है, क्रिमिरोग का नाश करता है तथा जाठराग्नि दीपक है।

राजनिघण्टु के अनुसार- पीपर ज्वरनाशक है, वीर्यवर्द्धक है, स्निग्ध है, उष्ण है तथा कटु रस एवं तिक्तरस है। यह जाठराग्नि दीपक है, वातरोग नाशक है, श्वास, कास, कफ विकार तथा क्षय रोग को दूर करती है। पिपरा मूल कटुरस तथा उष्ण है और कफ विकार एवं क्रिमि रोग को नष्ट करता है। यह जाठराग्नि दीपक है, वात रोग-नाशक है, रोचक है एवं पित्त प्रकोपक है।

भावप्रकाश के अनुसार- पीपर जाठराग्नि दीपक, वीर्यवर्द्धक पाक में स्वादिष्ट तथा रसायन है। यह नेत्र के लिए हितकर है, कटुरस है, स्निग्ध है तथा वातकफनाशक है एवं लघु है। पीपर रेचन है और श्वास, कास, उदररोग ज्वर, कुष्ठरोग, प्रमेह, गुल्मरोग, अर्शरोग, प्लीहा रोग, शूल तथा आमवात का नाश करती है। आर्द्र पिप्पली कफप्रद है, स्निग्ध है, शीतल है, मधुर है, गुरु है तथा पित्तशामक है, वही शुष्क पिप्पली पितप्रकोपक है। पिप्पली मधु के साथ प्रयोग करने पर मेदो विकार तथा कफ का नाश करती है, श्वास, कास तथा ज्वर को दूर करती है, वीर्यवर्द्धक है तथा मेध्य है और जाठराग्नि को बढ़ाती है। जीर्ण ज्वर, मन्दाग्नि में पिप्पली गुड़ के साथ सेवन करना प्रशस्त है। यह कास, अजीर्ण, अरुचि तथा श्वास को दूर करती है तथा पाण्डुरोग एवं क्रिमिरोग का नाश करती है। चिकित्सकगण पिप्पली चूर्ण का दुगुना गुड़ लेने को कहे हैं। पिपरामूल जाठराग्नि दीपक है, कटुरस है, उष्ण है, पाचन है, लघु है, रूक्ष है, पित्तकारक है, मलभेदक है तथा कफ विकार, वात विकार एवं उदर रोग को दूर करता है। यह आनाह, प्लीहा रोग तथा गुल्म रोग का नाश करता है और क्रिमिरोग, श्वास रोग तथा क्षय रोग को दूर करता है।

राजवल्लभ के अनुसार- पिपरामूल मलभेदक है, जाठराग्नि दीपक है तथा कफनाशक है।

वैद्यक शास्त्र में पिप्पली का प्रयोग-

कास रोग में पीपर का प्रयोग- कास रोग में पिप्पली के कल्क को घृत में भूनकर तथा सैन्धा नमक मिलाकर सेवन कराये। (च.चि.अ.२२)।

(१) वातरक्त में पिप्पली का प्रयोग- पीपर के दूध के साथ पीसकर या जल के साथ घीसकर पांच-पांच पीपर बढ़ाते हुए तथा दश-दश पीपर बढ़ाते हुए पान करे। भोजन में दूध तथा भात खाय दश दिन तक पुनः उसी क्रम से कम करते हुए सेवन करे पन्द्रह दिन तक। यह पिप्पली वर्द्धमानक योग वातरक्त, विषमज्वर, अरोचक, पाण्डु रोग, प्लीहा रोग, उदररोग, अर्शरोग, कास, श्वास, शोथ, सूखा रोग, मन्दाग्नि, हृदयरोग तथा उदर रोग को नष्ट करती है। (सु.चि.अ.५)। (२) **अर्श रोग में पिप्पली तथा पिप्पली मूल का प्रयोग**- पूर्व प्रकार पिप्पली वर्द्धमान योग की तरह, पीपर तथा पिपरामूल का प्रयोग अन्न को न खाते हुए करे या एक मास तक प्रतिदिन तक्र (मट्ठा) सेवन करे। (सु.चि.अ.६)। (३) **क्रिमिरोग में पिपरामूल का प्रयोग**- पिपरामूल के चूर्ण का बकरी के मूत्र के साथ पान करे। (सु.उ.अ.५४)।

(१) कफजकास में पिप्पली का प्रयोग- वैदेही (पीपर) का तैल में भूना हुआ कल्क एक अक्ष (१० ग्राम) लेकर तथा मिश्री मिलाकर कुरथी के जल में मिलाकर पान करे। यह कफज कास का नाश करता है। (वाग्भट चि.अ.३) (२) **प्रवाहिका में पिप्पली का प्रयोग**- पीपर का महीन चूर्ण या मरिच का चूर्ण पान करने से चिरकाल से उत्पन्न प्रवाहिका का नाश होता है। (वाग्भट चि.अ.९)।

(१) कफज्वर में पीपर का प्रयोग- पीपर का चूर्ण मधु के साथ चाटे। यह श्लेष्म ज्वर को दूर करता है। यह प्लीहा, अनाह, विबन्ध, पीड़ा, कास तथा श्वास रोग का नाश करता है। (हा.चि.अ.३)। (२) **कास आदि में पिप्पली का प्रयोग**- यह कास, अजीर्ण तथा श्वास रोग को दूर करता है। पाण्डूरोग में, मन्दाग्नि में, कामला

रोग तथा अरोचक इन सब में पीपर तथा गुड़ का प्रयोग प्रशस्त है तथा मनुष्यों के जीर्ण ज्वर का यह पिप्पली गुड़ योग शीघ्र ही पुराने ज्वर का नाश करता है। (हा.चि.अ.२)। (३) **दूध बढ़ाने के लिए पिपरा मूल का प्रयोग**- मरिच चूर्ण तथा पिपरा मूल का चूर्ण तथा दूध दूध बढ़ाने के लिए पान करे। (हा.चि.अ.५२)।

(१) **वातश्लेष्म ज्वर में पीपर का प्रयोग**- पीपर के साथ पकाया जल अनभिस्यन्दी है तथा जाठराग्नि-दीपक है। यह वातश्लेष्म विकार का नाश करता है तथा प्लीहा एवं ज्वर का नाश करता है। (चक्र.ज्वर चि.)। (२) **रक्तपित्त में पिप्पली का प्रयोग**- अडूसा के रस में सात बार भावित पीपर का चूर्ण शहद के साथ चाटने से शीघ्र ही रक्तपित्त को दूर करता है। (चक्र.रक्तपित्त चि.)। (३) **ऊरुस्तम्भ में पीपर का प्रयोग**- पीपर तथा सोंठ का चूर्ण गोमूत्र के साथ या दशमूली के क्वाथ के साथ ऊरुस्तम्भ रोग में पान करे। (चक्र.ऊरुस्तम्भ चि.)। (४) **शोथ में पीपर का प्रयोग**- शोथ में दूध के साथ पीपर का चूर्ण पान करे। (चक्र.शोथ चि.)। (५) **अम्लपित्त में पीपर का प्रयोग**- पीपर का चूर्ण शहद मिलाकर चाटने से अम्ल पित्त का नाश होता है। (चक्र.अम्लपित्त चि.)।

(१) **प्लीहा रोग में पीपर का प्रयोग**- प्लीहा रोग की शान्ति के लिए पीपर का दूध के साथ पान करे। (भाव.म.ख.अ.३)। (२) **गृध्रसी रोग में पीपर का प्रयोग**- पीपर के चूर्ण का गोमूत्र तथा एरण्ड तेल के साथ गृध्रसी रोग में पान करे। यह कफ वात जन्य दीर्घ काल का उत्पन्न गृध्रसी रोग का नाश करता है। (भावप्रकाश)।

(१) **निद्रानाश में पीपरामूल का प्रयोग**- पिपरामूल के चूर्ण को गुड़ के साथ चाटने से मनुष्य अधिक समय से नष्ट निद्रा को प्राप्त करता है। (हा.चि.ज्वराधिकार)। (२) **परिणाम शूल में पीपर का प्रयोग**- पीपर के क्वाथ तथा कल्क के साथ विधिवत सिद्ध घृत शहद मिलाकर दूध के साथ पान करने से अवश्य ही बढ़े हुए परिणाम शूल का नाश होता है। (हा.परिणामशूलय.)।

Constituents—Resin, volatile oil, starch, gum fatty oil, inorganic matter and an alkaloid. (*R.N. Khory*—II. p. 519). **Actions and uses**—Stimulant, carminative, laxative and alterative; given in chest affections, dyspepsia, chronic cough, enlargement of the spleen and other abdominal viscera, gout, lumbago, &c; as a resolvent they are useful in relieving the symptoms due to obstructions of the liver and spleen. With *pakhanabheda* a paste of them is applied to the breasts as a lactagogue (Do—II, p. 519).

पियालः

पि(प्रि)यालः चारः। Buchanania Latifolia, Roxb.

परिचयज्ञापिका संज्ञा– "बहुलवल्कलः", "स्नेहबीजः", "भक्ष्य-बीजः"। चारस्य च फलं पक्वं वृष्यं गौल्याम्लकं गुरु। 'तद्बीजं' मधुरं वृष्यं पित्तदाहार्त्तिनाशनम्॥ राजनिघण्टुः॥ वातपित्तहरं वृष्यं पियालं गुरु शीतलम्। चारस्य च फलं पक्वं स्वाद्वम्लं दुर्जरं प्रियम्॥ चार-'मज्जा' समधुरा वृष्या पित्तानिलापहा। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ चारः पित्तकफास्त्रघ्न'स्तत्फलं' मधुरं गुरु। स्निग्धं वृष्यं मरुत्पित्तदाहज्वरतृषापहम्॥ पियालमज्जा मधुरो वृष्यः पित्तानिलापहः। हृद्योऽति दुर्जरः स्निग्धो विष्टम्भी चामवर्द्धनः॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः– रक्तातिसारे पियालत्वक्– "शल्लकीवदरी-जम्बुपियालाम्राऽर्जुनत्वचः।

पीताः क्षीरेण मध्वाढ्याः पृथक् शोणित-नाशनाः॥" (अतिसार-चि.)। चक्रदत्तः॥ रक्तपित्ते पियालः-"...पियाल-मधुकेन वा। ...रक्तजित् साधितं पयः॥" (म. ख. २ भा.)। भावप्रकाशः॥

विविध भाषाओं में नाम-

परिचय ज्ञापिका सं.- बहुल वल्कल, स्नेह बीज, भक्ष्य बीज।

गुण एवं दोष-

राजनिघण्टु के अनुसार- चार (प्रियाल-चिरौंजी) का पका फल वीर्यवर्द्धक, गले के लिए हितकर अम्ल रस तथा गुरु है। प्रियाल का बीज मधुर तथा वीर्यवर्द्धक है और पित्त तथा दाह एवं पीड़ा का नाश करता है।

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- पियाल (चिरौंजी) वात पित्त को दूर करनेवाला वीर्यवर्द्धक, गुरु तथा शीतल है। चार (चिरौंजी) का पका फल स्वादिष्ट, अम्ल रस, दुष्पच तथा प्रिय है। चार की मज्जा मधुर, वीर्यवर्द्धक, पित्त तथा वातका नाशक है।

भावप्रकाश के अनुसार- चार (पियाल) पित्त विकार, कफ विकार तथा रक्त विकार का नाश करता है। चार का फल मधुर तथा गुरु है। यह स्निग्ध तथा सारक है और वातपित्त, दाह, ज्वर तथा प्यास को दूर करता है। पियाल की मज्जा मधुर तथा वृष्य है और पित्त विकार एवं वात विकार को दूर करता है। यह हृद्य है, अति दुष्पच है, स्निग्ध है, विष्टम्भी है तथा आमवर्द्धक है।

वैद्यकशास्त्र में पियाल का प्रयोग-

रक्तातिसार में पियाल वल्कल का प्रयोग- शल्लकी, वेर, जामुन, प्रियाल, आम तथा अर्जुन की छाल का चूर्ण अलग-अलग शहद मिलाकर दूध के साथ पान करने से रक्तातिसार का नाश होता है। (चक्र.अतिसार चि.)।

रक्तपित्त में पियाल का प्रयोग- पियाल (चिरौंजी) तथा मुलेठी के कल्क के साथ सिद्ध दूध पान करने से रक्तपित्त को दूर करता है। (भाव.म.अ.२)।

Constituents—Albuminoids 28 p.c., mucilage 2.5 p.c., oil 58 p.c., and fibre and ash 3.5 p.c. The expressed oil is straw coloured of a sweet taste and limpid. It congeals into a white semisolid mass at a low temperature. (*Materia Medica of India—R.N. Khory II. p. 163*). **Actions and uses**—Demulcent, nutritive and expectorant, given in cough and in general debility. The oil is used as an application for baldness (Do).

पीलुः

पीलुः। Salvadora persica, **महापीलुः**—S. Oleoides.

गुणप्रकाशिका संज्ञा—"गुडफलः", "विरेचनफलः"। रक्तपित्तहरः पीलुः 'फलं' स्वादु विपाकि च। अर्शोघ्नं बस्तिशमनं सस्नेहं कफवातजित्॥ पीलुजं च रसं स्वादु गुल्मार्शोघ्नं तु तीक्ष्णकम्। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ अङ्काह्वः कटुकः पीलुः कषायो मधुराम्लकः। सरः स्वादुश्च गुल्मार्शःशमनी दीपनः परः॥ मधुरस्तु 'महापीलु'र्वृष्यो विषविनाशनः। पित्तप्रशमनो रुच्य आमघ्नो दीपनीयकः॥ राजनिघंण्टुः॥ पीलु श्लेष्मसमीरघ्नं पित्तलं भेदि गुल्मनुत्। स्वादुतिक्तञ्च यत् पीलु तन्नात्युष्णं त्रिदोषहृत्। भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) मदात्ययस्य पिपासायां पीलु–"परूषकानां पीलूनां रसं..."। (चि. १२ अ.)। (२) आनाहे पीलु–पीलुकल्कोपसिद्धं वा घृतमानाहभेदनम्" (चि. १८ अ.)। चरकः॥ गुल्मे पीलु–"एवं पीलूनि पिष्ठानि पिबेत् सलवणानि तु" (उ. ४२ अ.)। सुश्रुतः॥ अर्शःसु पीलुफलानि–"...तक्रानुपानानि खादेत् पीलुफलानि (चि. ८ अ.)। वाग्भटः॥

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– पीलु, गुडफल, स्रंसी, शीतफल। हि.– पीलु, झल। बं.– पीलुगाछ। म.– लघु पीलु, घोरपीलु, किकचेला वृक्ष। गु.– पीलु जाल्य। क.– मिरीयेउगनि, दोहुपीलु। ते.– गालेगु चेट्टु, वरगोण्ड। ता.– कोफु। फा.– दरख्ते-भिस्वाक। अ.– इराक अराक। मा.– जाल। अं.– मस्टर्ड ट्री आफ स्क्रिरचर। ले.– साल्वेडोरा पर्सिका।

गुणप्रकाशिका सं.– गुड़फलः, विरेचन फलः।

गुण एवं दोष–

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार– पीलु रक्त पित्त को दूर करता है। पीलु का फल विपाक में स्वादिष्ट है। यह अर्श रोग का नाश करता है, बस्ति विकार को शान्त करता है और यह स्नेह के साथ कफ वात को दूर करता है। पीलु का रस स्वादिष्ट है तथा गुल्म रोग एवं अर्श रोग का नाश करता है ओर तीक्ष्ण है।

राजनिघण्टु के अनुसार– अंक को बतानेवाला पीलु कटु रस, कषाया, मधुर तथा अम्ल है। यह दस्तावर है, स्वादिष्ट है, गुल्म तथा अर्शरोग शामक है तथा उत्तम जाठराग्नि दीपक है। महापीलु फल मधुर है, वीर्यवर्द्धक है, विष विकार नाशक है, पिपासा शामक है, रुचिकारक है, आमनाशक है तथा जाठराग्नि दीपक है।

भावप्रकाश के अनुसार– पीलु कफ विकार तथा वात विकार का नाश करता है, पित्तकारक है, मलभेदक है तथा गुल्म रोग को दूर करता है। स्वादिष्ट तथा जो तिक्तरस है वह पीलु अधिक उष्ण नहीं है तथा त्रिदोष को दूर करनेवाला है।

वैद्यक शास्त्र में पीलु का प्रयोग–

(१) मदात्ययजन्य पिपासा में पीलु का प्रयोग– मदात्यय जन्य पिपासा में परूषक (फालसा) तथा पीलु फल के रस का प्रयोग करे। (च.चि.अ.१२)। **(२) आनाह रोग में पीलु का प्रयोग–** पीलु के कल्क से विधिवत् सिद्ध घृत आनाह रोग का भेदन करता है। (च.चि.अ.१८)।

गुल्म रोग में पीलु का प्रयोग– गुल्म रोग में पीलु को पीस तथा लवण मिला कर पान करे। (सु.उ. अ.४२)।

अर्शरोग में पीलु फल का प्रयोग– अर्शरोग में पीलु के फल को तक्र (मट्ठा) के साथ खाय। (वाग्भट चि.अ.८)।

Actions and uses—"In the *Pharmacopaeia of India*, we are told that Dr. Irvine employed the root-bark successfully as a vesicant. In Dr. Imlach's Report on snake bites in sind (Bom. Med. and Phys. Trans, New Ser., iii, p. 80) several cases are mentined in the tabular record, in which Pilu seeds were administered internally, with good effect. They are also said to be a favourite purgative (Dymock—II. p. 381).

पुत्रञ्जीवः

पुत्रञ्जीवः। Putrajiva Roxburghii.

पुत्रञ्जीवो हिमो वृष्यः श्लेष्मदो गर्भजीवदः। चक्षुष्यः पित्तशमनो दाह-तृष्णानिवारणः॥ राजनिघण्टुः॥ पुत्रञ्जीवो गुरुर्वृष्यो गर्भदः श्लेष्मवातहृत्। सृष्टमूत्रमलो रूक्षो हिमः स्वादुः पटुः कटुः॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः–श्लीपदे पुत्रञ्जीवः–"अनेनैव विधानेन पुत्रञ्जीवकजं रसम्। प्रयुञ्जीत भिषक् प्राज्ञः कालसात्म्यविभागवित्॥" (चि. १९ अ.)। सुश्रुतः॥ विस्फोटे पुत्रञ्जीवफलमज्जा–"पुत्रञ्जीवस्य मज्जानं जले पिष्ट्वा प्रलेपयेत्। कालस्फोटं विस्फोटञ्च सद्यो हन्ति सवेदनम्॥" भावप्रकाशः॥ उरोग्रहे पुत्रञ्जीवः–"पुत्रञ्जीवकशिग्रूत्थाः... रसा एकैकशः कोष्णा द्विशो वा रामठान्विताः॥" (उरोग्रहाधिकारे)। वङ्गसेनः॥

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– पुत्रञ्जीव, यष्टी, अर्थसाधक। हि.– जियापातो पिती, जिया-पतलु, हिनाइजिय। बं.– जियापुलो। म.– प्रभजीवक वृक्ष, जीवन पुत्र। गु.– पुत्र जीवक। ते.– शीष कुवर जुवि। ले.– पुत्रञ्जीव रोक्स वर्घार्ड।

गुण एवं दोष–

राजनिघण्टु के अनुसार– पुत्रञ्जीव (जीयापातो) शीतल, वीर्यवर्द्धक, कफकारक, गर्भजीवद तथा नेत्र के लिए हितकर है और पित्त को शान्त करता है, दाह एवं प्यास को दूर करता है।

भावप्रकाश के अनुसार– पुत्रञ्जीव गुरु, वीर्यवर्द्धक तथा गर्भप्रद है और कफ एवं वात विकार को दूर करता है। यह मल, मूत्र निकालनेवाला है, रूक्ष है, शीतल है, स्वादिष्ट है, लवण रस तथा कटु रस है।

वैद्यक शास्त्र में पुत्रञ्जीव का प्रयोग–

श्लीपद रोग में पुत्रञ्जीव का प्रयोग– श्लीपद रोग में पूर्वोक्त विधान से पुत्रञ्जीव का रस काल तथा सात्म्य को जाननेवाला चिकित्सक प्रयोग करे। (सु.चि.अ.१९)।

विस्फोट में पुत्रञ्जीव फल की मज्जा का प्रयोग– पुत्रञ्जीव के फल की मज्जा का जल के साथ पीसकर लेप करे। यह वेदनायुक्त काल स्फोट तथा विस्फोट का शीघ्र ही नाश करता है। (भावप्रकाश)।

उरोग्रह में पुत्रञ्जीव का प्रयोग– पुत्रञ्जीव तथा सहिजत्र का रस एक-एक कर या दोनों का थोड़ा गरम कर तथा हींग मिलाकर उरोग्रह में पान कराये। (बंगसेन)।

पुन्नागः

पुन्नागः। Calophyllum inophyllum, Linn.

पूर्वाचार्यकृतवर्णनम्–"पुन्नागः सुरपर्णिका सुगन्धिपुष्पा दक्षिणापथे सुरपतिनाम्ना प्रतीता" (उल्हणः)। परिचयज्ञापिका संज्ञा–"तुङ्गः", "शुभ्रपुष्पः", "रक्तरेणुः"। पुन्नागो मधुरः शीतः सुगन्धिः पित्तनाशकृत्। भूतविद्रावणश्चैव देवातानां प्रसादनः॥ राजनिघण्टुः॥

वैद्यके व्यवहारः- कुसुमनामनेत्ररोगे पुन्नागपत्रम्- "क्षुन्न-पुन्नागपत्रेण परिभावित-वारिणा। ...सेचनं कुसुमापहम्॥" (नेत्ररोग-चि.)। चक्रदत्तः।

विविध भाषाओं में नाम-

पुन्नाग (पूगीफल) का पूर्वाचार्यकृत वर्णन- पुन्नागः, सुरपर्णिका, सुगन्धिपुष्पा, दक्षिणा पथे सुरपति नाम्ना प्रतीता (डल्वणः)। **परिचय ज्ञापिका सं.**- तुङ्गः, शुभ्र-पुष्पः, रक्तरेणुः।

गुण एवं दोष-

राजनिघण्टु के अनुसार- पुन्नाग मधुर, शीतल तथा सुगन्धि है और पित्त का नाश करता है। यह भूतबाधा का विद्रावण (नाश) करता है तथा देवताओं को प्रसन्न करनेवाला है।

वैद्यक शास्त्र में पुन्नाग का प्रयोग-

कुसुम (नेत्रपुष्प-मोतियाविन्द) नामक नेत्र रोग में पुन्नाग के पत्र का प्रयोग- जीर्ण पुन्नाग के पत्तों के क्वाथ से नेत्र का सींचना नेत्र कुसुम रोग (मोतियाविन्द) को दूर करता है। (चक्र.नेत्र रोग)।

Constituents—A resinous substance and oil. The resin is soft of a parsley odour and resembles myrrh. It melts easily and desolves readily in alcohol. Does not yield umbelliferone by dry distillation. (*R.N. Khory—II, p. 82*). **Actions and uses—**Only used externally. The oil is rubefacient and irritant; mixed with hyduocarpus oil it is used for rheumatic joints, swollen glands &c; also in certain skin diseases as scabies and exanthematous eruptions. A paste of the seed is used to hasten maturation of enlarged glands, abscesses and boils. The pounded bark is used as an application for swelled testicles. (Do—II. p. 83).

पुनर्नवा

पुनर्नवा (रक्तः श्वेतञ्च)। Boerhaavia Diffusa, *Roxb.* **श्वेतपुनर्नवा**– Trianthema monogyna, P.C. Roy.

उत्पत्तिबोधिका संज्ञा–"वर्षाभूः"। गुणप्रकाशिका संज्ञा– "शोथघ्नी"। पुनर्नवा भवेदुष्णा तिक्तारूक्षा कफापहा। सशोफपाण्डु-हृद्रोगकासोरःक्षतशूलनुत्॥ 'रक्ता' पुनर्नवा तिक्ता सारिणी शोफनाशिनी। रक्तप्रदरदोषघ्नी पाण्डुपित्तप्रमर्दनी॥ धन्वन्तरीयनिघण्टू राजनिघण्टुश्च॥ 'श्वेता' पुनर्नवा सोष्णा तिक्ता कफविषापहा। कासहृद्रोगशूलास्त्रपाण्डु-शोफानिलार्त्तिनुत्॥ 'नीला' पुनर्नवा तिक्ता कटूष्णा च रसायनी। हृद्रोगपाण्डुश्वयथुश्वासवातकफापहा॥ राजनिघण्टुः॥ कटुः कषायानुरसा पाण्डुघ्नी दीपनी परा। शोफानिलगरश्लेष्महरी व्रध्नोदरप्रणुत्॥ कासहृद्रोगदुर्नामशूल.ानिल-निकृन्तनी। पुनर्नवाऽरुणा तिक्ता कटुपाका हिमा लघुः॥ वातला ग्राहिणी श्लेष्मपित्तरक्तविनाशिनी। भावप्रकाशः॥ पुनर्नवाशाकगुणाः–पुनर्नवा तु वीर्योष्णा भेदिनी च रसायनी। कफानिलामदुर्ना-मब्रध्नशोथोदरापहा॥ राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः–कुष्ठे पुनर्नवा–"...पुनर्नवा चेति कुष्ठिणो लेपाः। दधिमण्डयुताः सर्वे देयाः..." (चि. ७ अ.)। चरकः॥ (१) अश्मर्यां वर्षाभूः–"वर्षाभूसिद्धमेव वा" (चि. ७ अ.)। (२)

शोथे वर्षाभूः– "वर्षाभूकषायं मूलकल्कं वा–सशृङ्गवेरं पायोऽनुपानमहरहर्मासं" (चि. २३ अ.)। (३) मूषिकविषे पुनर्नवा–"क्षौद्रेण लिह्यात्... श्वेताञ्चापि पुनर्नवां" (क. ६ अ.)। (४) 'अलर्कविषे पुनर्नवा–"श्वेतां पुनर्नवाञ्चास्य दद्याद्धुत्तूरकायुताम्" (क. ६ अ.)। (५) ज्वरे वर्षाभूः– "...वर्षाभूः पयश्चोदकमेव च। पचेत् क्षीरावशिष्टन्तु तद्धि सर्वज्वरापहम्॥" (उ. ३९ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) मदात्यये पुनर्नवा– "पयःपुनर्नवाक्वाथयष्टी-कल्कप्रसाधितम्। घृतं पुष्टिकरं पानान्मद्यपानहतौजसाम्॥" (मदात्यय-चि.)। (२) रसायनार्थं पुनर्नवा–"पुनर्नवस्यार्द्धपलं नवस्य पिष्टं पिबेद् यः पयसाऽर्द्धमासम्। मासद्वयं तत्त्रिगुणं समां वा जीर्णोऽपि भूयः स पुनर्नवः स्यात्॥ (रसायनाधिकारे) वृन्दः॥ (१) शोथे पुनर्नवाघृतम्– "पुनर्नवाक्वाथकल्कसिद्धं शोथहरं घृतम्" (शोथ-चि.)। (२) विद्रधौ श्वेतवर्षाभूः– "श्वेतवर्षाभुवो मूलं...। जलेन क्वथितं पीतमपक्वं विद्रधिं जयेत्॥" (विद्रधि-चि.)। (३) विषदोषप्रतिषेधार्थं धवलपुनर्नवा– "धवलपुनर्नवजटया तण्डुलजलपीतया च पुष्यर्क्षे। अपहरति विषधरविषोपद्रवमासंवत्सरं पुसां" (विष-चिः)। चक्रदत्तः॥ (१) उरःक्षते पुनर्नवा–"यदा सरक्ताः शोफाः स्युः पक्वतां यान्ति मानवे। तदा पुनर्नवाक्वाथः सलेशः (?) प्रविधीयते॥" (चि. १० अ.)। (२) निद्राकरत्वे पुनर्नवा–"...पुनर्नवा। क्वाथो निद्राकरो नृणाम्॥" (चि. १६ अ.)। हारीतः॥ (१) आमवाते पुनर्नवा–"शटीविश्वौषधिकल्कं वर्षाभूक्वाथसंयुतम्। सप्तरात्रं पिबेज्जन्तुरामवातविनाशनम्॥" (म. ख. २भा.)। (२) नेत्ररोगे पुनर्नवा–"दुग्धेन कण्डूं क्षौद्रेण नेत्रस्त्रावञ्च सर्पिषा। पुष्पं तैलेन तिमिरं काञ्जिकेन निशान्धताम्॥ पुनर्नवा हरत्त्याशु भास्करस्तिमरं यथा।" (म. ख. ४भा.)। भावप्रकाशः॥ (१) चातुर्थकज्वरे सितवर्षाभूः–"सितवर्षाभूमूलं पयसा पीतञ्च पैत्तिकं जयति। चातुर्थकं सुचिरजं ताम्बुलेनैव भक्षणादथवा।" (ज्वर-चि.)। (२) वातकण्टकाख्ये वातव्याधौ श्वेतपुनर्नवा–"पुनर्नवायाः श्वेतायास्तैलं मूलेन साधयेत्। वातकण्टकमाहन्यात् पादाभ्यङ्गेन मर्द्दनात्॥ (वातव्याधि-चि.)। (३) आमवाते पौनर्नवं शाकं–"शाकं पौनर्नवं हितम्।" (आमवात-चि.)। वङ्गसेनः।

विविध भाषाओं में नाम-

सं.– श्वेत पुनर्नवा, शोथघ्नी, दीर्घ पत्रिका। हि.– सफेद पुनर्नवा, विष खपरा, सफेद सांठ, सफेद गदहपूरना। बं.– श्वेत गादा वन्ने, श्वेत पुष्पा। म.– पाँडरी, फेदुली, श्वेत पुष्पा। गु.– घोली साटोड़ी, विलीय दुवेल्लड किलु। ते.– गाछ-जेस, अतिकिम्मेदि। ता.– मुकारत्तै कीटै। अ.– इन्दूकूत्री, जन्दकोक। फा.– दल्वअस्पत। ले.– ट्री एन्थेमा पेटेंट्रा।

रक्तपुनर्नवा– सं.– रक्तपुनर्नवा, रक्तपुष्पा, शिवाटिका, शोथघ्नी, क्षुद्रर्षाभूः– कठिल्लिका। हि.– लालपुनर्नवा, लालविसखपड़ा, लाल साँठ, गदहपूरना। बं.– रक्त जादावन्ने। म.– तांवही, घदेली, रक्तवसु। गु.– रोता फलवाली, सारोमी। क.– केम्प, वेल्लड किल्दु, कडिगण जिटे। ते.– तेक्ला, अटाता मामिडि। ता.– मुक्राटे, तामिलामा। फा.– इस्पिस्त सहराई। अ.– रतेवा। ले.– वियरहेविया डिफथूसा।

उत्पत्तिबोधिका सं.– वर्षाभूः। **गुणप्रकाशिका सं.**– शोथघ्नी।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु व राज निघण्टु के अनुसार– पुनर्नवा (गदहपूरना) उष्ण, तिक्तरस तथा रूक्ष है और

कफ विकार का नाश करती है। यह शोथ पाण्डुरोग, हृदयरोग, कास, उरःक्षत तथा शूल को दूर करती है। लाल पुनर्नवा तिक्तरसवाली है, सारक है तथा शोथ नाशक है। यह रक्त प्रदर दोष का नाश करती है, पाण्डुरोग तथा पित्त विकार का मर्दन करती है।

राजनिघण्टु के अनुसार- सफेद पुनर्नवा उष्ण तथा तिक्तरस है ओर कफ विकार एवं विष विकार को दूर करती है। यह कास, हृदयरोग, शूल, रक्त विकार, पाण्डु रोग, शोथ तथा वातजन्य पीड़ा को दूर करती है। नीला पुनर्नवा तिक्तरस, कटुरस, उष्ण तथा रसायन है। यह हृदय रोग, पाण्डु रोग, शोथ, श्वास, वात-विकार तथा कफ विकार को दूर करती है।

भावप्रकाश के अनुसार- पुनर्नवा कटु रस तथा कषायानुरस है, पाण्डुनाशक है, उत्तम जाठराग्नि दीपक है। यह शोथ, वात विकार, विष विकार तथा कफ विकार को दूर करती है और रोग तथा उदर रोग को नष्ट करती है। यह कास, हृदयरोग, अर्शरोग, शूल तथा वात विकार को नष्ट करती है। रक्त पुनर्नवा तिक्तरस, पाक में कटुरस, शीतल तथा लघु है। यह वातकारक तथा ग्राही है, और कफ विकार, पित्त विकार एवं रक्त विकार का नाश करती है।

राजवल्लभ के अनुसार- पुनर्नवा उष्ण वीर्य, मलभेदक तथा रसायन गुणवाली है। यह कफ विकार, वात विकार, आमविकार, अर्शरोग, ब्रध्न रोग, शोथ रोग तथा उदररोग को दूर करती है।

वैद्यक शास्त्र में पुनर्नवा का प्रयोग-

कुष्ठरोग में पुनर्नवा का प्रयोग- कुष्ठ रोगी के लिए दधिमण्ड में मिलाकर पुनर्नवा का कल्क लेप करे। (च.चि.अ.७)।

(१) **अश्मरी में पुनर्नवा का प्रयोग**- अश्मरी रोग में पुनर्नवा के कल्क तथा क्वाथ से सिद्ध अन्न का प्रयोग करे। (सु.चि.अ.७) (२) **शोथ में पुनर्नवा का प्रयोग**- पुनर्नवा का कषाय या कल्क अदरक मिलाकर पान करे। अनुपान प्रतिदिन एक मास तक सेवन करे। (सु.चि.अ.२३)। (३) **मूषिक विष में पुनर्नवा का प्रयोग**- श्वेत पुनर्नवा के कल्क को मधु के साथ मूषिक विष में चाटे। (सु.वि.अ.६)। (४) **अलर्क विष में पुनर्नवा का प्रयोग**- श्वेत पुननर्वा को धत्तूर के साथ अलर्क विष में प्रयोग करे। (सु.क.अ.६)। (५) **ज्वर में पुनर्नवा का प्रयोग**- पुनर्नवा के रस या जल के साथ दूध पकावे और जल के जल जाने पर क्षीर मात्र शेष रहने पर ज्वर के रोगी को पान कराये। यह सभी प्रकार के ज्वर को दूर करता है। (सू.उ.अ.३९)।

(१) **मदात्यय में पुनर्नवा का प्रयोग**- दूध, पुनर्नवा का क्वाथ तथा यष्टीमधु (मुलेठी) के कल्क के साथ विधिवत सिद्ध घृत पान करने से मद्यपान से नष्ट ओजवालों के लिए पुष्टिकारक होता है। (वृन्द, मदात्यय चि.)। (२) **रसायन कार्य के लिए पुनर्नवा का प्रयोग**- नवीन पुनर्नवा आधा पल (२५० ग्राम) का कल्क जो दूध के साथ आधा मास (१५ दिन तक) पान करता है, दो मास पान करता है, ६ माह पान करता है तथा एक वर्ष तक पान करता है वह दुर्वल एवं जीर्ण होने पर भी पुनः नवीन होता जाता है। (वृन्द. रसायानाधिकार)।

(१) **शोथ में पुनर्नवा घृत का प्रयोग**- पुनर्नवा के कल्क तथा क्वाथ के साथ सिद्ध घृत पान करने से शोथ को दूर करता है। (चक्र. शोथ चि.)। (२) **विद्रधि में श्वेत पुनर्नवा का प्रयोग**- श्वेत पुनर्नवा के मूल का जल के साथ क्वाथ बनाकर पान करने से अपक्व विद्रधि को पका देता है। (चक्र. विद्रधि चि.)। (३) **विष दोष को दूर करने के लिए सफेद पुनर्नवा का प्रयोग**- सफेद पुनर्नवा के मूल का कल्क चावल के धोअन के साथ पुष्य नक्षत्र में पान करने से विषधर सर्प के विष के उपद्रव को एक मास या एक वर्ष में दूर करता है। (चक्र. विद्रधि चि.)।

(१) उरःक्षत में पुनर्नवा का प्रयोग- जब मनुष्य में रक्त शोथ पक जाय तब पुनर्नवा का क्वाथ पान कराये। (हारीत. चि. अ.१०)। (२) **निद्रा के लिए पुनर्नवा का प्रयोग**- पुनर्नवा का क्वाथ मनुष्यों के लिए निद्राकर होता है। (हारीत.चि.अ.१६)।

(१) आमवात में पुनर्नवा का प्रयोग- कपूर कचरी तथा सोंठ का कल्क पुनर्नवा के क्वाथ में मिलाकर सात दिन तक पान करे। यह मनुष्य के आमवात रोग का नाश करता है। (भाव.म.ख.अ.२)। (२) **नेत्र रोग में पुनर्नवा का प्रयोग**- पुनर्नवा के दूध से नेत्र कण्डू, मधु के साथ नेत्र स्राव, घी के साथ नेत्र पुष्प (मोतिया बिन्द), तेल के साथ तिमिर रोग और काञ्जी के साथ प्रयोग करने से निशान्धता दूर होती है जैसे से सूर्य अन्धकार दूर होता है। भाव.म.अ.४)।

(१) चातुर्थक ज्वर में सफेद पुनर्नवा का प्रयोग- सफेद पुनर्नवा के मूल के कल्क का दूध के साथ पान करने से पुराने समय से उत्पन्न चातुर्थिक ज्वर दूर होता है अथवा ताम्बुल के तरह खाने से चातुर्थिक ज्वर दूर होता है। (बंगसेन ज्वर चि.)। (२) **वातकण्टक नामक वात रोग में श्वेत पुनर्नवा का प्रयोग**- श्वेत पुनर्नवा के मूल के कल्क तथा क्वाथ के साथ विधिवत तैल सिद्ध करे। यह तैल पैर में अभ्यङ्ग करने से वातकण्टक नामक वात रोग को नष्ट करता है। (बंगसेन वातव्याधि चि.)। (३) **आमवात में पुनर्नवा शाक का प्रयोग**- आमवात रोग में पुनर्नवा के शाक का प्रयोग हितकर है। (बंगसेन-आमवात चि.)।

Actions and uses—Stomachic, laxative, diuretic, expectorant and emetic; given in asthma, gonorrhoea, dropsy jaundice enlargement of the liver and spleen, ascites anasarca, scanty urine and internal inffamations. As a remedy for scorpion bites it is applied externally and given internally. Pounded leaves are applied over oedemetous swellings (R. N. Khory—II. p. 503). *Ainslie in Materia Indica* says—"The root is given in powder as laxative, and in infusion as a vermifuge. The taste is slightly bitter and nauseous." *E.F. Waring in Pharmacopaeia of India* says—"It has been found a good expectorant and been prescribed in asthma with marked success, given in form of power, decoction, and infusion. Taken largely, it acts as a emetic."

पूगः

पूगः, क्रमुकः। Areca Catechu *Linn*. betle, nut tree.

परिचयज्ञापिका संज्ञा–"दीर्घपादपः", "दृढ़वल्कः"। गुणप्रकाशिका संज्ञा–"उद्वेगम्", "स्त्रंसि"। भेदि सन्मोहकृत् पूगं कषायं स्वादु रोचनम्। कफपित्तहरं रूक्षं वक्त्रक्लेदमलापहम्॥ धन्वन्तरीय-निघण्टुः॥ पूगवृक्षस्य निर्यासो हिमः सम्मोहनो गुरुः। विपाके सोष्णकक्षारः साम्लो वातघ्नपित्तलः॥ 'सेरी' च मधुरा रुच्या कषायाम्ला कटुस्तथा। पथ्या च कफवातघ्नी सारिका मुखदोषनुत्॥ 'तैल्वनं' मधुरं रुच्यं कण्ठशुद्धिकरं लघु। त्रिदोषशमनं दीप्यं रसालं पाचनं समम्॥ गौल्यं 'गुहागरं' श्लक्ष्णं कषायं कटु पाचनम्। विष्टम्भ-जठराऽऽध्मानहरणं द्रावकं लघु॥ 'घोण्टा' कटुकषायोष्णा कठिना रुचिकारिणी। मलविष्टम्भशमनी पित्तहृद्दीपनी च सा॥ पूगीफलं 'चेद्बलसंज्ञकं' यत् तत् कोङ्कणेषु प्रथितं सुगन्धि। श्लेष्मापहं दीपनपाचनञ्च बलप्रदं पुष्टिकरं रसाढ्यम्॥ यत् कोङ्कणे 'वेल्लि'गुणा-भिधानकं॥ ग्रामोद्भवं पूगफलं त्रिदोषनुत्। आमापहं रोचनरुच्य-पाचकं॥ विष्टम्भ-तुन्दामयहारि दीपनम्॥ 'चन्द्रापुरोद्भवं' पूगं कफघ्नं मलशोधनम्। कटु स्वादु कषायञ्च रुच्यं

दीपनपाचनम्॥ 'आन्ध्रदेशोद्भवं' पूगं कषायं मधुरं रसे। वातजिद्व्यक्त- जाड्यघ्नमीषदम्लं कफापहम्॥ पूगीफलविशेषगुणाः—पूगं सम्मोहकृत् सर्व्वं कषायं स्वादु रेचनम्। त्रिदोषशमनं रुच्यं वक्त्रक्लेदमलापहम्॥ 'आमं' पूगं कषायं मुखमलशमनं कण्ठशुद्धिं विधत्ते। रक्तामश्लेष्मपित्त-प्रशमनमुदराऽऽध्मानहारं सरञ्च। 'शुष्कं' कण्ठामयघ्नं रुचिकरमुदितं पाचनं रेचनं स्यात्। तत्पर्णेनायुतञ्चेत् झटिति वितनुते पाण्डुवातञ्च शोषम्॥ राजनिघण्टुः॥ पूगं गुरु हिमं रूक्षं कषायं कफपित्तजित्। मोहनं दीपनं रुच्यमास्यवैरस्यनाशनम्॥ 'आर्द्रं' तत् गुर्वभिष्यन्दि वह्निदृष्टिहरं स्मृतम्। 'स्विन्नं दोषत्रयच्छेदि दृढमध्यन्तदुत्तमम्। भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः— (१) रक्तपित्ते क्रमुकम्—"किराततिक्तं क्रमुकं समुस्तं पृथक् पृथक् चन्दनयोजितानि। तेनैव कल्केन हितानि तत्र" (चि. ४ अ.)। (२) बस्तेरनुलोमाय क्रमुकम्—"ततः क्रमुक्रकल्काक्षं पाययेताम्लसंयुतम्। औष्णयात् तैक्ष्णयात् सरत्वाच्च बस्तिञ्चास्यानुलोमयेत्।" (सि. ७ अ.)। चरकः॥ वातव्याधौ क्रमुकत्वक्—"शल्लकी चिक्कणीत्वक् च क्वाथस्तैलेन संयुतः। कुर्याद्वातार्द्दितं स्वस्थमेकविंशदिनैर्नरम्"। (चि. २१ अ.) हारीतः॥ (१) उपदंशे क्रमुकं—"लेपः पूगफलेनाश्वमारमूलेन वा तथा" (उपदंश-चि.) (२) मसूरिकाप्रथमाविर्भावे पूगमूलम्—"... माध्यामूलं ...प्रथममवगदे दृश्यमाने प्रयोज्याः।" चक्रदत्तः॥

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- घोण्ट, पूगी, गुवाक, क्रमुक। हि.- सुपारी, कसैली। कं.- सुपारी। म.- प्रोफल। गु.- सोपाठी। क.- कर्टके यहे, सरु। ते.- कुमकुम, पोक। फा.- पोपिल। अ.- फोफिल। द्रा.- पाक। अं.- बिटेल नट पाम्।

परिचय ज्ञापिका सं.- दधिपादपः, दृढवल्कः। **गुण प्रकाशिका सं.**- उद्वेगम्, स्रंसि।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- पूग पारी मलभेदक, सम्मोहकारक, कषायरस, स्वादु रस तथा रोचक है। यह कफ पित्त को दूर करता है, रूक्ष है तथा मुख के क्लेद एवं मल को दूर करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- पूग वृक्ष (सुपारी) का निर्यास (गोंद) शीतल है, संमोहन है, गुरु है, विपाक में उष्ण है, क्षारीय है। अम्ल है तथा वातनाशक है एवं पित्तकारक है। सुपारी की सेटी मधुर, रुचिकारक, कषायरस तथा अम्ल रस है और कटुरस है, पथ्य है तथा कफ-वातनाशक है, क्षारक है, मुख दोष को दूर करती है। सुपारी का तैल्बन मधुर, रुचिकारक, कण्ठ शुद्धिकारक तथा लघु है और यह त्रिदोष शामक है, जाठराग्नि दीपक है, रसाजल है तथा पाचन है, गले के लिए हितकर है, अन्तर्विष है, श्लक्ष्ण है, कषाय रस तथा कटुरस है, पाचन है, विष्टम्भ कारक है, ज्वर रोग तथा आध्मान रोग को दूर करता है, द्रावक है तथा लघु है। घोण्टा फल (सुपारी) कटु रस, कषाय रस, उष्ण, कठिन तथा रुचिकारक है, मल विष्टम्भ को शान्त करती है, पित्त को दूर करती है तथा अग्नि दीपक है। पूगीफल जो चडेलसंज्ञक है वह कोङ्कणदेश में प्रसिद्ध तथा सुगन्धित है। यह श्लेष्म विकार का नाश करता है, दीपन तथा पाचन है, बलप्रद है, पुष्टि कारक है तथा अधिक रसवाला है, जो कोङ्कण देश में है वह वेल्लिके गुण का अभिधान करता है। ग्रामोद्भव पूगफल त्रिदोष नाशक है, आमदोष को दूर करता है, रोचक है, रुचिकारक है तथा पाचक है, विष्टम्भ तथा उदररोग को दूर क़रता है तथा जाठराग्नि दीपक है। चन्द्रापुर में उत्पन्न पूग कफनाशक तथा मलशोधक है, कटुरस, स्वादिष्ट तथा कषायरस

है और रुचिकारक तथा दीपक-पाचक है। आन्ध्रा देश में उत्पन्न पूग कषाय रस तथा मधुर रस है। यह वात को दूर करता है, मुख की जड़ता का नाश करता है तथा थोड़ा अम्ल तथा कफ को दूर करता है। **पूगीफल के विशेष गुण-** पूग (सुपारी) सम्मोहकारक है, कषाय रस तथा स्वाद रस है और रेचक है। यह त्रिदोष शामक है, रुचिकारक है, मुख के क्लेद तथा मल को दूर करता है। आम पूग कषाय रस है तथा मुख के मल को शान्त करता है और कण्ठ को शुद्ध करता है। यह रक्त रोग, आम विकार, कफ विकार तथा पित्त विकार को शान्त करता है, उदर रोग तथा आध्मान को दूर करता है तथा सारक है। सूखा पूग कण्ठ रोग का नाश करता है, रुचिकारक कहा गया है, पाचक है तथा रेचक है। पूगपत्र के साथ पूग (सुपारी) के होने पर शीघ्र ही पाण्डु, वात रोग तथा शोष रोग को उत्पन्न करता है।

भावप्रकाश के अनुसार- पूगफल (सुपारी) गुरु, शीतल, रूक्ष तथा कषाय रस है और यह कफ-पित्त विकार को दूर करता है। यह मोहक है, जाठराग्नि दीपक है, रुचिकारक है, मुख की विरसता का नाश करती है। आद्र पूग फल गुरु तथा अभिष्यन्दि है और जाठराग्नि तथा दृष्टिशक्ति को दूर करता है। उबाला हुआ पूगी फल तीनों दोषों को काटता है। दृढ़ मध्य पूग फल उत्तम होता है।

वैद्यक शास्त्र में पूग का प्रयोग-

(१) रक्तपित्त में क्रमुक (पूगीफल) का प्रयोग- चिरायता, सुपारी तथा नागरमोथा अलग-अलग चन्दन मिलाकर सेवन करने से रक्त पित्त में हितकर है, तथा उसीके कल्क के साथ प्रयोग करने पर रक्त पित्त में हितकर है। (च.चि.अ.४)। (२) **बस्ति के अनुलोमन के लिए क्रमुक का प्रयोग-** क्रमुक (सुपारी) का कल्क एक अक्ष (१० ग्राम) की मात्रा में अम्ल मिलाकर पान कराये। यह उष्ण तथा तीक्ष्ण होने से सारक होने से बस्ति का अनुलोमन करता है। (च.चि.अ.७)।

वात व्याधि में क्रमुक के त्वक् का प्रयोग- चिकनी शल्लकी (सुपारी) के क्वाथ को तैल के साथ मिलाकर प्रयोग करे। यह इक्कीस दिन में वात रोग से पीड़ित व्यक्ति को स्वस्थ बनाता है। (हा.चि.अ.२१)

(१) उपदंश में क्रमुक का प्रयोग- पूग फल तथा अश्वमार (कनइल) के मूल का लेप उपदंश रोग को शान्त करता है। (चक्र.उपदंशचि.)। (२) **मसुरिका की उपत्ति को रोकने के लिए पूग मूल का प्रयोग-** मसुरिका के उत्पन्न होने के पहले पूग मूल का प्रयोग करे। (चक्र.मसूरिका चि.)।

Constituents—The kernels contain catechu, tannic and gallic acids oily matter, gum, arecoline, arecaine and gavacine (*Materia Medica of India R.N. Khory II p. 621*). **Actions and uses—**Fresh nuts are intoxicating and p oduce giddliness. Dried ones are gentle stimulant astringent and taenifuge; they increase tho flow of saliva, lessen perspiration, sweeten the breath, strengthen the gums, remove bad taste from the mouth and produce mild exhilaration. It is recommended in worms, diarrhoea, dysentery and as an ingredient in the preparation of a masticatory of great antiquity known as betel. The powder obtained by calcining the nut is known as areca charcoal and used as a tooth powder. The dried expanded leaf stalks are used as splints. The extract is used for the same purpose as that obtained from acacia catechau. Arecoline—its action resembles that of pelletierine, muscarine or pilocarpine; internally it causes vomiting and diarrhoea. It is a sialogogue and diaphoretic; as a myotic it resembles Physostigmine (Do—II. p. 621—22).

पृश्निपर्णी

पृश्निपर्णी, शृगालविन्ना, गुहा। Uraria Logopoides D. C. U. Picta, Desv. Jacq.

परिचयज्ञापिका संज्ञा – "पृश्निपर्णी", (पृश्निरल्पं पर्णमस्याः– भानुजिदीक्षितः), "क्रोष्टुकपुच्छिका", "चित्रपर्णी", "चक्रपर्णी"। पृश्निपर्णी रसे स्वादुर्लघूष्णाऽस्त्रत्रिदोषजित्। कासश्वासप्रशमनी ज्वरतृड्दाहनाशिनी॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः। पृश्निपर्णी कटूष्णाम्ला तिक्तातिसारकासजित्। वातरोग-ज्वरोन्मादव्रणदाहविनाशिनी॥ राजनिघण्टुः॥ पृश्निपर्णी त्रिदोषघ्नी वृष्योष्णा मधुरा सरा। हन्ति दाहज्वरश्वासरक्तातिसारतृड्वमीः॥ भावप्रकाशः। शालपर्णी पृश्निपर्णी ग्राहिणी कफपित्तजित्। राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः – (१) अग्रयग्रन्थे पृश्निपर्णी – "पृश्निपर्णी सङ्ग्राहकवातहरदीपनीयवृष्याणाम्" (सू. २५ अ.)। (२) रक्तार्शःसु पृश्निपर्णी – "हन्त्याशु रक्तरोगं तथा वला पृश्निपर्णीभ्याम्" (चि. ९ अ.)। (३) कफमदात्ययस्य तृष्णायाम् पृश्निपर्णी – "तृष्यते सलिलञ्चास्मै...। वलायाः पृश्निपर्ण्या वा... शृतम्।" (चि. १२ अ.)। चरकः॥ वातप्रबले वातरक्ते पृश्निपर्णी – "अजाक्षीरञ्चार्द्धतैलं शृगालविन्नासिद्धं वा" (चि. ५ अ.) सुश्रुतः॥ (१) ऐकाहिकज्वरे पृश्निपर्णीमूलम् – "...पृश्निपर्णी त्वपामार्गस्तथा भृङ्गराजोऽष्टमः। एषामन्यतमं मूलं पुष्येणोद्धृत्य यत्नतः॥ रक्तसूत्रेण संवेष्टच बद्धमैकाहिकं जयेत्॥" (ज्वर-चि.)। (२) रक्तातिसारे पृश्निपर्णी – "पयस्यर्द्धोदके छागे...। पेया रक्तातिसारघ्नी पृश्निपर्ण्या च साधिता॥" (अतिसार-चि.)। (३) नेत्ररोगे पृश्निपर्णी–"ताम्रपात्रे गुहामूलं सिन्धूत्थमरिचान्वितम्। आरणालेन सङ्घृष्टमञ्जनं पिल्लनाशनम्॥" (नेत्ररोगचि.)। चक्रदत्तः॥ अस्थिभग्ने पृश्निपर्णी–"मूलं शृगालविन्नायाः पीत्वा मांसरसेन तु। चूर्णीकृत्य त्रिसप्ताहाद-स्थिभग्नमपोहति।" (भग्न-चि.) भावप्रकाशः॥

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- पृश्निपर्णी, पृथक्पर्णी, सिंहपुच्छी। हि.- सिठवन, पिठौनी। बं.- चाकुले, चाकुलिया। म.- पीठवण। गु.- नहानो, समेखो। क.- तोरेमाइ। ते.- कोला, कुपन्ना। ले.- यूरियोलेगोपोइडस।

परिचय ज्ञापिका सं.- पृश्निपर्णी, पृश्निरल्प-पर्णमस्या- भानुजी दीक्षित। कोष्टुक पुच्छिका, चित्रपर्णी, चक्रपर्णी।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- पृश्निपर्णी रस में स्वादु, लघु तथा उष्ण है और रक्त विकार एवं त्रिदोष को दूर करती है। यह कास तथा श्वास को शान्त करती है और ज्वर, प्यास एवं दाह का नाश करती है।

राजनिघण्टु के अनुसार- पृश्निपर्णी कटुरस, उष्ण, अम्लरस तथा तिक्त रस है और अतिसार एवं कास का नाश करती है। यह वात रोग, ज्वर, उन्माद, व्रण एवं दाह का नाश करती है।

भावप्रकाश के अनुसार- पृश्निपर्णी त्रिदोषनाशक है, वीर्यवर्द्धक है, उष्ण है, मधुर रस है तथा सारक है। यह दाह, ज्वर, श्वास, रक्तातिसार प्यास एवं वमन का नाश करती है।

राजवल्लभ के अनुसार- शालपर्णी तथा पृश्नि पणी ग्राही हैं और कफ-पित्त विकार को दूर करती हैं।

वैद्यक शास्त्र में पृश्निपर्णी का प्रयोग-

(१) पृश्निपर्णी सङ्ग्राहक, वातहर, दीपनीय तथा वृष्य गणों में आती है। (च.सू.अ.२५)। (२) **रक्तार्श में पृश्निपर्णी का प्रयोग**- पृश्निपर्णी, शालपर्णी तथा बला का प्रयोग रक्त रोग को शीघ्र ही नाश करती है। (च. चि.अ.९)। (३) **कफज मदात्यय तथा प्यास में पृश्निपर्णी का प्रयोग**- कफज मदात्यय में प्यासे रोगी का वरियार तथा पृश्नि पर्णी का शृत सलिल (क्वाथ) दे। (च.चि.अ.१२)।

वातप्रधान वात रोग में पृश्नि पर्णी का प्रयोग- वातप्रधान वातरक्त में पृश्नि पर्णी के क्वाथ के साथ दूध तथा दूध के आधा तैल मिलाकर प्रयोग करे अथवा पृश्नि पर्णी के क्वाथ के साथ सिद्ध तैल एवं दूध का प्रयोग करे। (सु.चि.अ.५)।

(१) **एकाहिक ज्वर में पृश्नि पर्णी मूल का प्रयोग**- पृश्निपर्णी, अपामार्ग तथा भृंगराज आठवा द्रव्य- इन सब में किसी एक का मूल पृष्यनक्षत्र में यत्नपूर्वक उखाड़कर, रक्त सूत्र में बाधकर बाहु में बांधने पर एकाहिक ज्वर दूर होता है। (चक्र. ज्वर चि.)। (२) **रक्तातिसार में पृश्निपर्णी का प्रयोग**- बकरी का दूध तथा आधा जल मिलाकर सिद्ध की हुई पृश्निपर्णी की पेया सेवन करने से रक्तातिसार का नाश होता है। (चक्र. अतिसार चि.)। (३) **नेत्र रोग में पृश्निपर्णी का प्रयोग**- ताम्र के पात्र में ग्रहामूल (पृश्निपर्णी का मूल) सेन्धा नमक तथा मरिच मिलाकर और काञ्जी के साथ घिसकर अञ्जन करने से नेत्र के पिल्ल रोग का नाश करता है। (चक्र. नेत्र रोग चि.)।

अस्थि भग्न में पृश्निपर्णी का प्रयोग- शृगालवि (पृश्निपर्णी) के मूल का चूर्ण बनाकर मांस रस के साथ पान कर अस्थि भग्न व्यक्ति तीन सप्ताह में अस्थि भग्न जन्य उपद्रव को दूर करता है। (भाव. भग्न चि.)।

Actions and uses — Alterative, tonic and astringent ; given in fevers, catarrh of the air passages and in general debility. Ranaganja (Pṛśniparṇī) is used as an antidote to the poison of Phursa Snake (Echis Cardnata). *(Materia Medica of India — R. N. Khory – II. p. 235)*

प्रसारणी

प्रसारणी, सरली। Paederia Foetida, *Linn.*

पूर्वाचार्यकृतवर्णनम्– "प्रसारणी गन्धभादालिया इति ख्याता" (इति चक्रोक्तनारायणतैलव्याख्यायां शिवदासः)॥ परिचयज्ञापिका संज्ञा– "प्रतानिका", "चारुपर्णी"। गुणप्रकाशिका संज्ञा– "राजबला" ("बलानां बलप्रदानां राजेव"–भानुजिदीक्षितः), "प्रसारणी" ("प्रसार्यतेऽङ्गमनया"–भानुजिदीक्षितः), "पूतिगन्धा"। प्रसारणी गुरुस्तिक्ता सरा सन्धानकृन्मता। त्रिदोषशमनी वृष्या तेजःकान्तिबलप्रदा॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ प्रसारणी गुरूष्णा च तिक्ता वातविनाशनी। अर्शःश्वयथुहन्त्री च मलविष्टम्भहारिणी॥ राजनिघण्टुः॥ प्रसारणी गुरुर्वृष्या बलसन्धानकृत्सरा। वीर्योष्णा वातहृत् तिक्ता वातरक्तकफापहा॥ भावप्रकाशः॥ वातपित्तहरा सोष्णा बल्या वृष्या प्रसारणी। राजवल्लभः।

वैद्यके व्यवहारः– वातव्याधौ प्रसारणी–"क्वाथकल्कपयोभिर्वा बलादीनां (बलाप्रसारण्यश्वगन्धानां) पचेत् पृथक्" (चि. २८ अ.) चरकः॥ आमवाते प्रसारणीसन्धानम्–"प्रसारव्याढकक्वाथे प्रस्थो गुडरसोनयोः। पक्वः पञ्चोषणरजः पादः स्यादामवातहा॥" (आमवात-चि.)। चक्रदत्तः॥

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- प्रसारणी, राजबला, प्रतानिनी। हि.- प्रसारीणी, पसरन, गन्ध प्रसारणी, गन्धानी खीप। बं.- गन्धमादुलिया, गन्ध-मादुली, गन्ध मादुला। म.- चान्दवेल, हिरेण वेल, नित्तणवेली। गु.- प्रसारण वेल, नाटी। क.- हसेरणे, सारेण गिड, लोरेणै गिल। ते.- गोन्तेमपासचेट्टु, सविरले चेट्टु। ले.- पाण्डेरिया फोतीडा।

प्रसारणी के सम्बन्ध में पूर्वाचार्यों के अनुसार वर्णन- प्रसारणी गन्ध मादलिया नाम से प्रसिद्ध है (इति चक्रोक्तनारायणतैलव्याख्यायां शिवदासः)। **परिचयज्ञापिका सं.**- प्रतानिका, चारुपर्णी। **गुण प्रकाशिका सं.**- राजबला (बलानां) बलप्रदाना राजबला- इति भानुजी दीक्षितः, प्रसारणी (प्रसार्यतेऽङ्गमनया- इति भानुजी दीक्षितः)। पूतिगन्धा।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- प्रसारणी गुरु, तिक्तरस, सारक तथा सन्धान कारक है। यह त्रिदोष शामक तथा वीर्य वर्द्धक है और तेज कान्ति एवं बलप्रद है।

राजनिघण्टु के अनुसार- प्रसारणी गुरु, उष्ण तथा तिक्तरस है और वातनाशक है। यह अर्शरोग तथा शोथ का नाश करती है और मल विष्टम्भ को दूर करती है।

भावप्रकाश के अनुसार- प्रसारणी गुरु तथा वीर्यवर्द्धक है और बल संधानकारक है तथा सारक है। यह उष्ण वीर्य है, वात को दूर करती है, तिक्तरस है तथा वात-रक्त विकार तथा कफ विकार को दूर करती है। **राजवल्लभ के अनुसार-** प्रसारणी वात-पित्त को दूर करती है, उष्ण, बलकारक है तथा वृष्य है।

वैद्यक शास्त्र में प्रसारणी का प्रयोग-

वात रोग में प्रसारणी का प्रयोग- बला, प्रसारणी तथा अश्वगन्धा के कल्क तथा क्वाथ के साथ, इनमें से किसी एक के साथ अलग-अलग तेल पकावे और वात रोग में प्रयोग करे। (च.चि.अ.२८)।

आमवात में प्रसारणी संधान- प्रसारणी के एक आढ़क (५ किलो) क्वाथ में गुण तथा रसोण एक प्रस्थ (१ किलो) और पञ्चौषण (पीपर, पीपरामूल चव्य, चित्रक, सोंठ) का चूर्ण एक चौथाई मिलाकर तैल सिद्ध करे। यह आम वात का नाश करता है। (चक्र.आमवात चि.)।

Constituents.— A Volatile oil of an offensive odour, 2 alkaloids, namely Alpha Paederine and Beta paederine. **Actions and uses.—** The whole plant is alterative antispasmodic and emetic. The root is an emetic *(Materia Medica of India — R. N. Khory – II. p. 338).*

प्रियङ्गुः

प्रियङ्गुः, गन्धप्रियङ्गुः। Aglaia Roxburghiana.

प्रियङ्गुः शीतला तिक्ता मोहदाहविनाशनी। ज्वरवान्तिहरा रक्तमुद्रिक्तञ्च प्रसादयेत्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ प्रियङ्गुः शीतला तिक्ता दाहपित्तास्रदोषजित्। वान्तिभ्रान्तिज्वरहरा वक्त्रजाड्यविनाशनी॥ राजनिघण्टुः॥ प्रियङ्गुः शीतला तिक्ता तुवरानिलपित्तहृत्। रक्ताभियोगदौर्गन्ध्यस्वेददाहज्वरापहा॥ वान्तिभ्रान्त्यतिसारघ्नी वक्त्रजाड्यविनाशिनी। गुल्मतृड्विषमोहघ्नी तद्वद् गन्धप्रियङ्गुका॥ तत्फलं मधुरं रूक्षं कषायं शीतलं गुरु। विबद्धाऽऽध्मानबलकृत् सङ्ग्राहि कफपित्त-जित्। भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहार:– (१) रक्तपित्ते प्रियङ्गु:– "उशीरकालीयकलोध्र-पद्मकप्रियङ्गुका...। पृथक् पृथक् चन्दनतुल्यभगिका:। सशर्करास्तण्डुलधावनाप्लुता:। रक्तं सपित्तं शमयन्ति योगा:॥" (चि. ४ अ.) (२) रक्तातिसारे प्रियङ्गु:–"पीत: प्रियङ्गुकाकल्क: सक्षौद्रस्तण्डुलाम्भसा। रक्तस्त्रावं जयेच्छीघ्रं धन्वमांसरसाशिन:॥" (चि. १० अ.)। (३) कफ'विसर्पे' गन्धप्रियङ्गु:–"शैवालं नलमूलानि वीरागन्धप्रियङ्गुकौ। पृथगालेपनं कुर्याद्धन्वश: सर्वशोऽपि वा। प्रदेहा: सर्व एवैते देया स्वल्पघृताप्लुता:।" (चि. ११ अ.)। (४) अग्रयग्रन्थे गन्धप्रियङ्गु:– "गन्धप्रियङ्गु: शोणितपित्तातियोगप्रशमनानाम्।" (सू. २५ अ.) चरक:॥ रक्तपित्ते प्रियङ्गुपुष्पम्–"खदिरस्य प्रियङ्गूनां...। पुष्पचूर्णन्तु मधुना लीढ्वा चारोग्यमश्नुते॥" (रक्तपित्त-चि:)। चक्रदत्त:॥ परिणामशूले प्रियङ्गुपत्रम्–"प्रियङ्गुपत्रक्वाथेन वमनं परिशस्यते" (परिणामशूल-चि.)। वङ्गसेन:॥

विविध भाषाओं में नाम–

सं- प्रियङ्गु, फलिनी, कान्ता, महिलाक्ष, गुन्द्रा, गन्धफली, श्यामा, विश्वक्सेना, अङ्गनाप्रिया। हि.- प्रियङ्गु, फूल प्रियङ्गु, फूलकेन, दहिगना। बं.- प्रियङ्गु। म.- गदुला। ते.- प्रेकणपुचेट्टु, प्रेकनगिड। क.- नेपिलगु। गु. - घाडसा। ले.- अग्लेना रोझा बर्घियाना।

गुण एवं दोष–

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- प्रियङ्गु शीतल तथा तिक्तरस है और मोह एवं दाह का नाश करती है। यह ज्वर एवं वमन को दूर करती है और बढ़े हुए रक्त विकार को शुद्ध करती है।

राजनिघण्टु के अनुसार- प्रियङ्गु शीतल तथा तिक्त रस है और दाह, पित्त विकार एवं रक्त दोष को दूर करती है। यह वमन, भ्रान्ति तथा ज्वर को दूर करती है और मुख की जड़ता (अकड़न) का नाश करती है।

भावप्रकाश के अनुसार- प्रियङ्गु शीतल तथा तिक्तरस है और कषाय रस है एवं वात-पित्त विकार का नाश करती है। रक्त के संयोग से दुर्गन्ध स्वेद, दाह तथा ज्वर को दूर करती है। यह वमन, भ्रम तथा अतिसार का नाश करती है तथा मुख की जड़ता को दूर करती है। यह गुल्म रोग, प्यास, विष विकार तथा मोह (मूर्च्छा) का नाश करती है। इसी प्रकार गन्ध प्रियङ्गु का भी यही गुण है। प्रियङ्गु का फल मधुर, रूक्ष, कषाय रस, शीतल तथा गुरु है और विबन्ध, आध्मान को बल देनेवाला है, ग्राही है तथा कफ-पित्त को दूर करती है।

वैद्यक शास्त्र में प्रियङ्गु का प्रयोग–

(१) रक्तपित्त में प्रियङ्गु का प्रयोग- खस, कालीयक (पतङ्ग), लोध, पद्मक (पद्मकाठ) तथा प्रियङ्गु इन सब को अलग-अलग चन्दन के बराबर लेकर शक्कर मिलाकर चावल के धोअन के मिलाकर पान करने से ये योग रक्त पित्त को शान्त करते हैं। (च.चि.अ.४)। (२) **रक्तातिसार में प्रियङ्गु का प्रयोग-** प्रियङ्गु का कल्क मधु मिलाकर चावल के धोअन के साथ पान करने से रक्तस्त्राव को शीघ्र ही शान्त करता है। इसके सेवन के साथ धन्वपक्षी के मांस रस खाय। (च.चि.अ.१०)। (३) **कफज विसर्प में गन्ध प्रियंगु का प्रयोग-** शेवाल, नल का मूल, वीरा तथा गन्ध प्रियंगु इन सब का एक-एक कर या सब का अलग-अलग कफज विसर्प में लेप करे। इन सब का प्रदेह थोड़ा घी मिलाकर करे। (च.चि.अ.११)। (४) **अन्य ग्रन्थों में गन्ध प्रियङ्गु का प्रयोग-** रक्तपित्त के अतियोग को शान्त करनेवालो में गन्ध प्रियंगु प्रथम है। (च.सू.अ.२४)।

रक्त पित्त में प्रियंगु पुष्प का प्रयोग- खैर तथा प्रियङ्गु पुष्प के चूर्ण को मधु के साथ चाटने से मनुष्य रक्त पित्त से आरोग्य प्राप्त करता है (चक्र.रक्तपित्त चि.)।

परिणाम शूल में प्रियंगुपत्र का प्रयोग- परिणाम शूल में प्रियङ्गु पत्र के क्वाथ से वमन कराना प्रशस्त है। (बंगसेन (परिणाम शूल.चि)।

Constituents—Quercitannic acid and ash. **Actions and uses** (Refrigerant and asfringent, used in fevers, diarrhoea and liver affections, as an alterative it is given in leprosy. (*Materia medica of India*—R. N. Khory—II. p. 117).

प्लक्षः

प्लक्षः पर्कटी। Ficus infectoria, *Willd.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा–"सुपार्श्वः", "चारुदर्शनः", "क्षीरी", "मङ्गलच्छायः", "ह्रस्वपर्णः"। प्लक्षः कटुकषायश्च शीतलो रक्तपित्तजित्। मूर्च्छाश्रमप्रलापांश्च हरेत् प्लक्षो विशेषतः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ प्लक्षः कटुकषायश्च शिशिरो रक्तदोषजित्। मूर्च्छाभ्रमप्रलापघ्नो ह्रस्वप्लक्षो विशोषकः॥ राजनिघण्टुः॥ प्लक्षः कषायः शिशिरो व्रणयोनिगदापहः। दाहपित्तकफामघ्नः शोथहा रक्तपित्तहृत्॥ रक्तदोषहरो मूर्च्छाप्रलापभ्रमनाशनः। भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः–योनिस्त्रावे प्लक्षत्वक्–"प्लक्षत्वक्चूर्णपिण्डं वा धारयेन्मधुना कृतम्।" (चि. ३० अ.)। चरकः॥ रक्तपित्तिणः शाकार्थं प्लक्षपल्लवः–"पटोलनिम्बवेताग्रप्लक्षवेतसपल्लवाः। शाकार्थे शाकसात्म्यानां तण्डुलीयादयो हिताः॥" भावप्रकाशः॥

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- प्लक्ष, जटी, पर्कटी। हि.- पाकर, पाखर, पिलखन, पकरिया, पकरी। बं.- पाकुड़ गाछ, पांकुर। म.- पिम्पली वृक्ष। गु.- पीपर्य, पीपर। क.- हसुठी, वसठीमारा। ते.- मंगर यजुल्वि। ता.- पोरिशरार्वि। मा.- पाकड़। द्रा.- कल्लाल मरम। ले.- फाईकस इन्फेक्टोरिया।

परिचय ज्ञापिका सं.- सुपार्श्व, चारुदर्शन, क्षीरी, मंगलच्छाया, ह्रस्वपर्ण।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- प्लक्ष (पाकड़) कटु रस, कषाय रस तथा शीतल है और रक्तपित्त को जीत लेता है। मूर्च्छा, भ्रम तथा प्रलाप को विशेषकर प्लक्ष (पाकड़) दूर करता है।

राज निघण्टु के अनुसार- प्लक्ष कटुरस कषाय, रस तथा शीतल है और रक्तदोष को दूर करता है। यह मूर्च्छा, भ्रम तथा प्रलाप का नाश करता है। ह्रस्व प्लक्ष विशोषक है।

भावप्रकाश के अनुसार- प्लक्ष कषाय रस तथा शीतल है और व्रण रोग एवं योनि रोग का नाश करता है। यह दाह, पित्त विकार तथा कफ विकार का नाश करता है, शोथ का नाश करता है तथा रक्त पित्त को दूर करता है। यह रक्त दोष को दूर करता है, मूर्च्छा, प्रलाप तथा भ्रम का नाश करता है।

वैद्यक शास्त्र में प्लक्ष का प्रयोग-

योनि स्राव में प्लक्ष त्वक् का प्रयोग- प्लक्ष (पाकड़) के चूर्ण या कल्क मधु में मिलाकर योनि में धारण करे। यह योनि के स्राव को रोकता है। (च.चि.अ.उ.)।

रक्त पित्त के रोगियों के लिए प्लक्ष पल्लव के शाक का प्रयोग- परवल, निम्ब, वेतग्र, प्लक्ष तथा वेतस के पल्लवों का शाक रक्त पित्त के रोगियों के लिए हितकर है। शाक के लिए शाकसात्म्य तण्डुलीय आदि का शाक भी रक्त पित्त के रोगी के लिए हितकर है। (भावप्रकाश)

बकुल:

वकुल:। Mimusops Elengi, *Linn.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा–"सीधुगन्ध:", "शीर्षकेसरक:", "चिरपुष्प:", "स्थिरकुसुम:"। वकुलोद्भव- 'पुष्पञ्च' सुपक्वञ्च सुगन्धि च। मधुरञ्च कषायञ्च स्निग्धं सङ्ग्राहि 'वाकुलम्'॥ स्थिरीकरञ्च दन्तानां विशदं तत्'फलं' गुरु। धन्वन्तरीयनिघण्टु:॥ वकुल: शीतलो हृद्यो विषदोषविनाशन:। मधुरश्च कषायश्च मदाढ्यो हर्षदायक:॥ तथा च–वकुल'कुसुमञ्च रुच्यं क्षीराढ्यं सुरभि शीतलं मधुरम्। स्निग्धकषायं कथितं मलसङ्ग्राहकञ्चैव॥ राजनिघण्टु:॥ वकुलोस्तुवरोऽनुष्ण: कटुपाकरसो गुरु:। कफपित्तविषश्वित्रकृमिदन्तगदापह:॥ भावप्रकाश:॥ विपाके गुरु सम्पक्वं मधुरं कफपित्तजित्। मधुरञ्च कषायञ्च स्निग्धं सङ्ग्राहि वाकुलम्॥ सुश्रुतसंहिता (सू. ४६ अ.–फल-व.।) तद्बीजं दन्तचालघ्नं नस्याच्छीर्षरुजापहम्। शोढलनिघण्टु:॥

वैद्यके व्यवहार:– (१) चलदन्ते वकुलफलम्–"चलदन्तस्थिरकरं कुर्याद्वकुलचर्वणम्–" (दन्तरोगचि.)। (२) दन्तचाले वकुलत्वक्– "दन्तचाले तु गण्डूषो वकुलत्वक्कृतो हित:। माक्षिकं पिप्पलीसर्पिमिश्रितं धारयेन्मुखे॥ दन्तशूलहरं प्रोक्तं प्रधानमिदमौषधम्।" (दन्तरोगचि.)। चक्रदत्त:॥

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- बकुल:, मधुगन्ध: सिंहकेशरक:। हि.- मोलसिरी, मौलेश्री। बं.- बकुल गाछ। मा.- बगवलहे, वरशोली। गु.- बोलसिरी। क.- बकुल, पगड़े भर, बलकल। ते.- पामरा। ता.- भोगदम, पागदमानु, द्रा.- कोलसठी, महलंभरं। अं.- सूरिनेम मेडलार। ले.- मेमुसोरस एलेंग्जी।

परिचय ज्ञापिका सं.- सीधुगन्ध:, शीर्षकेशर:, चिर-पुष्प:, स्थिरकुसुम:।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- मौलेसरी का पुष्प पका हुआ सुगन्धित होता है। वह मधुर है, कषाय रस है, स्निग्ध है तथा ग्राही है। बकुल फल दाँतों को स्थिर बनाता है तथा स्वच्छ करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- बकुल शीतल तथा हृद्य है और विष दोष का नाश करता है, मधुर है, कषाय रस है, मदकारक है तथा हर्षदायक है। मौलसेरी का पुष्प रुचिकर, क्षीरयुक्त, सुगन्धित है, शीतल है तथा मधुर है। यह स्निग्ध है, कषाय रस है और मलसंग्राहक कहा गया है।

भावप्रकाश के अनुसार- बकुल कषाय रस, अनुष्ण, पाक में कटु रस तथा गुरु है और कफ विकार, पित विकार, विष विकार, श्वित्र रोग तथा दन्त क्रिमिरोग को नष्ट करता है।

सुश्रुत संहिता के अनुसार- पका हुआ बकुल गुरु है, मधुर है तथा कफ-पित्त को दूर करता है, कषाय-रस है, स्निग्ध तथा ग्राही है। (सु.सू.अ.४६ फलवर्ग)।

सोढल निघण्टु के अनुसार- बकुल का बीज हिलते दाँतों को बैठाता है और नस्य देने से शिर के रोग को दूर करता है।

वैद्यक शास्त्र में बकुल का प्रयोग-

(१) **दाँत के हिलने पर बकुल के फल का प्रयोग-** बकुल के फल को चबाना चलते हुए दाँत को स्थिर बनाता है। (चक्र.दन्त रोग चि.)। (२) **चलदन्त में बकुल के छाल का प्रयोग-** दाँत के हिलने पर बकुल की छाल के क्वाथ का गण्डूष हितकर है। बकुल के छाल के कल्क का मधु तथा पीपर चूर्ण एवं घी मिलाकर मुख में धारण करना दन्त शूल को दूर करता है। यह दन्त रोग का प्रधान ओषध है। (चक्र. दन्तरोगाधिकार)।

Constituents—Tannin, some caoutchouc, wax, colouring matter, starch and ash (*Materia Medica of India—R. N. Khory*—II. p. 429). **Actions and uses**—The bark is astringent and given in catarrh of the bladder and urethra; also used as a gargle in salivation, sore mouth, loose teeth and in spongy gums. The unripe fruit when chewed is said to strengthen loose teeth, A snuff made of the powderd flowers, produces copious discharge from the nose and relieves headache and fever. (Do).

वचा

अरुणवर्णाया नाम–"वचा", "उग्रगन्धा", "लोमशा।" Acorus Calamus, *Linn.* **श्वेतवर्णायाः– "श्वेतवचा", "षड्ग्रन्था", "हैमवती।"**

परिचयज्ञापिका संज्ञा–वचायाः–"क्षुद्रपर्णी", "इक्षुपर्णी", "लोमशा", "जटिला"। श्वेतवचायाः– "दीर्घपत्रिका", "षड्ग्रन्था"। गुणप्रकाशिका संज्ञा–वचायाः–"उग्रगन्धा"। श्वेतवचायाः–"मेध्या"। वामनी कटुतिक्तोष्णा वातश्लेष्मरुजापहा। कण्ठ्या मेध्या च कृमिहृद्विबन्धाध्मानशूलनुत्॥ वचाद्वयन्तु कटुकं रूक्षोष्णं मलमूत्रलम्। दीपनं कफवातघ्नं मेध्यायुष्यञ्च पाचनम्॥ जन्तुघ्नं चोग्रगन्धं स्याल्लघु कण्ठास्यरोगजित्। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ वचा तिक्ता कटुष्णा च कफामग्रन्थिशोफनुत्। वातज्वरातिसारघ्नी वान्तिकृन्मदभूतनुत्॥ 'श्वेतवचा'ऽति- गुणाढ्या मतिमेधायुःसमृद्धिदा कफनुत्। वृष्या च वातभूतकृमिदोषघ्नी च दीपनी च बल्या॥ राजनिघण्टुः॥ वचोग्रगन्धा कटुका तिक्तोष्णा वान्तिवह्निकृत्। विबन्धाध्मानशूलघ्नी शकृन्मूत्रवि- शोधिनी॥ अपस्मारकफोन्मादभूतजन्त्वनिलान् हरेत्। 'हैमवत्यु'दिता तद्वद्वातं हन्ति विशेषतः॥ सुगन्धाप्युग्रगन्धा च विशेषात् कफकासनुत्। सुस्वरत्वकरी रुच्या हृत्कण्ठमुखशोधिनी॥ भावप्रकाशः॥ वचाऽऽयुष्या कफवाततृष्णाघ्नी स्मृतिवर्द्धिनी। राजवल्लभः॥ अद्भिर्वा पयसाऽऽ- ज्येन मासमेकन्तुसेविता। वचा कुर्यान्नरं प्राज्ञं श्रुतिधारणसंयुतम्। चन्द्रसूर्यग्रहे पीतं पलमेकं पयोऽन्वितम्। वचायास्तत्क्षणं कुर्यान्महाप्रज्ञान्वितं नरम्॥ बृहन्निघण्टुरत्नाकरः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) शुष्कार्शसां स्वेदनार्थं वचा–"...तैलेनाभ्यज्य बुद्धिमान् वचाशताह्वापिण्डैर्वा सुखोष्णैः स्नेहसंयुतैः। ...स्वेदयेत्–" (चि. ९ अ.)। (२) अतिसारे वचा–"वचाप्रतिविषाभ्यां...। ...पक्वं वा पाययेज्जलम्॥" (चि. १० अ.)। (३) अपस्मारे वचा–"...वचां वा मधुसंयुताम्" (चि. १६ अ.)। चरकः॥ (१) मेधायुर्लाभाय शुक्ला वचा– "हृतदोष एवाऽऽगारं प्रविश्य हैमवत्य वचायाः पिण्डमामलकमात्रमभिहुतं पयसाऽऽलोड्य पिबेत्। जीर्णे पयःसर्पिरोदन इत्याहारः॥ एवं द्वादश-रात्र-

मुपयुञ्जीत। ततोऽस्य श्रोत्रं विव्रियते। द्विरभ्यासाछ्रुतमादत्ते। चतुर्द्वादशरात्रमुपयुज्य सर्वं तरति किल्विषं, तार्क्ष्यदर्शनमुत्पद्यते शतायुश्च भवति।" (चि. २८ अ.)। (२) नैगमेयग्रहप्रतिषेधार्थं वचा– "वचां... वापि धारयेत्" (उ. ३६ अ.)। सुश्रुतः॥ वातजारोचके वचा–"छर्दयेद्दा वचाम्भोभिः (चि. ५ अ.)। वाग्भटः॥ (१) उन्मादे वचा– "षड्ग्रहाः... स्वरसाः। उन्मादहृतो दृष्टाः... कुष्ठमधुमिग्राः॥" (उन्मादचि.)। (२) अपस्मारे वचा–"यः खादेत् क्षीरभक्ताशी माक्षिकेण वचारजः। अपस्मारं महाघोरं सुचिरोत्थं जयेद् ध्रुवम्॥" (अपस्मारचि.)। (३) वृद्धो वचा–"वचासर्षपकल्केन प्रलेपो वृद्धिनाशनम्" चक्रदत्तः॥ मूत्ररोधजनिते उदावर्त्ते वचा–"मूत्ररोधजनिते क्षीरवारिवचां पिबेत्" (उदावर्त्तचि.)। भावप्रकाशः॥ (१) आमाजीर्णे वचा–"वचालवणतोयेन वान्तिरामे प्रशस्यते" (अजीर्णचि.)। (२) कफजहृद्रोगे वचा–"वचानिम्बकषायाध्यां वाम्यं हृदि कफोत्थिते।" (हृद्रोगचि.)। (३) चर्मदले श्वेता वचा–"वचया श्वेतया नाशं याति चर्मदलं द्रुतम्" (कुष्ठचि.)। (४) शिशोः कच्छुविचर्चिकादिषु वचा–"वचाकुष्ठविड़ङ्गानां कोष्ण-क्वाथावगाहनम्" (बालरोगचि.)। वङ्गसेनः॥ मुखरोगे वचा–"दिवारात्रं वचाग्रन्थिं मुखे सन्धारयेद्भिषक्। तेन सौख्यं भवेत्तस्य मुखरोगाद्विमुच्यते॥" (चि. ४५ अ.)। हारीतः॥

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- वचा, उष्णगन्धा, षड्न्था, गोलोमी, शतपर्विका, क्षुद्रपत्री, माङ्गल्या, जटिला, उग्रा, लोमशा। हि.- वच, घोडवच, गुड़वच, गुरवच। ब.- वच। म.- वेखेण्ड। क.- बंजे। ता.- वशम्बु, भलाव्ययम्बु, वक्षम्बु। फा.- सासेन जर्द- अगरतुर्कि। अं.- उदल वुज। यू.- अकृरुज़। अं.- स्वीट फ्लाग् रूट। ले.- एकोरस के-लोमल।

परिचय ज्ञापिका सं.- वचा- क्षुद्रपर्णी, इक्षुपर्णी, लोमशा, जटिला। श्वेत वचा–दीर्घपत्रिका, षड्ग्रन्था। **गुणप्रकाशिका सं.**- वचा- उग्रगन्धा। श्वेत वचा- मेध्या।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- वामिनी (वचा) कटुरस, तिक्तरस तथा उष्ण है और वात रोग एवं कफरोग को दूर करती है। यह कण्ठ के लिए हितकर है और कृमि रोग, हृदय रोग, विर्बन्ध, आध्मान तथा शूल को नष्ट करती है। दोनों प्रकार की वचा कटुरस, रूक्ष तथा उष्ण हैं और मल-मूत्र निकालने वाली हैं। यह जाठराग्नि दीपक है, कफ-वातनाशक है, मेधावर्द्धक है, आयुवर्द्धक है तथा पाचक है। उग्र गन्धा जन्तु नाशक है तथा लघु है और कण्ठ रोग तथा मुख रोग को दूर करता है।

राज निघण्टु के अनुसार- वचा तिक्तरस, कटु रस तथा उष्ण है और कफ रोग, आम विकार, ग्रन्थि तथा शोथ को दूर करती है। यह वात रोग तथा ज्वरातिसार का नाश करती है, वमन कारक है तथा मद (मदात्यय) एवं भूत बाधा को दूर करती है। श्वेत वचा अत्यधिक गुणकारी है और मति, मेधा, आयु तथा समृद्धि को देनेवाली है तथा कफ को दूर करने वाली है। यह वीर्यवर्द्धक है, वातविकार, भूत बाधा तथा क्रिमि दोष का नाश करती है और दीपन एवं बलकारक है।

भावप्रकाश के अनुसार- उग्र गन्धा वचा कटुरस, तिक्त रस तथा उष्ण है, वमन तथा जाठराग्नि को बढ़ाती है। यह विबन्ध आध्मान तथा शूल का नाश करती है तथा मल-मूत्र को शुद्ध करती है। यह अपस्मार, कफ विकार, उन्माद, भूत बाधा, क्रिमिरोग तथा वात रोग को दूर करती है। जो हेमवती वच कही गयी है वह विशेषकर

वातरोग का नाश करती है। सुगन्धित भी उग्रगन्धा विशेषकर कफ विकार एवं कास का नाश करती है। यह स्वर को ठीक करती है, रुचिकारक है और हृदय, कण्ठ तथा मुख का भी शोधन करनेवाली है।

राजवल्लभ के अनुसार- वचा आयुकारक है, कफ विकार, वातविकार तथा प्यास का नाश करती है और स्मृतिवर्द्धक है।

बृहन्निघण्टु रत्नाकर के अनुसार- वचा जल के साथ, दूध के साथ या घृत के साथ एक मास तक सेवन करने से मनुष्य को बुद्धिमान बना देती है सुनते ही धारण शक्ति (सद्यः धारणशक्ति) को बढ़ाती है। चन्द्रग्रहण तथा सूर्य ग्रहण में एक पल (५० ग्राम) की मात्रा में दूध के साथ वचा को पीने से उसी समय मनुष्य को महान प्रज्ञावाला बना देता है।

वैद्यक शास्त्र में वचा का प्रयोग-

(१) शुष्क अर्श रोग के स्वेदन के लिए वच का प्रयोग- बुद्धिमान् चिकित्सक वच तथा सोफ के कल्क में स्नेह मिलाकर तथा थोड़ा गरम कर या घी या तैल से पिण्ड का अभ्यङ्ग कर स्वेदन करे। (च.चि.अ.९)। **(२) अतिसार में वच का प्रयोग**- अतिसार रोग में वच तथा अतीस को जल में क्वाथकर उस जल का पान कराये। (च.चि.अ.१०)। **(३) अपस्मार में वच का प्रयोग**- अपस्मार में मधु मिलाकर वचा का प्रयोग करे। (च.चि.अ.६)

(१) मेधा तथा आयु के लिए शुक्ल वचा का प्रयोग- वमन-विरेचनादि से दोषों के दूर होने पर आगार (घर) में प्रवेश कर हेमवती वचा के पिण्ड आँवला के बराबर लेकर दूध में घोलकर पान करे। औषध के पच जाने पर दूध-भात या घी भात खाय। इस प्रकार बारह दिन प्रयोग करे। इसके बाद व्यक्ति का श्रोत्र शक्ति बढ़ जाती है और दो बार अभ्यारस करने से स्मरण आता है। चार बार बारह-बारह दिन प्रयोंग करने से सभी दोषों को पार कर जाता है तथा गीध की दृष्टि मिल जाती है और शतायु होकर जीवित रहता है। (सु.चि. अ.२८)। **(२) नैगमेय ग्रह प्रतिषेध के लिए वच का प्रयोग**- नैगमेय ग्रह के प्रतिषेध के लिए वच का धारण करे। (सु.उ.अ.३१)।

वातज अरोचक में वचा का प्रयोग- वातज अरोचक में वचा के साथ क्वाथ का पान कराकर वमन कराये। (वाग्भट चि.अ.२८)।

(१) उन्माद में वचा का प्रयोग- उन्माद रोग में षट्ग्रन्था वचा का स्वरस पान करना उन्माद शामक है। (चक्र. उन्माद चि.)। **(२) अपस्मार में वच का प्रयोग**- जो व्यक्ति बचा के चूर्ण को मधु के साथ खाता है और भोजन में दूध-भात आहार करता है वह भयंकर अधिक समय से उत्पन्न अपस्मार को अवश्य ही दूर करता है। (चक्र. अपस्मार चि.)। **(३) वृद्धि रोग में वचा का प्रयोग**- वचा तथा सरसों के कल्क का लेप वृद्धि रोग का नाश करता है। (चक्रदत्त, वृद्धि रोग चि.)।

मूत्र निरोध जन्य उदावर्त में वचा का प्रयोग- मूत्र निरोधज उदावर्त में दूध या जल में वचा को पकाकर पान करे। (भाव.उदावर्त चि.)।

(१) आमाजीर्ण में वचा का प्रयोग- आमाजीर्ण में वचा के क्वाथ को सेन्धा नमक मिलाकर वमन कराना प्रशस्त है। (बंगसेन, अजीर्ण चि.)। **(२) कफज हृदय रोग में वच का प्रयोग**- वचा तथा नीम के क्वाथ से कफजन्य हृदयरोग में वमन कराये। (बंगसेन, हृद्रोग चि.)। **(३) चर्मदल में श्वेत वचा का प्रयोग**- श्वेत वचा

का प्रयोग करने से चर्मदल कुष्ठ रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। (बंगसेन, कुष्ठरोग चि.)। (४) **बच्चों के कपिकच्छु-विचर्चिका आदि रोगों में वचा का प्रयोग-** वचा कूट तथा वायविडंग के थोड़ा गरम क्वाथ में अवगाहन (स्नान) करने से बच्चों के कपिकच्छु-विचर्चिका आदि रोग नष्ट होते हैं। (बंगसेन, बालरोग चि.)।

मुखरोग में वचा का प्रयोग- वचा की गथि का मुख में दिन-रात धारण करे। इससे सुख मिलता है तथा मुख रोग से छुटकारा मिल जाती है। (हारीत संहिता)

Constituents—A volatile oil, acorin—a bitter principle, acorctin (choline), calamine, starch, mucilage &c. **Action and uses—**Bitter aromatic stimulant, tonic and carminative; usually combined with vegetable bitter tonics and aromatics, and given in ague, habitual constipation, atonic dyspepsia, colic, flatulence and paratytic and nervous affections; as a stimulant it is given in low fevers, epilepsy, and as a debstrucut and depurative in parotitis, dropsy and other glandular diseases. It is an ingredient of various aphrodisiac confections. As a poultice it is applied to paralysed limbs and rheumatic swellings. Powdered rhizeme, rubbed with casherd spirit is used in chronic rheumatism; a watery solution is dropped into the ears in noise in the ears. *Balavaca* is given to children to bite to promote teething. Its action is similar to that of soothing syrup. It is also given in capillary bronchitis and cough. It acts by setting up emesis; Jora Baca is used as a diuretic in calculous affections and as an anthelmintic in worms in children. As an astringent the drug is given in dysentery and diarrhoea. Like neem it is also burnt as an incense. It is regarded as an insectifuge and insecticide for fleas &c. The volatile oil is used for scenting snuff and preparation of aromatic vinegar. (*Materia Medica of India*—R. N. Khory—II. p. 628).

वटः

वटः, न्यग्रोधः। Ficus, Bengalensis, *Linn*. F. Indica, *Roxb*.

परिचयज्ञापिका संज्ञा-"बहुपादः", "शिफारुहः", "जटालः", "अवरोही", "क्षीरी", "रक्तफलः", "महाच्छायः"। वटः शीतः कषायश्च स्तम्भनो रूक्षणात्मकः। तथा तृष्णाच्छर्द्दिमूर्च्छारक्तपित्त-विनाशनः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ वटः कषायो मधुरः शिशिरः कफपित्तजित्। ज्वरदाह-तृषा-मेहव्रणशोफापहारकः॥ वटी (नदीवटः) कषायमधुरा शिशिरा पित्तहारिणी। दाहतृष्णाश्रम-श्वासविच्छर्द्दिशमनी परा॥ राजनिघण्टुः॥ वटः शीतो गुरुग्राही कफपित्तव्रणापहः। वर्ण्यो विसर्पदाहघ्नः कषायो योनिदोषहृत्॥ स्वादुतृषापहो मूर्च्छामेहासृग्दरनाशनः। भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः- (१) अधोगरक्तपित्तिणो विट्प्रथमं प्रवृत्ते शोणिते वटावरोहः शुङ्गश्च-"विशेषतो विट् प्रथमं प्रवृत्ते पयो मतं...। वटावरोहैर्वटशुङ्गकैर्वा॥" (चि. ४ अ.)। (२) रक्तातिसारे वटशुङ्गः-"रक्तं विट्सहितं पूर्वं पश्चाद्वा योऽतिसार्यते। न्यग्राधोदुम्बराश्वत्थशुङ्गानापोथ्य वासयेत्॥ अहोरात्रं जले तप्ते घृतं तेनाम्भसा पचेत्। तदर्द्धं शर्करायुक्तं लिह्यात् सक्षौद्रपादिकम्॥" (चि. १० अ.)। (३) व्रणनिर्वापणे वटपल्लवः-"शाल्मलीत्वग्वलामूलं तथा न्यग्रोधपल्लवाः। आलेपनं निर्वापणं-।" (चि. १३ अ.)। (४) पण्डुरप्रदरे न्यग्रोधः-न्यग्रोधत्वक्कषायेण लोध्रकल्कं तथा पिबेत्" (चि. ३० अ.)। चरकः॥ रक्तपित्ते वटपल्लवः-"लिह्याच्च दूर्वावटजांश्च पल्लवान्॥

मधुद्वितीयान्...।" (चि. ४५ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) अतिसाररुजायाम् वटावरोहः–"वटारोहन्तु सम्पिष्य श्लक्ष्णं तण्डुलवारिणा। तत् पिबेत् तक्रसंयुक्तमतीसाररुजापहम्॥" (अतिसार-चि.)। (२) शुक्रसंज्ञकनेत्ररोगे वटक्षीरः–"वटक्षीरेण संयुक्तं श्लक्ष्णं कर्पूरजं रजः। क्षिप्रमञ्जनतो हन्ति शुक्रञ्चापि घनोन्नतम्॥" (नेत्ररोगचि.)। चक्रदत्तः। अध्यर्वुदे वटदुग्धं वल्कञ्च–"वटदुग्धकुष्ठरोमकलिप्तं बद्धं वटस्य वल्केन। अध्यस्थि सप्तरात्रान् महदपि शमयेत् सिद्धिददम्॥" (अर्वुदचि.)। (२) शोणितपदरे वटशुङ्गम्–"काश्मर्यवटशुङ्गानि पृथग्दन्त्यास्तथैव च। घृतं सिद्धं भवेच्छ्रेष्ठं शोणितप्रदरे पिबेत्॥" (स्त्रीरोगचि.)। वङ्गसेनः॥ व्यङ्गे वटाङ्कुरः– "वटाङ्कुरा मसूराश्च प्रलेपाद्व्यङ्गनाशनम्।" भावप्रकाशः॥

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- वटः, रक्तफलः, शृङ्गी, न्यग्रोधः, क्षीरी, बहुपादः। हि.- बड़ा बड़गद, वर्गद। बं.- वट, बड़गाछ। क.- आल, आलद मारा। गु.- मा.- वड़। द्रा. आल, वाल। फा.- दरख्तरेशा वड़वार्ड। म.- वट। ते.- मरिचेट्टु। ता.- अल। अ.- आतु आयद। अं.- बेनियन ट्री। ले.- फिकस वेंगालेन्सिस।

परिचय ज्ञापिका सं.- बहुपादः, शिफारुहः, जटालः, अवरोही, क्षीरी, रक्तफलः महाच्छायः।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- वट शीतल तथा कषाय रस है और स्तम्भन है तथा रूक्षणात्मक है। यह प्यास, वमन, मूर्च्छा तथा रक्त-पित्त का नाश करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- वट कषाय रस, मधुर रस तथा शीतल है तथा कफ-पित्त को दूर करता है। यह ज्वर, दाह, प्यास, प्रमेह, व्रण तथा शोथ को दूर करता है। वटी (न-टीवट) कषायरस, मधुर रस तथा शीतल है और पित्त विकार को दूर करता है तथा दाह, प्यास, श्रम, श्वास तथा वमन को अच्छी तरह शान्त करता है।

भावप्रकाश के अनुसार- वट शीतल तथा ग्राही है और कफ-पित्त विकार एवं व्रण को दूर करता है। यह वर्ण को स्वच्छ बनाता है और विसर्प तथा दाहनाशक है, कषाय रस है तथा योनि विकार को दूर करता है। यह स्वादिष्ट है, प्यास नाशक है तथा मूर्च्छा, प्रमेह एवं रक्त प्रदर का नाश करता है।

वैद्यक शास्त्र में वट का प्रयोग-

(१) अधोग रक्त-पित्त के रोग के प्रथम बार मल तथा रक्त निकलने पर वटावरोह तथा वट शुङ्ग का प्रयोग- विशेष कर अधोग रक्त पित्त के रोगी के प्रथम बार मल निकलने पर वटावरोह या वट शुङ्ग के साथ पकाया दूध हितकर है अथवा वटावरोह या वट शुङ्ग के दूध का प्रयोग करे। (च.चि.अ.४)। **(२) रक्तातिसार में वटशुङ्ग का प्रयोग-** विट के सहित पहले तथा वाद में रक्त के निकलने पर जब अधिक अतिसार होता है तब वट, गूलर तथा पीपर के शुङ्ग को पीस कर वक्षित करे और दिन-रात जल में पकाने के बाद उस जल के साथ विधिवत् घृत पकावे और उसके आधा शक्कर मिलाकर तथा चौथाई शहद मिलाकर चाटे। (च.चि. अ.१०)। **(३) व्रण के निर्वापण में वट के पल्लव का प्रयोग-** सेमर की छाल, बला का मूल तथा वट के पल्लवों का आलेपन व्रण का निर्वापण करता है। (च.चि.अ.१३)। **(४) पाण्डुर प्रदर में न्यग्रोध का प्रयोग-** वट की छाल के कषाय के साथ लोध के कल्क का पाण्डुर प्रदर में पान करे। (च.चि.अ.३०)। **रक्त-पित्त में वटपल्लव का प्रयोग-** रक्त- पित्त में दूर्वा तथा वट के पल्लव के कल्क को मधु मिलाकर चाटे। (सु.चि. अ.४५)।

(१) अतिसार की पीड़ा में वटावरोह का प्रयोग- वट की वरोही को महीन पीसकर चावल के धोअन के साथ तक्र (मट्ठा) मिलाकर पान करे। यह अतिसार की पीड़ा को शान्त करता है। (चक्र.अति.चिकित्सा)। **(२) शुक्ल संज्ञक नेत्ररोग में वट क्षीर का प्रयोग**- वट के दूध के साथ, महीन कपूर के चूर्ण का अंजन करने से शीघ्र ही घना तथा उन्नत शुक्लरोग (मोतिया विन्द) नष्ट होता है। (चक्र.नेत्ररो.चि.)।

(१) अध्यर्बुद में वट दुग्ध तथा वट की छाल का प्रयोग- वट का दूध तथा कूट रोग को पीसकर लेप करने से वट की छाल से बांधने पर अस्थि के मध्य बड़े अर्वुद को सात दिन में शान्त करता है। यह सिद्ध योग है। (बंगसेन, अध्यर्वुद चि.)। **(२) रक्त प्रदर में वट शुङ्ग का प्रयोग**- गम्भारी तथा वट के शुङ्ग तथा दन्ती के शुद्ध के कल्क के साथ विधिवत् सिद्ध घृत का रक्त प्रदर में पान करे। यह योग रक्त प्रदर के लिये श्रेष्ठ है। (बंगसेन, स्त्री रोग, चि.)।

व्यङ्ग में वटांकुर का प्रयोग- वटांकुर तथा मसूर के कल्क का लेप व्यङ्ग का नाश करता है। (भावप्रकाश)।

Constituents—The bark contains tannin, wax and caoutchouc. **Actions and uses**—Tonic and astringent; given in diabetes, dysentery and haemorrhagic fluxes, and in gonorrhoea, and seminal weakness. Locally the juice is applied as a remedy for toothache and on the soles of the feet and palms of the hand when cracked. (*Materia Medica of India—R. N. Khory—II. p. 557*).

वदरम्

वदरः, (वदरी)–Zizyphus Jujuba. **सौवीरवदरम्, राजवदरम्**– Z. Vulgaris. **लघुवदरम्**– Z. Napeca.

परचयज्ञापिका संज्ञा–कोलवदरयोः–"वक्रकण्टकः", "वृत्तफलः", "दृढबीजः"। राजवदरस्य– "पृथुफलः", "तनुबीजः", "मधुरफलः"। भूवदर्याः– "वल्लीवदरी", "बहुफलिका:"। लघुवदरस्य– "बहुकण्टकः", "सूक्ष्मपत्रकः", "दुष्पर्शः", "शवराहारः"। कर्कन्धु कोलवदरमामं पित्तकफावहम्। पक्वं पित्तानिलहरं स्निग्धं समधुरं सरम्॥ पुरातनं तृट्शमनमामघ्नं दीपनं लघु। सौवीरवदरं स्निग्धं मधुरं वातपित्तजित्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ (सुश्रुतः–सू. ४६ अ. फल-व.)। वदरं मधुरं कषायमम्लं परिपक्वं मधुराम्लमुष्णमेतत्। कफकृत् पचनातिसारसक्तश्रमशोषार्त्तिविनाशनञ्च रुच्यम्॥ 'वदरस्य' पत्रलेपो ज्वरदाहविनाशनः। 'त्वचा' विस्फोटशमनी 'बीजं' नेत्रामयापहम्॥ 'राजवदरः' सुमधुरः शिशिरो दाहार्त्तिपित्तवातहरः। वृष्यश्च वीर्यवृद्धिं कुरुते शोषश्रमं हरते॥ 'भूवदरी' मधुराम्ला कफवातविकारहारिणी पथ्या। दीपनपाचनकर्त्री किञ्चित् पित्तास्त्रकारिणी रुच्या॥ 'लघुवदरं' मधुराम्लं पक्वं कफवातनाशनं रुच्यम्। स्निग्धं तु जन्तुकारकमीषत् पित्तार्त्तिदाहशोषघ्नम्॥ राजनिघण्टुः॥ 'वदरीफलमज्जा' तु तुवरा मधुरा मता। शुक्रदा बलदा वृष्या कासश्वासतृषापहा॥ वातघ्नी छर्दिदाहघ्नी पित्तहा मुनिभिर्मता। निघण्टुरत्नाकरः॥ पच्यमानं सुमधुरं सौवीरं वदरं महत्। सौवीरं वदरं शीतं भेदनं गुरु शुक्रलम्॥ वृंहणं पित्तदाहास्त्रक्षयतृष्णानिवारणम्। सौवीराल्लघु सम्पक्वं मधुरं 'कोल'-मुच्यते॥ कोलन्तु वदरं ग्राहि रुच्यमुष्णञ्च वातलम्। कफपित्तकरञ्चापि गुरु सारकमीरितम्॥ 'कर्कन्धुः क्षुद्रवदरं कथितं पूर्वसूरिभिः। अम्लं स्यात् 'क्षुद्रवदरं' कषायं मधुरं मनाक्॥ स्निग्धं गुरु च तिक्तञ्च वातपित्तापहं स्मृतम्। 'शुष्कं' भेद्यग्निकृत् सर्वं लघुतृष्णाक्लमास्त्रजित्॥

भावप्रकाशः॥ कर्कन्धुकोलवदरमामं पित्तकफावहम्। पक्वं पित्तानिलहरं स्निग्धं समधुरं सरम्॥ 'तच्छुष्कं' कफवातघ्नं न च पित्ते विरुद्ध्यते। पुराणं तृट्प्रशमनं श्रमघ्नं दीपनं लघु॥ राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) अर्शःसु कोलम्– "कौलोत्क्वाथेऽथवा कोष्णे...। तं शूलार्त्तमुपवेशयेत्॥" (चि. ८ अ.)। (२) अतिसारे वदरम्– "...यूषेण वादरानामथापि वा। ...दधिदाडिमसिद्धेन बहुस्नेहेन भोजयेत्।" (चि. १० अ.) (३) मदात्ययस्य दाहे वदरीपल्लवः– "वदरीपल्लवोत्थाश्च तथैवारिष्टकोद्भवाः। फेनिलायाश्च यः फेनस्तैर्दाहे लेपनं शुभम्॥" (चि. १२ अ.)। (४) स्वरभेदे कासे च वदरीपचम्– "वदरीपत्रकल्कं वा घृतभृष्टं ससैन्धवम्। स्वरभेदे च कासे च लेहमेतत् प्रयोजयेत्॥" (चि. २२ अ.)। चरकः॥ अतिसारे वदरीमूलम्– "तद्वल्लीढं मधुयुतं वदरीमूलमेव तु।" (उ. ४० अ.)। सुश्रुतः॥ प्लीहि वदरीपत्रम्– "तैलोन्मिश्रैर्वदरकपत्रैः सम्मर्द्दितैः समुपनद्धः। मुषलेन पीडितोऽनुयाति प्लीहा पयोभुजो नाशम्॥" (चि. १५ अ.)। वाग्भटः॥ कासे वदरमज्जा– "पिबेद्वदरमज्जाणं मदिराद- धिमस्तुभिः।" (कासचि.) वृद्धवाग्भटः॥ (१) रक्तातिसारे वदरत्वक्– "शल्लकीवदरी... त्वचः। पीताः क्षीरेण मध्वाढ्याः पृथक् शोणितनाशनाः॥" (अतिसारचि.)। (२) मसूरिकायां वदरम्– "लिहेद्वा वादरं चूर्णं पाचनार्थं गुडेन तु। अनेनाशु विपच्यन्ते वातपित्तकफात्मिकाः॥" (मसूरिकाचि.)। (३) प्रदरे वदरम्– "गुडेन वदरीचूर्णं...। पृथक् प्रदरनाशना॥" (प्रदरचि.)। (४) स्थौल्ये वदरीपत्रम्– "वदरीपत्रकल्केन पेया काञ्जिकसाधिता। स्थौव्यनुत्...।" (स्थौल्यचि.)। चक्रदत्तः॥ प्रवाहिकायां वदरीपत्रम्– "धातकीवदरीपत्रं...। एकतो दध्ना पिबेत् प्रवाहिकार्द्दितः॥" (म. ख. १मः भा.)। भावप्रकाशः॥ भस्मकाग्नि प्रतीकारार्थं कोलास्थिमज्जा– "कोलास्थि- मज्जकल्कस्तु पीतो वाप्युदकेन वै। अचिराद्विनिहन्त्येष प्रयोगो भस्मकं नृणाम्॥" (भस्मकाग्निचि.)। वङ्गसेनः।

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- कर्कन्धुः, वदरी, कोलम्, घोण्टा, वदरम्, अजाप्रिया। हि.- बैर, बादर बेरी। बं.- कुल, वसर। झ वोर, वोरीचे झाड। गु.- वारडी। क.- बोर यरण्ड। ता.- रेयन्ती। ते.- रेगु चेट्टु। मा.- वारेढ़ी, वारे। द्रा.- यलन्दे। फा.- कुनार, सिदुर। अ.- सिदर नवेका। ले.- झिझियस जुजुवा। अं.- प्लम।

परिचय ज्ञापिका सं.- कोल तथा वदर– वक्रकण्टकः, वृत्तफलः, दृढबीजः, राजवदर– पृथुफलः, तनुबीजः, मधुरफलः। भूवदरी–बल्ली वदरी, बहुफलिका। लघु वदर- बहुकण्टकः, सूक्ष्मपत्रकः, दुष्पर्शः शवराहारः।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- कर्कन्धु तथा आमवदर (वैर) पित्त तथा कफ को बढ़ानेवाला है। पका हुआ वदर पित्त तथा वात को बढ़ानेवाला है, स्निग्ध है, मधुर है तथा सारक है। पुराना वैर प्यास को शान्त करनेवाला है, आम नाशक है, जाठराग्नि दीपक है तथा लघु है। सौवीर वदर स्निग्ध तथा मधुर है और वात-पित्त को दूर करता है। (सु.सू. ४६ फलवर्ग)।

राजनिघण्टु के अनुसार- बैर मधुर, कषाय रस तथा अम्ल रस है। पका हुआ बैर मधुर, अम्ल रस तथा उष्ण है, कफकारक है और पाचन है, अतिसार, श्रम, शोथ तथा पीड़ा का नाश करता है और रुचिकारक है। बेर पत्ते के कल्क का लेप ज्वर तथा दाह का नाश करता है। बेर की छाल विस्फोट को शान्त करती है तथा

वेर का बीज नेत्र रोग को दूर करता है। राज बदर मधुर तथा शीतल है और दाह, पीड़ा, पित्त तथा वात को दूर करता है, वीर्यकारक है, वीर्य को बढ़ाता है शोथ तथा श्रम (थकावट) को दूर करता है। भूवदरी मधुर तथा अम्ल रस है और कफ-वात विकार को दूर करता है और पथ्य है। यह दीपन तथा पाचन कारक है तथा थोड़ा रक्त-पित्त को बढ़ानेवाली है एवं रुचिकारक है। लघु वदर मधुर तथा अम्ल है और पका हुआ कफ-वातनाशक है, रुचिकारक है, स्निग्ध है तथा थोड़ा क्रिमिकारक है और पित्त विकार, दाह तथा शोथनाशक है।

निघण्टु रत्नाकर के अनुसार- बदरी की मज्जा कषाय तथा मधुर है। यह शुक्रप्रद है, बलकारक है, वीर्यवर्द्धक है और श्वास, कास एवं प्यास को दूर करती है। यह वातनाशक है, वमन तथा दाह नाशक है और पित्त नाशक है ऐसा मुनियों ने कहा है।

भावप्रकाश के अनुसार- बड़ा सौवीर बदर पच्यमानावस्था में मधुर होता है। सौवीर वदर शीतल है, मलभेदक है, गुरु है तथा शुक्रवर्द्धक है। यह मांसवर्द्धक है और पित्त विकार, दाह, रक्त विकार, क्षयरोग तथा प्यास को दूर करता है। लघु सौवीर वदर पकने पर मधुर होता है। उसे कोल कहते हैं। कोल वदर ग्राही है, रुचिकर है, उष्ण है तथा वातकारक है। यह कफ तथा पित्तकारक है, गुरु है तथा सारक कहा गया है। प्राचीन विद्वानों ने कर्कन्धु को क्षुद्र वदर कहा है। यह अम्ल रस है, कषाय रस है तथा थोड़ा मधुर रस है। यह स्निग्ध है, गुरु है, तिक्तरस है तथा वातपित्तनाशक है। शुष्क क्षुद्र वदर दस्तावर है, अग्नि कारक है। सभी लघु वदर प्यास कृत तथा रक्त विकार को दूर करते हैं।

राजवल्लभ के अनुसार- कर्कन्धु आम कोलवदर पित्त तथा कफ को बढ़ानेवाला है। पका हुआ पित्त तथा वात को दूर करता है, स्निग्ध है, मधुर है तथा सारक है। यह सुखा हुआ लघु वदर कफवात नाशक है किन्तु पित्त का विरोधी नहीं है। पुराना लघु वदर प्यास को शान्त करता है, थकावट को दूर करता है तथा दीपन एवं लघु है।

वैद्यक शास्त्र में वैर का प्रयोग-

(१) अर्शरोग में कोल (वैर का प्रयोग)- कोल के क्वाथ या कल्क को थोड़ा गरम कर शूल पीड़ित अर्श रोग में प्रवेश करे। (च.चि.अ.८)। (२) **अतिसार में बैर का प्रयोग**- अतिसार रोग में वैर का यूष प्रयोग करे अथवा दही तथा अनार के कल्क के साथ सिद्ध अन्न का अधिक स्नेह मिलाकर सेवन कराये। (च.चि. अ.१०)। (३) **मदात्यय के दाह में वदरी के पल्लव का प्रयोग**- वेर के पल्लव को उबाल कर उसके फेन का तथा नील के क्वाथ के फेन का मदात्यय जन्य दाह में लेप करना प्रशस्त है। (च.चि.अ.१२)। (४) **स्वर भेद तथा कास में वदरी पत्र का प्रयोग**- वैर के पत्तों का कल्क घृत में भूनकर तथा सेन्धा नमक मिलाकर स्वरभेद तथा कास में चाटने के लिए प्रयोग करे। (च.चि.अ.३२)।

अतिसार में वदरी मूल का प्रयोग- बैर के मूल के कल्क को मधु मिलाकर अतिसार रोग में चाटे। (सु.अ.३५०.४०)।

प्लीहा में वदरी पत्र का प्रयोग- बैर के पत्तों का तैल भूनकर तथा उसको मर्दन कर एकत्र किया हुआ को मूसल से कूटकर बांधने से प्लीहा नष्ट होती है। इसके सेवन काल में दूध का आहार करे। (वागभट, चि. अ.१५)।

कास में वदर मज्जा का प्रयोग- कासरोग में वैर की मज्जा का मदिरा, दही तथा मस्तु के साथ पान करे। (वृद्धवाग भट, का.चि.)।

(१) **रक्तातिसार में बैर की छाल का प्रयोग**- शल्लकी तथा बैर की छाल के कल्क का मधु मिलाकर दूध के साथ अलग-अलग पान करे। यह रक्तातिसार के रक्त का नाश करता है। (चक्र.अतिसार चि.)। (२) **मसूरिका में वेर का प्रयोग**- बैर के चूर्ण को गुड़ के साथ मसुरिका के पाक के लिए चाटे। इससे वात-पित्त-कफात्मक मसूरिका का पाक हो जाता है। (चक्र.मसूरिका चि.)। (३) **प्रदर में बैर का प्रयोग**- गुड़ के साथ बैर के चूर्ण का प्रयोग प्रदर रोग का नाश करता है। (चक्र.प्रदर चि.)। (४) **स्थौल्य में वदरी पत्र के कल्क का प्रयोग**- वदरी के पत्र के कल्क की काञ्जी के साथ साधित पेया स्थौल्य रोग को दूर करती है। (चक्र. स्थौल्य चि.)।

प्रवाहिका में बैर के पत्ता का प्रयोग- धाय तथा बैर के पत्तों का एक-एक कल्क दही के साथ पान करे। यह प्रवाहिका का नाश करता है। (भावप्रकाश, म.ख.अ.१)।

भस्मकाग्नि रोग के प्रतिकार के लिए कोलास्थि की मज्जा का प्रयोग- कोलास्थि मज्जा का कल्क वापी (वावली) के जल के साथ पान करने से शीघ्र ही मनुष्यों के भस्मक रोग का नाश होता है। (बंग. भस्मकाग्नि चि.)।

Constituents—The bark and leaves contain tannin and a crystallizable principle, ziziphic acid and sugar. **Actions and uses**—The bark is astringent, used in lucorrhoea, diarrhoea and haemorrhagic fluxes generally combined with Talabija. The paste of the leaves with those of Ficus glomerata, is used locally for scorpion bites; and as a poultice to promote suppuration of boils. With catechu the leaves are given as cooling and refrigerant. The root is used in fevers. (*Materia Medica of India—R.N. Khory*—II. p. 160).

वरुणः

वरुणः, तिक्तशाकः। Crataeva Religiosa, *Forst.* Capparis trifoliata, *Roxb.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा–"तिक्तशाकः", "श्वेतपुष्पः", "श्वेतद्रुमः"। गुणप्रकाशिका संज्ञा– "मारुतापहः", "अश्मरीघ्नः"। वरुणः शीतवातघ्न-स्तिक्तो विद्रधिजन्तुजित्। तथा च कटुरुष्णश्च रक्तदोषहरः परः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ वरुणः कटुरुष्णश्च रक्तदोषहरः परः। शीर्षवातहरः स्निग्धो दीप्यो विद्रधिवातजित्॥ राजनिघण्टुः॥ वरुणः पित्तलो भेदी श्लेष्मकृच्छ्राश्ममारुतान्। निहन्ति गुल्मवातास्रकृमीं श्चोष्णोऽग्निदीपनः॥ कषायो मधुरस्तिक्तः कटुको रूक्षको लघुः। भावप्रकाशः॥ वरुणोऽनिलशूलघ्नो भेदी चोष्णाश्मरीहरः। 'पुष्पं' वरुणजं ग्राहि पित्तघ्नमामवातजित्॥ राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः–अर्शःसु वरुणपत्रम्–"...वरुणस्य च... पत्राणि। जलेनोत्क्वाथ्य शूलार्त्तं स्वभ्यक्तमवगाहयेत्॥" (चि. ९ अ.)। चरकः॥ (१) अञ्जने विषसंसृष्टे वरुणत्वक्–"अञ्जनं... निर्यासो वरुणस्य च॥" (क. १ अ.)। (२) पूतनाप्रतिषेधार्थं वरुणत्वक्–"...वरुणः पारिभद्रकः। ...योज्याः स्युर्बालानां परिषेचने॥" (३२ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) अश्मर्यां वरुणमूलत्वक्– "पिबेद्वरुणमूलत्वक्क्वाथं तत्कल्कसंयुतम्।" (अश्मरीचि.)। (२) गण्डमालायां वरुणमूलत्वक्– "माक्षिकाढ्यः सकृत्पीतः क्वाथो वरुणमूलजः। गण्डमालां हरत्याशु चिरकालानुबन्धिनीम्॥" (गण्डमालाचि.) (३) विद्रधौ वरुणमूलत्वक्– "श्वेतवर्षाभुवो मूलं मूलं वरुणकस्य च। जलेन

क्वथितं पीतमपक्वं विद्रधिं जयेत्॥" (विद्रधिचि.)। (४) व्यङ्गेषु वरुणत्वक्–"व्यङ्गजिद्वरुणत्वग्वा छागीक्षीरप्रपेषिता।" (क्षुद्ररोगचि.)। (५) किक्किशरोगे वरुणपत्रम्–"जलपिष्टवरुणपत्रैः सघृतैर्द्वर्त्तनलेपौ तु। किक्किशरोगं हरतो गोमयघर्षादथ विहितौ॥" (स्त्रीरोगचि.)। चक्रदत्तः॥ वातजवेदनायां वरुणत्वक्–"शिग्रुः सवरुणः कल्को धान्याम्लेनानिलार्त्तिजिल्लेपात्। भवति न चेति विकल्पो न विधेयः सिद्धयोगेऽस्मिन्॥" (म. ख. २भा.)। भावप्रकाशः॥

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- वरुणः, सेतुः, तिक्तशाकः कुमारकः। हि.- वारुण, वरुणा। बं.- वरुन गाछ। म.- दायवरणा। गु.- वरणो। क.- मदवसले। ते.- वरुमहि। ता.- भरलिङ्गम्। भा.- वरणो। ले.- केटिवारेलि जिओआ।

परिचय ज्ञापिका सं.- तिक्तशाकः, श्वेतपुष्पः, श्वेतद्रुमः। **गुण प्रकाशिका सं.-** मारुतापहः, अश्मरीघ्नः।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- वरुण शीतवात का नाश करता है तथा तिक्तरस है और विद्रधि एवं क्रिमि रोग का नाश करता है। यह कटुरस तथा उष्ण है और रक्त-विकार को दूर करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- वरुण कटुरस तथा उष्ण है और रक्त विकार को अच्छी तरह दूर करता है। यह शिर वात को दूर करता है स्निग्ध है जाठराग्नि दीपक है, विद्रधि तथा वातनाशक है।

भावप्रकाश के अनुसार- वरुण पित्तकारक तथा मलभेदक है तथा कफ विकार, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी तथा वात विकार का नाश करता है। यह गुल्मार्श तथा वात रक्त तथा क्रिमि रोग का नाश करता है और उष्ण है एवं जाठराग्नि दीपक है। यह कषाय रस, मधुर रस, कटु रस तथा तिक्त रस है और रुचिकारक एवं लघु है।

राजवल्लभ के अनुसार- वरुण वातज शूल का नाश करनेवाला, मलभेदक तथा उष्ण है और अश्मरीरोग को दूर करता है। वरुण का पुष्प ग्राही, पित्तनाशक तथा आमवात को दूर करता है।

वैद्यक शास्त्र में वरुण का प्रयोग-

अर्श रोग में वरुण पत्र का प्रयोग- वरुण के पत्तों को जल के साथ क्वाथ कर उस क्वाथ से अर्श रोग के शूल पीड़ित व्यक्ति का अवगाहन कराये। (च.चि.अ.९)।

(१) विष संसृष्ट रोग में अञ्जन में वरुण का प्रयोग- वरुण के गोद का अंजन करना विष संसृष्ट रोग में हितकर है। (सु.चि.अ.१)। **(२) पूतना प्रतिषोध के लिये वरुण का प्रयोग-** वरुण की छाल तथा पारिभद्र (फरहद) की छाल का क्वाथ से बालको के पूतना ग्रह में बालको को सींचे। (सु.चि.अ.३२)।

(१) अश्मरी में वरुण मूलत्वक् का प्रयोग- वरुण के मूल को क्वाथ में वरुण का कलकर्मि लाकर अश्मरी रोग में पान करे। (चक्र.अश्मरी चि.)। (२) **गण्डमाला में वरुण मूलव्वक् का प्रयोग-** वरुण मूल की छाल का क्वाथ मधु मिलाकर एक ही बार पान करने से चिरकालानुवन्धि गण्डमाला को दूर करता है। (चक्र.गण्डमाला.चि.)। (३) **विद्वधि में वरुण मूलत्वक् का प्रयोग-** सफेद पुनर्नवात तथा वरुण मूल के जल के साथ क्वाथ का पान करने से अपक्व विद्वधि को भी नाश करता है। (चक्र.विद्वधि चि.)। (४) **व्यङ्ग में वरुण त्वक् का प्रयोग-** वरुण के छाल को बकरी के दूध के साथ पीस प्रयोग करने से व्यङ्ग को नाश करता है। (चक्र.शुद्ध रोग चि.)। (५) **किक्विशरोग में वरुण पत्र का प्रयोग-** वरुण के पत्तों को जल के साथ पीसकर

तथा घी मिलाकर उद्वर्तन तथा लेप गोबर की गोहरी से घर्षण के वा बरने से ये उद्वर्तन तथा लेप किकिंशु नाम स्त्री के रोगो को दूर करते है। (चक्र.स्त्री रोग चि.)।

वात वेदना में वरुणत्वक् का प्रयोग- सहिजन तथा वरुण की छाल का कल्क धान्याम्ल (काञ्जी) में मिलाकर लेप करने से वातज पीड़ा को दूर करता है। इसका और कोई विकल्प नहीं है। इसमें सिद्ध योग का प्रयोग न करे। (भावप्र.ख.३१२)।

Constituents—The bark contains a principle similar to Saponin. **Actions and uses—** Stomachic, tonic, laxative and lithontriptic, given to promote appetite and to increase the secretion of bile. As a diuretic the root bark is used in dropsy and urinary disorders in calculous affections, combined with tribulus terrestris. Fresh leaves and roots mixed with cocoanut juice and ghee is given in rhumatism also as food to reduce corpulence. A paste of the leaves is applied to soles of the feet to relieve swelling and burning sensation. The leaf is smoked in caries of the bones of the nose. (*Materia Medica of India*—R.N. Khory—II p. 69).

वलाचतुष्टयम्

Sida cordifolia

वला– *Sida cordifolia.* **अतिवला कङ्कतिका–** *S. rhombifolia, S. asiatica (Roxb.) S. abutilon, S. indicum (Khory).* **महावल–***S. rhomboidea.* **नागवला–***S. alba, (U.C. Dutt); S. spinosa, (Watt) S. graveolens.*

अन्वर्थसंज्ञा–वलायाः–"खरकाष्टिका", "शीतपाकी"। अतिवलायाः–"शीतपुष्पा"। महा-वलायाः–"वर्षपुष्पी", "पीतपुष्पी", "बृहत्फला"। नाग-बलायाः–"खरगन्धा", "महाशाखा", "महापत्रा", "महाफला", "चतुष्फला"। वला स्निग्धा हिमा स्वादुर्वृष्या बल्या त्रिदोषनुत्। रक्तपित्तक्षयं हन्ति बलौजो वर्द्धयत्यपि॥ महावला तु हृद्रोगवातार्शःशोफनाशनी। शुक्रवृद्धिकरी हन्याद् विषमञ्च ज्वरं नृणाम्॥ गाङ्गेरुकी (नागवला) मधुराम्ला कषायोष्णा गुरुस्तथा। कटुस्तिक्ता च वातघ्नी व्रणपित्तविकारजित्॥ वातपित्तापहं ग्राहि बल्यं वृष्यं "वलात्रयम्"। वला चातिवला चैव महावलवला वला॥ अन्या राजवला चेति वलायाः पञ्चकं मतम्। तत् पित्तवातजिद् ग्राहि बल्यं वृष्यञ्च कृच्छ्रजित्॥ स्निग्धं मधुरमायुष्यं वातासृग्दरनाशनम्। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ वलाऽतितिक्ता मधुरा पित्तातिसारनाशनी। बलवीर्यप्रदा पुष्टिकफरोगविशोधिनी॥ महावला तु हृद्रोगवातार्शः-शोफनाशनी। शुक्रवृद्धिकरी बल्या विषमज्वरहारिणी॥ मधुराम्ला "नागवला" कषायोष्णा गुरुस्तथा। कण्डूतिकुष्ठवातघ्नी व्रणपित्तविकारजित्॥ तिक्ता कटु "श्चातिबला" वातघ्नी कृमिनाशनी। दाहतृष्णाविषच्छर्दिस्क्लेदोपशमनी परा॥ 'महासमङ्गा' मधुरा अम्ला चैव त्रिदोषहा। युक्तचा बुधैः प्रयोक्तव्या ज्वरदाहविनाशनी॥ राजनिघण्टुः॥ वलाचतुष्टयं शीतं मधुरं बलकान्तिकृत्। स्निग्धं ग्राहि समीरास्त्रपित्तास्त्रक्षतनाशनम्॥ वलामूलत्वचश्चूर्णं पीतं सक्षीरशर्करम्। मूत्रतिसारं हरति दृष्टमेतन्न संशयः॥ हरेन्"महावला" कृच्छ्रं भवेद्वातानुलोमनी। हन्या"दतिवला" मेहं पयसा सितया समम्॥ भावप्रकाशः॥ स्निग्धा रुच्या बला वृष्या ग्राहिणी वातपित्तजित्। तद्व"न्नागवला"ऽत्यर्थं कृच्छ्रे क्षीणे क्षते हिता॥ राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः–(१) रसायनार्थं नागवलामूलम्–"नागवलामूलानि पयसा मधुसर्पिभ्यां वा संयोज्य भक्षयेत्। जीर्णे च क्षीरसर्पिभ्यां शालिषष्टिकमश्नीयात्। संवत्सरप्रयोगादस्य वर्षशतमजरमायुस्तिष्ठतीति समानं पूर्वेण।" (चि. १ अ.)। (२) क्षतक्षययोर्नागवलामूलम्–"पिबेन्नागवलामूलस्यार्द्धकर्षविवर्द्धनम्। पलं क्षीरयुतं मासं क्षीरवृत्तिरनन्नभुक्॥ एष प्रयोगः कुष्ठायुर्बलारोग्यकरः परः।" (चि. १६ अ.)। (३) वातव्याधौ नागवलामूलम्–"क्वाथकल्कपयोभिर्वा वलादीनां पचेत् पृथक्" (चि. २८ अ.)। (४) रक्तपित्ते वलामूलम्–"गव्यं पयः...। ...वलाशृतं गोक्षुरकैः शृतं वा।" (चि. ५ अ.)। (५) रक्तार्शःसु वलामूलम्–"हन्त्याशु रक्तरोगं तथा वलापृश्निपर्णीभ्याम्" (चि. ९ अ.)। (६) कफविसर्पे वलामूलम्–"...वला॥ पृथगालेपनं कुर्यात्।" (चि. ११ अ.)। (७) मदात्ययस्य पिपासायां वलामूलम्–"तृष्यते सलिलञ्चास्मै दद्यात्। ...वलायाः शृतं...।" (चि. १२ अ.)। (८) व्रणनिर्वापणार्थं वलामूलम्–"...वलामूलं...। आलेपनं निर्वापणं...।" (चि. १३ अ.)। (९) व्रणशोधनार्थं वलामूलम्– "...वलाकुशः। ...कषायाः शोधना मताः॥" (चि. १३ अ.)। (१०) वातरक्ते वला–वलाकषायकल्काभ्यां तैलं क्षीरसमं तथा। सहस्रशतपाकं वा वातासृग्वातरोगनुत्।" (चि. २९ अ.)। चरकः॥ (१) रसायनार्थं वलामूलम्–"यथोक्तमागारं प्रविश्य वलामूलार्द्धपलं पलं वा पयसाऽऽलोड्य पिबेत्। जीर्णे पयःसर्पिरोदन इत्याहारः। एवं द्वादशरात्रमुपयुज्य द्वादशवर्षाणि वयस्तिष्ठति। एवं दिवसशत-मुपयुज्य वर्षशतं वयस्तिष्ठति।" (चि. २७ अ.)। (२) स्वरभेदे वलामूलम्–"...वलाचूर्णमथापि वा" (उ. ५३ अ.)। (३) रसायनार्थम् अतिवला–"विशेषतस्त्वतिवलामुदकेन" (चि. २७ अः)। सुश्रुतः॥ (१) ज्वरे वलामूलम्–"वलायाश्च स्नेहाः सिद्धा ज्वरच्छिदः" (चि. १ अ.)। (२) राजयक्ष्मणि वलामूलम्– वलागर्भ...। सक्षौद्रं पयसा सिद्धं सर्पिर्दशगुणेन वा" (चि. ५ अ.)। वाग्भटः॥ (१) हृद्रोगे नागवलामूलम्–"मूलं नागवलायास्तु चूर्णं दुग्धेन पाययेत्। हृद्रोगश्वासकासघ्नं...॥" (हृद्रोगचि.)। (२) अवबाहुके वलामूलम्–"मूलं वलायाः... पिबेद्वा। मासादसौ वज्रसमानबाहुः।" (वातव्याधिचि.)। (३) अन्त्रवृद्धौ वलामूलम्–"तैलमेरण्डजं पीत्वा वलासिद्धं पयोऽन्वितम्। आध्मानशूलोपचितामन्त्रवृद्धिं जयेन्नरः॥" (वृद्धिचि.)। (४) मूत्रकृच्छ्रे अतिवलामूलम्–"कषायोऽतिवलामूलसाधितः सर्वकृच्छ्रजित्। (मूत्रकृच्छ्रचि.)। (५) प्रदरे वलामूलम्–"प्रदरं हन्ति वलाया मूलं दुग्धेन मधुयुतं पीतम्" (असृग्दर-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) अर्दिते वलामूलम्–"...वलायाक्षीरं वातात्मके हितम्।" (वातव्याधिचि.)। (२) विषमज्वरे महावलामूलम्–"महावलामूलमहौषधिभ्यां क्वाथो निहन्याद्विषमज्वरं हि। सशीतकम्पं परिदाहयुक्तं विनाशयेद् द्वित्रिदिनप्रयोगात्॥" (ज्वरचि.)। (३) फिरङ्गरोगे वलापत्रम्–"पीतपुष्पवलापत्ररसैष्टङ्कमितं रसम्। हस्ताभ्यां मर्दयेत् तावद् यावत् सूतो न दृश्यते॥ ततः संस्वेदयेद्धस्तावेवं वासरसप्तकम्। त्यजेल्लवणमम्लञ्च फिरङ्गस्तस्य नश्यति॥" (म. ख. ४ भा.)। (४) रक्तप्रदरे कङ्कतिकामूलम्–"वला कङ्कतिकाख्या या तस्या मूलं सुचूर्णितम्। लोहितप्रदरे खादेच्छर्करामधुसंयुतम्॥" भावप्रकाशः॥ (१) उन्मादे सितकुसुमवलामूलम्–"सितकुसुमवलायाः सार्द्धकर्षत्रयं यः शिखरीचरणकोलं क्षीरपाकेन पक्वम्। पिबति तदनुशीतं प्रातरुत्थाय नित्य॥ जयति झटिति घोरं व्याधिमुन्मादमुग्रम्॥" (उन्मादचि.)। (२) सर्ववातविकारे वला–"वला निःक्वाथकल्काभ्यां तैलं पक्वं पयोऽन्वितम्। सर्ववातविकारघ्नं...।"

(वातव्याधिचि.)। (३) उरोग्रहे वलामूलस्वरसः–"...सूर्यावर्त्तवलोद्भवाः। रसा एकैकशः कोष्णा द्विशो वा रामठान्विताः...।" (उरग्रहचि.)। (४) श्लीपदे सहदेवामूलम्–"असाध्यमपि यात्यस्तं श्लीपदं चिरकालजम्। मूलेन सहदेवायास्तालमिश्रेन लेपितम्॥" (श्लीपदचि.)। (५) आगन्तुव्रणे वलामूलम्– वलाशिखरिकामूलं पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत्। मूलतैलमितिख्यातं...।" (आगन्तुव्रणचि.) वङ्गसेनः॥ सद्योव्रणे नागवलास्वरसः– "खद्भादिच्छिन्नगात्रस्य तत्कालपूरितो व्रणः। गङ्गेरुकीमूलरसैर्जायते गतवेदनः॥" (२यः ख. १ अ.)। शार्ङ्गधरः॥

वला– Sida cordifolia. अतिवला कङ्कतिका– S. rhombifolia, S. asiatica (Roxb.) S. abutilon, S. indicum (Khory). महावला– S. rhomboidea. नागवला–S. alba, (U.C. Dutt); S. spinosa, (Watt) S. graveolens.

विविध भाषाओं में नाम-

बला- सं.- बला, वटालिका, वाट्या। हि.- वरियार, वरियारा। सरैटी, वरियाही। बं.- वेडेला। म.- चिकणा, लघु चिकणा, खिरहंटी। गु.- बलदाणा। क.- वेणोगरग, चिहहरलुगिद। ते.- मुपिष्टी, बरिवेप्पचेट्टु, पिनप्रत्त पवुलगमूं। भा.- मे- खरैही। अं.- Horn bean leaved sida (होर्न वीन लिव्ड सिदा)। ले.- Sida cordifolia (सिडा कार्डिफोलिया)।

महाबला- सं.- महाबला, पीतपुष्पा, सहदेई। हि.- सहदेई, सहदेइया, सहदैया। बं.- पीतपुष्पा, पीतवेडैला। क.- सहदेवि। विलुदुर्व, वेणेनरममेद, पेढरी। म.- आमुण्डी, महाबला। गु.- सहदेवी। यू.- सिरदेई। द्रा.- सहदेवि। भा.- सहदेई, सहदेवी। ता.- नेचिटी। क.- वेल्लदुरुवे। ले.- Sida rhombifolia (सीडा रोम्बिफोलिया)।

अतिवला- सं.- अतिबला, रिष्पप्रोक्ता, किङ्कतिका सहा। हि.- कंघी, ककही, कङ्गही। बं.- पीतबाबुली, पाटाटी। म.- विकङ्कती, कांसुली। गु.- रवपाठय। क.- भुलुर्दुरुवे, हरिचिट्टु, हरलुगिड्ड। द्रा.- तुतिपल्ले। ता.- तत्ति। अ.- दरखते साहनाह। मा.- दावी। ते.- पेद्दमुत्तवनुगुवगे। अं.- Indian mali (इण्डियन माली)। ले.- Sida Indica (सीडा इन्डिका)।

नागबला- सं.- नागवला, गाङ्गे रुकी, झषा, ह्रस्वा, गवेधुका। हि.- गंगेरन, गुलशकरी, जंगली मेथी। गरेरखचाखले। पानसाडा। म.- नागवला, गांगेरी, गाडे घामडा। मा.- गंगेरन। ते.- जिजिलिके चेट्टु। क.- वटू गरुके जिविलिका। गु.- कागता लोवल। फा.- शनवली देवरी। ता.- महारमानिक्कम। अं.- सामलीदेदस्ती। ले.- Sida spinosa (सीडा स्पाइनोसा)।

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा- बला- खरकाष्टिका, शीतपाकी। **अतिबला**- शीतपुष्पा। **महाबला**- वर्षपुष्पी, पीतपुष्पी, बृहत्फला। **नागवला**- स्वरगन्धा महाशाखा, महापत्रा, महाफला चतुष्फला।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- बला स्निग्ध तथा शीतल है और स्वादिष्ट है, वीर्यवर्द्धक है, बलकारक है एवं त्रिदोषहर है। यह रक्त पित्त का नाश करती है तथा बल एवं ओज को बढ़ाती है। महावला हृदय रोग, वात रोग, अर्श रोग तथा शोथ का नाश करती है, शुक्र को बढ़ाती है और मनुष्यों के विषम ज्वर का नाश करती है। नागेरुकी (नागवला) मधुर अम्ल रस, कषाय रस तथा उष्ण है तथा गुरु है। यह कटु रस तथा तिक्त रस है, वातनाशक है और व्रण एवं पित्त विकार को दूर करती है। यह वात पित्त का नाश करती है, ग्राही

है, बलकारक है और तीन बला वीर्यवर्द्धक है। बला, अतिबला, महाबला, बलावला अन्या राजबला इस प्रकार बला के पांच भेद होते हैं। वे पांचों प्रकार की बला पित्त-वात को जीतने वाली, ग्राही, बलकारक वीर्यवर्द्धक, मूत्रकृच्छ्र नाशक हैं, स्निग्ध है, मधुर है, आयुकरक है तथा वात रोग तथा रक्त प्रदर का नाश करती हैं।

राज निघण्टु के अनुसार- बला अत्यन्त तिक्त रस तथा मधुर है और पित्तातिसार का नाश करती है, बल एवं वीर्य को देनेवाली है, पुष्टिकारक है तथा कफ रोग का नाश करती है। **महाबला** हृदय रोग, वात रोग, अर्श रोग तथा शोथ का नाश करती है, शुक्र को बढ़ाती है, बलकारक है तथा विषमज्वर को दूर करती है। **नागबला** मधुर, अम्ल रस, कषाय रस, उष्ण तथा गुरु है और यह कण्डू, कुष्ठ रोग तथा वात रोग का नाश करती है और व्रण एवं पित्त विकार को दूर करती है। **अतिबला** तिक्त तथा कटु रस है, वातनाशक है तथा क्रिमि नाशक है। यह दाह, प्यास, विष विकार, वमन एवं क्लेद को शान्त करती है। **महासमङ्गा** मधुर तथा अम्ल रस है और त्रिदोष नाशक है। इसका प्रयोग चिकित्सकगण युक्ति पूर्वक करें। यह ज्वर तथा दाह का नाश करनेवाली है।

भावप्रकाश के अनुसार- बलाचतुष्टय शीतल तथा मधुर है और बल एवं कान्तिकारक है, स्निग्ध है, ग्राही है और वात विकार, रक्त पित्त तथा क्षत रोग का नाश करता है। बलामूल की त्वचा का चूर्ण शक्कर तथा दूध के साथ पान करने से शूलातिसार को दूर करता है। यह प्रत्यक्ष देखा हुआ है। महाबला मूत्रकृच्छ्र को दूर करती है और वातानुलोमिनी है। अतिवला मिश्री तथा दूध के साथ पान करने से प्रमेह का नाश करती है।

राजवल्लभ के अनुसार- वला स्निग्ध है, रुचिकारक है, वीर्यवर्द्धक है, ग्राही है तथा वात्त पित्त को दूर करती है। इसी प्रकार नागबला अत्यधिक मूत्रकृच्छ्र, क्षीण रोग तथा क्षत रोग में हितकर है।

वैद्यक शास्त्र में वला का प्रयोग-

(१) रसायन कार्य के लिए वला मूल का प्रयोग- नागवला मूल का चूर्ण दूध या मधु तथा घी के साथ मिलाकर खाय। औषध के पच जाने पर दूध तथा घी के साथ साठी धान का भात खाय। यह एक वर्ष तक प्रयोग करने से सौ वर्ष तक अजर अमर होकर पहले के समान जीवित रहता है। (च.चि.अ.१)। (२) **क्षत तथा क्षय रोग में नागवला मूल का प्रयोग-** नागवला मूल का चूर्ण आधा कर्ष (५ ग्राम) की मात्रा में बढ़ाते हुए एक पल (५० ग्राम) तक की मात्रा में दूध मिलाकर एक साथ पान करे और केवल दूध पीवे, अन्न न खाय। यह प्रयोग पुष्टि, आयु, बल तथा आरोग्य को देनेवाला है। (च.चि.अ.१६) (३) **वात व्याधि में नागबला मूल का प्रयोग-** बला के मूल का क्वाथ, कल्क तथा दूध के साथ वात व्याधि में पान करे। (च.चि.२८)। (४) **रक्त पित्त में बला मूल का प्रयोग-** बला मूल को गाय के दूध में पकाकर रक्त पित्त में प्रयोग करे या गोक्षुर के साथ पकाया दूध पान करे। (च.चि.अ.५)। (५) **रक्त.र्श में बला मूल का प्रयोग-** बला तथा पृश्निपर्णीका क्वाथ रक्तार्श का शीघ्र ही नाश करता है। (च.चि.अ.९)। (६) **कफज विसर्प में बला मूल का प्रयोग-** बला के मूल का कल्क कफज विसर्प में अलग-अलग लेप करे। (च.चि.अ.११)। (७) **मदात्यय की पिपासा में बला मूल का प्रयोग-** मदात्यय जन्य पिपासा में बला मूल का क्वाथ पान करने को दे। (च.चि.अ.१२)। (८) **व्रण निवीपनार्थ बला मूल का प्रयोग-** व्रण के निर्वापण के लिए बला मूल का लेप करे। (च.चि.अ.१३)। (९) **व्रण शोधन के लिए बला मूल का प्रयोग-** बला मूल तथा कुशका कषाय व्रण का शोधन करता है। (च.चि.अ.१३)। (१०) **वात रक्त में बला का प्रयोग-** बला के कषाय तथा कल्क के साथ समभाग क्षीर मिलाकर विधिवत् तैल सिद्ध करे। यह सहस्र पाक तथा शत पाक वातरक्त तथा वात रोग को दूर करता है। (च.चि. अ.२९)।

(१) **रसायनार्थ बला मूल का प्रयोग-** कुटी प्रवेश के नियम के अनुसार आगार (कुटी) में प्रवेश कर बला का मूल चूर्ण आधा पल (२५ ग्राम) या एक पल (५० ग्राम) दूध में मिलाकर पान करे। औषध के पच जाने पर दूध, घी तथा भात खाय। यही आहार है। इस प्रकार बारह दिन तक उपयोग करने से बारह वर्ष जीवित रहता है। इस प्रकार एक सौ दिन तक उपयोग करने से सौ वर्ष तक स्वस्थ जीवित रहता है। (सु. चि.अ.२७)। (२) **स्वर भेद में बला मूल का प्रयोग-** स्वर भेद में बला मूल का चूर्ण सेवन करे। (सु.उ.अ. ५३)। (३) **रसायन के लिए अतिबला का प्रयोग-** रसायन कार्य के लिए विशेषकर अतिबला का क्वाथ सेवन करे। (सु.चि.अ.२७)।

(१) **ज्वर में बलामूल का प्रयोग-** बला के क्वाथ तथा कल्क के साथ विधिवत् सिद्ध स्नेह ज्वर का नाश करता है। (वाग्भट चि.अ.५)। (२) **राजयक्ष्मा में बला मूल का प्रयोग-** बला का कल्क मधु तथा दूध, घी से दस गुना मिलाकर घी सिद्ध करे और राजयक्ष्मा के रोगी को दे। (वाग्भट चि.अ.५)।

(१) **हृदय रोग में नाग बला मूल का प्रयोग-** नागवला के मूल का चूर्ण हृदय रोग में दूध के साथ पान करे। (चक्र. हृदय रो.चि.)। (२) **अवबाहुक में बला मूल का प्रयोग-** अवबाहुक में बला मूल का क्वाथ पान करे। यह एक मास सेवन करने से वाहु को वज्र के समान मजबूत बना देता है। (चक्र.वातव्याधिचि.)। (३) **आन्त्र्य वृद्धि में बला मूल का प्रयोग-** बला के क्वाथ तथा कल्क के साथ सिद्ध एरण्ड का तैल दूध मिलाकर पान करने से आध्मान तथा शूल युक्त आन्त्र वृद्धि को शान्त करता है। (चक्र.आन्त्रवृद्धि चि.)। (४) **मूत्रकृच्छ्र में बला मूल का प्रयोग-** बला मूल का बनाया हुआ क्वाथ सभी प्रकार के मूत्र कृच्छ्र को दूर करता है। (चक्र.मूत्रकृच्छ्रचि.) (५) **प्रदर में बला मूल का प्रयोग-** बला के मूल का क्वाथ दूध के साथ मधु मिलाकर प्रदर रोग में पान करे। यह प्रदर रोग का नाश करता है। (चक्र. असृग्दर चि.)।

(१) **अर्दित रोग में बला मूल का प्रयोग-** बला मूल के कल्क के साथ सिद्ध दूध वातात्मक अर्दित रोग का नाश करता है। (भाव.वातव्याधि चि.)। (२) **विषम ज्वर में महाबला मूल का प्रयोग-** महाबला मूल तथा महौषधि (सौंठ) का क्वाथ सेवन करने से विषम ज्वर का नाश होता है। यह कपकपी कै साथ दाह युक्त विषम ज्वर को दो-तीन दिन प्रयोग करने से नाश करता है। (चक्र.ज्वर.चि.)। (३) **फिरङ्ग रोग में बलापत्र का प्रयोग-** पीतपुष्प वला पत्र का रस लेकर रस (पारद) एक टंक (३.ग्रा.) लेकर दोनों हाथ से तब तक मर्दन करे जब तक सूत (पारद) न दिखाई दे। फिरंग रोग का सात दिन तक स्वेदन करे और लवण तथा अम्ल पदार्थ न खाय। इससे फिरंग रोग नष्ट होता है। (भावप्र.फिरंग रोग चि.)। (४) **रक्तप्रदर में कंकतिका मूल का प्रयोग-** कंकतिका नामक बला मूल का चूर्ण रक्त प्रदर में शक्कर तथा मधु के साथ खाय। (भावप्रकाश)।

(१) **उन्माद में सित कुसुम बला मूल का प्रयोग-** सफेद पुष्प वला साढ़े तीन कर्ष (३५ ग्राम) तथा अपामार्ग एक कौल इन दोनों को मिलाकर क्षीरपाक विधि के अनुसार पकाकर उसके शीतल होने पर प्रातःकाल उठकर जो पान करता है वह शीघ्र ही भयंकर उन्माद रोग को जीत लेता है। (बंगसेन, उन्माद चि.)। (२) **सभी वात विकार में बला का प्रयोग-** बला के कल्क तथा क्वाथ के साथ विधिवत् सिद्ध तैल दूध मिलाकर पान करे। यह सभी प्रकार के वात रोग को नष्ट करता है। (बंगसेन, वातरोगाधिकार)। (३) **उरोग्रह में वला मूल स्वरस का प्रयोग-** सूर्यावर्त (हुरहर) तथा वला का एक-एक का रस या दोनों का थोड़ा गरम रस हींग मिलाकर उरोग्रह में पान कराये। (वंगसेन, उरोग्रह चि.)। (४) **श्लीपद में सहदेई मूल का प्रयोग-** सहदेइया मूल को ताल के साथ पीसकर तथा लेप बनाकर लेप करने से असाध्य भी श्लीपद रोग नष्ट हो जाता है। (वंगसेन,

शलीपद चि.)। (५) **आगन्तुक व्रण में बला मूल का प्रयोग**- वला तथा अपामार्ग का मूल पीसकर उसके साथ विधिवत तेल पाक करे। यह मूल तैल है। यह आगन्तुक व्रण का नाश करता है। (वंगसेन.आगन्तुक ५)।

सद्यो व्रण में नागवला रस का प्रयोग- तलवार आदि से कटे हुए शरीर के व्रण को नागवला मूल का स्वरस लगाने से वेदना समाप्त हो जाती है तथा तत्काल व्रण भर जाता है। (शार्ङ्गधर संहिता)।

Constituents—of *Sida Cardifolia*—The root contains asparagin and gelatine. **Actions and uses**—The roots are cooling, astringent, bitter tonic, febrifuge, demulcent, and diuretic. Given with ginger in fevers and urinary diseases; also in rheumatism. As a demulcent the juice is given in gonorrhoea, leucorrhoea and chronic diarrhoea. The root of S. *Cardifolia* is locally used by the Hindoos as a paste, with Sparrows dung to burst, boils. The leaves of S. *Cordifolia* are made into varalians and applied to the eyes in ophthalmia. (*Materia Medica of India—R.N. Rhory*—II. p. 100). **Constituents**—*Of Abutilon Indicum*—The leaves contain mucilage, tannin, organic acid and traces of asparagin and ash containing alkaline sulphates, chlorides magnesium phosphate and calcium carbonate. **Actions and uses**—Seeds demulcent; the bark diuretic and cooling, used like althaea, in gonorrhoea Strangury, &c. (*Materia Medica of India—R.N. Khory*—II. p. 92).

वव्वूलः

Acacia Arabica, Mimosa Arabica

वव्वूलः, वर्व्वूरः, वव्वोलः– *Acacia Arabica, Mimosa Arabica.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा–"युग्मकण्टः", "दीर्घकण्टकः", "तीक्ष्णकण्टकः", "सूक्ष्मपत्रः", "पीतपुष्पः", "षट्पदमोदिनी", "मालाफलः", "पङ्क्तिबीजः", "दृढबीज", "अजभक्ष्यः"। गुणप्रकाशिका संज्ञा–"कफान्तकः"। जालवर्व्वुरस्य–"छत्राकः", "सूक्ष्मशाखः", "तनुच्छायः", "स्थूलकण्टकः", "रन्ध्रकण्टः"। वर्व्वुरस्तु कषायोष्णः कफकासामयापहः। आमरक्तातिसारघ्नः पित्तदाहार्त्तिनाशनः॥ "जालवर्व्वुरको" रूक्षो वातामयविनाशकृत्। पित्तकृच्च कषायोष्णः कफहृद्दाह-कारकः॥ राजनिघण्टुः॥ वव्वूलः कफनुद्ग्राही कुष्ठकृमिविषापहः। भावप्रकाशः॥ वर्व्वूरस्य तु 'निर्य्यासो' ग्राही पित्तनिलापहः। रक्तातिसार-पित्तास्त्रमेहप्रदरनाशनः॥ भग्नसन्धानकः शीतः शोणितस्त्रुतिवारणः। आत्रेय-संहिता॥ वव्वूलस्य 'फलं' रूक्षं विशदं स्तम्भनं गुरु। कषायं मधुरं शीतं लेखनं कफपित्तहृत्॥ वृहन्निघण्टुरत्नाकरः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) अतिसारे वव्वोलदलः–"कल्कः कोमलवव्वोलदलात् पीतोऽतिसारहा" (अतिसारचि.)। (२) उपदंशे वव्वोलदलः–"...वव्वोलदल-चूर्णेन ...गुण्डनं उपदंशहरं परम्।" (उपदंश-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) स्नायुकरोगे वव्वोलबीजम्–"तद्वद् वव्वूलजं बीजं पिष्टं हन्ति प्रलेपनात्" (स्नायुकचि.)। (२) नेत्रस्त्रावे वव्वूलदलः–"वव्वूलदलनिःक्वाथो लेहीभूतस्तदञ्जनात्। नेत्र-स्त्रावो व्रजेच्छोषं मधुयुक्तान्नसंशयः॥" (नेत्ररोगचि.)। (३) अस्थिभग्ने वव्वूलत्वक्–"आभाचूर्णं मधुयुतमस्थिभग्नस्त्र्यहं पिबेत्। पीते चास्थि भवेत् सम्यग वज्रसारनिभं दृढम्॥" (भग्नचि.)। भावप्रकाशः॥ अतिसारे स्थूलवव्वूल पत्ररसः–"स्थूलवव्वूलत्रस्य रसः पानाद्व्यपोहति। सर्वातिसारान्।"

शार्ङ्गधरः॥ जलोदरे वव्वूलत्वक्–"वव्वलस्य त्वचं श्रेष्ठां क्वाथयेत् सलिलेन तु। पुनः पचेत् कषायन्तु यावत् सान्द्रत्वमागतम्॥ तत् पिबेत् तक्रसंयुतं तक्रभोजी मिताशनः। निहत्यादाशु योगोऽयं जलोदरमपि ध्रुवम्॥" (उदररोगचि.)। वङ्गसेनः॥

वव्वूलः वर्व्वूरः वव्वोल Acacia Arabica, Mimosa Arabica.

विविध भाषाओं में नाम-

परिचयज्ञापिका सं.- युग्मकण्टः, दीर्घकण्टकः, तीक्ष्ण-कण्टकः, सूक्ष्मपत्रः पीतपुष्पः, षट्पदमोदिनी, माला-फलः, पंक्तिबीजः, दृढबीजः, अजभक्ष्यः। **गुणप्रकाशिका सं.**- कफान्तकः। जालवर्व्वूरः-छत्राकः, सूक्ष्मशाखः, तनुच्छायः। स्थूलकण्टकः रन्ध्रकण्टकः।

गुण एवं दोष-

राजनिघण्टु के अनुसार- वर्व्वूर (ववूल) कषाय रस तथा उष्ण है और कफ रोग तथा कास रोग का नाश करता है। यह आम विकार तथा रक्तातिसार का नाश करता है और पित्त विकार, दाह तथा पीड़ा का नाश करता है। जलवर्व्वूर रूक्ष है तथा वात रोग का नाश करता है। यह पित्त कारक है, कषाय रस है, उष्ण है तथा कफ को दूर करनेवाला, दाहकारक है।

भावप्रकाश के अनुसार- वव्वूल कफ को दूर करनेवाला तथा ग्राही है और कुष्ठरोग, क्रिमि रोग एवं विष विकार को दूर करता है।

आत्रेय संहिता के अनुसार- वव्वूर का निर्यास ग्राही है तथा पित्त विकार एवं वात विकार का नाश करता है। यह रक्तातिसार, रक्त पित्त, प्रमेह तथा रक्त प्रदर रोग का नाश करता है। यह यह भग्न संधानकारक है, शीतल है तथा रक्त स्राव का निवारण करता है।

वृहन्निघण्टु के अनुसार- वव्वूल का निर्यास रूक्ष, विशद, स्तम्भन तथा गुरु है। कषाय रस मधुर, शीतल तथा लेखन है कफ विकार एवं पित्त विकार का नाश करता है।

वैद्यक शास्त्र में वव्वूल का प्रयोग-

(१) अतिसार में वव्वूल के पत्ते का प्रयोग- वव्वूल के कोमल पत्तों का कल्क पान करने से अतिसार का नाश होता है। (चक्र.अतिसार चि.)। (२) **उपदंश में वव्वूल पत्र का प्रयोग**- वव्वूल के पत्ते के चूर्ण का अवचूर्णन (गुण्डन) उपदंश के ऊपर करना उपदंश रोग को शान्त करता है। (चक्र.उपदंश चि.)।

(१) स्नायुक रोग में वव्वूल के बीज का प्रयोग- ववूल के बीज को पीसकर लेप करने से स्नायुक रोग नष्ट होता है। (भावप्रकाश, स्नायुक चि.)। (२) **नेत्रस्राव में वव्वूल के पत्तों का प्रयोग**- वव्वूल के पत्तों का क्वाथ पकाते-पकाते जब अवलेह की तरह हो जाय तव मधु मिलाकर अंजन करने से नेत्र स्राव तथा नेत्र शोथ नाश होता है इसमें सन्देह नहीं है। (भाव.नेत्र चि.)। (३) **अस्थि भग्न में वव्वूल की छाल का प्रयोग**- ववूल की छाल का चूर्ण शहद मिलाकर अस्थि भग्न में तीन दिन तक पान करे। इसके पान करने से अस्थि पहले की तरह हो जाती है तथा वह वज्र के समान दृढ हो जाती है। (भाव.भग्न चि.)।

अतिसार में स्थूल ववूल का प्रयोग- स्थूल ववूल के पत्ते का रस पान करने से सभी प्रकार के अतिसारों का नाश होता है। (शार्ङ्गधर संहिता)।

जलोदर में वव्वूल की छाल का प्रयोग- ववूल के उत्तम छाल को जल के साथ क्वाथ करे और पुनः पकावे जब तक वह गाढ़ा न हो जाय। इसके बाद उसको तक्र (मट्ठा) के साथ पान करे और मट्ठा के साथ थोड़ा भोजन करे। यह योग शीघ्र ही जलोदर रोग का भी नाश करता है। (वंगसेन, उदर चि.)।

Constituents—The gum contains arabic acid, combined with calcium magnesium and potassium; also small quantity of malic acid, sugar, moisture 14 p.c., ash 3-4 p.c. **Actions and uses**—The bark is astringent and tonic, a substitute for oak bark. The decoction is used as a gargle in some sore throat, in copious salivatien, and as a wash for ulcers; externally applied it allays irritation of excoriations of sores and ulcers by forming a coating. The gum is used as a food for diabetic patients, as it is not convertible into sugar. In pharmacy it is used to suspend heavy insoluble powders in mixtures and in making pills. Powdered bark with gingelly oil is used externally in cancerous affections. Pods are given in cough. Leaves are local stimulant; poultices of bruised tender leaves, are applied to ulcers with sanious discharges. The gum is also demulcent emollient and used for irritated condition of the mucous membranes, as in cough, sore throat, catarrh of the stomach and intestines, as diarrhoea dysentery, leucorrhoea, cystitis, urethritis, &c.; also in irritant poisons. (*Materia Medica of India—R.N. Khory*—11, p. 183).

वहुवार-भूकर्व्वूदारौ

Cordia latifolia, Roxb.

वहुवारः, श्लेष्मातकः, कर्व्वुदारः, शेलुः— *Cordia latifolia, Roxb,* **क्षुद्रश्लेष्मातकः भूकर्व्वूदारः, भूशेलुः**—*Cordia Myxa, Willd.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा—वहुवारस्य—"पिच्छलः", "सितफलः", "गन्धिपुष्पः", "श्लेष्मातकः" ("श्लेष्माणमतति")। भूकर्व्वुदारस्य—"सूक्ष्मफलः"। श्लेष्मातको हिमः स्वादुः स्याद्रुक्षः पिच्छलः शुचिः। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ श्लेष्मातकः कटुहिमो मधुरः कषायः स्वादुश्च पाचनकरः कृमिशूलहारी। आमास्रदोषफलरोध-बहुव्रणार्त्तिविस्फोटशान्तिकरणः कफकारकश्च॥ भूकर्व्वुदारो मधुरः कृमि-दोषविनाशनः। वातप्रकोपनः किञ्चित् सशीतः स्वर्णमारकः॥ राजनिघण्टुः॥ वहुवारो विषस्फोट-व्रणविसर्पकुष्ठनुत्। मधुरस्तुवरस्तिक्तः केश्यश्च कफपित्तहृत्॥ 'फलमामन्तु' विष्टम्भि रूक्षपित्तकफा-स्रजित्। तत् 'पक्वं' मधुरं स्निग्धं श्लेष्मलं शीतलं गुरु॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः—कफजविसर्पे श्लेष्मातकत्वक्—"...त्वचं श्लेष्मातकस्य च। पृथगालेपनं कुर्य्यात्...॥" (चि. ११ अ.) चरकः॥ (१) दशविधतुलाविषे शेलुत्वक्—"सर्वासामेव युञ्जीत विषे श्लेष्मातकत्वचम्।"। (क. ८ अ.)। (२) रक्तपित्ते शाकार्थं शेलुदलम्—"पटोलशेलूसुनिषण्ण...। हितञ्च शाकं घृतसंस्कृतं सदा।" (उ. ४५ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) मसूरिकायां शेलुत्वक्—"शेलुत्वक् शीताम्भः सेकं वा कायशोषणे।" शौचे वारि प्रयुञ्जीत गायत्रीवहुवारजम्॥" (मसूरिकाचि.)। (२) केशकृष्णीकरणे शेलुफलमज्जा—"काञ्जिकपिष्टशेलु-फलमज्जनि सच्छिद्रलौहगे। तदर्कतापात् पतति तैलं तन्त्रस्यम्रलक्षणात्॥ केशा नीलालिसङ्काशाः सद्यः स्निग्धा भवन्ति च। नयनश्रवणग्रीवादन्त-रोगांश्च हन्त्यदः॥" (क्षुद्ररोगचि.)। चक्रदत्तः॥ दूग्जातायां मसूर्य्यां वहुवार-त्वक्—"प्रलेपञ्चक्षुषोर्द-

द्याद्वहुवारस्य वल्कलैः" (मसूरिकाचि.)। भावप्रकाशः॥ विस्फोटे वहुवारत्वक्–"श्लेष्मातकत्वचो वापि प्रलेपाश्च्यपोतने हिताः" (विस्फोटचि.) वङ्गसेनः॥

वहुवारः, श्लेष्मातकः, कर्व्वुदारः, शेलुः– Cordia latifolia, Roxb, क्षुद्रश्लेष्मातकः भूकर्व्वूदारः, भूशेलुः–Cordia Myxa, Willd.

विविध भाषाओं में नाम-

सं.–वहुवारः, उद्दालः, शेलुः, श्लेष्मातकः, भूतवृक्षकः। हि.– लिसोड़ा, बहुवार, लसफसिया। बं.– वहुवास, चालता गाछ, वोहरी। म.– मोंकर, शेल वण्ट। गु.– गुंदी। फ.– चेल्लु, गोदिणी। ते.– नाकेरु, चेन्न नकर। ता.– विधि। द्रा.– नरिविली। फा.–निपिस्ता। अ.– संपतिदवक। मा.– लेसको। अं.– Sebesten (सेवेस्टेन)। ले.– Cordia Myxa (कोर्डिया मिक्स)।

परिचय ज्ञापिका सं.– वहुवार– पिच्छलः, सितफलः, गन्धपुष्पः, श्लेष्मातकः (श्लेष्माणमतति)। भूकर्व्वूदार– सूक्ष्मफलः।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार– श्लेष्मातक शीतल, स्वादिष्ट, रूक्ष, पिच्छिल तथा पवित्र है।

राजनिघण्टु के अनुसार– श्लेष्मातक (लिसोड़ा) कटुरस, शीतल, मधुर रस तथा कषाय रस है। यह स्वादिष्ट है, पाचन कारक है तथा क्रिमि रोग एवं शूल का नाश करता है। यह आम विकार, रक्तदोष अवरोधजन्य बहुत व्रण तथा विस्फोट को शान्त करता है एवं कफकारक है। भूकर्व्वूदार मधुर रस है तथा क्रिमि दोष नाशक है। यह वात प्रकोपक है, थोड़ा शीतल है तथा स्वर्ण को मारने (भस्म करने) वाला है।

भावप्रकाश के अनुसार– वहुवार (लिसोड़ा) विष विकार, स्फोटक, व्रण, विसर्प तथा कुष्ठ रोग को दूर करता है। यह मधुर रस, कषाय रस तथा तिक्त रस है और केश के लिए हितकर है तथा कफ विकार एवं पित्त विकार को दूर करता है। लिसोड़ा का आम फल विष्टम्भ कारक तथा रूक्ष है और रक्त पित्त, कफ विकार तथा रक्त विकार को दूर करता है। लिसोड़ा का पका फल मधुर, स्निग्ध, कफ कारक तथा शीतल एवं गुरु है।

वैद्यक शास्त्र में श्लेष्मातक का प्रयोग-

कफजविसर्प में श्लेष्मातक छाल का प्रयोग– कफज विसर्प के ऊपर श्लेष्मातक छाल का लेप करे। (च.चि.अ.११)।

(१) **दशविध लूता विष में शेलुत्वक् का प्रयोग**– सभी प्रकार के लूता विष में श्लेष्मातक की छाल का प्रयोग करे। (मु.का.अ.८)। (२) **रक्त पित्त में शाक के लिए शेलु पत्र का प्रयोग**– रक्त पित्त में परवल, शेलु तथा सुनिषण्णक (तीन पतिया) शाक घृत में पकाकर देना हितकर है। (सु.उ.अ.४५)।

(१) **मसूरिका में शेलु की छाल का प्रयोग**– शेलु की छाल के क्वाथ का शीतल जल कासके मसूरिका में हितकर है। मसूरिका रोग में शौच के लिए खैर तथा वहुवार (लिसोड़ा) का जल प्रयोग करे। (चक्र.मसूरिका चि.)। (२) **केश को काला करने के लिए शेलु फल का प्रयोग**– शेलु फल की मज्जा को काञ्जी के साथ पीसकर छिद्रवाले लोहे के पात्र में रख दे। उसमें से सूर्य के ताप से जो तैल निकलता है उसका नस्य तथा मर्दन से केश नीले भौंरे के समान काले सद्य हो जाते हैं तथा वाल स्निग्ध भी हो जाते हैं। यह नयन, श्रवण, ग्रीवा तथा दन्त रोगों का नाश करता है। (चक्र.क्षुद्र रोग चि.)।

नेत्र में मसूरिका होने पर वहुवार की छाल का प्रयोग- बहुवार की छाल का लेप नेत्रगत मसूरिका में करे। (भाव.)।

मसूरिका विस्फोट में वहुवार की छाल का प्रयोग- विस्फोट में श्लेष्मातक की छाल का लेप हितकर होता है। (वंगसेन, विस्फोट चि.)।

Constituents—The pulp of the fruit contains sugar, Gum, extractive matter, ash; the bark contains a principle allied to cathartin. **Actions and uses**—Demulcent and mucilaginous, used in coughs, chest affections and in irritation of the urinary passages, and as a laxative in billious affections. The bark is mild astringent and tonic, and used in general debility and convalescence. The decoction also is used as a gargle in sore mouth. (*Materia Medica of India—II—p.* 421).

वंशः

Bambusa arundinacea

वंशः वेणुः– *Bambusa arundinacea.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा–"त्वक्मारः", "शतपर्वा", "यवफलः", "कण्टकी", "दृढकाण्डः", "दृढग्रन्थि", "कुक्षिरन्ध्रः"। व्यवहारज्ञापिका संज्ञा–"धनुर्द्रुमः। कीचकस्य–"रन्ध्रवंशः"। वंशस्त्वम्लः कषायश्च कटुतिक्तश्च शीतलः। मूत्रकृच्छ्रप्रमेहार्शःपित्तदाहास्त्रनाशनः॥ वंशो व्रणास्त्रसंहारो भेदनः सुमकषायकः। वंशश्च शूलकफकृद्विष्टम्भी श्लेष्मवातलः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ करीरगुणाः– पित्तस्त्रदाहकृच्छ्रघ्नं रुचिकृत् पर्व्व निर्गुणम्। वेणुरन्ध्रवंशयोर्गुणाः–वंशौ त्वम्ले कषायौ च किञ्चित्तिक्तौ च शीतलौ। मूत्रकृच्छ्रप्रमेहार्शःपित्तदाहास्त्रनाशनौ॥ विशेषो रन्ध्रवंशस्तु दीपनोऽजीर्ण-नाशनः। रुचिकृत् पाचनो हृद्यः शूलघ्नो गुल्म-नाशनः॥ "करीरं" कटुतिक्ताल्पं कषायं लघु शीतलम्। पित्तास्त्रदाहकृच्छ्रघ्नं रुचिकृत् पर्व निर्गुणम्॥ राजनिघण्टुः॥ वंशः मरः हिमः स्वादुः कषायो वस्तिशोधनः। छेदनः कफपित्तघ्नः कुष्ठास्त्रव्रणदोषजित्॥ तत्'करीरः' कटु पाके रसे रूक्षो गुरुः सरः। कषायः कफकृत् स्वादुः विदाहो वातपित्तलः॥ तद् 'यवास्तु' सरा रूक्षाः कषायाः कटुपाकिनः। वातपित्तकरा उष्णा बद्धमूत्राः कफापहाः॥ भावप्रकाशः। "त्वचिसारशिफा" ज्ञेया मूत्रकृच्छ्रनिवारिणी। कश्चित्॥ वंशरोचनगुणाः–कषाया मधुरा तिक्ता कासघ्नी वंशलोचना। मूत्र-कृच्छ्रक्षयश्वासहिता बल्या च वृंहणी॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ स्याद्वंशरोचना रूक्षा कषाया मधुरा हिमा। रक्तशुद्धिकरी तापचित्तोद्रेकहरा शुभा॥ राजनिघण्टुः॥ वंशजा वृंहणी वृष्या बल्या स्वाद्वी च शीतला। रूक्षकषाय पित्तघ्नी दुष्टशोणितशोधिनी॥ तृष्णाकासज्वरश्वासक्षयपित्तास्त्रकामलाः। हरेत् कुष्ठं व्रणं पाण्डुं दाहनुद् वातकृच्छ्रजित्॥ भावप्रकाशः॥ वंशरोचनविशेषस्य पलाश-गन्धाया गुणाः–त्वक्क्षीरः मधुरा रूक्षा कषायास्त्रारुचिव्रणान्। पित्तश्वास-क्षयान् हन्ति कासदाहनिषूदनी॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ त्वक्क्षीरं तु मधुरं शिशिरं दाहपित्तनुत्। क्षयकासकफश्वासनाशनं चास्त्रदोषनुत्॥ राजनिघण्टुः॥

वैद्यके व्यवहारः–अर्शःसु वंशपत्रम्–"...वेणूनां...। ...पत्राण्युत्क्वाथ्य शूलार्त्तं स्वभ्यक्त-

मवगाहयेत्" (चि. ९ अ.)। चरकः॥ श्वविषे वंशमूलम्–"...शिफा पेया क्षीरेण परिपेषिता। अङ्कोटवंशजा वापि श्वविषघ्नी प्रयत्नतः" (विष चि.) भावप्रकाशः॥

वंशः वेणुः– Bambusa arundinacea.

विविध भाषाओं में नाम–

सं– वंशः, शतपर्वा, यवफलः, वेणुः। हि.– वांस गु.बं.– वास। म.– वेलु, वावू, मरीव वेलु। ते.–वदलु, वेन्नेमुक, वेतु, कचिकई यदुरु। ता.– भनगिल भा.–वाव। फा.– बसव, नचेक वीर। क.– विदक। द्रा.– मूसिका। फा.– कसव। अं– Bambucane (वेम्वुके)। ले.– Bambusa arundinacea (वैम्वूसा अरुण्डिनेसिया)।

परिचय ज्ञापिका सं.– त्वक्पादः, शतपर्वा, यवफलः, कण्टकी, दृढकाण्डः, दृढग्रन्थि, कुक्षिरन्ध्रः। व्यवहार ज्ञापिका सं.– धनुर्द्रुम कीचक-रन्ध्रवंशः।

गुण एवं दोष–

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार– वांस अम्ल रस, कषाय रस, कटु रस, तिक्त रस तथा शीतल है और यह मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अर्श, पित्त विकार, दाह तथा रक्तविकार का नाश करता है। वांस व्रण तथा रक्त विकार का नाश करता है, भेदन है तथा कषाय रस वाला है। वांस शूल तथा कफ विकार कारक है, विष्टम्भी है तथा कफ वात नाशक है।

राजनिघण्टु के अनसुार– करीर पित्त विकार, रक्तविकार, दाह तथा मूत्रकृच्छ्र नाशक है, रुचिकारक है और पर्व निर्गुण है। वेणुरन्ध्र तथा वांस के गुण– दोनों प्रकार का वांस अम्ल रस, कषाय रस, तिक्त रस तथा शीतल है। यह मूत्र कृच्छ्र, प्रमेह, अर्श, पित्त-विकार, दाह तथा रक्त विकार का नाश करती है। विशेषकर रन्ध्र वंश जाठराग्नि दीपक है तथा अजीर्ण नाशक है। यह रुचिकारक है, पाचन है, हृदय के लिए हितकर है, शूलनाशक है तथा गुल्म नाशक है। कठोर, कटुरस, तिक्त रस, थोड़ा कषाय रस, लघु तथा शीतल है। यह पित्त विकार, रक्त विकार, दाह तथा मूत्र कृच्छ्र नाशक है और रुचिकारक है एवं पर्व निर्गुण है।

भावप्रकाश के अनुसार– वांस सारक, शीतल, स्वादिष्ट तथा कषाय रस एवं वस्ति शोधक है। यह छेदन है, कफ पित्त नाशक है तथा कुष्ठ रोग, रक्त विकार एवं व्रण दोष का नाश करता है। करीर रस तथा पाक में कटु है, रूक्ष है, गुरु है, सारक है, कषाय रस है, कफकारक है, स्वादिष्ट है, दाहोत्पाद है तथा वात-पित्त कारक है। वांस का यव सारक, रूक्ष, कषाय रस तथा कटु वाला है। यह वात-पित्त कारक, उष्ण बद्ध मूल तथा कफ का नाश करनेवाला है।

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार– वांस की त्वचा में सारशिफा होती है। वह मूत्र क्रच्छ्र का नाश करती है। वंशलोचन के गुण– वंशलोचन कषाय रस, मधुर रस तथा तिक्त रस है और कासनाशक है। यह मूत्र कृच्छ्र, क्षय रोग तथा श्वास रोग में हितकर है। बलकारक है एवं बलवर्द्धक है।

राजनिघण्टु के अनुसार– वंश लोचन रूक्ष. कषाय रस, मधुर तथा शीतल है। यह रक्त शुद्ध करनेवाली है, ताप तथा चित्त के उद्वेग को दूर करनेवाली है।

भावप्रकाश के अनुसार– वंशलोचना मांसवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक, बलवर्द्धक, स्वादिष्ट तथा शीतल है। यह रूक्ष है, कषाय रस है तथा पित्त नाशक है और दुष्ट रक्त को शुद्ध करनेवाली है। यह प्यास, कास, ज्वर, श्वास, क्षय रोग, पित्त विकार, रक्त विकार तथा कामला का नाश करती है। यह कुष्ठ रोग, व्रण, पाण्डु रोग तथा दाह को शान्त करती है एवं वातज मूत्र कृच्छ्र का नाश करती है।

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- वंश लोचन विशेष कर पलास गन्धा का गुण- त्वक् क्षीटी मधुर, रूक्ष तथा कषाय रस है और रक्त विकार, अरुचि तथा व्रण एवं पित्त विकार, श्वास तथा क्षय रोग का नाश करती है और कास एवं दाह का नाश करती है।

राजनिघण्टु के अनुसार- तवक्षीर (वंशलोचन) मधुर तथा शीतल है और दाह एवं पित्त विकार का नाश करता है। यह क्षय रोग, कास-कफ विकार तथा श्वास का नाश करता है और रक्त दोष को दूर करता है।

वैद्यक शास्त्र में वांस का प्रयोग-

अर्श रोग में वांस के पत्ता का प्रयोग- वांस के पत्तों को उबालकर उसके क्वाथ से अर्शरोग के शूल से पीड़ित व्यक्ति अभ्यंग कर उसी के जल में अवगाहन करे। (च.चि.अ.९)।

श्वविष में वांस के मूल का प्रयोग- वांस की जड़ को दूध के साथ पीसकर पान करे। अथवा अङ्कोट तथा वांस की जड़ को दूध के साथ पीसकर पान करे। यह श्वविष का नाश करती है। (भावप्रकाश विष चि.)।

Constituents—Tabashir contains silica 70 or silicium as hydrate of silicic acid, per oxide of iron, potash, lime and alumina. **Actions and uses**—The leaves are emmenagogue. Tabashir is stimulant, tonic, cooling and pectoral, and used in cough, cosumption, asthma and fever. In combination with other astringent medicines it is given in chronic dysentery and internal haemorrhages. The young shoots are used as a vegetable and made into pickles. A decoction of bambo joints is said to increase the flow of lochia after delivery. The juice of leaves with aromatics is given in haematemesis. Older and dried stems of bamboo are used as splints in fracture. (*Materia Medica of India—R. N. Khory*—11. p. 639).

वालकम्

Valeriana officinalis, Povonia odorata

वालकम्, ह्रीवेरम्, उदीच्यम्– *Valeriana officinalis, Povonia odorata.*

व्यवहारबोधिका संज्ञा–"ललनाप्रियम्", "कुन्तलोशीरम्", "कचामोदम्"। गुणप्रकाशिका संज्ञा–"केश्यम्"। बालकं शीतलं तिक्तं पित्तश्लेष्मविसर्पजित्। कफासृक्कण्डूकुष्ठानि ज्वरदाहौ च नाशयेत्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ वालकं शीतलं तिक्तं पित्तवान्तितृषापहम्। ज्वरकुष्ठातिसारघ्नं केश्यं श्वित्रब्रणापनुत्॥ राजनिघण्टुः॥ बालकं शीतलं रूक्षं लघु दीपनपाचनम्। हृल्लासाऽरुचिविसर्प-हृद्रोगामातिसारजित्॥ भावप्रकाशः॥ ह्रीवेरं छर्दिहृल्लासतृष्णातिसारनाशनम्। राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) रक्तपित्ते वाला–"...ह्वेरमूलानि...। ...एते समस्ता गणशः पृथग्वा रक्तं सपित्तं शमयन्ति योगाः"। (चि. ४ अ.)। (२) अतिसारे वाला–"ह्रीवेरशृङ्गवेराभ्यां पक्वं वा पाययेज्जलम्" (चि. १० अ.)। (३) विसर्पे वाला–"प्रपौण्डरीकं ह्रीवेरं...। पृथगालेपनं कुर्याद्द्वन्द्वशः सर्वशोऽपि वा। प्रदेहाः सर्व एवैते देयाः स्वल्पघृतायुताः।" (चि. ११ अ.)। (४) मदात्ययस्य पिपासायां वाला–"तृष्यते सलिलञ्चास्मै दद्याद् ह्रीवेरसाधितम्" (चि. १२ अ.)। (५) वमने वाला–"...सवालकं तण्डुलधावनेन" (चि. २३ अ.)। चरकः॥ श्वित्रे वाला–"...दग्धं ह्रीवेरं वा तदाप्लुतम्" (च. २० अ.)। वाग्भटः॥ (१) पित्तजे अर्शसि वालकम्–"वालकं शृङ्गवेरञ्च पाययेत् तण्डुलाम्बुना।

मधुयुक्तं प्रशमयेदर्शः पित्तसमुद्भवम्॥" (अर्शश्चि)। (२) शिशोरतिसारे वालकम्– "ह्रीवेरशर्करा क्षौद्रं पीतं तण्डुलवारिणा। शिशोः सर्वातिसारघ्नं...। वङ्गसेनः॥

वालकम्, ह्रीवेरम्, उदीच्यम्– Valeriana officinalis, Povonia odorata.

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– वालम्, ह्रीवेरं, बालकः। हि.– सुगन्ध वाला, नेत्र वाला, बं.– वाल्य, गन्ध वाला। म.– वाला, गन्ध वाला। गु.– वालो कालो वालो। क.– मुष्टि वाल, खस मुष्टिवाल, वाल देवरु, मुडिडाल। ते.– वहि, वेल्लु। कुरुवेल्लु। ता.– पेराभूति पर, भा.–नेत्रवालो। फा.– आशारुक्। ले.– Povonia odorata (पेवोनिया आडोरेटा)।

व्यवहारज्ञापिका सं.– ललनाप्तियम्, कुन्तलोशीरम्, कचामोदम्। **गुणप्रकाशिका सं.**– केश्यम्।

गुण एवं दोष–

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार– बालक शीतल तथा तिक्त रस है और पित्त विकार, कफ विकार एवं विसर्प को दूर करता है। यह कफज रक्त विकार, कण्डू , कुष्ठ रोग तथा ज्वर एवं दाह का नाश करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार– बालक शीतल तथा तिक्त रस है और पित्त विकार, वमन तथा प्यास को दूर करता है। यह ज्वर, कुष्ठ रोग तथा अतिसार का नाश करता है, केश के लिये हितकर है, श्वित्र (श्वेत कुष्ठ) तथा व्रण का नाश करता है।

भावप्रकाश के अनुसार– बालक शीतल, रूक्ष, लघु तथा दीपन, पाचन है। यह हृल्लास (उवकाई), अरुचि, विसर्प, हृदयरोग तथा आमातिसार का नाश करता है।

राजवल्लभ के अनुसार– ह्रीवेर (हाऊवेर) वमन, हृल्लास (उवकाई) प्यास तथा अतिसार का नाश करता है।

वैद्यक शास्त्र में बालक का प्रयोग–

(१) **रक्त पित्त में बालक का प्रयोग**– हाऊवेर का मूल पूर्वोक्त सभी औषधियों का गणशः प्रयोग या अलग प्रयोग ये सभी योग रक्त पित्त का नाश करते हैं। (च.चि.अ.४)। (२) **अतिसार में बालक का प्रयोग**– हाऊवेर तथा शृङ्गवेर के साथ पकाया हुआ जल अतिसार रोग में पान कराये। (च.चि.अ.१०)। (३) **विसर्प में बालक का प्रयोग**– प्रपौण्डरीक (पुण्डरिया) तथा हाउवेर को अलग-अलग पीसकर लेप करे या दानों का लेप कर अथवा सभी औषधियों का प्रदेह थोड़ा घी मिलाकर विसर्प रोग में प्रयोग करें। (च.चि.अ.)। (४) **मदात्यय की पिपासा में बालक का प्रयोग**– मदात्यय जन्य प्यास में हाउवेर के साथ पकाया हुआ जल पिला दे। (च.चि.अ.१२)। (५) **वमन में बालक का प्रयोग**– बालक (हाउवेर) को चावल के धोअन के साथ वमन में पान कराये (च.चि.अ.२२)।

श्वित्र रोग में बालक का प्रयोग– हाउवेर को जलाकर उसके भस्म घी में मिलाकर श्वित्र रोग (श्वेत कुष्ठ) में लेप करे। (वाग्भट चि.अ.२०)।

(१) **पित्तज अर्श में बालक का प्रयोग**– पित्तज अर्श में हाऊवेर तथा शृङ्ग वेर के चूर्ण को मधु मिलाकर चावल के धोवन के साथ पान कराये। इससे पित्तज अर्श शान्त होता है (वंगसेन, अर्श चिकित्सा)। (२) **बालकों के अतिसार में हाऊवेर का प्रयोग**– हाऊवेर का चूर्ण शक्कर तथा मधु मिलाकर चावल के धोअन के साथ पान करने से बालकों के सभी प्रकार के अतिसार नष्ट होते हैं। (बंगसेन)।

Constituents—A volatile oil 2 p.c. valerianic acid, formic, acetic and malic acids, chatinine, tannin, starch, sugar, resin, gum and extractive. **Actions and uses**—General stimulant, anodyne, hypnotic, antispasmodic, vermifuge and diaphoretic. It often stimulates sexual powers. As a sedative to reflex excitability, its action is opposed to that of brucine, thebaine, and strychnine. In full doses it stimulates the heart raises the temperature and produces exhilaration of spirits. If long continued it leads to melancholia. In very large doses it is a powerful irritant of the brain and of the gastro-intestinal tract, leading to nausea, vomiting, diarrhoea, frequent passage of urine containing lithates. The oil paralyses the brain and the spinal chord, lowers the blood pressure and slows the pulse. *Valerian* is used in epilepsy, hysteria, hemicranial nervous cough and hiccough. As a tonic it is given in fevers and low states of the system; also given in whooping cough, diabetes dysmenorrhoea, convulsions, worms and flatulence in children. In coma of typhus fever, the oil is very efficent. As an antispasmodic it is inferior to assafetida. *Validol* is used in asthma, hysteria and as a preventive against sea sikness, as a stimulant, antispasmodic, anodyne it surpasses valerian in energy and rapidity of action, and besides it has anaesthetic properties. As an hypnotic it produces sleep like morphia, and chloral hydrate, 5 minims are sufficient to produce tranquil sleep without any depressing action of the heart. It has been found very serviciable in biliary colic. (*Materia Medica of India*—R.N. Khory—II. p. 346).

वासकः

Adhatoda Vasica, Nees. Justicia Adhatoda, Roxb.

वासा, वृषः, अटरुषकः– *Adhatoda Vasica, Nees. Justicia Adhatoda, Roxb.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा–श्वेतपुष्पस्य–"सिंहमुखी" ("सिंहास्यसदृशपुष्पत्वात्"–भानुजिदीक्षितः), "वाजिदन्ता" ("वाजिदन्ताभकेसरत्वात्"–भानुजिदीक्षितः), "वृषः" ("वर्षति मधु" भा दीः)। ताम्रपुष्पस्य–"ताम्रः", "असितपर्णी"। आटरुषो हिमस्तिक्तः पित्तश्लेष्मास्त्रकासजित्। क्षयहृच्छर्द्दि-कुष्ठघ्नो ज्वरतृष्णाविनाशनः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ वासा तिक्ता कटुः शीता कासघ्नी रक्तपित्तजित्। कामलाकफवैकल्यज्वरश्वासक्षयापहा॥ राजनिघण्टुः॥ वासको वातहृत् स्वर्य्यः कफपित्तास्त्रनाशनः। तिक्तस्तुवरको हृद्यो लघुः शीतस्तृडर्त्तिहृत्॥ श्वासकासज्वरच्छर्द्दिमेहकुष्ठक्षयापहः। भावप्रकाशः॥ वासकस्य च पुष्पानि...। कटुपाकानि तिक्तानि कासक्षयहराणि च॥ वासकः कामवैस्वर्य्य-रक्तपित्तकफापहः। राजवल्लभः॥ "वृषपुष्पाणि...। कफपित्तहरं तिक्तं शीतं कटु विषच्यते॥" चरकः–शा. व. (सू. २७ अ.)। "अटरुषकवेत्राय... तिक्ताः पित्तकफापहाः" सुश्रुतः– शा.–वः (सू. ४६ उ.)। "वृषागस्त्ययोः पुष्पाणि तिक्तानि कटुविपाकानि क्षयकासापहानि" सुश्रुतः– (पु. व. सू. ४६ अ.)।

वैद्यके व्यवहारः–रक्तपित्ते वासकः–"वासां सशाखां सपलाशमूलां कृत्वा कषायं कुसुसानि चास्य। प्रदाय कल्कं विपचेद् घृतं तत् सक्षौद्रमाश्वेव निहन्ति रक्तम्॥ (चि. ४ अ.)। चरकः॥ (१) शोषे वासकः–"कृत्स्ने वृषे तत्कुसुमैश्च सिद्धं॥ सर्पिः पिबेत् क्षौद्रयुतं हिताशी। यक्ष्माणमेतत् प्रबलञ्च कासं श्वासञ्च हन्यादपि पाण्डुतां च॥" (भ. ४१ अ.)। (२) रक्तपित्ते वासकपत्रस्वरसः–"पिबेत्

सिताक्षौद्रयुतं वृषस्य वा"। (उ. ४५ अ.)। (३) श्वासे वासकः–"कृत्स्ने वृषकषाये वा पचेत् सर्पिश्चतुर्गुणे। तन्मुलकुसुमावापशीतं क्षौद्रेण योजयेत्॥" (उ. ५१ अ.)। (४) कासे वासकघृतम्–"रसेन वा वासकजेन पक्वं" (उ. ५२ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) पित्तश्लेष्मज्वरे वासकः–"सपत्रपुष्पवासायाः रसः क्षौद्रसितायुतः। पित्त-श्लेष्मज्वरं हन्ति साम्लपित्त सकामलम्॥" (ज्वरचि.)। (२) गात्रदौर्गन्धे वासकदलस्वरसः–"वासादलरसो लेपाच्छङ्खचूर्णेन संयुतः। गात्रदौर्गन्धय-नाशनः॥" (म. ख. ३यः)। भावप्रकाशः॥ (१) जीर्णज्वरे वृषः–"...वृषस्यच। ...सिद्धाः स्नेहा ज्वरच्छिदः" (ज्वरचि.)। (२) 'कुष्ठे' वासा–"कोमल-सिंहास्यदलं सनिशं सुरभिजलेन पिष्टम्। दिवसत्रयेण नियतं क्षपयति कच्छूं विलेपनतः॥" (कुष्ठचि.)। (३) सुखप्रसवार्थं वासामूलम्–"वासा-मूले ध्रुवं तद्वत्कटीबद्धे सूते द्रुतम्।" "अटरुषकमूलेन नाभिवस्तिभगालेपः कर्त्तव्यः।" (स्त्रीरोग-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) गुदकीले वृषः–"रुग्गतं कफवातेन अत्यर्थं गुदकीलकम्। स्वेदयेद् वा वृषापिण्डैः रास्नया वाऽथ शिग्रुभिः।" (अर्शचि.)। (२) मसूरिकासु वृषः–"वृषस्य स्वरसं दद्याद् क्षौद्रयुक्तं कफात्मके" (मसूरिकाचि.)। वङ्गसेनः॥

वासा, वृषः, अटरुषकः– Adhatoda Vasica, Nees. Justicia Adhatoda, Roxb.

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– वासकः, भिषक्माता, सिंहिका, वाजिदन्ता, आटरूषकः सिद्धपर्णः। हि.– आरूषा, आइसा, वासक। बं.– वासक। म.– अइलका। द्रा.– आड़ा देखे। गु.– अरहुसी। क.– आहुसागे। ते.– आडा साट अड्ड सरगु। ता.– अघडोसे। फा.– वंश। अ.– दुकारिन। ले.– आधातोडा वासिक (Adhatoda Vasica)।

परिचय ज्ञापिका सं.– श्वेतपुष्पवाला-सिंहमुखी (सिंहास्यसदृश पुष्प होने से- भानुजीदीक्षित)। वजदिन्ता (हाथी के दांत की तरह केसर होने से- भानुजीदीक्षित)। वृषः (वर्षति मधु भा.टी.)। ताम्रपुष्पवासा-असितपर्णी।

गुण एवं दोष–

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार– आटरुष (अडूसा), शीतल तथा तिक्तरस है। यह पित्त विकार, कफ विकार तथा रक्त विकार एवं कास को दूर करता है। यह क्षय रोग, हृदय रोग, वमन तथा कुष्ठ नाशक है और ज्वर एवं प्यास का नाश करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार– वास (अडूसा) तिक्तरस, कटुरस तथा शीतल है। यह कास का नाश करती है तथा रक्त पित्त को दूर करती है। यह कामला रोग, कफजन्य विकलता, ज्वर, श्वास तथा हृदय रोग का नाश करती है।

भावप्रकाश के अनुसार– अडूसा वात को दूर करनेवाला स्वर के लिए हितकर है तथा कफ विकार, पित्त विकार एवं रक्त विकार का नाश करती है। यह तिक्त रस तथा कषाय रस है, हृदय को बल देनेवाली है, लघु है, शीतल है और प्यास एवं पीड़ा को शान्त करती है। यह श्वास, कास, ज्वर, वमन, प्रमेह, कुष्ठ रोग तथा क्षय रोग को दूर करती है।

राजवल्लभ के अनुसार– वासक (अडूसा) के पुष्प पाक में कटु तथा तिक्तरस है और कास रोग एवं क्षय रोग को दूर करता है। वासक कास, विस्वरता, रक्त पित्त तथा कफ का नाश करता है। वृष के पुष्प कफ

तथा पित्त विकार को दूर करता है, तिक्त रस, शीतल तथा पाक में कटु है। (च.श.व.सू.अ.२७)। अरुष के अग्रभाग का टूसा तिक्त रस है तथा पित्त-कफ का नाश करता है। (सु.भा.व.सू.अ.४६)। वृष तथा अगस्त के पुष्प तिक्तरस, विपाक में कटु रस है तथा क्षय रोग एवं कासरोग को दूर करते हैं। (सु.प्र.व.सू.अ.४६)

वैद्यक शास्त्र में अडूसा का प्रयोग-

रक्त पित्त में वासक का प्रयोग- अडूसा की शाख, पत्ता, मूल तथा कुसुम को लेकर काढा बनावें और उस क्वाथ में अडूसा का कल्क मिलाकर विधिवत् घृत सिद्ध करे। वह घृत मधु के साथ मिलाकर पान करने से शीघ्र ही रक्त पित्त को शान्त करता है। (च.चि.अ.४)।

(१) शोथ में वासक का प्रयोग- अडूसा का पञ्चाङ्ग तथा कुसुम के कल्क एवं क्वाथ के साथ विधिवत सिद्ध घृत मधु मिलाकर हितकर भोजन करता हुआ पान करे। यह यक्ष्मा (क्षयरोग) प्रबल कास रोग, श्वास रोग तथा पाण्डु रोग का नाश करता है। (सु.चि.अ.४१)। **(२) रक्तपित्त में अडूसा के पत्ते के स्वरस का प्रयोग-** रक्त पित्त रोग में अडूसा के पत्तों का स्वरस मिश्री तथा मधु मिलाकर पान करे (सु.उ.अ.४५)। (३) **श्वास रोग में अडूसा का प्रयोग-** अडूसा के पञ्चाङ्ग के चौगुना क्वाथ में अडूसा के मूल तथा फूल का कल्क देकर विधिवत घृत सिद्ध करे और शीतल होने पर मधु मिलाकर श्वास रोग में प्रयोग करे। (यु.उ.अ.५१)। (४) **कास में वासक घृत का प्रयोग-** अडूसा के रस के साथ अडूसा का कल्क मिला कर विधिवत् सिद्ध घृत कास रोग में प्रयोग करें। (स.उ.अ.५२)।

(१) पित्तश्लेष्मज्वर में वासक का प्रयोग- अडूसा के पञ्चाङ्ग का रस मधु तथा मिश्री मिलाकर पान करे। यह पित्त तथा कफज ज्वर तथा कामला रोग एवं अम्ल पित्त का नाश करता है। (भावप्रकाश, ज्वर चि.)। **(२) शरीर की दुर्गन्धिता में अडूसा पत्र के रस का प्रयोग-** अडूसा के पत्ते का रस शंख का भस्म मिलाकर लेप करने से शरीर के दुर्गन्ध का नाश होता है। (भावप्रकाश म.ख.भा.३)।

(१) जीर्ण ज्वर में अडूसा का प्रयोग- अडूसा के कल्क तथा क्वाथ के साथ विधिवत सिद्ध स्नेह प्रयोग करने से जीर्ण ज्वर का नाश होता है। (चक्र. ज्वर.चि.)। (२) **कुष्ठ में अडूसा का प्रयोग-** अडूसा के कोमल पत्तों को तथा हल्दी को गाय के मूत्र के साथ पीसकर लगाने से तीन दिन में कच्छू रोग का नाश होता है। (चक्र.कुष्ठरोग)। (३) **सुख प्रसव के लिए वासा मूल का प्रयोग-** अडूसा की जड को कटिप्रदेश में बांधने से शीघ्र ही प्रसव होता है। अडूसा के मूल के कल्क का नाभि, वस्ति प्रदेश तथा भग में लेप करे। (चक्र. स्त्री.रोग)।

(१) गुदकील में वृष का प्रयोग- कफवात जन्य अत्यन्त पीड़ा युक्त गुदकील को अडूसा कल्क के पिण्ड से या रास्ना कल्क के पिण्ड से या सहिजवके कल्क के पिण्ड से स्वेदन करे। (वंगसेन, अर्श चि.)। (२) **मसूरिका में अडूसा का प्रयोग-** कफात्मक मसूरिका में अडूसा का स्वरस शहद मिलाकर पान कराये। (वंगसेन, मसूरिका चि.)।

Constituents—An odorous principle, fat, resin, a bitter alkalod vasicine, an organic acid, adhatodic acid, sugar, gum, colouring matter, salts. **Actions and uses**—Expectorant, antispasmodic, and alterative; the flowers and roots with ginger and sitab are given in ague, rheumatism, consumption, asthma, chronic bronchitis and other chest affections; the root is a fair substitute for senega. Leaves are often smoked in asthma. (*Materia Medica of India—R. N. Khory*—II. p. 464). "Strong testimony in favour of the remedial properties of the drug was

furnished to the authors of the *Pharmacopoeia of India* by Drs. Jackson and Dutt who employed it with marked success in bronchitis, asthma and other pulmonary and ctarrhal affections. Case illustrative of its effects in catarrh bronchitis and phthisis have been published by Mr. O.C. Dutt. (Indian annals of Med. Sci., 1865, Vol. X., p. 159). In Bengal the leaves are smoked in asthma; good evidence fo their value when thus used has been collected by Dr. G. Watt in the "Dict. of the Economic Products of India". Dr. Watt has also brought to notice the use of Adhatoda leaves in rice cultivation in the sutlej valley, The fresh leaves are scattered over recently flooded fields prepared for the rice crop, and the native cultivators say that they not only act as a manure but also as a poison to kill the aquatic weeds that otherwise would injure the rice. Experiments conducted by us show that the infusion acts upon the cells of those plants in the same manner as certain chemical reagents, by contracting their contents and causing their disintregration; it also proves poisonous to nay animalcules, frogs, leeches, &c. present in the water; on the higher animals the leaves do not have this effect." (*Pharmacographia Indica—Dymcok*—III. p. 54).

बिडङ्गः

Embelia Ribes, Burm.

बिडङ्गः– *Embelia Ribes, Burm.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा– "चित्रतण्डुला"। गुणप्रकाशिका संज्ञा "कृमिहा", "वातारिः", "रसायनम्"। रूक्षोष्णं कटुकं पाके लघु वातकफापहम्। ईषत्तिक्तं विषान् हन्ति विडङ्गं कृमिनाशनम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ विडङ्गा कटुरुष्णा च लघुर्वातकफार्त्तिनुत्। अग्निमान्द्यारुचिभ्रान्ति-कृमिदोषविनाशिनी॥ राजनिघण्टुः॥ विडङ्गं कटुतीक्ष्णोष्णं रूक्षं वह्निकरं लघु। अतिक्तं विषसंहारि भ्रान्तिदोषनिकृन्तनम्॥ शूलाध्मानोदरश्लेष्मकृमिवातविबन्धनुत्। भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) क्रिमिषु विडङ्गम्–"विडङ्गं क्रिमिघ्नानाम्"। (सू. २५ अ.)। (२) क्रिमिकुष्ठे विडङ्गम्–"पानाहारविधाने प्रसेचने धूपने प्रदेहे च। क्रिमिनाशनं विडङ्गं..." (चि. ७ अ.)। चरकः॥ रसयानार्थ विडङ्गम्–"विडङ्गतण्डुलचूर्णमाहृत्य यष्टिमधुयुक्तं यथाबलं शीततोययोगेनो-पयुञ्जीत शीततोयं चानुपिबेत्। एवमहरहर्मासं... जीर्णे मुद्गामलकयूषेनालवणेनाल्पस्नेहेन घृतवन्त-मोदनमश्नीयात्। एते खल्वर्शांसि क्षपयन्ति कृमीनुपघ्नन्ति। ग्रहण-धारणशक्तिं जनयन्ति। मासे मासे प्रयोगे वर्षशतमायुषोऽभिवृद्धिर्भवति" (चि. २७ अ.) सुश्रुतः॥ अर्द्धावभेदके विडङ्गम्–"विडङ्गानि तिलान् कृष्णान् समं कृत्वा तु पेषयेत्। नस्य कर्मणि दातव्यमर्द्धभेदं व्यपोहति॥" (शिरोरोगचि.) वङ्गसेनः॥

विड़ङ्ग– Embelia Ribes, Burm.

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– विडङ्गम्, कृमिघ्नः, जन्तुनाशनः, तण्डुलवेल्लम्, अमोघा, चित्रतण्डुलः। हि.– वायविडङ्ग, वायभिरङ्ग, भामिरंग, वभिरंग। बं.– विडङ। म.– कारकुनी। गु.– वावदिङ्ग। के.– वायुविडङ्ग। ते.– वायुविडङ्ग चेट्टु। वायुपिडघमु। ता.– वायविल वायुविलङ्गम्। ने.– हिमलचेरी। अं.– वरञ्ज कावली, विरजकावली, विरङ्ग कावुली। अं.– वेवरिंग सीडस आफ एम्बेलिया रिबिस, ले.– एम्बोलिया रिबिस।

परिचयज्ञापिका सं.- चित्रतण्डुला। **गुणप्रकाशिका सं.**- क्रिमिहा, वातारिः, रसायनम्।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- वायविडंग रूक्ष, उष्ण, पाक में कटु रस तथा लघु है और वात-कफ विकार का नाश करता है। यह थोड़ा तिक्तरस है और यह विष विकारों का नाश करता है तथा क्रिमि रोग का नाश करता है।

राज निघण्टु के अनुसार- विडङ्ग कटु रस तथा उष्ण है, लघु है और वात-कफ एवं पीड़ा को नष्ट करता है। यह मन्दाग्नि, अरुचि, भ्रान्ति तथा क्रिमि दोष का नाश करता है।

भावप्रकाश के अनुसार- विडंग कटु रस, तीक्ष्ण, उष्ण तथा रूक्ष है और यह अग्निवर्द्धक है तथा लघु है। यह अतिक्त रस है, विष का नाश करनेवाला है और भ्रान्ति दोष को काटनेवाला है। यह शूल, आध्मान, उदर विकार, कफ विकार, क्रिमि रोग तथा वात विबन्ध को दूर करता है।

वैद्यक शास्त्र में विडंग का प्रयोग-

(१) क्रिमि रोग में विडंग का प्रयोग- क्रिमिनाशकों में विडङ्ग प्रशस्त है। (चू.सू.अ.२५)। **(२) क्रिमि तथा कुष्ठ रोग में विडंग का प्रयोग**- विडंग पान तथा आहार विधान में, प्रसेचन में, धूपन में तथा प्रदेह में क्रिमिनाशक है। अर्थात् विडंग क्वाथ पीने, खाने, सींचने, धूप देने तथा लेप करने से क्रिमि कुष्ठ नाशक है। (च.चि.अ.७)।

रसायनार्थ विडंग का प्रयोग- विडंग के तण्डुल का चूर्ण लेकर उसमें मुलेठी का चूर्ण मिलाकर बल के अनुसार शीतल जल के साथ उपयोग करे और शीतल जलपान करे। इस प्रकार प्रतिदिन एक मास तक कर औषध के पच जाने पर मूंग तथा आंवला का यूष के साथ नमक से रहित थोड़ा स्नेह युक्त धैर्य को धारण कर भात खाय। ये सब अर्श रोग का नाश करते हैं तथा क्रिमि रोग का नाश होता है। इसके प्रयोग से ग्रहण तथा धारण शक्ति उत्पन्न होती है। मास-मास में प्रयोग करने पर सौ वर्ष की आयु बढ़ती है। (सु.चि.अ.३७)।

अर्द्धवभेदक में विडंग का प्रयोग- वायविडंग तथा काला तिल को समान भाग लेकर पीसे और इसको नस्य कर्म में प्रयोग करे। इससे अर्द्धवभेदक रोग दूर होता है। (वंगसेन, शिरोरोगचि.)।

Constituents—Embelic acid, a volatile and fixed oil, colouring matter, tannin, a resinoid body and an alkaloid called christembine. **Actions and uses**—The pulp is purgative, the fresh, juice cooling diuretic and laxative. The fruit is carminative, anthelmintic, alterative and stimulant; mixed with ervados and pipli, the pulp is given to children in habitual constipation and in acute capillary bronchitis; as a carminative the fruit is given in dyspepsia and flatulence, as an alterative in skin disease and rheumatism. When taken for a long time it is found to turn the urine acid and red. *Material Medica of India R.N. Khory*—II. p. 426).

बिदारी

Convolvulus paniculatus, Willd.

विदारी- *Convolvulus paniculatus, Willd.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा-विदार्याः-"गजेष्ठा"। क्षीरविदार्याः-"इक्षुगन्धा"। गुणप्रकाशिका

संज्ञा–विदार्याः–"स्वादुकन्दा", "वृष्यकन्दा", "स्वादुलता"। क्षीरविदार्याः–"क्षीरवल्ली", "क्षीरकन्दा", "क्षीरशुक्ला"। पूर्वाचार्यकृत-वर्णनम्–"विदारी विदारीकन्दः स द्विविधः एको दीर्घकण्डो बहुक्षीरः क्षीरविदारी व्यवह्रियते। अन्यो हस्तिपादकोऽल्पक्षीरः"–(चक्रपाणिः–च. टी. सू. ३८ अ.)। विदारी शिशिरा स्वादुर्गुरुः स्निग्धा समीरजित्। पित्तास्त्रजित् तथा बल्या वृष्या चैव प्रकीर्त्तिता॥ विदारिकन्दो (क्षीरविदारी) बल्यश्च वातपित्त-हरश्च सः। मधुरो वृंहणो वृष्यः शीतस्पर्शोऽतिमूत्रकः॥ स्तन्यदोषस्य हरणी गुढविषनिषूदनी। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ विदारी मधुरा शीता गुरुः स्निग्धोऽस्त्रपित्तजित्। ज्ञेया च कफकृत् पुष्टिबलवीर्यविवर्द्धनी॥ ज्ञेया क्षीरविदारी च मधुराम्ला कषायका। तिक्ता च पित्तशूलघ्नी मूत्रमेहामयापहा॥ "क्षीरकान्दो" द्विधा प्रोक्तो विनालस्तु सनालकः। "विनालो" रोगहर्त्ता स्याद्द्वयस्तम्भी "सनालकः"॥ राजनिघण्टुः॥ ...सा स्निग्धा मधुरा हिमा। गुर्वी बलासजननी पुष्टिदा वीर्यवर्द्धिनी॥ रक्तपित्तभ्रमश्रान्तितृष्णामूर्च्छापनोदिनी। वातपित्तप्रशमनी बल्या वृष्या रसायनी॥ भावप्रकाशः। विदारी वातपित्तघ्नी वृष्या बल्या रसायनी। राजवल्लभः।

वैद्यके व्यवहारः– (१) विसर्पे विदारी–"शतावर्या विदार्याश्च कन्दौ धौत-घृताप्लुतौ॥" (चि. ११ अ.)। (२) मूत्रस्य वैवर्ण्ये कृच्छ्रे च विदारी–"विदारीभिः... तथा शृतम्। घृतं पयश्च मूत्रस्य वैवर्ण्ये कृच्छ्र एव च॥" (चि. २२ अ.)। चरकः॥ वाजीकरणार्थं विदारी–"वर्णं विदार्याः सुकृतं स्वर-सेनैव भावितम्। सर्पिर्मधुयुतं लीढ्वा दशस्त्रीरधिगच्छति॥" (चि. २६ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) विषमज्वरे विदारी–"पयस्तैलं घृतञ्चैव विदारीक्षुरसं मधु। सम्मूर्च्छ्य पाययेदेतत् विषमज्वरनाशनम्॥" (ज्वर-चि.)। (२) पित्तशूले विदारी–"धात्र्या रसं विदार्या वा...। पिबेत् सशर्करं सद्यः पित्तशूलनिसूदनम्॥" (शूलचि.)। (३) स्तन्यवर्द्धनार्थं विदारी–"विदारीकन्दं सुरया पिबेद्वास्तन्यवर्द्धनम्।" (स्त्रीरोग-चि.)। चक्रदत्तः॥

बिदारी– Convolvulus paniculatus, Willd.

विविध भाषाओं में नाम-

सं- विदारीकन्दः। हि.- विदारीकन्द, विलाई कन्द, विलारी कन्द, भुईकुम्भडा, पातालकोहडा। बं.- भुदईकु, भड़ा। क.- नेलकुवल, विलीनेल, गुम्मड़। ते.- नेलगुवुड़ महपलतिग, तेल्लनेल, गुम्मुहु। गु.- झेकोलु फग वेलानो कन्द, भइक खाण्ड, भुइकरवा। भा.- विदारीकन्द। ता.- भट्टापलति। म.- मुतालक्कान्ता। ले.- आईपोरिया डिजिलेटा।

परिचयज्ञापिका संज्ञा- विदारी- गजेष्टा। क्षीरविदारी- इक्षुगन्धा। **गुणप्रकाशिका सं.**- विदारी- स्वादुकन्दा, वृष्यकन्द, स्वादुलता। क्षीर-विदारी- फीटकन्दा, क्षीरवल्ली, क्षीरभुक्ता। **विदारी का पूर्वाचार्य कृत वर्णन**- विदारी, विदारी कन्द दो प्रकार का है- एक दीर्घ काण्ड - वहुक्षीर है, जिसे क्षीरविदारी कहा जाता है। दूसरा हस्ति पादक अल्प क्षीर (च.टी.चक्रपाणि सू. ३८ अ)।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- विदारीकन्द शीतल, स्वादु गुरु तथा स्निग्ध है और वात को जीत लेता है। यह रक्त पित्त को जीत लेता है तथा बलकारक एवं वीर्यवर्द्धक कहा गया है। विदारीकन्द क्षीर (विदारी)

बलकारक है तथा वात-पित्त को दूर करनेवाला है। विदारी कन्द मधुर मांसवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक, शीतस्पर्श तथा अति मूत्रल है। यह स्तन्य दोष (दूध सम्बन्धि विकार) को दूर करता है तथा गुढ़ विष का नाश करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- विदारीकन्द मधुर, शीतल गुरु तथा स्निग्ध है और रक्त पित्त को जीत लेता है। यह कफ कारक है तथा पुष्टि, बल तथा वीर्य को बढ़ानेवाला है। क्षीर विदारी, मधुर अम्ल तथा कषाय रस है, तिक्त रस है, पित्त शूलनाशक है और मूत्र विकार तथा प्रमेह को दूर करती है। क्षीरकन्द दो प्रकार का है विनाल तथा सनाल। विनाली रोगहर्ती है और सनाल वयस्तम्भक है।

भावप्रकाश के अनुसार- विदारी स्निग्ध, मधुर तथा शीतल है, गुरु है, कफकारक है, पुत्र प्रद है एवं वीर्यवर्द्धक है। यह रक्त पित्त, भ्रम, श्रान्ति (थकावट), प्यास तथा मूर्च्छा को दूर करती है। यह वात-पित्त शामक है, बलकारक है, वीर्यवर्द्धक है तथा रसायन है।

राजवल्लभ के अनुसार- विदारी वात-पित्तनाशक, वीर्यवर्द्धक, बलकारक तथा रसायन है।

वैद्यक शास्त्र में विदारी का प्रयोग-

(१) विसर्प में विदारी का प्रयोग- विसर्प में शतावरी कन्द तथा विदारी कन्द को घृत में मिलाकर सेवन करे। (च.चि.अ.११)। **(२) मूत्र की विवर्णता तथा मूत्र कृच्छ्र में विदारी का प्रयोग**- विदारी कन्द के साथ पकाया हुआ घृत तथा दूध पान करने से मूत्र की विवर्णता को तथा मूत्र कृच्छ्र को शान्त करता है। (च.चि. अ.२२)।

वाजीकरण के लिए विदारी का प्रयोग- विदारी के चूर्ण को विदारी कन्द के स्वरस से ही भावित कर मधु तथा घृत मिलाकर तथा चाटकर दश स्त्रियों के साथ सम्भोग करने में समर्थ हो सकता है। (सु.चि. अ.२६)।

(१) विषम ज्वर में विदारी का प्रयोग- दूध, तैल, घृत, विदारी कन्द तथा गन्ना का रस, मधु इन सब का एक साथ मिलाकर पान करे। यह विषम ज्वर का नाश करता है। (चक्र.ज्वर.चि.)। **(२) पित्त शूल में विदारी का प्रयोग**- आँवला का रस या विदारी कन्द का रस शक्कर मिलाकर पान करे। यह सद्यः पित्त शूल का नाश करता है। (चक्र.शूल चि.)। **(३) स्तन्यवर्द्धन के लिए विदारी का प्रयोग**- दूध बढ़ाने के लिए विदारीकन्द को सुरा (मद्य) के साथ पान करे। (चक्र.स्त्री रोग चि.)।

Constituents—A resin, sugar and starch. (*Materia Medica of India—R.N. Khory—II. p. 416*). **Actions and uses**—Tonic, alterative, largely used in several restorative aphrodisiac and demulcent preparations. It checks menstrual discharges. As a lactagogue given with wine, it promotes the secretion of milk in women after delivery. The confection is recommended for emaciated children suffering from debility, diarrhoea and want of digestion. (Do—II. p. 416).

बिभीतकः

Terminalia Bellerica, Roxb.

विभीतकः, अक्षः– *Terminalia bellerica, Roxb.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा–"तिलपुष्पकः", "कर्षफलः"। गुणप्रकाशिका संज्ञा–"अनिलघ्नकः", "कासघ्नः", विषघ्नः"। विभीतकः कटुः पाके लघु वैस्वर्यजित् सरः। कासाक्षिवक्त्ररोगघ्नः

केशवृद्धिकरः परः॥ अन्यश्च–विभीतकं कषायञ्च कृमिवैस्वर्यजित् सरम्। चक्षुष्यं कटुरूक्षोष्णं पाके स्वादु कफास्रजित्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ विभीतकः कटुस्तिक्तः कषायोष्णः कफापहः। चक्षुष्यः पलितघ्नश्च विपाके मधुरो लघुः॥ राजनिघण्टुः॥ विभीतकं स्वादुपाकं कषायं कफपित्तनुत्। उष्णवीर्यं हिमस्पर्शं भेदनं कासनाशनम्॥ रूक्षं नेत्रहितं केश्यं कृमिवैस्वर्यनाशनम्॥ "विभीतमज्जा" तृट्च्छर्दिकफवातहरी लघुः। कषायो मदकृच्चाथ धात्रीमज्जाऽपि तद्गुणः॥ भावप्रकाशः। विभीतं भेदि तीक्ष्णोष्णं वैस्वर्यकृमिनाशनम्। चक्षुष्यं स्वादुपाकि च कषायं कफपित्तनुत्॥ राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) ग्रन्थिविसर्पे विभीतकम्–"विभीतकस्य वा ग्रन्थि कल्केनोष्णेन सेचयेत्" (चि. ११ अ.)। (२) शोथे विभीतकमज्जा–"विभीतकानां फलमध्यलेपः सर्वेषु दाहार्त्तिहरः प्रलेपः।" (चि. १७ अ.)। चरकः॥ अश्मर्यां विभीतकज्जा–"अक्षबीजञ्च सुरया कल्कीकृत्य पिबेन्नरः। मूत्रदोष-विशुद्ध्यर्थं तथेवाश्मरीनाशनम्॥" (उ. ५८)। सुश्रुतः॥ (१) सर्वेषु श्वासकासेषु विभीतकम्–"सर्वेषु श्वासकासेषु केवलं वा विभीतकम्" (चि. ३ अ.)। (२) शुक्ले (तन्नाम्नि अक्षिरोगे) विभीतकमज्जा–"मज्जा वाक्षात् समाक्षिकात्" (उ. ११ अ.)। वाग्भटः॥ कासे (१) विभीतकः–"विभीतकं घृताभ्यक्तं गोशकृत्परिवेष्टितम्। स्विन्नमग्नौ हरेत् कासं ध्रुवमास्यविधारितम्॥" (कास चिः)। (२) श्वासे उर्द्धंसिकायां च विभीतकम्–"कर्षं कलिफलचूर्णं लीढं चात्यन्तमधुना मिश्रितम्। अचिराद्धरति श्वासं प्रबलामुद्धंसिकाञ्चैव।" (श्वासचि.)। चक्रदत्तः। (१) अतिसारे विभीतकम्–"विभीतकफलं दग्धं हन्याल्लवण-संयुतम्। महान्तमप्यतीसारं चक्रपाणि-रिवासुरान्॥" (अतिसारचि.)। (२) हृद्गते वायौ विभीतकम्–"पिबेदुष्णाम्भसा पिष्टं साश्वगन्धं विभीतकम्। गुड-युक्तं प्रयत्नेन हृदयानिलनाशनम्॥" (वातव्याधिचि.)। वङ्गसेनः॥

विभीतकः, अक्षः– Terminalia bellerica, Roxb.

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- विभीतकः, अक्षः, कर्षफलः, कलिद्रुम, भूतवासदि। हि.- बहेड़ा फिनास, मैप। बं.- वयड़ा, बहेरा, बहेरी। म.- बहेड़ा, गु.- बेड़ा, विहेड़ा। क.- तौड़े, तौरे। ते.- ताण्डचेट्टु, वल्ल ताडिकाय। ता.- तनिताकी, तो अण्डी। कण्डु एल पय। फा. वलैले, वलैलाह। अं.- वलवल। अं.- वेलिखि मेरोवेलेन्स, ले.- टरमेलिया पोलोरिका।

परिचयज्ञापिका सं.- तिलपुष्पकः, कर्षफलः। **गुणप्रकाशिका सं.**- अनिलघ्नकः, कासघ्नः, विषघ्नः।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- विभीतक (वहेड़ा) पाक में कटु रस तथा लघु है और स्वर विकार को दूर करता है तथा सारक है। यह कास, अक्षि विकार तथा मुख रोग का नाश करता है तथा यह अच्छी तरह केशवृद्धिकारक है। अन्य भी बहेड़ा कषायरस है तथा क्रिमिरोग एवं स्वर विकार का नाश करता है तथा सारक है, नेत्र के लिए हितकर है, कटुरस, रूक्ष तथा उष्ण है, पाक में स्वादिष्ट है तथा कफ विकार एवं रक्त विकार को दूर करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- बहेड़ा कटु, तिक्त तथा कषाय रस, उष्ण है और कफ विकार को दूर करता है। यह नेत्र के लिए हितकर है, पलित रोग (सिर का बाल गिरना) तथा विपाक में मधुर है एवं लघु है।

भावप्रकाश के अनुसार- बहेड़ा पाक में स्वादिष्ट, कषाय रस है और कफ विकार एवं पित्त विकार को दूर करता है। यह उष्ण वीर्य है, शीत स्पर्श है, मल भेदक है तथा कास नाशक है। यह रूक्ष है, नेत्र के लिए हितकर है, केशवर्द्धक है और क्रिमि रोग एवं वैस्वर्य नाशक है। बहेड़ा की मज्जा प्यास, वमन, कफ विकार तथा वात विकार को दूर करती है तथा लघु है। यह कषाय रस है तथा मदकारक है और आँवले की मज्जा का भी यही गुण है।

राजवल्लभ के अनुसार- बहेड़ा मल भेदक, तीक्ष्ण तथा उष्ण है और यह वैस्वर्य एवं क्रिमिरोग नाशक है। यह नेत्र के लिए हितकर है, पाक में स्वादिष्ट है तथा कषाय रस है और कफ-पित्त विकार को दूर करता है।

वैद्यक शास्त्र में विभीतक का प्रयोग-

(१) ग्रन्थि विसर्प में विभीतक का प्रयोग- बहेड़ा के उष्ण कल्क से विसर्प की गांठ का सेचन करे। (च.चि.अ.११)। **(२) शोथ में बहेड़ा की मज्जा का प्रयोग-** बहेड़ा के मध्य भाग (मज्जा) का लेप सभी प्रकार के शोथ में दाह तथा पीड़ा को दूर करता है। (च.चि.अ.१७)।

अश्मरी में विभीतक मज्जा का प्रयोग- बहेड़ा के बीज (वहेड़ा फल मञ्जा का कल्क बनाकर सुरा (मद्य) के साथ पान करे। यह मूत्र दोष का शुद्ध करता है तथा अश्मरी रोग का नाश करता है। (सु.क.अ.५८)।

(१) सभी प्रकार के श्वास-कास में विभीतक का प्रयोग- सभी प्रकार के श्वास-कास में केवल बहेड़ा का प्रयोग करे। (वाग्भट चि.अ.३)। **(२) शुक्ल नामक अक्षिरोग में विभीतक मज्जा का प्रयोग-** शुक्ल नामक अक्षि रोग में बहेड़ा की मज्जा को शहद के साथ मिलाकर नेत्र में अञ्जन करे। (वाग्भट चि.अ.११)।

(१) कास में बहेड़ा का प्रयोग- बहेड़ा को घृत में अभ्यक्त कर तथा उसको गोवर से आवेष्टित्त कर और अग्नि में पकाकर मुख में धारण करने से कास का अवश्य ही नाश होता है। (चक्र.कासचि.)। **(२) श्वास रोग एवं उद्धसिका में विभीतक का प्रयोग-** वहेड़ा फल का चूर्ण एक कर्ष (१० ग्राम) लेकर अधिक मधु मिलाकर चाटने से शीघ्र ही श्वास रोग को तथा प्रबल ऊद्धसिका रोग को दूर करता है। (चक्र. श्वास चि.)।

(१) अतिसार में बहेड़ा का प्रयोग- बहेड़ा के फल को जलाकर उसके भस्म को नमक मिलाकर सेवन करने से भयंकर अतिसार का भी नाश करता है, जैसे चक्रपाणि असुरों को नाश करता है। (वंगसेन, अतिसार चि.)। **(२) हृदयगत वात में विभीतक का प्रयोग-** बहेड़ा के चूर्ण को अश्वगन्धा के चूर्ण के साथ गुड़ मिलाकर उष्ण जल के साथ पान करे। यह हृदयगत वात का नाश करता है। (वंगसेन, वात.चि.)।

Constituents—Gallo-tannic acid, colouring matter, resins and a greenish yellow oil. **Actions and uses**—Astringent, tonic and laxative; with a salt and long pepper it is given as an expectorant in the form of electuaries in cough, hoarseness of voice, sore throat and dyspepsia. The dried pulp roasted is kept in the mouth as lozenges in sore-throat. The fruit is given in diarrhoea, dropsy, leprosy, &c, also in enlargement of the spleen. (*Materia medica of India R.N. Khory*—II. p. 259).

बिल्वः

Aegle Marmelos, Corr.

बिल्वः, श्रीफलः– *Aegle Marmelos, Corr.*

परिचयज्ञापिका संज्ञा–"महाफलः", "सदाफलः", "हृद्यगन्धः", "त्रिपत्रः", "गन्धपत्रः",

"कण्टकाढचः"। त्रिल्व'मूलं' त्रिदोषघ्नं छर्दिघ्नं मधुरं लघुः। विल्वस्य च 'फलं' चाम्लं स्निग्धं सङ्ग्राहि दीपनम्॥ कटुतिक्तकषायोष्णं तीक्ष्णं वातकफापहम्। विद्यात्तदेव पक्वं तु मधुरानुरसं गुरु॥ विदाहि विष्टम्भकरं दोषहृत् पूतिमारुतम्। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ विल्वस्तु मधुरो हृद्यः कषायः पित्तजिद् गुरुः। कफज्वरातिसारघ्नो रुचिकृद्दीपनः परः॥ विल्व'मूलं' त्रिदोषघ्नं मधुरं लघु वातनुत्। 'फलन्तु' कोमलं स्निग्धं गुरु सङ्ग्राहि दीपनम्॥ तदेव 'पक्वं' विज्ञेयं मधुरं सरसं गुरु। कटुतिक्तकषायोष्णं सङ्ग्राहि च त्रिदोषजित्॥ राजनिघण्टुः॥ श्रीफलस्तुवरस्तिक्तो ग्राही रूक्षोऽग्निपित्तजित्। वातश्लेष्महरो बल्यो लघुरुष्णश्च पाचनः॥ भावप्रकाशः॥ विल्वं 'बालं' कषायोष्णं पाचनं वह्निदीपनम्। सङ्ग्राहि तिक्तकटुकं तीक्ष्णं वातकफापहम्॥ 'पक्वं' सुगन्धि मधुरं दुर्जरं ग्राहि दोषलम्। कफवातामशूलघ्नी ग्राहिणी 'विल्वपेषिका'॥ विल्वमूलं मरुच्छ्लेष्म-छर्दिघ्नं रक्तपित्तजित्॥ फलेषु परिपक्वेषु ये गुणाः समुदाहृताः। विल्वादन्यत्र विज्ञेया विल्वमामं गुणोत्तरम्॥ राजवल्लभः॥ तत् 'पत्रं' कफवातामशूलघ्नं ग्राहि रोचनम्। निहन्याद् विल्वजं 'पुष्पे'मतिसारं तृषां वमिम्॥ विल्वमज्जाभवं 'तैल'मुष्णं वातहरं परम्। काञ्जिके संस्थितं विल्वमग्निसन्दीपनं परम्॥ हृद्यं रुचिकरं प्रोक्तमामवातविनाशनम्। द्राक्षाविल्वशिवादीनां फलं 'शुष्कं' गुणाधिकम्॥ वृहन्निघण्टुरत्नाकरः॥

वैद्यके व्यवहारः—(१) ज्वरे विल्वशलाटुः—"..तद्वद्बिल्वशलाटुभिः"। (चि.३ अ.)। (२) अर्शःसु विल्वमूलत्वक्—"विल्वोत्क्वाथे सुखोष्णे...। तं शूलार्त्तमुपवेशयेत्॥" (चि.९ अ.)। (३) प्रवाहिकायां विल्वशलाटुः—"कल्कः स्याद्बालविल्वानां तिलकल्कश्च तत्समः। दध्नः सरोऽम्लस्नेहाढचः खडो हन्यात् प्रवाहिकाम्॥" (चि. १० अ.)। चरकः॥ (१) स्कन्धग्रहप्रतिषेधार्थं विल्वकण्टकम्—"...विल्वस्य कण्टकान्। ...ग्रथितान्येव धारयेत्॥" (उ. २८ अ.)। (२) पित्तरक्तोत्थिते अतिसारे विल्वशलाटुः—"विल्वमध्यं समधुकं शर्कराक्षौद्रसंयुतम्। तण्डुलाम्बुयुतो योगः पित्तरक्तोत्थितं जयेत्॥" (चि. ४० अ.)। सुश्रुतः॥ (१) गात्रदौर्गन्ध्ये विल्वपत्रम्—"विल्वपत्ररसैर्वापि गात्रदौर्गन्ध्यनाशनः।" (स्थौल्य चि.)। (२) ग्रहण्यां विल्वशलाटुः—"श्रीफलशलाटुकल्को नागरचूर्णेण मिश्रितः सगुडः। ग्रहणीगदमत्युग्रं तक्रभुजा शीलितो जयति॥" (ग्रहणीचि.)। (३) वमने विल्वमूलम्—"श्रीफलस्य... कषायो मधुसंयुतः। पेयश्छर्दित्रये शीतः..."। (छर्दिचि.)। (४) रक्तार्शसि विल्वशलाटुः—"...किं वा विल्वशलाटवः। योज्याः..."। (अर्शशि.)। (५) शोथे विल्वपत्रम्—"विल्वपत्ररसं पूतं सोषणं श्वयथौ त्रिजे। विटसङ्गे चैव दुर्नाम्नि विदध्यात् कामलास्वपि॥" (शोथचि.)। (६) वाधिर्ये विल्वशलाटुः—"फलं विल्वस्य मूत्रेण पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत्। साजाक्षीरं तद्धि हरेद्वाधिर्यं कर्णपूरणे॥" (कर्णरोगचि.)। चक्रदत्तः॥ आमशूले वालविल्वम्—"गुडेन भक्षयेद् विल्वं रक्तातिसारनाशनम्। आमशूल-विबन्धघ्नं कुक्षिरोगहरं परम्॥" (म.ख.१मःभा.)। भावप्रकाशः॥ शिशोश्छर्द्यतिसारयोर्विल्वमूलम्—"विल्वमूलकषायेन लाजाश्चैव सशर्कराः। आलोड्य पाययेद्बालं छर्द्यतिसारनाशनम्॥" वङ्गसेनः॥

विल्वः, श्रीफलः— Aegle Marmelos, Corr.

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- बिल्वः, शाडिल्यः, शेलूषः, श्रीफलः, शलाटुः कण्टकी। हि.- वेल, विल्व, श्रीफल। बं.-प.-म.-बेल। गु.- विलि, बिलु, विलो। क.- वेल्लवन वेललुः, विल्वपत्री। ते.- मारहु पण्डु विल्व। ता.- विल्व। मा.- बील, वीले। द्रा.- विल्व। अं.- दी बंगाल क्विन्स। ले.- एगल मार्मेलस।

परिचयज्ञापिका सं.- महाफलः, सदाफलः, हृद्यगन्धः, त्रिपत्रः, गन्धपत्रः कण्टकाख्यः।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- बेल का मूल, त्रिदोष नाशक तथा वमन शामक है तथा मधुर रस एवं लघु है। बेल का फल अम्ल रस, स्निग्ध, संग्राही तथा जाठराग्नि दीपक है। यह कटु रस, तिक्त रस, कषाय रस, उष्ण तथा तीक्ष्ण है और वात-कफ नाशक है। वही पक्व वेल फल मधुरानुरस तथा गुरु जाना जाता है। वह विदाही है, विष्टम्भकारक है, दोषों को दूर करनेवाला तथा उससे दुर्गन्धित गन्ध निकलता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- बेल मधुर, हृदय को बल देनेवाला तथा कषाय रस है और पित्त नाशक है, गुरु है तथा कफ ज्वर एवं अतिसार नाशक तथा रुचिकारक एवं उत्तम जाठाराग्नि दीपक है। बेल का मूल त्रिदोष नाशक, मधुर, लघु तथा वातशामक है। कच्चा बेल का फल कोमल, स्निग्ध, गुरु, ग्राही तथा जाठराग्नि दीपक है। वही पका बेल फल मधुर, सरस तथा गुरु है। यह कटु रस, तिक्त रस, कषाय रस, उष्ण, ग्राही तथा त्रिदोष नाशक है।

भावप्रकाश के अनुसार- श्रीफल (बेल) कषाय रस, तिक्त रस, ग्राही तथा रूक्ष है और अग्नि तथा पित्त विकार को जीत लेता है। यह वात-कफ को दूर करनेवाला है, बलकारक है, लघु है, उष्ण है तथा पाचक है।

राजवल्लभ के अनुसार- बाल विल्व कषाय रस, उष्ण तथा पाचन है और अग्नि दीपक है, सङ्ग्राही है, तिक्त रस, कटु रस तथा तीक्ष्ण है और वात-कफनाशक है। पका हुआ बेल फल सुगन्धित, मधुर, दुष्पच, ग्राही तथा अग्नि दीपक है यह कफ विकार, वात विकार, आम विकार तथा शूल का नाश करता है और वेल की पेशी (छाल) ग्राही है। बेल का मूल वात विकार, कफ-विकार तथा वमन का नाश करनेवाला है और रक्त पित्त को दूर करता है। पके हुए फल में जो गुण कहे गये हैं वे बेल को छोड़कर अन्य फलो में होते हैं। बेल का कच्चा फल ही अधिक गुणवाला होता है।

वृहन्निघण्टु रत्नाकर के अनुसार- बेल का पत्ता कफ विकार, वात विकार तथा शूल का नाश करता है, ग्राही है तथा रोचक है। बेल का पुष्प अतिसार, प्यास तथा वमन का नाश करता है। बेल मज्जा से सिद्ध तैल उष्ण है तथा उत्तम वात नाशक है। काञ्जी में रक्खा हुआ बेल उत्तम अग्नि दीपक है। यह हृदय को बल देनेवाला रुचिकारक तथा आमवात नाशक कहा गया है। मुनक्का बेल तथा हरे का सूखा फल अधिक गुणवाले हैं।

वैद्यक शास्त्र में बेल का प्रयोग-

(१) ज्वर में विल्व शलाटु का प्रयोग- ज्वर में बेल शलाटु का चूर्ण प्रयोग करे। (च.चि.अ.३)। **(२) अर्श रोग में विल्व छाल का प्रयोग-** थोड़ा गरम वेल मूल छाल का क्वाथ में शूल से पीड़ित अर्श के रोगी को बैठाये। (च.चि.अ.९)। **(३) प्रवाहिका में विल्व शलाटु का प्रयोग-** बाल बिल्व का कल्क तथा तिल का कल्क दोनों समभाग लेकर दही के पतला अम्ल रस में स्नेह मिलाकर खड़ तैयार करे। यह सेवन करने से प्रवाहिका को नष्ट करता है। (च.चि.अ.१०)।

(१) **स्कन्द ग्रह प्रतिषेध के लिए बेलकण्टक का प्रयोग**- स्कन्द ग्रह से गृहीत बालक को बेल के काटों का माला पहनावे। (सु.उ.अ.२८)। (२) **पित्त रक्तोत्थित अतिसार में विल्व शलाटु का प्रयोग**- बिल्व शलाटु (वेल फल का.मध्य भाग) का चूर्ण तथा मुलेठी का चूर्ण शक्कर तथा मधुर मिलाकर चावल के धोअन के साथ पान कराये। यह पित्त-रक्त जन्य अतिसार को शान्त करता है। (सु.चि.अ.४०)।

(१) **गात्र दुर्गन्ध में बेल पत्र का प्रयोग**- बेल पत्र के रस के शरीर में लगाने से गात्र की दुर्गन्धता का नाश करता है। (चक्र.स्थौल्य-चि.)। (२) **ग्रहणी में बिल्व शलाटु का प्रयोग**- बिल्व फल शलाटु (मध्य भाग) का कल्क सोंठ चूर्ण मिलाकर गुड़ के साथ सेवन करने से मट्ठा पान करनेवाला रोगी का भयंकर ग्रहणी रोग शान्त होता है। (चक्र.ग्रहणी चि.)। (३) **वमन में बेल मूल का प्रयोग**- बेल के मूल का क्वाथ मधु मिलाकर तथा शीतल कर तीनों प्रकार के वमन में पान कराये। (चक्र.छर्दिचि.) (४) **रक्तार्श में विल्व शलाटु का प्रयोग**- रक्तार्श में विल्व शलाटु का क्वाथ प्रयोग करे। (चक्र.अर्शचि.)। (५) **शोथ में बिल्व पत्र का प्रयोग**- बेल पत्र का छना हुआ रस मरिच का चूर्ण मिलाकर तीनों प्रकार के शोथ में विडसंग (विबन्ध) में, अर्श रोग में तथा कामला रोग में भी प्रयोग करे। (चक्र.शोथ चि.)। (६) **बाधिर्य में विल्व शलाटु का प्रयोग**- वेल शलाटु (वेल फल के मध्य भाग) गोमूत्र के साथ तथा बकरी के दूध में पीसकर तथा बकरी का दूध मिलाकर विधिवत तैलपराक करे। वह तैल कान में डालने से कर्ण-वाधिर्य का नाश करता है। (चक्र.कर्ण चि.)।

आमशूल में बाल विल्व का प्रयोग- बाल विल्व के कल्क को (या चूर्ण को) गुड़ के साथ खाय। यह रक्तातिसार का नाश करता है। यह आमशूल तथा विबन्ध का नाश करता है और उदर रोग को अच्छी तरह दूर करता है। (भावप्र.म.१)।

बच्चों के वमन तथा अतिसार में विल्व मूल का प्रयोग- बेलमूल के क्वाथ के साथ लाई का चूर्ण शक्कर मिलाकर तथा क्वाथ में घोल कर बालक को पान कराये। यह बालकों के वमन तथा अतिसार का नाश करता है। (वंगसेन)।

Constitutents—The pulp contains mucilage, pectin, sugar tannin, a volatile oil, bitter principle and ash 2 p.c. The wood ash contains potassium and sodium compounds, phosphates of lime and iron, calcium corbonate, magnesium carbonate, silica, sand &c. The fresh leaves, on distillation, yield an oil of a yellowish green colour and neutral reaction, with carbon bisulphide. **Actions and uses**—The ripe fruit is nutritious, delicious, aromatic, alterative and laxative. It is given with sugarcandy to prevent the growth of piles and to remove habitual constipation. A decoction of unripe or half ripe fruits, or unripe fruit baked for 6 hours, is astringent digestive, stomachic and given in diarrhoea and dysentery. When taken in excess it often cause flatulence. Syrup of ripe fruits is used in dyspepsia. The root bark is refrigerant and is given in fevers, asthma with palpitation of the heart. In native practice a poultice of the leaves is applied to the chest in acute bronchitis. The decoction of the leaves is given in asthma. A marmalade of bael fruit is a household remedy for diarrhoea and dysentery. (*Materia Medica of India—R.N. Khory*—III. p. 128).

बृद्धदारकद्वयम्

Argyreia Speciosa, Swt.

वृद्धदारकः–*Argyreia Speciosa, Swt.* **जीर्णदारु फञ्जी**–*Ipomaea Biloba, Eorsk. [Goats foot Convolvulus (Eng.)].*

परिचयज्ञापिका संज्ञा–वृद्धदारस्य–"छागलान्त्री"। जीर्णदारोः–"सुपुष्पिका", "सूक्ष्मपत्रा" (रा. नि.)। वृद्धदारुः कटुस्तिक्तस्तथोष्णः कफवातजित्। श्वयथुकृमिमेहास्त्रवातोदरहरः परः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः। वुद्धदारुद्धयं गौल्य पिच्छिलं कफवातहृत्। बल्यं कासामदोषघ्नं द्वितीयं स्वल्पवीर्यदम्॥ राजनिघण्टुः॥ रसायनो वृद्धदारः शोथवातामवातजित्। कासश्वासज्वरहरी बल्यः पिच्छिल एव च॥ भावप्रकाशः॥ रसायनो वृद्धदारः शोथामवातरोगजित्। राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः–(१) क्रोष्टुशीर्षे वातव्याधौ वृद्धदारकमूलम्–"...पिबेद्वा वृद्धदारकम्" (वातव्याधि-चि.)। (२) श्लीपदे वृद्धदारकमूलम्–"काञ्जिकेन पिबेच्चूर्णं मूत्रैर्वा वृद्धदारुजम्" (श्लीपदचि.)। (३) रसायनार्थं वृद्धदारकमूलम्–"वृद्धदारकमूलानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्। शतावर्या रसेनैव सप्तरात्राणि भावयेत्॥ अक्षमात्रन्तु तच्चूर्णं सपिषा सह भोजयेत्। मासमात्रोपयोगेन मतिमान् जायते नरः॥ मेधावी स्मृतिमांश्चैव बलिपलितवर्जितः।" (रसायनाधि.)। चक्रदत्तः॥ पुत्रकामार्थं वृद्धदारकमूलम्–"वृद्धदारकमूलेन घृतं पक्वं पयोऽन्वितम्। एतद्वृष्यतमं सर्पिः पुत्रकामः पिबेन्नरः।" (स्त्रीरोगाधि.)। वङ्गसेनः॥

वृद्धदारकः–Argyreia Speciosa, Swt. जीर्णदारु फञ्जी–Ipomaea Biloba, Eorsk. [Goats foot Convolvulus (Eng.)].

विविध भाषाओं में नाम–

सं.–वृद्धदारकः, आवेगी, छागान्त्री, रिष्दगन्धिका। हि.– विधारा, वैधारा, वृद्धदारक। मे.– भा.– ताम्वेश्वर, ताम्रेश्वर। अं.– अर्जिरिया स्पेसी ओसा, लटेसोमिया, नर्वासा।

परिचयज्ञापिका सं.– वृद्धदार–छागलान्त्री। जीर्णदारु–सुपुष्पिका, सूक्ष्मपत्रा (रा.नि.)।

गुण एवं दोष–

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार– वृद्धदारु (विधारा) कटुरस, तिक्त रस तथा उष्ण है और कफ वात को दूर करता है। यह शोथ रोग, क्रिमि रोग, प्रमेह, वात रक्त तथा उदर रोग को शान्त करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार– दोनों प्रकार का विधारा गला के लिए हितकर तथा पिच्छिल है और कफ–वात को दूर करता है। यह बलकारक है, कास तथा आम दोष का नाश करता है। दूसरा विधारा अल्प गुणवाला है।

भावप्रकाश के अनुसार– वृद्धदार (विधारा) रसायन है और शोथ, आमवात तथा वात रोग का नाश करता है। यह श्वास, कफ तथा ज्वर को दूर करता है, बलकारक है तथा पिच्छिल है।

राजवल्लभ के अनुसार– वृद्धदार रसायन है तथा शोथ एवं आमवात रोग का नाश करता है।

वैद्यक शास्त्र में वृद्धदारु का प्रयोग–

(१) क्रोष्टु शीर्ष वात रोग में वृद्धदारक मूल का प्रयोग– वृद्धदारक मूल का क्वाथ क्रोष्टुशीर्ष नामक वात रोग में पान करे। (चक्र.वात.का.चि.)। **(२) श्लीपद में वृद्धदारक मूल का प्रयोग**– वृद्धदारु के मूल का चूर्ण काञ्जी के साथ या गो–मूत्र के साथ पान करे। (चक्र.श्लीपद.चि.)। **(३) रसायनार्थ वृद्धदारु मूल का प्रयोग**– वृद्धदारुक मूल का महीन चूर्ण बना ले और उस को शतावरी के रस के साथ सात वार भावित करे। इस चूर्ण में से एक अक्ष (२० ग्राम) की मात्रा में घृत के साथ खाय। इसका एक मास तक प्रयोग करने से

मनुष्य बुद्धिमान हो जाता है। वह मेधावी होता है, स्मरण शक्तिवाला होता है तथा वलिपलित (मुख में झूरी पड़ना तथा असमय में बाल का पकना) रुक जाता है। (चक्र.रसायनाधिकार)।

पुत्र के लिए वृद्धदारु मूल का प्रयोग- वृद्ध दारु के मूल के कल्क तथा क्वाथ के साथ दूध मिलाकर विधिवत् सिद्ध घृत पुत्र को चाहनेवाला पान करे। यह उत्तम वीर्य वर्द्धक है। (वंगसेन, स्त्रीरोगाधिकारः)।

Constituents—Tannin, amber, coloured acid, resin which is soluble in either, benzole and partly soluble in alkalies. (*Materia Medica of India R. N. Khory*—II. p. 414). **Actions and uses**—Alterative, tonic, given in rheumatism and syphilis. The under surface of the leaf is irritant and is used to hasten maturation and suppuration. It sometimes acts as a vesicant. The upper surface is cooling and supposed to possess healing properties. (Do—II. p. 414).

बृहतीवृन्ताक्यौ

Solanum Indicum, Linn.

वृहती–*Solanum Indicum, Linn.* **वृहतीभेदाः–(१) सर्पतनुः क्षविका**–*S. diffusum, Roxb.* **(२) श्वेतवृहती, श्वेतवृन्ताकम्, श्वेतवार्त्ताकिनी**–*S. Insanum, Willd.* **वृन्ताकी, वार्त्ताकी,** *S. Melongena, Willd.* **वृन्ताकीभेदाः–(१) वनजा, वार्त्ताकिनी**–*S. Hirsutum, Roxb.* **(२) गोष्ठवार्त्ताकुः**–*S. Stramonifolium, Jacqu.*

अन्वर्थसंज्ञा–वृहत्याः–"कण्टतनुः", "बहुपत्री"। क्षविकायाः–"बहुफला", "पीततण्डुला", "पुत्रप्रदा"। श्वेतवृहत्याः–"श्वेतफला"। वनजायाः–"चन्द्र-पुष्पा", "कटुवार्त्ताकिनी"। वृन्ताक्याः– "कण्टपत्रिका", "मांसफला", "वृत्तफला", "नीला", "मिश्रवर्णफला", "रक्तफला", "नृपप्रियफला", "निद्रालुः"। सिंहिका कफवातघ्नी श्वासशूलज्वरापहा। छर्दिहृद्रोगमन्दाग्नि मामदोषांश्च नाशयेत्॥ वृहती ग्राहिणी सोष्णा वातघ्नी पाचनी तथा॥ "क्षविका" वृहती तिक्ता कटुरुष्णा च तत्समा। युक्तया द्रव्यविशेषेण धारासंस्तम्भसिद्धिदा॥ "वृन्ताकं" स्वादु तीक्ष्णोष्णं कटुपाकमपित्तलम्। कफवातहरं हृद्यं दीपनं शुक्रलं लघु॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ वृहती कटुतिक्तोष्णा वातजिज्ज्वरहारिणी। अरोचकामकासघ्नी श्वासहृद्रोगनाशिनी॥ विज्ञेया "श्वेतबृहती" वातश्लेष्मविनाशनी। रुच्या चाञ्जनयोगेन नानानेत्रामयापहा॥ "वार्त्ताकी" कटुकी रुच्या मधुरा पित्तनाशिनी। बलपुष्टिकरी हृद्या गुरुर्वातिषु निन्दिता॥ राजनिघण्टुः॥ वृहती ग्राहिणी हृद्या पाचनी कफवातहृत्। कटुस्तिक्ता-स्यवैरस्यमलारोचकनाशनी॥ उष्णा कुष्ठज्वरश्वासशूलकासाग्निमान्द्यजित्॥ "वृन्ताकं" स्वादु तिक्तोष्णं कटुपाकमपित्तलम्। ज्वरवातवलासघ्नं दीपनं शुक्रलं लघु॥ तद्'बालं' कफपित्तघ्नं 'वृद्धं' पित्तकरं गुरु। वृन्ताकं पित्तलं किञ्चिदङ्गारपरिपाचितम्॥ कफमेदोऽनिलामघ्नमत्यर्थं लघु दीपनम्। तदेव हि गुरु स्निग्धं सतैलं लवणान्वितम्॥ अपरं 'श्वेतवृन्ताकं' कुक्कुटाण्डसमं भवेत्। तदर्शःसु विशेषेण हितं हीनञ्च पूर्वतः॥ भावप्रकाशः॥ फलानि वृहतीनाञ्च कटुतिक्तलघूनि च। कण्डूकुष्ठकृमिघ्नानि कफवातहराणि च॥ वृहन्निघण्टुरत्नाकरः॥ वृहती पाचनी सोष्णा ग्राहिणी वातनाशिनी। वृहत्याः कण्टकार्याश्च 'फलं' पित्तकफापहम्॥ कण्डू-कुष्ठकृमिघ्नञ्च लघूष्णं कटुतिक्तकम्॥ अग्निप्रदा मारुतनाशिनी च शुक्रप्रदा शोणितवर्द्धनी च। हृल्लासकासारुचिनाशिनी

च वार्त्ताकुरेषा गुणसप्तयुक्ता॥ सा 'बाला' कफपित्तघ्नी 'पक्वा' सक्षारपित्तला। 'सदाफला' त्रिदोषघ्नी रक्तपित्त-प्रसादनी॥ कण्डूकच्छहरी चैव वार्त्तकी गुणवत्तरा। राजवल्लभः॥ तथा 'वृहतीफल'मेव शस्तं सन्दीपनं स्यात् कफवातनाशनम्। कण्डूविसर्प-ज्वरकामलादौ तथारुचौ शस्तमिदं वदन्ति॥ निद्राकरं प्रीतिकरं तथैव सवातलं श्वासविमर्द्दनं हि। वलासकासारुचिनाशनञ्च न वृन्ताकं पित्तकरं फलं स्यात्॥ हारीतः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) अश्मर्यां वृहतीद्वयम्–"...वृहतीद्वयञ्च। आलोड्य दध्ना मधुरेन पेयम्। दिनानि सप्ताश्मरी भेदनाय।" (चि. २६ अ.)। (२) कासे वार्त्ताकुः–"...वार्त्ताकुजाः रसाः कफकासघ्नाः" (चि. २२ अ.)। (३) सर्वविषे वार्त्ताकुशाकम्–"...वार्त्ताकुसुनिषण्णकाः। ...विषार्त्तानां भिषग्जितम्।" (चि. २६ अ.) चरकः॥ (१) शकुनिग्रहप्रतिषेधार्थं वृहतीफलम्–"वृहतोञ्चापि धारयेत्।" (उ. ३० अ.)। (२) योनिरोगे वृहतीफलम्–"वृहतीफलकल्कस्य द्विहरिद्रायुतस्य च। कण्डूमती-मपस्पर्शां पूरयेद्धूपयेत्तथा॥" (उ. ३८ अ.)। सुश्रुतः॥ इन्द्रलुप्ते क्षुद्रवार्त्ताकम्–"सक्षौद्रक्षुद्रवार्त्ताकस्वरसेन...॥" (उ. २४ अ.)। वाग्भटः॥ (१) शिशोर्वमने वृहतीफलम्–"पीतं पीतं वमेद् यस्तु स्तन्यं तन्मधु-सर्पिषा। द्विवार्त्ताकीफलरसं... लेहयेत्॥" (बालरोगचि.)। (२) ज्वरे वार्त्ताकुफलम्–"पटोलपत्रं वार्त्ताकुं...। ...ज्वरिताय प्रदापयेत्॥" ज्वरचि.)। (३) अर्शःसु वार्त्ताकुफलम्–"स्विन्नं वार्त्ताकुफलं घोषायाः क्षारजेन सलिलेन। तद्घृतभृष्टं युक्तं गुडनातृप्तितो योऽत्ति। पिबति च तक्रं नूनं तस्याश्वेवाऽति-वृद्धगुदजानि। यान्ति विनाशं पुंसां सहजान्यपि सप्तरात्रेण।" (अर्शचि.)। (४) गृध्रस्यां वार्त्ताकुः–"योऽश्नाति नरः सिद्धामेरण्डतैलसाधिताम्। वार्त्ताकुं गृध्रसीखिन्नः पूर्वामाप्नोत्यसौ गतिम्। (वातव्याधिचि.)। (५) कृमिकर्णे वार्त्ताकुः–"वार्त्ताकुधूमश्च हितः।" (कर्णरोगचि.)। चक्रदत्तः॥ सन्निपातज्वरे नस्यार्थं वृहतीफलपिप्पलीकम्–"एकं बृहत्याः फलपिप्पलीकं शुण्ठीयुतं चूर्णमिदं प्रशस्तं प्रध्मापयेद् घ्राणपुटे तु संज्ञाम्॥ चेष्टां करोति क्षवथोः प्रबोधम्।" (चि. २ अ.)। हारीतः॥ (१) ज्वरिणो निद्रालाभार्थं वार्त्ताकुः–"सायं स्विन्नमशेषं कृत्वा वार्त्ताकुमेव पूर्वाह्णे। मधुयुतमश्नन्न चिरान्नष्टामभ्याप्नु-यान्निद्राम्॥" (ज्वराधि.)। (२) सङ्ग्रहग्रहण्यां बृहती–"सङ्ग्रह-ग्रहणीं हन्ति तक्रेण बृहती तथा" (ग्रहण्यधि.)। वङ्गसेनः॥

वृहती–Solanum Indicum, Linn. वृहतीभेदाः–(१) गर्पतनुः क्षविका–S. diffusum, Roxb. (२) श्वेतवृहती, श्वेतवृन्ताकम्, श्वेतवार्त्ताकिनी–S. Insanum, Willd. वृन्ताकी, वार्त्ताकी, S. Melongena, Willd. वृन्ताकीभेदाः–(१) बनजा, वार्त्ताकिनी–S. Hirsutum, Roxb. (२) गोष्ठवार्त्ताकुः–S. Stramonifolium, Jacqu.

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– वार्ताकी, क्षुद्रभण्टाकी, राष्ट्रिका, सिंही, बृहती। हि.– कटाई, बरहण्टा, वनभण्टा, जंगली वैयन। बं.– व्याकडती, वैजन। म.– गरेली, रिङ्गपीर। गु.– उभिभोरिङ्गणी। ते.– कुकमाची, पेदामुलङ्गा। ता.– चेस चुण्ठ। क.– गुल्ला। म.– उभी, कटाली। फा.– उसागार, वदञ्जान, जंगली। अं.– वालुञ्जान, जंगली, वांदनजावेरोदक। ले.– सोलिनम इण्डिकम्।

सं.- कण्टकारी, दुःस्पर्शा, क्षुद्रा, व्याघ्री, निदिग्धिका। हि.- कटैरी, भटकटैया, रिङ्गणी, कटाली। बं.- कण्टकारी। म.- लघु रिङ्गणी। गु.- वेटिमोरिङ्गणी। क.- नेल्ल गुल्लु। ते.- खेरी मुलङ्गा, भ्रकुडिचेट्टु। भा.- कण्टात्री। द्रा.- कनकतरि। ता.- चन्दन घट्टी। थू.-कटीला। ले.- सोलेनमजान्थो कार्पम्।

अन्वर्थज्ञापिका सं.- वृहती-कण्टतनुः, बहुपत्री। क्षविका- बहुफला, पीततण्डुला, पुत्रप्रदा। श्वेतवृहती- श्वेतफला। वनजा- चन्द्रपुष्पा, कटुवार्ताकिनी। वृन्ताकी- कण्टपत्रिका, मांसलफला, वृत्तफला, नीला, मिश्रवर्णफला, रक्तफला, नृपप्रिय-फला। निद्रालुः।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- सिंहिका (वृहती) कफ-वातनाशक है तथा श्वास, शूल एवं ज्वर को दूर करनेवाली है। यह वमन, हृदय रोग, मन्दाग्नि तथा आमदोष का नाश करती है। वृहती ग्राही, उष्ण, वातनाशक तथा पाचन है। क्षविका बृहती तिक्त रस, कटु रस तथा उष्ण है और क्षविका का गुण वृहती के गुण के समान है। युक्ति पूर्वक द्रव्य विशेष के साथ प्रयोग करने से धारा संस्तम्भन सिद्धि को देनेवाला है। वृन्ताक स्वादिष्ट, तीक्ष्ण तथा उष्ण है और कटु पाक है तथा पित्तवर्द्धक नहीं है। यह कफवातहर, हृदय को बल देनेवाला, जाठराग्नि दीपक, शुक्र वर्द्धक तथा लघु है।

राजनिघण्टु के अनुसार- वृहती कटु रस, तिक्तरस तथा उष्ण है। यह वात रोग को दूर करनेवाली तथा ज्वर नाशक है। यह अरोचक, आम विकार तथा कास का नाश करती है और श्वास रोग एवं हृदय रोग का नाश करती है। श्वेत बृहती वात-कफ विकार नाशक है, रुचिकारक है, अंजन करने से नेत्र के अनेक रोगों का नाश करती है। वार्ताकी कटु रस, रुचिकारक तथा मधुर है और पित्तनाशक है, बल तथा पुष्टि को बढ़ानेवाली हैं, हृदय को बल देनेवाली है, गुरु है तथा वात रोग में इसका प्रयोग निषिद्ध है।

भावप्रकाश के अनुसार- पहली ग्राही है, हृद्य है, पाचन है तथा कफवातनाशक है। यह कटुरस तथा तिक्तरस है और मुख की विरसता, मल एवं अरोचक का नाश करती है। यह उष्ण है और कुष्ठरोग, ज्वर, श्वास, शूल, कास तथा मन्दाग्नि को दूर करती है। वृन्ताक स्वादिष्ट, तिक्त रस, उष्ण तथा कटुपाक है और यह पित्त को बढ़ानेवाला नहीं है। यह ज्वर, वातरोग तथा कफ रोग का नाश करता है, जाठराग्नि दीपक है, शुक्रवर्द्धक है तथा लघु है। बाल वृन्ताक कफ पित्तनाशक है। वृद्ध वृन्ताक पित्तकारक तथा गुरु है। वृन्ताक थोड़ा पित्तकारक है। अंगार पर पकाया हुआ वृन्ताक कफ-विकार, मेदो विकार तथा वात विकार का नाश करता है। यह अत्यन्त लघु तथा अग्नि दीपक है। वही तैल और लवण मिश्रित वृन्ताक गुरु और स्निग्ध है। दूसरा श्वेत वृन्ताक मुर्गी के अण्डा के समान होता है। वह अर्श रोग में विशेषकर हितकर है और पहले की अपेक्षा हीन गुणवाला है।

वृहन्निघण्टु रत्नाकर के अनुसार- वृहती का फल कटु रस, तिक्त रस तथा लघु होता है। यह कण्डू, कुष्ठ, तथा क्रिमि रोग का नाश करता है और कफ एवं वात विकार को दूर करता है।

राजवल्लभ के अनुसार- वृहती पाचक, उष्ण, ग्राही तथा वातनाशक है। वृहती तथा कण्टकारी का फल पित्त तथा कफनाशक है। यह कण्डू, कुष्ठरोग तथा क्रिमिरोग का नाश करता है, लघु है, उष्ण है तथा कटु रसं एवं तिक्त रस है। यह जाठराग्नि वर्द्धक है, वातनाशक है, शुक्रप्रद है तथा रक्तवर्द्धक है। यह हृल्लास (उवकाई), कास तथा अरुचि का नाश करती है। यह वार्ताकी (वृहती) सात गुणों से युक्त है। बाल वृहती पित्त-कफ नाशक है। पक्व वृहती क्षारयुक्त, पित्त कारक है। सदाफला वर्ताकी त्रिदोषनाशक, रक्त-पित्त शामक है, कण्डू रोग का नाश करती है। यह वार्ताकी उत्तम गुणवाला है।

हारीत के अनुसार- वृहती फल प्रशस्त है, अग्निदीपक है तथा कफ-वात नाशक है। यह कण्डू, विसर्प, ज्वर, काला रोग आदि में तथा अरुचि में प्रशस्त है। यह निद्राकारक है तथा प्रीति (प्रसन्न) कारक है, वातकारक है और श्वास नाशक है। यह कफ विकार, कास तथा अरुचि का नाश करता है। वृन्ताक का फल पित्तकारक नहीं होता है।

वैद्यक शास्त्र में वृहती का प्रयोग-

(१) अश्मरी रोग में दोनों वृहती का प्रयोग- दोनों प्रकार के वृहती के क्वाथ को मीठा दही में मिलाकर अश्मरी का नाश करने के लिये सात दिन तक पान करे। (च.चि.अ.२६)। (२) **कास में वार्ताकी का प्रयोग**- वार्ताकी (वैगन) का रस कफ-कास का नाश करता है। (च.चि.अ.२२)। (३) **सभी विष में वर्ताकु का प्रयोग**- वार्ताकु तथा सुनिषण्णक (तीन पतियों) का शाक विष पीड़ित के विष का नाश करता है। (च.चि.अ.२३)।

(१) शकुनिग्रह प्रतिषेध के लिए वृहती फल का प्रयोग- शकुनी ग्रह के प्रतिषेध के लिए बृहती के फल का धारण कराये। (सु.उ.अ.३०)। (२) **योनि रोग में वृहती का प्रयोग**- वृहती फल का कल्क तथा दुगुना हल्दी मिलाकर कण्डूवाली तथा नहीं स्पर्श करनेवाली योनि को भर दे तथा धूपन करे। (सू.उ.अ.३८)।

इन्द्रलुप्त में क्षुद्रवार्ताकी का प्रयोग- क्षुद्रवार्ताकी (कण्टकारी) के स्वरस के साथ मधु मिलाकर इन्द्र लुप्त में लेप करे। (वाग्भट उ.अ.२४)।

(१) शिशु के वमन में वृहती फल का प्रयोग- दूध पीने पर बार-बार यदि बालक वमन करता है तब दोनों प्रकार के वार्ताकी फल का स्वरस शहद तथा घृत के साथ चटाये। (चक्र.बालरोग.चि.)। (२) **ज्वर में वार्ताकु फल का प्रयोग**- परवल का पत्र तथा वार्ताकु फल का शाक ज्वर के रोगी को दे। (चक्र.ज्वर चि.)। (३) **अर्श रोग में वार्ताकु फल का प्रयोग**- पकाये हुए वार्ताकु फल को घृत में भूनकर तथा गुड़ मिलाकर घोषा (शतपुषा) क्षार के जल के साथ तृप्त होने तक जो खाता है तथा पान करता है उसका बढ़ा हुआ गुदा रोग (अर्श) सात दिन प्रयोग करने से सहज में ही नष्ट हो जाता है। (चक्र.अर्श चि.)। (४) **गृध्रसी रोग में वाताकु फल का प्रयोग**- वार्ताकु के फल को एरण्ड के तैल में भूनकर गृध्रसी रोग से पीड़ित व्यक्ति खाता है तो वह गृध्रसी रोग को दूरकर पूर्वोक्त हो जाता है। (चक्र.वातव्याधि चि.)। (५) **कृमि कर्ण में वार्ताकु का प्रयोग**- कर्ण रोग में वार्ताकु का धूम कान में देने से कृमि कर्ण को दूर करता है। (चक्र.कर्ण रोग त्नि.)।

सन्निपात ज्वर में नस्य के लिए बृहती फल तथा पीपर के चूर्ण का प्रयोग- एक वृहती के फल, पीपर तथा सोंठ के चूर्ण को घ्राण पुट में धमन करने (नस्य) देने से सन्निपात रोग में छींक आने से संज्ञा की चेष्टा होती है तथा प्रबोध हो जाता है। (हारीत चि.अ.२)।

(१) ज्वर के रोगी को नींद लाने के लिए वार्ताकु का प्रयोग- वार्ताकु के फल को सायं काल पकाकर सम्पूर्ण फल को मधु के साथ पूर्वाह्न में खाने से अधिक दिन से नष्ट भी निद्रा आने लगती है। (बंगसेन, ज्वराधिकार)। (२) **संग्रहणी में वृहती का प्रयोग**- वृहती फल का तक्र (मट्ठा) के साथ सेवन करने से ग्रहणी रोग का नाश होता है। (बंगसेन, ग्रहण्यधिकार)।

Constitutents—Wax, fatty acids and an alkaloid, solanin. **Actions and uses—**Diaphoretic, stimulant, diuretic and expectorant; used in fevers, cough and dysuria.

बेत्र-बेतसौ

Calamus Rotang- Calamus Fasciculatus

वेतसः, वानीरः, वञ्जुलः। जलवेतसः, निकुञ्जकः। वेत्रः, वेतः–*Calamus Rotang, Calamus Fasciculatus.*

अन्वर्थसंज्ञा–वेत्रस्य–'योगिदण्डः', "सुदण्ड"ः। वेतसस्य–"दीर्घपत्रकः", "मञ्जरीनम्रः", "गन्धपुष्पकः", "अभ्रपुष्पः"। जलवेतसय–"नदीकुलप्रियः", "मेघपुष्पः", "परिव्याधः", "निकुञ्जकः"। वेतसस्य द्वयं (वेतसजलवेतसौ) शीतं रक्षोघ्नं व्रणशोधनम्। रक्तपित्तहरं तिक्तं सकषायं कफापहम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ वेतसः कटुकः स्वादुः शीतो भूतविनाशनः। पित्तप्रकोपनो रुच्यो विज्ञेयो दीपनः परः॥ वेत्रः पञ्चविधः श्यैत्यकषायो भूतपित्तहृत्। राजनिघण्टुः॥ वेतसः शीतलो दाहशोथा-र्शोयोनिरुक्प्रणुत्। हन्ति विसर्पकृच्छ्रास्त्र-पित्ताश्मरीकफानिलान्॥ 'जलजो वेतसः' शीतः कुष्ठहृद्वात-कोपनः। भावप्रकाशः॥ 'वेत्राग्रं' दीपनं रुच्यं वातपित्तकफापहम्। 'फलं' वेत्रस्य वातघ्नमम्लपित्त-वलासकृत्॥ राजवल्लभः॥ तिलवेतसशाकञ्च...। वातलं कटुतिक्ताम्लमधोमार्गप्रवर्त्तकम्॥ मण्डूक-पर्णीवेत्राग्रं...। कफपित्तहरं तिक्तं शीतं कटु विपच्यते॥ (सू. २७ अ.)। चरकः॥ अटरुषक'वेत्राग्र'–...। तिक्ताः पित्त-कफापहाः॥ सुश्रुतः॥ (सू. ४६ अ.)।

वैद्यके व्यवहारः– (१) रक्तपित्ते वेतसः–"धनञ्जयोदुम्बरवेतसत्वक्... निशि स्थिता वा स्वरसीकृता वा कल्कीकृता वा मृदिता शृता वा। एते समस्ता गणशः पृथग्वा रक्तं सपित्तं शमयन्ति योगाः॥" (चि. ४ अ.)। (२) शोथे वेत्रशाकम्–"सवायसीमूलकवेत्रनिम्ब॥ शाकार्थिणां शाकमति-प्रशस्तम्॥" (चि. १७ अ.)। (३) ऊरुस्तम्भे वेत्रशाकम्–"शाकैरलवणैरद्याज्जल-तैलोपसाधितैः। सुनिषण्णकनिम्बार्क 'वेत्रारग्वधपल्लवैः॥" (चि. २७ अ.)। चरकः॥ पुराणज्वरे वेतसमूलम्–"नलवेतसयोर्मूले...। कषायं विधिवत् कृत्वा पेयमेतज्ज्वरापहम्॥" (उ. ३९ अ.)। सुश्रुतः॥ योनिदाढर्च्ये वेतस-मूलम्–"वेतसमूलनिःक्वाथक्षालनेने तथैव च" (योनिव्यापद्-चि.)। चक्रदत्तः॥ रक्तपित्तिणि शाकार्थे वेतसपल्लवः–"–प्लक्ष-'वेतस'-पल्लवाः। शाकार्थे शाक-सात्म्यानां...॥" (रक्तपित्त-चि.)। भावप्रकाशः॥ अलर्कविषे जलवेतस-मूलम्–"जलवेतसवृक्षस्य मूलं कुष्ठं पचेज्जले। स क्वाथः शीतलः पेयः परञ्च विषनाशनः॥" (विष-चि.)। वङ्गसेनः॥

वेतसः, वानीरः, वञ्जुलः। जलवेतसः, निकुञ्जकः। वेत्रः, वेतः–Calamus Rotang, Calamus Fasciculatus.

विविध भाषाओं में नाम-

अन्वर्थज्ञापिका सं.- वेत्र- योगिदण्डः सुदण्डः। वेतस- दीर्घपत्रकः मञ्जरीनम्रः, गन्धपुष्पकः, अभ्रपुष्पः। जलवेतस–नदीकुलप्रियः, मेघपुष्पः, परिव्याद्यः, निकुञ्जकः।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- दोनों प्रकार के वेतस (वेतस, जल वेतस) शीतल, राक्षस ग्रहनाशक तथा व्रणशोधक हैं। ये रक्त पित्त को दूर करते हैं, तिक्त रस तथा कषाय रस हैं और कफ विकार नाशक हैं।

राजनिघण्टु के अनुसार- वेतस कटुरस, स्वादिष्ट तथा शीतल है और भूतबाधा का नाश करता है। यह पित्त को प्रकुपित करता है, रुचिकारक है तथा उत्तम दीपक है। वेत्र पाँच प्रकार का होता है, शीतल है, कषाय रस है तथा भूत बाधा एवं पित्त विकार को दूर करता है।

भावप्रकाश के अनुसार- वेतस शीतल है तथा दाह, शोथ, अर्श रोग तथा योनि पीड़ा का नाश करता है। यह विसर्प, मूत्र कृच्छ्र, रक्त पित्त, अश्मरी, कफ तथा वात विकार का नाश करता है। जल वेतस शीतल है तथा कुष्ठ रोग का नाश करता है तथा वात को प्रकुपित करता है।

राजवल्लभ के अनुसार- वेत्राग्र जाठराग्नि दीपक तथा रुचिकारक है तथा वात-पित्त एवं कफ को दूर करता है। वेत्र का फल वातनाशक है तथा अम्ल पित्त एवं कफकारक होता है।

चरक के अनुसार- तिल तथा वेतस का शाक वातकारक है। यह कटुरस, तिक्त रस तथा अम्लपित्त को अधोमार्ग से प्रवर्तित करता है। मण्डूकपर्णी तथा वेत्राग्र कफ पित्त को दूर करता है, तिक्त रस है, शीतल है तथा विपाक में कटु है। (च.सू.अच.२७)।

सुश्रुत के अनुसार- अडूसा तथा वेत्राग्र तिक्तरस है तथा कफ-पित्त का नाश करता है। (सु.सू.अ.४६)।

वैद्यक शास्त्र में वेत्र तथा वेत्रस का प्रयोग-

(१) रक्तपित्त में वेतस का प्रयोग- अर्जुन, गूलर तथा वेतस की छाल को रात भर रखकर तथा स्वरस निकाल कर या मर्दनकर या क्वाथ बनाकर इन सब में एक-एक का या समस्त गुण के अनुसार प्रयोग करने से ये रक्त पित्त को शान्त करते हैं। (च.चि.अ.४)। **(२) शोथ में वेतस शाक का प्रयोग-** मकोयका मूल, वेत्र तथा नीम का शाक खानेवालों के लिए शोथ रोग में प्रशस्त है। (च.चि.अ.१७)। **(३) ऊरुस्तम्भ में वेत्रस का प्रयोग-** जल तथा तेल के साथ पकाया हुआ बिना नमक का शाक सुनिषण्ण (तीन पतिया) निम्ब, मदार तथा वेत्राग्र एवं अमलतास के पल्लव का जल तथा तैल में सिद्ध किया हुआ बिना नमक का शाक ऊरुस्तम्भ में प्रशस्त है। (च.चि.अ.२७)।

पुराने ज्वर में वतेस मूल का प्रयोग- नल तथा वेतस के मूल के विधिवत कषाय बनाकर पान करे। यह ज्वर को दूर करता है। (सु.चि.अ.३९)।

योनि की दृढ़ता के लिए वतेस मूल का प्रयोग- वतेस मूल का क्वाथ बनाकर उससे योनि का प्रक्षालन करना योनि को दृढ कठोर बनाता है। (चक्र.योनिव्यापद चि.)।

रक्तपित्त में शाकार्थ वेतस पल्लव का प्रयोग- शाकसात्म्य व्यक्तियों को रक्तपित्त रोग में वेतस तथा पाकड़ के पल्लव का शाक प्रशस्त है। (भाव प्र.रक्त पित्त चि.)।

अलर्क विष में जलवेतस मूल का प्रयोग- जल वतेस के मूल तथा कूट को जल में पकावे और उस क्वाथ को शीतल कर पान कराये। यह अलर्क विष का नाश करता है। (बंगसेन, विष चि.)।

ब्राह्मी-मण्डूकपर्ण्यौ

Gratiola Monniera, Linn. - Hydrocotyle Asiatica, Linn.

ब्राह्मी, ब्रह्मसुवर्च्चला- *Gratiola Monniera, Linn.* **मण्डूकपर्णी-***Hydrocotyle Asiatica, Linn.*

ब्राह्मी सोमा रसे तिक्ता शोफपाण्डुज्वरापहा। दीपनी कुष्ठकण्डूघ्नी प्लीहवातवलासजित्॥ अन्यच्च–ब्राह्म्यायुष्या हिमा मेध्या कषाया तिक्तका लघुः। स्वर्या स्मृतिप्रदा कुष्ठपाण्डुमेहास्त्रका-सजित्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ ब्राह्मी हिमा कषाया च तिक्ता वातास्त्रपित्तजित्। वुद्धिं प्रज्ञाञ्च मेधाञ्च कुर्यादायुष्यवर्द्धनी॥ 'क्षुद्रपत्रा ब्राह्मी'-गुणाः–ब्राह्मी तिक्तरसोष्णा च सरा वातामशोफजित्। राजनिघण्टुः॥ ब्राह्मी हिमा सरा तिक्ता लघु मेध्या च शीतला। कषाया मधुरा स्वादुपाकायुष्या रसायनी॥ स्वर्या स्मृतिप्रदा कुष्ठपाण्डुमेहास्त्रकासजित्। विषशोथज्वरहरी तद्वत् मण्डूकपर्णीनी॥ भावप्रकाशः॥ मण्डूकपर्णी कासघ्नी स्वादुपाकरसायनी। ब्राह्मी तु भेदिनी गुर्वी मेध्या पित्तकफापहा॥ राजवल्लभः। कषाया तु हिता पित्तं स्वादुपाकरसा हिमा। लघ्वी मण्डुकपर्णीतु...। सुश्रुतः॥ (सू. ४६ अ.)।

वैद्यके व्यवहारः– (१) अपस्मारे ब्राह्मी–"...पयसा वा ब्राह्मीरसम्" (चि. १६ अ.)। (२) रसायनार्थम् मण्डूकपर्णी–"मण्डूकपर्ण्याः स्वरसः प्रयोज्यः क्षीरेण..." (चि. १ अ.)। (३) पृष्टच्चायुर्बलारोग्यकरत्वे मण्डूकपर्णी–"मण्डूकपर्ण्याः कल्पोऽथ शुण्ठीमधुकयोस्तथा" (चि. १६ अ.)। (४) उदरे मण्डूकपर्णी–"त्रिवृन्मण्डूकपर्ण्याश्च शाकं स्वरसोदकसाधितम्। निरम्ललवणास्नेहं स्विन्नस्विन्न-मनन्नभुक्॥ मासमेकं ततश्चैव तृषितः स्वरसं पिबेत्।" (चि. १८ अ.)। चरकः॥ (१) मेधायुष्कामीये ब्राह्मी–"हृतदोष एवागारं प्रविश्य प्रतिसंसृष्टभक्तो ब्राह्मीस्वरसमादाय सहस्त्रसम्पाताभिहुतं कृत्वा यथाबलमुपयुञ्जीत। जीर्णौषधश्चापराह्णे यवागूमलवणां पिबेत्। क्षीरसात्म्यो वा पयसा भुञ्जीत। एवं सप्तरात्रमुपयुज्य ब्रह्मवर्चसी मेधावी भवति। द्वितीयं सप्तरात्रमुपयुज्य ग्रन्थमीप्सित-मुत्पादयति। नष्टञ्चास्य प्रादुर्भवति। तृतीयं सप्तरात्रमुपयुज्य द्विरुच्चारितं शतीमप्यवधारयति। एवमेकविंशति रात्रमुपयुज्यालक्षीरपक्रमति। मूर्त्तिमन्तं चैनं वाग्देवी अनुप्रविशति। सर्वाश्चैनं श्रुतय उपतिष्ठन्ति।" (चि. २८ अ.)। (२) मेधायुष्कामीये मण्डूकपर्णी–"हृतदोष एव प्रतिसंसृष्टभक्तः यथाक्रम मागारं प्रविश्य मण्डुकपर्णीस्वरसमादाय सहस्त्रसम्प्याताभिहुतं कृत्वा यथाबलं पयसा आलोडच पिबेत् पयोऽनुपानं वा तस्यां जीर्णायां यवान्नं पयसोपयुञ्जीत तिलैर्वा सह भक्षयित्वा त्रीण् मासान् पयोऽनुपानं जीर्णे पयः सर्पिरोदन इत्याहारः। एवमुपयुञ्जन् ब्रह्मवर्च्चसी श्रुतिनिगादी भवति शतवर्षमायुरवाप्नोति। त्रिरात्रोपोषितश्च त्रिरात्रमेनां भक्षयेत् त्रिरात्रादूर्ध्वं पयः सर्पिरिति चोपयुञ्जीत। विल्वमात्रं पिण्डं वा पयसालोडच पिबेत्। एवं दशरात्रमुपयुज्य मेधावी वर्षशतायुर्भवति।" सुश्रुतः॥ उन्मादे ब्राह्मी–ब्राह्मीकुष्माण्डी ...स्वरसाः उन्मादहृतो दृष्टाः पृथगेते कुष्ठमधुमिश्राः" (उन्माद-चि.। चक्रदत्तः॥ मसूरिकायां ब्राह्मीस्वरसः–"सक्षौद्रं पाययेद् ब्राह्म्या रसं...।" (मसूरिका-चि.)। वङ्गसेनः॥

ब्राह्मी, ब्रह्मसुवर्च्चला– Gratiola Monniera, Linn. मण्डूकपर्णी–Hydrocotyle Asiatica, Linn.

विविध भाषाओं में नाम-

सं.-ब्राह्मी, कपोतवङ्का, सोमवल्ली, सरस्वती। हि.- वरम्भी, ब्राह्मी, वरमीशाक, विरभीवूटी। बं.- ब्राह्मी शाक, श्वेत चमनी। म.- ब्रह्ममण्डुकी। क.- ओदेलग। ते.- शम्बनी चेट्टु, अधविणित। ता.- वीभी। गु.- ब्राह्मी। फा.- जरनल। अं.- एजिएटिक पेनीवट। ले.- हाइड्रोकोटाइल एसियाटिक।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- ब्राह्मी सोमा रस में तिक्त है। यह शोथ, पाण्डु रोग तथा ज्वर को दूर करती है। यह जाठराग्नि दीपक है, कुष्ठ रोग तथा कण्डू का नाश करती है और प्लीहा रोग, वात रोग तथा कफ रोग को जीत लेती है और भी ब्राह्मी आयुवर्द्धक है, शीतल है, मेध्य है, कषाय रस, तिक्त रस तथा लघु है। यह स्मरणशक्ति को बढ़ानेवाली तथा स्वरवर्द्धक है और कुष्ठरोग, पाण्डुरोग, प्रमेह तथा रक्त विकार एवं कास को दूर करती है।

राजनिघण्टु के अनुसार- ब्राह्मी, शीतल, कषाय रस तथा तिक्त रस है और वात विकार तथा रक्त पित्त का नाश करती है। यह बुद्धि, प्रज्ञा तथा मेधा को बढ़ाती है तथा आयुवर्द्धक है। **क्षुद्रपत्रा ब्राह्मी के गुण-** क्षुद्रपत्रा ब्राह्मी तिक्त रस उष्ण तथा सारक है और वात रोग, आम वात तथा शोथ को दूर करती है।

भाव प्रकाश के अनुसार- ब्राह्मी शीतल, सारक, तिक्तरस, लघु, मेध्य तथा हिम है। यह कषाय रस, मधुर रस, पाक में स्वादिष्ट, आयुकारक तथा रसायनी है। यह ज्वरवर्द्धक तथा स्मृति प्रद है और कुष्ठ रोग, पाण्डु रोग प्रमेह, रक्त विकार तथा कास नाशक है। यह विष विकार, शोथ तथा ज्वर को दूर करनेवाली है। इसी प्रकार मण्डूकपर्णी के भी गुण हैं।

राजवल्लभ के अनुसार- मण्डूकपर्णी, कासनाशक, स्वादिष्ट पाकी तथा रसायनी है। ब्राह्मी मलभेदक, गुरु, मेधावर्द्धक तथा पित्त एवं कफनाशक है।

सुश्रुत के अनुसार- ब्राह्मी कषाय रस, पित्त विकार में हितकर स्वादु पाकी तथा स्वादिष्ट एवं हिम है। (सु.सू.अ.४६)।

वैद्यकशास्त्र में ब्राह्मी का प्रयोग-

(१) अपस्मार में ब्राह्मी का प्रयोग- अपस्मार में ब्राह्मी का रस दूध के साथ पान करे। (च.चि.अ.१३)। **(२) रसायन कार्य के लिए मण्डूकपर्णी का प्रयोग-** रसायन गुण के लिए मण्डूकपर्णी के स्वरस का दूध के साथ प्रयोग करे। (च.चि.अ.१)। **(३) पुष्टि, आयु, बल तथा आरोग्य के लिए मण्डूकपर्णी का प्रयोग-** सोंठ तथा मुलेठी के साथ मण्डूकपर्णी का कल्प पुष्टि, आयु, बल एवं आरोग्य की प्राप्ति के लिए करे। (चि. चि.अ.१६)। **(४) उदर रोग में मण्डुकपर्णी का प्रयोग-** निशोथ तथा मण्डूकपर्णी का शाक उन्हीं दोनों के स्वरस के साथ सिद्धकर अम्ल, स्नेह तथा नमक रहित बार-बार पकाकर बिना अम्ल खाये हुए एक मास तक इस शाक का सेवन करे। इससे प्यास लगने पर उसी का स्वरस पान करे। (च.चि.अ.१८)।

(१) मेधा तथा आयु की कामना के लिए ब्राह्मी का प्रयोग- वमन-विरेचनादि से शरीर के शुद्ध हो जाने पर आगार (कुटी) में प्रवेश कर तथा भोजन कर ब्राह्मी का स्वरस लेकर सहस्त्र सम्पात से अभिहुत कर अपने बल के अनुसार पान करे। औषध के पच जाने पर दो पहर बाद विना नमक का यवागू पान करे। दूध सात्म्य व्यक्ति दूध के साथ भोजन करे। इस प्रकार सात दिन तक उपयोग कर ब्रह्मवर्चसी तथा मेधावी होता है। दो सप्ताह तक उपयोग कर अपनी इच्छा के अनुसार ग्रन्थ को बना लेता है। तीन सप्ताह तक उपयोग कर दो बार उच्चारण करने पर सैकड़ों श्लोकों का धारण करने में समर्थ होता है। इस प्रकार इक्कीस दिन तक उपयोग कर अलक्ष्मी (दरिद्रता) को दूर करता है और मूर्तिमान सरस्वती देवी उस व्यक्ति में प्रविष्ट करती है। इस प्रकार सभी श्रुतियाँ उसको याद हो जाती हैं। (सू.चि.अ.२८)। **(२) मेधा तथा आयु की कामना करनेवाले के लिए मण्डूकपर्णी का प्रयोग-** वमन-विरोचनादि से शरीर को शुद्ध कर तथा संयमित भोजन कर नियमानुसार

आगार में प्रवेश कर माण्डुकपर्णी का स्वरस लेकर एक हजार बार अभिहुत कर बल के अनुसार दूध में मिलाकर पान करे या उसको पीने के बाद दूध पान करे। औषध के पच जाने पर यवान्न (यव) का आहार दूध के साथ करे। अथवा तिल के साथ पाकर तीन मास तक दूध के अनुपान के साथ सेवन करे। पच जाने पर दूध, घी तथा भात सेवन करे। ऐसा औषध का सेवन करते हुए मनुष्य ब्रह्म तेज तथा श्रुति (वेद) को जाननेवाला हो जाता है तथा सौ वर्ष आयु तक जीवित रहता है। इस प्रयोग में तीन दिन उपवास कर तीन दिन भोजन करे, तीन दिन के बाद दूध तथा घी पान करे अथवा एक विल्व मात्रा (५० ग्राम) मण्डूक पर्णी का कल्क दूध में मिलाकर पान करे। इस प्रकार दस दिन तक प्रयोग करने से मेधावी होता है तथा सौ वर्ष तक जीवित रहता है। (सुश्रुत)

उन्माद में ब्राह्मी कुष्माण्डी का प्रयोग- ब्राह्मी तथा कुष्माण्डी का स्वरस उन्माद का नाश करनेवाला कहा गया है। ये अलग कूट तथा मुलेठी मिलाकर पान करे। (चक्र.उन्माद चि.)।

मसूरिका में ब्राह्मी स्वरस का प्रयोग- मसूरिका में ब्राह्मी का स्वरस मधु मिलाकर पान करे। (बंगसेन, मसूरिका चि.)।

Constituents *of Gratiola Monniera.*—A trace of oily matter which is soluble in alcohol and of an acid reaction; tannin, an alkaloid, soluble in ether and chloroform; an organic acid, 2 resins, both soluble in alkaline solutions and one readily soluble in ether. **Actions and uses** *of Gratiola Monniera.*—Diuretic, aperient and tonic; given in stoppage of urine with costiveness; also in nervous debility, seminal weakness, epilepsy &c. The plant is applied hot to the chest in bronchitis and cough in children. (R. N. Khory, Part II. p. 456).

Constituents *of Hydrocotyle Asiatica.*—An oleaginous substance vellarine, having the odour and bitter persistent taste of the fresh plant, resin, and some fatty aromatic body, gum, sugar, albuminous matter, salts mostly alkaline sulphates and tannin. **Actions and uses** *of Hydrocotyle Asiatica.*—An alterative tonic, diuretic and local stimulant. It has a special influence on the urinogenital tract. It sets up urinary and ovarian irritation and itching over the whole body. The root is given with milk and liquorice, in fever and dysentery. As a stimulant and alterative the powder is given in chronic skin-diseases, such as eczema, lupus, psoriasis, secondary syphilitic sores or skin erruptions; also in anaesthetic leprosy, elephantiasis and scrofula. As a snuff, it is used in ozaena. The pocltice or cataplasm is applied in syphilitic and other forms of ulcerations. The powder is dusted over ulcers. (R. N. Khory, Part II, p. 263).

भल्लातकः

Semecarpus Anacardium Earking Nut.

भल्लातकः, अरुष्करः– *Semecarpus Anacardium Earking Nut.*

परिचयज्ञापिका संज्ञाः–"शैलबीजः" (शैलप्रभवः), "तैलबीजः", "पृथग्बीजः", "धनुर्बीजः", "वीरतरुः", ("वीर इव वृक्षो दुःस्पर्शत्वात्", भूरिक्षीरत्वेन)। गुणप्रकाशिका संज्ञाः–"अरुष्करः", ("अरु व्रणं करोति"), "वातारिः", "कृमिघ्नः", "अर्शोहितः", "शोथकृत्"। भल्लातः कटुतिक्तोष्णो मधुरः कृमिनाशनः। गुल्मार्शोग्रहणीकुष्ठान् हन्ति वातकफामयान्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ भल्लातकः

कटुस्तिक्तः कषायोष्णः कृमीञ्जयेत्। कफवातोदरानाहमेहदुर्नामनाशनः॥ अन्यच्च– भल्लातस्य 'फलं' कषायमधुरं कोष्णं कफार्त्तिश्रम-श्वासानाह-बिवन्धशूलजठराध्मानकृमिध्वंसनम्। 'तन्मज्जा' च विशोषदाहशमनी पित्तापहा तर्पणी वातारोचकहारिदीप्तिजननी पित्तापहा त्वञ्जसा॥ राजनिघण्टुः॥ भल्लातक'फलं' पक्वं स्वादुपाकरसं लघु। कषायं पाचनं स्निग्धं तीक्ष्णोष्णं छेदि भेदनम्॥ मेध्यं वह्निकरं हन्ति कफवातव्रणोदरम्। कुष्ठार्शोग्रहणीगुल्म-शोफानाहज्वरकृमीन्॥ "तन्मज्जा" मधुरो वृष्यो वृंहणी वातपित्तहा। 'वृन्त'मारुष्करं स्वादु पित्तघ्नं केश्यमग्निकृत्॥ भल्लातकः कषायोष्णः शुक्रलो मधुरो लघुः। वातश्लेष्मोदरानाहकुष्ठार्शग्रहणीगदान्॥ हन्ति गुल्मज्वरश्वित्रं वह्निमान्द्यकृमिव्रणान्। भावप्रकाशः॥ भल्लातक'फलं' स्निग्धं कृमिदुर्नामनाशनम्। दन्तस्थैर्यकरं ग्राहि कषायं मधुरञ्च तत्॥ भल्लात-'वृन्तं' मधुरं कषायं वातकोपनम्। विष्टम्भि दुर्जरं शीतं रक्तापित्तप्रदूषणम्॥ राजवल्लभः॥ भल्लातकानि तीक्ष्णानि पाकान्ध्यग्निसमानि च। भवन्त्यमृतकल्पानि प्रयुक्तानि यथाविधि॥ कफजो न स रोगोऽस्ति न बिवन्धोऽस्ति कश्चन। यं न भल्लातकं हन्याच्छीघ्रं मेधाग्निवर्द्धनम्॥ (चरकः–चि. १ अ.)।

वैद्यके व्यवहारः–रसायनार्थं भल्लातकफलम्–"भल्लातकानि अनुपहतानि अनामयानि आपूर्णरसप्रमाणवीर्याणि पक्वाजाम्बवप्रकाशानि शुचौ शुक्ले वा मासे सङ्गृह्य यवपल्वे माषपल्वे वा निधापयेत्। तानि चतुर्मासस्थितानि सहसि सहस्ये वा मासे प्रयोक्तुमारभेत। शीतस्निग्धमधुरोपस्कृत-शरीरः पूर्वं दशभल्लात कान्यापोथ्याष्टगुणेनाम्भसा साधु साधयेत्। तेषां रसमष्टभागावशिष्टं पूतं सपयस्कं पिबेत् सर्पिषान्तर्मुखमभ्यज्य।" (चि. १ अ.)। चरकः॥ (१) अर्शःसु भल्लातकम्–"भल्लातचूर्णयुक्तं वा शक्तुमन्थमलवणं तक्रेण॥" (चि. ६ अ.)। (२) अर्शःसु भल्लातक-विधानम्–"भल्लातकानि परिपक्वानि अनुपहतानि आहृत्यैकमादाय द्विधा त्रिधा चतुर्धा वा छेदयित्वा कषायकल्पेन विपाच्य कषायस्य शुक्ति मनुष्यणां घृताभ्यक्त-तालुजिह्वौष्ठः प्रातः प्रातरुपसेवेत। ततोऽपराह्ने क्षीरं सर्पिरोदन इत्याहारः। एवमेकैकं वर्द्धयेत् यावत् पञ्चेति"। (चि. ६ अ.)। (३) सर्वकुष्ठेषु भल्लातक-फलम्–"भल्लातकाभयाविडङ्ग-सिद्धं वा सर्वेषाम्। फल्लातकतैलं वेति।" (चि. ९ अ.)। (४) अञ्जने विषसंसृष्टे भल्लातकपुष्पम्–"...पुष्पं भल्लातकस्य वा" (क. १ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) कफगुल्मे भल्लातकघृतम्– "भल्लातकात् कल्क-कषायपक्व॥ सर्पिः पिबेत् शर्करया विमिश्रम्। तद्रक्तपित्तं विनिहन्ति पीतं वलासगुल्मं मधुना समेतम्॥" (गुल्म-चि.)। (२) कुष्ठे भल्लतक-फलम्–"पञ्च भल्लातकांश्छित्वा साधयेद्विधिवज्जले। तं कषायं पिबेच्छीतं घृतेनाक्तौष्ठतालुकः॥" (कुष्ठ-चि.)। (३) इन्द्रलुप्ते भल्लातकफलरसः–"भल्ला तकवृहती... फलेभ्य एकेन। मधुसहितेन विलिप्तं सुरपतिलुप्तं शमं याति।" (क्षुद्ररोग-चि.)। चक्रदत्तः॥ प्लीहोदरे भल्लातकबीजम्–"भल्लातका भयाजाजीगुडेन सह मोदकः। सप्तरात्रान्निहन्त्याशु प्लीहाणमति-दारुणम्॥" वङ्गसेनः॥

भल्लातकः, अरुष्करः– Semecarpus Anacardium Earking Nut.

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- भल्लातकः, अरुष्कः, अरुष्करः अग्निकः, अग्निमुखी, वीरवृक्षः, मल्ली। हि.- भिलामा, भिलाया, भेला,

भिलौरा। बं.- भेला भेलागाछ, भेलतुकी। गु.- भिलाया, भियालु। क.- गोडम्बी, करेबीज, गेरुबीजा, गिरु। ते.- जिड़िचेट्टु, नालाजीडी। द्रा.- सोनकीदेट्ट। फा.- भिलादर, भिलादुर। अं.- इव्वुलकल्ब, हव्वुलकुम। हव्वुलकहम्। अं.- दी मार्किङ्गनटी, ले.- सेमीकार्पस एनाकर्डियल।

परिचयज्ञापिका सं.- शैलबीज:, शैलप्रभवा, तैलबीज:, पृथग्बीज:, धनुर्बीज:, वीरतरु: (वीर इव वृक्षो दु:स्पर्शत्वात्, भूरिक्षीरत्वेन)। **गुणप्रकाशिका सं.**- अरुष्कर: (अरु व्रणं करोति) वातारि, कृमिघ्न:, अर्शोहित:, शोथकृत्।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- भल्लातक कटुरस, तिक्तरस, उष्ण तथा मधुर है और क्रिमिनाशक है। यह गुल्म, अर्श, ग्रहणी तथा कुष्ठ रोग का नाश करता है और वात-कफ रोग का नाश करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- भल्लातक कटु, तिक्त तथा कषाय रस और उष्ण है एवं क्रिमि रोग का नाश करता है। यह कफ विकार, वात विकार, उदर रोग, आनाह, प्रमेह तथा दुर्नाम (अर्श) रोग का नाश करता है और भी भल्लातक का फल कषाय तथा मधुर रस है, थोड़ा उष्ण होता है और कफ विकार, पीड़ा, श्रम, श्वास रोग, आनाह, विबन्ध, शूल, उदर रोग, आध्मान तथा क्रिमि रोग का नाश करता है। भल्लातक की मज्जा विशेषकर आम शामक है, प्यास को शान्त करता है तथा तृप्तिकारक है। यह वात विकार तथा अरोचक को दूर करता है, जाठराग्नि दीपक है तथा पित्तनाशक है।

भावप्रकाश के अनुसार- भल्लातक का पका फल पाक तथा रस में स्वादिष्ट तथा लघु है। यह कषाय रस, पाचन, स्निग्ध तथा उष्ण है और छेदन-भेदन करनेवाला है। यह मेध्य है, वह्निकारक है तथा कफ विकार, वातविकार तथा व्रण एवं उदर रोग का नाश करता है। यह कुष्ठ रोग, अर्श रोग, ग्रहणी रोग, गुल्म रोग, शोथ आनाह, ज्वर तथा क्रिमि रोग का नाश करता है। भल्लातक की मज्जा मधुर, वीर्यवर्द्धक, बलवर्द्धक तथा वात पित्त नाशक है। अरुष्कर (भल्लातक) का वृन्त- स्वादिष्ट है, पित्तनाशक है, केश के लिए हितकर है तथा अग्निवर्द्धक है। भल्लातक कषाय रस, उष्ण, शुक्रकारक, मधुर तथा लघु है। यह वात रोग, कफ रोग, उदर रोग, आनाह, कुष्ठ रोग, अर्श रोग तथा ग्रहणी रोग का नाश करता है। इनके अतिरिक्त गुल्म रोग, ज्वर, श्वित्र, मन्दाग्नि, क्रिमि रोग तथा व्रण रोग का नाश करता है।

राजवल्लभ के अनुसार- भल्लातक फल स्निग्ध है तथा क्रिमिरोग और अर्श रोग का नाश करता है। यह दान्तों को स्थिर करता है, ग्राही है, कषाय रस तथा मधुर रस है। भल्लातक वृन्त मधुर, कषाय रस तथा वातप्रकोपक है। यह विष्टम्भ कारक, दुष्पच, शीतल तथा रक्त-पित्त प्रदूषक है।

चरक के अनुसार- भल्लातक तीक्ष्णपाकी, अग्नि के समान गुणवाले, विधिपूर्वक प्रयोग करने से अमृत के समान होते हैं। कफजन्य कोई ऐसा रोग नहीं है तथा विबन्ध की तरह कोई ऐसा रोग नहीं है जिसको शीघ्र भल्लातक नष्ट नहीं करता है। यह मेधा तथा जाठराग्नि वर्द्धक है। (चि.चि.अ.३१)।

वैद्यक शास्त्र में भल्लातक का प्रयोग-

रसायन के लिए भल्लातक फल का प्रयोग-बिना तोड़े हुए अपने से पककर गिरे हुए निरोग, परिपूर्ण रसवाले, प्रमाण वाले तथा वीर्यवाले, पके हुए जामुन के फल के समान रोङ्गवाले भल्लातक को लेकर पवित्र शुक्ल पक्ष में तथा शुचिमास में लेकर यवके ढेर में या माष के ढेर में रक्खे। इनको चार मास रहने के बाद

सहसि (अगहन) तथा सहस्य (पूष) मास में या माघ मास में निकाल कर प्रयोग करना प्रारम्भ करे। शीतल, स्निग्ध तथा मधुर पदार्थों से शरीर को उपस्कृत कर पहले दश भल्लातकों को काटकर आठगुने जल में अच्छी तरह पकाये। उनका आठवां भाग अवशिटिक्वाथ छानकर तथा दूध मिलाकर पान करे। पान करने के पहले मुख के आभ्यन्तर भाग को घृत से अभ्यंग कर ले। (च०चि०अ० १)

(१) **अर्शरोग में भल्लातक का प्रयोग**- अर्श रोग में भल्लातक का चूर्ण या बिना नमक का शक्तुमन्थ से युक्त भल्वातक का चूर्ण मट्ठा के साथ पान करे। (सु०चि०अ०१)। (२) **अर्श में भल्वातक का प्रयोग**- अपने से पककर गिरे हुए भल्लातकों को लेकर उनमें से एक को लेकर रोज तीन भाग या चार भाग काटकर कषाय कल्प विधि के अनुसार कषाय बनाकर उसमें से एक शुक्ति की मात्रा में शीतल कर तालु, जिह्वा तथा ओठों में घृत का लेपकर प्रातः -प्रातः काल सेवन करे। इसके बाद दोपहर के बाद दूध, घी तथा भात का आहार करे। एक-एक के बढ़ाता जाय जब तक पाँच भल्लातक तक न हो जाय। (सु०चि०अ०६)। (३) **सभी कुष्ठों में भल्लातक फल का प्रयोग**- सभी प्रकार के कुष्ठ रोग में भल्लातक, हरे तथा विडंग के क्वाथकल्क के साथ विधिवत् सिद्ध घृत या भल्लातक का तैल प्रयोग करे। (सु०चि०अ०९)। (४) **विष विकार में आञ्जन के लिए भल्लातक पुष्प का प्रयोग**- विषजन्य उपद्रव में भल्लातक के पुष्प का अंजन करे। (सु०क०अ०१)।

(१) **कफज गुल्म में भल्लातक के घृत का प्रयोग**- भल्लातक के कल्क तथा कषाय के साथ विधिवत् सिद्ध घृत शक्कर मिलाकर पान करे। यह रक्त-पित्त का नाश करता है तथा मधु के साथ पान करने से कफज गुल्म का नाश करता है (चक्र० गुल्मचि०)। (२) **कुष्ठ में भल्लातक फल का प्रयोग**- पाँच भल्लातकों को काटकर विधिवत् आठगुने जल में पकावे और अष्टमांश शेष जल को शीतल कर पान करे और पीने के पहले ओठ तथा तालु को घृत से लिप्त कर दे। (चक्र.कुष्ठचि.)। (३) **इन्द्रलुप्त में भल्लातक फल के रस का प्रयोग**- भल्लातक तथा वृहती के फलों से एक फल का रस मधु मिलाकर लेप करने से इन्द्रलुप्त (बाल का झरना) रोग शान्त होता है। (चक्र० क्षुद्ररोग चि०)।

प्लीहोदर रोग में भल्लातक बीज का प्रयोग- भल्लातक का शुद्ध बीज, हर्रे तथा अजवायन को गुड़ के साथ मोदक बनावे और सेवन करे। यह सात दिन तक प्रयोग करने से अति भयंकर प्लीहा रोग का नाश करता है। (वंगसेन)।

Constituents—The almonds contain a small quantity of sweet oil; the pericarp contains a vesicating oil 32 p.c., soluble in ether, which blackens on exposure to the air. It resembles the oil obtained from Anacardium occidentale. **Actions and uses**—The black thick juice of Bhilamo, is chiefly used as a stimulant; locally caustic and vesicant. As a local stimulant it is applied for the relief of rheumatic pains, leprous affections, inflammation of bones and joints, bruises and sprains. When applied over the skin it causes intense pain and swelling, its thin epedermis causes deep bluish coloured vesicles and intractable sore. The mark does not disappear for many months or even for life. The pain of the application is best relieved by salines internally and lead letlon externally; the whole fruit or the seed is edible, like that of the cashew, It is boiled and then washed with cold water before use, The oil obtiained form it mixed with butter or oil, is used by the natives as stimulant, nar cotic, digestive, alterative and nervine tonic, and given in dyspepsia, worms, nervous debility, asthma and epilepsy. As an alterative it is given in scrofula, veneral diseases and to relieve asthmatic attacks. Sometimes the fruit is heated

in the flame of a lamp and the oil allowed to drop in milk. This is given in cough due to the relaxed uvula and palate. Its internal use requires great caution. It is used locally to procure abortion. The vapour of the burning pericarp is applied to cold swelling and to cure piles. The mature receptacle is fleshy and sweetish-sour; boiled and eaten with cocoanut and charonji as an aphrodisiac. (R. N. Khory, Part II., p. 171).

भार्गी

Siphonanthus Indica, Lamark.

भार्गी, ब्रह्मणयष्टिका - *Siphonanthus Indica, Lamark.*

अन्वर्थसंज्ञा:- "सुरूपा", "कासजित्", "वातारि:", "गर्दभशाकम्"। भार्गी स्यात् स्वरसे तिक्ता चोष्णा श्वासकफापहा। गुल्मज्वरासृग्वातघ्नी यक्ष्माणं हन्ति पीनसम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टु:॥ भार्गी तु कटुतिक्तोष्णा कासश्वासविनाशनी। शोफव्रणकृमिघ्नी च दाहज्वरनिवारिणी॥ राजनिघण्टु:॥ भार्गी रूक्षा कटुस्तिक्ता रुच्योष्णा पाचनी लघु:। दीपनी तुवरा गुल्मरक्तनुन्नाशयेद्ध्रुवम्॥ शोथकासकफश्वासपीनसज्वरमारुतान्। भावप्रकाश:॥ भार्गी तु श्वासकासघ्नी। राजवल्लभ:। पर्णमस्य ज्वरं दाहं हिक्कां दोषत्रयं हरेत्। निघण्टुरत्नाकर:॥

वैद्यके व्यवहार:- कासे भार्गीमूलत्वक्- "*कोष्णेण भार्गीनागरमम्बुना।" (चि. २२ अ.)। चरक:॥ (१) श्वासे भार्गीमूलत्वक् - "भार्गीनागरयो: कल्कं *। * अम्बुना पिबेत्॥" (चि. २१ अ.)। "लिह्यात् क्षौद्रेण भार्गी वा सर्पिर्मधुसमायुतान्।" (उ. ५१ अ.)। सुश्रुत:॥ (२) अपस्मारे भार्गीमूलत्वक्- "भार्गीशृते पचेत् क्षीरे शालितण्डुलपायसम्। त्र्यहं शुद्धाय तद्भोज्यं वराहायोपकल्पयेत्॥ ज्ञात्वा च मधुरीभूतं तं विषस्य तदुद्धरेत्। त्रीण् भागान्तस्य चूर्णस्य किण्वभागेन संसृजेत्॥ मण्डोदकार्थं देयश्च भार्गीक्वाथ: सुशीतल:। शुद्धे कुम्भे निदध्याच्च सम्भारं तं सुरां तत:॥ जातगन्धां जातरसां पाययेदातुरं भिषक्।" (उ. ६१ अ.)। सुश्रुत:॥ गण्डमालायां भार्गी-मूलत्वक्- "पिष्टं ज्येष्ठाम्बुना मूलं लेपात् ब्राह्मणयष्टिजम्" (गण्डमाला-चि.)। चक्रदत्त:॥ (१) वातकासे भार्गीघृतम्- "भार्गीकल्कैर्घृतञ्चाथ पचेद्दध्नि चतुर्गुणे। भार्गीरसं द्विगुणितं वातकासहरं परम्॥" (कास-चि.)। (२) कुरण्डे भार्गीमूलम्- "यवाम्बुना तु सम्पिष्टं मूलं भार्ग्या: प्रलेपनात्। कुरण्डं गण्डमालाञ्च हन्त्यवश्यं न संशय:॥" (कुरण्ड-चि.)। (३) व्रध्ने भार्गीमूलम्- "भार्गीमूलमखण्डन्तु पावाद्वङ्क्षणवातजित्" (व्रध्न-चि.)। वङ्गसेन:॥

भार्गी, ब्रह्मयष्टिका (Siphonanthus Indica, Lamark)

विविध भाषाओं में नाम-

सं० - भार्गी, भृगुभवा, दमा, फल्ली, अङ्गार वल्ली इन्जिका। हि०- भारङ्गी, वमनेटी, ब्रह्मनेटी, वारङ्गी। ब०- वावुनहारी, वावुनहाडी। म०- भरङ्गु। गु०- भारङ्गी। क०- किईदेगु। ते०- भण्टभाडी। ग्रण्दु भाण्डि। द्रा०- गण्डु पारङ्गी। फा०- इज्जिका। ले०- क्लेरोडेण्ड्रोम सिरेटम् (Clerodendrom Serrutum)।

अन्वर्थज्ञापिका सं०- सुरूपा, कासजित्, वातारि:, गर्दभशाकम्।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- भार्गी (वभनेटी) स्वरस में तिक्त तथा उष्ण है और श्वास-कास नाशक है। यह गुल्मरोग, ज्वर तथा वातरक्त का नाश करती है, यक्ष्मा रोग तथा पीनस रोग का नाश करती है।

राजनिघण्टु के अनुसार- भार्गी कटुरस, तिक्तरस तथा उष्ण है और कफ-श्वास का नाश करती है। यह शोथ, व्रण तथा क्रिमी रोग का नाश करती है और दाह एवं ज्वर को शान्त करती है।

भाव प्रकाश के अनुसार- भार्गी रूक्ष, कटुरस, तिक्तरस, रुचिकर तथा उष्ण है और पाचक एवं लघु है, जाठराग्नि दीपक है, कषायरस है तथा रक्त-गुल्म रोग का नाश करती है और शोथ नाशक, कफ-श्वास-पीनस; ज्वर तथा वात विकार का अवश्य ही नाश करती है।

राजवल्लभ के अनुसार- भार्गी श्वास-कास नाशक है।

निघण्टुरत्नाकर के अनुसार- भार्गी का पत्र ज्वर का नाश करता है। यह दाह, हिक्का तथा तीनों दोषों का नाश करता है।

वैद्यकशास्त्र में भार्गी का प्रयोग-

कास में भार्गी मूल त्वक् का प्रयोग- भार्गीमूल त्वक् तथा सोंठ का चूर्ण गरम जल के साथ पान करे। (च०चि०अ०२२)।

(१) श्वास में भार्गी मूल की छाल का प्रयोग - श्वास रोग में भार्गी मूल की छाल तथा सोंठ का कल्क जल के साथ पान करे। (सु०चि०अ०२१) **श्वास रोग में भार्गी का प्रयोग-** श्वास रोग में भार्गी के चूर्ण को मधु के साथ या घृत-मधु के साथ चाटे। (सु०उ०अ०५१)। (२) **अपस्मार में भार्गी मूल त्वक् का प्रयोग-** भार्गी मूलत्वक् के क्वथित दूध में जड़हन धान के चावल का पायस पकाये और वमन-विरेचनादि से शुद्ध शरीरवाले को उस भोजन को वराहा यन्त्र में रक्खे, उसके विष का मधुरी-भूत जानकर निकाल ले, इसके तीन भाग चूर्ण को एकमात्रा में मिला दे। इसके बाद मण्डोदक बनाने के लिए शीतल भार्गी का क्वाथ शुद्ध घड़े में उपकरण के साथ रक्खे। इसके बाद-सुरा के गन्धयुक्त तथा रस के सूख जाने पर चिकित्सक अपस्मार के रोगी को पान कराये (सु०चि०अ०६१)

गण्डमाला में भार्गी मूल त्वक् का प्रयोग- भार्गी मूल की छाल का कल्क काञ्जी के साथ लेप करने से गण्डमाला का नाश करता है। (चक्र० गण्डमाला चि०)।

(१) वातकास में भार्गी घृत का प्रयोग- भार्गी के कल्क के साथ चौगुना दही तथा दुगुना भार्गी का रस मिलाकर विधिवत् घृत सिद्धि करे। यह वात को अच्छी तरह दूर करता है। (वंगसेन, कास चि०)। (२) **कुरण्ड में भार्गी मूल का प्रयोग-** भार्गी के मूल को यवक्षार के जल के साथ पीसकर लेप करने से यह कुरण्ड तथा गण्डमाला को अवश्य ही नष्ट करता है। इसमें संदेह नहीं है। (वङ्गसेन, कुरण्ड चि०)। (३) **ब्रध्न में भार्गीमूल का प्रयोग-** पूरा भार्गी का मूल पान करने से वंक्षण के वात को दूर करता है। (वंगसेन, ब्रध्न चि०)।

Constituents— Strach, a peculiar bitter principle, acrid resin and fatty matter. **Actions and uses—** Stimulant, tonic and alterative; given in dyspepsia, catarrhal affection of the lungs, scrofula and rheumatism. (R.N. Khory, Part II., p. 470)

भूनिम्बः

Swertia Chirata, Gentiana Cherayta.

किराततिक्तकः, अनार्यतिक्तः- *Swertia Chirata, Gentiana Cherayta.*

अस्य भेदः-नैपालः। अन्वर्थसंज्ञा-भूनिम्बस्य-उत्पत्तिबोधिका-"पार्वतः"; परिचयज्ञापिका-"हैमकाण्डः"; गुणप्रकाशिका- "छर्द्दिघ्नः"। नैपालस्य-गुणप्रकाशिका- "नाडीतिक्तः", "अर्द्धतिक्तः", "ज्वरान्तकः", "सन्निपातहा", "निद्रारिः"। किरातकः रसे तिक्तो सरः शीतो लघुस्तथा। श्लेष्म पित्तास्त्रशोफादिकासतृष्णाज्वरापहः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ भूनिम्बो वातलस्तिक्तः कफपित्तज्वरापहा। व्रणसंरोपणः पथ्यः कुष्ठकण्डूतिशोफनुत्॥ 'नेपालनिम्बः' शीतोष्णो योगवाही लघुस्तथा। तिक्तोऽतिकफपित्तास्त्रशोफतृष्णाज्वरापहः॥ राजनिघण्टुः॥ किरातः सारको रूक्षः शीतलस्तिक्तको लघुः। सन्निपातज्वरश्वासकफपित्तास्त्रदाहनुत्। कासशोथतृषाकुष्ठज्वरव्रणकृमिप्रणुत्॥ भावप्रकाशः॥ भूनिम्बो वातलो रूक्षः कफपित्तज्वरापहः। राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः- (१) रक्तपित्ते भूनिम्बः - "किराततिक्तं क्रमुकं *। पृथक्-पृथक् चन्दनयोजितानि तेनैव कल्पेन हितानि तत्र।" (चि. ४ अ.)। (२) शोथे भूनिम्बः - "हन्यात् त्रिदोषं चिरजञ्च शोफं कल्कश्च भूनिम्बमहौषधस्य॥" (चि. १७ अ.)। (३) स्तन्यशुद्धये भूनिम्बः- "स्तन्यशुद्धये * किराततिक्तकक्वाथं *।" (चि. ३० अ.)। चरकः॥ गर्भोपद्रवभूते वमने भूनिम्बः- "पीतो भूनिम्बकल्कश्च शर्करासमभागतः। छर्दिं हरेच्च हृत्क्लेशं मधुना वा समन्वितः॥" (चि. ५ अ.)। हारीतः॥

किराततिक्तकः, अनार्यतिक्तः (Swertia Chirata, Gentiana Cherayta)

विविध भाषाओं में नाम-

सं॰- किराततिक्तः, किरतः, कद्रतिक्तः किरीतकः। हि॰- चिरायता, चिरेता। बं॰ - चिराता, चिरेता, नपालेर निम्बः। गु॰- कडियातु, करियातु, चिरावत। फा॰- नोनिहा, नोनिहाद। अ॰- कसवुज्जरोरा, कसवुलूरायरह। अं॰- चिरेता (Chirata)। ले॰- स्वीर्टिया चिरैटा (Swertia chirata)। ओफोलिया चिरेटा (Opholia chirata)।

किरात का भेद- नैपाल। **अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा- भूनिम्बकी उत्पत्तिबोधिका संज्ञा-** पार्वतः। **परिचय ज्ञापिका सं॰-** हेमकाण्ड। **गुणप्रकाशिका सं॰-** छर्दिघ्नः। **नेपाल की गुण प्रकाशिका सं॰-** नाडीतिक्तः, अर्द्धतिक्तः, ज्वरान्तकः, सन्निपातहा, निद्रारिः।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- भूनिम्बि (चिरायता) रस में तिक्त सारक, शीत तथा लघु है। यह कफ विकार, रक्तपित्त, शोथ, कास, प्यास तथा ज्वर को दूर करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- भूनिम्ब वात कारक तथा तिक्तरस है और कफ, पित्त तथा ज्वर का नाश करता है। यह ब्रण का रोपण करता है, पथ्य है तथा कुष्ठरोग, कण्डू तथा शोथ को दूर करता है। नेपाल निम्ब शीत, उष्ण (समशीतोष्ण), योगवाही तथा लघु है और यह तिक्तरस है तथा कास विकार, पित्त विकार, रक्त विकार, शोथ, प्यास तथा ज्वर को दूर करता है।

भावप्रकाश के अनुसार- किरात (चिरायता) सारक, रूक्ष तथा शीतल है, कटु रस एवं लघु है। यह सन्निपात, ज्वर, श्वास, कफ विकार, पित्त विकार, रक्त विकार तथा दाह को दूर करता है। इनके अतिरिक्त कास, शोथ, प्यास, कुष्ठरोग, ज्वर, व्रण एवं क्रिमीरोग को दूर करता है।

राजवल्लभ के अनुसार- भूनिम्ब वात कारक तथा रूक्ष है और कफ, पित्त एवं ज्वर को दूर करता है।

वैद्यकशास्त्र में भूनिम्ब का प्रयोग-

(१) रक्तपित्त में भूनिम्ब का प्रयोग- चिरायता तथा सुपारी अलग-अलग प्रयोग करने पर तथा उसी कल्प के अनुसार प्रयोग करने से रक्तपित्त में हितकर है। (च०चि०अ०४)। **(२) शोथ में भूनिम्ब का प्रयोग-** चिरायता तथा सोंठ का कल्क चिरकालिक त्रिदोषज शोथ का नाश करता है। (च०चि०अ० १७)। **(३) स्तन्य शुद्धि के लिए भूनिम्ब का प्रयोग-** स्तन्य (दूध) की शुद्धि के लिए चिरायता का क्वाथ पान करे। (च०चि०अ० ३०)।

गर्भजन्य उपद्रव भूत वमन के होने पर भूनिम्ब का प्रयोग- भूनिम्ब का कल्क समभाग शक्कर मिलकर पान करने से या मधु के साथ चाटने से कष्ट दूर कर गर्भ उपद्रव भूत वमन को दूर करता है। (हारीत, चि.अ.५)।

Constituents. - Ophelic acid, an amorphous bitter principle, chiratin, a yellow bitter glucoside; resin, gum, carbonates and phosphates of potash, lime and magnesia; ash 4-6 p.c.; no tannin. **Actions and uses -** Like Cinchona and other bitter tonic it is bitter stomachic, laxative, anthelmintic and febrifuge. It excites the appetite, strengthens digestion, but does not constipate; diminishes flatulence and hyperacidity; removes biliousness; given in atonic dyspepsia, liver troubles, acidity of the stomach and flatulence, gout in intermittent and other fevers. In combination with acids, alkalies and aromatic, it is given in bilious affection, and in burning heat of the body. The compound powder Sudarshana Churna is a popular native remedy for chronic fevers, as a laxative and alterative it is given in Scrofula and general Malaise. (R.N. Khory, Part II, p. 413).

भृङ्गराजत्रयम्

Eclipta Alba, E. Prostata, E. Erec

भृङ्गराजः, मार्कवः, केशराजः – *Eclipta Alba, E. Prostata, E. Erec* **(श्वेतपुष्पः)। (पीतपुष्पः)** *Verbesina Scandens, Roxb. Verbesina, Calendulacea, Willd.*

भेदाः- श्वेतपीतनीलपुष्पभेदात् त्रयो भृङ्गराजाः सन्ति। सामान्यान्वर्थसंज्ञा "केशरञ्जनः", "कुन्तलवर्द्धनः"। 'श्वेतपुष्पस्य' - "पितृप्रियः"। भृङ्गराजः समाख्यातस्तिक्तोष्णो रूक्ष एव च। कफशोफामपाण्डुत्वग्धृद्रोगविषनाशनः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ भृङ्गराजास्तु चक्षुष्यास्तिक्तोषणाः केशरञ्जनाः। कफशोफ-विषघ्नाश्च तत्र 'नीलो' रसायनः॥ राजनिघण्टुः॥ भृङ्गारःकटुकस्तीक्ष्णो रूक्षोष्णः कफवातनुत्। केश्यस्त्वच्यः कृमिश्वासकासशोथामपाण्डुनुत्॥ दन्त्यो रासायनो बल्यः कुष्ठनेत्रशिरोर्त्तिनुत्। भावप्रकाशः। 'भृङ्गराजस्तु' चक्षुष्यः केश्यः पाण्डुकफापहः। तद्गुणः 'केशराजो'ऽपि वह्निकृच्च रसायनः॥ राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः - कफजकासे भृङ्गराजः - '* भृङ्गराजवार्त्ताकुजाः रसाः। सक्षौद्राः

कफकासघ्नाः *।" (चि. २२ अ.)। चरकः॥ कासश्वासयोः भृङ्गराजः - "तैलं दशगुणे सिद्धं भृङ्गराजरसे शुभे। सेव्यमानं यथान्यायं श्वासकासौ व्यपोहति॥" (उ. ५१ अ.)। सुश्रुतः। (१) रसायनार्थं भृङ्गराजः - "ये मासमेकं स्वरसं पिबन्ति दिने दिने भृङ्गरजः समुत्थम्। क्षीराशिनस्ते बलवीर्ययुक्ताः समाः शतं जीवितमाप्नुवन्ति॥" (उ. ३९ अ.)। (२) श्वित्रे भृङ्गराजः - "मार्कवमथवा खादेद्भृष्टं तैलेन लोहपात्रस्थम्। बीजकशृतञ्च दुग्ध 'तदनु पिबेच्छित्रनाशाय॥" (चि. २० अ.)। वाग्भटः॥ (१) अम्लपित्ते भृङ्गराजः - "पथ्याभृङ्गरजश्चूर्णं युक्तं जीर्णगुडेन तु। जयेदम्लपित्तजन्यां छर्द्दिमत्रविदाहजाम्॥" (अम्लपित्त-चि.) (२) वाराहदशनाह्वे 'विसर्पे' भृङ्गराजमूलम् - "रजनीमार्कवमूलं पिष्टं शीतेन वारिणा तुल्यम्। हन्ति विसर्पं लेपाद्वराहदशनाह्वयं घोरम्॥" (क्षुद्ररोग-चि.)। (३) 'केशानां कृष्णीकरणे' भृङ्गराजपुष्पम् - "भृङ्गपुष्पं जवापुष्पं मेषीदुग्धप्रपेषितम्। तेनैवालोडितं लोहपात्रस्थं भूम्यधःकृतम्। सप्ताहादुद्भृतं पश्चाद्भृङ्गराजरसेन तु। आलोड्याभ्यज्य च शिरो वेष्टयित्वा वशेथिशाम्॥ प्रातस्तु क्षालनं कार्यमेवं स्यान्मूर्द्धरञ्जनम्॥" (क्षुद्ररोग-चि.)। (४) 'पलिते' भृङ्गराजः - "क्षीरात् समार्कवरसाद्द्विप्रस्थे मधुकात् पले। तैलस्य कुडवं पक्वं तन्नस्यं पलितापहम्॥" (क्षुद्ररोग-चि.)। (५) 'नक्तान्ध्ये' केशराजः - "केशराजान्वितं सिद्धं मत्स्याण्डं हन्ति भक्षितम्। नक्तान्ध्यं नियतं नृणां सप्ताहात् पथ्यसेविनाम्॥" (नेत्ररोग-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) 'सास्त्रामातिसारे' केशराजः- "केशराजसमुद्भूता जलेन गुटिकाकृता। क्षयेत् साम्रमतीसारं सशूलं सास्त्रमाशु च॥" (अतिसार-चि.)। (२) 'प्रसवान्तयोनिशूले' भृङ्गराजमूलम्- "बिल्वमार्कवजं मूलं कल्कं मद्येन पाययेत्। तेन योनिगतं शूलमाशु शाम्यति योषिताम्॥" (स्त्रीरोगाधिकारः)। वङ्गसेनः॥ (१) 'उपदंशे' भृङ्गराजः- " * भृङ्गराजसेन वा। ब्रणप्रक्षालनं कार्यमुपदंशप्रशान्तये॥" (उपदंश-चि.)। (२) 'सूर्यावर्त्ते' भृङ्गराजः- भृङ्गराजरसश्छागोक्षीरतुल्योऽर्कतापितः। सूर्यावर्त्तं निहन्त्याशु नस्येनैव प्रयोगराट्॥" (सूर्यावर्त-चि.)

भृङ्गराजः मार्कवः, केशराजः- Ecliptah Alba, E. Pros tata, E.Erec, Verbecsinascand willd.

विविध भाषाओं में नाम-

सं०- भृङ्गराजः, मार्कवः, अङ्गारकः, केशराजः, केशरञ्जनः। हि०- भांगरा, भंगरा, भङ्गरैया, वमिरा। बं०- भीमराज। म०- माका। गु०- भांगरो। क०- गरूग। ते०- गुकल, गरुचेट्टु, भृंगराजप्र चेट्टु। फा०- जमर्जर। अ०- हजीज। अं०- ट्रेलिश इक्लिप्टा, पीतपुष्पा भृंगराज- Calendulaacea। ले०- इक्लिप्टा अल्बा (Eclipta alba)।

भृंगराज के भेद- श्वेतपुष्प, पीतपुष्प, नीलपुष्प भेद से भृगराज तीन प्रकार का होता है। **अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा सामान्य-** केशरञ्जनः, कुन्तलबर्द्धनः। श्वेतपुष्प-पितृप्रियः।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- भृंगराज तिक्त रस, उष्ण तथा रूक्ष कहा जाता है। यह कफ, शोथ, आम विकार, पाण्डु, त्वक् विकार, हृदय रोग तथा विष का नाश करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- भृंगराज नेत्र के लिए हितकर तिक्तरस, उष्ण तथा केशरञ्जन है। यह कफ विकार, शोथ तथा विष विकार का नाश करता है। यहाँ पर नील पुष्प भृंगराज रसायन है।

भावप्रकाश के अनुसार- भृंगराज कटुरस, तीक्ष्ण, रूक्ष तथा उष्ण है और कफ वात को दूर करता है। यह केश तथा त्वचा के लिए हितकर है। यह क्रिमि, श्वास, कास, शोथ, आम विकार तथा पाण्डुरोग को दूर करता है। यह दांत के लिए हितकर है। रसायन है, बलकारक है तथा कुष्ठरोग, नेत्र विकार तथा सिर रोग को दूर करता है।

राजवल्लभ के अनुसार- भृंगराज नेत्र के लिए तथा केश के लिए हितकर है और पाण्डुरोग तथा कफ को दूर करता है। केशराज भी ऐसे ही गुणवाला है, जाठराग्नि कारक है तथा रसायन है।

वैद्यक शास्त्र में भृंगराज का प्रयोग-

कफ व कास में भृंगराज का प्रयोग - भृंगराज तथा वार्तकी का रस मधु मिलाकर सेवन करने से कफज कास नष्ट होता है। (च०चि०अ० २२)

कास तथा श्वास रोग में भृंगराज का प्रयोग- भृंगराज के दश गुने रस में विधिवत् सिद्धतैल विधि पूर्वक सेवन करने से श्वास तथा कास रोग को दूर करता है। (सू०उ०अ०५१)।

(१) रसायन के लिए भृंगराज का प्रयोग- जो लोग भृंगराज के रस का प्रतिदिन एकमास सेवन करते हैं वे दूध का आहार करनेवाले बल तथा वीर्य से युक्त होकर सौ वर्ष तक जीवित रहते हैं। (वाग्भट, उ०अ०३९)। **(२) श्वित्र में भृंगराज का प्रयोग-** मार्कव (भृंगराज) को लोहा के पात्र में तैल के साथ भून कर खाय और बीजक (असनवृक्ष) के साथ सिद्ध दूध पान करे। यह श्वित्र रोग का नाश करता है। (वाग्भट, चि०अ०२०)।

(१) अम्लपित्त में भृंगराज का प्रयोग- पथ्या (हर्रे) तथा भृंगराज का चूर्ण पुराने गुड़ के साथ मिलाकर् सेवन करने से अम्लपित्तजन्य तथा अन्नविदाहजन्य वमन को शान्त करता है। (चक्र० अम्लपित्त चि०)। (२) **वाराह दशन नामक विसर्प में भृंगराज मूल का प्रयोग-** हल्दी तथा मार्कव (भृंगराज) के मूल को समभाग लेकर शीतल जल से पीसकर लेप करने से बराह दशन नामक भयंकर विसर्प का नाश होता है। (चक्र० क्षुद्ररोग चि०)। (३) **केशों को काला करने में भृंगराज पुष्प का प्रयोग-** भृंगराज के पुष्प तथा जवा पुष्प को मेड के दूध के साथ पीसकर इससे ही आलोडित कर लोहे के पात्र में रखकर भूमि कें नीचे रख दे। उसको एक सप्ताह बाद निकाल कर तथा भृंगराज के रस के साथ मिलाकर तथा सिर को आवेष्टित कर रात भर रहने दे। प्रात: उठकर प्रक्षालन करे। यह केशों का रंजन करता है। (चक्र० क्षुद्ररोग चि०)। (४) **पलित रोग में भृंजराज का प्रयोग-** भृंगराज के रस के बराबर दूध मिलाकर दो-दो प्रस्थ (दो-दो किलो) में मुलठी का कल्क एक पल (५० ग्रा०) लाकर एक कुडव (२५० ग्राम) पकावे। उस तैल का नस्य देने से पलित रोग (असमय में बाल पकना) दूर होता है। (चक्र० क्षुद्र रोग चि०)। (५) **नक्तान्ध्य में केशराज का प्रयोग-** केशराज (भृंगराज) के रस के साथ विधिवत् सिद्ध मछली का अण्डा खाने से मनुष्यों का नक्तान्ध्य पथ्य सेवन करनेवाले व्यक्तियों का एक सप्ताह तक सेवन करने से दूर होता है। (चक्र० नेत्ररोग चि०)।

(१) रक्तातिसार में केशराज का प्रयोग- भृंगराज के चूर्ण को जल के सथ गुटिका बनाकर खाने से आम शूल युक्त अतिसार को तथा रक्तातिसार को जीत लेता है। (वंगसेन, अतिसार चि०)। (२) **प्रसव के बाद शूल में भृंगराज मूल का प्रयोग-** वेल तथा भृंगराज मूल का कल्क मधू के साथ पान कराये स्त्रियों के यह योनिगत शूल का शीघ्र ही नाश करता है। (वगसेन, स्त्रीरोगाधिकार)।

(१) उपदंश में भृंगराज का प्रयोग- उपदंश के ब्रण का भृंगराज के रस से प्रक्षालन करे। इससे उपदंश

रोग शान्त होता है। (उपदंश-चि०) (२) **सूर्यावर्त में भृंगराज का प्रयोग-** भृंगराज के रस को बकरी के दूध के साथ मिलाकर तथा सूर्य के ताप से तपा कर नस्य देने से सूर्यावर्त शीघ्र ही नष्ट होता है। (सूर्यावर्त चि०)।

Constituents - A large amount of resin and alkaloidal principle, ecliptine. **Actions and uses.** — Cholagogue similar in action to taraxacum. The expressed juice of leaves is tonic and alterative and given with ajowan seeds in catarrh, cough and enlargement of the liver and spleen. A paste of the plant is locally applied to chronic glandular swellings and to elephantiasis and in skin diseases. The expressed juice is dropped into the ears in earache. Mixed with castor oil, it is given to expel worms; also used to dye hairs black. (R.N. Khory, Part II, p, 361).

मञ्जिष्ठा

Rubia Munjista, Roxb.

मञ्जिष्ठा, लोहितलता - *Rubia Munjista, Roxb.*

अन्वर्थसंज्ञा- परिचयज्ञापिका - "रक्तयष्टिः", "योजनवल्ली"। गुणप्रकाशिका - "रागाढ्या", "ज्वरहन्त्री"। व्यवहारज्ञापिका - "वस्त्रभूषणा"। मञ्जिष्ठा मधुरा स्वादे कषायोष्णा गुरुस्तथा। कफोग्रव्रणमेहास्त्रविषनेत्रामयाञ्जयेत्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टू राजनिघण्टुश्च॥ मञ्जिष्ठा मधुरा तिक्ता काया स्वरवर्णकृत्। गुरुरुष्णा विषश्लेष्मशोथयोन्यक्षिकर्णरुक्। रक्तातिसारकुष्ठास्त्रविसर्पव्रणमेहनुत्। भावप्रकाशः॥ मञ्जिष्ठा कुष्ठवैस्वर्यशोथघ्नी मूत्रकृच्छ्रजित्। राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः - मञ्जिष्ठामेहे मञ्जिष्ठा - "मञ्जिष्ठाचन्दनकषायं मञ्जिष्ठामेहिनम्॥" (चि. ११ अ.) सुश्रुतः॥ 'व्यङ्गेषु' मञ्जिष्ठा - "व्यङ्गेषु * मञ्जिष्ठा वा समाक्षिका।" (क्षुद्ररोग-चि.)। चक्रदत्तः॥

मञ्जिष्ठा, लोहितलता - Rulbia munjista Roxb.

विविध भाषाओं में नाम-

सं०- मञ्जिष्ठा, विकास-समङ्गा। हि०- मजीठ, मञ्जिष्ठा। बं०- मञ्जिष्ठा, अरुण। म०- मञ्जिष्ठ। गु०- मजीठ। ते०- मंजिष्ठ, तीठी, ताम्रवल्ली। ता०- मञ्जिष्टी, रोवल्ली। म०- पून्त। फा०- रोदक। अ०- फंब हटु। फुल्लाह, फौवुल, अवागीन। अं०- इन्डियन मेडर (Indian Madder)। ले०- रुविया कार्डीफोलिया (Rubia Cordifolia)।

अन्वर्थ ज्ञापिका - परिचियज्ञापिका सं०- रक्तयष्टि, योजनवल्ली। **गुण प्रकाशिका सं०-** रागाढ्या, ज्वरहन्त्री। **व्यवहार ज्ञापिका सं०-** वस्त्रभूषणा।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीयनिघण्टु व राजनिघण्टु के अनुसार- मञ्जिष्ठा (मजीठ) स्वाद में मधुर, कषायरस, उष्ण तथा गुरु है। यह कफ विकार उग्र व्रण, प्रमेह, रक्तविकार, विष विकार या नेत्र रोग को दूर करती है।

भावप्रकाश के अनुसार- मजीठ, मधुर, तिक्तरस तथा कषाय रस है और यह स्वर तथा वर्णकारक है। यह गुरु तथा उष्ण है और विष विकार, कफ विकार, शोथ, योनि विकार, अस्थिरोग तथा कान के रोग, रक्तातिसार, कुष्ठ, रक्तविकार, विसर्प, ब्रण तथा प्रमेह को दूर करता है।

राजवल्लभ के अनुसार- मजीठ कुष्ठरोग, विस्वरता तथा शोथ का नाश करता है तथा मूत्रकृच्छ्र को दूर करता है।

वैद्यक शास्त्र में मजिठ का प्रयोग-

मञ्जिष्ठा मेह में मंजीठ का प्रयोग- मजीठ तथा चन्दन का कषाय मञ्जिष्ठा मेह का नाश करता है। (सु॰चि॰अ॰११)।

व्यङ्ग में मजीठ का प्रयोग- व्यङ्ग में मञ्जिष्ठा का शहद के साथ प्रयोग करने पर व्यङ्ग का नाश होता है। (चक्र. क्षुद्ररोग चि.)

मदनः

Randia Dumetorm, Lamk. The Emetic Nut.

मदनः - *Randia Dumetorm, Lamk. The Emetic Nut.*

अन्वर्थसंज्ञा - परिचयज्ञापिका - "शल्यकः", "गोलफलः", "धाराफलः।" गुणप्रकाशिका- "छर्द्दनः", "विषपुष्पकः"। 'उत्पत्तिबोधिका' - "श्वसनः" ("निर्जलेऽपि श्वसिति")। मदनः कटुकस्तिक्तस्तथा चोष्णो व्रणापहः। श्लेष्मज्वरप्रतिश्यायगुल्मेषु विद्रधिषु च॥ शोफस्यापि हरो वस्तो वमने चेह शस्यते। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ मदनः कटुस्तिक्तोष्णः कफवातव्रणापहः। शोफदोषापहश्चैव वमने च प्रशस्यते॥ राजनिघण्टुः॥ मदनो मधुरस्तिक्तो वीर्योष्णो लेखनी लघुः। वान्तिकृद् विद्रधिहरः प्रतिश्यायव्रणान्तकः॥ रूक्षः कुष्ठकफानाहशोथगुल्मव्रणापहः। भावप्रकाशः।

वैद्यके व्यवहारः - (१) 'वमने' मदनफलम् - "मदनफलं वमनास्थापनानुवासनोपयोगिनाम्" (सू.२८अ.)। (२) 'अधोभागे रक्तपित्ते' मदनफलपिप्पली- "फलपिप्पलीक्षीरं तेन वा क्षीरयवागूमधोभागे रक्तपित्ते" (कल्पः १ अः)। प्रयोगविधिः - "वमनद्रव्यानां मदनफलानि श्रेष्ठानि आचक्षतेऽनपायित्वात्। तानि वसन्तग्रीष्मयोरन्तरे पुष्याश्वयुग्भ्यां मृगशिरसा वा गृह्णीयात् मैत्रे मुहूर्ते। अति पक्वानि अहरितानि पाण्डुनि अकृमीनि अकृशानि अह्रस्वानि अजग्धानि तानि प्रगृह्य कुशपुटे बद्ध्वा गोमयेनालिप्य यवतुषमाषशालिकुलत्थमुद्गपर्णीनामन्यतमे निदध्यादष्टरात्रम्। अत ऊर्ध्वं मृदुभूतानि तानि मध्विष्टगन्धानि उद्धृत्य शोषयेत्। सुशुष्कानां फलानां पिप्पलीरुद्धरेत्। तासां घृतदधिमधु- पलविमृदितानां पुनः शुष्काणां तासां नवकलसं सुप्रसृष्टवालुकमरजस्कमाकण्ठं पूरयित्वा स्ववच्छन्नं स्वनुगुप्तं शिक्येऽवसज्य स्थापयेत्। (कल्पः १ अः)। दृढबलः॥ 'शूले' मदनफलम् - "नाभिलेपाज्जयेच्छूलं मदनः काञ्जिकान्वितः" (शूल-चि.)। चक्रदत्तः।

मदनः Randia Dumetorm, Lamk. The Emetic Nut.

विविध भाषाओं में नाम-

सं॰- मदनः छर्दना, पिण्डी, शठः, शल्यकः, विषपुष्पकः। हिं॰- मनफला, करहए मैनर, मैन्युअल। बं॰- मयना, मयना फल, मयना कांटा, मेन्द फल। म॰- मैनाहल, मेला, मेला, गण्डरी। गु॰- पीढोल, ढोल ढोल। क॰- वोन गरेशयमिणडक। फा॰- जोज अलकै। अं॰- वुशी कार्डिनिया (Bushy Cordenia)। ले॰- रेण्डिया ड्यूमेटोरम (Randia Dumetorm)।

अन्वर्थज्ञापिका सं०- परिचयज्ञापिका सं०- शल्यकः, गोलफलः, घाराफलः। **गुणप्रकाशिका सं०-** छर्दनः, विषपुष्पकः। **उत्पत्तिबोधिका सं०-** श्वसनः (निर्जल में भी श्वास लेता है)।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- मदन (मदनफल) कटुरस तथा तिक्तरस है तथा उष्ण है और व्रण का नाश करता है। यह कफज्वर, प्रतिश्याय तथा गुल्मरोग में, विद्रधि में वस्ति वमन में प्रशस्त है तथा शोथ का भी नाश करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- मदन कटुरस, तिक्तरस तथा उष्ण है और कफविकार, वात विकार तथा व्रण को दूर करता है। यह शोथ दोष का नाश करता है और वमन कराने में श्रेष्ठ है।

भावप्रकाश के अनुसार- मदन मधुर रस, तिक्तरस है, वीर्य में उष्ण है, लेखन है तथा लघु है। यह वमन कारक है, विद्रधिहा है तथा प्रतिश्याय तथा व्रण का नाश करता है। यह रूक्ष है और कुष्ठरोग, कफरोग, आनाह, शोथ, गुल्म रोग तथा व्रण का नाश करता है।

वैद्यकशास्त्र में मदन फल का व्यवहार-

(१) **वमन में मदन फल का प्रयोग-** मदन फल वमन, आस्थापन तथा अनुवासन में उपयोगी है। (चरक, सू० अ० २८)। (२) **अधोमार्ग से रक्तपित्त जाने पर मदनफल-पिपली का प्रयोग-** मदन फल तथा पीपर का क्षीर तथा उसी क्षीर से सिद्ध क्षीरयवागू अधोग रक्तपित्त में उपयोगी है। (च०क०अ० १)।

क्षीर यवागू प्रयोग विधि- वमनकारक द्रव्यों में मदन फल श्रेष्ठ कहे गये हैं। ये दोषकारक नहीं हैं। उन मदन फलों को वसन्त तथा ग्रीष्म ऋतु के मध्य में पुष्य तथा अश्विनी नक्षत्र के आने पर या मृगशिरा नक्षत्र से युक्त होने पर उत्तम मित्रकार मुर्हूत में ग्रहण करे। जो पके हुए, हरे रंग के पाण्डुवर्णवाले, क्रिमिविद्धसे रहित मजबूत तथा बडा एवं बिना खाये हुए मदन फल लेकर कुशा के सम्पुट में बाधकर ऊपर से गोबर का लेप लगाकर यव का भूषा, माष (उड़द), शालिधपान, कुरथी तथा मुद्गपर्णी इनमें से किसी एक में आठ दिन तक रक्खे। इसके बाद मृदु हो जाने पर तथा मधुगन्ध के समान हो जाने पर निकाल कर सुखाये। सूखे हुए फलों की पिपली निकाल ले। उन सब को घृत, दही तथा मधु में मसल कर पुनः सुखाकर उनको नवीन कलश में रखकर उस कलश के कण्ठ तक मिट्टीरहित बालू भरकर उसको छिपाकर सींक मे रखकर रक्खे। (च०क०अ० १ दृढबल)।

शूल में मदन फल का प्रयोग- मदनफल को काञ्जी के साथ पीस कर नाभि के ऊपर लेप करने से शूल को शान्त करता है। (चक्र० शूल चि०)।

Constituents. - An active principle, saponin, valerianic acid, wax, resin and colouring matter. **Actions and uses. -** A good substitute for Ipecacuanha. The dry pulp is emotic, the thick shell and hard seeds are not emetic at all. The native hakims give the pulp in combination with aromatics in dysentery, fever (ague), headache &c. It contains valerianic acid hence the tincture (ethereal tincture 1 in 5, & Dose 15-60 ms.'is used as a nervine calmative and antispasmodic in whooping cough and mania. The shell and seeds are cathartic and anthelmintic and used to remove biliousness and worms in children. The fruit is used to proure abortion and as a fish poison like coculus. A paste of it is locally applied as a discutient to disperse swellings and abscesses. (R.N. Khory - part II, p. 342).

मधुयष्टिद्वयम्

Glycyrrhiza Glabra

मधुयष्टिः, मधुकम् - *Glycyrrhiza Glabra.*

भेदः - क्लीतनकम्, क्लीतिका। "तल्लक्षणं क्लीतनकं क्लीतनं क्लीतिका च सा। स्थलजा जलजाऽन्या तु मधुपर्णी मधुलिका॥" धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ "आनूपस्थलजञ्चैव क्लीतकं द्विविधं स्मृतम्।" (सू. १ अ.)। चरकः॥ मधुयष्टिः स्वादुरसा शीतपित्तविनाशनी। वृष्या शोषक्षयहरा विषच्छर्द्दिविनाशनी॥ यष्टिकायुगलं स्वादु तृष्णापित्तास्त्रजित् समम्। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ मधुरं यष्टिमधुकं किञ्चित् तिक्तञ्च शीतलम्। चक्षुष्यं पित्तहृद्रुच्यं शोषतृष्णाव्रणापहम्॥ 'क्लीतनं मधुरं रुच्यं बल्यं वृष्यं व्रणापहम्। शीतलं गुरु चक्षुष्यमस्त्रपित्तापहं परम्॥ राजनिघण्टुः॥ यष्टिर्हिमा गुरुः स्वाद्वी चक्षुष्या बलवर्णकृत्। सुस्निग्धा शुक्रला केश्या स्वर्या पित्तानिलास्त्रजित्॥ व्रणशोथ-विषच्छर्द्दितृष्णाग्लानिक्षयापहा। शोषदाहारुचिघ्नो च कासानाशु विनाशयेत्॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) 'रसायनार्थं यष्टीमधुकम्–"क्षीरेण यष्टीमधुकस्य चूर्णम्।" (चि. १ अ.)। (२) 'क्षतक्षीणे' मधुकम्–"कल्पोऽथ शुण्ठीमधुकयोस्तथा" (चि. १६ अ.)। (३) 'हृद्रोगे' मधुकम्– "यष्टयाह्विकातिक्तकरोहिणीभ्यां कल्कं पिबेच्चापि सिताजलेन।" (चि. २६ अ.)। (४) गर्भे शुष्के शुष्यति बाले च मधुयष्टिः–"सिताकाश्मर्यमधुकैर्हितमुत्थापने पयः" (चि. २८ अ.)। (५) 'वातरक्ते' मधुकम्–"सिद्धं (तैलं) मधुककाश्मर्यरसैर्वा वातरक्तनुत्" (चि. २९ अ.)। चरकः॥ (१) 'अर्द्धभेदके' मधुकम्–"मधुकेनावपीडो वा मधुना सह संयुतः" (उ. २६ अ.)। (२) 'पाण्डुरोगे' मधुकम्–"हितञ्च यष्टीमधुकं कषायं चूर्णं समं वा मधुनावलिह्यात्" (उ. ४४ अ.)। (३) 'अधोगे रक्तपित्ते' मधुकम्–"यष्टीमधुकयुक्तञ्च सक्षौद्रं वमनं हितम्" (उ. ४५ अ.)। "पिबेदक्षसमं कल्कं यष्टीमधुकमेव वा" (उ. ४५ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) 'रुधिरवमने' मधुकम्–"यष्टयाह्वचन्दनोपेतं सम्यक् क्षीरप्रपेषितम्। तेनैवालोडच पातव्यं रुधिरच्छर्द्दिनाशनम्॥ (छर्द्दि-चि.)। (२) 'सद्योव्रणे' मधुकम्– "सद्यःक्षत-व्रणं वैद्यः सशूलं परिसेचयेत्। षष्टीमधुककल्केन किञ्चिदुष्णेण सर्पिषा॥" (व्रणशोथ-चि.)। (३) 'उदर्द्दे' मधुकम्–"...भिषगत्रापि योजयेत्। सितां मधुकसंयुक्तां...॥" (उदर्द्द-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) 'मूत्ररोधजे उदावर्त्ते' मधुकम्–"...क्षीरं द्राक्षायष्टीमथाऽपि वा" (उदावर्त्त-चि.)। (२) 'सर्वेषु शिरोरोगेषु' मधुकम्–"यष्टीमधुकमाषः स्यात् तुर्यांशं तु विषं भवेत्। तयोश्चूर्णं सुसूक्ष्मं स्यात् तच्चूर्णं सर्षपोन्मितम्॥ नासिकाभ्यन्तरे न्यस्तं सर्वां शीर्षव्यथां हरेत्। दृष्टप्रयोगो योगोऽय-मनुभाविभिरादृतः॥" (शिरोरोग-चि.)। भावप्रकाशः॥ (१) 'अपस्मारे' मधुकम्–"कुष्माण्डकफलोत्थेन रसेन परिपेषितम्। अपस्मारविनाशय यष्टयाह्वं स पिबेत् त्र्यहम्॥" (अपस्मार-चि.)। (२) 'पित्तजे कर्णरोगे' मधुकम्– "द्राक्षायष्टिश्रृतं क्षीरं शस्यते कर्णपूरणे (कर्णरोगाधि.)। (३) 'तिमिररोगे' मधुकम्–"मधुकामलकस्नानं पित्तघ्नं तिमिरापहम्।" (नेत्ररोग-चि.)। (४) 'उपपक्ष्मनाम्नि नेत्ररोगे' मधुकम्–"यष्टिसिद्धं घृतं सेकात् सद्योहरति वेदनाम्।" (नेत्ररोग-चि.)। वङ्गसेनः।

मधुयष्टिः, मधुकम् (Glycyrrhiza glabrsa)

विविध भाषाओं में नाम-

सं॰- यष्टीमधु, यष्टी, मधकम् क्लीतकनः। हि॰- मुल इठी, मुलेटी, मुलेठी, मीठी लकड़ी, जेठी मधु। बं॰- यष्टिमधु। म॰- ज्योठ मधु। गु॰- जेठी मधु, जेठीमधनामूल, जठीमधनोशीरो। मा॰- मलइठी। द्रा॰- अतिमधुर। फा॰- वेमेहे कूमज महक, रब्बूल सूस। अ॰- असलुस्दुर। अं॰- विकोरिस रूट (Liquorice Root)। ले॰- ग्लाइकिरिझा ग्लेब्रा (Glyeyrrhiza glabra)।

यष्टिमधु के भेद- क्लीतनकम् क्लीतिका। **धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार-** यष्टी मधु का लक्षण- क्लीतनक, क्लीतन, क्लीतिका, स्थलजा, जलजा। दूसरे प्रकार की मधुयष्टी- मधुपर्णी, मधलिका है। **चरक के अनुसार-** आनूप स्थल में उत्पन्न क्लीतक दो प्रकार का है। (च॰सू॰अ॰१)।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- मधुयष्टि स्वादु रस है तथा शीतपित्त का नाश करती है। यह वीर्य वर्द्धक है, शोथ, प्रदर तथा विषविकार एवं वमन शामक है। दोनों प्रकार की यष्टी स्वादिष्ट हैं और प्यास तथा रक्त पित्त को दूर करती हैं तथा सम हैं।

राजनिघण्टु के अनुसार- यष्टिमधुक थोड़ा तिक्त रस है, शीतल है, नेत्र के लिए हितकर है, पित्तनाशक है, रुचि कारक है तथा शोथ, प्यास एवं व्रण का नाश करता है। क्लीतन मुलेठी मधुर, रुचिकारक, बलकारक, वीर्य वर्द्धक, ब्रणनाशक, शीतल तथा गुरु है और नेत्र के लिए हितकर है तथा रक्तपित्त का अच्छी तरह नाश करता है।

भावप्रकाश के अनुसार- मुलेठी शीतल है, गुरु है, स्वादिष्ट है, नेत्र के लिए हितकर है, बल तथा वर्ण कारक है, स्निग्ध है, शुक्र कारक है, केश के लिए हितकर है, स्वरवर्द्धक है तथा पित्त विकार, वातविकार एवं रक्त विकार नाशक है। यह व्रण, शोथ, विष विकार, वमन, प्यास, ग्लानि तथा क्षय का नाश करती है, शोथ, दाह तथा अरुचि का नाश करती है और कास रोग का शीघ्र ही नाश करती है।

वैद्यक शास्त्र में मुलेठी का प्रयोग-

(१) **रसायन के लिए यष्टि मधु का प्रयोग-** रसायन के लिए मधुयष्टी का चूर्ण दूध के साथ सेवन करे। (च॰चि॰अ॰१) (२) **क्षतक्षीण में मुलेठी का प्रयोग-** सोंठ तथा मधुयष्टी कल्प क्षतक्षीण रोग में प्रयोग करे। (च॰चि॰ अ॰१६) (३) **हृदयरोग में मुलेठी का प्रयोग-** मधुयष्टी तथा तिक्तक रोहिणी (कुटकी) का कल्क शीतल जल से हृदय रोग में पान करे। (च॰चि॰अ॰२६) (४) **गर्भ के सूखने पर तथा बालक के सूखने की स्थिति आने पर मधुयष्टी का प्रयोग-** मिश्री, गम्भारी तथा मुलेठी का चूर्ण दूध उत्पन्न करने में हितकर है। (च॰चि॰अ॰२८) (५) **वातरक्त में मुलेठी का प्रयोग-** मुलेठी तथा गम्भारी के रस के साथ विधिवत् सिद्ध तैल वात रक्त को दूर करता है। (च॰चि॰अ॰२९)।

(१) **अर्द्धवभेदक रोग में मुलेठी का प्रयोग-** अर्द्धविभेदक में मधु के साथ मुलेठी का चूर्ण मिलाकर अवपीड़न करना लाभदायक है। (सु॰उ॰अ॰२६)। (२) **पाण्डुरोग में मुलेठी का प्रयोग-** यष्टिमुधक (मूलेठी) का कषाय या चूर्ण मधु के साथ मिलाकर पाण्डुरोग में चाटे। (सु॰उ॰अ॰४४)। (३) **अधोग रक्त पित्त में मुलेठी का प्रयोग-** यष्टी मधुक (मुलेठी) का चूर्ण अधोग रक्त पित्त के वमन होने पर मधु मिलाकर चाटने से हितकर है। (सु॰उ॰अ॰४५)। अथवा (४) यष्टीमधु (मुलेठी) का कल्क एक अक्ष (१० ग्राम) की मात्रा में अधोग रक्तपित्त में पान करे। (सु॰उ॰अ॰४५)।

(१) रक्तवमन में मुलेठी का प्रयोग- मुलेठी तथा चन्दन को अच्छी तरह दूध के साथ पीसकर तथा उसी में मिलाकर रक्तवमन की शान्ति के लिए पान करे। (चक्र०छर्दिचि०) **(२) सद्योव्रण में मुलेठी का प्रयोग**- शूलयुक्त सद्यक्षत व्रण को वैद्य मुलेठी के कल्क के साथ विधिवत् सिद्ध थोड़ा गरम घृत से सेवन करे। (चक्र० व्रण चि०)। **(३) उदर्द में मुलेठी का प्रयोग**- उदर्द में मुलेठी का चूर्ण मिश्री के साथ मिलाकर प्रयोग करे। (चक्र०उदर्द चि०)।

(१) मूत्र निरोधक उदावर्त में मुलेठी का प्रयोग- मुलेठी तथा मुनक्का के साथ सिद्ध दूध का प्रयोग मूत्र निरोधक उदावर्त में करे। (भावप्र० उदावर्त चि०)। **(२) सभी शिरो रोग में मुलेठी का प्रयोग**- यष्टीमधु (मुलेठी) एक माष (एक ग्राम), विष चौथाई भाग इन दोनों को सूक्ष्म चूर्ण बनावे। उस चूर्ण का एक सरसों के बराबर नासिका लगाने से (नस्य देने) से सभी प्रकार की शिरोव्यथा को दूर करता है। यह अनुभव किया हुआ योग अनुभवियों से प्रशंसित है। (भाव० शिरोरोग चि०)।

(१) अपस्मार में मुलेठी का प्रयोग- कुष्माण्डक फल के रस के साथ मुलेठी को पीसकर अपस्मार के नाश के लिए तीन दिन तक पान करे। (वंगसेन, अपस्मार चि०)। **(२) पित्तज कर्ण रोग में मुलेठी का प्रयोग**- मुनक्का तथा मुलेठी के साथ पकाया हुआ दूध कान में डालने के लिए प्रशस्त है। (वंगसेन, कर्णरोग चि०)। **(३) तिमिर रोग में मुलेठी का प्रयोग**- मुलेठी तथा आँवला के साथ क्वथित जल से स्नान करना पित्तज तिमिर रोग का नाश करता है। (वंगसेन, नेत्ररोग चि०)। **(४) उपपक्ष्म नामक नेत्र रोग में मुलेठी का प्रयोग**- मुलेठी के क्वाथ तथा कल्क के साथ विधिवत् सिद्ध घृत सेक करने से उपपक्ष्म नामक नेत्ररोग में वेदना को शीघ्र ही दूर करता है। (बंगसेन, नेत्ररोग चि०)।

Constituents. - The glucoside—glycyrrhizin 6 p.c. glycyramarin sugar, starch, resin, gum, mucilage and asparagin. **Actions and uses**—Demulcent expectorant and a mild laxative, also local stimulant. When chewed or sucked it increases the flow of saliva and mucous, hence acts as a throat emollient. It stimulates the mucous membrane, especially of the air passages where its action is more local than general. It is given in inflammatory affections, catarrh, cough, hoarseness of voice, asthma and in irritation of the larynx and of the urinary passages. (R.N. Khory, Part II., p. 214).

मधूकद्वयम्

Longifolia & Latifolia

जलमधूकः–*Bassia Longifolia.* **मधूकः**–*B. Latifolia, Indian Buttertree.*

अन्वर्थसंज्ञा–मधूकस्य–प्रभवबोधिका– "वानप्रस्थः" ("वनप्रस्थे वनैकदेशे भवः")। परिचयज्ञापिका–"गुडपुष्पः" ("गुड इव पुष्पमस्य"), "मधु ष्ठीलः" ("मधुष्ठीले गर्भेऽस्य"), "लोध्रपुष्पः"। 'जलमधूकस्य'–"दीर्घपत्रकः", "ह्रस्वपुष्पः", "मधुपुष्पः", "फलस्वादुः", "कीरेष्टः"। मधूकं मधुरं शीतं पित्त-दाहश्रमापहम्। वातलं नतु दोषघ्नं वीर्यपुष्टिविवर्द्धनम्॥ वृंहणीयमहृद्यञ्च मधूक'कुसुमं' गुरु। वातपित्तोपशमनं 'फलं' तस्योपदिश्यते॥ धन्वन्तरीयनिघण्टू राजनिघण्टुश्च॥ मधूक'पुष्प' मधुरं शीतलं गुरु वृंहणम्। बलशुक्रकरं प्रोक्तं वातपित्तविनाशनम्॥ 'फलं' शीतं गुरु स्वादु शुक्रलं वातपित्तनुत्। अहृद्यं हन्ति तृष्णास्त्रदाहश्वासक्षतक्षयान्॥ भावप्रकाशः॥ ज्ञेयो

जलमधुकस्तु मधुरो व्रणनाशनः। वृष्यो वान्तिहरः शीतो बलकारी रसायनः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ मधूक'पुष्पं' मधुरं च वृष्यं हृद्यं हिमं पित्तविदाहहारि। 'फलञ्च' वातामयपित्तहारि ज्ञेयं मधूकद्वय-मेवमेतत्॥" राजनिघण्टुः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) 'रक्तपित्ते' मधूकत्वक्क्षारः–"तथा मधूकस्य तथासनस्य क्षाराः प्रयोज्या विधिनैव तेन।" (चि. ४ अ.)। (२) 'ग्रहण्यां' मधूकपुष्पम्–"मधूकपुष्पस्वरसं शृतमर्द्धक्षयीकृतम्। क्षौद्रपादयुतं शीतं पूर्ववत् (कुम्भे मासस्थितं जातमासवम्) सन्निधापयेत्॥ तं पिबन् ग्रहणीदोषान् जयेत् सर्वान् हिताशिनः।" चि. १९ अ.)। चरकः॥ 'हिक्कासु' मधूकपुष्पम्–"मधुकं मधुसंयुक्तं...। ...हिक्काघ्नं नावनं...॥" (हिक्का-चि.)। भावप्रकाशः॥

जलमधूकः (Bassia Longifolia)

मधूकः (B.Latifolia, Indian Butter tree)

विविध भाषाओं में नाम-

सं०- मधूकः, गुडपुष्पः, मधुपुष्पः, मधुस्राव:। हि०- महुआ, महुया। बं०- मौल, मोंया। म०- मोहाचा वृक्ष, मोह वृक्ष। गु०- महुड़ो। क०- इप्पेमारादि, दिप्पेमरा। ते०- इपा, पिन्ना। ता०- कटुइव्लुपि। म०- महुवो। द्रा०- इलुप्य। फा०- चकां सफजेल। अं०- इलूपा ट्री (Elloopa tree)। ले०- बेसिया लेटिफोलिया (Bassia Liatifolia)।

अन्वर्थ ज्ञापिका सं०- मधूक- प्रभव बोधिका- वानप्रस्थः (वनप्रस्थ में- वन के एक देश में उत्पन्न)। परिचय ज्ञापिका सं०- गुडपुष्पः (गुड़ के समान जिसका पुष्प है), मधुष्ठीलः (मधु ष्ठील- गर्भ में जिसका है), लोध्रपुष्पः। जलमधूक - दीर्घपत्रकः, ह्रस्वपुष्पः, मधुपुष्पः, फलस्वादुः कीरेषुः।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु तथा राजनिघण्टु के अनुसार- मधूक (महुआ) मधुर तथा शीतल है और पित्तविकार, दाह तथा श्रम का नाश करता है। यह वातकारक है किन्तु दोष नाशक नहीं है और यह वीर्य एवं पुष्टि को बढ़ानेवाला है। मधूक पुष्प वृंहण है, अहृद्य है तथा गुरु है। मधूक फल को वात-पित्त शामक कहा गया है।

भावप्रकाश के अनुसार- महुआ का फूल मधुर है, शीतल है, गुरु है, वृंहण है। इसे बलकारक, शुक्रकारक तथा वात एवं पित्त विनाशक कहा गया है। महुआ का फल शीतल है, गुरु है, स्वादिष्ट है तथा शुक्रकारक है तथा वात-पित्त को दूर करता है, अहृद्य है तथा यह प्यास, दाह, रक्त विकार, श्वास, क्षय रोग तथा क्षत रोग का नाश करता है।

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- जलमधूक मधुर है तथा व्रणनाशक है, वीर्यवर्द्धक है, वमन हर है, शीतल है, बलकारक है तथा रसायन है।

राजनिघण्टु के अनुसार- मधूक पुष्प मधुर तथा वृष्य है, हृद्य है, शीतल है, पित्त विदाह को दूर करता है। महुआ का फल वात रोग तथा पित्त रोग को दूर करता है। इसी प्रकार दोनों प्रकार के गुण हैं।

वैद्यक शास्त्र में मधूक का प्रयोग-

(१) रक्त पित्त में मधूक छाल के क्षार का प्रयोग- मधूक तथा असन वृक्षका क्षार क्षारविधि के अनुसार रक्तपित्त में प्रयोग करे। (च०चि०अ०४)। **(२) ग्रहणी में मधूक पुष्प का प्रयोग-** मधूक के स्वरस को आधा

जलने तक पकाकर चौथाई मधु मिलाकर घड़े में एक साल रखने के बाद आसव तैयार करे। इस आसव को पीने से सभी प्रकार के ग्रहणी रोग नष्ट होते हैं। इसके साथ हितकर भोजन करे। (च०चि०अ०१९)।

हिक्का में मधूक पुष्प का प्रयोग- महुआ का चूर्ण मधु मिलाकर नस्य लेने से हिक्का का नाश करता है। (भावप्रकाश, हिक्का चि०)।

Constituents—Flowers contain cane sugar, cellulose, albuminous substance and ash. The seeds contain oil, fat, tannin, extractive matter, bitter principle, probably saponin, albumin, gum, starch and ash. The ash contains silicic acid, phosphoric acid, lime and iron, potash and traces of soda. The juice contains caoutchoue from which gutta-perdra can be manufactured, tannin, starch, calcium oxalate, gum, resins, formic and acetic acids and ash. The oil is yellowish, but becomes colourless after exposure to the light. It has a faint agreeable odour. The oil is used in the preparation of country soap. (R.N. Khory—Part II, p. 428). **Actions and uses**—The fresh juice is alterative and given in scrofula and rheumatic affections. The fermented juice of sugary flowers is stimulant and appetizing and may be substituted for rum. The fruit serves as food to man and is cooling and refrigerant. The flowers are nutritive, tonic and demulcent and also intoxicating and form a vehicle in many cooling and demulcent mixtures. By distillation they yield an alcoholic spirit. They are largely used in India in diarrhoea they yield an alcoholic spirit. They are largely used in Indian in diarrhoea and dysentery and as food. An infusion of the flowers is given with sugar, for the relief of thirst, burning of the body and giddiness. They are also used in coughs. The contrete oil is used as an application to the head in headache, to wounds and as a lubricant in rheumatism and contraction of the limbs, in cutaneous affection, and also as an ointment base like kakam butter. (R. N. Khory—Part II, p. 428).

मरिचम्

Piper Nigrum

मरि(री)चम्, ऊषणम्–*Piper Nigrum.*

अन्वर्थसंज्ञाः–प्रभवबोधिका–"धर्मपत्तनम्"। ("धर्मपत्तने जातम्"); परिचयज्ञापिका– "श्यामम्," "वल्लीजम्", "वृत्तफलम्"। गुणप्रकाशिका–"मरिचम्" (म्रियते विषमनेन"), "ऊषणम्" ("ऊष् दाहे"), "कटुकम्", "कफविरोधि"॥ मरिचं कटुतिक्तोष्णं पित्तकृत् श्लेष्मनाशनम्। वायुं निवारयत्येव जन्तुसन्ताननाशनम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ मरिचं कटुतिक्तोष्णं लघु श्लेष्मविनाशनम्। समीर-कृमिहृद्रोगहरञ्च रुचिकारकम्॥ राजनिघण्टुः॥ मरिचं कटुकं तीक्ष्णं दीपनं कफवातजित्। उष्णं पित्तकरं रूक्षं श्वासशूलकृमीन् हरेत्॥ 'तदार्द्रं' मधुरं पाके नात्युष्णं कटुकं गुरु। किञ्चित्तीक्ष्णगुणं श्लेष्मप्रसेकि स्यादपित्तलम्॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः– 'कासे' मरिचम्–"लिह्यान्मरिचचूर्णं वा सघृतक्षौद्र-शर्करम्। सर्वकासहरं श्रेष्ठं लेहं कासार्दितो नरः॥" (चि. २२ अ.)। चरकः॥ 'अपतानके' मरिचम्–"अभुक्तवता पीतमम्लं दधि मरिचवचायुतमपतानकं हन्ति" (चि. ५ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) 'प्रवाहिकायां' मरिचम्–"...पिबतः सूक्ष्मं रजो मरिचजन्म वा। चिरकालानुसक्तापि नश्यत्याशु प्रवाहिका॥" (चि. ९ अ.)। (२) 'रात्रान्ध्ये'

मरिचम्–"दध्ना विद्यृष्टं मरिचं रात्र्यान्ध्याञ्जनमुत्तमम्।" (उ. १३ अ.)। वाग्भटः॥ 'रसवृद्ध्यर्थं' मरिचम्–"मरिचैः क्वथितं दुग्धं पाने रात्रौ प्रशस्यते। रसानां तेन वृद्धिः स्यात्..."॥ (चि. १० अ.)। हारीतः॥ (१) भुक्तस्य 'सर्पिषः पाकार्थं' मरिचम्–"...सर्पिर्जम्बीरकाद्यम्लात्। मरिचादपि तच्छीघ्रं पाकं यात्येव...॥" (अग्निमान्द्य-चि.)। (२) 'अतिनिद्राप्रशमनार्थं' मरिचम्–"क्षौद्राश्वलालासङ्घृष्टै-र्मरिचैर्नेत्रमञ्जनात्। अतिनिद्राशमं याति तमः सूर्योदयादिव॥" (नेत्ररोग-चि.)। (३) सर्वेषु 'पीनसरोगेषु' मरिचम्–"सर्वेषु सर्वकालं पीनसरोगेषु जातमात्रेषु। मरिचं गुडेन दध्ना भुञ्जतो नरः सुखं लभते॥" (नासारोग-चि.)। भावप्रकाशः॥ (१) 'निद्रालाभार्थं' मरिचम्–"मरिचं लालया घृष्टं कस्तुर्याञ्जन मिष्यते। त्रिरात्रादपि सन्नष्टां निद्रामाप्नोति मानवः॥" (ज्वर-चि.)। (२) 'शिशोः शोथे' मरिचम्–"मरिचं नवनीताढ्यं शोथघ्नं भक्षयेच्छिशुः।" (बालरोग-चि.)। वङ्गसेनः।

मरिचम्, ऊषणम् - Piper Nigrum.

विविध भाषाओं में नाम-

सं०- मरिचम्, वेल्लजम्, कृष्णम्, ऊषणम्। हिं०- कालीमिरिच, गोलमीरिच, दक्षिणमरिच या काली मिर्च। बं०- मुरिच मीरिच, गोल मिरच। म०- मिरेमिरि, कालीमिर्च। गु०- मरि, मरि तीखा। क०- मेणसु, मोवुलु कोठि। ते०- मरिया मिरियन, मरियलु। ता०- मिलग्र। फा०- पिल पिले अस्वद। अ०- फिलफिले अवीद। अं०- ब्लैक पीपर (Black Pepar)। ले०- पाइपर नाईग्रुम (Piper Nigrum)।

अन्वर्थ संज्ञा- प्रभवबोधिका सं०- धर्मपत्तनम् (धर्मपत्तन में उत्पन्न)। **परिचय ज्ञापिका सं०-** श्यामम्, वल्लीजम्, वृत्तफलम्। गुणप्रकाशिका सं०- मरिचम् (विष जिस से मर जाय), ऊषणम् (ऊष दाह), कटुकम्, कफविरोधि।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- मरिच कटुरस, तिक्तरस तथा उष्ण है और यह पित्त कारक है तथा कफ नाशक है। यह वायु को दूर करता है, क्रिमि रोग (क्रिमि समूह) का नाश करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- मरिच कटुरस, तिक्तरस तथा उष्ण है और लघु है तथा कफ नाशक है। यह वात रोग, क्रिमी रोग तथा हृदय रोग को दूर करता है और रुचिकारक है।

भावप्रकाश के अनुसार- मरिच कटुरस है, तीक्ष्ण है, दीपक है तथा कफ-वात नाशक है, उष्ण है, पितकारक है, रुचिकारक है तथा श्वासरोग, शूल रोग एवं क्रिमिरोग को दूर करता है। आर्द्र मरिचि पाक में मधुर है, अधिक उष्ण नहीं है, कटुरस तथा गुरु है, थोड़ा तीक्ष्ण गुणवाला है। कफ को सुखानेवाला है तथा पित्त कारक नहीं है।

वैद्यक शास्त्र में मरिच का प्रयोग-

कास में मरिच का प्रयोग- मरिच के चूर्ण को घृत-मधु तथा शक्कर मिलाकर कास पीड़ित व्यक्ति चाटे। यह सभी कासहर ओषधियों में श्रेष्ठ है। (च०चि०अ०२२)।

अपतानक रोग में मरिच का प्रयोग- भोजन के पहले अम्ल दही में मरिच तथा वच का चूर्ण मिलाकर पान करने से अपतानक रोग का नाश होता है। (सु०चि०अ०५)।

(१) प्रवाहिका में मरिच का प्रयोग- मरिच का महीन चूर्ण पान करने से चिरकाल से उत्पन्न प्रवाहिका शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। (वाग्भट, चि० अ० ९)। **(२) रात्र्यान्ध में मरिच का प्रयोग-** दही के साथ मरिच को घिसकर रात्र्यान्ध में अंजन करना उत्तम है। (वाग्भट, चि०अ०१३)।

रस वृद्ध्यर्थ मरिच का प्रयोग- मरिच के साथ उबाला हुआ दूध रात्रि में पान करना प्रशस्त है। यह रस की वृद्धि करता है। (हारीत, चि० अ० १०)।

(१) भुक्त घृत के पाक के लिए मरिच का प्रयोग- घृतजन्य अजीर्ण के पाक के लिए जम्बीर आदि अम्ल खाने से पाक होता है। मरिच के सेवन से भी घृताजीर्णक पाक होता है। (भाव प्र० अग्निमान्द्य चि०)। **(२) अधिक निद्रा की शान्ति के लिए मरिच का प्रयोग-** मधु तथा घोड़ी के लार के साथ मरिच के चूर्ण का अञ्जन करने से अधिक निद्रा का प्रशमन होता है जैसे सूर्योदय से अन्धकार का नाश होता है। (भाव प्रकाश, नेत्ररोग चि०)। **(३) सभी पीनस रोग में मरिच का प्रयोग-** सभी प्रकार के पीनस रोग के उत्पन्न होने मात्र पर मरिच के चूर्ण को गुड़ तथा दही के साथ खाने से मनुष्य सुख प्राप्त करता है। (भाव प्रकाश, नेत्र रोग चि०)।

(१) निद्रा लाभ के लिए मरिच का प्रयोग- लार के साथ मरिच को घिसकर अंजन करना कस्तुर्याञ्जन कहते हैं। इसके अंजन करने से तीन रात्रि की भी नष्ट निद्रा मनुष्य प्राप्त करता है। (वंगसेन, ज्वर चि०)। **(२) शिशु के शोथ में मरिच का प्रयोग-** बालक मरिच के चूर्ण को मक्खन में मिलाकर खाय। यह बालकों के शोथ को शान्त करता है। (वंगसेन, बालरोग चि०)।

Constituents—A volatile alkaloid piperina 2 to 8 p.c., piperidin 5 p.c., piperidin 5 p.c., a balsamic volatile oil 1 to 2 p.c., fat 7 p.c., mesocarp contains chavicin, a green acrid concrete oil, a balsamic volatile oil, starch, lignin gum, fat 1 p.c., proteids 7 p.c., and ash containing inorganic matter 5 p.c. **Actions and uses—**It is a local irritant, causing intense burning on the skin. In medicinal doses it stimulates the heart, the kidneys, and the mucous membrane of the urinary and intestinal tracts. It is eliminated in the urine and faeces. In large doses it causes abdominal pain, vomitting, irritation of the bladder and urithra and urticaria on the skin. As a gastric stimulant it is chiefly used in fiatulence, dyspepsia and atony of the stomach; like cubebs it is given in gonorrhoea, gleet and haemorrhoids and other rectal disorders. Piperin acts as an antiperiodic and antipyretic. It relieves intermittent fevers, by causing perspiration; in neurosis and in congestion of the spleen it is of benefit. In toothache a paste of it is applied with benefit. The infusion is used as a gargle in relaxed uvula, sore-throat &c. with vinegar the powder is applied over the bites of venomous reptiles. Mixed with onious and salt it is rubbed over bald head in alopecia. The oil is applied to muscular theumatic pains, headache and to pain of haemorrhoids. (R.N. Khory—Part II, p. 521).

माणकः

Colocasia Indica

स्थलपद्मः, माणकः, महापत्रः—*Colocasia Indica, Schott. Arum. Indicum, Roxb.*

पूर्वाचार्यकृतवर्णनम्–"माणकः महापत्रः यथापूर्वमधःपत्रत्यागी" (सू. टीः डल्वणः)।

स्थूलशूरणमाणकप्रभृतयः कन्दा ईषत्कषायाः कटुका रूक्षा कपफवातलाः पित्तहराश्च। माणकं स्वादु शीतञ्च गुरु चापि प्रकीर्त्तितम्॥ (सू. ४६ अ.)। सुश्रुतः माणकः शोथहृच्छीतः पित्तरक्तहरो लघुः। भावप्रकाशः॥ माणकं स्वादु शीतञ्च गुरु शोथहरं कटु। राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) उदररोगे माणकः- "पुराणं माणकं पिष्ट्वा द्विगुणीकृत तण्डुलम्। साधितं क्षीरतोयाभ्यामभ्यसेत् पायसन्तु तत्॥ हन्ति वातोदरं शोथं ग्रहणीं पाण्डुतामपि। सिद्धो भिषग्भिराख्यातः प्रयोगोऽयं निरत्ययः॥" (उदर-चि.)। (२) प्लीहोदरे शोथे च माणककल्कः– "स्थलपद्ममयं कल्कं पयसाऽऽलोड्य पाययेत्। प्लीहामयहरञ्चैव सर्वाङ्गैकाङ्गशोथजित्॥" (शोथ-चि.)। (३) शोथे माणकघृतम्– "माणकक्वाथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत्। एकजं द्वन्द्वजं शोथं त्रिदोषञ्च व्यपोहति॥" (शोथ-चि.)। (४) जिह्वारोगे माणकभस्म–"जिह्वाजाड्यं चिरजं माणकभस्मलवणतैलघर्षणं हन्ति।" (जिह्वारोग-चि.)। चक्रदत्तः॥

स्थलपद्मः, माणकः, महापत्रः – (Schott Arum. Indicum, Roxl).

विविध भाषाओं में नाम–

सं०– स्थलपद्मः, माणकः, महापत्रः। हि०– मानकन्द। ब०– मान। मा०– मानपात। गु०– मानकन्द।

गुण एवं दोष–

माणक का पूर्वाचार्यकृत वर्णन– माणक महापत्रवाला यथापूर्व नीचे के पत्रों का त्याग करनेवाला (सू० टी० डल्वणः)। स्थूल शूरण माणक आदि कन्द थोड़ा कषाय रस, कटु रस तथा रूक्ष, विष्टम्भि कारक, गुरु, कफ-वात कारक तथा पित्तनाशक है। माणक स्वादिष्ट, शीतल तथा गुरु कहा गया है। (सू० अ० ४६)।

भावप्रकाश के अनुसार– माणक (मानकन्द) शोथहर, शीतल तथा रक्त पित्त को दूर करनेवाला है एवं लघु है।

राजवल्वभ के अनुसार– माणक (मानकन्द) स्वादिष्ट, शीतल तथा गुरु है और शोथहर एवं गुरु है।

वैद्यक शास्त्र में माणक (मानकन्द) का प्रयोग–

(१) उदर रोग में माणक का प्रयोग– पुराना मानकन्द तथा दुगुना चावल पीसकर जल तथा दूध के साथ पकाकर पायस तैयार करें। यह पायस सेवन करने से वातोदर रोग, शोथ, ग्रहणी तथा पाण्डु रोग का नाश करता है। यह चिकित्सकों का कहा हुआ निरापद सिद्ध योग है। (चक्र० उदर रोग चि०)। **(२) प्लीहोदर एवं शोथ में माणक कल्क का प्रयोग**– स्थलपद्म मानकन्द का कल्क दूध के साथ मिलाकर पान कराये। यह प्लीहा रोग का नाश करता है और सर्वाङ्गशोथ तथा एकाङ्गशोथ को दूर करता है। (चक्र० शोथ चि०)। (३) **शोथ में माणकघृत का प्रयोग**– माणक (मानकन्द) के क्वाथ तथा कल्क के साथ विधिवत् घृत एक प्रस्थ (१ किलो) सिद्ध करे। यह एक दोषज शोथ, द्विदोषज शोथ तथा त्रिदोषज शोथ को दूर करता है। (चक्र० शोथ चि०)। **(४) जिह्वा रोग में माणक (मानकन्द) भस्म का प्रयोग**– मानकन्द का भस्म सेन्धा नमक तथा सरसो तैल का घर्षण पुराने जिह्वा के अकड़न का नाश करता है। (चक्र० जिह्वारोग चि०)।

Constituents—Contains a circular crystals of oxalate of lime to which its acridity is due, **Actions and uses**—The juice of the petioles is styptic and astringent as is dropped into the ears

of children in otorrhoea. Tubers made hot are locally applied to painful parts in rheumatism. In anasarca, canjee made of the root stock is given with benefit. It is a mild laxative and diuretic and is given in piles and habitual constipation. The ash is used as local application for aphthae in the mouth. (R. N. Khory, Part II, p. 638). Its root-stock is a valuable and important article of diet in Bengal, and often grows to an immense size, being from 6 to 8 feet in length, and as thick as a man's leg. When dried it can be kept for a considerable time and affords a large supply of starchy food. In Western India it is much cultivated as an ornamental plant in gardens, but is little known as an article of diet. The acrid juice of the petioles is however, much used as a common domestic remedy on account of its styptic and astringent properties. The petiole is slightly roasted and the juice expressed. We have seen purulent discharge from the ears in children stopped by a single application. The tubers chopped fine, tied in a cloth and heated are used as a fomentation in rheumatism. Dr. D. Basu remarks; "I have never used it solely as a medicine; but as food taken frequently, it seems to act as a mild laxative and diuretic. In piles and habitual constipation it is useful." Surgeon-Major R. S. Dutt states that it is a very agreeable vegetable during convalescence of natives from bowel complaints; it is light and nutritious and somewhat mucilaginous. The ash of the root-stocks mixed with honey is a popular remedy for aphthae. (Dymock, Part III, pp. 544-45).

माधवी-मालती-मल्लिकाः

Gaertnera Racemosa Roxb., Echites Caryophy Uata Roxb. & Jasminum Sambac.

माधवीलता, वासन्ती–*Gaertnera Racemosa Roxb.* **मालतीलता, अतिमुक्तकः**–*Echites Caryophyllata Roxb.* **मल्लिका**–*Jasminum Sambac, Ait. and its Varieties,* **वृत्तमल्लिका**–*Tuscan Jasmine.*

अन्वर्थसंज्ञाः–माधव्याः–"सुगन्धा", "भ्रमरोत्सवा", "भूमिमण्डपभूषणी"। मल्लिकायाः–"शीतभीरु", "नारीष्टा", "गिरिजा"। वृत्तमल्लिकायाः–"वटपत्रा", "सुगन्धाढ्या", "वृत्तपुष्पा", "मुक्ताभा"। मालत्याः–"हृद्यगन्धा", "जनेष्टा", "सन्ध्यापुष्पा", "तैलभाविनी"। 'माधवी' कटुका तिक्ता कषाया मदगन्धिका। पित्तकासव्रणान् हन्ति दाहशोफविनाशनी॥ 'मालती' शीततिक्ता स्यात् कफघ्नी मुखपाकनुत्। 'कुड्मलं' नेत्ररोगघ्नं व्रणविस्फोटकुष्ठनुत्॥ 'मल्लिका' कटुतिक्ता स्यात् चक्षुष्या मुखपाकनुत्। कुष्ठविस्फोटकण्डूतिविषव्रणहरा परा॥ नेत्ररोगापहन्त्री स्यात् कटूष्णा 'वृत्तमल्लिका'। व्रणघ्नी गन्धबहुला दारयत्यास्यजान् गदान्॥ 'वासन्ती' शिशिरा हृद्या सुरभिः श्रमहारिणी। धम्मिल्लामोदिनी मन्दमदनोन्माददायिनी॥ राजनिघण्टुः॥ मालती कफपित्तास्य-रुक्पाकव्रण-कुष्ठजित्। चक्षुष्यो 'मुकुल'स्तस्याः तत् 'पुष्पं' कफवातजित्। सुगन्धि च मनोज्ञश्च सर्वश्रेष्ठतमं मतम्॥ 'मल्लिकोष्णा' कटुः स्वादे दारयत्यास्यजान् गदान्। सन्त्रामयति नेत्रोत्थरुजः पित्तसमीरजित्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ माधवी मधुरा शीता लघ्वी दोषत्रयापहा। 'मल्लिकोष्णा' लघुर्वृष्या तिक्ता च कटुका हरेत्। वातपित्तास्यदृग्व्याधिकुष्ठारुचिविषव्रणान्॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः–(१) कुष्ठेषु मालतीपुष्पम्–"...कल्कश्च मालतीनां कुष्ठेषूद्वर्त्तनालेपः" (चि.

७ अ.)। (२) गर्भिण्याः स्तनकण्डूयने मालतीपुष्पम्–"परिषेकः पुनर्मालतीमधुकसिद्धेनाऽम्भसा जातकण्डूया" (शारी. ८ अ.)। चरकः॥ रक्तपित्तिणः शाकार्थमतिमुक्ताङ्कुरः–"वटातिमुक्ताङ्कुरसिन्धुवारज॥ हितञ्च शाकं घृतसंस्कृतं सदा।" (उ. ४५ अ.)। सुश्रुतः॥ रक्तपित्ते मदयन्तिकामूलम्–"मदयन्त्यङ्घ्रिजः क्वाथस्तद्वत् समधुशर्करः।" (रक्तपित्त-चि.)। (२) पूतिकर्णे मालतीदलस्वरसः–"मालतीदलरसं मधुना पूरितमथवा गवां मूत्रैः। दूरेण परित्यज्यते च श्रवणयुगलं पूतिरोगेण॥" (कर्णरोग-चि.)। (३) मध्यं सुतनूकरणे माधवीमूलम्–"सुतनू करोति मध्यं पीतं मथितेन माधवीमूलम्" (स्त्रीरोग-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) यक्ष्मणि मदयन्तिका–"समूल- पत्रच्छदपल्लवाया रसः प्रयोज्यो मदयन्तिकायाः। मासोपयोगेन समस्तलिङ्गं यक्ष्माणमुग्रं हरति प्रसह्य॥" (राजयक्ष्म-चि.)। (२) प्रसूतवनितावर्द्धितकुक्षिह्रासाय मालतीमूलम्–"सूतायाः कुम्भमुदरं पीतं तक्रेण मालतीमूलम्।" (स्त्रीरोग-चि.)। वङ्गसेनः॥

माधवीलता (Gaertnerb Racemosa Roxb.) वासन्ती मालतीलता, अतिमुक्तक (Echites Caryophyllate Roxb.) मल्लिकाः (Jasminum Sambac Ait. and its varieties.) वृत्तमल्लिका (Tuscan Jasmine)।

विविध भाषाओं में नाम-

सं॰- माधवी, वासन्ती। हि॰- माधवी, वसन्ती। बं॰- माधवीलता, माधवी फुलेर गाछ। म॰- पीतवेल, मधुमाधवी, हलदवेल। गु॰- मधुमाधवी, रक्तपित्ति। क॰- इन्द्रगोप, विरवन्तिगे। ते॰- माधवतोगे। पुष्वुलगुरुविन्द। अं॰- क्लुस्टर्ड हिप्टेज (Clustered Histege); ले॰- हिप्टेज मेडे ब्लोटा (Heptage moda glota)।

मल्लिका– सं॰- मल्लिका, मदयन्तिका, भूपदा। हि॰- मल्लिका, मोतिया भेद, घुघुर मोति, बेल मोगरा। बं॰- मल्लिका फूल। म॰- वेलमोगरा। क॰- बल्लिमल्लिगे। ते॰- मल्ले चेट्टु।

अन्वर्थ ज्ञापिका सं॰- माधवी- सुगन्धम् , भ्रमरोत्सवा, भूमिमण्डपभूषणी। मल्लिका- शीतभीरु, नारीष्टा, गिरिजा। वृत्तमल्लिका- वटपत्रा, सुगन्धाढ्या, वृत्तपुष्पा, मुक्ताभा। मालती- हृद्यगन्धा, जनेष्टा, सन्ध्यापुष्पा, तैल-भाविनी।

गुण एवं दोष-

राजनिघण्टु के अनुसार- माधवी कटुरस, तिक्तरस, कषाय रस तथा मदकारक गन्धवाली है। यह पित्त विकार तथा कास रोग तथा व्रण का नाश करती है और दाह एवं शोथ को दूर करती है। मालती शीतल तथा तिक्त रस है और कफ नाशक है तथा मुखपाक को दूर करनेवाली है। मालती की कली नेत्र रोग नाशक है तथा व्रणविस्फोट एवं मुखपाक को दूर करनेवाली है। यह कुष्ठ रोग, विस्फोट, कण्डू, विबन्ध तथा व्रण को अच्छी तरह दूर करती है। मल्लिका कटु तथा तिक्तरस है, नेत्र के लिये हितकर है तथा मुखपाक व‍ो शान्त करती है। यह कुष्ठ रोग, विस्फोट, कण्डू विष विकार तथा ब्रण को अच्छी तरह दूर करती है। यह नेत्र रोग का नाश करती है तथा कटु एवं उष्म है। वृत्त मल्लिका व्रण नाशक है अधिक गन्धवाली है तथा मुखगत रोगों का नाश करती है। वासन्ती शीतल है, हृद्य है, सुगन्धित है तथा श्रम को दूर करनेवाली है। धम्मिल्ला सुगन्धित है, थोड़ा मदन को उन्मत्त करनेवाली है।

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- मालती कफ विकार, पित्त विकार, मुखरोग, मुख पाक, व्रण तथा कुष्ठरोग को दूर करती है। यह नेत्र के लिए हितकर है। इसकी कली तथा इसका पुष्प वात विकार एवं कफ विकार

को दूर करता है। यह सुगन्धित है, मन को प्रसन्न करनेवाली है और सबसे श्रेष्ठ है। मल्लिका उष्ण है, स्वाद में कटु है और मुखरोगों का नाश करती है। नेत्र के रोग को दूर भगाती है तथा पित्त--वात विकार को दूर करती है। मल्लिका उष्ण है, लघु है, वीर्य वर्द्धक है, तिक्तरस तथा कटुरस है और यह वातरोग, पित्तरोग, मुख रोग, नेत्ररोग, कुष्ठरोग, अरुचि, विषविकार तथा व्रण को दूर करती है।

वैद्यक शास्त्र में माधवी, मालती तथा मल्लिका का प्रयोग-

(१) कुष्ठरोग में मालती पुष्प का प्रयोग- मालती पुष्प का कल्क कुष्ठ रोग में उवटन तथा लेप के लिए प्रयोग करे। (च०चि०अ० ७)। (२) **गर्भिणी के स्तन कण्डू में मालती पुष्प का प्रयोग-** मालती तथा मुलेठी के साथ सिद्ध जल से कण्डू उत्पन्न होने पर स्तन का परिलेप करे। (च०शारि०अ० ८)।

रक्तपित्त के रोगी के शाक के लिए अतिमुक्ताकाङ्कुर का प्रयोग- वट, अतिमुक्तक (मालती) का अंकुर तथा सिन्धुवार का शाक घृत में पकाकर रक्तपित्त के रोगी को देना हितकर है। (सु०उ०अ०४५)।

(१) रक्त-पित्त में मदयन्तिका मूल का प्रयोग- मदयन्तिका के कली के क्वाथ में मधु तथा शक्कर मिलाकर रक्त-पित्त रोग में प्रयोग करे। (चक्र० रक्तपित्त-चि०)। (२) **पूति कर्ण में मालती पत्र के स्वरस का प्रयोग-** मालती के पत्ते का स्वरस मधु के साथ मिलाकर अथवा गाय के मूत्र के साथ मिलाकर कान में छोड़ने से दोनों कानों को पूतिरोग दूर से ही छोड़ देता है। (चक्र०कर्णरोग चि०)। (३) **मध्यभाग को तनु करने के लिए माधवी मूल का प्रयोग-** माधवी मूल मजिठ के साथ पान करने से स्त्री के मध्यभाग को पतला बनाता है। (चक्र०स्त्रीरोग चि०)।

(१) यक्ष्मा रोग में मदयन्तिका का प्रयोग- मदयन्तिका के मूल, पत्र तथा पल्लव (पञ्चांग) का रस राजयक्ष्मा रोग में करे। यह रस एक माह प्रयोग करने से यक्ष्मा के सभी भंयकर लक्षण का बलपूर्वक नाश करता है। (वंगसेन- राजयक्ष्मा चि०)। (२) **प्रसुता स्त्री के बढ़े हुए पेट को कम करने के लिए मालती मूल का प्रयोग-** मालती के मूल का चूर्ण तक्र (मट्ठा) के साथ पान करने से प्रसूता का कुम्भ समान बढ़ा हुआ पेट दब जाता है। (वंगसेन, स्त्रीरोग चि०)।

माषपर्णी-मुद्गपर्ण्यौ

Teramnus Labialis, Spreng Glycine debelis, Roxb. & Phased us Trilobus, Ait.

माषपर्णी–*Teramnus Labialis, Spreng Glycine debelis, Roxb.* **मुद्गपर्णी–***Phaseolus Trilobus, Ait.*

अन्वर्थसंज्ञाः–माषपर्ण्याः–"सुलभा", "आत्मोद्भवा", "पाण्डुलोमशा", "माषपत्रिका", "बहुफला", "कृष्णवृन्ता", "अश्वपुच्छिका"। मुद्गपर्ण्याः–"शिम्बी", "मार्जारगन्धिका", "वनजा", "वनमुद्गा", "शूर्पपर्णी"। 'माषपर्णी' रसे तिक्ता शीतला रक्तपित्तजित्। कफपित्तशुक्रकरी हन्ति दाहज्वरानिलान्॥ 'मुद्गपर्णी' हिमा स्वादुर्वातरक्तविनाशनी। पित्तदाहज्वरान् हन्ति कृमिघ्नी कफ-शुक्रनुत्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ 'माषपर्णी' रसे तिक्ता वृष्या दाहज्वरापहा। शुक्रवृद्धिकरी बल्या शीतला पुष्टिवर्द्धिनी॥ 'मुद्गपर्णी' हिमा कासवातरक्तक्षयापहा। पित्तदाहज्वरान् हन्ति चक्षुष्या शुक्रवृद्धिकृत्॥ राजनिघण्टुः॥ 'माषपर्णी' हिमा तिक्ता रूक्षा शुक्रवलासकृत्। मधुरा ग्राहिणी शोथवातपित्तज्वरास्त्रजित्॥

'मुद्गपर्णी' हिमा रूक्षा तिक्ता स्वादुश्च शुक्रला। चक्षुष्या क्षतशोथघ्नी ग्राहिणी ज्वरदाहनुत्॥ दोषत्रयहरी लघ्वी ग्रहण्यर्शोऽतिसारजित्। वातरक्तं क्षयं कासं नाशयत्यविकल्पतः॥ भावप्रकाशः॥ माषपर्णी महावृष्या चक्षुष्या मुद्गपर्णीका। राजवल्लभः॥ माषपर्णी महावृष्या वृंहणी बलवर्णकृत्। स्तन्यकेशहिता स्निग्धा वातपित्तापहा हिमा॥ शोढलनिघण्टुः॥

वैद्यके व्यवहारः—'वाजीकरणार्थं' माषपर्णी—"माषपर्णभृतां धेनुं गृष्टिं पुष्टां चतुःस्तनीम्। समानवर्णवत्साञ्च जीवत्वत्साञ्च बुद्धिमान्॥... इक्ष्वादामर्जुनादां वा सान्द्रक्षीराञ्च धारयेत्॥ केवलन्तु पयस्तस्याः शृतं वाशृतमेव वा। शर्करामधुसर्पिर्भिर्युक्तं तद्वृष्यमुत्तमम्॥" (चि. २ अ.)। चरकः॥ 'कुलिङ्गनाममूषिकविषे' माषपर्णीमुद्गपर्ण्यौ—"सहे ससिन्धुवारे च लिह्यात् तत्र समाक्षिके" (क. ६ अ.)। सुश्रुतः॥ 'वातासृग्दरे माषपर्णी—"माषपर्णी-विपक्वेन तैलेन पिचुधारणम्। कर्त्तव्यं रक्तनाशाय मार्द्दवाय सुखाय च॥" (असृग्दर-चि.)। वङ्गसेनः।

माषपर्णी (Teramnus Labialis, Spreng Glycine debelis Roxb.) मुद्गपर्णी (Phaseolus Trilobus, Ait.)

विविध भाषाओं में नाम-

माषपर्णी– सं॰– माषपर्णी, सूर्यपर्णी, काम्बोजी, कृष्णवृन्ता। हि॰– मखवन माखेनी, वन उड़दी, जंगली उड़द। बं॰– मखानी, वनमाष। म॰– रानउड़दी। गु॰– जंगली उड़द, उड़द दवैल। क॰– रालोडिम्ब। ते॰– कारुमिनसु। ले॰– टेराम्नस लेवियोलिस (Teramnus Labialis)।

मुद्गपर्णी– सं॰– मुद्गपर्णी, काकपर्णी, शूर्पपर्णी, काकमुद्गा। हि॰– मखावन, वनमूंग, जंगली मूंग। रखाल कलमी। बं॰– मुगानी। म॰– रानमुग। गु॰– जंगलीमूंग। क॰– कोहसरु। ते॰– कारुपेसारा। पिल्लपेसर चेट्टु। पिल्लिपेउसरा। द्रा॰– सिरेपयर। ता॰– पानी प्यारे। ले॰– फेसियोलस ट्रिलोबस (Phaseolus Trilobus)।

अन्वर्थज्ञापिका सं॰– माषपर्णी– सुलभा, आत्मोद्भवा, पाण्डुलोमशा; माषपत्रिका, बहुफला, कृष्ण वृन्ता, अश्वपुच्छिका, मुद्गपर्णी, शिम्बी; मार्जारगन्धिका, वनजा, वनमुद्गा, शूर्पपर्णी।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- माषपर्णी रस में तिक्त तथा शीतल है और रक्तपित्त को दूर करती है। यह कफ, पित्त तथा शुक्र को बढ़ाती है तथा दाह, ज्वर एवं वात विकार का नाश करती है। मुद्गपर्णी शीतल है, स्वादिष्ट है तथा वातरक्त का नाश करती है। यह पित्त विकार, दाह तथा ज्वर का नाश करती है, क्रिमिरोग नाशक है, कफ तथा शुक्र का नाश करती है।

राजनिघण्टु के अनुसार- माषपर्णी रस में तिक्त, वीर्य वर्द्धक तथा दाह एवं ज्वर को दूर करनेवाली है। यह शुक्र को बढ़ानेवाली है, बल कारक है, शीतल है तथा पुष्टिवर्द्धक है। मुद्गपर्णी शीतल है तथा कास, वात रक्त एवं क्षय रोग को दूर करती है। यह पित्त विकार, दाह तथा ज्वर का नाश करती है, नेत्र के लिए हितकर है, शुक्र वृद्धिकारक है।

भावप्रकाश के अनुसार- माषपर्णी शीतल, तिक्तरस, रूक्ष शुक्रवर्द्धक तथा वलाद कारक है। यह मधुर है, ग्राहिणी है, शोथ, वात-पित्त ज्वर को जीत लेती है। मुद्गपर्णी शीतल, रूक्ष, तिक्तरस तथा स्वादिष्ट है और

शुक्रवर्द्धक है। यह नेत्र के लिए हितकर है, क्षतजशोथ का नाश करती है, ग्राही है तथा ज्वर एवं दाह को दूर करती है। यह तीनों दोषों को दूर करती है, लघु है और ग्रहणी, अर्श रोग तथा अतिसार को जीत लेती है। यह वातरक्त, क्षयरोग तथा कास का नाश करती है।

राजवल्लभ के अनुसार- माषपर्णी महान् वीर्यवर्द्धक है, नेत्र के लिए हितकर है। मुद्गपर्णी का भी यही गुण है।

शोढल निघण्टु के अनुसार- माषपर्णी बहुत वीर्यवर्द्धक है, मांसवर्द्धक है, बल एवं वर्णकारक है। यह स्तन तथा केश के लिए हितकर है, स्निग्ध है, वात-पित्तनाशक है तथा शीतल है।

वैद्यकशास्त्र में माषपर्णी का प्रयोग-

वाजीकरण में माषपर्णी का प्रयोग- माषपर्णी (उड़द) के पत्तों को खानेवाली, एक वर्ष की व्यायी हुई, पुष्ट, चार स्तनवाली, समान वर्ण की वछडवाली धेनु का अथवा गन्ना तथा अर्जुन को खानेवाली गाय का बुद्धिमान चिकित्सक गाढ़ा दूध धारण करनेवाली गौ का केवल दूध गरम किया हुआ या न गरम किया हुआ, शक्कर, मधु तथा घी मिलाया हुआ दूध उत्तम वृष्य कहा जाता है। (च० चि० अ० २)।

कुलिङ्गनामक मूषिक विष में माषपर्णी तथा मुद्गपर्णी का प्रयोग- कुलिङ्गनामक मूषिक विष में माषपर्णी तथा मुद्गपर्णी का चूर्ण आम के साथ सिन्धुवार के रस के साथ या मधु के साथ सेवन करे। (सु० कल्प अ० ६)।

वातरक्तप्रदर में माषपर्णी का प्रयोग- माषपर्णी के कल्क तथा क्वाथ के साथ विधिवत् सिद्ध तैल का पिचु धारण रक्त विकार के लिए तथा मार्दव के लिए तथा सुख के लिए धारण करे। (वंगसेन, असृग्दर चि०)।

मुचकुन्दः

Pterospermum Suberifolium, Roxb.

मुचकुन्दः—*Pterospermum Suberifolium, Roxb.*

अन्वर्थसंज्ञाः—"बहुपत्रः", "छत्रवृक्षः", "सुदलः", "सुपुष्पः", "रक्तप्रसवः" (रा. निः), "दीर्घपुष्पः"। मुचकुन्दः कटुतिक्तः कफकासविनाशनश्च कण्ठ-दोषहरः। त्वग्दोषशोफशमनो व्रण-पामाविनाशनश्चैव। राजनिघण्टुः॥ मुचकुन्दः शिरःपीडापित्तास्त्रविनाशनः। भावप्रकाशः॥ मुचकुन्दः कटुश्चोष्णस्तिक्तः स्वर्यः कफापहः। कासत्वग्दोषशोफघ्नः शीर्षपीडानिवारकः। त्रिदोष-रक्तपित्तघ्नः पित्तरक्तविकारनुत्। निघण्टुरत्नाकरः।

वैद्यके व्यवहारः—'शिरःपीड़ायां' मुचकुन्दपुष्पम्— "शिरोऽर्त्तिं नाशयत्याशु पुष्पं वा मुचकुन्दजम्" (शिरोरोग-चि.)। चक्रदत्तः।

मुचकुन्द - (Pterospermum Suberifolium, Roxb.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं०- मुचकुन्दः, हि०- मुचकन्द। बं०- मुचकुन्द फलेर गाछ। म०- मुचकुन्द। गु०- मुचकुन्द। ते०- लोलमुण्ड। ता०- टडेडा। ले०- टेरोस्पर्मम सुवेरिफोलियम् (Pierospermum Suberfolium)।

अन्वर्थ ज्ञापिका सं०- बहुपत्रः, छत्रवृक्षः, सुडलः, सुपुष्पः, रक्तप्रसवः (रा०नि०), दीर्घपुष्पः।

गुण एवं दोष-

राजनिघण्टु के अनुसार- मुचकन्द कटुरस तथा तिक्त रस है और कफविकार तथा कास का नाश करता है। यह कण्ठ दोष को दूर करता है। यह त्वचा दोष तथा शोथ नाशक है और व्रण तथा पामा का नाश करता है।

भावप्रकाश के अनुसार- मुचकन्द सिर पीड़ा, पित्तविकार तथा रक्त विकार का नाश करता है।

निघण्टु रत्नाकर के अनुसार- मुचकुन्द कटुरस तथा उष्ण है, तिक्त रस है, स्वर के लिए हितकर है तथा कफ नाशक है। यह कास रोग, त्वचा विकार तथा शोथ का नाश करता है तथा सिर की पीड़ा को दूर करता है, त्रिदोषज रक्त पित्त का नाश करता है तथा पित्त विकार एवं रक्तविकार को दूर करता है।

वैद्यक शास्त्र में मुचकुन्द का प्रयोग-

सिर की पीड़ा में मुचकुन्द पुष्प का प्रयोग- मुचकुन्द का पुष्प सिर के रोग का शीघ्र ही नाश करता है। (चक्र० शिरोरोग चि०)।

मुण्डितिका

Sphaeranthus Indicus. S. Mollis, Roxb.

मुण्डितिका, अलम्बुषा, भूकदम्बः, महाश्रावणिका।–*Sphaeranthus Indicus. S. Mollis, Roxb.*

अन्वर्थसंज्ञा–"कदम्बपुष्पिका"। मुण्डिका कटुतिक्ता स्यादनिलास्त्रविनाशिनी। आमारुचिघ्न्यपस्मारगण्डश्लीपदनाशिनी॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ श्रावणी तु कषाया स्यात् कटूष्णा कफपित्तनुत्। आमातीसारकासघ्नी विषच्छर्दिविनाशिनी॥ 'महामुण्डुच'ष्णातिक्ता च ईषद् गौल्या मरुच्छिदा। स्वर-कृद्रोचनी चैव मेहकृच्च रसायनी॥ राजनिघण्टुः॥ मुण्डितिका कटुः पाके वीर्योष्णा मधुरा लघुः। मेध्या गण्डापचीकृच्छ्रकृमियोन्यर्त्तिपाण्डुनुत्। श्लीपदारुच्यपस्मारप्लीहमेदोगुदार्त्तिहृत्॥ 'महामुण्डी' च तत्तुल्या गुणैरुक्ता महर्षिभिः। भावप्रकाशः।

वैद्यके व्यवहारः–(१) 'वातरक्ते' मुण्डितिका– "लीढ्वा मुण्डितिकाचूर्णं मधुसर्पिः समायुतम्। छिन्नाक्वाथं पिबन् हन्ति वातरक्तं सुदुस्तरम्॥" (वातरक्त-चि.)। (२) 'गात्रदौगन्ध्ये' अलम्बुषा– "विमलारणालसहितं पीतमिवालम्बुषाचूर्णम्" (स्थौल्य-चिः)। (३) 'अपचीगण्डमालासु' अलम्बुषादलस्वरसः–"अलम्बुषा-दलोद्भूतात् स्वरसा द्वे पले पिबेत्। अपच्या गण्डमालायाः कामलायाश्च नाशनः॥" (गलगण्ड-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) 'पतितयोः स्तनयोः' अलम्बुषा–"अलम्बुषकणाकल्कैः सिद्धं तैलं करोति वनितायाः। पिचुधारणनस्यदानात् कुचद्वयं श्रीफलाकारम्॥" (स्त्रीरोगाधिः)। (२) 'शिशोर्विच्छिनामचर्मरोगे' अलम्बुषा–"अलम्बुषाजटाकल्कः सर्जचूर्णसमन्वितः। बहुधा कटुतैलेन मिश्रयित्वा च पाचितम्। सन्दद्यात्तन्तुलीभावं गते विच्छचाः प्रलेपनम्॥" (बालरोगाधिः)। वङ्गसेनः। 'आमवाते' अलम्बुषा–"विश्वालम्बुषयोः कल्कमद्यात्"। (आमवात-चि.)। भावप्रकाशः।

मुण्डितिका, अलम्बुषा, भूकदम्बः, महाश्रावणिका (Sphaeranthus] Indicus. S.Mollis, Roxb.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं०- मुण्डी, भिक्षुः, श्रावणी, तपोधना, श्रवणाह्वा, मुण्डनिका, श्रवणशीर्षिका। हि०- मुण्डी, घुण्डी मुखी भरली, गोरखमुण्डी। बं०- पुलकुड़ी, भूई कदम्ब, मुड्डरी, मुरमुरिया, वागलनुडी, मुडिरी। म०- घाकठी, मुण्डी, वोडथरा, वरसनाडी। गु०- नहाबी मुण्डी, मुण्डी। क०- कापोवोरवतर, किपो वोलतर, वेडितर। ते०- वोड़ सरयु चेट्टु, वोलतरमु। वोडातरपु। ता०- कोहक, कोटक करण्डई। पूं०- गु० म- गोरखमुण्डी। द्रा०- करन्दे। मल०- भिरिनगनी, अट्टकामनी। ले०- स्फेरेन्थस इण्डिकस (Sphaeranthus Indicus)।

अन्वर्थज्ञापिका सं०- कदम्बपुष्पिका।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- मुण्डिका (गोरखमुण्डी) कटुरस तथा तिक्तरस है और वातविकार तथा रक्त विकार का नाश करती है। यह आमविकार तथा अरुचि का नाश करनेवाली है, अपस्मार, गण्डमाला तथा श्लीपद का नाश करती है।

राजनिघण्टु के अनुसार- श्रावणी (गोरखमुण्डी) कषायरस है तथा कटुरस है, उष्ण है और कफ-पित्त को शान्त करती है। महामुण्डी उष्ण, तिक्तरस थाडा गले के लिए हितकर तथा वातनाशक है। यह स्वरकारक है, रोचक है, प्रमेह कारक है तथा रसायन है।

भावप्रकाश के अनुसार- गोरखमुण्डी पाक में कटु, उष्ण वीर्य मधुर तथा लघु है, मेध्य है और गण्डमाला, अचनी मूत्रकृच्छ्र क्रिमिरोग, योनि पीड़ा तथा पाण्डु को दूर करती है। यह श्लीपद, अरुचि, अपस्मार, प्लीहा, मेदोविकार तथा अर्श की पीड़ा को दूर करती है। महा मुण्डी मुण्डी के सदृश गुणवाली है ऐसा महर्षियों ने कहा है।

वैद्यकशास्त्र में मुण्डी का प्रयोग-

(१) वातरक्त में मुण्डितिका (गोरख मुण्डी) का प्रयोग- गोरखमुण्डी का चूर्ण मधु तथा घृत के साथ चाट कर तथा गुडूची का स्वरस पान करता हुआ व्यक्ति भयंकर वात्तरक्त को दूर करता है। (चक्र० वातरक्त चि०)। **(२) गात्र दौर्गन्ध्य में अलम्बुषा (गोरखमुण्डी) का प्रयोग-** अलम्बुषा के चूर्ण का स्वच्छ आरनाल काञ्जी के साथ पान करने से गात्र की दुर्गन्धि नष्ट होती है। (चक्र० स्थैल्य चि.)। **(३) अपची, गण्डमाला तथा पाण्डुरोग में अलम्बुषा के पत्तों के रस का प्रयोग-** गोरखमुण्डी के पत्ते का रस दो पल (१०० ग्राम) की मात्रा में पान करे। यह अपची, गण्डमाला तथा कामला रोग का नाश करता है। (चक्र० गण्डमाला चि.)।

(१) गिरे हुए स्तनों में गोरख मुण्डी का प्रयोग- गोरखमुण्डी तथा पीपर के कल्क तथा कषाय के साथ विधिवत् सिद्ध तैल वनिता के पिचु धारण तथा नस्य देने से दोनों स्तन श्रीफल के आकार के उठे हुए कठोर हो जाते हैं। (वंगसेन, स्त्रीरोगाधिकार)। **(२) शिशु के विच्छिनामक चर्म रोग में अलम्बुषा का प्रयोग-** गोरखमुण्डी के मूल का चूर्ण सर्जरस के साथ मिलाकर अनेक बार कटु तैल मिलाकर पकाने व तुलीभाव (गाढा) हो जाने पर प्रयोग करे। यह विच्छिनामक चर्मरोग के ऊपर लेप करे। (वंगसेन, बाल रोगाधिकार)।

आमवात में अलम्बुषा का प्रयोग- सोंठ तथा अलम्बुषा (गोरखमुण्डी) का कल्क भक्षण करे। यह आमवात को नष्ट करता है। (भाव प्र० आमवात चि०)।

Constituents—The herb yields a deep cherry-coloured essential oil. The stems leavers and flowers contain a bitter alkaloid—sphaeranthine. **Actions and uses—**As an alterative it is given in syphilis, rheumatism and boils; as a demulcent in urethritis, frequent micturition, & c. externally a paste is applied to piles and swollen glands. (R. N. Khory—Vol. II, p. 370). "The seeds are considered as anthelmintic and are prescribed powders. The root powdered is stomachic; and the bark of the same, ground small and mixed with whey, is a valuable remedy for piles. In Java the plant is reckoned a useful diuretic", (Ainslie) 'flowers are employed in cutaneous in purifying the blood. The roots are reckoned anthelmintic." (Powell's Punj. Prod.) "The distilled water is mentioned as one of the best preparations; it is directed to be made in the same manner as rose water. Experiments with the distilled water show that it is not diuretic; in the case of a cachectic native suffering from frequent micturition caused by chronic prostatitis it afforded much relief. A European suffering from boils derived decided benefit from taking a wine-glassful three times a day (Dymock, Vol. II, p. 258).

मुषली

Curculigo Orchioides.

कृष्णा मुसली–*Curculigo Orchioides.*

अस्या भेदः–श्वेता, अपरा (कृष्णा) च। अन्वर्थसंज्ञाः–"हेमपुष्पी", "दीर्घकन्दिका", "भूताली"। 'पूर्वाचार्यकृतवर्णनम्'–"तालमूलिका मूषकपुच्छाकारा शिफा" (डल्वणः–चि.)। मुषली मधुरा शीता वृष्या पुष्टिबलप्रदा। पिच्छिला कफदा पित्तदाहश्रमहरा परा॥ मुषली स्याद्द्विधा प्रोक्ता श्वेता चापर संज्ञका। श्वेता स्वल्पगुणोपेता त्वपरा च रसायनी॥ राजनिघण्टुः॥ श्वेता स्वल्पगुणा प्रोक्ता त्वपरा च रसायनी। मुषली मधुरा वृष्या वीर्योष्णा वृंहणी गुरुः। तिक्ता रसायनी हन्ति गुदजान्यनिलन्तया॥ भावप्रकाशः॥ तालमूली हिता वाते ग्राहिणी च रसायनी। राजवल्लभः॥ मुषली रसपाकाभ्यां स्वादुः शीताग्नि-वर्द्धनी। वातपित्तहरा वृष्या स्थैर्यमार्द्दवदायिनी॥ शोढलनिघण्टुः॥ मुषली मधुरा वृष्या धातुवृद्धिकरी गुरुः। तिक्ता पुष्टिबलकरी पिच्छिला श्लेष्मला मता॥ रसायनी शीतला च पित्तदाहहरी मता। रक्तदोषं श्रमञ्चैव नाशयेदिति कीर्त्तितम्॥ 'कृष्णा'ऽधिकगुणा प्रोक्ता 'श्वेता' चाल्पगुणा मता। वृहन्निघण्टुरत्नाकरः॥

वैद्यके व्यवहारः–'मुखकान्तिकरत्वे' मुषली–"पिष्ट्वा वा छागपयसा सक्षौद्रा मौषली जटा" (उ. ३१ अ.)। वाग्भटः॥ (१) 'वाधिर्ये' मुषली–"मुषलीवा कुचीचूर्णं खादेद्वाधिर्यशान्तये॥" (कर्णरोग-चि.)। (२) 'कर्णपालीवर्द्धनार्थं' मुषलीकन्दः–"माहिषनवनीतयुतं सप्ताहं धान्यराशि-पर्य्युषितम्। नवमुषलि काकन्दचूर्णं वृद्धिकरं कर्णपालीनाम्॥" (कर्णरोग-चि.)। वङ्गसेनः।

कृष्णा मुषली (Curculigo Orchioides).

विविध भाषाओं में नाम–

सं०– तालमुषली, मुशली। हि०– मुसली काली, मुसली सफेद। म०– काली मुसली, पाढरी मूषली, पढ़ढ़ी मूसली। ब०– तालमूली। क०– नेलताड़ो, नलतालमगेड़डे। ते०– नीलमतलि गड्डलि, नेलवाटी गडल। गु०– काली

मुसली, धोली मुसली। फा०- मुसली स्याहे, मुसली सफेद। अ०- मुसली अवियज। ले०- क्र्यूलिगो अर्चिओएडिस (Curculigo cchioides)।

मुसली के भेद- श्वेतो मुसली, कृष्णा मुसली। **अन्वर्थज्ञापिका सं०-** हेमपुष्पी, दीर्घकन्दिका, भूताली।

पूर्वाचार्यकृत मुसली का वर्णन- तालमूलिका मूषकपच्छाकार शिफा (डल्वण, चि०)।

गुण एवं दोष-

राजनिघण्टु के अनुसार- मुसली मधुर, शीतल तथा वीर्य वर्द्धक है और पुष्टि एवं बलदेने वाली है। यह पिच्छिल है तथा कफप्रद है, पित्त विकार, दाह और श्रम हर है। मुसली दो प्रकार की है- श्वेत तथा कृष्ण मुसली। श्वेत मुसली स्वल्प गुणों से युक्त तथा दूसरी रसायनी है।

भावप्रकाश के अनुसार- सफेद मुसली स्वल्प गुण वाली है तथा दूसरे प्रकार की (कृष्ण मुसली) रसायन है। मुसली मधुर, वीर्य वर्द्धक, उष्णवीर्य, मांस वर्द्धक तथा गुरु है। यह तिक्त रस है रसायन है, तथा अर्श रोगों का नाश करती है।

राजवल्लभ के अनुसार- तालमूल (मुसली) वातरोग में हितकर है, ग्राही है, रसायन है।

शोढल निघण्टु के अनुसार- मुसली रस तथा पाक में स्वादिष्ट है, शीतल है तथा जाठराग्निवर्द्धक है। यह वातपित्त नाशक है, वीर्यवर्द्धक है, स्थिरता एवं मृदुता को देनेवाली है।

वृहन्निघण्टु रत्नाकर के अनुसार- मुसली मधुर, वीर्यवर्द्धक, धातुवृद्धिकारक, गुरु तिक्तरस, पुष्टि-बल कारक, पिच्छिल तथा कफ कारक कही गयी है। यह रसायन है, शीतल है, पित्त तथा वात को दूर करनेवाली है। यह रक्त विकार तथा श्रम का नाश करती है- ऐसा कहा गया है। कृष्ण मुसली अधिक गुणवाली है तथा सफेद मुसली स्वल्प गुणवाली है।

वैद्यकशास्त्र में मुसली का प्रयोग-

मुख कान्ति करने में मुसली का प्रयोग- मुसली की जड़ को बकरी के दूध के साथ पीस कर मधु मिलाकर पान करे। (वागभट, उ० अ० ३१)

(१) वाधीर्य में मुसली का प्रयोग- मुसली तथा बाकुची का चूर्ण वाधीर्य की शान्ति के लिए खाय। (वंगसेन, कर्ण रोग चि०)। **(२) कर्णपाली बढ़ने के लिए मुसली कन्द का प्रयोग-** नवीन मुसली का चूर्ण भैंस के नवनीतके साथ मिलाकर एक सप्ताह धान्यकी राशि में रंखकर सेवन करे। यह कार्णपाली को बढ़ाता है। (वंगसेन, कर्णरोग चि०)।

Constituents—Resin, tannin, mucilage, starch and ash containing exalate of calcium, &c. **Actions and uses**—Bitter, aromatic, tonic and demulcent; used in general debility, in affectious of the urino genital system as impotence; also in asthma, piles, dysuria, diarrhoea, menorrhagia and gonorrhoea. As a tonic it is generally mixed with aromatic bitters and aphrodisiac medicines. (R. N. Khory—Vol. II, p. 605).

मुस्तकः

Cyperus Rotundus

मुस्तकः—*Cyperus Rotundus.* **भद्रमुस्तकः, कान्तक्रामुकम्**—*Cyperus Tuberosus.* **नागरमुस्तकः**—*Cyperus Pertenuis.* **कैवर्त्त मुस्तकः**—*Cyperus Tenuiflorus.*

अन्वर्थसंज्ञाः– 'भद्रमुस्तकस्य'–"सुगन्धिः", "ग्रन्थिला"। 'नागरमुस्तकस्य' "नगरोत्था", "चक्राङ्का", "चूडाला", "पिण्डमुस्ता", "कच्छरुहा"। 'कैवर्त्तमुस्तकस्य–"जलमुस्तम्", "जलजम्"॥ 'मुस्ता' तिक्तकषायाऽग्निशिशिरा श्लेष्म-रक्तजित्। पित्तज्वरातिसारघ्नी तृष्णाकृमिविनाशनी॥ 'जलजं' तिक्तकटुकं कषायं कान्तिदं हिमम्। मेध्यं वातान्ध्यविसर्पकण्डूकुष्ठविषापहम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ 'भद्रमुस्ता' कषाया च तिक्ता शीता च पाचनी। पित्तज्वर-कफघ्नी च ज्ञेया सङ्ग्रहणी च सा॥ तिक्ता 'नागरमुस्ता' कटुः कषाया च शीतला कफनुत्। पित्तज्वरातिसारारुचितृष्णादाहनाशनी श्रमहृत्॥ राजनिघण्टुः॥ मुस्तं कटु हिमं ग्राहि तिक्तं दीपनपाचनम्। कषायं कफपित्तास्रज्वरातिसार- जन्तुहृत्॥ भावप्रकाशः॥ मुस्तकं तिक्तकटुकं वातघ्नं ग्राहिदीपनम्। राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) 'अग्र्यग्रन्थे' मुस्तम्–"मुस्तं सङ्ग्राहकदीपनीयपाचनीयानाम्।" (सू. २५ अ.)। (२) 'अतिसारे' भद्रमुस्तकः–"ह्रीवेरभद्रमुस्तानि...। तिस्त्रः प्रमथ्या विहिता श्लोकार्द्धेष्वति- सारिणाम्॥" (चि. १० अ.)। (३) 'अतिसारे' मुस्तकः– ...मुस्तपर्पटकेण वा।" (चि. ११ अ.) (४) 'कफपित्तमदात्यये' भद्र मुस्तकः– "गुडूचीभद्रमुस्तानां...। रसं सनागरं दद्यात् तत्तिरिप्रतिभोजनम्॥" (चि. १२ अ.)। (५) 'मदात्ययस्य पिपासायां' मुस्तम्–"जलं मुस्तैः श्रृतं वापि दद्याद्दोषविपाचनम्। एतदेव च पानीयं सर्वत्रापि मदात्यये॥" (चि. १२ अ.)। (६) 'कफपित्तजे कासे' मुस्तः–"पैत्ते समुस्तमरिचः सकफे...।" (चि. २२ अ.)। (७) 'कफजवमने' कैवर्त्तमुस्तकः मुस्तश्च– "...विडङ्गप्लवक्षेरथो वा। मुस्तायुतां कर्कटकस्य श्रृङ्गीम्॥" (चि. २३ अ.)। चरकः॥ (१) 'आमातिसारे' मुस्तकम्–"पयस्युत्क्वाथ्य मुस्तानां विंशतिं त्रिगुणेऽम्भसि। क्षीरा वशिष्टं तत् पीतं हन्त्यामं शूलमेव च॥" (उ. ४० अ.)। (२) 'पक्वातिसारे' मुस्तकम्–"मौस्तं कषायमेकं वा पेयं मधुसमायुतम्।" (उ. ४० अ.)। सुश्रुतः॥ (१) 'विसूच्याः पिपासायां' भद्रमुस्तकम्–"...श्रृतं भद्रघनस्य वा।" (अग्निमान्द्य-चि.)। (२) 'आगन्तुव्रणे' भद्रमुस्तकम्–"कान्तक्रामुकमेकं सुश्लक्ष्णं गव्यसर्पिषा पिष्टम्। शमयत लेपान्नियतं व्रणमागन्तुजं न सन्देहः॥" (व्रणशोथ-चि.)। चक्रदत्तः॥ 'अग्नविसर्पे' मुस्तकः–"सेचयेत्...। सिताम्भसाम्भोजजलैः॥" (चि. १८ अ.)। वाग्भटः॥ 'अपस्मारे' मुस्तकम्–"उत्तरदिग्गतमुस्तकमूलं बुद्धचा समुद्धृतं पेष्यं पीतं पयसा हन्यादपस्मृतिं गोः सवर्णवत्सायाः॥" वङ्गसेनः।

मुस्तकः (Cyperus Rotundus), भद्रमुस्तकः, कान्तक्रामुकम् (Cyperus Tuberosis), नागरमुस्तकः (Cyperus pertenuis), कैवर्तमुस्तकः (Cyperus Tenuiflorus)।

विविध भाषाओं में नाम–

सं०– मुस्तकः, मुस्तः, वाटिनामकः। हि०– मोथा। बं०– मुत्ता, मुथा। म०– मोथे, निम्बल। गु०– मोथ, मोथ्य। क०– मुस्ता, कोन्नरि। ते०– तुगमुस्त, सकह तुङ्गपिरु, मुस्तेरु। ता०– कोरय, फिलङ्गु। द्रा०– गरमोटा। अ०– मुष्कजमीन्। फा०– शादकफी। ले०– साईपेरस रोटण्डर्स (Cyperus Rotundus)।

अन्वर्थ ज्ञापिका सं०– भद्रमुस्तकः– सुगन्धिः, ग्रान्थिला। नागरमुस्तकः– नगरोत्था, चक्राङ्का, चूडाला, पिण्ड- मुस्ता, कच्छरुहा। कैवर्तमुस्तकः– जलमुस्तक्, जलजम्।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- मुस्ता (नागर मोथा) तिक्तरस, कषायरस, उष्ण तथा शिशिर है और कफविकार एवं रक्तविकार का नाश करता है। यह पित्तज्वर तथा अतिसार नाशक है और प्यास तथा क्रिमि रोग नाशक है। जलज (नागर मोथा) तिक्त तथा कटुरस तथा कषायरस है और कान्तिदायक है, शीतल है। यह मेध्य है तथा वात विकार, आन्ध्यविकार, पिसर्प, कण्डू, कुष्ठ तथा विष विकार का नाश करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- भद्रमुस्ता (नागरमोथा) कषाय रस, तिक्तरस, शीतल तथा पाचन है। यह पित्तज्वर नाशक तथा ग्राही है। नागरमुस्ता तिक्तरस, कटुरस, कषायरस तथा शीतल है और कफ को दूर करता है। यह पित्तज्वर, अतिसार, अरुचि, प्यास तथा दाह का नाश करती है और श्रम को दूर करती है।

भाव प्रकाश के अनुसार- नागर मोथा कटुरस, शीतल, ग्राही तथा तिक्तरस है और दीपन, पाचन है, कषायरस है तथा कफ विकार, पित्त विकार, रक्त विकार, ज्वर, अतिसार तथा क्रिमिरोग को दूर करता है।

राजवल्लभ के अनुसार- मुस्तक (नागरमोथा) तिक्तरस, कटुरस तथा वात नाशक है और ग्राही तथा जाठराग्नि दीपक है।

वैद्यक शास्त्र में मुस्तक का प्रयोग-

(१) मुस्तक (नागर मोथा) संग्राहक, दीपन, पाचनीयों में प्रथम है। (च० सू० अ० २५)। (२) **अतिसार में भद्र मुस्तक का प्रयोग-** हाऊवेरा भद्रमुस्त तीनों की प्रमथ्या आधा श्लोक से कही हुई प्रमथ्य अतिसारियों के लिए कहा गया है। (च० चि० अ० १०) (३) **अतिसार में मुस्तक का प्रयोग-** नागर मोथा तथा पित्त पापडा का योग अतिसार में हितकर है। (च० चि० अ० ११) (४) **कफ पित्त मदात्यय में भद्रमुस्त का प्रयोग-** कफ पित्त मदात्यय में गुड तथा नागरमोथा का रस तथा सोंठ का चूर्ण तितिर भोजन करनेवालों को (मदात्यय के रोगी) को दे। (च० चि० अ० १२) (५) **मदात्यय की पिपासा में मोथा का प्रयोग-** नागर मोथा के साथ क्वथित जल दोषों के पाचन के लिए दे। यह जल मदात्यय में सर्वत्र पीने योग्य है। (च० चि० अ० १२) (६) **कफ पित्तज-कास में मुस्ता का प्रयोग-** पित्तज तथा कफज कास में नागर मोथा तथा मरिच का क्वाथ या चूर्ण लाभदायक है। (च० चि० अ० २२)। (७) **कफज वमन में केवर्त मुस्तक (केवटी मोथा) तथा नागरमोथा का प्रयोग-** कफज वमन में वायविडंग तथा केवटी मोथा का अथवा नागर मोथा तथा काकड़ा सिंही का चूर्ण सेवन करे। (च० चि० अ० २३)।

(१) **आमातिसार में नागरमोथा का प्रयोग-** नागरमोथा का कन्द २० नग तीन गुने जल में तथा दुध में पकावे। जब दूध मात्र शेष रह जाय तो छान कर पान करे। यह आमातिसार तथा शूल को नष्ट करता है। (सु०उ०अ०४०)। (२) **पक्वातिसार में मुस्तक का प्रयोग-** नागर मोथा का केवल कषाय शदह मिलाकर पक्वातिसार में पान करें। (सु० उ० अ० ४०)।

(१) **विसूची पिपासा में भद्रमुस्तक का प्रयोग-** भद्रमुस्तक का क्वाथ विसूचिकाजन्य प्यास में पान कराये। (चक्र०अग्निमान्द्य चि०)। (२) **आगन्तुक व्रण में भद्रमुस्त का प्रयोग-** केवल भद्रमुस्ता एक ही को महीन गाय के घी में पीस कर लेप करने से आगन्तुक व्रण शान्त हो जाता है। इसमें संदेह नहीं है। (चक्र० व्रणशोथ चि०)।

अग्निविसर्प में मुस्तक का प्रयोग- मुस्तक का शीतल क्वाथ तथा श्वेत कमल के जल से अग्नि विसर्प में सेचन करे। (वाग्भट, चि० अ० १८)।

अपस्मार में नागर मोथा का प्रयोग- उत्तर दिशा की ओर फैली हुई नागर मोथा के मूल का विवेकपूर्वक निकालकर तथा पीसकर सवर्ण वत्सावाली गाय का दूध पान करने से अपस्मार का नाश होता है। (बंगसेन)

Actions and uses of *Cyperus Rotindus*—Diaphoretic, diuretic, demulcent, stimulant and galactagogue; given in fevers, dyspepsia, diarrhoea and cholera; also in urinary calculi and amenorrhoea. As a galactagogue the fresh tubers are applied to the breasts. (R. N. Khory—Vol. II, p. 632). **Actions and uses** of *Cyperus Pertenuis*.—Refrigerant, aromatic and stomachic; also alterative; given in torpid liver, chronic fevers, dyspepsia and derangements. In chronic fevers it relieves thirst and heat of the body. It is also useful in ascitis and as anthelmintic in lumbrici. (R. N. Khory—Vol. II, p. 632).

मूलकम्
Raphanus Sativus

मूलकम्–*Raphanus Sativus.* **अस्य भेदाः–चाणाख्यमूलकम्, गृञ्जनकम्, पिण्डमूलम्।**

अन्वर्थसंज्ञाः– मूलकस्य–"दीर्घमूलकम्", "दीर्घपत्रकम्", "शङ्खमूलम्", "रुचिष्यम्", "शिम्बीफलम्"। 'चाणाख्यमूलकस्य'–"स्थलमूलम्", "महाकन्दम्", "मरुसम्भवम्"। 'गृञ्जनस्य'–"यवनेष्टम्", "वर्त्तुलम्"। 'मूलकं' गुरु विष्टम्भि तीक्ष्णमाममत्रिदोषनुत्। तदेव 'स्विन्नं' स्निग्धञ्च कटूष्णं कफवातनुत्॥ त्रिदोषशमनं 'शुष्कं' विषदोषहरं लघु। 'चाणाख्यं मूलकं' तिक्तं कटूष्णं रुच्यदीपनम्॥ कफवातकृमीन् गुल्मं नाशयेद् ग्राहकं परम्। 'आटवी-मूलकं' तिक्तं विपाके कटुकं तथा॥ पित्ताविरोधि कफहा गुरुः स्याद्वातनाशनम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ 'मूलकं' तीक्ष्णमुष्णञ्च कटूष्णं ग्राहि दीपनम्। दुर्णामगुल्महृद्रोगवातघ्नं रुचिरं गुरुः॥ 'चाणाख्यमूलकम्' सोष्णं कटुकं रुच्य-दीपनम्। कफवातकृमीन् गुल्मं नाशयेद् ग्राहकं परम्॥ 'गृञ्जनं' कटुकोष्णञ्च कफवातरुजापहम्। रुच्यं दीपनहृद्यञ्च दुर्गन्धं गुल्मनाशनम्॥ 'पिण्डमूलं' कटूष्णञ्च गुल्मवातादिदोषनुत्॥ 'मूलकविशेष-गुणाः'– सोष्णं तीक्ष्णं च तिक्तं मधुरकटुरसं मूत्रदोषापहारि। श्वासार्शःकासगुल्मक्षयनयनरुजा नाभिशूलामयघ्नम्। कण्ठ्यं बल्यञ्च रुच्यं मलविकृतिहरं मूलकं 'बालकं' स्यात्। उष्णं जीर्णञ्च शोफप्रदमुदितमिदं दाहपित्तास्त्रदायि॥ 'आमं' सङ्ग्राहि रुच्यं कफ पवनहरं पक्वमेतत् कटूष्णम्। 'भुक्तेः प्राग्भक्षितं' चेत् सपदि वितनुते पित्तदाहास्त्रकोपम्। 'भुक्तच्चा' सार्द्धं तु 'जग्धं' हितकरबलकृत् 'वेशवारेण' तच्चेत्। 'पक्वं' हृद्रोगशूलप्रशमनमुदितं, शूलरुग्धारि मूलम्॥ राजनिघण्टुः॥ 'लघुमूलं' कटूष्णं स्यात् रुच्यं लघु च पाचनम्। दोषत्रयहरं स्वर्यं ज्वरकासविनाशनम्॥ नासिकाकण्ठरोगघ्नं नयनामयनाशनम्। 'महत्' तदेव रूक्षोष्णं गुरु दोषत्रयप्रदम्॥ 'स्नेहसिद्धं' तदेव स्याद् दोषत्रयविनाशनम्॥ भावप्रकाशः॥ मूलकं गुरु विष्टम्भि तीक्ष्णमाममत्रिदोषकृत्। तदेव 'स्नेहपक्वं' चेत् कफकृद्वात-पित्तजित्॥ 'शुष्कं' त्रिदोषशमनं शोथघ्नं गरजिल्लघु। 'तत्पुष्पं' कफपित्तघ्नं तत्फलं' कफवातजित्॥ राजवल्लभः॥ 'बालं' दोषहरं 'वृद्धं' त्रिदोषं मारुतापहम्। स्निग्धसिद्ध'विशुष्कन्तु मूलकं' कफवातजित्॥ ग्राही गृञ्जनकस्तीक्ष्णो वातश्लेष्मार्शसां हितः। स्वेदनेऽभ्यवहार्ये च योजयेत् तदपित्तिनाम्॥ (सू. २७ अ.)। चरकः।

वैद्यके व्यवहार:– (१) 'शुष्कार्शःसु' मूलकम्– "शुष्कमूलकपिण्डैर्वा। स्वेदयेत् पोट्टलीकृतैः....॥" (चि. ९ अ.)। (२) 'अर्शःसु' शुष्कमूलकम्–"शुष्कमूलकयूषं वा... छागलं वा रसं दद्याद् यूषैरेतैर्विमिश्रितम्॥" (चि. ९ अ.)। (३) 'प्रवाहिकायां' मूलकम्–"तं मूलकानां यूषेण... भोजयेत्॥" (चि. १० अ.)। (४) 'ग्रन्थिविसर्पे' मूलकम्–"सुखोष्णया प्रलिह्याद्वा... शुष्कमूलक कल्केण॥" (चि. ११ अ.)। (५) 'शोथे शाकार्थं' गृञ्जनकम्–"...गृञ्जनकं पटोलं... शाकार्थिनां शाकमतिप्रशस्तम्॥" (चि. १७ अ.)। (६) 'कफशोथे' मूलकम्–"...शस्तस्तथामूलकतोयसेकः" (चि. १७ अ.)। (७) 'हिक्काश्वासयोः' शुष्कमूलकम्–"शुष्कमूलकयूषश्च हिक्काश्वासनिवारणः" (चि. २१ अ.)। (८) 'वातकासिणः पथ्यार्थं मूलकम्–"...मूलकं सुणिषण्णकं शस्यते वातकासे तु" (चि. २२ अ.)। चरकः॥ 'कर्णशूले' मूलकम्–"मूलकस्य च... स्वरसः श्रेष्ठः कटूष्णः कर्णपूरणे॥" (उ. २१ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) 'कफवातात्मके ज्वरे' मूलकम्–"ह्रस्वमूलकयूषस्तु कफवातात्मके हितः।" (ज्वर-चि.)। (२) 'सिध्मे' मूलकबीजम्–"शिखरिरसेन सुपिष्टं मूलकबीजं प्रलेपतः सिध्म नाशयति" (कुष्ठ-चि.)। (३) 'शीतपित्ते' शुष्कमूलकम्–"शुष्कमूलकयूषेण...। ...भोजनं सर्वदा कार्यम्॥" (शीतपित्त-चि.)। चक्रदत्तः॥ 'विसूच्यां' बालमूलकम्–"बालमूलस्य तु क्वाथः पिप्पलीचूर्ण संयुतः। विसूचीनाशनः श्रेष्ठः जठराग्निविवर्द्धनः॥" (अजीर्ण-चि.)। भावप्रकाशः॥

मूलकम् (Raphanus Sativus)

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– मूलकम्। हिं.– मूली, मुरई, मुरा। बं.– मूला। म.– मुला। गु.– मूलो। पं.– मुरि। फा.– तुर्ब। अ.– फुज्ल, फुजल। अं.– रैडिस (Radish)। ले.– रफानुस साटीवुस (Raphanus Sativus Linn.)।

मूलक के भेद– चाणाख्यमूलकम्, गृञ्जनकम्, पिण्डमूलम्। **अन्वर्थज्ञापिका सं०–** मूलक (मूली)। दीर्घमुलकम्, दीर्घपत्रकम्, शङ्खमूलम्, रुचिष्यम्, शिम्बीफलम्। चाणाख्य मूलक– स्थलमूलम्, महाकन्दम्, मरुसम्भवम्। गृञ्जनक-यवनेष्टम्, वर्तृलम्।

गुण एवं दोष–

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार– मूलक (मूली) विष्टम्भी, तीक्ष्ण तथा आमविकार एवं त्रिदोष का नाश करता है। वही मूली पका देने पर स्निग्ध, कटुरस तथा उष्ण है और कफ विकार एवं वात विकार का नाश करता है। यह त्रिदोष को शान्त करता है। शुष्क मूली विष दोषहर है तथा लघु है। चाणाख्यमूलक तिक्तरस, कटुरस तथा उष्ण है और रुचिकारक एवं जाठराग्नि दीपक है। यह कफरोग, वातरोग, कृमिरोग तथा गुल्मरोग का नाश करता है और उत्तम ग्राहक है। आटवी मूलक – विपाक में तिक्तरस, कटुरस तथा पित्त विरोधी नहीं है। यह कफनाशक है, गुरु है तथा वात नाशक है।

राजनिघण्टु के अनुसार– मूलक तीक्ष्ण, उष्ण तथा कटूष्ण है, ग्राही है एवं जाठराग्नि दीपक है। यह अर्श रोग, गुल्म रोग, हृदयरोग तथा वातरोग का नाश करता है और रुचिकारक है एवं गुरु है। चाणाख्यमूलक– उष्ण कटुरस, रुचिकारक तथा जाठराग्नि दीपक है। यह कफ विकार, वात विकार, क्रिमि रोग तथा गुल्म रोग का नाश करता है और उत्तम ग्राहक है। गृञ्जन कटु रस तथ उष्ण है और कफ विकार एवं वात विकार का नाश करता है। यह रुचि कारक है, जाठराग्नि दीपक है, हृदय को बल देनेवाला है, दुर्गन्ध तथा गुल्म रोग का नाश करता है। पिण्ड मूलक कटु रस तथा उष्ण है और गुल्म रोग एवं वातादि दोष को दूर करता है।

मूलक के विशेष गुण- मूलक उष्ण, तीक्ष्ण, तिक्तरस, मधुर रस तथा कटुरस है और यह मुत्र विकार को दूर करता है। यह श्वास, अर्श विकार, कास, गुल्म रोग, क्षय रोग तथा नेत्र रोग एवं नाभिशूल का नाश करता है। यह कण्ठ के लिए हितकर, बलकारक, रुचि कारक तथा मल विकार को दूर करता है। बालमूलक उष्ण है। जीर्ण मूलक शोथप्रद है तथा यह दाह, पित्त विकार एवं रक्त विकार करनेवाला है। आम मूलक संग्राही, रुचिकर तथा कफ-वात हर है और पक्व मूलक कटु तथा उष्ण है। यह भोजन के पहले खाया जाय तो शीघ्र ही पित्त विकार, दाह तथा रक्त विकार को प्रकुपित करता है। भोजन के साथ खाने से हितकर है तथा बलकारक है। यदि यह वेशवार (मसाला) आदि के साथ खाया जाय तो पका हुआ मूलक हृदयरोग तथा शूल को शान्त करनेवाला है तथा शूल रोग को धारण करने वाला मूलक या मूल होता है।

भाव प्रकाश के अनुसार- लघु मूल (बालमूलक) कटुरस तथा उष्ण है, रुचिकारक है, लघु है तथा पाचक है। यह तीनों दोषों को दूर करता है, स्वर के लिये हितकर है तथा ज्वर एवं कास का नाश करता है। यह नासिका तथा कण्ठ के रोग का नाश करता है, नेत्र रोग का नाश करता है। बड़ा मूलक रूक्ष, उष्ण तथा गुरु है और तीनों दोषों को बढ़ानेवाला है। बड़ा मूलक घृत में पकने के बाद दोषनाशक होता है।

राजवल्लभ के अनुसार- मूलक गुरु, विष्टम्भि, तथा तीक्ष्ण है और आम विकार एवं त्रिदोष कारक है। वही मूलक स्नेह में पक जाने पर कफकारक होता है तथा वात-पित्त को दूर करता है। शुष्क मूलक त्रिदोष नाशक, शोथ शामक विष दोष नाशक तथा लघु है। मूलक का पुष्प कफ-पित्त नाशक है तथा फल कफ-वात को दूर करता है।

चरक के अनुसार- बाल मूलक त्रिदोषहर है। वृद्ध मूलक त्रिदोष तथा वातनाशक है। स्निग्धसिद्ध तथा शुष्क मूलक कफ तथा वात को जीत लेता है। गृंजनक (गाजर) ग्राही, तीक्ष्ण तथा उष्ण है और वातार्श तथा कफार्श के रोगी के लिए हितकर है। पित्तविकार रहित व्यक्तियों के लिए स्वेदन में तथा खाने में प्रयोग करे।

वैद्यकशास्त्र में मूलक का प्रयोग-

(१) शुष्कार्श में मूलक का प्रयोग- सूखे मूली के पोटली कृत पिण्ड से शुष्कार्श में स्वेदन करे। (च० चि० अ० ९)। **(२) अर्श में शुष्क मूलक का प्रयोग**- अर्श रोग में शुष्क मूलक का यूष दे या मूलक यूष में मिलाकर बकरी का दूध दे। (च० चि० अ० ९) **(३) प्रवाहिका में मूलक का प्रयोग**- प्रवाहिका में रोगी को मूलक के यूष के साथ भोजन दे। (च० चि० अ० १०) **(४) ग्रन्थि विसर्प में मूलक का प्रयोग**- शुष्क मूलक कल्क ले। थोड़ा गरम-गरम ग्रन्थि विसर्प में सेक करे। (च० चि० अ० ११) **(५) शोथ में शाकार्थ गृञ्जन का प्रयोग**- शोथरोग में शाक खानेवालों के लिए परवल तथा गाजर का शाक अति प्रशस्त कहा गया है। (च० चि० अ० १७)। **(६) कफशोथ में मूलक का प्रयोग**- मूलक को जल के साथ पकाकर कफ-शोथ में पान कराये (च० चि० अ० १७)। **(७) हिक्का तथा श्वास में शुष्क मूलक का प्रयोग**- शुष्क मूलक का यूष हिक्का तथा श्वास को दूर करता है। (च० चि० अ० २१)। **(८) वात-कास के रोगी के लिए पथ्यार्थ मूलक का प्रयोग**- मूलक तथा सुनिष्ण्णक (तिनपतिया साक) वातजकास में प्रशस्त है। (च० चि० अ० २२)।

कर्णशूल में मूलक का प्रयोग- मूलक का स्वरस थोड़ा गरम कर कान में छोड़ना प्रशस्त है। (सु० उ० अ० २१)।

(१) कफ-वातात्मक ज्वर में मूलक का प्रयोग- छोटे मूलक का यूष वातकफात्मक ज्वर में हितकर है (चक्र० ज्वर चि०)। **(२) सिध्म रोग में मूलक बीज का प्रयोग**- अपामार्ग के रस में पीसा हुआ मूलक बीज

लेप करने से सिध्मरोग का नाश करता है। (चक्र० कुष्ठ चि०)। (३) **शीत-पित्त में शुष्क मूलक का प्रयोग**-शीत-पित्त रोग में शुष्क मूलक के यूष के साथ हमेशा भोजन करे। (चक्र० शीतपित्त चि०)

विसूचिका में बाल मूलक का प्रयोग- बाल मूलक का क्वाथ पीपर का चूर्ण मिलाकर रोगी को पान कराये। यह उत्तम विसूचिका नाशक है तथा जाठराग्नि वर्द्धक है। (भावप्रकाश, अजीर्ण चि०)।

Constituents—*of Ramphanus Sativus.*—Seeds and root contain a fixed oil, a sulphuretted volatile oil, resembling mustard-seed oil. The oil is colourless and has the taste of radishes. It contains sulphur and phosphoric acid. **Actions and uses**—The seeds and leaves are diuretic, laxative and lithontriptic. The root is used as an edible vegetable. All parts of the plant are used in urinary diseases and in Cases of gravel. (R.N. Khory—Vl. II, p. 63). **Constituents** *of Dancus Carota.*—The root contains carotin, hydrocarotin oil, sugar, pectin, nitrogen compound volatile oil. The fruit contains volatile oil and a fixed oil. **Actions and uses**—Fruit stimulant laxative, emollient, antiseptic, diuretic and emmenagogue. As a diuretic it is given in nephritic affections, dropsy, strangury and amenorrhoea. This property is due to its containing the volatile oil which acts locally upon the nervous structures of the kidney during the excretion; as an antiseptic a poultice of the root is used to correct foetid discharges from eczema, unhealthy sores, carcinoma, &c., the root is saccharine and edible. The seeds are said to cause abortion. (R. N. Khory—Vol. II, p. 285).

मूर्वा

Sanseviera Zeylanica, Willd.

मूर्वा, मधुरसा–*Sanseviera Zeylanica, Willd.*

पूर्वाचार्यकृतवर्णनम्– "मूर्वा धनुर्गुणोपयोग्या दूढबल इति लोके" (डल्वणः–सु. सू. ३८ अ.)। मूर्वा स्वादुरसा चोष्णा हृद्रोगकफवातजित्। कुष्ठ-कण्डूवमीमेहविषमज्वरनाशिनी॥ धन्वन्तरीय-निघण्टुः॥ मूर्वा तिक्ता कषायोष्णा हृद्रोगकफवातहृत्। वमिप्रमेहकुष्ठारिर्विषमज्वरहारिणी॥ राजनिघण्टुः॥ मूर्वा सरा गुरुः स्वादुस्तिक्ता पित्तास्त्रमेहनुत्। त्रिदोषतृष्णाहृद्रोग-कण्डूकुष्ठज्वरापहा॥ भावप्रकाशः॥ मूर्वा तु वृंहणी बल्या कफवातामयान् जयेत्। राजवल्लभः।

वैद्यके व्यवहारः– 'पित्तजवमने' मूर्वा– "मूर्वा तथा तण्डुलधावनेन" (चि. २३ अ.)। चरकः॥ सर्वज्वरे मूर्वा–"...मूर्वायां देवादारुणि। कषायं विधिवत् कृत्वा पेयमेतज्जवरापहम्॥" (उ. ३९ अ.)। सुश्रुतः॥ 'नेत्ररोगे' मूर्वा–"सौवीरं सैन्धवं तैलं मूर्वामूलं तथैव च। कांस्यपात्रे विघृष्टं स्यादक्ष्णोः शूलनिवारणम्॥" (नेत्ररोग-चि.)। वङ्गसेनः।

मूर्वा, मधुरसा (Sanseviera Zeylamica Willd.)।

विविध भाषाओं में नाम-

सं०- मूर्वा, मधुरसा, देवी, मधूलिका, पीलुपर्णी। हि०- मूर्वा, चुरनहार, मड़ोड फली, मर्हरी। ब०- मूर्वा। क०- मुतुरिस, हेग्गेरीरेग। म०- मोरवेल, गोनेसपत्र। गु०- मोरवेल, मुईपिलु। तै०- सामा, चागचेद्दु सग। ता०- मरूल। द्रा०- वेल्लिपरिति। अं०- वोस्ट्रिङ्ग हेम्प० (Boe String Hemp)। ले०- स्वीटमारजोरन (Sweet marjoran)।

मूर्वा के सम्बन्ध में पूर्वाचार्यकृत वर्णन- मूर्वा धनुष के प्रत्यञ्चा के योग्य है ऐसा दृढबल का कथन है ऐसे लोक में कहा जाता है। (डल्वण: सु० सू० अ० ३८)।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- मूर्वा, स्वादुरस तथा उष्ण है और हृदय रोग, कफ तथा वात विकार को दूर करती है। यह कुष्ठ रोग, पाण्डू, वमन, प्रमेह तथा विषमज्वर का नाश करती है।

राजनिघण्टु के अनुसार- मूर्वा तिक्त रस, कषाय रस तथा उष्ण है और हृदय रोग, कफ विकार तथा वात विकार को दूर करती है । यह वमन, प्रमेह तथा कुष्ठ नाशक है और विषमज्वर को दूर करती है।

भावप्रकाश के अनुसार- मूर्वा सारक, गुरु, स्वादिष्ट तथा तिक्तरस है और पित्त विकार, रक्तविकार तथा प्रमेह को दूर करती है। यह त्रिदोष, प्यास, हृदयरोग, कण्डू , कुष्ठरोग तथा ज्वर का नाश करती है।

राजवल्लभ के अनुसार- मूर्वा मांसवर्द्धक है, बलकारक है तथा कफ एवं वात विकार को दूर करती है।

वैद्यक शास्त्र में मूर्वा का प्रयोग-

पित्तज वमन में मूर्वा का प्रयोग- मूर्वा को चावल के धोअन के साथ पित्तज वमन में पान करे। (च० चि० अ० २३)।

सभी ज्वर में मूर्वा का प्रयोग- मूर्वा तथा देव दारु का विधिवत् कषाय बनाकर पान कराये। यह ज्वर का नाश करता है। (सु० उ० अ० ३९)

नेत्ररोग में मूर्वा का प्रयोग- सौवीर (काञ्जी), सेन्धा नमक तैल तथा मूवीका मूल काँसा के पात्र में घिसकर नेत्र में लगाने से नेत्र के शूल को दूर करता है। (वंगसेन, नेत्ररोग चि०)

Chemical composition—An alcoholic extract from the fresh roots was mixed with water acidulated with sulphuric acid, and agitated with petroleum ether, then rendered alkaline and reagitated with ether. The petroleum ether left on spontaneous evaporation a viscid slightly greenish-yellow residue, with a ginger-like odour. Similar to that of the fresh roots. The extract was partly soluble in absolute alcohol, the solution possessing a pungent ginger like taste and acid reaction. The portion insoluble in alcohol was white and had the properties of a wax. The acid ether extract had a fragrant vanilla-like odour and was yellowish green. It contained salicylic acid, a yellow neutral bitter resin, a greenish acid resin, traces of an alkaloid, and a white neutral principle slightly soluble in cold absolute alcohol : the nature of this principle was not ascertained. The alkaline ether extract contained a crystallizable white alkaloid, affording a slight yellowish-red colour with Frohdes reagent in the cold, changing to blue on warming and, with nitric acid, a fiant yellow coloration. We provisionally name this alkaloid *Sansevierine*. (Pharmacographia Indica, Vol. III. p. 495).

मेषशृङ्गी

Gymnema Sylvestre

अजशृङ्गी, मेषशृङ्गी–*Gymnema Sylvestre, Asclepias Geminata, Roxb.* **अस्य भेदः– वृश्चिकाली**–*Asclepias Montana,* **ईषद्रोमशा श्वेत-पुष्पगुच्छा दक्षिणावर्त्तवल्ली मेषशृङ्गी भेदः (डल्वणः)।**

अन्वर्थसंज्ञाः– "तिक्तदुग्धा", "चक्षुष्या", "सर्पदंष्ट्रा"। अजशृङ्गी हिमा स्वादुः शोफतृष्णावमीञ्जयेत्। चक्षुष्या स्वादुतृड्रोगविषकासार्त्तिकुष्ठनुत्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ अजशृङ्गी कटुस्तिक्ता कफार्शःशूलशोफजित्। चक्षुष्या श्वासहृद्रोगविषकासार्त्तिकुष्ठजित्॥ राजनिघण्टुः॥ मेषशृङ्गी रसे तिक्ता वातला श्वासकासहृत्। रूक्षा पाके कटुस्तिक्तो व्रणश्लेष्माक्षिशूलनुत्॥ मेषशृङ्गी 'फलं' तिक्तं कुष्ठमेहकफप्रणुत्। दीपनं स्त्रंसनं कासकृमिव्रणविषापहम्॥ भावप्रकाशः।

वैद्यके व्यवहारः– (१) 'अञ्जने विषसंसृष्टे' मेषशृङ्गी–"अञ्जनं मेषशृङ्गस्य" (क. १ अ.)। (२) 'कफोत्थिते शिरोरोगे' मेषशृङ्गी–"इङ्गुदस्य त्वचा वापि मेषशृङ्ग्या च वा भिषक्। आभ्यामेव कृता वर्त्तीर्धूमपाने प्रयोजयेत्॥" (उ. २६ अ.)। सुश्रुतः॥ 'अर्शःसु मेषशृङ्गी–अजशृङ्गीजटाकल्कमजामूत्रेण यः पिबेत्। गुड़वार्त्ताकुभुक्तस्य नश्यन्त्याशु गुदाङ्कुराः॥" (चि. ८ अ.)। वाग्भटः।

अजशृङ्गी, मेषशृङ्गी (Gymnema Sylvestra, Asclepias Geminata, Roxb.)

मेषशृङ्गी के भेद- वृश्चिकानी (Asclepias montana) ईषद्रोमश श्वेत पुष्पगुच्छा, दक्षिणावर्तवल्ली मेष-शृङ्गी भेद (डल्वणः)।

विविध भाषाओं में नाम-

सं०- मेषशृङ्गी, विषाणी, अजशृङ्गिका। हि०- मेढाशिङ्गी। मेढा सिंघी। ब०- मेढा शिगे, मेढ शिङ्ग, माडल शिङ्गी। म०- मेढ़ रिङ्गी। गु०- मरड़ा शिङ्गी, आटवीनी शीङ्ग। क०- उरियम, कुरुटगे। ता०- शिरु करञ्ज। ते०- चिदुमठी पुल्लपाड़ो। द्रा०- वहतिरुप्पि, परपटरा। फा०- किस्त। अ०- वर्किस्त। ले०- जिम्नेमा सिल्वेस्टरी (Gymnema sylvestre)।

मेषशृङ्गी का अन्वर्थज्ञापिका सं०- तिक्तदुग्धा, चक्षुष्या, सर्पदंष्ट्रा।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- अजशृङ्गी शीतल तथा स्वादिष्ट है तथा शोथ, प्यास तथा वमन को जीत लेती है। यह नेत्र के लिये हितकर है, स्वादु है तथा प्यास, विष विकार, कास, पीड़ा तथा कुष्ठ रोग को दूर करती है।

राजनिघण्टु के अनुसार- अजशृङ्गी (मेढाशिङ्गी) कटु तथा तिक्त रस है और कफ विकार, अर्श रोग, शोथ तथा शूल को दूर करती है। यह नेत्र के लिए हितकर है और श्वास, हृदयरोग, विष विकार, कास, पीड़ा तथा कुष्ठरोग को दूर करती है।

भावप्रकाश के अनुसार- मेषशृङ्गी (मेढ़ा सिंघी) रस में तिक्त है, वातकारक है तथा श्वास कास को दूर करनेवाली है, पाक में रूक्ष है, कटु तथा तिक्त है और व्रण, कफ विकार तथा अक्षिशूल को दूर करती है। मेषशृङ्गी का फल तिक्त होता है तथा कुष्ठरोग, प्रमेह तथा कफ को दूर करती है और कास, क्रिमी रोग तथा विष विकार को दूर करती है।

वैद्यक शास्त्र में मेषशृङ्गी का प्रयोग-

(१) विषविकार में अंजन का प्रयोग- मेषशृङ्गी का अञ्जन विषविकार में करे। (सु० क० अ० १)। (२) **कफजन्य शिरोरोग में मेषसिंधी का प्रयोग-** कफजन्य शिरोरोग में इङ्गुदी की छाल तथा मेषशृङ्गी का मूल इन दोनों के द्वारा निर्मित वर्ति धूमपान के लिए प्रयोग करे। (सु० उ० अ० २६)।

सभी रोगों में मेषशृङ्गी का प्रयोग- अजशृङ्गी के मूल का कल्क बकरी के मूत्र के साथ जो पान करता है तथा गुड़ और बैगन खाता है उसका अर्श रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

Constituents—The sun-dried leaves contain resin; a bitter neutral principle; albuminous and colouring matters; pararabin, glucose, carbo-hydrates, tartaric acid, gymnemic acid 6 p.c. and ash. The bark contains starch and a large amount of clacim salts and other crystalline concretions. **Actions and uses**—Astringent, stomachic, tonic, and refrigerant; given in fever, cough. The root powder mixed with castor-oil is applied externally like lecacuanha to snake and insect bites. The leaves are applied like varalians to enlarge liver or spleen; the leaves when chewed benumb for a time the taste for sweets and bitters such as sugar and quinine. (R.N. Khory—Vol. II, p. 399).

यवानीत्रयम्

Ptychotis Ajowan

यवानी, दीप्यकः—*Ptychotis Ajowan, Carum Copticum, Benth.* **अजमोदा, वन्ययवानी**—*Ligusticum Diffusum, Roxb.* **यावनी यवानी, खुरासानी यवानी**—*Conium Maculatum.*

अन्वर्थसंज्ञाः—यवान्याः—"दीपनी", "वातारिः", "शूलहन्त्री", "तीव्रगन्धा", "अग्निवर्द्धिनी"। 'अजमोदायाः'—"उग्रगन्धा", "गन्धदलः"। "यावनीयवान्याः—"तुरष्का", "मदकारिणी"॥ 'यवानी' कटुतिक्तोष्णा वातश्लेष्मद्विजामयान्। हन्ति गुल्मोदरं शूलं दीपयत्याशु चानलम्॥ यवानी 'यावनी' रूक्षा ग्राहिणी मादिनी कटुः॥ 'अजमोदा' च शूलघ्नी तिक्तोष्णा कफवातजित्। हिक्काऽऽध्मानारुचिं हन्ति क्रिमिजित् वह्निदीपनी॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ 'यवानी' कटुतिक्तोष्णा वातार्शःश्लेष्मनाशनी। शूलाध्मानकृमिच्छर्द्दिमर्द्दनी दीपनी परा॥ 'अजमोदा' कटुरुष्णा रूक्षा कफवातहारिणी रुचिकृत्। शूलाध्माननारोचक-जठरामयनाशिनी चैव॥ राजनिघण्टुः॥ 'यवानी' पाचनी रुच्या तीक्ष्णोष्णा कटुका लघुः। दीपनी च तथा तिक्ता पित्तला वान्तिशूलहृत्॥ वातश्लेष्मोदरानाहगुल्मप्लीहकृमिप्रणुत् 'अजमोदा' कटुस्तीक्ष्णा दीपनी कफवातनुत्। उष्णा विदाहिनी हृद्या वृष्या बलकरी लघुः। नेत्रामयकफच्छर्द्दिहिक्कावस्तिरुजो हरेत्॥ 'पारसीकयवानी' तु यवानीसदृशी गुणैः। विशेषात् पाचनी रुच्या ग्राहिणी मादिनी गुरुः॥ भावप्रकाशः। यवानी कोष्ठशूलघ्नी हृद्या पित्ताग्निकारिणी। समीरणवलासघ्नी कृमीनाञ्चैव नाशिनी॥ राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः—'अर्शःसु' यवानी—"...शीधुसंसुक्तमजाजीदीप्यकं पिबेत्।" (चि. ९ अ.)। चरकः॥ (१) 'दन्तरोगे' यवानी—"यवानीञ्च वचां रात्रौ दन्त-मूले च धारयेत्।" (चि. ४५ अ.)। (२) 'गलशुण्डिकायां' यवानी—"दिवा रात्रौ यवान्याश्च मुखे सन्धारणं हितम्।" (चि. ४५ अ.)। हारीतः॥ (१) 'शीत-पित्ते' यवानी—"सगुडं दीप्यकं यस्तु खादेत् पथ्यान्नभुङ् नरः। तस्य नश्यति सप्तहादुदर्द्दः सर्वदेहजः॥" (शीतपित्त-चि.)। (२) 'कृमिषु' पारसीकयवानी—"पारसी यवानिका पीता पर्युषितवारिणा प्रातः। गुडपूर्वा कृमिजातं कोष्ठगतं पातयत्याशु॥" (कृमि-चि.)। चक्रदत्तः।

यवानी, दीपकः (Ptychotis Ajowan, Carum Coppicum, Benth.), अजमोदा, वन्ययवानी (Ligusticum Diffusum, Roxb.), यावनी यवानी, खुरासनि यवानि (Conium Maculatum)

विविध भाषाओं में नाम-

यवानी का सं०- यवानी, उग्रगन्धा, ब्रह्मदर्भा, अजमोदिका, दीपका, दीप्या, यवसाह्वा। हि०- अजवायन, अजमायन अजवां, अजोंवी। बं०- यमाणी, योयान, जीवान्। म०- ओवा, उँवा। गु०- अजमा, यमान, यवानी, जवाईन, अजमो। क०- उंढुओमु। तै०- वामु, ओमनी, ओमा। ता०- अमन, ओमन। भा०- अजमाण। काश्मीर - अविन्द। फा०- नानुखा, जीजान। अ०- कमुन, अमूने। अं०- दी विशिप्स बड़े (The bishpaued)। अजुकसीडस (Ajuc Seeds)। ले०- कारमकोप्टिकम् (Carum copticum)।

अजमोदा सं०- अजमोदा, खराश्वा, मायूरः, दीप्यकः, ब्रह्मकुशा, कारवी। हि०- अजमोद, अजमोदा। बं०- वनयमानी, रान्धुनी, अजमूढ चलु। गु०- वोडी अजमोद। कर्णा०- अजमोद। तै०- अजमोदा। द०- अजमुदा, अजवां, फा०- करास। अं०- सिलेरसीडस (Seler Seeds)। ले०- कारम राक्स वर्धियानम् (Carum Rox lurghia num)।

खुरासानी अजवायन सं०- पारसीकयवानी। हि०- खुरानी अजवाईन, किरमानी अजवाईन। ब०- खुरासानी योयान, खोरासानी यमानी। गु०- खुरसानी अजमा। तै०- सुरसाज वामु। म०- खुरासानी अम्बा। ता०- खुरसानी उनाम। द्रा०- कुरोसानि ओमन। फा०- तुख्मवजे, वजदिवामा, तुख्म विनम, तुख्म वंग। अ०- वजरुलवऊ, ऊवीज, किराना, वजुला वज्ज, वज्र रूल विनेग। यू०- अजवाइन, खुरासानी। ले०- हायोसायमस निगर (Hyocyomus Niger)

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा- यावनी-दीपनी, वातारिः, शूलहन्त्री, तीव्रगन्धा, अग्निवर्द्धिनी। अजमोदा- उग्रगन्धा, गन्धदलः।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- अजवायन कटुरस, तिक्तरस तथा उष्ण और वातश्लेष्म, द्वन्द्वज रोगों का तथा गुल्म, उदररोग और शूलरोग का नाश करती है, जाठराग्नि को शीघ्र की प्रदीप्त करती है। यवानी यावनी रूक्ष, ग्राही, मादक तथा कटुरस है और अजमोदा शूल नाशक है, तिक्तरस तथा उष्ण है और कफ-वात को दूर करती है। इनके अतिरिक्त हिक्कारोग, आध्मान तथा अरुचि का नाश करती है और क्रिमी नाशक है अग्निदीपक है।

राजनिघण्टु के अनुसार- यवानी (अजवायन) कटुरस, तिक्तरस तथा उष्ण है और वातरोग, अर्शरोग तथा कफ रोग का नाश करती है। यह शूल, आध्मान रोग तथा वमन का मर्दन करनेवाली है और उत्तम जाठराग्नि दीपक है। अजमोदा कटुरस, उष्ण तथा रूक्ष है और कफ-वातरोग का नाश करती है। यह शूल, आध्मान, अरोचक तथा जाठरामय का नाश करती है।

भावप्रकाश के अनुसार- अजवायन पाचक, रुचिकारक, तीक्ष्ण तथा उष्ण है और कटुरस एवं लघु है। यह जाठराग्निदीपक है तथा तिक्तरस है और पित्तकारक एवं वमन तथा शूल का नाश करती है। यह वात-कफ रोग, उदररोग, आनाह, गुल्मरोग, प्लीहारोग तथा क्रिमिरोग को दूर करती है। अजमोदा कटु तथा तीक्ष्ण है और जाठराग्नि दीपक है एवं कफ-वातनाशक है। यह उष्ण, विदाही है, हृदय को बल देनेवाली है, वीर्य वर्द्धक, बलकारक है तथा लघु है। यह नेत्ररोग, कफविकार, वमन, हिक्कारोग तथा कर्ण के रोगों को दूर करती है। पारसीक अजवायन अजवायन के सदृश गुणवाली है। विशेषकर पाचन है, रुचिकारक है, ग्राही है, मादक है तथा गुरु है।

राजवल्लभ के अनुसार- अजवायन कोष्ठ के शूल का नाश करती है, हृद्य है, पित्त तथा अग्नि को बढ़ानेवाली है, वात विकार तथा कफ विकार का नाश करती है तथा क्रिमिरोग का नाश करती है।

वैद्यक शास्त्र में अजवायन का प्रयोग-

अर्श रोग में यवानी का प्रयोग- जाठराग्नि दीपक अजवायन के चूर्ण का अर्श रोग में शीधु के साथ पान करे। (च०चि० अ०९)।

(१) दन्त रोग में यवानी का प्रयोग- अजवायन तथा वच की जड़ का रात्रि में दांत के मूल में धारण करे। (हारीत, चि० अ० ४५)। **(२) गलशुण्डिका में अजवायन का प्रयोग-** गलशुण्डि रोग में अजवायन का दिन में तथा रात्रि में मुख में धारण करे। (हारीत चि० अ०४५)।

(१) शीतपित्त में यवानी का प्रयोग- पथ्य अन्न को खाते हुए जो व्यक्ति गुड़ के साथ अजवायन को खाता है उसके सम्पूर्ण शरीर में उत्पन्न उदर्द (शीतपित्त उछला) रोग नष्ट होता है। (चक्र० शीतपित्त चिकित्सा)। **(२) क्रिमि रोग में पारसीक यवानी का प्रयोग-** प्रातःकाल पारसीक यवानी का चूर्ण गुड़ मिलाकर पान करने से कोष्ठगत क्रिमि समूह शीघ्र ही गिर जाता है। (चक्र० क्रिमि चि०)।

Constituents *of Ptychotis Ajowan.*—An aromatic volatile oil and a crystalline substance which collects on the surface of the distilled water. This stearopten, known under the Hindustanee name of Ajawankaphul, flowers of Ajowan or Ajowan Camphor, is identical with English thymol contained in thymus vulgaris. **Actions and uses**—Diffusible, stimulant stomachic, carminative, antispasmodic and antiseptic. The fruit combines the powerful stimulant qualities of mustard or capsicum, the bitter property of Chiretta and the antispasmodic virtues of asafetida, and is of great service in cholera. As an antiseptic, it removes offensive smell from foul ulcers. As a stomachic it increases the flow of saliva, augments eructations, heart-burn, &c. As an antispasmodic it is given in flatulency, colicky pains, hysteria, stoppage of urine and tympanitis. In bronchitis, with profuse expectoration, it lessons the septum. A poultice of crushed fruits is applied to painful rheumatic joints, and fomentation of hot seeds to the chest in bronchitis, asthma and to the cold hands and feet in cholera, fainting and syncope. Ajawanaka phul, is antiseptic and germicide. With camphor and other antispasmodics it is given in cholera, diarrhoea, intestinal colic, spasm of the stomach, asthma and dysmenorrhoea. The oil is applied as a stimulant embrocation for the relif of pains in the limbs or rheumatism, and also given internally for colic tympanitis &c. Aqua ptychotis is used to disguise the taste of naunseous drugs. (R. N. Khory—Vol. II, p. 297). **Constituents** *of Conium Maculatum.*—The leaves contain a volatile oil to which the smell is due. The leaves and fruit contain 3 alkaloids known as Coniine ($^1/_5$ to $^1/_2$ p.c.) liquid and volatile; methylconiine, and conhydrine, both solid and volatiliatilizable and pseudo conhydrine; a volatile oil, fixed oil, conic acid or malic acid, and ash 6 p.c. Conine or coniine cicutine or conicine. *Physiological actions*—Sedative, entispasmodic, anodyne, soporific, and antaphrodisiac. Like curare it paralyses the end organs of motor nerves, without affecting sensation or consciousness. If given for sometime it afterwards paralyses the motor centeres in the brain and spinal cord, The muscular irrtability remains intact. It is a direct sedative to the respiratory centres, and death is due to paralyses of the respiratory muscles. (R.N. Khory—Vol. II, p. 185).

रसोनः

Allium Sativum, Garlic

रसोनः, लशुनः–*Allium Sativum, Garlic.* भेदः–महारसोनः।

अन्वर्थसंज्ञाः–रसोनस्य–"शुक्लकन्दः", "म्लेच्छकन्दः", "महौषधः", "उग्रगन्धः", "शीतमर्दकः", "वातारिः"। 'महारसोनस्य'–"पृथुपत्रः", "दीर्घपत्रकः", "महाकन्दः", "स्थूलकन्दः", "बलेहितः"॥ कृमिकुष्ठकिलासघ्नो वातघ्नो गुल्मनाशनः। स्निग्धश्चोष्णश्च वृष्यश्च रसोनः कटुको गुरुः। (सू. २७ अ.)। चरकः॥ वृष्यश्च मेधास्वरवर्णचक्षु भग्नास्थिसन्धानकरो रसोनः। हृद्रोगजीर्णज्वरकुक्षिशूल-विबन्धगुल्मारुचिकासशोफान्॥ दुर्नामकूष्ठानलसादजन्तु समीरणश्वासकफांश्च हन्ति। (सू. ४६ अ.)। सुश्रुतः॥ पित्तरक्तविनिर्मुक्तसमस्तावरणावृते। शुद्धे वा विद्यते वायौ न द्रव्यं लशुनात् परम्॥ (उ. ४९ अ.)। वाग्भटः॥ 'रसेन' उष्णः कटुपिच्छिलश्च स्निग्धो गुरुः स्वादुरसोऽतिबल्यः। वृष्यश्च मेधास्वरवर्णचक्षु भग्नास्थिसन्धानकरः सुतीक्ष्णः॥ हृद्रोग जीर्णज्वरकुक्षिशूलविबन्धगुल्मारुचिकृच्छ्र-शोफान्। दुर्नामकुष्ठानिलसादजन्तु कफामयान् हन्ति 'महारसोनः'॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ रसोनोऽम्लरसोनः स्याद गुरूष्णः कफवातनुत्। अरुचिकृमिहृद्रोगशोफघ्नश्च रसायनः॥ राजनिघण्टुः॥ पञ्चभिश्च रसैर्युक्तः रसेनाम्लेन वर्जितः। तस्माद्रसोन इत्युक्तो द्रव्याणां गुणवेदिभिः॥ कटुकश्चापि मूलेषु तिक्तः पत्रेषु संस्थितः। नाले कषाय उद्दिष्टो नालाग्रे लवणः स्मृतः॥ बीजे तु मधुरः प्रोक्तो रसस्तद्गुणवेदिभिः॥ रसोनो वृंहणो वृष्यः स्निग्धोष्णः पाचनः सरः। रसपाके च कटुकस्तीक्ष्णो मधुरको मतः॥ भग्न-सन्धानकृत् कण्ठ्यो गुरुः पित्तास्त्रवृद्धिदः। बलवर्णकरो मेधाहितो नेत्र्यो रसायनः॥ मद्यं मांसं तथाम्लञ्च 'हितं' लशुनसेविनाम्॥ व्यायाममातपं रोषमतिनीरं पयो गुडम्। रसोनमश्नन् पुरुष'स्त्यजेदे। तन्निरन्तरम्॥ भावप्रकाशः॥ लशुनः क्षारमधुरः कण्ठ्यो वृष्यो गुरुः सरः। भग्नसन्धानकृद् बल्यो रक्तपित्त प्रदूषणः॥ राजवल्लभः।

वैद्यके व्यवहारः– (१) विषमज्वरे रसोनः–"रसोनस्य सतैलस्य प्राग्भक्तमुपसेवनम्। मेध्याना-मुष्णवीर्यानामामिषानाञ्च भक्षणम्॥" (चि. ३ अ.)। (२) वातगुल्मे रसोनः–"साधयेत् सिद्धशुष्कस्य रसोनस्य चतुष्पलम्। क्षीरे जलाष्टगुणिते क्षीरशेषञ्च ना पिबेत्॥ वातगुल्ममुदावर्त्तं गृध्रसीं विषमज्वरम्। हृद्रोगं विद्रधिं शोथं साधयत्याशु तत्पयः॥ (चि. ५ अ.)। (३) अपस्मारे रसोनः–"प्रयुञ्ज्यात् तैललशुनम्।" (चि. १५ अ.)। चरकः॥ (१) विषमज्वरे रसोनः–"प्रातः प्रातः ससर्पिस्कं रसोन मुपयोजयेत्।" (उ. ३९ अ.)। (२) शोषे रसोनः–"रसोनयोगं विधिवत् क्षयार्त्तः" (उ. ४१ अ.)। सुश्रुतः॥ वातश्लेष्मभवे शूले रसोनः–"रसोनं मद्यसंमिश्रं पिबेत् प्रातः प्रकाङ्क्षितः। वातश्लेष्मभवं शूलं निहन्तुं वह्निदीपनम्॥" (शूल-चि.)। चक्रदत्तः॥ वातव्याधौ रसोनः–"पिष्ट्वा सुसूक्ष्मं लशुनस्य कन्दं घृतेन लिह्यात् घृतभोजनाशी। तस्य प्रणश्यन्ति हि वातरोगाः संस्कारहीनात् पुरुषादिवार्थः॥" (वातव्याधि-चि.)। वङ्गसेनः॥ व्रणक्रिमिनाशनार्थं रसोनः–"...हन्याद् व्रणकृमीन्॥ लशुनस्याथवा लेपः।" (व्रण-चि.)। भावप्रकाशः॥

रसोन, लसुन (Allium Sativum, Garlic)

भेद- महारसोन, रसोन।

विविध भाषाओं में नाम-

सं॰- लसुनः, रसोनः, उग्रगन्धः, स्वच्छकन्दः, यवनेष्टः। हि॰- लहसुन, लसुन, लहसन। बं॰- लसन, रसुन। म॰- लसण, लसन। द्रा॰- बल्ललि। पं॰- थोम। फा॰- शार, सूमशीर। अ॰- सोमसूम, सुमल, हैयार, सुभइस्कुदिंयून। अं॰- गार्लिक रुट (Garlic Root)। ले॰- एलियम साटिवम (Allium Sativum)।

अन्वर्थ ज्ञापिका सं॰- रसोन- शुक्लकन्दः, म्लेच्छकन्दः, महौषधः, उग्रगन्धः, शीतमर्दकः, वातारिः। महारसोन- पृथुपत्रः, दीर्घपत्रकः, महाकन्दः, स्थूलकन्दः, बलेहितः।

गुण एवं दोष-

चरक के अनुसार- रसोन क्रिमिरोग कुष्ठरोग तथा किलास रोग का नाश करता है, वातनाशक तथा गुल्म नाशक है। यह स्निग्ध तथा उष्ण है, वीर्यवर्द्धक है, कटुरस तथा गुरु है। (च॰सू॰अ॰२६)।

सुश्रुत के अनुसार- रसोन वीर्यवर्द्धक है तथा मेधा, स्वर, वर्ण, नेत्र के लिए हितकर है और भग्न अस्थि का संधान (जोड़ना) करता है। यह हृदय रोग, जीर्णज्वर, कुक्षिशूल, विबन्ध, गुल्मरोग, अरुचि, कास, शोथ, अर्शरोग, कष्ठरोग, मन्दाग्नि, क्रिमि विकार, वात रोग, श्वास तथा कास एवं कफ का नाश करता है। (सु॰सू॰ अ॰४६)।

वाग्भट के अनुसार- पित्तरक्त निर्मुक्त समस्त आवरण से आवृत रहने पर या शुद्धि होने पर वात रोग में लहसुन से उत्तम और औषध कोई नहीं है। (वाग्भट उ॰ अ॰४९)।

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- रसोन उष्ण, कटुरस, पिच्छिल, स्निग्ध, गुरु, स्वादु रस, अधिक बल कारक, मेधा, स्वर, वर्ण तथा नेत्रदृष्टि वर्द्धक, भग्नास्थि संधान कारक तथा तीक्ष्ण है। महारसोन हृदयरोग, जीर्ण ज्वर, उदरशूल, विबन्ध, गुल्म रोग, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, शोथ, अर्शरोग, कुष्ठरोग, मन्दाग्नि, क्रिमिरोग तथा कफरोगों का नाश करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- रसोन अम्ल रसरहित, स्वादिष्ट, गुरु तथा उष्ण है और कफ-वात को दूर करता है। यह अरुचि, क्रिमिरोग, हृदयरोग तथा शोथ का नाश करता है और रसायन है।

भावप्रकाश के अनुसार- रसोन पाँच रसों (मधुर, लवण, कटु, तिक्त तथा कषाय) से युक्त तथा अम्ल रस से रहित होता है अतः रसोन ऐसा द्रव्य गुण को जाननेवाले कहते हैं। रसोन के मूल में कटुरस है, पत्तों में तिक्त रस है, नाल में कषाय रस कहा गया है, नाल के अग्रभाग में लवण रस कहा गया है और सम्पूर्ण रस गुण के जाननेवाले विद्वान बीज में मधुर रस कहते हैं। रसोन मांसवर्द्धक है, वीर्य वर्द्धक है, स्निग्ध है, उष्ण है, पाचन है तथा सारक है, रस तथा पाक में कटु है, तीक्ष्ण है तथा मधुर है। यह भग्न संधान कारक है, कुष्ठ के लिए हितकर है, गुरु है और पित्त विकार एवं रक्त विकार को बढ़ाता है। यह बल तथा वर्णकारक है, मेधा के लिए हितकर है, नेत्र के लिए हितकर है तथा रसायन है। रसोन खानेवालों के लिए मद्य, मांस तथा अम्लपदार्थ हितकर हैं। रसोन खानेवाला पुरुष व्यायाम करना, धूप में बैठना, क्रोध करना, अधिक जल पीना, दूध पीना तथा गुड़ खाना निरन्तर त्याग दे।

राजवल्लभ के अनुसार- लहसुन, क्षारीय, मधुर, कण्ठ के लिए हितकर, वीर्य वर्द्धक, गुरु, सारक, भग्नसन्धानकारक, बलकारक तथा रक्तपित्त को प्रदूषित करनेवाला है।

वैद्यक शास्त्र में लहसुन का प्रयोग-

(१) विषमज्वर में लहसुन का प्रयोग- मेध्य पदार्थ उष्ण वीर्यवाले पदार्थ तथा आमिष खानेवाले व्यक्तियों को भोजन के पहले तैलयुक्त रसोन का भक्षण उत्तम है। (च०चि०अ०३)। (२) **वातगुल्म में रसोन का प्रयोग-** सिद्ध तथा सूखा रसोन चार पल (२०० ग्राम) अठगुने जल तथा दूध में पकावे। दूध मात्र शेष रहने पर मनुष्य पान करे। यह दूधपान वातगुल्म, उदावर्त, गृध्रसी रोग, विषमज्वर, हृदयरोग, विद्रधि तथा शोथ को शीघ्र ही दूर करता है। (च०चि० अ०५)। (३) **अपस्मार में रसोन का प्रयोग-** अपस्मार में लहसुन के कल्क के साथ जल मिलाकर विधिवत् सिद्ध तैल अपस्मार रोग में प्रयोग करे। (च०चि०अ०१५)।

(१) विषमज्वर में लहसुन का प्रयोग- विषमज्वर में प्रत्येक दिन प्रातःकाल घृत के साथ भूनकर रसोन का सेवन करे। (सु०उ०अ०३९)। (२) **शोथ में रसोन का प्रयोग-** क्षय से पीड़ित व्यक्ति विविधवत् रसोन के योगों (लहसुन से निर्मित योगों) का सेवन करे। (सु.उ.अ. ४१)।

वातश्लेष्मजन्य शूल में रसोन का प्रयोग- रसोन को मद्य में मिलाकर अपनी इच्छा के अनुसार प्रातःकाल पान करे। यह वात-कफ जन्य शूल का नाश करता है तथा अग्नि दीपक है। (चक्र.शूल चि.)।

वातव्याधि में रसोन का प्रयोग- लहसुन के कन्द को महीन पीसकर घृत के साथ घी-भात भोजन करनेवाला चाटे। उसके वात रोग नष्ट हो जाते हैं जैसे संस्कारहीन पुरुष से अर्थ नष्ट हो जाता है। (बंगसेन, वात व्याधि चि.)।

व्रण क्रिमिनाश के लिए लहसुन का प्रयोग- लहसुन का लेप व्रण क्रिमि का नाश करता है। (भावप्रकाश, व्रण चि.)।

Constituents—An acrid volatile oil, starch, mucilage 35 p.c., albumen, sugar, &c. **Oil of Garlic—**A volatile oil, obtained by distillation; it contains allyl, propyl disulphide, diallyl disulphide and other sulpher compounds. It is clear limpid liquid of a dark brown or yellow colour; odour very repulsive; taste repungent, the medical properties are due to this oil. Dose $^1/_2$ to 2 ms. **Actions and uses—**As a gastric stimulant, it aids digestion, and is given in flatulence; as an expectorant it has a special influence over the bronchial and pulmonary secretions; as an emmenagogue it promotes the flood of menses. It is a tonic, carminative and stimulant of the skin and kidneys. In large doses it is an irritant and produces flatulence, headache, nausea, vomiting diarrhoea, &c. As a local stimulant and irritant, it reddens the skin and causes vesication. Like kanda, it is applied to the nose of hysterical girls when in state of swooning. Given with common salt it relives colic and nervous headache. As a vermifuge it expels round worms. Like onion it causes copious dinresis and is hence used in dropsy, or anasarca. Locally in bronchitis and in cold catarrh in children; bruised garlic and onions are applied to the chest as a poultice or liniment. Applied to the perineum it relieves strangury. It is also applied to the bites of venomous reptiles. Mustard powder is added to promote its rubefacient effects. It is rubbed over ring-worm with relief. Garlic juice slightly warmed, or the bulb is boiled with salad oil and the oil when cool is dropped into the ear for the relief of ear-ache. (R. N. Khory—Vol. II, p. 617).

राजादनः

Mimusops Indica

क्षीरी, राजादनः (नी)—*Mimusops Indica, D.C. Mimusops Hexandra, Roxb.*

अन्वर्थसंज्ञाः-"क्षीरवृक्षः", "क्षीरशुक्लः", "दृढस्कन्धः", "प्रियदर्शनः", "गुच्छफलः", "मधुफलः", "कपीष्टः", "निम्बबीजः", "माधवोद्भवः"॥ राजादनो रसे स्वादुः पाकेऽम्लः शीतलस्तथा। रुचिकारी भवेद्वातनाशनश्च प्रकीर्त्तितः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ राजादनी तु मधुरा पित्तहृद् गुरुतर्पणी। वृष्या स्थौल्यकरी हृद्या सुस्निग्धा मेहनाशकृत्॥ राजनिघण्टुः॥ क्षीरिकायाः फलं वृष्यं बल्यं स्निग्धं हिमं गुरु। तृष्णामूर्च्छा मदभ्रान्तिक्षयदोषत्रयास्त्रजित्॥ भावप्रकाशः॥ स्निग्धं स्वादु कषायञ्च राजादनफलं गुरु। (सू. ४६ अ.) सुश्रुतः॥ ...राजादनफलानि च। स्वादूनि सकषायानि स्निग्धशीतगुरुणि च॥ (सू. २७ अ.) चरकः॥

वैद्यके व्यवहारः-पित्तप्रदरे राजादनपत्रम्-"पत्रकल्कौ घृते भृष्टौ राजादनकपित्थयोः। पित्तानिलहरौ पैत्ते...॥" (चि. ३० अ.)। चरकः॥ न्यच्छे व्यङ्गे च राजादनः-"कपित्थराजादनयोः कल्कं वा हितमुच्यते" (चि. २० अ.)। सुश्रुतः॥

क्षीरी, राजादनः (नी) (Mimusops indica, D.C. Mimusops Hexandra, Roxb.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- राजादनः, फलाध्यक्षः, क्षीरिका। हिं.- खिरनी, खिन्नी। बं.- क्षीर खेजूर, राञ्जनी। म.- खिरनी, रायणी। गु.- रायण। क.- खिरणी नारा। ता.- पल्ल। ते.- पालमानु। अं.- ओब्टूस् लीब्ड् माइ सोप (obtuse leaved mimu sops)। ले.- माइमुसोप्स हेक्सेन्ड्रा (Mimusops Hexandra)।

अन्वर्थ ज्ञापिका सं.- क्षीरवृक्षः, क्षीरशुक्लः, दृढस्कन्धः, प्रियदर्शनः, गुच्छफलः, मधुफलः, कपीष्टः, निम्बबीजः, माधवीद्भवः।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- राजादनी (खिरनीफल) रस में स्वादिष्ट, पाक में अम्ल तथा शीतल है। यह रुचि कारक होती है तथा बात नाशक है।

राज निघण्टु के अनुसार- राजादनी मधुर, पित्त शामक, गुरु तथा तृप्तिकरक है। यह वीर्यवर्द्धक है, स्थौल्य कारक है, हृदय को बल देनेवाला है, स्निग्ध है तथा प्रमेह नाशक है।

भाव प्रकाश के अनुसार- क्षीरिका (खिरनी) का फल वीर्य वर्द्धक, बल वर्द्धक, स्निग्ध, शीतल तथा गुरु यह प्यास, मूर्च्छा, मद, भ्रान्ति, क्षय रोग, तीनों दोष तथा रक्त विकार को दूर करता है।

सुश्रुत के अनुसार- राजादन फल (खिरनीफल) स्निग्ध, स्वादिष्ट, कषाय रस तथा गुरु है। (सु.सू.अ. ४६)

चरक के अनुसार- राजादन फल स्वादिष्ट कषाय रस, स्निग्ध, शीत तथा गुरु है। (चरक सू. अ. २७)

वैद्यक शास्त्र में राजादन का प्रयोग-

पित्त प्रदर में राजादनपत्र का प्रयोग- राजादन तथा कपित्थ के पत्रों के कल्प को घृत में भूनकर पैत्तिक प्रदर में पान करे। यह पित्त-वात विकार को दूर करता है। (च.चि.अ. ३०)।

न्यच्छ तथा व्यङ्ग में राजादन का प्रयोग- कपित्थ तथा राजादन का कल्क न्यच्छरोग तथा व्यङ्ग (झाई) रोग में हितकर है। (सु.चि.अ. २०)।

Constituents—The bark contains tannin, resin, wax, a colouring matter, starch and mineral matters. The seeds contain a fixed oil. The fruits contain sugar, caoutchouc, pectin colouring matter and tannin. **Actions and uses**—The bark is astringent and used for the same purposes as mohvara and bakuli. A paste of the seeds is used to procure abortion. The oil from the seeds is demulcent and emollient. The ripe fruit is deliciously sweet and restorative. (R. N. Khory— Vol. I, p. 430).

रास्नास्तिस्त्र:

Qunla Helenium

मूलरास्ना, पत्ररास्ना, तृणरास्ना।–मूलरास्ना। *Qunla Helenium*

अन्वर्थसंज्ञाः–"सुगन्धमूला", "एलापर्णी"॥ रास्ना तिक्तोष्णगुर्वी स्याद्विषवातास्त्रकासजित्। शोफवातोदरश्लेष्मशमन्यामस्य पाचनी॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ रास्ना तु 'त्रिविधा' प्रोक्ता मूलं पत्रं तृणं तथा। ज्ञेये मूलदले श्रेष्ठे तृणरास्ना च मध्यमा॥ रास्ना गुरुश्च तिक्तोष्णा विषवातास्त्रकासजित्। शोफकम्पोदरश्लेष्मशमनी पाचनी च सा॥ राजनिघण्टुः॥ रास्नाऽऽमपाचनी तिक्ता गुरूष्णा कफवातजित्। शोथश्वाससमीरास्त्रवातशूलोदरापहा। कासज्वरविषाशीति–वातिकामयसिध्महृत्॥ भावप्रकाशः॥ रास्ना शोथामवातघ्नी। राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) अग्यग्रग्रन्थे रास्ना– "रास्ना वातहराणाम्", "रास्नाऽगुरुणी शीतापनयनप्रलेपानाम्" (सू. २५ अ.)। (२) अर्शःसु रास्ना– "रास्ना-पिण्डैः सुखोष्णैर्वा... स्वेदयेत्।" (चि. ९ अ.)। (३) वातव्याधौ रास्ना–"रास्नासहस्त्रनिर्यूहे तैलद्रोणं विपाचयेत्। गन्धैर्हैमवतैः पिष्टैरेलान्तैश्चानिलार्त्तिनुत्॥" (चि. २८ अ.)। चरकः॥ वातव्याधौ रास्ना–"रास्नायास्तु पलञ्चैकंम् कर्षान् पञ्च च गुग्गुलोः। सर्पिषा वटिकां कृत्वा खादेद्वा गृध्रसीहरान्॥" (वातव्याधि-चि.)। चक्रदत्तः॥

मूलरास्ना, पत्ररास्ना, तृणरास्ना। (Qunla Helenium)।

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– रास्ना, युक्तरसाः, एलापर्णी, सुगन्धा, श्रेयसी। हि.– रासन, रायसन, रचना, रोचना, वाय सुरई, रसना। वं.– रास्ना। म.– नावलिया, मूला, रास्ना। मा.– राठ का पान। गु.– रासना। क.– रासना, केदार, सनरास्ने । द्रा.– सन्न दुम्प राष्ट्रम्। फा.– रासुन। अ.– जजवीलशमी। ले.– क्यून्ला रेसेमोसा (Qunla Recemosa)।

अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा– सुगन्धमूला, एलापर्णी।

गुण एवं दोष–

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार– रास्ना तिक्तरस, उष्ण तथा गुरु है और यह विष विकार, वात विकार, कफविकार तथा कास को दूर करती है। यह शोथ, वातरोग, उदररोग, कफविकार को शान्त करती है तथा आमपाचक है।

राज निघण्टु के अनुसार– रास्ना तीन प्रकार की होती है। मूलरास्ना, पत्ररास्ना तथा तृण रास्ना। रास्ना

के मूल तथा पत्र श्रेष्ठ हैं, तृणरास्ना मध्यम है। रास्ना गुरु, तिक्तरस तथा उष्ण है और यह विष विकार, वात विकार, रक्तविकार तथा कास का नास करती है। यह शोथ, कम्पवात, उदररोग तथा कफरोग को शान्त करती है तथा पाचक है।

भाव प्रकाश के अनुसार- रास्ना आमपाचक है, तिक्तरस, गुरु तथा उष्ण है और कफ विकार तथा वात विकार का नाश करती है। यह शोथ, श्वास, वातरोग, वातरक्त तथा शूल एवं उदररोग को दूर करती है। यह कास, ज्वर, विष विकार, अस्सी प्रकार के बात रोग तथा सिध्म रोग का नाश करती है।

राजवल्लभ के अनुसार- रास्ना शोथ तथा आम वात का नाश करती है।

वैद्यक शास्त्र में रास्ना का प्रयोग-

(१) **आर्षग्रन्थों में रास्ना का प्रयोग**- वातहर द्रव्यों में रास्ना प्रथम है। रास्ना गुरु नहीं है। यह लेप करने से शीत को दूर करती है। (च.सू.अ. २५) (२) **अर्श रोग में रास्ना का प्रयोग**- रास्ना के कल्क के पिण्डों से अर्श का स्वदेन करे। (च.चि.अ.९)। (३) **वात व्याधि में रास्ना का प्रयोग**- रास्ना के एक हजार पल (१०० किलो) क्वाथ में तैल एक द्रोण (१६ किलो) हेमवती के गन्ध का कल्क तथा इलाची के कल्क के साथ विधिवत् पाक करे। यह तैल वात पीड़ा को शान्त करता है। (च.चि.अ. २८)।

वातरोग में रास्ना का प्रयोग- रास्ना एक पल (५० ग्राम) तथा गुगुलु पाँच कर्ष (५०० ग्राम) मिलाकर तथा घी के साथ कूटकर गुटिका बनावे और गृध्रसी रोग में खाय। (चक्र. वातव्याधि चि.)।

रोहितकः

Amoora Rohituka

रोहितकः–*Amoora Rohituka W. and A. Andersonia Rohituka, Roxb.*

अस्य भेदः–शुक्लरोहितकः (The male tree). **अन्वर्थसंज्ञाः–रोहितकस्य–"प्लीहघाती", "सदाप्रसूनः", "दाडिमपुष्पसंज्ञकः"। शुक्लरोहितकस्य–"सितपुष्पः"॥ रोहितको यकृत्प्लीहगुल्मोदरहरः सरः। 'शुक्लरोहितकश्चैव' कटूष्णमुभयं स्मृतम्॥ कर्णरोगहरञ्चैव विषवेगविनाशनम्॥ धन्वन्तरीय-निघण्टुः॥ रोहितकौ कटुस्निग्धौ कषायौ च सुशीतलौ। कृमिदोषव्रणप्लीहरक्तनेत्रामयापहौ॥ राजनिघण्टुः॥ रोहितकः प्लीहघाती रुच्यो रक्तप्रसादनः। कषायः शीतलः स्निग्धो यकृद्गुल्महरो मतः। नेत्ररोगप्रशमनः क्रिमिघ्नो व्रणनाशनः॥ भावप्रकाशः॥ रोहितको यकृत्प्लीहगुल्मोदरहरः सरः। राजवल्लभः॥**

वैद्यके व्यवहारः– (१) कफपित्तमेहे रोहितकपुष्पम्–"वैभीतरौहीतककौटजानि कपित्थपुष्पाणि च चूर्णितानि। क्षौद्रेण लिह्यात् कफपित्तमेही।" (चि. ६ अ.)। (२) प्लीहोदरकामलादिषु रोहितकः–"रोहितकलतानान्तु काण्डकाः साभयाजले। मूत्रे वा शृतमेतच्च सप्तरात्रस्थितं पिबेत्॥ कामलागुल्ममेहार्शःप्लीहसर्वोदरकृमीन्। तद्धन्यात् जाङ्गलरसैर्जीणे स्याच्चात्र भोजनम्॥" (चि. १८ अ.)। (३) श्वेतप्रदरे रोहितकः–"रोहितकान्मूलकल्कं पाण्डरे प्रदरे पिबेत्।" (चि. ३० अ.)। चरकः॥

रोहितक :- (Amoora Rothituka W. and A. Andersonia Rohituka, Roxb.)

रोहितक के भेद :- रोहितक, शुक्लरोहितक।

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- रोहितकः, प्लीहघाती, दाडिमपुष्पकः। हि.- रोहेड़ा, रोहिड़ा। वं.- राढ़ो रयना, कझर। म.- रक्त रोहिड़ा, रगतरोहिड़ी। गु.- रोहिडो। क.- यरडूमलु। ते.- मुलू मोडुग चेट्टु। मा.- रोहिडा। ले.- टेकोमा अण्ड़यूलेटा।

अन्वर्थ ज्ञापिका सं.- रोहितक- प्लीहघाती, सदाप्रसूनः, दडिमपुष्पसंज्ञकः। शुक्लरोहितक- सितपुष्पः।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- रोहितक (रोहडे) यकृद् विकार, प्लीहावृद्धि, गुल्म रोग तथा उदर रोग को दूर करता है और सारक है। शुक्लरोहितक तथा राहितक दोनों कटुरस तथा उष्ण हैं। ये कर्ण रोग को दूर करते हैं तथा विष वेग का नाश करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- रोहितक कटुरस, स्निग्ध, कषायरस तथा शीतल है। यह क्रिमि विकार नाशक है। यह व्रण, प्लीहा रोग, रक्त विकार और नेत्र विकार का नाश करता है।

भाव प्रकाश के अनुसार- रोहितक प्लीहा नाशक, रुचिकारक, रक्त प्रसादक, कषायरस, शीतल, स्निग्ध, यकृत् रोग तथा गुल्मरोगहर कहा गया है। यह नेत्ररोग प्रशामक है, क्रिमिनाशक है तथा व्रण नाशक है।

राजवल्लभ के अनुसार- रोहितक यकृतरोग, प्लीहारोग, गुल्मरोग तथा हृदयरोग हर है एवं सारक है।

वैद्यक शास्त्र में रोहितक का प्रयोग-

(१) कफपित्त प्रमेह में रोहितक पुष्प का प्रयोग- वहेड़ा, रोहितक, कुटज तथा कपित्थ (कैथ) के पुष्प का चूर्ण कफ पित्त मेह में मधु के साथ चाटे। (च.चि.अ. ६)। **(२) प्लीहोदर कामला आदि में रोहितक का प्रयोग-** रोहितलता का काण्ड अभया (हर्रे) के जल में या गोमूत्र में पकाया हुआ तथा सात रात्रि तक रखा हुआ कषाय पान करे। यह कामलारोग, गुल्मरोग, प्रमेहरोग, अर्शरोग, प्लीहा रोग, उदररोग तथा क्रिमिरोग का नाश करता है। औषध के पच जाने पर जंगली पशुपक्षियों के मांस रस के साथ भोजन करे। (च.चि.अ. १८) **(३) श्वेत प्रदर में रोहितक का प्रयोग-** रोहितक के मूल का कल्क श्वेत प्रदर में पान करे (च.चि.अ.३०)।

Constituents—Two yellow resins, starch, colouring matter, tannin and salts; both resins are soluble in ether, but one is insoluble in alcohol and alkaline solutions the other is soluble in both these liquids and is of an acid nature. **Actions and uses**—Alterative, astringent and tonic, given in enlarged glands, as liver and spleen, in corpulence and in general debility. (R. N. Khory, Vol. II, p. 118).

लवङ्गम्

Caryophyllus Aromaticus

लवङ्गम्, देवकुसुमम्—*Caryophyllus Aromaticus, Linn., Cloves.*

लवङ्गं कुसुमं हृद्यं शीतलं पित्तनाशनम्। चक्षुष्यं विषहृद्वृष्यं माङ्गल्यं मूर्द्धरोगहृत्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ लवङ्गं शीतलं तिक्तं चक्षुष्यं भुक्तरोचनम्। वातपित्तकफघ्नञ्च तीक्ष्णं

मूर्द्धरुजापहम्॥ अपि च–लवङ्गं सोष्णकं तीक्ष्णं विपाके मधुरं हिमम्। वातपित्तकफामघ्नं क्षयकासास्त्रदोषनुत्॥ राजनिघण्टुः॥ लवङ्गं कटुकं तिक्तं लघु नेत्रहितं हिमम्। दीपनं पाचनं रूक्षं कफपित्तास्त्रनाशकृत्॥ नृणां छर्दिं तथाऽऽध्मानं शूलमाशु विनाशयेत्। कासं श्वासञ्च हिक्काञ्च क्षयं क्षपयति ध्रुवम्॥ भावप्रकाशः॥ आध्मानानाहशूलघ्नं लवङ्गं पाचनं लघु। राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः–पिपासायामनुत्क्लेशे च लवङ्गम्–"पिपासायामनुत्क्लेशे लवङ्गस्याम्बु शस्यते" (अग्निमान्द्य-चि.)। चक्रदत्तः।

लवङ्गम्, देवकुसुमम् (Caryophylilus Aromat otis linn Cloves)

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– लवङ्गम्, देवकुसुमम्, श्रीसंज्ञम्। हि.– लौङ्ग, लवङ्ग, करन फल। बं.– म.– लवङ्ग। गु.– लविङ्ग। क.– लवङ्ग कलिका। ते.– लवङ्गलू। ता.– किरमवेर। द्रा.– लवं, लवङ्ग। फा.– मेहक। अ.– करनफुल। अं.– क्लोव्स (Cloves)। ले.– केरियोफाइलस एरोमेटिकस (Ceryophyllus Aromaticus).

गुण एवं दोष–

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार– लवंग कुसुम ह्रदय को बलदेनेवाला, शीतल तथा पितनाशक है। यह नेत्र के लिए हितकर है, विषविकार को दूर करता है, वीर्य वर्द्धक है, मंगल कारक है तथा मूर्धा (शिरोरोग को दूर करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार– लवंग शीतल, तिक्तरस, नेत्र के लिए हितकर, भोजन में रुचि करानेवाला है और वात, पित्त, कफ नाशक, तीक्ष्ण तथा शिरोरोग नाशक है। और भी इसके गुण हैं– लवंग उष्ण तथा तीक्ष्ण है, विपाक में मधुर तथा शीतल है। यह वात-पित्त-कफ रोग नाशक है और क्षय रोग, कासरोग तथा रक्तविकार को दूर करता है।

भावप्रकाश के अनुसार– लवंग कटुरस, तिक्तरस तथा लघु है और नेत्र के लिए हितकर है एवं शीतल है। यह दीपन, पाचन तथा रूक्ष है और कफ विकार, पित्त विकार तथा रक्त विकार का नाश करता है। यह मनुष्यों के वमनरोग, आध्मान तथा शूल का शीघ्र ही नाश करता है और कास रोग, श्वास रोग, हिक्का, तथा क्षय रोग को शीघ्र शान्त करता है।

राजवल्लभ के अनुसार– लवंग आध्मान, आनाह तथा शूल का नाश करता है, पाचन है एवं लघु है।

वैद्यक शास्त्र में लवङ्ग का प्रयोग–

पिपासा तथा अनुत्क्लेश में लवङ्ग का प्रयोग– पिपासा तथा अनुक्लेश के शमन के लिए लवङ्ग का श्रत जल पीये। (चक्र.अग्निमान्द्य चि.)।

Constituents—A heavy volatile oil 18 p.c., Caryophyllin—a camphor, resin 6 p.c. Caryophyllic acid or eugenic acid; eugenin, a crystallin body, tannin, woody fibre, gum &c. **Physiological Action—**Antiseptic, local anaesthetic, general stomachic, carminative, aromatic antiemetic and anti-spasmodic; externally rubefacient, anaesthetic and antisecptic; internally it increases the circulation and raises blood heat, promtes digestion and nutrition, and relieves gastric and intestinal pain and spasm. It stimulates the skin, salivary glands, kidneys, liver and

bronchial mucous membrane. It is excreted in the breath, prespiration, bile, milk and urine. **Therapeutics**—Given as a flavouring agent to correct griping caused by purgatives, to relieve flatulence and to increase the flow of saliva. In combination with other spices and rock salt it is given to relieve colic, indigestion, vomiting and thirst. Externally it is used as an application in rheumatic pains, sciatica, lumbago, to the head in headache, and to the tooth in toothache; roasted in the flame of a candle and kept in the mouth it improves the breath, relieves sorethroat and strengthens the gums. The powdered clove is a chief ingradient of a native preparation—lavangadi-curna, which is given in cough, asthma &c. A paste of them is applied to the forehead and to the nose is a popular remedy among the native in headache, coryza &c. (R. N. Khory, Vol. II, p. 265).

लाङ्गली

Gloriosa Superba Linn.

लाङ्गली, कलिकारी, हलिनी–*Gloriosa Superba Linn.*

अन्वर्थसंज्ञाः– "विशल्या", "गर्भपातिनी", "नक्तेन्दुपुष्पिका", "व्रणहृत्", "पुष्पसौरभा", "स्वर्णपुष्पा", "सारिणी"॥ लाङ्गली कटुरुष्णा च कफवातविनाशनी। तिक्ता सारा च श्वयथुगर्भ-शल्यव्रणापहा॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ कलिकारी कटूष्णा च कफवातनिकृन्तनी। गर्भान्तःशल्य-निष्कामकारिणी सारिणी परा॥ राजनिघण्टुः॥ कलिहारी सरा कुष्ठशोफार्शोव्रणशूलजित्। सक्षारा श्लेष्मजित् तिक्ता कटुका तुवरापि च। तीक्ष्णोष्णा क्रिमिजित् लघ्वी पित्तला गर्भपातिनी॥ भावप्रकाशः॥ हलिनीकरवीरश्च कुष्ठदुष्टव्रणापहौ। राजवल्लभः।

वैद्यके व्यवहारः– (१) उन्मन्थनाम्नि कर्णरोगे लाङ्गली–"सुरसा लाङ्गलीभ्याञ्च सिद्धं तीक्ष्णञ्च नावनम्" (उ. १८ अ.)। (२) इन्द्रलुप्ते... लाङ्गली–"इन्द्रलुप्ते प्रलेपयेत्। तथा लाङ्गलिकामूलैः" (उ. २४ अ.)। (३) रसायनार्थं लाङ्गली–"लाङ्गलीत्रिफलालोहपलपञ्चाशतीकृतम्। मार्करस्वरसे पिष्ट्वा गुटिकानां शतत्रयम्॥ छायाविशुष्कं गुटिकार्द्धमद्यात् पूर्वं समस्तामपि तां क्रमेण। भजेद्विरिक्तः क्रमशश्च मण्ड॥ पेयां विलेपीं रसकौदनञ्च॥ सर्पिः स्निग्ध मासमेकं यतात्मा मासादूर्द्ध्वं सर्वथा स्वैरवृत्तिः। वज्जर्यं यत्नात् सर्वकालं त्वजीर्णं वर्षेणैव योगमेवोपयुञ्ज्यात्॥ भवति विगतरोगो योऽप्यसाध्यामयार्त्तः, प्रबलपुरुषकारः शोभते योऽपि वृद्धः। उपचितपृथुगात्रश्रोत्रनेत्रादियुक्तम्, तरुण इव समानां पञ्च जीवेच्छतानि॥" (उ. ३९ अ.)। **वाग्भटः** (१) गण्डमालायां लाङ्गली–"निर्गुण्डीस्वरसेनाथ लाङ्गलीमूलकल्कितम्। तैलं नस्यान्निहन्त्याशु गण्डमालां सुदारुणाम्॥" (गलगण्ड-चि.)। (२) पक्वशोथप्रभेदने लाङ्गली–"चिरबिल्वाग्निकौ-दारणः परः" (व्रणशोथ-चि.)। (३) नष्ट-शल्यनिर्हरणार्थं लाङ्गली–"...नष्टशल्यं विनिःसरेत्...। लाङ्गली मूललेपाद्वा॥" (व्रणशोथ-चि.)। **चक्रदत्तः**॥ अमरापातनार्थं लाङ्गली–"लाङ्गलीमूलकल्केण पाणिपादतलानि हि। प्रलिम्पेत् सूतिका योषिदमरापातनाय वै॥" (मूढगर्भ-चि.)। भावप्रकाशः॥

लाङ्गली, कलिकारी, हलिनी (Gloriosa Superba Linn.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- कलिहारी हलिनी, लाङ्गली, विशल्या, अग्निशिखा, गर्भनुत्, शुक्लपुष्पी। हि.- कलिहा, कलिहारी:, कठियारी, कलिहंस, लाङ्गली। ब.- विषलाङ्गला। म.- कललावी, वागचवका, खड्यानाग। गु.- कूलमारी, डुधियो, वच्छनाग। क.- राड़ागारी। ता.- कलई पैकि शंगु। तै.- अग्नि शिख, वेन्नवेदरु। अं.- उल्फसबेन (Wolfs Bene)। ले.- ग्लोरियोसा सुपर्वा (Gloriosa Superba)।

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा- विशल्या, गर्भपातिनी, पुष्पिका नक्तेन्यु, व्रणहृत्, पुष्पसौरभा, स्वर्णपुष्पा, सारिणी।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- लाङ्गली कटुरस तथा उष्ण है और यह कफवात नाशक है। यह तिक्तरस है, सारक है तथा शोथ गर्भशल्य एवं व्रण का नाश करती है।

राजनिघण्टु के अनुसार- कलिकारी कटुरंस तथा उष्ण है और कफ-वात का नाश करनेवाली है एवं सारक है।

भावप्रकाश के अनुसार- कलिहारी सारक है, कुष्ठ, शोथ, अर्शरोग, व्रण तथा शूल का नाश करती है। यह क्षारयुक्त होने पर कफ का नाश करती है, तिक्तरस, कटुरस तथा कषाय रस भी है। यह तीक्ष्ण, उष्ण है, क्रिमिनाशक है, लघु है, पित्तकारक है तथा गर्भ पातक है।

राजवल्लभ के अनुसार- हलिनी तथा करवीर कुष्ठरोग तथा दुष्टबल का नाश करते हैं।

वैद्यक शास्त्र में लाङ्गली का प्रयोग-

(१) **उन्मन्थ नामक कर्ण रोग में लाङ्गली का प्रयोग-** सुरसा (तुलसी) तथा लांगली के क्वाथ तथा कल्क के साथ विधिवत् सिद्ध तैल तीक्ष्ण नस्य है। (वागभट उ.अ.१८) (२) **इन्द्रलुप्त में लाङ्गली का प्रयोग-** इन्द्रलुप्त में लाङ्गली फल का लेप करे। (वागभट उ.अ.२४) (३) **रसायनार्थ लाङ्गली का प्रयोग-** लाङ्गली, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला) लोहभस्म पचास पल (२ किलो ५०० ग्राम) ले लें। उनका भृंगराज के रस में पीस कर तीन सौ गुटिका बनावें और छाया में सुखा लें और आधा-आधा गुटिका क्रमशः सब को खाय। विरेचन होने के बाद क्रमशः मण्ड, पेया, विलेपी, मांसरस तथा भात घृत से स्निग्ध कर एक मास तक खाय तथा परहेज पूर्वक रहे। एक मास के बाद हमेशा अपने इच्छा के अनुसार आहार-विहार सेवन करे। सर्वथा यत्नपूर्वक अजीर्ण त्याग दे। इस योग का एक वर्ष उपयोग करे। इसके सेवन से जो असाध्य रोग से पीड़ित है वह रोगरहित हो जाता है। वृद्ध पुरुष भी बलवान पुरुष के समान सुशोभित होता है और बढ़े शरीर से युक्त हो कर श्रोत्र तथा नेत्र से युक्त होता है। इस रसायन के सेवन से तरुण के समान पाँच सौ वर्ष जीवित रहता है। (वाग्भट उ.अ. ३९)।

(१) **गण्डमाला में लाङ्गली का प्रयोग-** लाङ्गली के मूल के कल्क के साथ निर्गुण्डी का रस मिलाकर विधिवत् तैल सिद्ध करे। यह तैल नस्य करने से भयंकर गण्डमाला का नाश करता है। (चक्र.गण्ड माला चि.)। (२) **पका शोथ भेदन करने के लिए लाङ्गली का प्रयोग-** चिर बिल्व (चिलविला) अग्निक (कलिहारी) का कल्क लेप करने से व्रण शोथ का धारण करता है। (चक्र. व्रण शोथ चि.) (३) **नष्टशल्य निर्हरण के लिए लाङ्गली का प्रयोग-** लाङ्गली के कल्क का लेप करने से नष्टशल्य निकल जाता है। (चक्र. व्रण शोथ चि.)।

अपरापातन के लिए लाङ्गली का प्रयोग- लाङ्गली मूल के कल्क से हाथ तथा पैर के तलवों में लेप करे। इससे सूतिका की अपरा का पातन करे। (भावप्रकाश, मूढगर्भ चि.)।

लोध्रः

Symplocos Racemosa, Roxb.

लोध्रः, भिल्ली, तिल्वकः, तिरीटकः–*Symplocos Racemosa, Roxb.*

अस्य भेदः–शावरलोध्रः (वल्करोध्रः)। **अन्वर्थसंज्ञाः**–लोध्रस्य–"काण्डहीनः", "हेमपुष्पकः"। शावरलोध्रस्य–"श्वेतलोध्रः", "स्थूलवल्कलः", "जीर्णपर्णः", "बृहत्पर्णः", "लाक्षाप्रसादनः", "अक्षिभेषजः", "मार्जनः", "गालवः" (गालं नेत्रस्त्रावं वायति)॥ लोध्रः शीतः कषायश्च हन्ति तृष्णामरोचकम्। विषविध्वंसनः प्रोक्तो रूक्षो ग्राही कफापहः॥ लोध्र'युग्मं' कषायन्तु शीतं वातकफास्त्रजित्। चक्षुष्यं विषहृत् तत्र विशिष्टो वल्करोध्रकः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टू राजनिघण्टुश्च॥ लोध्रो ग्राही लघुः शीतश्चक्षुष्यः कफपित्तनुत्। कषायो रक्तपित्तमृग्ज्वरातीसारशोथहृत्॥ भावप्रकाशः॥ 'लोध्रो'ऽसृक्कफपित्तघ्नश्चक्षुष्यः शोथजित् सरः। तद्व'च्छावरलोध्रो'ऽपि चक्षुष्यो मृदुरेचनः॥ राजवल्लभः।

वैद्यके व्यवहारः– (१) 'रक्तपित्ते' लोध्रः–"उशीरकालीयकलोध्रपद्मक...। पृथक् पृथक् चन्दनतुल्यभागिकाः। सशर्करास्तण्डुलधावनाप्लुताः रक्तं सपित्तं... शमयन्ति सद्यः॥ (चि. ४ अ.)। (२) 'कुष्ठेषु' लोध्रः–"लोध्रस्य... कल्कः... कुष्ठेषूद्वर्त्तनालेपः" (चि. ७ अ.)। (३) 'व्रणे' लोध्रः–"लोध्रजाम्बवकट्-फलैः। त्वचमाश्वेव गृह्णन्ति त्वक्चूर्णैश्चूर्णिता व्रणाः॥" (चि. १३ अ.)। (४) 'कासामातीसारयोः' तिल्वकपत्रम्–"पत्रकल्कं घृतैर्भृष्टं तिल्वकस्य सशर्करम्। पेया चीत्कारिका च्छर्दिस्तृट्कासामातिसारनुत्॥" (चि. २२ अ.)। (५) 'श्वेतप्रदरे' लोध्रः–"न्यग्रोधत्वक्कषायेण लोध्रकल्कं तथा पिबेत्।" (चि. ३० अ.)। चरकः॥ 'अनागतावाधप्रतिषेधनीये' लोध्रः–"भिल्युदककषायेण तथैवामलकस्य वा। प्रक्षालयेन्मुखं नेत्रे स्वस्थः शीतोदकेन वा॥ निलीकां मुखशोषञ्च पिडकां व्यङ्गमेव च। रक्तपित्तकृतान् रोगान् सद्य एव विनाशयेत्॥" (चि. २४ अ.)। सुश्रुतः॥ 'शुद्धशुक्ररोगे' लोध्रः–"सेचनं रोध्रपोट्टल्या कोष्णामम्भोमग्नयाऽथवा।" (चि. ११ अ.)। वाग्भटः॥ 'चलितगर्भे' लोध्रः–"अष्टमे मासि लोध्रं मधु मागधिकाञ्च सह दुग्धेन पीतवतीनां चलिते गर्भे स्त्रीणां सुखं सम्पद्यते।" (चि. ४९ अ.)। हारीतः॥ 'अशेषाक्षिरोगहरत्वे' लोध्रः–"तथा शावरकं लोध्रं घृतभृष्टं विडालकः" (नेत्र-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) 'प्रवाहिकायां' लोध्रः–"सलोध्रमेकतो दध्ना पिबेत् प्रवाहिकार्द्दितः।" (प्रवाहिका-चि.)। (२) 'प्रसूतायाः योनिक्षते' लोध्रः–"तुम्बीपत्रं तथा लोध्रं समभागं सुपेषयेत्। तेन लेपो भगे कार्यः शीघ्रं स्याद् योनिरक्षता॥" (स्त्रीरोग-चि.)। भावप्रकाशः।

लोध्रः, भिल्ली, तिल्वकः, तिरीटकः (Symptlocos Racemosa, Roxb.)

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– लोध्रः, रोध्रः, शाबरः, स्थूलवल्कलः, पट्टिका लोध्रः। हिं.– लोध, पठानीलोध। पं.– पठानी लोध। बं.– लोध। म.– लोध्र। गु.– लोधर। मा.– लोद। कु.– लोधिया। था.– लोध। को.– लुदम्। संथा.– लोदम्। ले.– सीप्लोकॉस रासेमोसा (Symplocosa Racemosa Roxb.)।

लोध्र के भेद– लोध्र तथा शावर लोध्र (वल्क रोध्र)।

अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा- लोध्र- काण्डहीनः, हेमपुष्पकः। शावर लोध्र- श्वेतलोध्रः, स्थूलवल्कलः, जीर्णपर्णः, वृहत्पर्णः, लाक्षाप्रसादनः, अक्षिभेषजः, मार्जनः, गालवः (गाल नेत्रस्राव वायति)।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- लोध्र शीतल तथा कषायरस है। यह तृष्णा तथा आरोचक का नाश करता है। यह विषरोग का नाश करता है, रूक्ष है, ग्राही है तथा कफ विकार का नाश करता है। दोनों प्रकार का लोध्र कषायरस तथा शीतल है तथा वातविकार तथा कफ विकार तथा रक्त विकार को दूर करता है। यह नेत्र के लिए हितकर है, विषविकार को दूर करता है। यह नेत्र के लिए हितकर है, विषविकार को दूर करता है। यहाँ पर लोध्र का वल्कल उत्तम है।

भावप्रकाश के अनुसार- लोध्र ग्राही, लघु, शीतल है तथा नेत्र के लिए हितकर है तथा कफ पित्ते को दूर करता है। यह कषायरस है तथा यह रक्तपित्त, रक्तविकार, ज्वर, अतिसार तथा शोथ को दूर करता है।

राज वल्लभ के अनुसार- लोध्र रक्तविकार, कफ विकार तथा पित्त को नष्ट करता है, नेत्र के लिए हितकर है तथा शोथ को दूर करता है तथा सारक है। इसी प्रकार शावर लोध्र भी नेत्र के लिए हितकर तथा मृदुरेचन है।

वैद्यक शास्त्र में लोध्र का प्रयोग-

(१) रक्तपित्त में लोध्र का प्रयोग- खसः, कालीयक (पतङ्ग), लोध्र तथा पद्मकाठ का अलग-अलग समान मात्रा चन्दन मिलाकर शक्कर के साथ चावल के धोअन के साथ पान करे। यह रक्तपित्त को शीघ्र ही शान्त करता है। (च.चि.अ.४)। (२) **कुष्ठ रोग में लोध्र का प्रयोग-** लोध्र का कल्क कुष्ठ रोग में उद्वर्तन (उवटन) तथा लेप के लिए प्रयोग करे। (च.चि.अ.७) (३) **व्रण में लोध्र का प्रयोग-** लोध्र जाम्बुन तथा कायफल का चूर्ण तथा दालचीनी का चूर्ण अवचूर्णित करने से त्वचा का व्रण शीघ्र ही भर जाता है। (च.चि.अ. १३)। (४) **कास तथा अतिसार में तिल्वकर लोध्र पत्र का प्रयोग-** लोध्रपत्र का कल्क घी भूनकर शक्कर मिलाकर उत्कारिका (पूआ) बनावे और पान करे। यह वमन, प्यास, कास तथा अतिसार को दूर करता है। (च.चि.अ. २२)। (५) **श्वेत प्रदर में लोध्र का प्रयोग-** लोध्र का कल्क वटक्वाथ के साथ श्वेत प्रदर में पान करे। (च. चि.अ. ३०)।

अनागत अबाध प्रतिषेध के लिए लोध्र का प्रयोग- भिल्ली (लोध्र) के कषाय या आँवला के कषाय से या शीतल जल से नेत्र तथा मुख का प्रक्षालन करे। इससे निलीका, मुखशोष, पिड़का, व्यङ्गरोग तथा रक्त-पित्त रोग शीघ्र ही नष्ट होते हैं। (सु.चि.अ. २४)।

शुद्ध शुक्ररोग में लोध्र का प्रयोग- लोध्र की गरम पोटली से कमलिनी के पङ्क का लेप करे। (वाग्भट, चि.अ. ११)।

चलित गर्भ में लोध्र का प्रयोग- अष्टम मास में गर्भ गिरने की प्रवृति में मधु, लोध्र तथा पीपर का कल्क दूध से पान करनेवाली स्त्री का गर्भ सुख पूर्वक रहता है। (हारीत, चि.अ. ४९)।

अशेष नेत्ररोग में लोध्र का प्रयोग- शावर लोध्र के कल्क को घी में भून कर नेत्र के ऊपर लेप लगाने से नेत्र रोग शान्त होता है। (चक्र. नेत्ररोग चि.)।

(१) प्रवाहिका में लोध्र का प्रयोग- प्रवाहिका से पीडित व्यक्ति दही के साथ लोध्र का चूर्ण पान करे।

(भावप्र. प्रवाहिका चि.)। (२) **प्रसूता के योनिक्षत में लोध्र का प्रयोग**- तुम्बी (कदू) का पत्र तथा लोध्र की छाल समभाग लेकर अच्छी तरह पीसे और उससे भग का लेप करें। उससे प्रसूता का योनिक्षत ठीक होता है। (भावप्र. स्त्रीरोग चि.)।

Constituents—Three alkaloids laturine, colloturine and loturidine; and ash, which contains carbonate of soda. **Actions and uses**—Astringent and tonic; with Bael and Nuxvomica given in diarrhoea, dysentry, menorrhagia and other chronic discharges. The decoction is used as a gargle, in relaxed uvula and bleeding gums; as a plaster it is used promote maturation of boils. (R. N. Khory, Vol, II, p. 433).

शङ्खपुष्पी

Pladera Decussata, Roxb.

शङ्खपुष्पी (शुक्लपुष्पा)–*Pladera Decussata, Roxb.*

अस्या भेदौ–(१) नीलपुष्पी, विष्णुक्रान्ता। (२) रक्तपुष्पी–*Pladera Sessiliflora or P. Virgata, Roxb.* **अन्वर्थसंज्ञा–'शङ्खपुष्प्याः'–"मेध्या"। शङ्खिनी कटुतिक्तोष्णा कासपित्तवलासजित्। विषापस्मारभूतादीन् हन्ति मेध्या रसायनी॥ 'विषणुक्रान्ता' कटुस्तिक्ता कफवातामयापहा। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ शङ्खपुष्पी हिमा तिक्ता मेधाकृत् स्वरकारिणी। ग्रहभूतादिदोषघ्नी वशीकरणसिद्धिदा॥ राजनिघण्टुः॥ शङ्खपुष्पी सरा मेध्या वृष्या मानसरोगहृत्। रसायनी कषायोष्णा स्मृतिकान्तिबलाग्निदा। दोषापस्मारभूताश्रीकुष्ठक्रिमिविष-प्रणुत्॥ भावप्रकाशः॥ शङ्खपुष्पी तु तीक्ष्णोष्णा मेध्या क्रिमिविषापहा। राजवल्लभः॥ रक्ता नीला गुणैः समा। निघण्टुरत्नाकरः।**

वैद्यके व्यवहारः–'मेधावद्धनार्थं' शङ्खपुष्पी–"मेध्या विशेषेण तु शङ्खपुष्पी" (चि. १ अ.)। चरकः॥ 'उन्मादे' शङ्खपुष्पी–"...शङ्खपुष्पिकास्वरसाः। उन्मादहृतो दृष्टाः पृथगेते कुष्ठमधुमिश्राः॥" (उन्माद-चि.)। चक्रदत्तः।

शंखपुष्पी (शक्लपुष्पा) (Pladera Decussata, Roxb.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- शङ्खपुष्पी, माङ्गल्यकुसुमा। हि.- शंखाहुली, शंखावली, शङ्खपुष्पी। बं.- डानकुनी, शंखाहुल्हर। म.- शंखौली, शंखौना। गु.- शंखावली। क.- गुव्वची। अं.- प्लेडरा डे कुस्साटा (Pladera Decussata)। ले.- केन्सकोरा डक्यूसाटा (Canseora Deocusata)।

शंखपुष्पी के भेद- (१) नीलपुष्पी, विष्णुक्रान्ता (२) रक्तपुष्पी (Sessliffora or P. Uirgata Roxb.)।

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा- शंखपुष्पी–मेध्या।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- शंखिनी (शंखपुष्पी) कटु तथा तिक्त रस एवं उष्ण है और कास, पित्त विकार तथा कफ विकार का नाश करती है। यह विष विकार, अपस्मार तथा भूत आदि बाधा का नाश करती है, मेध्य है एवं रसायन है। विष्णुक्रान्ता (शंखपुष्पी) कटुरस तथा तिक्त रस है और कफ रोग एवं वात रोग का नाश करती है।

राजनिघण्टु के अनुसार- शंखपुष्पी शीतल, तिक्तरस, मेधाकारक तथा स्वरकारक है। यह ग्रह बाधा तथा भूत आदि बाधा का नाश करती है तथा वशीकरण का सिद्धि देनेवाली है।

भावप्रकाश के अनुसार- शंखपुष्पी सारक, मेध्य तथा वृष्या है और मानसरोग को दूर करती है। यह रसायन है, कषाय रस है तथा उष्ण है और स्मृति, कान्ति, बल तथा जाठराग्नि को बढ़ानेवाली है। यह वातादि दोष, अपस्मार, भूत बाधा, अलक्ष्मी, कुष्ठ रोग, क्रिमि रोग तथा विष विकार को दूर करती है।

राजवल्लभ के अनुसार- शंखपुष्पी तीक्ष्ण, उष्ण तथा मेध्य है और क्रिमि रोग एवं विष विकार को दूर करती है।

निघण्टु रत्नाकर के अनुसार- रक्तपुष्पी नीला के गुण के समान गुणवाली है।

वैद्यक शास्त्र में शंखपुष्पी का प्रयोग-

मेधा बढ़ाने के लिए शंखपुष्पी का प्रयोग- शंखपुष्पी विशेषकर मेधावर्द्धक है। (च.चि.अ.१)।

उन्माद में शंखपुष्पी का प्रयोग- शंखपुष्पी का स्वरस कूठ तथा मधु मिलाकर सेवन करना अपस्मार को दूर करनेवाली देखा गया है। (चक्र.उन्माद चि.)।

Actions and uses—Laxative, alterative and nervine tonic. Fresh juice is given in insanity, general debility, scrofula, dyspepsia &c. (R. N. Khory, Vol. II, p. 409).

शतपुष्पा

Pencedanum Sowa

शतपुष्पा, शताह्वा—*Pencedanum Sowa, Bth. & Hf.. The fruits—Dill Seeds.*

अन्वर्थसंज्ञाः—"अतिच्छत्रा", "सङ्घातपत्रिका", "सूक्ष्मपत्रिका", "भूरिपुष्पा", "शतपुष्पा", "अवाक्पुष्पी", "पीतपुष्पा"॥ शताह्वा कटुका तिक्ता स्निग्धोष्णा श्लेष्मवातजित्। ज्वरनेत्रव्रणान् हन्ति वस्तिकर्मणि शस्यते॥ शतपुष्पा'दलं' चोक्तं वृष्यं मधुरगुल्मजित्। वातघ्नं दीपनं स्तन्यं कफकृद्रुचिदायकम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ शताह्वा तु कटुस्तिक्ता स्निग्धा श्लेष्मातिसारनुत्। ज्वरनेत्रव्रणघ्नी च वस्तिकर्मणि शस्यते॥ राजनिघण्टुः॥ शतपुष्पा लघुस्तीक्ष्णा पित्तकृत् दीपनी कटुः। उष्णा ज्वरानिलश्लेष्मव्रणशूलाक्षिरोगहृत्॥ भावप्रकाशः॥ शताह्वाऽनिलदाहाऽऽमशूलतृट्छर्दि-नाशनी। राजवल्लभः।

वैद्यके व्यवहारः— (१) 'शुष्कार्शःसु शतपुष्पा—"स्तब्धानि स्वेदयेत् पूर्वं शोफ-शूलान्वितानि च। ...वचाशताह्वापिण्डैर्वा सुखोष्णैः स्नेहसंयुतैः।" (चि. ९ अ.)। (२) 'वाताधिके वातरक्ते' शतपुष्पा—"क्षीरपिष्टं... लेप॥ कुर्याच्छूल-निवृत्त्यर्थं शताह्वं वानिलेऽधिके॥" (चि. २९ अ.)। चरकसंहितायां दृढ़बलः॥ 'मक्षिकाविषे' शतपुष्पा—"शतपुष्पासमायुक्तं सैन्धवं परिपेषितम्। सघृतं लेपनं दद्यात् मक्षिकाविषनाशनम्॥" वङ्गसेनः।

शतपुष्पा, शताह्वा (Pencedanum Sowa, Bth. & Hf. The fruits—Dill Seeds.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- शतपुष्पा, मधुरा, कारवी, अतिलम्बी, अतिछत्रा, सङ्घातपत्रिका, भूरिपुष्पा, अवाक्पुष्पी, पीतपुष्पी।

हि.- सोया, सोआ, वनसोफ। बं.- शुलफा, शुल्फा। म.- वालन्त शोप। क.- सद्यासिले, सञ्जीसगे, सत्वसिङ्गे, सदापे। गु.- शुवादाना, भजी। ते.- मैदे, सदापचे चेट्टु, सदाया सदाप, सोम्पा। द्रा.- शतकुर्प्पं। मा.- सोया, सुवा। अं.- डिलसीड्स (Dill Seeds)। ले.- पिनसिडानम ग्रेवियोलेन्स (Pencedanum Grabeolens)।

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा– अतिछत्रा, सङ्घातपत्रिका, सूक्ष्मपत्रिका, भूरिपुष्पा, शतपुष्पा, अवाक्पुष्पी, पीतपुष्पा।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार– शताह्वा (सौंफ) कटुरस, तिक्त रस, स्निग्ध तथा उष्ण है और कफवात को दूर करती है। यह ज्वर तथा नेत्र व्रण का नाश करती है तथा वस्ति कर्म में प्रशस्त है। शतपुष्पा का पत्र वीर्यवर्द्धक, मधुर तथा गुल्म रोग को दूर करनेवाला कहा गया है। यह वातनाशक, जाठराग्नि दीपक, दुग्ध वर्द्धक, कफकारक तथा रुचिप्रद है।

राजनिघण्टु के अनुसार- शताह्वा कटुरस, तिक्तरस तथा स्निग्ध है और कफ रोग तथा अतिसार को दूर करती है। यह ज्वर रोग तथा नेत्र व्रण का नाश करती है और वस्तिकर्म में प्रशस्त है।

भावप्रकाश के अनुसार- शतपुष्पा (सौंफ) लघु तथा तीक्ष्ण है, पित्त कारक है, जाठराग्नि दीपक है और कटु रस है। यह उष्ण है और ज्वर, वात, कफ, व्रण, शूल तथा नेत्र रोग को दूर करती है।

राजवल्लभ के अनुसार- शताह्वा वात विकार, दाह, आम शूल, प्यास तथा वमन का नाश करती है।

वैद्यक शास्त्र में शताह्वा का प्रयोग-

(१) **शुष्कार्श में शतपुष्पा का प्रयोग-** शुष्कार्श में शतपुष्पा, वच तथा सौंफ के कल्क के स्नेह युक्त थोड़ा गरम पिण्ड (पोटली) से शोथ तथा शूलयुक्त स्तब्ध (शुष्क) अर्श का स्वेदन करे। (च.चि.अ.९)। (२) **वाताधिक वातरक्त में शतपुष्पा का प्रयोग-** वाताधिक वात रक्त में शूल को दूर करने के लिए शताह्वा को दूध के साथ पीस कर लेप करे। (च.चि.अ.२९.दृढबल)।

मक्षिका विष में शतपुष्पा का प्रयोग- शतपुष्पा को पीसकर तथा सेन्धा नमक मिलाकर एवं घृत मिलाकर मक्षिक विष के नाश के लिए लेप करे। (बंगसेन)।

Constituents—Volatile oil 3 or 4 p.c., and fixed oil. The volatile oil is composed of anethene, caryol and another hydrocarbon. (R. N. Khory, Vol. II, p. 294). "Carminative, stomachic, stimulant, and galactagogue, women use it as a cordial drink after confinement to stop a tendency to vomiting and hiccough and in indigestion and flatulent colic; it is also given in amenorrhoea. With methi the seeds are fried in butter and used to check diarrhoea. (R.N. Khory, Vol, II., p. 294). **Actions and uses—**Dill-seed is much esteemed by the natives of India, who use it as a condiment and medicine. An infusion of it is given as a cordial drink to women after confinement. The leaves moistened with oil are used as a stimulating poultice or suppurative. (Dymock, Vol. II, p. 128).

शतावरीद्वयम्

Asparagus Racemosus

शतावरी, बहुपुत्रा, अभीरुः–*Asparagus Racemosus.* **महाशतावरी सहस्त्रवीर्या–***Asparagus Sarmentosus.*

अन्वर्थसंज्ञाः– 'शतावर्याः'– "शतमूला", "जटामूला", "सूक्ष्मपत्रा", "ऊर्ध्वकण्टका", "दुर्भरा"। 'महाशतावर्याः– "बहुपुत्रिका", "ऊर्ध्वकण्टा"॥ 'शतावरी' हिमा तिक्ता रसे स्वादुः क्षयास्त्रजित्। वातपित्तहरा वृष्या रसायनवरा स्मृता॥ 'सहस्त्रवीर्या' मेध्या तु हृद्या वृष्या रसायनी। शीतवीर्या निहन्त्यर्शोग्रहणीनयनामयान्॥ 'तदङ्कर'स्त्रिदोषघ्नी लघुरर्शःक्षयापहः। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ शतावर्यौ हिमे वृष्ये मधुरे पित्तजित् परे। ..फवातहरे तिक्ते महाश्रेष्ठे रसायने॥ शतावरीद्वयं वृष्यं मधुरं पित्तजिद्धिमम्। महती कफवातघ्नी तिक्ता श्रेष्ठा रसायने॥ कफपित्तहरास्तिक्तास्तस्या एवाङ्कुराः स्मृताः। राजनिघण्टुः॥ शतावरी गुरुः शीता तिक्ता स्वाद्वी रसायनी। मेधाग्निपुष्टिदा स्निग्धा नेत्र्या गुल्मातिसारजित्॥ 'महाशतावरी' मेध्या हृद्या वृष्या रसायनी। शीतवीर्या निहन्त्यर्शोग्रहणीनयनाऽऽमयान्॥ भावप्रकाशः॥ शतावरी वातपित्तमेहरक्तहरा सरा। राजवल्लभः॥ शतावर्या 'ह्यङ्कुरस्तु' तिक्तो वृष्यो लघुः स्मृतः। हृद्बस्तिदोषपित्तघ्ना वातरक्तार्शसां हरः। क्षय-सङ्ग्रहणीरोगनाशनस्तिक्तको लघुः॥ निघण्टुरत्नाकरः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) मूत्रमार्गात् 'रक्तस्त्रुतौ' शतावरी– "शतावरीगोक्षुरकैः शृतं वा...। रक्तं निहन्त्याशु विशेषतस्तु यन्मूत्रमार्गात् सरुजं प्रयाति॥" (चि. ४ अ.)। (२) 'रक्तातिसारे' शतावरी– "पीत्वा शतावरीकल्कं पयसा क्षीर-भुग्जयेत्। रक्तातिसारं पीत्वा वा तया सिद्धं घृतं नरः॥" (चि. १० अ.)। (३) 'वातपित्तोल्वणे विसर्पे' शतावरीकन्दः– "शतावर्या विदार्याश्च कन्दौ धौतघृताप्लुतौ...। ...तैरेवालेपनं हितम्।" (चि. ११ अ.)। (४) 'अपस्मारे' शतावरी– "प्रयुञ्ज्यात् ...पयसा वा शतावरीम्।" (चि. १६ अ.)। चरकः॥ (१) 'अदृश्येषु अर्शःसु' शतावरी– "शतावरीमूलकल्कं वा क्षीरेण" (चि. ६ अ.)। (२) 'कर्णतैलगते' शतावरी– "...तत्राशु कर्त्तव्यं प्रतिपूरणं...। स्वरसो बहुपुत्रायाः सघृतः क्षौद्रसंयुतः॥" (कल्प-१ अ.)। (३) ...शकुनीप्रतिषेधार्थं "शतावरी– "शतावरी" धारयेत्॥" (उ. ३० अ.)। (४) "वातज्वरे" शतावरी– "गुडूच्याः स्वरसो ग्राह्यः शतावर्याश्च तत् समः। निहन्यात् सगुडः पीतः सद्यो-ऽनिलकृतं ज्वरम्॥" (उ. ३९ अ.)। (५) "स्वरभेदे" शतावरी– "शतावरी-चूर्णयोगं...। पिबेत्... मूत्रेण कफजे स्वरसङ्क्षये॥" (उ. ५३ अ.) सुश्रुतः॥ (१) 'रात्र्यान्ध्ये' शतावरीपत्राणि– "घृते सिद्धानि... पल्लवाणि च भक्षयेत्। तथातिमुक्त... अभीरुजानि च।" (उ. १३ अ.)। (२) "रसायनार्थं" महाशतावरी– "शतावरीकल्ककषायसिद्धं॥ ये सर्पिरश्नन्ति सिताद्वितीयम्। तान् जीविताध्वानमभिप्रपन्नान् न विप्रलुम्पन्ति विकारचौराः॥" (उ. ३९ अ.)। वाग्भटः॥ 'मूत्रकृच्छ्रे' शतावरी– "पिबेच्छतावरी-मूलं चूर्णितं शीतवारिणा" (चि. २९ अ.)। हारीतः॥ (१) 'वातरक्ते' शतावरी– "शतावरी कल्कगर्भं रसे तस्याश्चतुर्गुणे। क्षीरतुल्यं घृतं पक्वं वातशोणितनाशनम्॥" (वातरक्त-चि.)। (२) 'पित्तशूले' शतावरी– "शतावरीरसं क्षौद्रयुतं प्रातः पिबेन्नरः। दाहशूलोप शान्त्यर्थं सर्वपित्ताऽऽमयापहम्।" (शूल-चि.)। चक्रदत्तः॥ 'रक्तपित्ते' शतावरी– "...शतावर्या रक्तजित् साधितं पयः।" (रक्तपित्त-चि.)। भावप्रकाशः॥

शतावरी, बहुपुत्रा, अभीरुः (Asparagus Racemosus)। महाशतावरी सहस्त्रवीर्या (Asparagus Sarmentosus)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- शतावरी, बहुसुता। अ.- भीरुः, इन्दीवरी, वरी, नारायणी, शतपदी, शतवीर्या। हि.- सतावरी, सतमूली, शतावर, छोटी शतावर। बं.- शतमूली। म.- लघुशतावरी, आसवली। गु.- शतावरी, एकलकण्टो, नहानोशतावरी, सापन, सुआ सेमुखा। क.- किरीप आसडी। तै.- एट्टुमट्टी टेडाचल्ल। चरुल गुडुलु। द्रा.- एजीर विद्यन, फिडग। फा.- गुर्जदस्ती, वुजीदा। अ.- शकाकुलमिश्री। ले.- एस्पारेगस रेस मोसस (Asporagus Racemosus)।

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा- शतावरी, शतमूला, जटामूला, सूक्ष्मपत्रा, उद्ध्र्वकण्टका, दुर्भरा। महाशतावरी-शतपुत्रिका, उद्ध्र्वकण्टा।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- शतावरी शीतल, तिक्तरस, रस में स्वादिष्ट है तथा क्षय रोग एवं रक्त विकार को जीत लेती है। यह वात-पित्त हर है, वीर्यवर्द्धक है तथा रसायन है। सहस्र वीर्य (शतावरी) मेध्य है, हृद्य है, वीर्यवर्द्धक है, रसायन है, शीतवीर्य है और अर्श, ग्रहणी रोग तथा नेत्र रोग का नाश करती है। शतावरी का अङ्कुर त्रिदोष नाशक है, लघु है तथा अर्श रोग एवं क्षय रोग का नाश करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- दोनों प्रकार शतावरी शीतल, वीर्यवर्द्धक तथा मधुर हैं और उत्तम पित्त विकार नाशक हैं। ये कफ तथा वात विकार को दूर करते हैं, तिक्त रस हैं, रसायन में श्रेष्ठ हैं। दोनों प्रकार के शतावरी का अंकुर कफ-पित्तहर तथा तिक्त रस है।

भावप्रकाश के अनुसार- शतावरी गुरु, शीतल, तिक्तरस, स्वादिष्ट तथा रसायन है। यह मेधा, अग्नि तथा पुष्टिप्रद है, स्निग्ध है तथा नेत्र के लिए हितकर है और गुल्म रोग एवं अतिसार को जीत लेती है। महाशतावरी मेधावर्द्धक, हृदय के लिए हितकर, वीर्यवर्द्धक तथा रसायन है। यह शीत वीर्य है तथा अर्शरोग, ग्रहणी रोग एवं नेत्र रोग का नाश करती है।

राजवल्लभ के अनुसार- शतावरी वात विकार, पित्त विकार, प्रमेह तथा रक्त विकार नाशक है एवं सारक है।

निघण्टुरत्नाकर के अनुसार- शतावरी का अङ्कुर तिक्त रस, वीर्यवर्द्धक तथा लघु है। यह हृदय रोग तथा त्रिदोष एवं पित्त नाशक है और वातरक्त तथा अर्श रोग को दूर करता है। यह क्षय रोग, संग्रहणी रोग नाशक है, तिक्त रस है तथा लघु है।

वैद्यक शास्त्र में शतावरी का प्रयोग-

(१) मूत्रमार्ग से रक्त स्राव होने पर शतावरी का प्रयोग- शतावरी तथा गोखरु के क्वाथ का पान करने से रक्तस्राव का नाश होता है विशेषकर पीड़ायुक्त मूत्र मार्ग से रक्त निकलना बन्द हो जाता है। (च.चि.अ.४)। **(२) रक्तातिसार में शतावरी का प्रयोग-** शतावरी के कल्क का दूध के साथ पान करे तथा क्षीर भोजन करे। यह रक्तातिसार को जीत लेता है। अथवा शतावरी कल्क तथा क्वाथ के साथ विधिवत् सिद्ध घृत पान कर मनुष्य रक्तातिसार को नष्ट करता है। (च.चि.अ.१०)। **(३) वात-पित्तोल्वण विसर्प में शतावरी कन्द का प्रयोग-** शतावरी तथा विदारी कन्द शत धौत घृत के साथ मिलाकर विसर्प में लेप करना हितकर है। (च.चि.अ.११)। **(४) अपस्मार में शतावरी का प्रयोग-** शतावरी के कल्क का दूध के साथ प्रयोग करे। (च.चि.अ.१६)।

(१) अदृश्य अर्श रोग में शतावरी का प्रयोग- अदृश्य अर्श रोग में शतावरी मूल का कल्क दूध के

साथ पान करे। (सु.चि.अ.६)। (२) **कान में तैल चले जाने पर शतावरी का प्रयोग-** शतावरी का स्वरस घृत तथा मधु मिलाकर कान में तैल चले जाने पर कान में डाले। (सु.क.अ.१)। (३) **शकुनी प्रतिषेध के लिए शतावरी का प्रयोग-** शकुनी ग्रह में शतावरी मूल का धारण कराये। (सु.उ.अ.३०)। (४) **वात ज्वर में शतावरी का प्रयोग-** गुडूची का स्वरस तथा शतावरी का स्वरस समभाग लेकर गुड़ के साथ पान करने पर वातजन्य ज्वर का सद्य नाश होता है। (सु.उ.अ.३९)। (५) **स्वरभेद में शतावरी का प्रयोग-** कफज स्वर क्षय में शतावरी का चूर्ण मूत्र के साथ पान करे। (सु.उ.अ.५३)।

(१) **रात्र्यान्ध्य में शतावरी पत्र का प्रयोग-** अतिमुक्तक (मालती लता) के पत्र तथा शतावरी का पत्र घृत में पकाकर रात्र्यान्ध्य रोग में खाय। (वाग्भट, उ.अ.१३)। (२) **रसायन के लिए महाशतावरी का प्रयोग-** शतावरी के कल्क तथा कषाय के साथ विधिवत सिद्ध घृत मिश्री मिलाकर जो लोग खाते हैं उनको जीवित रहने तक विकार रूपी चोर नहीं कष्ट देते हैं। (वाग्भट, उ.अ.३९)।

मूत्रकृच्छ्र में शतावरी का प्रयोग- शतावरी के मूल का चूर्ण शीतल जल के साथ मूत्रकृच्छ में पान करे। (हारीत.चि.अ.२९)।

(१) **वातरक्त में शतावरी का प्रयोग-** शतावरी के कल्क तथा चौगुने रस के साथ समभाग दूध मिलाकर पकाया घृत पान करने से वात रक्त रोग का नाश होता है। (चक्र.वातरक्त चि.)। (२) **पित्तशूल में शतावरी का प्रयोग-** पित्त शूल का रोगी शतावरी के रस का मधु मिलाकर प्रातःकाल पान करे। यह दाह शूल को शान्त करता है तथा सभी प्रकार के पित्त रोगों का नाश करता है। (चक्र.शूल चि.)।

रक्त पित्त में शतावरी का प्रयोग- शतावरी के रस के साथ सिद्ध दूध रक्त पित्त को दूर करता है। (भाव. रक्तपित्त चि.)।

Constituents—Contains large amount of saccharine.matter and mucilage. **Actions and uses**—Nutritive, tonic, demulcent and galactagogue, given in biliousness, rheumatism, dyspepsia and diarrhoea, in combination with other diuretics it is given in scanty urine; as a tonic it is used in seminal debility and pulmonary complaints. (R. N. Khory, Vol. II, p. 613).

शरपुङ्खात्रयम्

Tephrosia Purpuria

रक्तशरपुङ्खा–*Tephrosia Purpuria, Pers. or Galega Purpurea, Linn. G. Lancifolia.* **सितशरपुङ्खा**–*Galega Incana, Roxb. G. Villosa. Roxb.* **कण्टपुङ्खा**–*Galega Spinosa, Roxb.*

भेदाः–(१) रक्तशरपुङ्खा, (२) सितशरपुङ्खा, (३) कण्टपुङ्खा च। पूर्वाचार्य-कृतवर्णनम्– "नीलवृक्षाकृतिश्च सः"। अन्वर्थसंज्ञा–रक्तायाः–"प्लीहशत्रुः"॥ शरपुङ्खाः कटूष्णाश्च कृमिवातरुजापहाः। श्वेता तवासु गुणाढ्या स्यात् प्रशस्ता च रसायने॥ 'कण्टपुङ्खा' कटूष्णा च कृमिशूलविनाशनी। राजनिघण्टुः॥ 'शरपुङ्खो' यकृत्प्लीहगुल्मव्रणविषापहः। तिक्तः कषायः कासास्त्रश्वासज्वरहरो लघुः॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः–अलर्कविषे शरपुङ्खा–"मूलस्य शरपुङ्खायाः कर्षं धुस्तरकार्द्धिकम्। तण्डुलोदकमादाय पेषयेत्तण्डुलैः सह॥ उन्मत्तकस्य पत्रैस्तु संवेष्टयाऽऽपूपकं पचेत्। खादेदौषधकाले

तदलर्कविषदूषितः॥" (कल्पः-६ अः)। सुश्रुतः॥ धुस्तूरकार्द्धिकमिति धुस्तूरकजटायाः कर्षार्द्धं देयम्। उन्मत्तकस्य पत्रैस्तु इत्यादिधुस्तूरकस्य सप्तपत्राणि ग्राह्याणि तन्त्रान्तरदर्शनात्"-डल्वणः॥ (१) प्लीह्नि शरपुङ्खा-"प्लीहजिच्छरपुङ्खायाः कल्कस्तक्रेण सेवितः।" (प्लीह-चि.)। (२) व्रणे शरपुङ्खा-"मधुयुक्ता शरपुङ्खा सर्वव्रणरोपणी कथिता" (व्रणशोथ-चि.)। चक्रदत्तः॥ गुल्मे शरपुङ्खालवणम्-"शरपुङ्खस्य लवणं पथ्याचूर्णसमं द्वयम्। शाणप्रमाणमश्नीयाच्चूर्णं गुल्मगदापहम्॥" (गुल्म-चि.)। भावप्रकाशः॥ (१) अपचीविषकृमिषु शरपुङ्खा-"शरपुङ्खोद्भवं मूलं पिष्टं तण्डुलवारिणा। नस्याल्लेपाच्च दुष्टारुरपचीविषजन्तुजित्॥" (उ. ३० अ.)। (२) आखुविषे शरपुङ्खा-बीजम्-"तक्रेण शरपुङ्खायाः बीजं सञ्चूर्ण्य वा पिबेत्"। (उ. २८ अ.)। वाग्भटः॥

रक्तशरपुङ्खा (Tephrosia Purpuria, Pers. or Galega Purpurea, Linn. G. Lancifolia.) सितशरपुङ्खा (Galega Incana, Roxb. G. Villosa. Roxb.) कण्टपुङ्खा (Galega Spinosa, Roxb.)।

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- शरपुङ्खा, प्लीहशत्रुः, नीलवृक्षाकृति। हि.- सरफोका। बं.- वननील। म.- उन्हाती, रानरी नील, जंगली-कुलटी। गु.- शरपुङ्खा। तै.- तैल्ल, पेवल्लि चेट्टु, प्राम्प राचेट्टु, मुलुवेम्पली। क.- शरपुंखा, यरेहु कोग्गि। मा.- शरपुखो, कोल्लक्कपवेल्लपि, कोल्लुकवकेल्लपि। द्रा.- जंगलिकुलत्थि। अं.- परपल टेफ्रोसिन (Purple Tephrosin)। ले.- टेफ्रोसिया परप्यूरिया (Tephrosia Purpurea)।

शरपुङ्खा के भेद- (१) रक्त शरपुङ्खा (२) सित शरपुङ्खा तथा (३) कण्टपुङ्खा। सरपुंखा का पूर्वाचार्य कृत वर्णन- शरपुंखा नील वृक्ष की आकृति की तरह होता है। **अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा-** रक्त शरपुङ्खा-प्लीहशत्रुः।

गुण एवं दोष-

राजनिघण्टु के अनुसार- शरपुंखा कटुरस तथा उष्ण है और क्रिमिरोग तथा वातरोग को नष्ट करती है। इनमें श्वेताकार पुंख अधिक गुणकारक है और रसायन में प्रशस्त है। कण्टपुंखा कटुरस तथा उष्ण है और क्रिमिरोग तथा शूल का नाश करती है।

भावप्रकाश के अनुसार- शरपुंख यकृद्, विकार, प्लीहा रोग, गुल्म रोग, व्रण तथा विष विकार को दूर करता है। यह तिक्तरस तथा कषाय रस है और कास, रक्त विकार, श्वास रोग तथा ज्वर को दूर करता है एवं लघु है।

वैद्यक शास्त्र में शरपुंखा का प्रयोग-

अलर्क विष में शरपुंखा का प्रयोग- खरपुंखा का मूल एक कर्ष (१० ग्राम) तथा धतूर का मूल आधा कर्ष (५ ग्रा.) इन दोनों को चावल के साथ चावल के धोअन के साथ पीसे और धतूर के पत्तों से आवेष्टित कर पूआ पकावे और अलर्क विष से दूषित व्यक्ति औषध के समय खाय। (सु.क.अ.६)। धस्तूरकार्दिधक का मतलब है- धतूर जटा का आधा कर्ष देना चाहिए। उन्मत्तक पत्रैस्तु का मतलब है- धतूर के सात पत्रों का ग्रहण करना चाहिए। ऐसा शास्त्रान्तर में कहा गया है (डल्वण)।

प्लीहा में शरपुंखा का प्रयोग- शरपुंखा का कल्क मट्ठा के साथ सेवन करने से प्लीहा रोग का नाश होता है। (चक्र.प्लीह चि.)। (२) **व्रण में शरपुंखा का प्रयोग-** शरपुंखा का कल्क मधु मिलाकर लेप करने से सभी प्रकार के व्रण का रोपण होता है। (चक्र.व्रण शोथ चि.)।

गुल्म रोग में शरपुंखा लवण का प्रयोग- शरपुंखा का लवण क्षार समभाग हरें का चूर्ण मिलाकर दोनों में से एक शाण (एक ग्राम) की मात्रा में खाय। यह गुल्म रोग को नष्ट करता है। (भाव.गुल्म चि.)।

(१) अपची विष क्रिमि में शरपुंखा का प्रयोग- शरपुंखा के मूल को चावल के धोअन के साथ पीसकर नस्य लेने तथा लेप करने से अपची विष की क्रिमि का नाश होता है। (वाग्भट, उ.अ.३०)। **(२) मूषक विष में शरपुंखा बीज का प्रयोग**- शरपुंखा के बीज के चूर्ण को मट्ठा के साथ मूषक विष में पान करे। (वाग्भट, उ.अ. २८)।

Constituents—The extract contains chlorephyll, brown resin, a trace of wax, a crystalline principle, allied to quercitrin, gum, a trace of albumen and colouring matter, ash 6 p.c., containing a trace of manganese. **Action and uses**—Alterative tonic and diuretic used in cough derangements of liver, spleen and kidneys. As a diuretic it is given with black peper in gonorrhaea, in bleeding piles it is administered with Canabis Indica leaves. An infusion of it is given in fevers. The juice of the leaves is used over swollen hands and feet and also over swelling and puffiness of the face. Decoction is given in dyspepsia and tympanitis. (R. N. Khory, Vol. II, p. 232)

शाखोट:

Trophis aspera, Willd.

शाखोट:, कोशिक्य:—*Trophis aspera, Willd.*

अन्वर्थसंज्ञा:—"कर्कशच्छद:", "पीतफल:", "क्षीरनाश:"। कौशिक्योऽजाक्षीरनाशश्च सूक्त:। तिक्तोष्णोऽयं पित्तकृद्वातहारी। राजनिघण्टु:॥ शाखोटो रक्तपित्तार्शोवातश्लेष्मातिसारजित्। भावप्रकाश:।

वैद्यके व्यवहार:—अपच्यां शाखोटक:—"शाखोटकस्य स्वरसेन सिद्धं तैलं हितं नस्यविरेचनेषु। (चि. १८ अ.)। सुश्रुत:॥ (१) ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते शाखोटक:—"भद्र: शाखोटकत्वग्रसविन्दुद्वितययुतो घृतद्विगुण:। भूनिम्बकल्क ऊर्ध्वगपित्तास्त्रकासश्वासघ्न:॥" (रक्तपित्त-चि.)। (२) वातशोथे शाखोटक:— "कल्क: काञ्जिकसम्पिष्ट: स्निग्ध: शाखोटकत्वच:। सुपर्ण इव नागानां वातशोथविनाशन:॥" (व्रणशोथ-चि.)। चक्रदत्त:॥ श्लीपदे शाखोटक:—"शाखोटकल्कमिश्रं तोयं गोमूत्रसंयुतं पीत्वा। हन्यात् श्लीपदमुग्रम्—" (श्लीपदचि.)। वङ्गसेन:।

शाखोट:, कौशिक्य: (Trophis aspera, Willd.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- शाखोट:, पीतफल:, भूतावास:, स्वरच्छद:। हि.- सहोरा, सिहोड। बं.- शोओड़ा, शेउड़ा गाछ। म.- सहोड। गु.- साहोड़ा। ते.- तारिणिके चेट्टु। क.- आखोड मरणु। ले.- स्ट्रेविलास एस्पेरा (Streblus Aspera)।

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा- कर्कशच्छद:, पीतफल:, क्षीरनाश:।

गुण एवं दोष-

राजनिघण्टु के अनुसार- कौशिक्य अजाक्षीरनाश कहा गया है। यह तिक्त है, उष्ण है, पित्त कारक है तथा वातहर है।

भावप्रकाश के अनुसार- शाखोट रक्तपित्त, अर्श, वात विकार, कफ विकार तथा अतिसार को दूर करता है।

वैद्यक शास्त्र में शाखोट का प्रयोग -

अपची में शाखोटक का प्रयोग- शाखोटक के कल्क तथा क्वाथ के साथ विधिवत् सिद्ध तैल नस्य, विरेचन देना अपची रोग में हितकर है। (सु.चि.अ.१८)।

(१) ऊर्ध्वग रक्त पित्त में शाखोटक का प्रयोग- भद्र (पारिभद्र) तथा शाखोटक (सिहाड़े) के त्वक् का रस दो बूंद तथा दुगुना घृत मिलाकर भूनिम्ब (चिरायता) का कल्क खाने से ऊर्ध्वग रक्त पित्त, कास तथा श्वास का नाश होता है। (चक्र. रक्त पित्त चि.)। (२) **वात शोथ में शाखोटक का प्रयोग**- शाखोटक की त्वचा का काञ्जी के साथ पीसकर तथा स्नेह मिलाकर उस कल्क का पान करने से वात शोथ का नाश करता है जैसे गरुड़ नागों का नाश करता है। (चक्र.व्रण शोथ चि.)।

श्लीपद में शाखोटक का प्रयोग- शाखोटक के कल्क का मिला हुआ जल तथा गोमूत्र मिलाकर पान करने से भयंकर श्लीपद (पील पांव) का नाश होता है। (बंगसेन, श्लीपद चि.)।

Constituents—A crystalline principle, soluble in alcohol an in-organic acid, white calcareous matter and ash 18 p.c. (R. N. Khory Vol. II, p. 556). **Actions and uses**—Alterative; used in glandular enlargement of the liver and spleen. The juice is applied to cracks and fissures on the palms of hands and soles of feet. The leaves are used to polish the ivory. The bark which is mildly acrid, is used as a tooth brush to remove the tartar or to cleanse the teeth. (R. N. Khory, Vol. II, p. 556).

शाल्मली (लिः)

Bombox Malabaricum

रक्तशाल्मली, मोचा–*Bombox Malabaricum, Bombox Heptaphylla.* **श्वेतशाल्मली**–*B. Pentandrum.* **कुटशाल्मली**–*B. Gosypinum.*

अन्वर्थसंज्ञाः–"दीर्घद्रुमः", "चिरजीवी", "कण्टकद्रुमः", "तूलवृक्षः", "रक्तपुष्पाः", स्थूलफलः"॥ शाल्मली शीतला स्निग्धा शुक्रश्लेष्मविवर्द्धनी। 'तद्रस'स्तद्गुणो ग्राही स च 'मोचरसः' स्मृतः॥ शाल्मली पिच्छिला वृष्या बल्या मधुरसा तथा। कषायस्तद्रसो ग्राही 'पुष्पं' तद्वत्तथा 'फलम्'॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ शाल्मली पिच्छलो वृष्यो बल्यो मधुरशीतलः। कषायश्च लघुः स्निग्धः शुक्रश्लेष्म-विवर्द्धनः॥ तद्रसस्तद्गुणो ग्राही कषायः कफनाशनः। 'पुष्पं' तद्वच्च निर्दिष्टं 'फलं' तस्य तथाविधम्॥ मोचरसस्तु कषायः कफवातहरो रसायनी योगात्। बलपुष्टिवर्णवीर्यप्रज्ञायुर्देहसिद्धिदो ग्राही॥ राजनिघण्टुः॥ शाल्मली शीतला स्वाद्वी रसे पाके रसायनी। श्लेष्मला पित्तवातास्त्रहारिणी रक्तपित्तजित्॥ मोचास्त्रावो हिमो ग्राही स्निग्धो वृष्यः कषायकः। प्रवाहिकातिसारामकफपित्तास्त्र-दाहनुत्॥ शाल्मलीपुष्पशाकन्तु घृतसैन्धवसाधितम्। प्रदरं नाशयत्येव दुःसाध्यञ्च न संशयः॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः–व्रणनिर्वापणे शाल्मलीत्वक्–"शाल्मलीत्वक् वलामूलं ...आलेपनं निर्वापणम्"। (चि. १३ अ.)। चरकः॥ पक्वातिसारे शाल्मली-वृन्तम्–"कृतं शाल्मलीवृन्तेषु कषायं हिमसंज्ञकम्।

निशापर्युषितं पेयं सक्षौद्रं मधुकान्वितम्॥ विबद्धवातविट्शूलपरीतः सप्रवाहिकः। सरक्तपित्तश्च पयः पिबेत् तृष्णासमन्वितः॥" (उ. ४० अ.)। सुश्रुतः॥ शुक्रवृद्ध्यर्थं शाल्मलीमूलम्–"शुक्रक्षये... विदारीकन्दशाल्मली... शस्यन्ते मधुराणि च॥" (चि. १० अ.)। हारीतः॥ (१) रक्तपित्ते शाल्मलीपुष्पम्–"...शाल्मलेः। पुष्पचूर्णन्तु मधुना लीढ्वा चारोग्यमश्नुते।" (रक्तपित्त-चि.)। (२) अग्निदग्धे व्रणे शाल्मलीतूलकम् -"पिष्ट्वा शाल्मलीतूलकैर्जलगता लेपात् तथा वालुका।" (व्रणशोथ-चि.)। (३) व्यङ्गे शाल्मलीकण्टकम्–"केवलान् पयसा पिष्ट्वा तीक्ष्णान् शाल्मलीकण्टकान्। आलिप्तं त्र्यूहमेतेन भवेत् पद्मोपमं मुखम्॥" (क्षुद्ररोग-चि.। चक्रदत्तः॥ (१) प्रदरे शाल्मलीपुष्पम्– "शाल्मलीपुष्प-शाकन्तु घृतसैन्धव-साधितम्। प्रदरं नाशयत्येव दुःसाध्यञ्च न संशयः॥" (२) प्लीह्नि शाल्मलीपुष्पम्-सुस्विन्नं शाल्मलीपुष्पं निशापर्युषितं नरः। राजिकाभूर्णसंयुक्तं खादेत् प्लीहोपशान्तये॥" (प्लीह-चि.)। भावप्रकाशः॥

रक्तशाल्मली, मोचा (Bombox Malabaricum, Bombox Heptaphylla.) श्वेतशाल्मली (B. Pentandrum.) कुटशाल्मली (B. Gosypinum.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- शाल्मलिः, मोचा, पिच्छिल्ला, कण्टकाढ्या, तूलिनी। हि.- सेमर, सेम्हल, शेम्बल। बं.- शिमुल गाछ, रक्तीसिमुल। म.- कांटे सावर, शेमला, सश्वरी। गु.- शेमलो, शिमुला। ते.- रुग चेट्टु, मुन्दल वुराग चेट्टु। ता.- पूला, शाल्मली। मा.- शेमल, सरभलो। क.- सवलवदमर। द्रा.- वलवगरम्। अं.- सिल्क काटन ट्री (Silk Cotton tree)। ले.- वोम्बाक्स मालावारिकम् (Bombox malabaricum)।

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा- दीर्घद्रुमः, चिरजीवी, कण्टकद्रुमः, तूलवृक्षः, रक्तपुष्पः, स्थूलफलः।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- शाल्मली (सिमर) शीतल तथा स्निग्ध है और शुक्र एवं कफ को बढ़ानेवाली है। सेमर का रस भी उसी गुणवाला है तथा ग्राही है। उसी को मोच रस कहते हैं। शाल्मली पिच्छिल है, वीर्यवर्द्धक है, बलवर्द्धक है तथा मधुर रस है। उसका रस ग्राही है और उसके पुष्प तथा फल के भी ये ही गुण हैं।

राजनिघण्टु के अनुसार- शाल्मली पिच्छिल, वीर्यवर्द्धक, बलवर्द्धक, मधुररस तथा शीतल है, कषाय रस है, लघु है, स्निग्ध है तथा शुक्र एवं कफवर्द्धक है। शाल्मली के रस का वही गुण है, ग्राही है, कषाय रस है तथा कफ नाशक है। उसके पुष्प तथा फल उसी प्रकार के गुणवाले हैं। मोच रस कषाय रस है, कफ-वातहर है तथा विविध योग से रसायन है। यह बल, पुष्टि, वर्ण, वीर्य, प्रज्ञा, आयु तथा देह सिद्धि देनेवाला है तथा ग्राही है।

भावप्रकाश के अनुसार- शाल्मली शीतल, रस तथा पाक में स्वादिष्ट और रसायन है। यह कफकारक है, पित्त-वात एवं रक्त विकार नाशक है और रक्त पित्त को जीतनेवाली है। मोचास्राव (मोचा रस) शीतल, ग्राही, स्निग्ध, वीर्यवर्द्धक तथा कषाय रस है। यह प्रवाहिका, अतिसार, आम विकार, कफ विकार, पित्त विकार, रक्त विकार तथा दाह को दूर करता है। सेमर का पुष्प तथा शाक घृत एवं सेन्धा नमक के साथ सिद्ध प्रदर रोग का नाश करता ही है इसमें सन्देह नहीं है।

वैद्यक शास्त्र में शाल्मली का प्रयोग-

व्रण निर्वापण में शाल्मली त्वक् का प्रयोग- सेमर की छाल तथा बला के मूल का कल्क आलेपन करने से व्रण का निर्वापण होता है। (च.चि.अ.१३)।

पक्वातिसार में शाल्मली वृन्त का प्रयोग- शाल्मली के वृन्तों का किया हुआ हिम संज्ञक कषाय रात्रि भर वासी करने के बाद मधु तथा मुलेठी का चूर्ण मिलाकर पान करे। विबन्ध, वात तथा पित्त एवं शूल और प्रवाहिका से मुक्त होने पर तथा रक्त पित्त से मुक्त होने पर एवं प्यास लगने पर दूध पान करे। (सु.उ.अ.४०)।

शुक्र बढ़ाने के लिए शाल्मली मूल का प्रयोग- शुक्र के क्षय हो जाने पर उसको बढ़ाने के लिए विदारी कन्द तथा सेमर का कल्क मधुर द्रव्यों के साथ सेवन करे। (हारित चि.अ.४०)।

(१) रक्तपित्त में शाल्मली पुष्प का प्रयोग- सेमर के पुष्प का चूर्ण मधु के साथ चाट कर रक्त पित्त का रोगी आरोग्य प्राप्त करता है (चक्र.रक्त पित्त चि.)। (२) **अग्नि दग्ध व्रण में शाल्मली तूल (रूई) का प्रयोग-** शाल्मली के रूई को जल में डालकर तथा पीसकर अग्निदग्ध व्रण में लेप करना प्रशस्त है तथा वालुका (दाल चीनी) का कल्क लेप करना प्रशस्त है। (चक्र.व्रण चि.)। (३) **व्यङ्ग में शाल्मली कण्टक का प्रयोग-** केवल सेमर के तीक्ष्ण कण्टक को जल के साथ (या दूध के साथ) पीसकर लेप करने से तीन दिन में मुख पद्म के समान सुन्दर हो जाता है तथा व्यङ्ग रोग नष्ट हो जाता है। (चक्र.क्षुद्र रोग चि.)।

(१) प्रदर में शाल्मली पुष्प का प्रयोग- सेमर के पुष्प का शाक घृत तथा सेन्धा नमक मिलाकर पकाया हुआ खाने से दुःसाध्य प्रदर रोग का नाश करता ही है इसमें सन्देह नहीं है। (भाव. प्रदर चि.)। (२) **प्लीहा में शाल्मली पुष्प का प्रयोग-** सेमर के पुष्प का अच्छी तरह पकाकर रातभर रखकर तथा वासी कर तथा राई का चूर्ण मिलाकर मनुष्य प्लीहा रोग की शान्ति के लिए खाय। (भावप्रकाश, प्लीहा चि.)।

Constituents—The seeds yield 25 p.c. of a sweet mondrying oil, of a light yellowish brown colour which contains crystalline insoluble fatty acids 92. 8 p.c. The cake of the seeds contain nitrogenous compounds, fat, extractive matter, wooly fibre and ash. (R. N. Khory, Vol. II, p. 103). **Actions and uses**—The root is astringent, alterative, demulcent and restorative, used in diarrhoea dysentery and menorrhoegia; also in high coloured urine with copious deposit. As an alterative and restorative the native use a path (confection) in tuberculosis of the lungs and other wasting diseases. The gum is used as an astringent and demulcent for the same purposes but more specially in dysentry menorrhoegia and in diarrhoea of children. Native women use it largely after delivery to stop menses during lactation. It is a chief ingredient in various restorative expectorant and aphrodisiac confections. Found to be a valuable substitute for gum kino, red gum &c. (R.N. Khory, Vol. II, p. 103).

शिंशपा

Dalbergia Sissoo, Roxb.

शिंशपा (कपिला) *Dalbergia Sissoo, Roxb.*

भेदाः—श्यामा शिंशपा, कपिला शिंशपा, श्वेता शिंशपा॥ कटूष्णं कण्डूदोषघ्नं वस्तिरोगविनाशनम्। शिंशपायुगलं वर्ण्यं हिक्काशोफौ विसर्जयेत्॥ पित्तदाहप्रशमनं बल्यं रुचिकरं परम्। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥

'श्यामादिशिंशपा' तिक्ता कटूष्णा कफवातनुत्। नष्टाजीर्णहरा दीप्या शोफातिसारहारिणी॥ कपिला शिंशपा तिक्ता शीतवीर्य श्रमापहा। वातपित्तज्वरघ्नी च च्छर्दिहिक्काविनाशनी॥ 'शिंशपात्रितयं' वर्ण्यं हिमशोफविसर्पजित्। पित्तदाहप्रशमनं बल्यं रुचिकरं परम्॥ राजनिघण्टुः॥ शिंशपा कटुका तिक्ता कषाया दोषहारिणी। उष्णवीर्या हरेन्मेदःकुष्ठश्वित्रवमि- क्रिमीन्॥ वस्तिरुग्व्रणदाहास्त्रवलासान् गर्भपातिनी। भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः- (१) वसामेहे शिंशपामूलत्वक्-"वसामेहिनं शिंशपाकषायम्" (चि. ११ अ.)। (२) सर्वज्वरे शिंशपासारः-"उदकाद्द्विगुणं क्षीरं शिंशपासारसंयुतम्। तत् क्षीरशेषं क्वथितं पेयं सर्वज्वरापहम्॥" (उ. ३९ अ.)। सुश्रुतः॥ नेत्ररोगे शिंशपापल्लवः-"वातपित्तकफदोषसम्भवान्। नेत्रयोर्बहु-व्यथां हरेत् क्षणात्। एक एव हरति प्रयोजितः। शिंशपापल्लवरसः समाक्षिकः॥" (चि. ४४ अ.)। हारीतः॥ गृध्रस्यां शिंशपात्वक्-"शिंशपात्वक् तुलां चूर्ण जलद्रोणद्वये पचेत्। अष्टभागावशिष्टञ्च पूतं लेहच्च कारयेत्॥ पायसञ्चे हविष्यान्नं तत्कर्षेण च मिश्रितम्। भक्षयेदेकविंशाहं गृध्रसीनाशनं परम्॥ वङ्गसेनः॥

शिंशपा (कपिला) (Dalbergia Sissoo, Roxb.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- शिंशपा, पिच्छिला, कृष्णसारा। हि.- शीशम, कपिल वर्ण शीशम, शीशो, शीशवा। गु.- शिशम। क.- करीय इविडु, अगरु गिड। ते.- जिहेरे चेट्टु, शिशकरम। ता.- जानुक्कु कट्टइ। अ.- सासम। द्रा.- शिशपा। मा.- सीसम। अं.- ब्लैक वूड शिशू ट्री (Black wood sisoo tree)। ले.- दल्वेर्जिया सिसु (Dalbergia Sissoo)।

शीशम के भेद- श्यामा शिंशपा, कपिला शिंशपा, श्वेत शिंशपा।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- दोनों प्रकार का शीशम कटु रस तथा उष्ण है तथा कण्डू दोष का नाश करता है और वस्ति रोग नाशक है। यह वर्ण के लिए हितकर है, हिक्का, तथा शोथ का नाश करता है। यह पित्त विकार तथा दाह को शान्त करता है, बलकारक है तथा उत्तम रुचिकारक है।

राजनिघण्टु के अनुसार- श्यामा आदि सीशम तिक्तरस, कटु रस तथा उष्ण है और कफवात को दूर करता है। यह नष्टाजीर्ण को दूर करता है, जाठराग्नि दीपक है तथा शोथ एवं अतिसार को दूर करता है। कपिला शिंशपा तिक्त रस, शीत वीर्य तथा श्रमनाशक है। यह वात-पित्त तथा ज्वर का नाश करती है और वमन एवं हिक्का का विंनाश करती है। तीनों प्रकार के शीशम वर्ण कारक, शीतल हैं तथा शोथ एवं विसर्प को दूर करते हैं। ये पित्त विकार तथा दाह को शान्त करते हैं, बलकारक हैं तथा उत्तम रुचिकारक हैं।

भावप्रकाश के अनुसार- शिंशपा कटुरस, तिक्तरस तथा कषाय रस है और दोष नाशक है। यह उष्ण वीर्य तथा मेदो विकार, कुष्ठ रोग, श्वित्र रोग, वमन तथा क्रिमि रोग का नाश करती है। यह वस्ति की पीड़ा, व्रण, दाह, रक्त विकार, कफ विकार का नाश करती है तथा गर्भपातक है।

वैद्यक शास्त्र में शिंशपा का प्रयोग-

(१) वसा मेह में शिंशपा मूल त्वक् का प्रयोग- शिंशपा मूल त्वक् का कषाय वसा मेह में पान कराये।

(सु.चि.अ.११)। (२) **सभी ज्वरों में शिंशपा सार का प्रयोग**- शीशम के सार को जल तथा दुगुना दूध मिलाकर विधिवत् पकावे। दूध मात्र शेष रह जाय तो पान करे। यह सभी प्रकार के ज्वर को शान्त करता है। (सु.उ. अ.३९)।

नेत्र रोग में शिंशपा पल्लव का प्रयोग- एक ही शिंशपा पल्लव का रस शहद मिलाकर प्रयोग करने से वात-पित्त-कफ दोष जन्य नेत्रों की अनेक विध पीड़ा को क्षण भर में दूर करती है। (हारीत, चि.अ.४४)।

गृध्रसी रोग में शिंशपा त्वक् का प्रयोग- शीशम की छाल एक तुला (५ किलो) को कूटकर, जल एक द्रोण (१६ किल) में पकावे। अष्टमांश शेष रहने पर छान कर लेहवत् बना ले। इस पायस को हविष्यान्न मिलाकर एक कर्ष (१० ग्राम) की मात्रा में एव एक दिन तक खाय। यह योग उत्तम गृध्रसी नाशक है। (बंगसेन)

शिग्रुत्रयम्

Hyperanthera Moringa

श्वेतशिग्रुः, कृष्णगन्धा–*Hyperanthera Moringa, Willd.* **रक्तशिग्रुः**—*A red flowered variety.*

शिग्रुत्रयम्, यथा–(१) श्वेतशिग्रुः (शिग्रुः), (२) रक्तशिग्रुः (मधुशिग्रुः), (३) नीलशिग्रुश्च (कृष्णशिग्रुः), शोभाञ्जनः। अन्वर्थसंज्ञाः–श्वेतशिग्रोः–"शाकपत्रः", "तीक्ष्णमूलः", "श्वेतमरिचः"। रक्तशिग्रोः–"बहुलच्छदः", "सुगन्धकेसरः", "मृगारिः"। नीलशिग्रोः–"मुखामोदः", "चक्षुष्यः"॥ 'शोभाञ्जनद्वयं' तीक्ष्णं कटु स्वादूष्णपिच्छलम्। सक्षारं वातशोफघ्नं दृष्टिमान्द्यहरं सरम्॥ शिग्रुस्तिक्तः कटुश्चोष्णः कफशोफसमीरजित्। क्रिम्यामविषमेदोघ्नो विद्रधिप्लीहगुल्मनुत्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ शिग्रुश्च कटुतिक्तोष्णस्तीक्ष्णो वातकफापहः। मुखजाड्यहरो रुच्यो दीपनो व्रणदोषनुत्॥ शोभाञ्जनः (नील-शिग्रुः) तीक्ष्णकटुः स्वादूष्णपिच्छलस्तथा। जन्तुवातार्त्तिशूलघ्नश्चक्षुष्यो रोचनः परः॥ 'श्वेतशिग्रुः' कटुस्तीक्ष्णः शोफाानिलनिकृन्तनः। अङ्गव्यथाहरो रुच्यो दीपनो मुखजाड्यनुत्॥ 'रक्तशिग्रु'र्महावीर्यो मधुरश्च रसायनः। शोफाध्मान समीरार्त्तिपित्तश्लेष्मापसारकः॥ राजनिनिघण्टुः॥ शिग्रुः कटुः कटुः पाके तीक्ष्णोष्णो मधुरो लघुः। दीपनो रोचनो रूक्षः क्षारस्तिक्तो विदाहकृत्॥ सङ्ग्राही शुक्रलो हृद्यः पित्तरक्तप्रकोपनः। चक्षुष्यः कफवातघ्नो विद्रधिश्वयथु-क्रिमीन्। मेदोऽपचीविषप्लीहगुल्मगण्डव्रणान् हरेत्॥ श्वेतः प्रोक्तगुणो ज्ञेयो विशेषाद्दाहकृद् भवेत्। प्लीहानं विद्रधिं हन्ति व्रणघ्नो पित्तरक्तहृत्॥ 'मधुशिग्रुः' प्रोक्तगुणो विशेषाद्दीपनः सरः। शिग्रुवल्कलपत्राणां स्वरसः परमार्त्तिहृत्॥ चक्षुष्यं शिग्रुजं बीजं तीक्ष्णोष्णं विषननाशनम्। अवृष्यं कफवातघ्नं तन्नस्येन शिरोऽर्त्तिनुत्॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) शुष्कार्शःसु शिग्रुपत्रम्–"...शिग्रोश्च पत्राणि। जलेनोत्क्वाथ्य शूलार्त्तं स्वभ्यक्तमवगाहयेत्॥" (चि. ९ अ.)। (२) ग्रन्थिविसर्पे कृष्णगन्धात्वक्–"सुखोष्णया प्रदिह्याद्वा पिष्टया कृष्णगन्धया" (चि. ११ अ.)। (३) हिक्काश्वासयोः शोभाञ्जनपत्रम्–"–पत्राणां यूषः शोभाञ्जनस्य च। ...हिक्काश्वासनिवारणः॥" (चि. २१ अ.)। (४) अश्मरीशर्करयोः शोभाञ्जनमूलम्–"जलेन शोभाञ्जनमूलकल्कः शृतो हितः–" (चि. २६ अ.)। चरकः॥ (१) कुष्ठक्षते शिग्रुतैलम्–"–क्षतेषु क्षेप्यं तैलं शिग्रुकोशाम्रयोर्वा" (चि. ९ अ.)। (२) प्लीहोदरे शोभाञ्जनमूलम्–"शोभाञ्जनकषायं

वा पिप्पलीसैन्धवचित्रकयुक्तं..." (चि. १४ अ.)। (३) अपच्यां शिग्रुफलबीजम्–"हितोऽवपीडे फलानि शिग्रोः–" (चि. १८ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) अपक्वे विद्रधौ रक्तशिग्रुः–"पान भोजनलेपेषु मधुशिग्रुः प्रयोजितः। दत्तावापो यथादोषमपक्वं हन्ति विद्रधिम्॥" (चि. १३ अ.)। (२) वातपित्तकफसन्निपातजायां नेत्रव्यथायाम् शिग्रुपल्लव-रसः– "वातपित्तकफसन्निपातजां नेत्रयो-र्बहुविधामपि व्यथाम्। शीघ्रमेव जयति प्रयोजितः शिग्रुपल्लवरसः समाक्षिकः॥" (चि. १६ अ.)। वाग्भटः॥ (१) सन्निपातज्वरिणो बोधनार्थं शोभाञ्जनमूलम्– "शोभाञ्जनकमूलस्य रास्ना समरिचान्वितम्। विसंज्ञितानां नस्यं स्याद्बोधनं चाशु रोगिणाम्॥" (चि. २ अ.)। (२) श्लेष्मशूले शोभाञ्जनमूलम्–शोभाञ्जनकमूलस्य रसञ्च मरिचान्वितम्। सक्षारमधुनोपेतः श्लेष्मशूलनिवारणः॥" (चि. ९ अ.)। (३) शिरःशूले शोभाञ्जनत्वक्– "गुडशोभाञ्जनरसैर्नस्ययोगात् पृथक् पृथक्... शिरोऽर्त्तिश्चोपशाम्यति" (चि. ३९ अ.)। हारीतः॥ (१) अन्तर्विद्रधौ शिग्रुमूलस्वरसः–"शिग्रुमूलं जले धौतं दरपिष्टं प्रगालयेत्। तद्रसं मधुना पीत्वा हन्त्यन्तर्विद्रधिं नरः॥" (विद्रधि-चि.)। (२) कर्णशूले शोभाञ्जनमूलस्वरसः–"...सूर्या- वर्त्तशोभाञ्जनमूलकस्वरसाः। मधुतैलसैन्धवयुताः पृथगुक्ताः कर्णशूलहराः॥" (कर्णरोग-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) कृमिषु शिग्रुत्वक्–"सक्षौद्रः कृमिजिद्भिः पीतः क्रिमिहरः शिग्रुजश्च क्वाथः।" (कृमि-चि.)। (२) वातरक्ते शिग्रुकल्कः–"शिग्रु वरुणस्य कल्को धान्याम्लेनानिलार्त्तिजिल्लेपात्। भवति नवेति विकल्पो न विधेयः सिद्धयोगेऽस्मिन्॥" (वातरक्त-चि.)। (३) उरोग्रहे शिग्रुत्वक्– "पुत्रजीवकशिग्रुत्थाः...। रसा एकैकशः कोष्णा द्विशो वा रामठान्विताः॥" (उरोग्रह-चि.)। (४) दद्रौ शिग्रुमूलत्वक्–"दद्रुघ्नं लेपनं कुर्याच्छिग्रु-मूलत्वचोऽथवा।" (कुष्ठ-चि.)। (५) स्नायुरोगे शिग्रुमूलदले–"शिग्रुमूलदलैः पिष्टैः काञ्जिकेन ससैन्धवैः। लेपनं स्नायुकव्याधिः शमनं परमं मतम्॥" (स्नायुकरोग-चि.)। (६) नवदृक्कोपे शिग्रुमूलम्–"नवदृक्कोपशमनः क्षौद्रयुतः शिग्रुमूलरससेकः।" (नेत्ररोग-चि.)। वङ्गसेनः॥

श्वेतशिग्रुः, कृष्णगन्धा (Hyperanthera Moringa, Willd.), रक्तशिग्रुः (A red flowered variety.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं- शोभाञ्जनः, शिग्रुः, तीक्ष्णगन्धः। हि.- सहिजन, सैजनि। बं.- सजिना, सजिनरेमा। म.- शेवमा। रोग गेट। मा.- सहिजणो। क.- करियनुगि। गु.- सरगवा। ता.- मोरंग। तै.- गुलंगा। फा.- सर्वकाही। यू.- सिनोह। द्रा.- मुरङ्गे। अं.- हर्श रेडिश ट्री (Horse Radish tree)। ले.- ड्रम स्टिक (Drum Stick)।

भेद- (१) श्वेत शिग्रु (शिग्रु), (२) रक्त शिग्रु (मधु शिग्रु), (३) नीलशिग्रु (कृष्ण शिग्रु) शोभाञ्जन। **अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा–** श्वेत शिग्रु– शाकपत्रः, तीक्ष्णमूलः, श्वेतमरिचः। रक्तशिग्रु- बहुलच्छदः, सुगन्धकेशरः, मृगारिः। नीलशिग्रु- मुखामोदः, चक्षुष्यः।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- दोनों प्रकार के शोभाञ्जन (सहिजन), तीक्ष्ण, कटुरस, स्वादिष्ट, उष्ण तथा पिच्छिल हैं, क्षारीय हैं और वातज शोथ का नाश करते हैं, दृष्टिमान्द्य को दूर करते हैं तथा सारक हैं। शिग्रु तिक्त रस, कटु रस तथा उष्ण है और कफ विकार, शोथ तथा वात विकार को शान्त करता है। यह क्रिमि

रोग, आम विकार, विष विकार तथा मेदो रोग का नाश करता है, विद्रधि, प्लीहा रोग तथा गुल्म रोग को दूर करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- शिग्रु (सहिजन) कटुरस, तिक्त रस, उष्ण तथा तीक्ष्ण है और वात विकार तथा कफ विकार को दूर करता है। यह मुख की जड़ता को दूर करता है, रुचिकारक है, जाठराग्नि दीपक है तथा व्रण दोष को दूर करता है। शोभाञ्जन (नील शिग्रु) तीक्ष्ण, कटु रस, स्वादिष्ट, उष्ण तथा पिच्छिल है और क्रिमि रोग, वात विकार, पीड़ा तथा शूल का नाश करनेवाला है, नेत्र के लिए हितकर है तथा उत्तम रोचक है। श्वेत शिग्रु कटु रस तथा तीक्ष्ण है और शोथ एवं वात विकार का नाश करता है। यह अंग व्यथा को दूर करता है, रुचिकारक है, जाठाराग्नि दीपक है तथा मुख की जड़ता को दूर करता है। रक्त शिग्रु महावीर्य-वाला, मधुर तथा रसायन है और यह शोथ, आध्मान, वात विकार, पीड़ा, पित्त विकार तथा कफ विकार को दूर भगाता है।

भावप्रकाश के अनुसार- शिग्रु कटुरस, पाक में कटु तीक्ष्ण, उष्ण, मधुर, लघु, दीपक, रोचक, रूक्ष, क्षारीय, तिक्त रस है तथा विदाह कारक है। यह संग्राही है, शुक्रवर्द्धक है, हृद्य है तथा पित्त एवं रक्त विकार को प्रकुपित करता है। यह नेत्र के लिए हितकर है, कफ नाशक है और विद्रधि, शोथ, क्रिमि रोग, मेदो रोग, अपची, विष विकार, प्लीहा रोग, गुल्म रोग, गण्ड माला तथा व्रण को दूर करता है। श्वेत शिग्रु पूर्वोक्त गुण-वाला कहा गया है और विशेषकर दाहकारक होता है। यह प्लीहा रोग तथा विद्रधि का नाश करता है, व्रण नाशक है एवं रक्त पित्त को दूर करता है। मधु शिग्रु उपरोक्त गुणवाला है तथा विशेष कर जाठराग्नि दीपक है एवं सारक है। सहिजन की छाल तथा पत्तों का स्वरस भयंकर पीड़ा को दूर करनेवाला है, नेत्र के लिए हितकर है। सहिजन का बीज तीक्ष्ण उष्ण तथा विष नाशक है, वीर्यवर्द्धक नहीं है, कफ-वात नाशक है। वह नस्य लेने से शिर की पीड़ा को दूर करता है।

वैद्यक शास्त्र में शिग्रु का प्रयोग-

(१) शुष्कार्श में शिग्रु पत्र का प्रयोग- सहिजन के पत्तों को जल में क्वाथ कर शूलार्त (अर्श शूल से पीड़ित) व्यक्ति अभ्यङ्ग करे तथा उस क्वाथ में अवगाहन करे। (च.चि.अ.९)। (२) **ग्रन्थि विसर्प में कृष्णगन्धा शिग्रु के त्वक् का प्रयोग**- कृष्णगन्धा शिग्रु की पीठी से थोड़ा गरम कर विसर्प के ऊपर लेप करे। (च.चि. अ.११)। (३) **हिक्का श्वास में शेभाञ्जन पत्र का प्रयोग**- शेभाञ्जन के पत्तों का यूष हिक्का तथा श्वास रोग को दूर करनेवाला है। (च.चि.अ.२१)। (४) **अश्मरी तथा शर्करा रोग में शोभाञ्जन मूल का प्रयोग**- शोभाञ्जन के मूल का कल्क पकाकर जल के साथ सेवन करना अश्मरी तथा शर्करा रोग में हितकर है। (च. चि.अ.२६)।

(१) कुष्ठ के क्षत होने पर शिग्रु तैल का प्रयोग- सहिजन तथा कोशाम्र के कल्क के साथ विधिवत सिद्ध तैल कुष्ठ के क्षत के ऊपर लगाये। (सु.चि.अ.९)। (२) **प्लीहोदर में शोभाञ्जन मूल का प्रयोग**- प्लीहोदर में शोभाञ्जन कषाय पीपर चूर्ण, सेन्धा तथा चित्रक का चूर्ण मिलाकर पान करे। (सु.चि.अ.१४)। (३) **अपची में शिग्रु फल के बीज का प्रयोग**- शिग्रु फल के बीज के कल्क का अपची में अवपीडन करना हितकर है। (सु.चि.अ.१८)।

(१) अपक्व विद्रधि में रक्त शिग्रु का प्रयोग- पान, भोजन तथा लेप से मधु शिग्रु का प्रयोग करने से तथा दोषों के अनुसार आवाप देने पर अपक्व विद्रधि का नाश होता है। (वाग्भट, चि.अ.१३)। (२) **वात-पित्त-कफ-सन्निपातज नेत्र व्यथा में शिग्रु पल्लव रस का प्रयोग**- सहिजन के पल्लव का रस मधु मिलाकर प्रयोग करने पर वात-कफ-पित्त-सन्निपातज नेत्र व्यथा को शीघ्र ही जीत लेता है। (वाग्भट, चि.अ.१६)।

(१) **सन्निपात ज्वर के रोगी को होश में लाने के लिए शोभाञ्जन मूल का प्रयोग-** शोभाञ्जन मूल का तथा रास्ना तथा मरिच का चूर्ण मिलाकर नस्य लेने से बेहोश रोगियों का बोधन शीघ्र ही होता है। (हारीत, चि.अ.२)। (२) **कफज शूल में शोभाञ्जन मूल का प्रयोग-** शोभाञ्जन मूल का रस मरिच चूर्ण, क्षार तथा मधु मिलाकर पान करने से कफज शूल को दूर करता है। (हारीत, चि.अ.९)। (३) **शिरः शूल में शोभाञ्जन त्वक् का प्रयोग-** गुड़ तथा शोभाञ्जन के रस से अलग-अलग नस्य लेने से शिर की पीड़ा शान्त होती है। (हारीत, चि.अ.३९)।

(१) **अन्तर्विद्रधि में शिग्रु स्वरस का प्रयोग-** सहिजन के मूल को जल में धोकर तथा जल के साथ पीसकर छान ले। उस रस का मधु के साथ पानकर मनुष्य अन्तर्विद्रधि को दूर करता है। (चक्र.विद्रधि चि.)। (२) **कर्ण शूल में शोभाञ्जन मूल स्वरस का प्रयोग-** सूर्यावर्त तथा शोभाञ्जन मूल का स्वरस मधु, तैल तथा सेन्धा मिलाकर कान में छोड़ना कान का शूल दूर करता है। (चक्र.कर्ण.चि.)।

(१) **क्रिमि रोग में शिग्रु त्वक् का प्रयोग-** सहिजन का क्वाथ मधु मिलाकर क्रिमि को जीतनेवालों द्वारा पान करने से क्रिमिहर होता है। (बंगसेन, क्रिमिरोग चि.)। (२) **वातरक्त में शिग्रु कल्क का प्रयोग-** सहिजन तथा वरुण का कल्क धान्याम्ल के साथ लेप करने से वात रक्त का नाश करता है। इस सिद्ध योग में होगा या न होगा ऐसा विकल्प न करे। (बंगसेन, वातरक्त चि.)। (३) **उरोग्रह में शिग्रुत्वक् का प्रयोग-** पुत्र जीव तथा सहिजन का रस एक एक का या दो का थोड़ा गरम-गरम हींगकर चूर्ण मिलाकर लेप करने से उरोग्रह दूर होता है। (वंगसेन, उरोग्रह चि.)। (४) **दद्रु में शिग्रु मूलत्वक् का प्रयोग-** शिग्रुमूल के त्वचा का रस लेप करने से दद्रु (दाद) का नाश करता है। (बंगसेन, कुष्ठ चि.)। (५) **स्नायु रोग में शिग्रु मूल तथा पत्र का प्रयोग-** सहिजन के मूल तथा पत्र के कल्क सेन्धा नमक मिलाकर काञ्जी के साथ लेप करना स्नायुक रोग को अच्छी तरह से शान्त करता है। (बंगसेन, स्नायुक रोग चि.)। (६) **नवीन नेत्र कोप में शिग्रु मूल का प्रयोग-** नवीन नेत्र के कोप में सजिन मूल का रस शहद मिलाकर सेवन करने से नवीन नेत्र कोपको शान्त करता है। (बंगसेन, नेत्ररोग चि.)।

Constituents—The root yields an essential oil which is very pungent and has a very offensive odour. The husked seeds yield oil 36 p.c. The bark contains a white crystalline alkaloid, resins, an organic acid mucilage and ash 8 p.c. (R. N. Khory, Vol. II, p. 235) **Actions and uses**—Antispasmodic, stimulant, expectorant and diuretic. The root is very irritating to the skin. The decoction is a stimulant given with asafetida rock salt in internal deep seated inflammations, in calculous affection, in hysteria, epilepsy, paralysis, rheumatism, dropsy, in cough and in flatulence in children also in ascites due to the enlargement of the Liver. As a diuretic it is given in uric acid diathesis. The pods are taken as preventive against worms. Externally the oil from the seeds is used as a stimulant application to rheumatic joints and to gouty and other painful parts. The bark is acrid. With cumin seeds it is applied locally to gumboils and toothache with relief. It is applied to the temples in headache and on the veneral nodes and syphilitic buboes. The decoction of the root is used as a gargle in sorethroat. The bark is abortifacient, and is used to procure abortion, and is a good substitute for laminaria to dilate those. The gum with milk or sweet oil is poured into the ear in earache. The poultice of the leaves is used in reducing glandular swellings. It always produces a blister. (R. N. Khory, Vol. II, p. 236).

"The gum of the tree, mixed with sesamum oil is recommended to be poured into the ears for the relief of otalgia. It is also rubbed with milk and applied in headache to the temples. The juice of the root with milk is diuretic, antilithic and digestive, and is useful in asthma. A poultice made with the root reduces swellings, but is very irritating and painful to the skin. The pods are a wholesome vegetable and act as a preventive against intestinal worms. Rumphius and Lourceiro state that the bark is emmenagogue and even abortifacient. In Bengal half ounce doses of the bark are said to be used to procure abortion. According to Fleming the oil of the seeds is used as an external application for rheumatism in Bengal. In India the root is generally accepted by Europeans as a perfect substitute for Horse Radish. A decoction of the root-bark is used as a fomentation to relieve spasm. (Dymock, Vol. I, pp. 397-98).

शिरीषः

Mimosa Sirissa, Roxb.

शिरीषः–*Mimosa Sirissa, Roxb.*

अन्वर्थसंज्ञाः–"मृदुपुष्पः", "सुपुष्पकः", "लोमशपुष्पकः", "वृत्तपुष्पः", "विषहन्ता"। तिक्तोष्णी विषहा वर्ण्यस्त्रिदोषशमनी लघुः। शिरीषः कुष्ठकण्डूघ्नस्त्वग्दोषश्वासकासहा॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ शिरीषः कटुकः शीतो विषवातहरः परः। पामासृक्कुष्ठकण्डूतित्वग्दोषस्य विनाशनः॥ राजनिघण्टुः॥ शिरीषो मधुरोऽनुष्णः तिक्तश्च तुवरो लघुः। दोषशोथविसर्पघ्नः कासव्रणविषापहः॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः–अग्र्यग्रन्थे शिरीषः–"शिरीषो विषघ्नानाम्" (सू. २५ अ.)। (१) कुष्ठे शिरीषत्वक्–"शैरीषीं त्वचं... पिष्ट्वा चतुर्विधः कुष्ठनुल्लेपः।" (चि. ७ अ.)। (२) कफजे विसर्पे शिरीषकुसुमम्–"...शिरीषकुसुमानि च। ...पृथगालेपनं दद्याद्द्वन्द्वशः सर्वशोऽपि वा। प्रदेहाः सर्व एवैते देयाः स्वल्पघृतायुताः॥" (चि. ११ अ.)। (३) कफपित्तानुगे श्वासे शिरीषपुष्पम्–"शिरीषपुष्पस्वरसः सप्तपर्णस्य वा पुनः। पिप्पलीमधुसंयुक्तः कफपित्तनुगे मतः॥" (चि. २१ अ.)। (४) सर्पविषे शिरीषपुष्पम्– "रसे शिरीषपुष्पस्य सप्ताहं मरिचं सितम्। भावितं सर्पदष्टानां नस्यपानाञ्जने हितम्॥" (चि. २५ अ.)। चरकः॥

शिरीषः (Mimosa Sirissa, Roxb.)

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– शिरीषः, मण्डिलः, कपीतनः, शुकप्रिया। हि.– सिरस, सिरस्त, शिरीष। बं.– शिरीष गाछ, चटका। म.– सिरसांधे झाड, शिरेषी। गु.– सरस डियो, शरशडो। क.– शिरसु, वागेभर। ते.– दिरजन शिरीषभानु। ता.– कट्टु वाले। द्रा.– कारवाडई। फा.– जकरियात तुख्मे दरख्त जकरिया। अ.– सुलतानुल अजनार। ले.– अल्विजिया लिव्लेक।

अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा– मृदुपुष्पः, सुपुष्पकः, लोमशपुष्पकः, वृत्तपुष्पः विषहन्ता।

गुण एवं दोष–

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार– शिरीष तिक्त रस तथा उष्ण है और यह विषनाशक है, वर्ण के लिए

हितकर है, त्रिदोष नाशक है तथा लघु है। यह कुष्ठ रोग तथा कण्डू का नाश करता है तथा त्वचा का विकार, श्वास एवं कास को नष्ट करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- शिरीष कटुरस तथा शीतल है और विष विकार एवं वात विकार को अच्छी तरह दूर करता है। यह पामा, रक्त विकार, कुष्ठ रोग, कण्डू तथा त्वक् दोष का नाश करता है।

भावप्रकाश के अनुसार- शिरीष मधुर रस, अनुष्ण, तिक्त रस, कषाय रस तथा लघु है, यह दोष, शोथ तथा विसर्प का नाश करता है और कास, व्रण एवं विष को दूर करता है।

वैद्यक शास्त्र में शिरीष का प्रयोग-

आर्ष ग्रन्थ में शिरीष- विष नाशकों में शिरीष प्रथम है। (च.सू.अ.२५)। (१) **कुष्ठ रोग में शिरीष त्वक् का प्रयोग**- शिरीष की त्वचा को पीसकर चार प्रकार का लेप करना कुष्ठ को दूर करता है। (च.चि.अ.७)। (२) **कफज विसर्प में शिरीष कुसुम का प्रयोग**- शिरीष के कुसुमों का एक-एक या दो-दो अथवा सभी को पीसकर लेप बनाकर लेप करे। इन सभी का थोड़ा घृत मिलाकर प्रयोग करे। (च.चि.अ.११)। (३) **कफ पित्तानुग श्वास में शिरीष पुष्प का प्रयोग**- शिरीष के पत्र का स्वरस या सप्तपर्ण का रस पीपर का चूर्ण तथा शहद मिलाकर कफ पित्तानुग श्वास में पान करे। (च.चि.अ.२१)। (४) **सर्प विष में शिरीष पुष्प का प्रयोग**- शिरीष पुष्प के रस में सफेद मरिच का चूर्ण सात बार भावित कर सर्प काटे हुए व्यक्ति के द्वारा नस्य तथा अंजन करना सर्पदंश विष में हितकर है। (च.चि.अ.२५)।

Constituents—Bark contains tannin, resin 7.5 p.c. and ash 9 p.c. **Actions and uses**—The seeds are astringent, tonic and used in diarrhoea and in seminal debility. Leaves are used as poultices over boils, skin eruptions and swelling. The powdered bark is used as anjana in eye diseases. A decoction of the bark is used as a gargle in sore mouth. Internally it is a tonic and alterative. (R. N. Khory, Vol. II, p. 188). "The author of the *Makhzan-el-adwiya,* states that the juce of the leaves is applied to the eyes to cure night-blindness, decoction being at the same time given internally. A decoction of the bark is used as a mouth-wash to strengthen the gums. One masha of the powdered bark with three or four tolas of melted butter taken daily is a excellent tonic and alterative. The flowers are supposed to be retentive of the seminal fluid. One dirhem of the powdered seeds with two dirhem of sugarcandy in a glass of warm milk taken daily is said to thicken the seminal fluid. A paste made with the seeds is applied to reduce enlarged cervical glands. (Dymock. Vol. I, p. 562).

शिलाभेदः

Plectranthus Aromaticus

शिलाभेदः, पाषाणभेदः–*Plectranthus Aromaticus. Eng.—Country Borage.* **वटपत्री**–*P. Secundus.* **क्षुद्रपाषाणभेदः**–*P. Monadelphus, P. Strobiliferus.*

अस्य भेदाः–(१) वटपत्री (२) शिलावल्कम् (३) चतुष्पत्री, क्षुद्रा पाषाणभेदा॥ पाषाणभेदकः शूलकृच्छ्रमेहत्रिदोषजित्। हृद्रोगप्लीहगुल्मार्शोवस्ति-शुद्धिकरः परः॥ अश्मभेदो हिमस्तिक्तः शर्करा शिश्नशूलजित्। धन्वन्तरीय-निघण्टुः॥ 'पाषाणभेदी' मधुरस्तिक्तो मेहविनाशनः। तृड्दाहमूत्रकृच्छ्रघ्नः

शीतलश्चाश्मरीहर:॥ 'वटपत्री' हिमा गौल्या मेहकृच्छ्रविनाशनी। बलद: व्रणहन्त्री च किञ्चिद्दीपनकारिणी॥ शिलावल्कं हिमं स्वादु मेहकृच्छ्रविनाशनम्। मूत्र-रोधाश्मरीशूलक्षयपित्तापहारकम्॥ क्षुद्रपाषाणभेदा च व्रणकृच्छ्राश्मरीहरा। राजनिघण्टु:॥ अश्मभेदो हिमस्तिक्त: कषायो वस्तिशोधन:। भेदनो वस्ति दोषार्शोगुल्मकृच्छ्राश्महृद्रुज:। योनिरोगान् प्रमेहाश्च प्लीहशूलव्रणानि च॥ भावप्रकाश:॥

वैद्यके व्यवहार:–गुर्विण्या मूत्ररोधे शिलाभेद:–"शिलाभेदं सिताढ्यञ्च पिबेत् तण्डु-लवारिणा। मूत्ररोधो गुर्विणीनां वारयत्याशु निश्चितम्॥ (चि. ५० अ.)। हारीत:॥

शिलाभेद:, पाषाणभेद: (Plectranthus Aromaticus. Eng.—Country Borage.) वटपत्री (P. Secundus.) क्षुद्रपाषाणभेद: (P. Monadelphus, P. Strobiliferus.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- शिलाभेद:, पाषाणभेद:। हि.- पाषाणभेद, पाथरचुर। ता.- कर्पूरवल्ली। फा.- गोशाद्। अ.- जिस्तियाना। अं.- कान्टि वोरेज्।

पाषाणभेद के भेद- (१) वटपत्री (२) शिलावल्कम्, (३) चतुष्पत्री, क्षुद्र पाषाणभेद।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- पाषाणभेदक शूल, मूत्र कृच्छ्र, प्रमेह तथा त्रिदोष को दूर करनेवाला है। यह हृदय रोग, प्लीहा, गुल्म, अर्श रोग तथा वस्ति को अच्छी तरह शुद्ध करनेवाला है। अश्मभेद शीतल, तिक्त रस है और शर्करा रोग तथा मूत्रेन्द्रिय के रोग को दूर करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- पाषाणभेद मधुर तथा तिक्त रस है तथा प्रमेह का नाश करता है। यह प्यास, दाह तथा मूत्र कृच्छ्र नाशक है और शीतल है एवं अश्मरी हर है। वटपत्री पाषाणभेद शीतल तथा गले के लिए हितकर है और प्रमेह एवं मूत्र कृच्छ्र का नाश करता है, बलदायक है, व्रणनाशक है, शोथ, जाठराग्नि दीपक है। शिलावल्क शीतल तथा स्वादिष्ट है और प्रमेह एवं मूत्र कृच्छ्र का नाश करनेवाला है। यह मूत्रावरोध, अश्मरी रोग, शूल, क्षय रोग तथा पित्त विकार का नाश करता है। क्षुद्र पाषाण-भेद व्रण, मूत्र कृच्छ्र तथा अश्मरी रोग को दूर करता है।

भावप्रकाश के अनुसार- पाषाणभेद शीतल, तिक्त रस तथा कषाय रस है और वस्ति शोधक है। यह वस्ति दोष, अर्श रोग, गुल्म रोग, मूत्र कृच्छ्र तथा अश्मरी एवं हृदय रोग का भेदन करनेवाला है। यह योनि रोगों प्रमेहों का तथा प्लीहा, शूल एवं व्रण का नाश करता है।

वैद्यक शास्त्र में पाषाण भेद का प्रयोग-

गर्भवती के मूत्र रोध में शिलाभेद का प्रयोग- पाषाण भेद का मिश्री मिलाकर चावल के धोअन के साथ गर्भिणी के मूत्र रोध में पान करे। यह शीघ्र ही गर्भिणी के मूत्ररोध को दूर करता है। यह निश्चित है। (हारित संहिता चि. अ. ५०)।

Actions and uses—Antispasmodic, stimulant and stomachic, used in colic in children, asthma, dyspepsia; also as a local application to the head in headache, and to relieve the pain and irritation caused by the stings of centipedes. It is also given in chronic cough, fever, asthma, epilepsy and other convulsive affections. (R. N. Khory, Vol. II, p. 480).

शूरणद्वयम्

Amorphophallus Campanulatus

शू(सू)रणः–*Amorphophallus Campanulatus, Blume. Arum Campanulatum, Roxb.*

भेदः–रक्ताभश्वेतः श्वेतश्च। अन्वर्थसंज्ञाः–रक्ताभश्वेतस्य–"रुच्यकन्दः", "स्थूलकन्दः", "दुर्नामारिः", "वातारिः"। द्वयोः–"कण्डूलः"। शूरणः कटुको रुच्यो दीपनः पाचनस्तथा। कृमिदोषहरो वातशूलगुल्मास्रदोषनुत्। कासं श्वासञ्च छर्दिञ्च निवारयति सेवितः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ शूरणः कटुक-रुच्यदीपनः पाचनः कृमिकफानिलापहः। श्वासकासवमनार्शसां हरः शूलगुल्म-शमनोऽस्रदोषनुत्॥ 'श्वेतशूरणको' रुच्यः कटूष्णः कृमिनाशनः। गुल्मशूलादि-दोषघ्नः स चारोचकहारकः॥ राजनिघण्टुः॥ सूरणो दीपनो रूक्षः कषायः कण्डूकृत् कटुः। विष्टम्भी विशदी रुच्यः कफार्शःकृन्तनो लघुः॥ विशेषादर्शसे पथ्यः प्लीहगुल्मविनाशनः॥ सर्वेषां कन्दशाकानां सूरणः श्रेष्ठ उच्यते। दद्रूणां रक्तपित्तिनां कुष्ठिनां न हितो हि सः। सन्धानयोगसम्प्राप्तः शूरणो गुणवत्तरः॥ भावप्रकाशः॥ स्थूलकन्दस्तु नात्युष्णः शूरणो गुदकीलहा॥ (सू. ४६ अ.) सुश्रुतः। दीपनः शूरणो रुच्यः कफघ्नो विशदो लघुः। विशेषादर्शसां पथ्यः प्लीह-गुल्मविनाशनः॥ (प्र. स्था. १० अः)। हारीतः।

वैद्यके व्यवहारः–अर्शःसु शौरणः कन्दः–"मृल्लिप्तं शौरणं कन्दं पक्वाग्नौ पुटपाकवत्। अद्यात् सतैललवणं दुर्नामविनिवृत्तये॥" (अर्श-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) वल्मीकश्लीपदयोः शूरणकन्दः–"पिष्ट्वा शूरणकन्दञ्च मधुना च घृतेन च। लेपनञ्च हितन्तस्य वल्मीकश्लीपदापहम्॥" (चि. ३६ अ.)। (२) अर्वुदे शूरणकन्दः–"शौरणं कन्दकं दग्ध्वा घृतेन च गुड़ेन च। लेपनञ्चार्वुदानाञ्च नाशनञ्च भिषग्वर॥" (चि. ३६ अ.) हारीतः॥

शू(सू)रणः (Amorphophallus Campanulatus, Blume. Arum Campanulatum, Roxb.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- शूरणः। हि.- शूरण, जिमिकन्द। बं.- ओल। म.- गोडासूरण, साजेरा शूरण। गु.- क.- सूरण। ते.- मञ्चाकन्दा। फा.- ओल। ले.- (Amorphophallus Campanulatus)।

सूरण के भेद- रक्ताभश्वेत तथा श्वेत। **अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा-** रक्ताभश्वेत-रुच्यकन्दः, स्थूलकन्दः, दुर्नामारिः, वातारिः। **दोनों की अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा-** कण्डूलः।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- सूरन कटु रस, रुचिकारक, जाठराग्नि दीपक तथा पाचक है और यह क्रिमि दोषहर है तथा वातरोग, शूल, गुल्म एवं रक्त दोष को दूर करता है। इनके अतिरिक्त यह सेवन करने से श्वास, कास तथा वमन का निवारण करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- शूरण कटुरस, रुचिकारक, जाठराग्निदीपक तथा पाचक है और क्रिमिरोग, कफरोग तथा वातरोग का नाश करता है। यह श्वास, कास, वमन तथा अर्श रोग को दूर करता है तथा शूल

एवं गुल्म रोग को शान्त करता है एवं रक्त दोष को दूर करता है। श्वेत सूरण रुचिकारक, कटुरस तथा उष्ण है और क्रिमिनाशक है। यह गुल्म-शूलादि दोष का नाश करता है तथा अरोचक हारक है।

भावप्रकाश के अनुसार- सूरण, दीपक, रूक्ष, कषाय रस तथा कण्डूर है और कटु रस है। यह विष्टम्भकारक है, विकार है, रुचिकारक है, कफ विकार एवं अर्श विकार को काटता है और लघु है। यह विशेषकर अर्शरोग में पथ्य है, प्लीहा रोग तथा गुल्म रोग का नाश करता है। सभी प्रकार के कन्द शाकों में सूरण कन्दशाक श्रेष्ठ है। यह दाद के रोगियों के लिए तथा रक्त-पित्त के रोगियों के लिए हितकर नहीं है। साधन योग होने पर सूरण अधिक गुणवाला होता है।

सुश्रुत के अनुसार- स्थूल कन्द सूरण अत्यन्त उष्ण नहीं है किन्तु गुदांकुरों का नाश करता है। (सु.सू. अ.४६)।

हारीत के अनुसार- सूरण जाठराग्नि दीपक तथा रुचिकारक है और कफननाशक है, विशद है तथा लघु है। यह विशेषकर अर्श के रोगियों के लिए पथ्य है, प्लीहा एवं गुल्म रोग का नाश करता है।

वैद्यक शास्त्र में सूरण का प्रयोग-

अर्श में सूरण कन्द का प्रयोग- सूरण कन्द को मिट्टी का लेप लगाकर तथा सुखाकर पाकाग्नि में पुटपाकवत पाक कर और उसमें तैल तथा सेन्धा नमक मिलाकर अर्श रोग के नाश के लिए खाय। (चक्र.अर्श.चि.)।

(१) **वल्मीक तथा श्लीपद में सूरण कन्द का प्रयोग**- सूरण कन्द को पीसकर मधु तथा घृत के साथ उसका लेप करना वल्मीक तथा श्लीपद पर हितकर है। यह वल्मीक तथा श्लीपद का नाश करता है। (हारीत, चि.अ.२६)। (२) **अर्वुद में शूरण कन्द का प्रयोग**- सूरण के कन्द को जलाकर घृत के साथ तथा गुड़ के साथ लेप करने से अर्वुद का नाश होता है ऐसा चिकित्सक का मत है। (हारीत चि.अ.२६)।

Actions and uses—Stomachic and tonic; used in piles and given as a restorative in dyspepsia, debility &c. (R. N. Khory, Vol. II, p. 629).

शेफालिका

Nyctanthes Arbortriotis, Linn.

शेफालिका, शुक्लाङ्गी—*Nyctanthes Arbortriotis, Linn.*

शेफालिः कटुतिक्तोष्णा रूक्षा वातक्षयापहा। स्यादङ्गसन्धिवातघ्नी गुदवातादिदोषनुत्॥ राजनिघण्टुः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) विषमाविषमज्वरेषु शेफालिदलः–"मधुना सर्वज्वरनुच्छेफालिदलजो रसः" (ज्वर-चि.)। (२) गृध्रस्यां शेफालिकादलः–"शेफालिकादलैः क्वाथो मृद्वग्निपरिसाधितः। दुर्वारं गृध्रसीरोगं पीतमात्रं समुद्धरेत्॥" (वातव्याधि-चि.। चक्रदत्तः॥

शेफालिका, शुक्लाङ्गी (Nyctanthes Arbortriotis, Linn.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- शेफालिका। हि.- हरशिङ्गार। बं.- शिऊली। गु.- परवूटी। ते.- पगलमूली, पञ्चपह्रवूटी। अं.- नारी जेसमिन। ले.- Nyctanthes Arbortriotis।

गुण एवं दोष-

राजनिघण्टु के अनुसार- शेफाली कटुरस, तिक्तरस तथा उष्ण है तथा रूक्ष है और वातरोग एवं क्षयरोग का नाश करती है। यह शरीर के सन्धिवात का नाश करती है तथा गुदा वातादि दोष को दूर करती है।

वैद्यक शास्त्र में शेफाली का प्रयोग-

(१) **विषम तथा अविषम ज्वर में शेफाली पत्र का प्रयोग-** शेफालि के पत्तों का रस मधु के साथ सेवन करने से सभी प्रकार के ज्वर को दूर करता है। (चक्र.ज्वर चि.)। (२) **गृध्रसी में शेफालि दल का प्रयोग-** शेफालि के पत्तों का मृद आँच से पकाया हुआ क्वाथ पान करने मात्र से भयंकर गृध्रसी रोग का नाश करता है। (चक्र. वातव्याधि चि.)।

Constituents—Resin, colouring matter, an alkaloid (Nyctantine) and an oily principle, similar to the oil of peppermint. (R. N. Khory, Vol. II, p. 436). **Actions and uses**—As antiperiodic, the fresh leaves bruised are given with sugar or fresh ginger, in obstinate intermittent fevers. The powdered seeds are used locally to remove the snuf from the head. The decoction or the infusion is used as a alter in obstinate cases of sciatica and rheumatism. (R.N. Khory, Vol. II, p. 436). "In concan about 5 grains of the bark are eaten with and leaf to promote the expectoration of thick phlegm." (Dymock, Vol. II, p. 376).

श्योणाकः

Oroxylum Indicum. Calosanthes Indica.

श्योणाकः, अरलुः, टिण्टुकः–*Oroxylum Indicum. Calosanthes Indica.*

अन्वर्थसंज्ञा–"पृथुशिम्बः", "दीर्घवृन्तकः", "पीतवृक्षः", "वातारिः"। टिण्टुकः शिशिरस्तिक्तो वस्तिरोगहरः परः। पित्तश्लेष्मामवातातीसारकासारुचीर्जयेत्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ श्योणाकयुगलं तिक्तं शीतलञ्च त्रिदोषजित्। पित्तश्लेष्मातिसारघ्नं सन्निपातज्वरापहम्॥ 'टेण्टुफलं कटूष्णं' च कफवातहरं लघु। दीपनं पाचनं हृद्यं रुचिकृल्लवणाम्लकम्॥ राजनिघण्टुः॥ श्योणाको दीपनः पाके कटुकस्तुवरो हिमः। ग्राही तिक्तोऽनिलश्लेष्मपित्तकासप्रणाशनः॥ टुण्टुकस्य फलं बालं रूक्षं वातकफापहम्। हृद्यं कषायं मधुरं रोचनं लघु-दीपनम्। गुल्मार्शःक्रिमिहृत् प्रौढं गुरुवातप्रकोपनम्॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) अतिसारे श्योणाकः–"त्वक्पिण्डं दीर्घवृन्तस्य पद्मकेशर-संयुतम्। काश्मरीपद्म-पत्रैश्चावेष्टच सूत्रेण तं दृढम्॥ मृदावलिप्तं सुकृतमङ्गरेष्ववकूलयेत्। स्विन्नमुद्धृत्य निष्पीडच रस-मादाय तं ततः। शीतं मधुयुतं कृत्वा पाययेतोदरामये॥" (उ. ४० अ.)। (२) पूतनाप्रतिषेधे अरलुः–"कपोतवङ्कारलुको...। ...योज्याः स्युर्बालानां परिषेचने॥" (उ. ३२ अ.)। सुश्रुतः॥

श्योणाकः, अरलुः टिण्टुकः (Oroxylum Indicum. Calosanthes Indica.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- श्योनाकः, शोषणा, दीर्घवृन्तः, अरलुः। हि.- सोना पाठा, शोनाक, सोनपता, टेटू, अरलु। बं.- सोना,

सोनालु, सोना गाछ। गु.- अरडूसो। क.- शोणा। ते.- पेद्दामानु, पमनिग। ता.- पन। ले.- ओरीक्सिलम इण्डिकम।

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा- पृथुशिम्बः, दीर्घवृन्तकः, पीतवृक्षः, वातारिः।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- श्योनाक शीतल तथा तिक्त रस है और वस्ति रोग को अच्छी तरह दूर करता है। यह पित्त विकार, कफ विकार, वात विकार, अतिसार, कास रोग तथा अरुचि को दूर करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- दोनों प्रकार का श्योनाक तिक्त रस तथा शीतल है और त्रिदोष को दूर करता है। यह पित्त रोग, कफ रोग तथा अतिसार का नाश करता है और सन्निपातज्वर को दूर करता है। श्योनाक का फल कटुरस तथा उष्ण है और कफ वात को दूर करता है एवं लघु है। यह दीपन, पाचन, हृद्य, रुचिकारक तथा लवण एवं अम्ल रस है।

भावप्रकाश के अनुसार- श्योनाक (सोनापाठा) दीपक है, पाक में कटु रस है, कषाय रस है तथा सारक है। यह ग्राही है तथा तिक्त रस है और वात-कफ-पित्त विकार तथा कास का नाश करता है। टुण्टुक (सोना पाठा) का बाल फल रूक्ष है तथा वात-कफ नाशक है। यह हृदय को बल देनेवाला है, कषाय रस है, मधुर रस है, रोचन है, लघु है, दीपक है। यह गुल्म रोग, अर्श रोग तथा क्रिमि रोग को दूर करता है और प्रौढ (युवा) श्योनाक गुरु एवं वात प्रकोपक है।

वैद्यक शास्त्र में श्योनाक का प्रयोग-

(१) अतिसार में श्योनाक का प्रयोग- दीर्घवृन्त (सोना पाठा) की त्वचा का पिण्ड पद्म केशर मिलाकर गम्भारी के पत्तों से आवेष्टित कर उसको सूत से मजबूत बाँध दे और उसके ऊपर मिट्टी का लेप लगा दे तथा अंगार में पका ले। पक जाने पर निकालकर तथा निचोड़ कर रस ले। इसके बाद उस शीतल रस का मधु मिलाकर उदर रोग में (अतिसार आदि रोग) में पान कराये। (सु.उ.अ.४०)। **(२) पूतना प्रतिषेध में अरलु (सोना पाठा) का प्रयोग-** कपोतवंका तथा अरलू के क्वाथ से बालक के पूतनाग्रह गृहीत होने पर अवसेचन करे अर्थात् स्नान कराये। (सु.उ.अ.३२)।

Constituents—Oroxylin, an acrid principle, pectin, extractive matter, fat, wax, &c. **Actions and uses—**As an anodyne the oil is dropped into the ear in otorrhoea. The powder and infusion of the bark combined with opium are sudorific, better than Dover's powders. As an anodyne, a bath prepared with the bark is frequently employed in acute rheumatism. It is also used in dropsy. (R. N. Khory, Vol. II, p. 460). Dr. B. Evers says :—"I have made a trial of the powder and an infusion of the bark, and have found it to be most powerfully diaphoretic; the drug has slight anodyne properties; also a bath, prepared with the bark, I have frequently employed in rheumatism. Twenty cases of acute rheumatism were treated with this drug, and in all the results have been most satisfactory. The dose of the powder is from 5—15 grains, thrice daily, of the infusion (1 ounce of the bark to ounces of boiling water) an ounce three times a day. Combined with opium it forms a much more powerful sudorific than the compound powder of ipecacuanha. The drug does not possess any febrifuge properties. (Indian Medical Gazette, February and March, 1875).

सप्तपर्णः

Alstonia Scholaris

सप्तपर्णः—*Alstonia Scholaris.*

पूर्वाचार्यकृतवर्णनम्—"सप्तपर्णः शाल्मलीसदृशपर्णी गजमदगन्धपुष्पः शरदि विकशनशील उच्चैर्वृक्षः" (डल्वणः)। अन्वर्थसंज्ञा—"शल्मलीपत्रकः", "छत्रपर्णः", "सप्तच्छदः", "बृहत्त्वक्", "गूढपुष्पः", "मदगन्धः", "गन्धिपर्णः", "शारदी"। त्रिदोषशमनी हृद्यः सुरभिर्दीपनः सरः। शूलगुल्मकृमीन् कुष्ठं हन्ति शाल्मली-पत्रकः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ सप्तपर्णस्तु तिक्तोष्णस्त्रिदोषघ्नश्च दीपनः। मदगन्धो निरुन्धेऽयं व्रणरक्तामयकृमीन्॥ राजनिघण्टुः॥ सप्तपर्णस्त्रिदोषघ्नो वीर्योष्णोऽग्निप्रदीपनः। मदगन्धिर्व्रणहरस्तिक्तक्रिमिविनाशनः॥ कुष्ठं जीर्णज्वरं श्वासं गुल्मञ्च ग्रहणीन्तथा। प्रवाहिकां सरक्ताञ्च वातरक्तं विनाशयेत्॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः— (१) कुष्ठे सप्तपर्णः—"...सप्तपर्णस्य। इति षट्कषाययोगाः कुष्ठघ्ना निर्दिष्टाः स्नाने पाने च मता॥" (चि. ७ अ.)। (२) स्तन्यशुद्ध्यर्थं सप्तपर्णः—"अमृतासप्तपर्णत्वक्क्वाथञ्चैव सनागरम्" (चि. ३० अ.)। चरकः॥ सान्द्रमेहे सप्तपर्णः—"सान्द्रमेहिनं सप्तपर्णकषायम्" (चि. ११ अ.)। (२) दन्तकाष्ठगतविषे सप्तपर्णत्वक्—"त्वचः सप्तच्छदस्य वा। ...सक्षौद्राः प्रतिसारणम्।" (क. १ अ.)। (३) कासश्वासयोः सप्तपर्णः—"सप्तच्छदस्य पुष्पाणि पिप्पलीश्चापि मस्तुना। पिबेत् सञ्चूर्ण्य" (उ. ५१ अ.) सुश्रुतः॥ (१) पित्तकफानुगे हिक्काश्वासे सप्तपर्णः—"स्वरसः सप्तपर्णस्य...। हिक्काश्वासे मधुकणायुक्तः पित्त-कफानुगे।" (चि. ४ अ.)। (२) दन्तकृमिषु सप्तपर्णः—"सप्तच्छदार्कक्षीराभ्यां पूरणं कृमिशूलजित्" (उ. २२ अ.)। वाग्भटः॥ दुष्टव्रणे सप्तपर्णः—"सप्तदलदुग्धकल्कः शमयति दुष्टव्रणं प्रलेपेन" (व्रणशोथ-चि.)। चक्रदत्तः॥

सप्तपर्णः (Alstonia Scholaris.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- सप्तपर्णः, विशालत्वक्, शारदः, विषमच्छदः। हि.- सतौना, सतेलन, छतिवन, छातियान। बं.- छातिम गाछ। म.- सात्विन, सातपत्र। गु.- सातपर्ण, सप्तपर्ण। क.- एलेलेग। ते.- एडाकुल, अरिटाकू। ता.- एफिल इप्पाइलर। ले.- अलस्टोनिया स्कोलेरिस्।

सप्तपर्ण का पूर्वाचार्यकृत वर्णन- सप्तपर्ण सेमर पत्र के समान पत्रवाला है। हाथी के मदसदृश गन्ध पुष्पवाला, शरद ऋतु में विकसित होनेवाला ऊँचा वृक्ष है (डल्वण)। **अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा-** शाल्मलीपत्रकः, छत्रपर्णः, सप्तच्छदः, बृहत्त्वक्, गूढपुष्पः, मदगन्धः, गन्धिपर्णः-शारदी।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- सप्तपर्ण त्रिदोष नाशक, हृद्य, सुगन्धित, दीपन तथा सारक है, शूल, गुल्म रोग तथा क्रिमि रोग का नाश करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- सप्तपर्ण तिक्तरस तथा उष्ण है, त्रिदोष नाशक है, दीपक है। इसका गन्ध जलने पर मद के समान है और व्रण, रक्त विकार तथा क्रिमि रोग का नाश करता है।

भावप्रकाश के अनुसार- सप्तपर्ण त्रिदोष नाशक है, उष्ण वीर्य है तथा जाठराग्नि दीपक है। यह मद सदृश गन्धवाला, व्रणहर है तथा तिक्त रस एवं क्रिमि रोग नाशक है। यह कुष्ठ रोग, जीर्ण ज्वर, श्वास, गुल्म रोग, ग्रहणी रोग, रक्त प्रवाहिका रोग तथा वात रक्त का नाश करता है।

वैद्यक शास्त्र में सप्तपर्ण का प्रयोग-

(१) कुष्ठ में सप्त पर्ण का प्रयोग- सप्तपर्ण का तथा अन्य छः कषाय योग खाने तथा पीने से कुष्ठ नाशक कहे गये हैं। (च.चि.अ.७)। (२) **स्तन्य शुद्धि के लिए सप्तपर्ण का प्रयोग-** गुडूची तथा सप्तपर्ण त्वक् का क्वाथ सोंठ का चूर्ण मिलाकर पान करने से स्तन्य (दूध) की शुद्धि होती है। (च.चि.अ.३०)।

(१) सान्द्रमेह में सप्तपर्ण का प्रयोग- सान्द्रमेह के रोगी को सप्तपर्ण का क्वाथ पान कराये। (च.चि. अ.११)। (२) **दन्त काष्ठ गत विष में सप्तपर्णत्वक् का प्रयोग-** सप्तपर्ण की त्वचा के क्वाथ में शहद मिलाकर दन्तकाष्ठ (दातौन) गत विषविकृति होने पर प्रतिसारण करे। (सु.क.अ.१)। (३) **कास-श्वास में सप्तपर्ण का प्रयोग-** सप्तपर्ण के पुष्प का चूर्ण पिप्पली का चूर्ण मिलाकर श्वास-कास रोग में पान करे। (सु.उ.अ.५१)।

(१) पित्त-कफानुगत श्वास-कास में सप्तपर्ण का प्रयोग- सप्त पर्ण का स्वरस पीपर का चूर्ण तथा मधु मिलाकर पित्त कफानुग श्वास-कास में पान कराये। (वाग्भट चि. अ. ४)। (२) **दन्तक्रिमि रोग में सप्तपर्ण का प्रयोग-** सप्तपर्ण तथा मदार का दूध दाँत के क्रिमि रोग में दाँत में भरने से कृमिजन्य शूल नष्ट होता है। (वाग्भट, उ.अ.२२)।

दुष्ट व्रण में सप्तपर्ण का प्रयोग- सप्तपर्ण के दूध का कल्क व्रण के ऊपर लेप करने से दुष्ट व्रण को शान्त करता है। (चक्र.व्रणशोथ चि.)।

Constituents—An alkaloid ditamine; two bases echitamine and echitenene; also echicaoutchin, an amorphous yellow mass; echicerin, in acicular crystals; echitin, in crystallized scales; echitein, in rhombic prisms; and echiretin, an amorphous substance. **Ditamine—**To obtain it exhaust the powdered bark with petroleum ether, and add boiling alcohol. An amorphous or crystalline powder, having alkaline reaction and bitter taste, similar to quinine. Dose 5 to 15 grains. **Actions and uses—**As an alterative, the bark is given in gout, rheumation, skin diseases &c. As an astringent in chronic diarrhoea, and in advanced stage of dysentery. As a bitter tonic in convalescence from exhausting diseases and fevers. The alkaloid is regarded as febrifuge equal to quinine in efficacy, and is given in all forms of malarial fevers. It is also a decided galactagogue. (R.N. Khory, Vol. II, p. 383). Rumphius's experience is, that the bark is useful in catarrhal dyspepsia and in the febrile state consequent upon that affection, and also for enlarged spleen. He says :—"Of its value in catarrhal dyspepsia I can speak from experience; the dose should be 15 grains taken at bed-time in powder or decoction. "Nimmo in 1839 called attention to the bark as a powerful tonic and suggested its use as an antiperiodic. "Dr. Gibson in 1853 contributed a short, but interesting account of the drug to the *Pharmaceutical Journal* (xii, p. 422). Alstonia bark is official in the *Pharmacopoeia of India*, and is described as an astringent tonic, anthelmintic and antiperiodic. In the Concan the juice of the fresh bark with milk is administered in leprosy, and is also prescribed for dyspepsia and as an anthelmintic. One of us has found the tincture of the bark to act in certain cases as a very powerful galactagogue : in one case the use of the drug was purposely discontinued at intervals, and on each, occasion

the flow of the milk was found to fail." "The people (of Manilla) having been in habit of using it from time immemorial in decoction against malignant, intermittent and remittent fevers with the happiest result, the attention of our leading physicians was excited, and the active principle ditain has now become a staple article, and ranks equal in therapeutical efficiency with the best imported sulphate of quinine. Numberless instances of private and hospital practice carried out by our best physicians, have demonstrated this fact. Equal doses of ditain and of standard quinine sulphate have had the same medicinal effects; besides having none of the disagreeable secondary symptoms, such as deafness, sleeplessness and feverish excitement, which are the usual concomitants of large quinine doses, ditain attains its effects swiftly, surely and infallibly.

We use ditain generally internally in quantities of half a drachm daily for children, and double the dose for adults, due allowance being made, of course, for age, sex, temperament, &c. We derive very beneficial effects from its use, too, under the form of poultices. Powdered dita bark, cornflour, each half a pound; hot water sufficient to make a paste. Spread on linen and apply under the armpits, and on the wrists and ankles, taking care to renew when nearly dry, and provided the desired effects should not have been obtained. The results arrived at by ditain in our Manilla Hospitals and private practice are simply marvellous. In our military hospital and penitentiary practice, ditain has perfectly superseded quinine and it is now being employed with most satisfactory results in the island of Mindanao, where malignant fevers are prevalent." (Dymock, Vol. II, pp. 87-88).

सर्षपचतुष्टयम्

Brassica Campestris Linn.

गौरसिद्धार्थः आसुरी—*Brassica Campestris Linn.* राजिका, राजक्षवकः—*B. Juncea, H.F. and I.* कृष्णराजिका—*B. Nigra, Koch.*

भेदाः—(१) गौरसिद्धार्थः, *(Rape, Eng.)* (२) रक्तसिद्धार्थः, (३) कृष्णराजिका, (४) राजिका। अन्वर्थसंज्ञा—सिद्धार्थयोः—"कटुस्नेहः", "ग्रहघ्नः", "कुष्ठनाशनः"। राजिकयोः—"राजसर्षपः", "क्षुधाभिजनकः", "कृमिहृत्"। गौरसर्षपकोऽत्युष्णो रक्षोघ्नः कफवातजित्। क्रिम्यामकण्डूकुष्ठघ्नः श्रुतिशीर्षानिलार्तिजित्॥ तद्व'द्रक्त'स्तु सिद्धार्थस्तिक्तः स्निग्धोष्णकः कटुः॥ 'राजिका' कटुतिक्तोष्णा कृमिश्लेष्महरा परा। रुचिष्या पित्तला प्रोक्ता दृष्टिवस्तिप्रदूषणी॥ अन्यच्च—'राजिका' तु कफवातहारिणी रोचिष्याग्नि जननी च कथ्यते। धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ 'सिद्धार्थः' कटुतिक्तोष्णः वातरक्तग्रहापहः। त्वग्दोषशमनी रुच्यो विषभूतव्रणापहः॥ 'राजसर्षपकः' (राजिका) तिक्तः कटूष्णो वातशूलनुत्। पित्तदाहप्रदो गुल्म-कण्डूकुष्ठव्रणापहः॥ राजनिघण्टुः॥ सर्षपस्तु रसे पाके कटुः स्निग्धः सतिक्तकः। तीक्ष्णोष्णः कफवातघ्नो रक्तपित्ताग्निवर्द्धनः॥ रूक्षो हरेद् व्रणं कण्डूं कुष्ठकोष्ठ-कृमिग्रहान्। यथा रक्तस्तथा गौरः किन्तु गौरो वरो मतः॥ 'राजिका' कफ-पित्तघ्नी तीक्ष्णोष्णा रक्तपित्तकृत्। किञ्चिद्रूक्षाग्निदा कण्डूकुष्ठकोठक्रिमीन् हरेत्। अतितीक्ष्णा विशेषेण तद्वत् 'कृष्णापि राजिका'॥ तीक्ष्णोष्णं सार्षपं 'नालं' वातश्लेष्मव्रणापहम्। कण्डूवमिहरं दद्रुकुष्ठघ्नं रुचिकारकम्॥ भावप्रकाशः॥ 'राजक्षकवशाक'न्तु त्रिदोषशमनं लघु। ग्राहि शस्तं विशेषेण

ग्रहण्यर्शोविकारिणाम्॥ त्रिदोषे बद्धविण्मूत्रे 'सार्षपं शाक'मुच्यते। (सू. २७ अ.)। चरकः॥ विदाहि बद्धविण्मूत्रं रूक्षं तीक्ष्णोष्णमेव च। त्रिदोषं शाक॥ (सू. ४६ अ.)। सुश्रुतः॥

वैद्यके व्यवहारः–कुष्ठे सार्षपः स्नेहः–"सर्षपकरञ्जकोशातकानां तैलानि। ...कुष्ठेषु हितान्याहुः॥" (चि. ७ अ.)। चरकः॥ (१) ऊरुस्तम्भे सर्षपः–"...दिह्याच्च मूत्राढ्यैः करञ्जफलसर्षपैः। (चि. ५ अ.)। (२) श्लीपदे सर्षप-तैलम्–"पिबेत् सर्षपतैलं वा श्लीपदानां निवृत्तये" (चि. १९ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) अपस्मारोन्मादादिषु सर्षपः–"नक्तमालकबीजाणि तथा च गौरसर्षपाः। वस्त-मूत्रेण पिष्टैस्तु गुड़ी छायाविशोषिता। अञ्जनं हन्त्यपस्मारमुन्मादञ्चैव दारुणम्॥" (चि. १९ अ.)। (२) दन्तरोगे सर्षपः–"...घर्षो लवणसर्षपैः" (चि. ४५ अ.)। हारीतः॥ सन्निपातज्वरिणः कर्णमूलशोथे सर्षपः–"शिग्रुराजिकायाः कल्कं कर्णमूले प्रलेपयेत्। कर्णमूलभवः शोथस्तेन लेपेन शाम्यति॥" (ज्वर-चि.)। भावप्रकाशः॥ (१) वातरक्ते सर्षपः–"गौरसर्षपकल्केण प्रदेहो वातरक्तहा" (वातरक्त-चि.)। (२) चर्मदले सर्षपः–"राजिकागुडयुक्तेन सैन्धवेन प्रयोजितम्। विडालचर्मणा बद्धं नाशं चर्मदलं द्रुतम्॥" (कुष्ठ-चि.)। वङ्गसेन॥

गौरसिद्धार्थः आसुरी (Brassica Campestris Linn.) राजिका, राजक्षवकः (B. Juncea, H.F. and I.) कृष्णराजिका (B. Nigra, Koch.)

भेद- (१) गौरसिद्धार्थः (Rape, Eng.) (२) रक्तसिद्धार्थः (३) कृष्णराजिका (४) राजिका।

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- रक्तसर्षपः। हि.- सरसो, सरिसो, सरसों। बं.- सरीसा, सरिष। म.- सिरस, शिरस (ष)। मा.- सरसूं, सरसो। गु.- सरशव, शरशव। क.- सासले, सासवे, चिलिय सासेव। ते.- पाचवा आस्वालु, आवालु। द्रा.- कडुह। फा.- सर्षफ, शरशफ, सिपन्दान। अ.- उर्के, अवीयद, खर्दले अवयज हुर्फ। अं.- सिनापिस एलवा (Sinapis Alba)। ले.- बासिका केम्पेस्ट्रिस (Brassica Campesttis)।

गौरसर्षपाः गौरसर्षपः, सिद्धार्थः। हि.- सफेद सरसो। बं.- श्वेत सरिसा। म.- श्वेत सिरस्। ते.- नल्लमरि चेट्टु, तैलावास। अं.- दी राकेट। ले.- एरुका सटिवा।

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा- दोनों सिद्धार्थ- कटुस्नेहः, ग्रहघ्नः, कुष्ठ-नाशनः। दोनों राजिका- राजसर्षपः, क्षुधाभिजनकः कृमिहृत्।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- गोरे सरसो अत्यन्त उष्ण, राक्षस ग्रहवाधा नाशक तथा कफ एवं वात दूर करनेवाला है। यह क्रिमि रोग, आम विकार, कण्डू तथा कुष्ठ नाशक है और नेत्र, सिर तथा वात वेदना को दूर करता है। उसी प्रकार रक्त सर्षप तिक्त रस, स्निग्ध, उष्ण तथा कटु रस है। राई कटुरस, तिक्त तथा उष्ण है और उत्तम क्रिमि रोग तथा कफ विकार दूर करनेवाली है। यह रुचिकारक है तथा पित्तकारक है और दृष्टि शक्ति एवं वस्ति को प्रदूषित करती है और भी–राई कफ-वातहारक, रोचक, जाठराग्नि जनक कही जाती है।

राजनिघण्टु के अनुसार- सिद्धार्थ (सरसो) कटु तथा तिक्तरस एवं उष्ण है और वातरक्त तथा ग्रह बाधा का नाश करता है। यह त्वचा दोष शामक है, रुचिकारक है और विष विकार, भूत बाधा तथा व्रण का नाश

करता है। राजर्षप (राई) तिक्तरस, कटुरस, उष्ण तथा वात शूल नाशक है। यह पित्त विकार तथा दाह प्रद है और गुल्म रोग, कण्डू, कुष्ठ तथा व्रण का नाश करता है।

भावप्रकाश के अनुसार- सरसों रस तथा पाक में कटु है, तिक्त रस है तथा स्निग्ध है। यह तीक्ष्ण, उष्ण, कफ-वात नाशक तथा रक्त पित्त एवं जाठराग्नि वर्द्धक है। यह रूक्ष है और व्रण, कण्डू, कुष्ठ, कोष्ठ, क्रिमि, ग्रह बाधा को दूर करता है। जो गुण रक्त सरसो का है वही गुण गौर सर्षप का है किन्तु गौर सर्षप श्रेष्ठ है। राई कफ-पित्त नाशक है, तीक्ष्ण है, उष्ण है तथा रक्त-पित्त कारक है। यह थोड़ा रूक्ष है तथा अग्निवर्द्धक है और कण्डू, कुष्ठरोग एवं कोष्ठ क्रिमि को दूर करती है। यह अति तीक्ष्ण है उसी प्रकार विशेषकर कृष्ण राई अति तीक्ष्ण है। सरसो का नाल तीक्ष्ण तथा उष्ण है और वात विकार, कफ विकार एवं व्रण का नाश करता है। यह कण्डू तथा वमन को दूर करता है और दद्रु-कुष्ठ नाशक है एवं रुचि कारक है।

चरक के अनुसार- राजक्षवक (राजिका-राई) का शाक त्रिदोषशामक है तथा लघु है, ग्राही है और विशेषकर ग्रहणी तथा अर्श के रोगियों के लिए प्रशस्त है। सरसो का शाक त्रिदोषकर तथा मूत्र बांधनेवाला कहा गया है (च.सू.अ.२७)।

सुश्रुत के अनुसार- सरसों का शाक विदाही है, मल-मूत्र को बांधनेवाला है, रूक्ष है, तीक्ष्ण है, उष्ण है तथा त्रिदोष कारक है। (सु.सू.अ.४६)।

वैद्यक शास्त्र में सरसो का प्रयोग-

कुष्ठ रोग में सरसो तैल का प्रयोग- सरसो, करञ्ज तथा कोषातकी (नेनुआ बीज) के तेल कुष्ठरोग में हितकर कहे गये हैं। (च.चि.अ.७)।

(१) **उरुस्तम्भ में सरसो तैल का प्रयोग**- ऊरुस्तम्भ में सरसो तथा करञ्ज को पीसकर तथा अधिक गोमूत्र मिलाकर मालिस करे। (सु.चि.अ.५)। (२) **श्लीपद में सरसो तैल का प्रयोग**- श्लीपद की निवृत्ति के लिए सरसो का तैल पान करे। (सु.चि.अ.१९)।

(१) **अपस्मार तथा उन्माद में सरसो का प्रयोग**- नक्तमाल (करञ्ज) तथा श्वेत सरसो के बीज को बकरी के दूध के साथ पीसकर गुटिका बनावे और छाया में सुखा ले। यह अंजन करने से भयंकर अपस्मार तथा उन्माद का नाश करता है। (हारीत चि.अ.१९) (२) **दन्त रोग में सरसो का प्रयोग**- दन्त रोग में सरसो तथा सेन्धा नमक के कल्क से दाँतों का घर्षण करे। (हारीत, चि.अ.४५)।

सन्निपात ज्वर रोगी के कर्ण मूल शोथ में सरसो का प्रयोग- सहिजेन तथा राई का कल्क कर्णमूल शोथ में लेप करे। यह कर्णमूलगत सन्निपातज शोथ को शान्त करता है। (भावप्रकाश, ज्वर चि.)।

(१) **वातरक्त में सरसों का प्रयोग**- सफेद सरसों के कल्क से प्रदेह (लेप) करना वातरक्त का नाश करता है। (बंगसेन, वातरक्त चि.)। (२) **चर्मदल में सरसों का प्रयोग**- राई के कल्क का गुड़ तथा सेन्धा नमक के साथ मिलाकर प्रयोग करने तथा विलार के चर्म से बांधने से चर्म दल रोग का नाश होता है। (बंगसेन, कुष्ठ चि.)।

Constituents—Sinapis Alba contains a bland fixed oil, 20 to 25 p.c. A crystalline substance sinalbin; sinapine sulpho-cyanide Lecithin, mucilage (only in tests); Myrosin, a ferment; proteids, ash 4 p.c. **Physiological Actions**—Flower of mustard is nervine; stimulant, emetic and diuretic; externally rubefacient, counter-irritant and vesicant. In small doses it promotes digestion and removes flatus; in large doses, it is a stimulating and sure emetic in over-

feeding, indigestion and in narcotic poisoning, when given with hot water. It is an irritant to the skin. Its chief use, however, is as an external remedy to relieve local pain, to stimulate the viscera and to act as a counter-irritant. The volatile oil, in the form of a charta or plaster, acts as a stimulant and vesicant to whatever part it is applied. Its application causes redness, heat and severe burning pain. If applied for a long time it causes vesication by setting up local inflammation. It is extensively used as a household remedy to rouse patients from syncope, low states of the system and from unconsciousness, as a counter irritant it is largely used in all internal inflammations. **Therapeutic uses**—It is applied to remove muscular neuralgic and rheumatic pains, in colic, gastralgia, in inflammation of the air passages of the lung, pleura, pericardium, &c. The volatile oil is highly irritant. Taken internally it produces gastro enteritis. The liniment is applied as a rubefacient and also as a vesicant to the swollen joints. As a derivative, mustard foot-baths or hipbaths are largely used in fevers, uterine derangements, especially amenorrhoea and dysmenorrhoea; in headache, cerebral congestion, in cardiac and in chest pains, &c. The fixed oil is applied to promote the growth of hair. The powder is often mixed with wheat flour to weaken its irritant effects. (R. N. Khroy, Vol. II, p. 67). Modern research has shown that essential oil of mustard has antiseptic properties and is destructive of bacteria. Given internally to the extent of a heaped dessert spoonful in a pint of warm water or gruel, mustard flour acts rapidly as an emetic through its irritant action on the mucous membrance of the stomach, and is therefor useful when narcotics have been taken in poisonous doses. During excretion mustard irritates the kidneys and causes diuresis. (Dymock, Vol. I., pp. 124-5).

सारिवाद्वयम्

Asclepias Pseudosarsa

सा(शा)रिवा, कृष्णसारिवा, अनन्ता, कृष्णमूली,–*Asclepias Pseudosarsa, Roxb. Hemidesmus Indicus, R. Br.* **शुक्लसारिवा, श्यामा, काष्ठसारिवा, आस्फोता**–*Echites Frutescens, Roxb.*

सारिवे द्वे तु मधुरे कफवातास्त्रनाशने। कुष्ठकण्डूज्वरहरे मेहदुर्गन्धि-नाशने॥ कृष्णमूली तु सङ्ग्राही शिशिरा कफपित्तजित्। तृष्णारुचिप्रशमनी रक्तपित्तहरा स्मृता॥ धन्वन्तरीयनिघण्टू राजनिघण्टुश्च॥ सारिवायुगलं स्वादु स्निग्धं शुक्रकरं गुरु। अग्निमान्द्यारुचिश्वासकासामविषनाशनम्॥ दोषत्रयास्त्रप्रदरज्वरातिसारनाशनम्। भावप्रकाशः॥ सारिवा वातपित्तासृक्तृट्छर्दिज्वरनाशनी। अनन्ता ग्राहिणी रक्तपित्तप्रशमनी हिमा॥ राजवल्लभः॥ छेदनं मूत्रकृद् बल्यं परं वृष्यं रसायनम्। औपदंशिकरोगघ्नं सर्वचर्मविकारनुत्। आमवातं वातरक्तं सूतरोगांश्च नाशयेत्॥ इति कश्चित्।

वैद्यके व्यवहारः– (१) स्कन्दापस्मारप्रतिषेधार्थम् अनन्ता–"अनन्तां कुक्कुटीं... धारयेत्।" (उ. २९ अ.)। (२) अर्शःसु आस्फोता–"...कलसे वान्तः आस्फोतामूलकल्कावलिप्ते निषिक्तं तक्रमम्लमनम्लं वा पानभोजनेषूपयुञ्जीत।" (चि. ६ अ.)। (३) व्रणशोधनार्थम् आस्फोता– "आस्फोतजातीकरवीरपत्रैः कषायमिष्टं व्रणशोधनार्थम्।" (चि. १८ अ.)। (४) मूषिकविषे आस्फोता–"सर्पिः पिबेन्नरः। आस्फोतमूलसिद्धं वा" (क. ५ अ.)। (५) पूतनाप्रतिषेधे आस्फोता–

"आस्फोता चैव योज्याः स्युर्बालानां परिषेचने।" (उ. ३२ अ.)। (६) श्वासे अनन्ता– "गोपवल्युप्रदके सिद्धं स्यादन्यद्द्विगुणे घृतम्" (उ. ५१ अ.)। सुश्रुतः॥ अग्र्यग्रन्थे अनन्ता– "अनन्ता सङ्ग्राहकरक्तपित्तप्रशमनानाम्" (सू. २५ अ.)। चरकः॥ (१) व्रणे सारिवामूलम्– "एकं वा सारिवामूलं सर्वव्रण-विशोधनम्" (व्रण-चि.)। (२) नेत्ररोगे श्यामा– "श्यामाक्वाथाम्बुना वाथ सेचनं कुसुमापहम्" (नेत्ररोग-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) वातव्याधौ श्यामा– "ऊर्द्ध्ववातविनाशाय वासापत्रसमन्वितम्। श्यामामूलं पिबेत् पिष्टं क्षीरेण परिमिश्रितम्॥" (वातव्याधि-चि.)। (२) व्रणशुक्रनामनेत्ररोगे श्यामा– "आश्च्यपोतनं...। श्यामामूलकषायं वा मधुना व्रणशुक्रिणाम्॥" (नेत्ररोग-चि.)। वङ्गसेनः॥

सा(शा)रिवा, कृष्णसारिवा, अनन्ता, कृष्णमूली (Asclepias Pseudosarsa, Roxb. Hemidesmus Indicus, R. Br.) शुक्लसारिवा, श्यामा, काष्ठसारिवा, आस्फोता (Echites Frutescens, Roxb.)

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– कृष्णसारिवा, श्यामा, गोपी। हि.– कालीसर, करियां साऊ, सालसा, कालीसोवा। बं.– कृष्ण अनन्तमूल, श्यामलता। म.– काली उपसरी। गु.– कालाफूल वाली, उपलसरी, काण्डडिया कुठेर। क.– सारिवा, नीलतिगो। तै.– नीलतिग। यू.– कालीसुर। ले.– इक्नीकार्पस फ्रूटेसेन्स।

श्वेत सारिवा– धवलासारिया, गोपकन्या, शारदी। हि.– गौरीसर, गोड़िया, साउ, गोडी साव। क.– अनन्तमूल। म.गु.– श्वेत उपलसरी। ते.– पलास गन्धी, पालचुक्क, निडेरु, पालसु गन्धी। ता.– नन्नारी। क.– करिवट। अं.– इन्डियन सारसा पारिला। ले.– हेमीडिसमस इन्डिका।

गुण एवं दोष–

धन्वन्तरीय निघण्टु एवं राजनिघण्टु के अनुसार– दोनों प्रकार के सारिवा मधुर रस हैं और कफ तथा वातरक्त का नाश करते हैं। ये कुष्ठ, कण्डू तथा ज्वरहर हैं और प्रमेह तथा दुर्गन्ध का नाश करते हैं। कृष्णमूली (काली सारिवा) ग्राही है तथा शीतल है और कफ पित्त को दूर करती है। यह प्यास तथा अरुचि को शान्त करती है और रक्त-पित्त को दूर करती है।

भावप्रकाश के अनुसार– दोनों प्रकार की सारिवा, स्वादिष्ट, स्निग्ध तथा शुक्रहर एवं गुरु है। यह अग्निमान्द्य, अरुचि, श्वास, कास, आम विकार तथा विष विकार का नाश करते हैं। ये तीनों दोष, रक्त प्रदर, ज्वर, तथा अतिसार का नाश करते हैं।

राजवल्लभ के अनुसार– सारिवा वात रोग, पित्त रोग, रक्त विकार, प्यास, वमन तथा ज्वर का नाश करती है। अनन्ता ग्राही है, रक्तपित्त को शान्त करती है तथा शीतल है। कुछ लोगों का मत है कि सारिवा छेदन है, मूत्रकारक है, उत्तम बलकारक है, वीर्यवर्द्धक है, रसायन है और औपदंशिक रोग नाशक है तथा सभी प्रकार के चर्म विकार को दूर करती है।

वैद्यक शास्त्र में सारिवा का प्रयोग–

(१) स्कन्दापस्मार प्रतिषेध के लिए अनन्ता का प्रयोग– स्कन्दापस्मार में अनन्ता तथा कुक्कुटी का धारण करे। (सु.उ.अ.२९)। (२) **अर्श में आस्फोता (सारिवा) का प्रयोग–** कलसा के अन्दर सारिवा मूल के कल्क से लेप कर उसमें मीठा या खट्टा अम्ल रक्खे और उसको पीने तथा भोजन में प्रयोग करे। (सु.चि.अ.६)। (३)

व्रण शोधनार्थ आस्फोता (सारिवा) का प्रयोग- सारिवा, चमेली तथा करवीर के पत्तों के कषाय से व्रण का संशोधन करना उत्तम है। (सु.चि.अ.१८)। (४) **मूषिक विष में आस्फोता (सारिवा) का प्रयोग**- मूषिक विष में रोगी सारवामूल के कल्क तथा क्वाथ के साथ विधिवत सिद्ध घृत पान करे। (सु.क.अ.५)। (५) **पूतना प्रतिषेध में सारिवा का प्रयोग**- पूतना ग्रह में बालकों के परिषेचन के लिए सारिवा का क्वाथ प्रयोग करे। (सु.उ.अ. ३२)। (६) **श्वास में सारिवा का प्रयोग**- सारिवा के कल्क तथा क्वाथ के साथ विधिवत् सिद्ध घृत श्वास रोग में सेवन कराये। (सू.उ.अ.५१)।

अनन्ता का की प्रधानता- संग्राहक तथा रक्त पित्त प्रशमन करनेवालों में सारिवा प्रथम है। (च.सू.अ.२५)।

(१) **व्रण में सारिवा मूल का प्रयोग**- एक सारिवा मूल का क्वाथ सभी प्रकार के व्रणों का शोधन करता है। (चक्र.व्रण चि.)। (२) **नेत्र रोग में श्याम सारिवा का प्रयोग**- श्यामा सारिवा के क्वथित जल से आँखों का सेचन नेत्र कुसुम (मोतियाबिन्द) का नाश करता है। (चक्र.नेत्र चि.)।

(१) **वातव्याधि में श्यामा सारिवा का प्रयोग**- श्यामा सारिवा के मूल तथा अडूसा के कल्क को क्षीर के साथ ऊर्ध्ववात के नाश के लिए पान करे। (बंगसेन, वातव्याधि.चि.)। (२) **व्रण शुक्ल नामक नेत्र रोग में श्यामा का प्रयोग**- श्यामा सारिवा मूल के कषाय से मधु मिलाकर व्रण शुक्ल पीड़ित रोगियों के नेत्रों का आश्च्योतन करे। (बंगसेन, नेत्र चि.)।

Constituents *of Hemidesmus Indicus*—Coumarin. The aroma and the taste of the drug are due to this constitutent; a volatile oil, a crystallizable principle, hemidesmine; and a crystalline stearopten called smilasperic acid. **Actions and uses** *of Hemidesmus Indicus.*—Valuable alterative, diaphoretic, diuretic, tonic; the powder fried in butter is given to children in thrush. With honey it is given in rheumatic pains and boils. As a diuretic, its infusion with cow's milk is given in scanty and high coloured urine, strangury and gravel. As a diaphoretic and tonic, it is given in fevers with loss of appetic and disinclination for food. As an alterative it is given in chronic rheumatism, skin diseases, scrofula, syphillis, cachexia, constitutional debility &c. Infusion with oinion and cocoanut-oil is given in piles. It is a good substitute for sarsaparilla. (R.N. Khory, Vol. II, p. 400).

Uses of Hemidesmus Indicus—"In the more southern parts of the Concan the milky juice is dropped into inflamed eyes; it causes copious lachrymation, and afterwards a sensation of coolness in the part. The root is tied up in plantain leaves and roasted in hot ashes; it is then beaten into a mass with cumin and sugar and administered with *ghee* as a remedy in heat or inflammation of the urinary passages. In India *O'shaughnessy* found its diuretic action to be very remarkable; two ounces infused in a pint of water and allowed to cool was the quantity usually employed daily, and by such doses the discharge of urine was generally trebled or quadrupled. It also acted as a diaphoretic and tonic, and so increased and appetite that it became a most popular remedy in his hospital, the patients themselves entreating its administration and continuance. (Dymock, Vol. II, p. 446-7).

सिन्दुवारो निर्गुण्डी च

Vitex Incisa, willd.

सिन्दु(न्धु)वारः, श्वेतपुष्पः–*Vitex Incisa, willd.* **निर्गुण्डी, नीलपुष्पः**–*Vitex Negundo.*

निर्गुण्डी कटुतिक्तोष्णा कृमिकुष्ठरुजापहा। वातश्लेष्मप्रशमनी प्लीहगुल्मा रुचीर्जयेत्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ सिन्दुवारः कटुस्तिक्तः कफवातक्षयापहः। कुष्ठकण्डूतिशमनः शूलहृत् कासससिद्धिदः॥ कटूष्णा 'नीलनिर्गुण्डी' तिक्ता रूक्षा च कासजित्। श्लेष्मशोफसमीरार्त्तिप्रदराध्मानहारिणी॥ राजनिघण्टुः॥ सिन्दुकः स्मृतिदस्तिक्तः कषायः कटुको लघुः। केश्यो नेत्रहितो हन्ति शूल-शोथाममारुतान्॥ कृमिकुष्ठारुचिश्लेष्मज्वरान् 'नीलापि' तद्विधा। 'सिन्दुवारदलं' जन्तुवातश्लेष्महरं लघु॥ भावप्रकाशः॥ 'निर्गुण्डी कर्त्तरीयुक्ता' कट्वी तिक्ता कफापहा। वातं क्षयञ्च शूलञ्च रुण्डूं कुष्ठञ्च नाशयेत्॥ प्रोक्ता चा'ऽऽरण्यनिर्गुण्डी' पथ्या पित्तं ज्वरं हरेत्। विषञ्च गृध्रसीवातं नाशयेद् वर्णकारिणी॥ 'पर्णञ्चा' स्यास्तु कटुकं चाग्निदीप्तिकरं लघु। कृमीन् कफञ्च वातञ्च कुष्ठं शोथञ्च नाशयेत्। अरुचे नाशकं प्रोक्तं कण्डूञ्चैव विनाशयेत्॥ निघण्टुरत्नाकरः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) सकफे विसर्पे निर्गुण्डी–"इन्द्राणीशाकं काकाह्वां...। पृथगालेपनं कुर्याद्द्वन्द्वशः सर्वशोऽपि वा। प्रदेहाः सर्व एवैते देयाः स्वल्पघृतायुताः॥" (चि. ११ अ.)। (२) दर्वीकरैर्दष्टे सिन्दुवारः–"सिन्दुवारस्य मूलञ्च...। पानं दर्वीकरैर्दष्टे–"। (चि. २५ अ.)। (३) नाडीकुष्ठानिलार्त्तिषु निर्गुण्डी–"निर्गुण्ड्या मूलपत्राभ्यां गृहीत्वा स्वरसं ततः। तेन सिद्धं समं तैलं नाडीकुष्ठानिलार्त्तिषु। हितं पामापचीनाञ्च पानाभ्यञ्जनपूरणम्॥" (चि. २८ अ.)। चरकः॥ रक्तपित्ते सिन्दुवारः– "तथाति मुक्ताङ्कुरसिन्दूवारजं हितञ्च शाकं घृतसंस्कृतं सदा" (उ. ४५ अ.)। सुश्रुतः॥ (१) कफोत्थे कासे निर्गुण्डी–"निर्गुण्डीपत्रस्वरसेन सिद्धं॥ सर्पिः कफोत्थं विनिहन्ति कासम्।" (कास-चि.)॥ (२) पूतिकर्णे निर्गुण्डी–"निर्गुण्डीस्वरसे तैलं सिन्धुधूमरज गुडः पूरणं पूतिकर्णस्य शमनो मधुसंयुतः"। (कर्णरोग-चि.)। वङ्गसेनः॥ (१) यक्ष्मणि निर्गुण्डी–"समूलफलपत्रायाः निर्गुण्डचाः स्वरसैर्घृतम्। सिद्धं पीत्वा क्षयक्षीणो निर्व्याधिर्भाति देववत्॥" (यक्ष्म-चि.)। (२) गण्डमालायां निर्गुण्डी– "...नस्यकर्मणि योजयेत्। निर्गुण्ड्याश्च शिफां सम्यग्वारिणा परिपेषिताम्॥" (गलगण्ड-चि.)। (३) कफज्वरे सिन्दुवारदलः–"सिन्दुवारदलक्वाथः– सोषणः कफजे ज्वरे। जङ्घयोश्च बले क्षीणे कर्णे वा पिहिते पिबेत्॥" (ज्वर-चि.)। चक्रदत्तः॥ स्नायुकरोगे निर्गुण्डी– "गव्यं सर्पिस्त्र्यहं पीत्वा निर्गुण्डीस्वरसं त्र्यहम्। पिबेत् स्नायुकमत्युग्रं हन्त्यवश्यं न संशयः॥" (स्नायुक-चि.)। भावप्रकाशः॥

सिन्दु(न्धु)वारः, श्वेतपुष्पः (Vitex Incisa, willd.) निर्गुण्डी, नीलपुष्पः (Vitex Negundo.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- सिन्दुवारः, श्वेतपुष्पः, सिन्दुथा। हि.- सम्भालु, सम्हालु, सेन्दुआर, सिनुआर, मेढड़ी, सिहाल, सिओली। बं.- निसिन्दा। म.- लिगुड़, निभडी, प्राढरी, निर्गुण्डी। गु.- घोली नागोदा, नागल्या नागोदा। ता.- विलीयसञ्चि, मनजाय। मु.- निर्गुण्डी, हरसिंगार। द्रा.- सुग्वालि, सान्वालि, बाहकेनो चिल्ल। ते.- वव्विलि, गविलि, तेल्वाभविली। क.- विलियलौके, विलीयलुक्कि। प.मा.- सम्भालु। फा.- परङ्गष्ट, फञ्जनाकीत्त। अ.- अलसक। अं.- फाइव लिब्ड चेस्ट ट्री (Five leaved chaste tree)। ले.- विटक्स ट्रीफोलिया (Vitex Trifolia).

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- निर्गुण्डी कटुरस, तिक्त रस तथा उष्ण है और क्रिमि तथा कुष्ठ रोग

का नाश करती है। यह वात रोग तथा कफ रोग को शान्त करती है और प्लीहा गुल्म रोग एवं अरुचि को दूर करती है।

राजनिघण्टु के अनुसार- सिन्दुवार कटुरस तथा तिक्त रस है और कफ विकार, वात विकार तथा क्षय रोग का नाश करता है। यह कुष्ठ रोग तथा कण्डू रोग को शान्त करता है और शूल को दूर करता है एवं कास को ठीक करता है। नील निर्गुण्डी कटु रस, उष्ण, तिक्त रस तथा रूक्ष है और कास को दूर करती है। यह कफ रोग, शोथ, वातरोग, पीड़ा, प्रदर तथा आध्मान को दूर करती है।

भावप्रकाश के अनुसार- सिन्दुवार स्मृतिप्रद है, तिक्त रस है, कटुरस है, कषाय रस है तथा लघु है। यह केश के लिए हितकर है, नेत्र के लिए हितकर है तथा शूल, शोथ, आम वात का नाश करता है। यह क्रिमि रोग, कुष्ठ रोग, अरुचि तथा श्लेष्म ज्वर का नाश करता है। नील पुष्पा निर्गुण्डी भी पूर्वोक्त गुणवाली होती है। सिन्दुवार का पत्र क्रिमिरोग, वात रोग तथा कफ रोग का नाश करती है।

निघण्टु रत्नाकर के अनुसार- निर्गुण्डी काटनेवाली है, कटु तथा तिक्त रस है और कफ विकार को दूर करती है। यह वात रोग, क्षय रोग, शूल, कण्डू तथा कुष्ठ का नाश करती है। अरण्य निगुण्डी पथ्य कही गयी है तथा ज्वर को दूर करती है, विष विकार तथा गृध्रसी वात का नाश करती है तथा वर्ण को बढ़ानेवाली है। इसका पत्र कटु रस है, अग्नि प्रदीपक है तथा लघु है। यह क्रिमि रोग, कफ रोग, वात रोग, कुष्ठ रोग तथा शोथ का नाश करती है। यह अरुचि का नाश करनेवाली कही गयी है और कण्डू का नाश करती है।

वैद्यक शास्त्र में निगुण्डी का प्रयोग-

(१) कफज विसर्प में निगुण्डी का प्रयोग- निर्गुण्डी का शाक तथा काकमाची का कल्क अलग-अलग, दो-दो का तथा सब का विसर्प के ऊपर लेप करे। इसमें थोड़ा घी मिलाकर इन सभी औषधों का प्रदेह करे। (च.चि.अ.११)। (२) **दर्वीकर (सांप) के काटने पर सिन्दुवार का प्रयोग**- दर्वीकर (सांप) के काटने पर सिन्दुवार के मूल का चूर्ण पान करे। (च.चि.अ.२५) (३) **नाड़ी कुष्ठ तथा वात रोग में निर्गुण्डी का प्रयोग**- निर्गुण्डी के मूल तथा पत्र को लेकर स्वरस निकाल ले और उसके समभाग तैल तथा स्वरस लेकर तैल सिद्ध करे। यह नाड़ी कुष्ठ तथा वातरोग में और अपची एवं पामा में पान, अभ्यञ्जन तथा भरना हितकर है। (च.चि.अ. २८)।

रक्तपित्त में सिन्दुवार का प्रयोग- अतिमुक्ता का अंकुर तथा सिन्दुवार का शाक घृत में पकाकर सेवन करना रक्त पित्त में हितकर है। (सु.उ.अ.४५)।

(१) कफोत्थ कास में निर्गुण्डी का प्रयोग- निर्गुण्डी के स्वरस के साथ विधिवत सिद्ध घृत कफजन्य कास का नाश करता है। (बंगसेन, कास.चि.) (२) **प्रतिकर्ण में निर्गुण्डी का प्रयोग**- निर्गुण्डी स्वरस में तैल, सेन्धा नमक का चूर्ण तथा गुड़ एवं मधु मिलाकर कान में भरना कर्णपूति रोग को शान्त करता है। (बंगसेन, कर्णरोग चि.)।

(१) यक्ष्मा रोग में निर्गुण्डी का प्रयोग- निर्गुण्डी के मूल, फल एवं पत्र के स्वरस के साथ सिद्ध घृत पान कर क्षय से क्षीण रोगी देवता की तरह व्याधिरहित हो जाता है। (चक्र.यक्ष्मरो.चि.)। (२) **गण्डमाला में निर्गुण्डी का प्रयोग**- निर्गुण्डी के मूल को अच्छी तरह जल के साथ पीसकर उसका रस निकालकर नस्य कर्म में प्रयोग करे। (चक्र.गलगण्ड चि.)। (३) **कफ ज्वर में सिन्दुवार पत्र के क्वाथ का प्रयोग**- सिन्दुवार

के पत्र का क्वाथ मरिच का चूर्ण मिलाकर कफज्वर में दोनों जङ्घा बल के क्षीण होने पर तथा कर्ण के बन्द हो जाने पर पान करे। (चक्र.ज्वर.चि.)।

स्नायुक रोग में निर्गुण्डी का प्रयोग- गाय के घी का तीन दिन तक पान कर निर्गुण्डी का स्वरस तीन दिन तक पान करे। इसके पान करने से भयानक स्नायुक रोग को अवश्य ही नष्ट करता है इसमें सन्देह नहीं है। (भावप्रकाश, स्नायुक चि.)।

Constituents *of Vitex Negundo*—The leaves contain an essential oil and resin; the fruits contain an acid resin, an astringent organic acid, malic acid, an alkaloid and a colouring matter. **Actions and uses—**Alterative, aromatic, bitter and anodyne. The decoction is used in colic, dyspepsia, rheumatism and worms; locally the leaves, bruised are applied to the temples in headache, and as varalians over contusions, sprained limbs, rheumatic painful joints, leech bites and also over the swollen testicles due to suppressed gonorrhoea. It is largely used as a vapour bath in febrile conditions. The fruit is resolvent and emmenagogue, and used in enlargement of spleen and in dropsy. The leaves are used to preserve rice and clothes from the ravages of insects. It is placed between the leaves of books to preserve them from insects. (R.N. Khory, Vol. II, p. 424). *V. Incisa* is highly extolled by *Bontius* (Diseases of India, p. 236). He speaks of it as anodyne, diuretic and emmenagogue, and testifies to the value of fomentations and baths prepared with "this noble herb", as he terms it, in the treatment of Beri-beri, and in the allied and obscure affection, burning of the feet in natives. Of *V. Negundo Fleming* remarks (Asiatic Researches, Vol. XI.) that its leaves have a better claim to the title of discutient than any other vegetable remedy with which he is acquainted. The mode of application followed by the natives is to put fresh leaves into an earthen pot and heat them over the fire till they areas hot as can be borne without pain; they are then applied to the affected part, and kept in situ by a bandage; the application is repeated three or four times a day until the swelling subsides. Dr. Hove (1787) states that the Europeans in Bombay call it the fomentation shrub, and that it is used in the hospitals there as a foment in contractions of the limbs occasioned by the land winds. According to Ainslie the Mahometans are in the habit of smoking the dried leaved in cases of headache and catarrh. The dried fruit is deemed vermifuge. (Dymock, Vol. III, pp. 74-5).

सुनिषण्णकः

Marsilea Quadrifolia, Linn.

सुनिषण्णकः, शितिवारः–*Marsilea Quadrifolia, Linn.*

अन्वर्थसंज्ञा–"सूचिपत्रकः", "मेधाकृत्", "ग्राहकः", "चतुष्पत्री"। पूर्वाचार्यकृतवर्णनम्–चाङ्गेरीसदृशैः पत्रैश्चतुर्द्दल इतीरितः। शाको जलान्विते देशे चतुष्पत्रीति चोच्यते॥ भावमिश्रः॥ सुनिषण्णोऽग्निकृद् वृष्यो गुरुर्ग्राही त्रिदोषजित्। शितिवारस्तु सङ्ग्राही कषायः सर्वदोषजित्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ शितिवारस्तु सङ्ग्राही कषायोष्णास्त्रिदोषजित्। मेधारुचिप्रदो दाहज्वरहारी रसायनः॥ राजनिघण्टुः॥ सुनिषण्णो हिमो ग्राही मोहदोषत्रयापहः। अविदाही लघुः स्वादुः कषायो रूक्षदीपनः। वृष्यो रुच्यो ज्वरश्वासमेहकुष्ठभ्रम-प्रणुत्॥ भावप्रकाशः॥ अविदाहो त्रिदोषघ्नः सङ्ग्राही सुनिषण्णकः। राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) वातकासिणः शाकार्थं सुनिषण्णकम्–"...शस्यते वातकासे तु..." (चि. २२ अ.)। (२) विषार्त्तानां शाकार्थं सुनिषण्णकम्–"...वार्त्ताकुसुनिषण्णकाः... विषार्त्तानां भिषग्जितम्" (चि. २५ अ.)। (३) ऊरुस्तम्भे सुनिषण्णकम्–"सुनिषण्णक ...आरग्वधः पल्लवैः। शाकैरलवणैरद्याज्जलतैलोपसाधितैः॥" (चि. २७ अ.)। (४) मूत्रकृच्छ्रे शितिवारः–"तक्रेण युक्तं शितिवारकस्य बीजं पिबेत् कृच्छ्रविनाशहेतोः" (चि. २६ अ.)। चरकः॥ रक्तपित्तिनः शाकार्थं सुनिषण्णकम्– "पटोलशेलुसुनिषण्णयूथिका...। हितञ्च शाकं घृतसंस्कृतं सदा तथैव धात्रीफलदाडिमान्वितम्॥" (उ. ४५ अ.)। सुश्रुतः॥

सुनिषण्णकः, शितिवारः (Marsilea Quadrifolia, Linn.)

विविध भाषाओं में नाम–

सं– शितिवारः, स्वस्तिकः, सुनिषण्णकः। हि.– सिरियारी, चौपत्तिया, शिरुआरी, गुठवा। बं.– सुमुनी शाक, शुनिशाक, शिशुनी शाक। म.– करडू, कुरड़ाहवे। गु.– सुनिष्णक, लावरी, खरफनीरा। ते.– सुनिषण्ण भनेशाकमु)। क.– कुरडु। फा.– अंजरा। ऊ.– छुनछुनिया। ले.– ब्लेफेराइस इड्युलिस (Blepharies Eduotulis).

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा– सूचिपत्रकः, मेधाकृत्, ग्राहकः, चतुष्पत्री। **पूर्वाचार्य कृत वर्णन–** चाङ्गरी के पत्र के सदृश पत्रों से चतुर्दल कहा गया है। यह शाक जलयुक्त देश में उत्पन्न होता है तथा चतुष्पत्री कहा जाता है। (भावमिश्र)

गुण एवं दोष–

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार– सुनिषण्णक (चौपतिया शाक) अग्नि कारक, वीर्यवर्द्धक, गुरु तथा ग्राही है और त्रिदोष को दूर करनेवाला है। शितिवार संग्राहक है, कषाय रस है तथा सभी दोषों को दूर करनेवाला है।

राजनिघण्टु के अनुसार– शितिवार ग्राही, कषाय रस तथा उष्ण है और त्रिदोष का नाश करता है। यह मेधा तथा रुचिप्रद है तथा दाह एवं ज्वर को दूर करनेवाला है और रसायन है।

भावप्रकाश के अनुसार– सुनिषण्णक शीतल, ग्राही, मोहकारक तथा तीनों दोषों का नाश करता है। यह अविदाही है, लघु है, स्वादिष्ट, कषाय रस, रूक्ष है तथा जाठराग्नि दीपक है। यह वीर्यवर्द्धक तथा रुचिकारक है तथा ज्वर, श्वास, प्रमेह, कुष्ठ एवं भ्रम को दूर करता है।

राजवल्लभ के अनुसार– सुनिषण्णक अविदाही, त्रिदोष नाशक तथा संग्राही है।

वैद्यक शास्त्र में सुनिषण्णक का प्रयोग–

(१) वातिक कास के रोगी के शाक के लिए सुनिषण्णक का प्रयोग– वातज कास में सुनिषण्णक का शाक प्रशस्त है। (च.चि.अ.२२)। **(२) विष पीड़ित रोगी के शाक के लिए सुनिषण्णक के शाक का प्रयोग–** वार्ताकु (वैगन) तथा सुनिषण्णक का शाक विष पीड़ित रोगी के लिए उत्तम औषध है। (च.चि.अ.२५)। **(३) उरुस्तम्भ में सुनिषण्णक का प्रयोग–** सुनिषण्णक तथा अमलतास के पत्तों के जल तथा तैल में साधित विना लवण के शाक के साथ उरुस्तम्भ में भोजन करे। (च.चि.अ.२७)। **(४) मूत्र कृच्छ्र में शितिवार का प्रयोग–** मूत्र कृच्छ्र रोग के नाश के लिए शितिवार के बीज का प्रयोग मट्ठा के साथ करे। (च.चि.अ.२६)।

रक्तपित्ती रोगी के शाक के लिए सुनिषण्णक के शाक का प्रयोग– रक्त पित्ती रोगी के लिए घी से भूना हुआ सुनिष्णक शाक हितकर है। (सु.उ.अ.४५)।

स्नुही

Euphorbia Ligularia

स्नुही, स्नुक्, सुधा–*Euphorbia Ligularia.* **सेहुण्डः**–*E. Antiquo-rum.* **त्रिधारा स्नुही**–*E. Neriifolia.*

अन्वर्थसंज्ञा–स्नुहीसेहुण्डयोः–"निस्त्रिंशपत्रकः", "समन्तदुग्धा", "वज्र-कण्टकः", "व्याघ्रनखः", "बहुशाखः", "नेत्रारिः", "वातारिः", "क्षीरकाण्डकः"। अस्या भेदौ–सेहुण्डः त्रिधारा स्नुही च। द्विविधः स मतो यैश्च बहुभिश्चैव कण्टकैः। सुतीक्ष्णैः कण्टकैरल्पैः प्रवरो बहुकण्टकः॥" चरकसंहितायां दृढवलः॥ 'सेहुण्डको' रसे तिक्तो गुरूष्णः कफवातजित्। दुष्टव्रणाश्मरीं हन्ति तथा वातविशोधनः॥ 'स्नुहीक्षीरं' विषाऽऽध्मानं गुल्मोदरहरं परम्। स्नुही रसेषु तिक्ता च गुरूष्णा कफवातजित्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ स्नुहिरुष्णा पित्तदाहकुष्ठवातप्रमेहनुत्। 'क्षीरं' वातविषाऽऽध्मा-नगुल्मोदरहरं परम्॥ स्नुहिरन्या 'त्रिधारा' स्यात् त्रिस्त्रो धारास्तु यत्र सा। पूर्वोक्तगुणवत्येषा विशेषाद्रससिद्धिदा॥ राजनिघण्टुः॥ 'सेहुण्डो' रेचनस्तीक्ष्णो दीपनः कटुको गुरुः। शूलमष्ठीलिका-ऽऽध्मानकफगुल्मोदरानिलान्॥ उन्मादमेहकुष्ठार्शःशोथमेदोऽश्मपाण्डुताः। व्रणशोथज्वरप्लीहविषदूषीविषं हरेत्॥ उष्णवीर्यं स्नुहीक्षीरं स्निग्धञ्च कटुकं लघु। गुल्मिनां कुष्ठिनाञ्चापि तथैवोदररोगिणाम्॥ हितमेतद् विरेकार्थे ये चान्ये दीर्घरोगिणः॥ सेहुण्डस्य 'दलं' तीक्ष्णं दीपनं रोचनं हरेत्। आध्मानाष्ठी-लिकागुल्मशूलशोथोदराणि च॥ भावप्रकाशः॥ विरेचनानां सर्वेषां सुधा तीक्ष्णतमा मता। सङ्घातन्तु भिनत्त्याशु दोषाणां कष्टविभ्रमा॥ तस्मान्नैषा मृदौ कोष्ठे प्रोयोक्तव्या कदाचन। न दोषनिचये चाल्पे सति वान्यपरिक्रमे॥ पाण्डुरोगोदरे गुल्मे कुष्ठे दूषीविषार्द्दिते। श्वयथौ मधुमेहे च दोषविभ्रान्त-चेतसि॥ रोगैरेवंविधैर्ग्रस्तं ज्ञात्वा सप्राणमातुरम्। प्रयोजयेन्महावृक्षं सम्यक् स ह्यवधारितः। सद्यो हरित दोषाणां महान्तमपि सञ्चयम्॥ चरकसंहितायां दृढवलः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) अग्रयग्रन्थे स्नुक्पयः–"स्नुक्पयस्तीक्ष्णविरेचनानाम्" (सू. २५ अ.)। (२) वातगुल्मिणो रेचनार्थं सुधाक्षीरम्–"सुधाक्षीरद्रवे चूर्णं त्रिवृतायाः सुभावितम्। कार्षिकं मधुसर्पिर्भ्यां लीढ्वा साधु विरिच्यते॥" (चि. ५ अ.)। (३) उदररोगिणः शाकार्थं स्नुहीपल्लवः–"शङ्खिणीस्नुक्... पल्लवैः। शाकं गाढपुरीषाय प्राग्भक्तं दापयेद् भिषक्॥" (चि. १८ अ.)। चरकः॥ (१) जलोदरे स्नुहीक्षीरम्–"स्नुक्पयसा परिभाविततण्डुलचूर्णैर्निर्मितः पूपः। उदरमुदारं हिंस्याद् योगोऽयं सप्तरात्रेण॥" (उदर-चि.)। (२) दशनकृमिषु स्नुही-मूलम्–"नीली... स्नुक्दुग्धीनान्तु मूलमेकैकं सञ्चर्व्य दशनविधृतं दशनकृमि-पातनं प्राहुः" (दन्तरोग-चि.)। (३) कर्णशूले स्नुहीपत्ररसः–"अर्कपत्र-पुटे दग्धः स्नुहीपत्रभवो रसः। कटूष्णः पूरणादेव कर्णशूल-निवारणः॥" (कर्णरोग-चि.)। चक्रदत्तः॥

स्नुही, स्नुक्, सुधा (Euphorbia Ligularia) सेहुण्डः (E. Antiquo-rum.) त्रिधारा स्नुही (E. Neriifolia.)

विविध भाषाओं में नाम–

सं- सेहुण्डः, वज्री, सुधा, समन्तदुग्धा, स्नुही। हि.- थूहर, सेहुण्ड, सेंड, सीझ, काहेर। बं.- मनसा गाछ।

विजवृक्ष। म.- निवडूङ्ग। ते.- चमुड़चेट्टु। गु.- थोरदाङ्गुलियो। ता.- एलाकुल्लि। फा.- लादनाम्। अ.- जकूम फर्युग्ना। अं.- मिल्केस हेज (Milkes Hedge)। ले.- यूफोर्विया नेरीफोलिया (Euphorbia Neriifolia)।

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा- स्नुही- सेहुण्डः, निस्त्रिंशपत्रकः। समन्तदुग्धा, वज्रकण्टकः, व्याघ्रनखः, बहुशाखः नेत्रारिः, वातारिः, क्षीरकाण्डकः। स्नुही के भेद- सेहुण्ड, त्रिधारा स्नुही।

गुण एवं दोष-

चरक संहिता के अनुसार- सेहुण्ड दो प्रकार का होता है- तीक्ष्ण बहु कण्टवाला है। दूसरा अल्पकण्ट से युक्त बहुत कण्टवाला है। यह उत्तम है। (चरक संहिता में दृढ़वल)।

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- सेहुड़ रस में तिक्त, गुरु तथा उष्ण है और कफवात को दूर करता है। यह दुष्टव्रण तथा अश्मरी का नाश करता है तथा वात शोधक है। सेहुड़ का दूध विष विकार, आध्मान, गुल्म रोग तथा उदर रोग को दूर करता है। सेहुड रस में तिक्त, गुरु, उष्ण तथा कफवात को दूर करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- स्नुही उष्ण है तथा पित्त, दाह, कुष्ठ रोग, वात रोग और प्रमेह को दूर करती है। स्नुहीं का दूध वात विकार, विष विकार, आध्मान, गुल्म रोग तथा उदर रोग को अच्छी तरह दूर करती है। दूसरे प्रकार की स्नुही त्रिधारा होती है। वह त्रिधारा सेड है। यह पूर्वोक्त गुणवाला विशेषकर पारद सिद्ध करने में प्रयुक्त होता है।

भावप्रकाश के अनुसार- सेहुण्ड रेचन, तीक्ष्ण, दीपन, कटु रस तथा गुरु है। यह शूल, अष्ठीलिका ग्रन्थि वृद्धि, आध्मान, कफ विकार, गुल्म रोग, उदर रोग, वात-विकार, उन्माद, प्रमेह, कुष्ठ, अर्श रोग, शोथ, मेदो विकार, अश्मरी, पाण्डु रोग, व्रण शोथ, ज्वर, प्लीहा वृद्धि, विष विकार तथा दूषी विष को दूर करता है। स्नुही क्षीर उष्ण वीर्य, स्निग्ध, कटु रस तथा लघु है। यह गुल्म के रोगी, कुष्ठ के रोगी तथा उदर रोगियों के तथा बहुत दिनों के रोगियों के विरेचन के लिए हितकर है। सेहुड़ का पत्र तीक्ष्ण, जाठराग्नि दीपक तथा रोचक है और आध्मान, अष्टीलिका, गुल्म रोग, शूल, शोथ तथा उदर रोग को दूर करता है।

चरक संहिता के अनुसार- सभी विरेचन द्रव्यों में सुधा (सेहुड़) तीक्ष्ण विरेचन कही गयी है। यह विभ्रम दोषों के संघात का शीघ्र ही भेदन करती है। अतः इसका मृदकोष्ठवालों को कभी भी नहीं प्रयोग करना चाहिए। दोषों के थोड़े इकट्ठे होने पर या अन्य परिक्रम में प्रयोजन करे। पाण्डु रोग, उदर रोग, गुल्म रोग, कुष्ठ रोग, दूषी विष से पीड़ित, शोथ, मधुमेह, दोषों से विभ्रान्त चित्तवाले कों सेहुड का प्रयोग न करें। इन प्रकार के रोगों से ग्रस्त प्राणयुक्त आतुर को जानकर महावृक्ष का अच्छी तरह सहकारी योग के साथ प्रयोग करे। यह दोषों के बड़े संचय को शीघ्र ही दूर करता है।

वैद्यक शास्त्र में स्नुही का प्रयोग-

(१) आर्ष ग्रन्थ में सेहुड के दूध का प्रयोग- तीक्ष्ण विरेचनों में सेहुड़ दूध का प्रयोग उत्तम है। (च. सू.अ.२५)। **(२) वात गुल्म के रोगियों के विरेचन के लिए सुधा क्षीर का प्रयोग-** निशोथ के चूर्ण को सुधा के दूध में भावित कर एक कर्ष की मात्रा में मधु तथा घृत के साथ चाटने से अच्छी तरह विरेचन होता है। (च.चि.अ.५)। **(३) उदर रोगी के शाक के लिए स्नुही पल्लव का प्रयोग-** अपामार्ग तथा सेहुड़ के पल्लवों का शाक गाढ पुरीषवालों के लिए भोजन से पहले प्रयोग करे। (च.चि.अ.१८)।

(१) जलोदर में स्नुही क्षीर का प्रयोग- सेहुड़ के दूध से भावित चावल के चूर्ण से बना हुआ पूपर (पूआ)

भयंकर उदर रोग का सात रात्रि प्रयोग करने पर नाश करता है। (चक्रदत्त, उदर चि.)। (२) **दशन क्रिमि में स्नुही मूल का प्रयोग**- नीली तथा सेहुड़ मूल एक-एक को चूर्ण कर रात में धारण करने से दशन (दांत) के क्रिमि का नाश होता है। (चक्र.दन्त रोग चि.)। (३) **कर्ण रोग में स्नुही पत्र के रस का प्रयोग**- अर्क पत्र को पुटपाक विधि के अनुसार पकाकर उसका रस तथा सेहुड़ का रस थोड़ा गरम कर कान में छोड़ने से कर्णशूल का निवारण होता है। (चक्र.कर्ण रोग चि.)।

Actions and uses—The juice is a purgative and expectorant, locally rubefacient and a popular application to warts, when it acts as a blister. Heated with common salt it is used as a remedy for whooping cough, asthma, dropsy, enlarged liver and spleen, dyspepsia, jaundice, colic, flatulence & c. In small doses it promotes the expectoration and is often given with the juice of adulasa. By mixing with other purgatives its purgative properties become increased. It is given in visceral obstructions, in dropsical affections consequent on long continued intermittent fever, in jaundice and in rheumatism. Externally it is mixed with margosa oil and applied to stiff limbs in rheumatism; and also used in killing maggots in wounds. The root is used for snake-bites. (R.N. Khory, Vol. II, p. 544).

सूर्यावर्त्तः

Cleome Viscosa

सूर्यावर्त्तः, सुवर्चला, आदित्यभक्ता–*Cleome Viscosa (white flowered), Gynandropsis Pentraphylla (yellow flowered), Eng.—Dog Mustard, Sticky Cleome.*

आदित्यभक्ता कटुका तथोष्णा स्फोटकापहा। सरस्वती सरा स्वर्या रसायनविधौ हिता॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ आदित्यभक्ता शिशिरा सतिक्ता कटुस्तथोग्रा कफहारिणी च। त्वग्दोषकण्डूव्रण-कुष्ठभूत-ग्रहोग्रशीतज्वरनाशिनी च॥ राजनिघण्टुः॥ सुवर्चला हिमा रूक्षा स्वादुपाका सरा गुरुः। अपित्तला कटुः क्षारा विष्टम्भकफवातजित्॥ अन्या तिक्ता कषायोष्णा सरा रूक्षा लघुः कटुः। निहन्ति कफपित्तास्त्रश्वासकासारुचिज्वरान्। विस्फोटकुष्ठमेहास्त्रयोनिरुक्कृमिपाण्डुताः॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) प्रवाहिकायां सुवर्चलायाः शुष्कशाकम्–"आमे परिणते यस्तु विबन्ध-मतिसार्य्यते। सशूलपिच्छामल्पाल्पं बहुशः सप्रवाहिकम्॥ ...तं... सुवर्चलायाः... शुष्कशाकेन वा... दधिदाडिमसिद्धेन बहुस्नेहेन भोजयेत्।" (चि. १० अ.)। (२) शोथे शाकार्थं सुवर्चला– "सुवर्चिकागृञ्जनकं पटोलं... शाकार्थिनां शाकमतिप्रशस्तम्।" (चि. १७ अ.)। (३) वातपित्तानुगे श्वासे सुवर्चला–"सुवर्चलारजो दुग्धं घृतं त्रिकटुकान्वितम्। शाल्योदनस्यानुपानं वातपित्तनुगे परम्॥" (चि. २१ अ.)। चरकः॥ कर्णशूले सूर्यावर्त्तः–"आर्द्रकसूर्यावर्त्त... स्वरसाः मधुतैलसैन्धवयुताः। पृथगुक्ताः कर्णशूलहराः।" (कर्णरोग-चि.)। चक्रदत्तः। (१) उरोग्रहे सूर्यावर्त्तः–"...सूर्यावर्त्तदलोद्भवाः रसा एकैकशः कोष्णा द्विशो वा रामठान्विताः।" (उरोग्रह-चि.)। (२) वृश्चिकविषे सूर्यावर्त्तः–"गन्धमाघ्राय मृदितसूर्यावर्त्तदलस्य च। वृश्चिकैर्व्यथितो जन्तुः क्षणाद्भवति निर्विषः॥" (विष-चि.)। वङ्गसेनः॥ योनिदाहे सूर्यकान्तः–"सूर्यकान्तभवं मूलं पिबेद्वा तण्डुलाम्बुना।" (स्त्रीरोग-चि.)। भावप्रकाशः॥

सूर्य्यावर्त्तः, सुवर्चला, आदित्यभक्ता [Cleome Viscosa (white flowered), Gynandropsis Pentraphylla (yellow flowered), Eng.—Dog Mustard, Sticky Cleome.]

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- सुवर्चला, सूर्यभक्ता, सूर्यावर्त्तः, (रविप्रीता)। हि.- हुलहुल, हुरहुर, वानरी। बं.- लुड लुडे बनशलते, हुरहुरिया। म.- सूर्यफूल, सूर्यफल बल्ली, सूर्यमुखी। गु.- तलवणी, सूरजमुखी, तिलवन। क.- आदित्यभक्ता, नाथि सासके। ते.- सूर्यकान्तिप, कुक्क आवाल, कुकवोमि राट। द्रा.- नायवहुद। द.- जंगली हुलवुल, चुरई अजवानी। अं.- वाइल्ड मस्टर्ड (Wild mustard) ले.- क्लिओम विरस्कासार (Cleome Viscara)।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- सुवर्चला कटु रस तथा उष्ण है और स्फोटकों का नाश करती है। सरस्वती सारक है, स्वरवर्द्धक है तथा रसायन विधि में हितकर है।

राजनिघण्टु के अनुसार- सुर्वला (हुरहुर) शिशिर है, तिक्तरस है, कटु रस है तथा उग्र है और कफ का हरण करनेवाली है। यह त्वचा विकार, कण्डू , व्रण, कुष्ठ, भूत वाधा, ग्रह वाधा, उग्र शीत ज्वर का नाश करती है।

भावप्रकाश के अनुसार- सुर्वचला शीतल, रुचिकारक पाक से स्वादिष्ट, सारक तथा गुरु है। यह अपित्तज है (पित्त को नहीं बढ़ाता है), कटुरस है, क्षारीय है तथा विष्टम्भ, कफ विकार तथा वात विकार को दूर करती है। अन्य सुवर्चला तिक्त रस, कषाय रस, उष्ण, सारक रूक्ष, लघु तथा कटु रस है। यह कफ विकार, पित्त विकार, रक्त विकार, श्वास, कास, अरुचि, ज्वर, विस्फोट, कुष्ठ, प्रमेह, रक्त योनि रोग, क्रिमि रोग तथा पाण्डु रोग का नाश करती है।

वैद्यक शास्त्र में सुर्वचला का प्रयोग-

(१) प्रवाहिका में सुवर्चला के शुष्क शाक का प्रयोग- आम दोष के हो जाने पर जो विबन्ध अधिक मात्रा में निकलने लगता है। उसमें शूल होता है तथा पिच्छिल थोड़ा-थोड़ा अनेक बार प्रवाहित होता है। सुवर्चला के शुष्क शाक का दही तथा अनार के रस से सिद्ध कर अधिक मात्रा में स्नेह डाल कर भोजन कराये। (च. चि.अ.१०)। (२) **शोथ में शाक के लिए सुवर्चला का प्रयोग-** शोथ रोग में शाक खानेवाले व्यक्तियों के लिए हुरहुर, गाजर तथा परवल का शाक अधिक प्रशस्त है। (च.चि.अ.१७)। (३) **वात पित्तानुग श्वास रोग में सुवर्चला का प्रयोग-** सुवर्चला (हुलहुल) का चूर्ण दूध, घृत तथा त्रिकटु (सोंठ, पीपर तथा मरिच) का चूर्ण मिलाकर जड़हन धान के भात के अनुपान के साथ सेवन करने से वात-पित्तात्मक श्वास रोग में हितकर है। (च.चि. अ.२१)।

कर्णशूल में सूर्यावर्त का प्रयोग- अदरक तथा सुवर्चला का स्वरस मधु, तैल तथा सेन्धा नमक मिलाकर कान में छोड़ने से कर्णशूल को दूर करते हैं। (चक्र.कर्ण शूल चि.)।

(१) उरोग्रह में सूर्यावर्त का प्रयोग- सूर्यावर्त के पत्तों का रस एक-एक बार या दो बार हींग मिलाकर प्रयोग करना उरोग्रह में हितकर है। (बंगसेन, उरोरोग चि.)। (२) **वृश्चिक विष में सूर्यावर्त का प्रयोग-** मर्दन किये हुए सूर्यावर्त के पत्तों के गन्ध को सूंघ कर वृश्चिक डंक से पीड़ित व्यक्ति क्षण भर में निर्विष हो जाता है। (बंगसेन, विष चि.)।

योनि दाह में सूर्यकान्त (हुरहुर) का प्रयोग- सूर्यकान्त (हुरहुर) के मूल का चूर्ण चावल के धोअन के साथ योनिशूल में पान करे। (भावप्रकाश, स्त्रीरोग चि.)।

Chemical Composition—These plants when crushed in the fresh state develop an acrid volatile oil having the properties of garlic or mustard oil. The deied plants exhausted by alcohol yield a deep green tincture which on evaporation, leaves a brown soft resin which has no irritant action when applied to the skin. (Dymock, Vol, I, p. 133). **Actions and uses—***Ainslie* says—that the small numerous warmish kidney formed black seeds, as well as leaves of this plant, are administered in decoction in convulsive affection and typhus fever, to the quantity of half a tea-cupfull twice daily. In the French colonies and in the Nilgirs it is used as sudorific. In Pudukota the leaves are applied to boils to prevent the formation of pus. *Whight* says that the bruised leaves are rubefacient and vesicant. (Dymock, Vol. I, p. 132). Carminative, pungent, anthelmintic and antiseptic; seeds are used in round worms to expel flatus in children : also in fever and diarrhoea. The juice of the leaves is rubefacient like mustard, mixed with salt it is dropped into the ear in otorrhoea. An infusion of the seeds is used for unhealthly ulcers and to kill maggots. (R.N. Khory, Vol. II, p. 61).

सोमराजी

Serratula Anthelmintica

वाकुची, अवल्गुजा, चन्द्रलेखा–*Serratula Anthelmintica, Vernonia Anthelmintica, Eng.—Purple Fleabane.*

अन्वर्थसंज्ञा–"कृष्णफला", "पूतिफला", "कुष्ठनाशनी", "कान्तिदा"। वाकुची शीतला तिक्ता श्लेष्मकुष्ठकृमीन् जयेत्। रसायनी च कुष्ठघ्नी मेधाग्नि-बलवर्द्धनी॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ वाकुची कटुतिक्तोष्णा कृमिकुष्ठकफापहा। त्वग्दोषविषकण्डूतिखर्जुप्रशमनी च सा॥ राजनिघण्टुः॥ वाकुची मधुरा तिक्ता कटुपाका रसायनी। विष्टम्भहृत् हिमा रुच्या सरा श्लेष्मास्त्रपित्तनुत्॥ 'तत्फलं' पित्तलं कुष्ठकफानिलहरं कटु। केश्यं त्वच्यं वमिश्वासकासशोथाऽमपाण्डुनुत्॥ भावप्रकाशः॥ अवल्गुजो वातकफपित्तत्वग्दोषनाशनः। राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः–प्रवाहिकायाम् सोमराजीशाकम्–"आमे परिणते यस्तु विबन्धमतिसार्य्यते। ससूलपिच्छमाल्पल्पं बहुशः सप्रवाहिकम्॥ ...तं... शाकेनावल्गुजस्य वा। दधिदाड़िमसिद्धेन बहुस्नेहेन भोजयेत्॥" (चि. १० अ.)। चरकः। (१) श्वित्रे सोमराजी– "कुडवोऽवल्गुजबीजाद्धरिताल-चतुर्थभागसम्मिश्रः। गवां मूत्रेण पिष्टः सवर्णकरणं श्वित्रे॥" (चि. २० अ.)। (२) कुष्ठे सोमराजी–"तीव्रेण कुष्ठेन परीतमूर्त्तिर्यः सोमराजीं नियमेन खादेत्। संवत्सरं कृष्णतिलद्वितीयां स सोमराजीं वपुषातिशेते।" (चि. ३९ अ.)। वाग्भटः। (१) श्वित्रे वाकुची–"खदिरामलककषायं वाकुचीबीजान्वितं पिबेन्नित्यम्। शङ्खेन्दु-कुन्दधवलं श्वित्रं हन्तीह तच्छीघ्रम्॥" (कुष्ठ-चि.)। (२) कृमिदन्तरुजि वाकुची–"बीजपूरकमूलस्य वाकुचीनां तथैव च। भागाभ्यान्तु समं कृत्वा पिष्ट्वा वर्त्तिन्तु कारयेत्॥ एषा रदस्थवर्त्तिस्तु दन्तेर्दन्तैर्निपीडयेत्। सद्योऽवस्थितमात्र तु कृमिदन्तरुजापहा॥" (मुखरोग-चि.)। (३) वाधिर्ये वाकुची–"मुसलीवाकुचीचूर्णं खादेद्बाधिर्यशान्तये।" (कर्णरोग-चि.)। वङ्गसेनः॥

वाकुची, अवल्गुजा, चन्द्रलेखा (Serratula Anthelmintica, Vernonia Anthelmintica, Eng.—Purple Fleabane.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- अवल्गुजा, वाकुची, सोमराजी, सुपर्णिक, शशिलेखा, कृष्णफला, पूतफली, कुष्ठघ्नी। हि.- वाकुची, वकुची, वायची। बं.- सोम राज, हाकुच। म.- वावची, वांवचा, वावजी। गु.- वावची। द्रा.- कापोह अर्रिश। फा.- अवल्गुन स्याह सफर। मला.- कौरवोल। द.- वावचन। अं.- इस्क्यूलिन्ट फ्लेकुर्टिया (Esqulent Flacourtia) ले.- सोरेलिया कोरिलिफोलिये (Psoralea Corylifolia)।

अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा- कृष्णफला, पूतिफला, कुष्ठनाशिनी, कान्तिदाह।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- वाकुची शीतल तथा तिक्त रस है और कफ विकार, कुष्ठ रोग तथा क्रिमि रोग को दूर करती है। यह रसायन है, कुष्ठ नाशक है तथा मेधा एवं जाठराग्नि वर्द्धक है।

राजनिघण्टु के अनुसार- वाकुची कटुरस, तिक्तरस तथा उष्ण है और क्रिमिरोग, कुष्ठ रोग तथा कफ रोग का नाश करती है। यह त्वचा विकार, विष विकार, कण्डू तथा खुजली को शान्त करती है।

भावप्रकाश के अनुसार- वाकुची मधुर, तिक्त, पाक में कटु तथा रसायन है। यह विष्टम्भ को दूर करनेवाली है, शीतल है, रुचिकारक है, सारक है तथा कफ, रक्त एवं पित्त विकार को दूर करनेवाली है। वाकुची का फल पित्तकारक, कुष्ठ, कफ एवं वात रोगहर तथा कटुरस है। यह केश के लिए हितकर है तथा वमन, श्वास, कास, शोथ, आम विकार और पाण्डु रोग को दूर करती है।

राजवल्लभ के अनुसार- अवल्गुज (वाकुची) वात, कफ, पित्त विकार तथा त्वचा के रोगों का नाश करनेवाला है।

वैद्यक शास्त्र में सोमराजी (वाकुची) का प्रयोग-

प्रवाहिका में सोमराजी शाक का प्रयोग- आम के परिणत हो जाने पर जो विबन्ध अतिसार के रूप में निकलने लगता है उसमें शूल युक्त थोड़ा-थोड़ा अनेक बार प्रवाहित करता है। उसको वाकुची का शाक दही तथा अनार के रस के साथ साधित तथा अधिक स्नेह मिलाकर खिलाये। (चरक, चि.अ.१०)

(१) श्वित्र में सोमराजी का प्रयोग- अवल्गुज बीज का चूर्ण ४ भाग तथा हरिताल १ भाग मिलाकर एक कुडव ले और गोमूत्र में पीसकर श्वित्र में लेप करने से मात्र सवर्णता को प्राप्त होता है। (वाग्भट, चि. अ.२०)। **(२) कुष्ठ रोग में सोमराजी का प्रयोग-** भयंकर कुष्ठ रोग से पीड़ित जो व्यक्ति नियमपूर्वक वाकुची का काला तिल के साथ सेवन करता है वह सोमराजी शरीर को प्राप्त करता है। (वाग्भट, चि.अ.३९)।

(१) श्वित्र रोग में वाकुची का प्रयोग- खैर तथा आंवला का कषाय वाकुची बीज को मिलाकर प्रतिदिन पान करे। इसके सेवन से शंख, चन्द्रमा तथा कुन्द के समान सफेद शरीरवाला श्वित्र कुष्ठ शीघ्र ही नाश होता है। (बंगसेन, कुष्ठ चि.)। **(२) क्रिमिदन्त पीड़ा में वाकुची का प्रयोग-** बीजपूरक (विजोरा निम्बु) तथा वाकुची का मूल समान भाग लेकर तथा पीसकर वर्ति बनावे। यह वर्ति दांत में रखकर दांत से दबावे। यह कुछ समय स्थित रहने मात्र से क्रिमिदन्त की पीड़ा दूर होती है। (बंगसेन, मुख रोग चि.)। **(३) वाधीर्य में वाकुची का प्रयोग-** मुसली तथा वाकुची का चूर्ण वाधीर्य रोग की शान्ति के लिए खाय (बंगसेन, कर्ण रोग चि.)।

Constitutents—The seed contains resins, an alkaloid known as vermonine, and oil and ash 7 p.c. free from manganese. According to the Pharmacopaeia of India, the ordinary dose of the bruished seed as an anthelmintic, administered in electuary with honey is about 1½ drachm, given in two equal doses at the interval of a few hours, and followed by an aperient; the worms are generally expelled in a lifeless state. Dr. A.E. Ross speaks favourably of an infusion of the powdered seeds (in doses of from to 30 grains) as a good, a certain anthelmintic for ascarides. Dr. Gibson, as the result of personal experience regards them as a valuable tonic and stomachic in doses of 20 to 25 grains; diuretic properties are also assigned to them. (Dymock, Vol. II, p. 242).

हरीतकी

Terminalia Chebula

हरीतकी, अभया, पथ्या, शिवा–*Terminalia Chebula.*

कषायाम्ला च कटुका तिक्ता मधुरसान्विता। इति पञ्चरसा पथ्या लवणेन विवर्जिता॥ अम्लभावाज्जयेद्वातं पित्तं मधुरतिक्तकात्। कफं रूक्षकषायत्वात् त्रिदोषघ्नी ततोऽभया॥ प्रपथ्या लेखनी लघ्वी मेध्या चक्षुर्हिता सदा। मेहकुष्ठ-व्रणच्छर्दिशोफवातास्त्रकृच्छ्रजित्॥ वातानुलोमनी हृद्या सेन्द्रियानां प्रसादनी। सन्तर्पणकृतान् रोगान् प्रायो हन्ति हरीतकी॥ तृष्णायां मुखशोषे च हनुस्तम्भे मलग्रहे। नवज्वरे तथाक्षीणे गर्भिण्यां न प्रशस्यते॥ हरस्य भवने जाता हरीता च स्वभावतः। सर्वरोगांश्च हरते तेन ख्याता हरीतकी॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ हरीतकी पञ्चरसा च रेचनी कोष्ठामयघ्नी लवणेन वर्जिता। रसायनी नेत्ररुजापहारिणी त्वगामयघ्नी किल योगवाहिनी॥ बीजास्थि तिक्ता मधुरा तदन्तस्त्वग्भागतः सा कटुरुष्णवीर्या। मांसांशतश्चाम्लकषाययुक्ता हरीतकी पञ्चरसा स्मृतेयम्॥ हरीतक्यमृतोत्पन्ना सप्तभेदैरुदीरिता। तस्या नामानि वर्णाश्च वक्ष्याम्यथ यथाक्रमम्॥ विजया रोहिणी चैव पूतना चामृताऽभया। जीवन्ती चेतनी चेति नाम्ना सप्तविधा मता॥ अलावुनाभि'र्विजया' सुवृत्ता 'रोहिणी' मता। स्वल्प त्वक् 'पूतना' ज्ञेया स्थूलमांसा'ऽमृता' स्मृता॥ पञ्चास्त्रा 'चाभया' ज्ञेया 'जीवन्ती' स्वर्णवर्णभाक्। त्र्यस्त्रा तु 'चेतकी' विद्यादित्यासां रूप-लक्षणम्॥ विन्ध्याद्रौ 'विजया' हिमाचलभवा स्या'च्चेतकी' 'पूतना'। सिन्ध्यौ स्यादथ 'रोहिणी' तु विजया जाता प्रतिस्थानके। चम्पाया'ममृता''ऽभया' च जनिता देशे सुराष्ट्राह्वये। 'जीवन्ती' च हरीतकी निगदिता सप्तप्रभेदा बुधैः॥ सर्वप्रयोगे विजया च रोहिणी क्षतेषु लेपेषु च पूतनोदिता। विरेचने स्याद मृता गुणाधिका जीवन्तिकास्यादिह जीर्णरोगजित्॥ स्याच्चेतकी सर्वगदा पहारिका नेत्रामयघ्नीमभयां वदन्ति। इत्थं यथायोगमियं प्रयोजिता ज्ञेया गुणाढ्या न कदाचिदन्यथा॥ चेतकी च धृता हस्ते यावत्तिष्ठति देहिनः। तावद्विरिच्यते वेगात् तत्प्रभावान्न संशयः॥ सप्तानामपि जातीनां प्रधाना विजया स्मृता। सुखप्रयोगसुलभा सर्वव्याधिषु शस्यते॥ क्षिप्ताऽप्सु निमज्जति या सा ज्ञेया गुणवती भिषग्वर्य्यैः। यस्या यस्या भूयो निमज्जनं सा गुणाढ्या स्यात्॥ हरेत् प्रसभं व्याधीन् भूयस्तरति यद्वपुः। हरीतकी तु सा प्रोक्ता तत्र कीर्दीप्ति वाचकः॥ हरीतकी तु तृष्णायां हनुस्तम्भे गलग्रहे। शोषे नवज्वरे जीर्णे गुर्विण्यां न प्रशस्यते॥ राजनिघण्टुः॥ विजया रोहिणी चैव पूतना चामृताभया। जीवन्ती चेतकी चेति

पथ्यायाः सप्तजातयः॥ अलावुवृत्ता विजया वृत्ता सा रोहिणी स्मृता। पूतनाऽस्थिमती सूक्ष्मा कथिता मांसलाऽमृता॥ पञ्चरेखाऽभया प्रोक्ता जीवन्ती स्वर्णवर्णिनी। चेतकी चासिता क्षुद्रा सप्तानामियमाकृतिः॥ विजया सर्वरोगेषु रोहिणी व्रणरोहिणी। प्रलेपे पूतना योज्या शोधनार्थेऽमृता हिता॥ अक्षिरोगेऽभया शस्ता जीवन्ती सर्वरोगहृत्। चूर्णार्थे चेतकी शस्ता यथायुक्तं प्रयोजयेत्॥ सप्तानामपि जातीनां प्रधाना विजया स्मृता। सुखप्रयोगसुलभा सर्वरोगेषु शस्यते॥ हरीतकी पञ्चरसा लवणा तुवरा परम्। रूक्षोष्णा दीपनी मेध्या स्वादुपाका रसायनी॥ चक्षुष्या लघुरायुष्या वृंहणी चानुलोमनी। श्वासकासप्रमेहार्शःकुष्ठशोथोदरकृमीन्॥ वैस्वर्य्यग्रहणीरोगविबद्धविषमज्वरान्। गुल्माऽऽध्मानव्रणच्छर्द्दि-हिक्काकण्डूहृदामयान्॥ कामलां शूलमानाहं प्लीहानञ्च यकृत्तथा। अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च मूत्राघातञ्च नाशयेत्॥ स्वादुतिक्तकषायत्वात् पित्तहृत् कफहृत्तु सा। कटुतिक्तकषायत्वादम्लात्वाद्वातहृच्छिवा॥ पित्तकृत् कटुकाम्लत्वाद्वातकृन्न कथं शिवा। पथ्याया मज्जनि स्वादुः स्नायावम्लो व्यवस्थितः॥ वृन्ते तिक्तस्त्वचि कटुरस्थि तु तुवरी रसः। नवा स्निग्धा घनावृत्ता गुर्वी क्षिप्ता च चाम्भसि॥ निमज्जेत् सा प्रशस्ता च कथितातिगुणप्रदा। नवादि-गुणयुक्तत्वं तथैकत्र द्विकर्षता॥ हरीतक्याः फले यत्र द्वयं तच्छ्रेष्ठमुच्यते। 'चर्विता' वर्द्धयत्यग्निं 'पेषिता' मलशोधिनी॥ 'स्विन्ना' सङ्ग्राहिणी पथ्या 'भृष्टा' प्रोक्ता त्रिदोषनुत्॥ उन्मीलिनी बुद्धिबलेन्द्रियाणा॥ निर्मूलिनी पित्तकफानिलानाम्। विसर्जिनी मूत्रशकृन्मलाना॥ हरीतकी स्यात् सह भोजनेन॥ अन्नपानकृतान् दोषान् वातपित्तकफोद्भवान्। हरीतकी हरत्याशु भुक्तस्योपरि योजिता॥ लवणेन कफं हन्ति पित्तं हन्ति सशर्करा। घृतेन वातजान् रोगान् सर्वरोगान् गुडान्विता॥ सिन्धूत्थशर्करा- शुण्ठीकणामधुगुडैः क्रमात्। वर्षादिष्वभया सेव्या रसायनगुणैषिणा॥ अध्वातिखिन्नो बलवर्जितश्च रूक्षः कृशो लङ्घनकर्षितश्च। पित्ताधिको गर्भवती च नारी विमुक्तरक्तस्त्वभयान्नखादेत्॥ भावप्रकाशः॥ जीवन्ती रोहिणी चैव विजया चाभयामृता। पूतना कालिका चेति पथ्या सप्तविधा मता॥ सुवर्णवर्णा जीवन्ती रोहिणी कपिलद्युतिः। अलावु वृन्ना विजया पञ्चांशा चाभया स्मृता॥ स्थूलमांसाऽमृता ज्ञेया पूतनाऽस्थिमती मता। त्र्यंशा च कालिकेत्येवं सप्तजातिः हरीतकी॥ स्नेहपानेषु सर्वेषु जीवन्ती च प्रशस्यते। रोहिणी क्षयरोगेषु विजया सर्वकर्मषु॥ पूतना लेपने ज्ञेया चामृता तु विरेचने। अभया नेत्ररोगेषु गन्धयुक्तेषु कालिका॥ ...तेभ्योऽभूदभया दिवाकरकरश्रेणीव दोषापहा। कालिन्दीव बलप्रमोदजननी गौरीव शूलिप्रिया। वह्नेर्द्योतकरी घृताहुतिरिव क्षीणीव नानारसा॥ वातघ्नी लवणैः पथ्या पित्तघ्नी मधुसंयुता। नागरेण कफं हन्ति सर्वदोषान् गुडान्विता॥ पथ्या पञ्चरसाऽऽयुष्या चक्षुष्यालवणा सरा। मेध्योष्णा दीपनी शोथदोषकुष्ठ-व्रणापहा॥ राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) रक्तार्शःसु हरीतकी–"सगुडामभयां वाथ प्राशयेत् पौर्वभक्तिकीम्" (चि. ९ अ.)। (२) उदररोगे हरीतकी–"हरीतकी सहस्रं वा" (चि. १८ अ.)। (३) पक्वातिसारे आमपाचनार्थम् हरीतकी–"पथ्या वा... उष्णवारिणा" (चि. १९ अ.)। (४) कफजे पाण्डौ हरीतकी–"कफ-पाण्डुस्तु गोमूत्रक्लिन्नयुक्तां हरीतकीम्" (चि. २० अ.)। (५) छर्द्यां हरीतकी– "...लिह्यान्मधुनाऽभयाञ्च" (चि. २३ अ.)। चरकः॥ (१) वातरक्ते हरीतकी–"सर्वेषु गुडहरीतकीं वा सेवेत" (चि. ५ अ.)। (२) अदृश्येषु अर्शःसु हरीतकी–"प्रातः प्रातर्गुडहरीतकी मासेवेत" (चि.

६ अ.)। (३) श्लैष्मिके श्लीपदे हरीतकी– "पिबेद्वाप्यभयाकल्कं मूत्रेणान्यतमेन वा" (चि. १९ अ.)। (४) गुल्मे हरीतकी– "सगुडां वा हरीतकी" (उ. ४२ अ.)। (५) हिक्कायां हरीतकी– "हरीतकीं कोष्णजलानुपानाम्" (उ. ५० अ.)। सुश्रुतः॥ (१) अर्शःसु गाढवर्च्चसां वर्च्चोऽनुलोमनार्थं हरीतकी– "गोमूत्राध्युषितामद्यात् सगुडां वा हरीतकीम्" (चि. ८ अ.)। (२) अश्मर्य्यां हरीतकी– "पिबेत् क्षीरं... हरीतक्यस्थिसिद्धं वा" (चि. ११ अ.)। (३) कण्ठरोगे हरीतकी– "हरीतकी-कषायो वा पेयो माक्षिकसुयंतः" (उ. २२ अ.)। (४) बलजननार्थम् हरीतकी– "हरीतकी सर्पिषि सम्प्रताप्य समश्नतस्तत् पिबतो घृतञ्च। भवेच्चिर-स्थायि बलं शरीरे सकृत् कृतं साधु यथा कृतज्ञे॥" (उ. ३९ अ.)। वाग्भटः॥ (१) रक्तपित्ते हरीतकी– "आटरुषकरसेन सप्तधा भाविता पुनरेव शोषिता। पिप्पलीमधुसमन्विताऽभया रक्तपित्तमतिदुर्जयं जयेत्।" (चि. ११ अ.)। (२) मदात्यये हरीतकी– "पथ्याक्वाथेन संयुक्तं पयःपानं मदात्यये" (चि. १७ अ.)। हारीतः॥ (१) वातरक्ते हरीतकी– "तिस्त्रोऽथवा पञ्च गुड़ेन पथ्या जग्ध्वा पिबेच्छिन्नरुहाकषायम्। तद्वातरक्तं शमयत्युदीर्ण- माजानुसम्भिन्नमपि ह्यवश्यम्॥" (वातरक्त-चि.)। (२) शोथे हरीतकी– "गुडेन वाभयातुल्या" (शोथ-चि.)। (३) वृद्धिरोगे हरीतकी– "गोमूत्रसिद्धां रुवुतैलभृष्टां हरीतकीं सैन्धवचूर्णयुक्ताम। खादेन्नरः कोष्णजलानुपानं निहन्ति वृद्धिं चिरजां प्रवृद्धाम्॥" (वृद्धिरोग-चि.)। (४) अशेषाक्षिरोगहरत्वे हरीतकी– "कार्यो हरीतकी तद्वद् घृतभृष्टो विडालकः" (नेत्ररोग-चि.)। चक्रदत्तः॥ (१) रुग्दाहनाम्नि सन्निपातज्वरे हरीतकी– "पथ्यां तैलघृतक्षौद्रैर्लिह्याद्दाहविनाशिनीम्" (ज्वर-चि.)। (२) आमेषु अजीर्णेषु हरीतकी– "गुडेन ...पथ्यां तृतीयाम्। आमेष्व जीर्णेषु गुदामयेषु वर्चोविबन्धेषु च नित्यमद्यात्॥" (अजीर्ण-चि.। (३) जातीफलमदनाशार्थ हरीतकी– "जातीफलमदं शीघ्र हन्ति पथ्या निषेविता" (मदात्यय-चि.)। (४) पित्तशूले हरीतकी– "सगुडां घृतसंयुक्ता भक्षयेद्वा हरीतकीम्।" शूल-चि.)। भावप्रकाशः॥ (१) सशूले अतीसारे हरीतकी– "अभया मधुसंयुक्ता पाचनी दीपनी मता। श्लेष्माणं रक्तपित्तञ्च हन्ति शूलातिसारनुत्।" (रक्तपित्त-चि.)। (२) चिप्पे हरीतकी– "स्वरसेन हरिद्रायाः पात्रे कृत्वाऽऽयसेऽभयाम्। पिष्ट्वा तज्जेन कल्केन लिम्पेच्चिप्यं पुनः पुनः॥" (क्षुद्ररोग- चि.)। वङ्गसेनः॥

हरीतकी, अभया, पथ्या, शिवा (Terminalia Chebula.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- हरीतकी, अभया, पथ्या, कायस्था, पूतना, अमृता। हि.- हर्रे, हर, हर्ड, हरड़, हड़। बं.- हरीत की गाछ, हरी, हर्त्तकी। म.- हरड़ा, बालहरडी। गु.- हरडे, हिमज। क.- अणिलेय, प्रशसे अनिलैकाय। उड़ि. हरिड़ा द्रा. - कलर। फा.- इलकेज अस्कर, हलैलेजर्द, हलैलाह। अ.- अहलोलज, अस्फर, एहलोलज, कावली, अहलोलज अस्कर। तै.- करक्काय, चरक चेट्टु। अं.- चेव्यूलिया, ब्लैक माडरोवेलन्स। ले.- टरमिनेलिया चेव्युला।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- हरीतकी कषाय, अम्ल, कटु, तिक्त तथा मधुर रसवाली है। यह लवण रस से रहित पाँच रसवाली हरीतकी है। अम्ल रस होने से वात को, मधुर रस तथा तिक्त रस होने से पित्त को,

रूक्ष तथा कषाय होने से कफ रोग को जीत लेती है। इस प्रकार अभया त्रिदोष नाशक है। पथ्या लेखन, लघु, मेध्य, सरा, नेत्र के लिए हितकर है तथा प्रमेह, कुष्ठ रोग, व्रण, वमन, शोथ, वात रक्त तथा मूत्र कृच्छ्र को दूर करती है। यह वातानुलोमक है, हृद्य है, इन्द्रियों को प्रसन्न करनेवाली है, प्राय: संतर्पण करनेवाले रोगो का नाश करती है। तृष्णा, मुख शोथ, हनुस्तम्भ, गलग्रह, नवज्वर, क्षीण रोग तथा गर्भिणी के लिए यह प्रशस्त नहीं है। अर्थात् इन रोगों में हरीतकी का प्रयोग न करे। यह शंकर के घर में उत्पन्न हुई तथा स्वभाव से हरीत है और सभी रोगों को दूर करती है अत: इसको हरीतकी कहते हैं।

राजनिघण्टु के अनुसार- हरीतकी पांच रसवाली है, रेचन है, कोष्ठगत रोग का नाश करनेवाली है, लवण रस से रहित है। यह रसायन है और नेत्र रोग की पीड़ा को दूर करनेवाली है। यह त्वचा रोग का नाश करती है तथा योग वाही है। हरीतकी के बीज की अस्थि तिक्त रस तथा मधुर रस है। वह अन्दर के भाग से कटु रस तथा उष्ण वीर्य है। उसका मांसल अंश अम्ल तथा कषाय रस से युक्त है। हरीतकी पाँच रसवाली कही गयी है। हरीतकी अमृत से युक्त सात भेदवाली कही गयी है। उसके नाम तथा वर्णों को क्रमश: कहेंगे। विजया, रोहिणी पूतना, अमृता, अभया, जीवन्ती तथा चेतनी इन नामों से प्रसिद्ध हरीतकी के सात भेद हैं। विजया अलावू (कद्दु) के नाभि के समान होती है। विजया वृत्ताव्-र (गोलाकार) होती है, पूतना स्वल्प त्वक्वाली होती है, अमृता स्थूल मांसल होती है। अभया पांच रेखावाली होती है। जीवन्ती स्वर्ण वर्ण के समान होती है। चेतकी तीन रेखावाली होती है। इस प्रकार हरीतकी के रूप लक्षण हैं। विन्ध्य पर्वत के ऊपर विजया हरीतकी उत्पन्न होती है। हिमालय में चतेकी उत्पन्न होती है। सिन्ध में पूतना उत्पन्न होती है। रोहिणी विजया के स्थान में उत्पन्न होती है। चम्पा में अमृता उत्पन्न होती है। सुराष्ट्र में अभया, उत्पन्न होती है तथा जीवन्ती सौराष्ट्र में उत्पन्न होती है। इस प्रकार हरीतकी के सात भेद बताये गये हैं। सभी रोगों में विजया तथा रोहिणी का प्रयोग होता है। क्षत के लेप के लिए पूतना का प्रयोग होता है। विरेचन में अमृता अधिक गुणवाली है। जीवन्तिका जीर्ण रोग को दूर करनेवाली है। चेतकी सभी रोगों का नाश करनेवाली है तथा नेत्र रोग का अभया नाश करती है। इस प्रकार यथायोग औषधि का प्रयोग बताया गया है। ये सभी गुणों से युक्त होती हैं। यह अन्यथा कभी नहीं होती है। मनुष्य जब तक चेतकी नामक हरीत को हाथ में रक्खा रहता है तब तक अपने प्रभाव से वेग पूर्वक विरेचन होता रहता है इसमें सन्देह नहीं है। सभी सात प्रकार की हरीतकी की जातियों में विजया प्रधान कही गयी है। इसका सुखपूर्वक प्रयोग सुलभ है और यह सभी प्रकार के रोगों में प्रशस्त है। जो हरीतकी जल में छोड़ देने से डूब जाती है वह गुणवान् कही गयी है। जो बार-बार डूबती है वह अधिक गुणवाली है। जो हरीतकी बार-बार डूबती है वह बलपूर्वक रोगों को दूर करती है। हरीतकी उसे कहते हैं जो कि दीप्ति वाचक है। हरीतकी प्यास, हनुस्तम्भ, गलग्रह, शोष (क्षय) रोग, नवीन ज्वर, जीर्ण ज्वर तथा गर्भिणी के लिए प्रशस्त नहीं है।

भावप्रकाश के अनुसार- विजया, रोहिणी, पूतना, अमृता, अभया, जीवन्ती, चेतकी- ये हरीतकी की सात जातियाँ हैं। कद्दु के समान वृताकार विजया होती है, वृत्ताकार रोहिणी होती है। पूतना स्वल्प अस्थिवाली होती है। अमृता मांसल होती है। अभया पाँच रेखावाली होती है। जीवन्ती स्वर्ण वर्ण की होती है। चेतक काली तथा छोटी होती है। यह सात प्रकार का हरीतकी की आकृति है। विजया का प्रयोग सभी रोगों में होता है। रोहिणी व्रण का रोपण करनेवाली है, पूतना लेप के लिए प्रशस्त है। अमृता शोधन में हितकर है। नेत्ररोग में अभया प्रशस्त है और जीवन्ती सभी रोगों को दूर करती है। चूर्ण के लिए चेतकी प्रशस्त है। यथायुक्त इसका प्रयोग करें। सात जातियों में विजया प्रधान है; क्योंकि सभी रोगों में सुखपूर्वक प्रयोग करना योग है तथा सुलभ है। लवण रस

को छोड़कर हरीतकी पाँच रसवाली होती है तथा उत्तम कषाय रसवाली होती है। यह रूक्ष, उष्ण, जाठराग्नि दीपक, मेध्य, पाक में स्वादिष्ट तथा रसायन है। यह नेत्र के लिए हितकर, लघु, आयुकारक, मांसवर्द्धक तथा अनुलोमन करनेवाली होती है। यह श्वास, कास, प्रमेह, अर्श, कुष्ठ, शोथ, उदर, क्रिमि, विस्वरता, ग्रहणी रोग, विबन्ध, विषम ज्वर, गुल्म रोग, आध्मान, व्रण, वमन, हिक्का, कण्डू तथा हृदय रोग और कामला रोग, शूल, आनाह, प्लीहा रोग, यकृद् रोग, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र एवं मूत्राघात का नाश करती है। हरीतकी स्वादु, तिक्त तथा कषाय रस होने से पित्त को दूर करती है, कटु, तिक्त, कषाय होने से कफ को दूर करती है और अम्ल रस होने से वह रोग को दूर करती है। हरीतकी कटु तथा अम्ल रस होने से पित्तकारक है। वह वातकारक नहीं होती है। पथ्या की मज्जा में स्वादु रस है, स्नायु में अम्ल रस है, वृन्त में तिक्त रस है, त्वचा में कटु रस है तथा अस्थि में कषाय रस है। जो नवीन, घन, स्निग्ध, वृत्ताकार तथा भारी है, जल में छोड़ने पर डूब जाती है वह हरीतकी प्रशस्त है तथा अधिक गुणवाली है। नवीन आदि गुण से युक्त एकत्र दो कर्ष की मात्रा में हरीतकी के फल में जहाँ दोनों होते हैं वह श्रेष्ठ है। हरीतकी चबाने से जाठराग्नि को बढ़ाती है, पीसकर खाने से मल शोधन करती है, पकाने पर ग्राही होती है तथा भूनी हुई हरीतकी तीनों दोषों को दूर करती है। यह हरीतकी भोजन के साथ प्रयोग से बल, बुद्धि तथा इन्द्रियों के बल को बढ़ानेवाली है, पित्त, कफ तथा वात राग को निर्मूल करनेवाली है, मूत्र, विष्ठा तथा मल को निकालनेवाली है। हरीतकी खाने के बाद प्रयोग करने पर वात, पित्त कफ जन्य अन्न पान कृत दोषों का शीघ्र ही नाश करती है। हरीतकी लवण के साथ खाने से कफ का नाश करती है, शक्कर के साथ खाने से पित्त का नाश करती है, घृत के साथ खाने से वात रोग को नष्ट करती है तथा गुड़ के साथ खाने से सभी रोगों को नष्ट करती है। सेन्धा नमक, शक्कर, सोंठ, पीपर, मधु तथा गुड़ के साथ वर्षा आदि ऋतुवो में रसायन गुण को चाहनेवालों को सेवन करना चाहिए। अर्थात् वर्षा ऋतु में सेन्धा नमक के साथ, शरद् ऋतु में शक्कर के साथ, हेमन्त ऋतु में सोंठ के साथ, शिशिर ऋतु में पीपर के साथ, वसन्त ऋतु में मधु के साथ तथा ग्रीष्म ऋतु में गुड़ के साथ हरीतकी का प्रयोग करे। मार्ग गमन से अति खिन्न, बलरहित, रूक्ष प्रकृतिवाला, कृश, उपवास करने से दुर्बल व्यक्ति, पित्त प्रकृतिवाला, गर्भवती स्त्री तथा रक्तमोक्षण कराया हुआ व्यक्ति अभया (हरे) को न खाय।

राजवल्लभ के अनुसार- हरीतकी सात प्रकार की होती है। जीवन्ती, रोहिणी, विजया, अभया, अमृता, पूतना तथा कालिका। जीवन्ती स्वर्ण वर्ण की होती है। रोहिणी कपिल वर्ण की होती है। विजया कद्दु के वृन्त के आकार की गोला होती है। अभया पाँच रेखावाली होती है। अमृता स्थूल मांसल होती है। पूतना अस्थिवाली होती है। कालिका नामक हर्रे तीन रेखावाली होती है। इस प्रकार हरीतकी की सात जातियाँ होती हैं। सभी प्रकार के स्नेह पान में जीवन्ती प्रशस्त है। क्षयरोग में रोहिणी प्रशस्त है। सभी कार्यों में विजया प्रशस्त है। लेप के लिए पूतना प्रशस्त है तथा गन्ध के योग में कालिका प्रशस्त है। अभया उत्तम है। वह सूर्य के किरण समूह की तरह दोषों का नाश करती है, कालिन्दी की तरह बल तथा प्रमोद (प्रसन्नता) देनेवाली है, गौरी के समान शंकर की प्रिया है, अग्नि की द्युति को बढ़ाने वाली है, घृत में डाली हुई आहुति के समान है और पृथ्वी के अनेक रसवाली है। पथ्या (हर्रे) लवण के साथ सेवन करने से वात रोग का नाश करती है, मधु के साथ पित्त का नाश करती है, सोंठ के साथ कफ का नाश करती है और गुड़ के साथ सेवन करने से सभी दोषों का नाश करती है। पथ्या पाँच रसवाली है, आयुकारक है, नेत्र के लिए हितकर है, लवण रस से रहित है तथा सारक है, मेध्य है, उष्ण है, जाठराग्नि दीपक है और शोथ, त्रिदोष, कुष्ठ रोग तथा व्रण का नाश करनेवाली है।

वैद्यक शास्त्र में अभया का प्रयोग-

(१) रक्तार्श में हरीतकी का प्रयोग- भोजन के पूर्व अर्श रोग में गुड़ के साथ अभया को खाय। (च.

चि.अ.९)। (२) **उदर रोग में हरीतकी का प्रयोग**- उदर रोग में एक हजार हरीतकी के वर्द्धमान योग की तरह सेवन करे। (च.चि.अ.१८)। (३) **पक्वातिसार में आम पाचन के लिए हरीतकी का प्रयोग**- पक्वातिसार में आमपाचन के लिए गरम जल से हरीतकी का प्रयोग करे। (च.चि.अ.१९)। (४) **कफज पाण्डु रोग में हरितकी का प्रयोग**- पाण्डु रोग में गोमूत्र से गीला की हुई हरीतकी खिलाये। (च.चि.अ.२०)। (५) **छर्दि में हरीतकी का प्रयोग**- वमन रोग में हरीतकी को मधु के साथ चाटे। (च.चि.अ.२३)।

(१) **वात रक्त में हरीतकी का प्रयोग**- सभी प्रकार के वात रक्त में गुड़ के साथ हरीतकी का सेवन करे। (सु.चि.अ.५)। (२) **अदृश्य अर्श में हरीतकी का प्रयोग**- अर्श रोग में गुड़ के साथ हरीतकी का प्रतिदिन प्रातः काल सेवन करे। (सु.चि.अ.६)। (३) **श्लैष्मिक श्लीपद में हरीतकी का प्रयोग**- कफज श्लीपद रोग में अभया के कल्क का गोमूत्र के साथ या अन्य द्रव पदार्थ के साथ सेवन करे। (सु.चि.अ.१९)। (४) **गुल्म रोग में हरीतकी का प्रयोग**- गुल्म रोग में हरीतकी को गुड़ के साथ खाय। (सु.उ.अ.४२)। (५) **हिक्का रोग में हरीतकी का प्रयोग**- हिक्का रोग में हरीतकी का गरम जल के अनुपान से सेवन करे। (सु.उ.अ.५०)।

(१) **अर्श रोग में मल के गाढ़ा होने पर मल का अनुलोमन करने के लिए हरीतकी का प्रयोग**- गोमूत्र में भिगोयी हुई काली हरीतकी का गुड़ के साथ गाँठ मलवाले अर्श रोग में मल का अनुलोमन करने के लिए सेवन करे। (वाग्भट, चि.अ.८)। (२) **अश्मरी रोग में हरीतकी का प्रयोग**- हरीतकी के गठली के साथ सिद्ध दूध का अश्मरी रोग में पान करे। (वाग्भट, चि.अ.११)। (३) **कण्ठ रोग में हरीतकी का प्रयोग**- कण्ठरोग में हरीतकी के कषाय का मधु मिलाकर पान करे। (वाग्भट, उ.अ.२२)। (४) **बल बढ़ाने के लिए हरीतकी का प्रयोग**- हरीतकी को घी में तपाकर खाने से तथा शेष घृत को पीने से शरीर में चिरस्थायी बल होता है जैसे कृतज्ञों में एक बार का किया हुआ उपकार चिरस्थायी होता है। (वाग्भट, उ.अ.३९)।

(१) **रक्तपित्त में हरीतकी का प्रयोग**- हरीतकी को अडूसा के रस में सात बार भावित कर तथा सुखाकर उसका चूर्ण बना ले और उसमें पीपर चूर्ण तथा शहद मिलाकर खाय। यह अतिदुर्जय रक्त पित्त को जीत लेती है। (हारीत संहिता, चि.अ.११)। (२) **मदात्यय में हरीतकी का प्रयोग**- मदात्यय रोग में पथ्या के क्वाथ में दूध मिलाकर पान करे। (हा.चि.अ.१७)।

(१) **वातरक्त में हरीतकी का प्रयोग**- तीन हरीतकी या पाँच हरीतकी गुड़ के साथ खाकर गुडूची का कषाय पान करे। यह भयंकर जानु पर्यन्त सभी रक्त पित्त को शान्त करती है। (चक्र.वातरक्त चि.)। (२) **शोथ में हरीतकी का प्रयोग**- शोथ में हर्रे को बराबर गुड़ मिलाकर खाय। (चक्र. शोथ चि.)। (३) **वृद्धि रोग में हरीतकी का प्रयोग**- हरीतकी को गाय के मूत्र में पकाकर तथा एरण्ड तैल में भूनकर और सेन्धा नमक मिलाकर जो मनुष्य गरम जल के अनुपान से खाता है वह पुराने बढ़े हुए वृद्धि रोग का नाश करता है। (चक्र.वृद्धि रोग चि.)। (४) **सम्पूर्ण नेत्र रोगों को दूर करने के लिए हरीतकी का प्रयोग**- हरीतकी को घी में भूनकर नेत्र के ऊपर विडालक (लेप) दे। यह सम्पूर्ण नेत्र रोग का नाश करता है। (चक्र, नेत्ररोग चि.)।

(१) **रुग्दाह नामक सन्निपात ज्वर में हरीतकी का प्रयोग**- हरीतकी के चूर्ण को तैल, घृत तथा मधु के साथ या तैल, घृत में हरीतकी भूनकर उसका चूर्ण बनाकर मधु के साथ रुग्दाह युक्त सन्निपात ज्वर में चाटे। (भावप्रकाश, ज्वर चि.)। (२) **आमाजीर्ण में हरीतकी का प्रयोग**- आमाजीर्ण रोग तथा गुदा के रोग में गुड़ के साथ हर्रे को मल विबन्ध में प्रतिदिन खाय। (भावप्रकाश, अजीर्ण चि.)। (३) **जातीफल के मद का नाश करने के लिए हरीतकी का प्रयोग**- हर्रे प्रतिदिन विधिवत सेवन करने से जातीफल के मद का

शीघ्र ही नाश करती है। (भावप्रकाश, मदात्यय चि.)। (४) **पित्तशूल में हरीतकी का प्रयोग**- पैतिक शूल में घृत तथा गुड़ मिलाकर हरीतकी का भक्षण करे। (भावप्रकाश, शूल चि.)।

(१) **शूलयुक्त अतिसार में हरीतकी का प्रयोग**- मधु के साथ हरीतकी खाने से पाचक तथा जाठराग्नि दीपक होती है। यह कफ विकार तथा रक्त पित्त का नाश करती है तथा शूल एवं अतिसार को दूर करती है। (बंगसेन, रक्तपित्त चि.)। (२) **चिप्प रोग में हरीतकी का प्रयोग**- अभया को लोहे के पात्र में हरिद्रा के रस में रखकर तथा उसी जल से पीसकर उस कल्क से चिप्प रोग के ऊपर बार-बार लेप करे। (बंगसेन, क्षुद्ररोग चि.)।

Constituents—Myrobalans contain astringent principles—tannic acid (45 p.c.) and gallic acid, mucilage, a brownish yellow colouring matter, Chebulic myrobalans also contain an organic acid named chebulinic acid, which, when heated in water, splits up into tannic and galic acids. **Actions and uses**—Purgative astringent and alterative. The ripe fruits are generally purgative and the unripe ones astringent and aperient. (R.N. Khory, Vol, II. p. 260). **Ainslie** notices their use as an application to aphthoe. In the Pharmacopoea of India. Dr. Warning mentions his having found six of the mature fruit an officient and safe purgative producing four or five copious stools unattended by griping nausea or other ill effects; probably those used by him were not of the largest kind. Twining (Diseases of Bengal, Vol. I, p. 407) speaks very favourably of the immature fruit (Halileh-i-Zangi) as a tonic and aperient in enlargements of the abdominal Viscera. We found them a useful medicine in diarrhoea and dysentery, given in doses of a dramch twice a day. Recently, M.P. Apery has brought to the notice of the profession in Europe the value of these black myrobalans in desentry, cholearic diarrhoea and chronic diarrhoea, he administers them in pills of 25 centigrams each, the dose being from 4 to 12 pills or even more in the 24 hours. (Dymock, Vol. II, p. 3).

हरिद्राचतुष्टयम्

Curcuma Longa

हरिद्रा, रजनी–*Curcuma Longa.* **कर्पूरहरिद्रा**–*Curcuma Aromatica.* **आम्रगन्धिहरिद्रा**– *C. Amada.* **वनहरिद्रा।**

अन्वर्थसंज्ञा–"कृमिघ्नी", "योषित्प्रिया", वर्णविधायिनी"। हरिद्रा स्वरसे तिक्ता रूक्षोष्णा विषकुष्ठनुत्। मेहकण्डूव्रणान् हति देहवर्णविधायिनी॥ विशोधनी कृमिहरा पीनसारुचिनाशनी॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ हरिद्रा कटु-तिक्तोष्णा कफवातास्त्रकुष्ठनुत्। मेहकण्डूव्रणान् हन्ति देहवर्णविधायिनी॥ राजनिघण्टुः॥ हरिद्रा कटुका तिक्ता रूक्षोष्णा कफपित्तनुत्। वर्ण्या त्वग्दोष-मेहास्त्रशोथपाण्डुव्रणापहा॥ 'अरण्यहलदीकन्दः' कुष्ठवातास्त्रनाशनः॥ आम्रगन्धिहरिद्रा या सा शीता वातला मता। पित्तहृन्मधुरा तिक्ता सर्वकण्डूविनाशनी॥ भावप्रकाशः॥ हरिद्रा कफपित्तघ्नी कण्डूत्वग्दोषनाशिनी। पाण्डु-शोथापची चैव मेहकुष्ठव्रणापहा॥ राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः–प्रमेहे हरिद्रा–"क्षौद्रेण युक्तामथवा हरिद्रां पिबेद्र सेनामलकीफलानाम्" (चि. ६ अ.)। चरकः॥ कुष्ठे हरिद्रा–"पीत्वा मासं वा पलांशां हरिद्रां मूत्रेणान्तं पापरोगस्य गच्छेत्"

(चि. ९ अ.)। सुश्रुतः॥ कफोद्भवायां तृष्णायाम् हरिद्रा–"जलं पिबेद्रजन्या वा सिद्धं सक्षौद्रशर्करम्" (चि. ६ अ.)। वाग्भटः॥ श्लीपदे हरिद्रा–"रजनीं गुडसंयुक्तां गोमूत्रेण पिबेन्नरः।" (श्लीपद-चि.)। चक्रदत्तः॥ मेढ्रशर्करायां रजनी–"यः पिबेद्रजनीं सम्यक् सगुडां तूषवारिणा। तस्याशु चिररूढापि यात्यस्तं मेढ्रशर्करा॥" (अश्मरी-चि.)। वङ्गसेनः॥

हरिद्रा, रजनी (Curcuma Longa.), कर्पूरहरिद्रा (Curcuma Aromatica.), आम्रगन्धिहरिद्रा (C. Amada.), वनहरिद्रा।

विविध भाषाओं में नाम-

सं.– हरिद्रा, काञ्चनी, पीता, निशाख्या, क्रिमिघ्ना, हलदी, योषित्प्रिया, हट्टविलासिनी। हि.– हलदी, हर्द, हल्दी। बं.– हरिद्रा, हलुर, हलुद। म.– हलादा। गु.– हलद, हलदर। क.– आरिसिन, अर्शिना। ते.– पसुपु। द्रा.– हलद मञ्जल। मला.– मञ्जल। मरिनलु। फा.– जरद चोव। अ.– अरु कुस्कुकर। अं.– टर्मेरिक (Termeric)। ले.– कर्क्यूमा लोंग (Curcuma longa)।

अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा– क्रिमिघ्नी, योषित्प्रिया, वर्णविधायिनी।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- हरिद्रा स्वरस में तिक्त, रूक्ष तथा उष्ण है और विष विकार तथा कुष्ठ रोग का नाश करती है। यह प्रमेह, कण्डू तथा व्रण का नाश करती है तथा देह के वर्ण को बनाती है। यह शोधन करनेवाली है, क्रिमिहर है, पीनसा तथा अरुचि का नाश करती है।

राजनिघण्टु के अनुसार- हरिद्रा कटु तथा तिक्त रस, रूक्ष एवं उष्ण है और कफ विकार, वात विकार, रक्त विकार तथा कुष्ठ का नाश करती है। यह प्रमेह, कण्डु तथा व्रण का नाश करती है और देह के वर्ण को निखारती है।

भावप्रकाश के अनुसार- हरिद्रा कटुरस, तिक्तरस तथा उष्ण है और वात पित्त को दूर करती है। यह वर्णकारक है तथा त्वचा विकार प्रमेह, रक्त विकार, शोथ, पाण्डु रोग तथा व्रण को नष्ट करती है। वन हल्दी का कन्द कुष्ठ रोग, वात रोग तथा रक्त विकार का नाश करता है। जो आम्र गन्धि हरिद्रा है वह शीतल तथा वातकारक है। वह पित्त को दूर करती है, मधुर है, तिक्त रस है तथा सभी प्रकार के कण्डू का नाश करनेवाली है।

राजवल्लभ के अनुसार- हरिद्रा कफ-पित्त नाशक है, कण्डू तथा त्वचा दोष का नाश करती है, पाण्डु रोग, शोथ, अपची, प्रमेह, कुष्ठ रोग तथा व्रण का नाश करती है।

वैद्यक शास्त्र में हरिद्रा का प्रयोग-

प्रमेह में मधु के साथ मिलाकर हलदी का चूर्ण आँवला के रस के साथ पान करे। (च.चि.अ.६)।

कुष्ठ रोग में हरिद्रा का प्रयोग- हरिद्रा का एक पल की मात्रा में गोमूत्र के साथ एक मास पान करने से पाप रोग (कुष्ठ रोग) का नाश होता है। (सु.चि.अ.९)।

कफोद्भव तृष्णा में हरिद्रा का प्रयोग- हल्दी के साथ सिद्ध जल का मधु तथा शक्कर के साथ कफजन्य तृष्णा में पान करे। (वाग्भट, चि.अ.६)।

श्लीपद में हरिद्रा का प्रयोग- श्लीपद रोग में रोगी रजनी (हलदी) के चूर्ण का गुड़ मिलाकर गोमूत्र के साथ पान करे। (चक्र, श्लीपद चि.)।

मेढ्र शर्करा में रजनी (हलदी) का प्रयोग- जो व्यक्ति हलदी के चूर्ण का गुड़ मिलाकर भूसी के जल के साथ पान करता है उसकी अधिक समय की पुरानी मेढ्र शर्करा शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। (बंगसेन, अश्मरी चि.)।

Constituents of C. Longa—An essential oil 1. p.c.; resin, Curcumin, the yellow colouring matter; turmeric oil or turmerol. Turmeric oil is a thick yellow viscid oil. The curry powder owes its aromatic taste and smell to this oil. **Actions and uses**—Tonic and aromatic; given in jaundice and in chronic bronchitis. When mixed with Tila tela it is applied to the whole body to prevent skin eruptions. With kali chuno, the powder of it is applied to bruises, sprains, contused wounds, black eye with relief. A paste of it stops bleeding from leech-bites. A decoction of it is used as a cooling lotion in conjunctivitis. Boiled in milk and sweetened with sarkara, turmeric is a popular remedy for cold. Fumes of barning turmeric passed into the nostrils relieve coryza. Internally halada is given in affections of the liver and jaundice. On account of its yellow colour, cloth dipped in its paste is employed as an eye-shade. It is used in urinary diseases and with Sajikhara as an internal application to reduce indolent swelling. (R.N. Khory, Vol. II, p. 595).

हिङ्गु

The gum resin of Ferula Alliacea

हिङ्गु, वाह्लीकम्–*The gum resin of Ferula Alliacea and* **रामठम्** *that of Ferula Foetida.*

अन्वर्थसंज्ञा–उत्पत्तिबोधिका– "वाह्लीकम्", "रामठम्", (रामठदेशभव त्वादुपचारः)। गुणप्रकाशिका–"शूलद्विट्", "जन्तुघ्नम्", "उग्रवीर्यम्", "अगूढ-गन्धम्", "जरणम्", "सूपधूपनम्"। भेदः–वाह्लीकम् रामठञ्च। हिङ्गूष्णं कटुकं हृद्यं सरं वातकफौ कृमीन्। हन्ति गुल्मोदराध्मान-बन्धशूलहृदामयान्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ हृद्यं हिङ्गु कटूष्णञ्च कृमिवातकफापहम्। विबन्धाऽऽ-नाहशूलघ्नं चक्षुष्यं गुल्मनाशनम्॥ राजनिघण्टुः॥ हिङ्गूष्णं पाचनं रुच्यं तीक्ष्णं वातवलासकृत्। शूलगुल्मोदराऽऽनाहकृमिघ्नं पित्तवर्द्धनम्॥ स्त्रीपुष्पजननं बल्यं मूर्च्छापस्मारहृत् परम्॥ भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यवहारः–अग्रयग्रन्थे हिङ्गु–"हिङ्गुनिर्यासश्छेदनीयदीपनीयानुलोमिकवातकफप्रशम-नानाम्" (सू. २५ अ.)। चरकः॥ कृमिदन्ते हिङ्गु–"हिङ्गु सोष्णन्तु मतिमान् कृमिदन्तेषु दापयेत्" (दन्तरोग-चि.)। चक्रदत्तः॥

हिङ्गु, वाह्लीकम् (The gum resin of Ferula Alliacea and रामठम् that of Ferula Foetida.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- हिङ्गु, वाह्लीकम्। हि. हिङ्गु, हिंग। बं.- हिङ्गु, हिंग। अं.- Asafetida। ले.- Ferula Alliacea।

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा– उत्पत्तिबोधिका सं.- वाह्लीकम्, रामठम्- रामठदेशे में उत्पन्न होनने से रामठ कहा जाता है। गुणप्रकाशिका संज्ञा–शूलद्विट्, जन्तुघ्नम्, उग्रवीर्यप्, अगूढगन्धम्, जरणम्, सूपधूपनम्। भेद- वाह्लीक तथा रामठ।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- हींगु उष्ण, कटुरस, हृद्य तथा सारक है और वात, कफ, क्रिमि रोग, गुल्म, उदर रोग, आध्मान, विबन्ध, शूल तथा हृदय रोग को नष्ट करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- हींग हृद्य है, कटुरस तथा उष्ण है और क्रिमि रोग, वात विकार तथा कफ विकार का नाश करता है। यह विबन्ध, आनाह तथा शूल का नाश करता है और नेत्र के लिए हितकर है तथा गुल्म नाशक है।

भावप्रकाश के अनुसार- हींग उष्ण, पाचक, रुचिकारक तथा तीक्ष्ण है और वात रोग तथा कफ रोग को दूर करता है। यह शूल, गुल्म, उदर रोग, आनाह तथा क्रिमि रोग का नाश करता है एवं पित्त को बढ़ाता है। यह स्त्री के पुष्प (रजोधर्म) को उत्पन्न करता है, बलकारक है तथा मूर्च्छा एवं अपस्मार को अच्छी तरह दूर करता है।

वैद्यक शास्त्र में हींग का प्रयोग-

आर्ष ग्रन्थ में हिंग का प्रयोग- हींग का निर्यास (हींग) छेदन, दीपक, अनुलोमक, वात-कफ को शान्त करनेवालो में प्रथम है। (च.सू.अ.२५)।

क्रिमिदन्त में हींग का प्रयोग- हींग को गरम कर बुद्धिमान व्यक्ति कृमिदन्त रोग में दांत में धारण करे। (चक्र.दन्तरोग चि.)।

Constituents—A sulphuretted volatile oil, 3 to 9 p.c., consisting chiefly of allyl sulphide, resin 50 to 70 p.c., soluble in ether; gum 30 p.c., saline matters and ash; 3 to 4 p.c. also ferualic, malic acetic, formic and valerianic acids. **Physiological Actions**—Among the natives, Hing is usually fried before being used as medicine, as they believe that the raw hing causes vomiting. It is a most powerful foetid gum resin, a valuable stimulant acting on the organs of circulation and secretion; also a nervine and pulmonary stimulant and a powerful antispasmodic. It is also carminative, tonic, laxative, diuretic and emmenagogue, also anthelmintic and aphrodisiac. In small doses and if long continued, it produces a sense of warmth without any rise of temperature. It impairs digestion, gives rise to alliacious eructations, acid irritation in the throat, flattulence, diarrhoea, and burning in the urine. In large doses it stimulates the secretion and excretion and increases sexual appetite. The volatile oil is rapidly execreted and may be found in the urine, milk and sweat. It also increases the menstrual flow. (K. N. Khory, Vol. II, p. 289). **Therapeutics**—It is given in nervous and nerotic diseases, as hysteria and hypochondriasis; an expectorant, in habitual cough, chronic catarrh, bronchitis and asthma; as a carminative in dyspepsia, colic and other gastric affections, and to expel worms. It is said to ward off malaria if taken with food in malarious districts. It relieves gaseous distention of the bowels. An enema of Hinga is the best from in which it is exhibited in convulsions. It is a useful remedy in habitual constipation. With myrrh and ammoniac it is given in tympanitis of typhoid feaver. An enema of Hinga with castor oil and terpentine is very beneficial in intestinal colic and worms. In habitual abortion it is a very reliable remedy. (R.N. Khory, Vol. II, p. 289).

हिज्जलः

Barringtonia Acutangula

हिज्जलः, निचुलः–*Barringtonia Acutangula.*

अन्वर्थसंज्ञा–"नदीजः", "दीर्घपत्रकः"। हिज्जलः कटुरुष्णश्च पवित्रो भूतनाशनः। वातामयहरो नानाग्रहसञ्चारदोषजित्॥ राजनिघण्टुः॥ जलवेतसवद्वेद्यो हिज्जलोऽयं विषापहः। भावप्रकाशः॥

वैद्यके व्यंवहार:–आमातिसारे हिज्जल:–"दलोत्थ: स्वरस: पेयो हिज्जलस्य समाक्षिक:। जयत्याममतीसारं...॥" (अतिसार-चि.)। चक्रदत्त:॥ चक्षु: स्त्रावे हिज्जलफलम्–"हिज्जलस्य फलं घृष्ट्वा पानीये नित्यमञ्जनम्। चक्षु:स्त्रावस्य शान्त्यर्थं कार्यमेतन्महौषधम्॥" (नेत्ररोग-चि.)। वङ्गसेन:॥

हिज्जल:, निचुल: (Barringtonia Acutangula.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- हिज्जल:, निचुल:। हि.- हिज्जल, समुन्दर फल। बं.- हिजल्। ता.- करपूम्। ले.- कनप कनगी। ले.- Barringtonia Acutangula।

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा- नदीज:, दीर्घपत्रक:।

गुण एवं दोष-

राजनिघण्टु के अनुसार- हिज्जल कटु रस, उष्ण तथा पवित्र है और भूत बाधा को दूर करता है। यह वातरोग को दूर करता है तथा अनेक प्रकार के ग्रह बाधा का नाश करता है।

भाव प्रकाश के अनुसार- जल वेतस के समान हिज्जल है तथा यह विष नाशक है।

वैद्यक शास्त्र में हिज्जल का प्रयोग-

आमातिसार में हिज्जल का प्रयोग- आमातिसार में हिज्जल के पत्तों का रस मधु मिलाकर पान करे। यह अतिसार को जीत लेता है। (चक्र.अतिसार रोग चि.)।

चक्षुस्त्राव शान्ति के लिए हिज्जल फल का प्रयोग- हिज्जल के फल को जल में घिसकर प्रतिदिन अञ्जन करे। इस अंजन का चक्षुस्त्राव की शान्ति के लिए प्रयोग करे। यह नेत्र के लिए महौषध है। (बंगसेन, नेत्ररोग चि.)।

Constituents—A body allied to saponin, which is active principle strach, proteid, cellulose, fat caoutchouc and alkaline salts. **Actions and uses—**Emetic and carminative, used with the juice of fresh ginger in catarrhs of the nose and respiratory passages and to relieve flatus from the bowels. Externally rubbed with water it is applied to the chest to relieve pain and to the abdomen to relieve colic and flatulence. (R.N. Khory, Vol. II, p. 274). The fruit is spoken of as "Nurse fruit" and is one of the best known domestic remedies. When children suffer from a cold in the chest, the seed is rubbed down on a stone with water and applied over sternum, and if there is much dyspnoea a few grains with or without the juice of fresh ginger are administered internally and seldom ail to induce vomiting and the expulsion of mucous from the air passages. To reduce the enlarged abdomen of children it is given doses of from 2 to 3 grains in milk. (Dymock, Vol. II, p. 17).

हिलमोचिका

Enhydra Fluctans

हिलमोचिका–*Enhydra Fluctans.*

शोथं कुष्ठं कफं पित्तं हरते हिलमोचिका। भावप्रकाशः॥ हिलमोची सरा तिक्ता कुष्ठघ्नी कफपित्तजित्। राजवल्लभः॥

वैद्यके व्यवहारः– (१) गात्रदौर्गन्ध्ये हिलमोचिका–"हिलमोचरसो युक्तश्चूर्णै रुदधिफेनजैः। प्रलेपेन हरत्याशु देहदौर्गन्ध्यमुत्कटम्॥" (कार्श्य-चि.)। (२) मसूरिकायां हिलमोचिका– "श्वेतचन्दनकल्काक्तं हिलमोचिभवं द्रवम्। पिबेन्मसूरकारम्भे नैम्बं वा केवलं रसम्" (मसूरिका-चि.)। भाव्रपकाशः॥

हिलमोचिका (Enhydra Fluctans.)

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– हिलमोचिका, हिलमोचः, हिलमोचिः। हि.– हिलमोचि, हुरहुल। बं.– हिञ्चाशाक, हेलेञ्चा। उडिया– हिरमिचा।

गुण एवं दोष–

भावप्रकाश के अनुसार– हिलमोचिका शोथ, कुष्ठ, कफ विकार तथा पित्त विकार को दूर करती है।

राजवल्लभ के अनुसार– हिलमोची सारक, तिक्तरस, कुष्ठ नाशक तथा कफ पित्त को दूर करनेवाला है।

वैद्यक शास्त्र में हिलमोचिका का प्रयोग–

(१) गात्र-दौर्गन्ध्य में हिलमोचिका का प्रयोग– समुद्र फेन के चूर्ण से युक्त हिलमोचिका का रस लेप करने से अति उत्कट शरीर के दुर्गन्ध को शीघ्र ही दूर करती है। (भावप्रकाश, कार्श्य. चि.)। (२) **मसूरिका में हिलमोचिका का प्रयोग**– सफेद चन्दन के कल्क को मिलाकर हिलमोचिका का रस मसूरिका के प्रारम्भ में पान करे अथवा केवल नीम का रस पान करे। (भावप्रकाश, मूसरिका चि.)।

Actions and uses—Hilamochika is used as a bitter vegetable in Bengal; and is considered to be laxative and useful in diseases of the skin and nervous system. (Dymock, Vol. II, p. 266).

— ● —

परिशिष्टम्

अनन्नासम्

Ananas sativa

अनन्नासम्– *Ananas sativa, Eng.—Pine apple.*

अनन्नाशमपक्वन्तु रुच्यं हृद्यं गुरु स्मृतम्। कफपित्तकरञ्चैव प्रोक्तं चान्नमरोचकम्॥ श्रमं क्लमं नाशयति तत् 'पक्वं' स्वादु पित्तहृत्। पीतः पक्वफलरस आतपामयनाशनः॥ निघण्टुरत्नाकरः॥

अनन्नासम् (Ananas sativa, Eng.—Pine apple.)

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– अनन्नाशम्। हि.– अनानस्, अनारस। बं.– आनारस। ता.– अलस पक्वाम्। ते.– अनसपण्डू। अं.– Pine apple। ले.– Ananas sativa।

गुण एवं दोष–

निघण्टु रत्नाकर के अनुसार– अपक्व अनन्नाश रुचिकारक, हृद्य तथा गुरु कहा गया है। यह कफ-पित्तकारक कहा गया है और अम्ल तथा अरोचक है। यह श्रम तथा कफ का नाश करता है। पका हुआ अनन्नास स्वादिष्ट है तथा पित्त को दूर करता है। पीले पके हुए फल के रस से आतप रोग (लू लगना) नष्ट होता है।

Constituents—The juice contains a proteid digestive ferment, which acts equally well in acid gastric or alkaline intestinal secretions. It also contains a milk curdling ferment. The ash contains phosphoric and sulphuric acids, lime magnesea; silica, iron, chlorides of potassium and sodium. **Actions and uses—** Abortifacient; also given to relieve flatulent distention of the abdomen. Under its use the uterus contracts within 12 hours followed by haemorrhage and the ovum is expelled. The fruit is rendered unwholesome on account of its strong fibre which acts as an irritant on the bowels for abortifacient purpose, a whole unripe fruit decorticated being required. (R. N. Khory, Vol. II, p. 620). "From the special opinions of medical officers in India recorded in the Diet. Econ. Prod. of India (I, 238) it appears that a belief in the abortifacient properties of the leaves and unripe fruit is common throughout India among the natives. "Chevers (Med. Juris, p. 715) on the authority of Babu Kannay Lall Dey, has the following description of its use in Bengal :—"A green unripe one, only half grown is used. It is decorticated and the pulpy mass of a whole one is administered to the woman with a small quantity of salt. It is efficacious only during the earlier months of pregnancy, and after the third month, its action is very doubtful. But if administered to suitable cases, the uterus, begins to contract within 12 hours, when slight haemorrhage occurs also. Its action then increases, and within the course of 24 hours the ovum is expelled, Occasionally the woman's life is jeopardized

by flooding, but, as a rule, there is not much danger to be apprehended. "Again in page 718, Chevers says; "A note which I have from Babu Koylas Chandra Chatterjee renders this matter plain. He says that acid fruits are regarded as abortives. He knew a case in which a woman aborted at an advanced stage of pregnancy by eating (with that intention) about two pounds of ripe pine-apple. This fruit is rendered unwholesome by the presence of a very strong fibre which acts as a mechanical irritant on the bowels. I had under my own care an English lady who died of dysentery, after having aborted, at about the fifth month of pregnancy. The cause of her illness appeared to be the ravenous eating of raw pine apple." (Dymock, Vol. III, p. 508).

अफूकम् , अफेनम्

Papaver Somniferum

The Juice obtained by incision from the capsules of Papaver Somniferum. **अफेनं सन्निपातघ्नं वृष्यं बल्यञ्च मोहदम्। राजनिघण्टुः॥ अफूकं शोषणं ग्राहि श्लेष्मघ्नं वातपित्तलम्। मदकृद्दाहकृच्छुक्रस्तम्भनायासमोहकृत्॥ अतिसारे ग्रहण्याञ्च हितं दीपनपाचनम्। कश्चित्॥ अफूकं शोषणं ग्राहि श्लेष्मघ्नं वातपित्तलम्। भावप्रकाशः॥**

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- अफेनम्, अफूकम्। हि.- अफिम्। बं.- आफिम्। ले.- Papaver Somniferum।

गुण एवं दोष-

राजनिघण्टु के अनुसार- अफेन (अफीम) सन्निपातनाशक है, वीर्यवर्द्धक है, बलकारक है तथा मोहप्रद है।

किसी के अनुसार- अफूक (अफीम) शोषक, ग्राही, श्लेष्मनाशक तथा वात-पित्त कारक है। यह मदकारक है, दाहकारक है, शुक्रस्तम्भक है, आयास तथा मोहकारक है। यह अतिसार तथा ग्रहणी में हितकर है तथा दीपन, पाचन है।

भावप्रकाश के अनुसार- अफूक (अफीम) शोषण, ग्राही, कफ नाशक तथा वात एवं पित्त कारक है।

Constituents—Opium contains a large number of alkaloids, organic acids, and neutral substance. **Physiological Action—**It depends upon the combined effects of the various alkaloids and other principles obtained from it. Opium in *medicinal doses* at first stimulates the brain, heart and respiration; this effect is soon followed by general depression. Generally opium is analgesic, hypnotic, antispasmodic, diaphoretic, narcotic and cerebral depressant. Its chief action is on the cerebro-spinal system and through the nerves it acts upon all the organs of the body. It affects the ganglia at the base of the brain giving rise to contracted pupils, vomiting and slow respiration, under its use the grey matter of the cord is first stimulated and there are increased reflexes. This is soon followed by depression as evidenced by the lowering of perception and sensation. The cutaneous Vessels are dilated at first, as shown by a sense of heat felt on the external ear, itching and rose-coloured skin eruptions. This is followed by pallor and coldness of the limbs and fingers. The generative organs are stimulated. In medicinal doses, taken for some time it affects all the secretions except milk and sweat which are increased. It causes dryness of the mouth and throat, lessons the secretion of the stomach and thus impairs

apetite. The secretion of the bile is also diminished and constipation results. The action of the heart is increased and there is increased arterial tension. The cerebral functions are at first exhilarated, the ideas flow rapidly and there is a sort of mild intoxication. This is soon followed by drowsiness and sound sleep, often disturbed by dreams and often followed, on waking by headache constipation indigestion, and depression of spirits. If any pain be present it is relieved, but a larger dose will be necessary on subsequent occasions. In *full doses* the cerebral symptoms are accentuated, but the stimulation is of short duration. The after-effects become more marked. The mouth becomes very dry, digestion is impaired, there is nausea, vomiting and profuse sweat. The heart is depressed, the circulation lowered, the oxidation is interfered with, and there is loss of body heat. The pupils are contracted, there is intense itching if the nose with retention of urine. The cerebral deppression is soon followed by headache, vertigo, slow and laborious respiration. In *poisonous doses sterterous* breathing and coma supervene, followed by feeble pulse, cold clammy perspiration, contracted pupils followed by dilation as the end approaches, cyanosis of the face and fingers, followed by abolished reflexes, deepcoma, paralysis of the respiratory centres and death. Therapeutic uses—opium is given to relieve severe pain from any cause, except in cerebritis and to allay any irritation. As an antispasmodic it is extensively used. It allay irritation and produces sleep in insomnia, sciatica neuralgia, lumbago, cancer, intestinal renal or hepatic colic calculi &c.; also in tetanus, in morbid states of the abdominal viscera, as gastritis, gastrodynia, hernia and in diseases of the urino-genital system. To check excessive secretion it is largely used in diarrhoea, dysentery, nervous and sympathetic vomiting and in excessive expectoration; also in diabetes, ptyalism and lecorrhoea. (R.N. Khory, Vol. II, p. 49).

आम्रातकः
Wild Mango

आम्रातकः, आम्रातः–*Eng.—Wild Mango, Hog plum tree.* **अन्वर्थसंज्ञा–"कपिप्रियः", "अध्वगभोग्यः", "तनुक्षीरी", "वर्षपाकी"। आम्रातकफलं वृष्यं पित्तास्त्रकफवह्निकृत्। शीतं कषायं मधुरं किञ्चिन्मारुतकृद् गुरु॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ आम्रतकं कषायाम्ल'मामं' हृत्कण्ठहर्षणम्। 'पक्वन्तु' मधुराम्लाख्यं स्निग्धं पित्तकफापहम्॥ राजनिघण्टु॥ आम्रातमम्लं वातघ्नं गुरूष्णं रुचिकृद सरम्॥ 'पक्वन्तु' तुवरं स्वादु रसे पाके हिमं स्मृतम्॥ हर्षणं श्लेष्मलं स्निग्धं वृष्यं विष्टम्भि वृंहणम्। गुरु बल्यं मरुत्पित्तक्षतदाहक्षयास्त्रजित्॥ भावप्रकाशः॥**

आम्रातकः, आम्रातः (Eng.—Wild Mango, Hog plum tree.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- आम्रातकः, आम्रातः। हि.- अम्बाड़ा, आम्बडा। बं.- आमड़ा। ता.- मरिमञ्चेडि। ते.- टोरमनोडी। अं.- Wild Mango।

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा- कपिप्रियः, अध्वगभोग्य, तनुक्षीरी, वर्षपाकी।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- आम्रतक (आमड़ा) का फल वीर्यवर्द्धक है तथा पित्त विकार, रक्त विकार तथा अग्निकारक है। यह शीतल है, कषाय रस तथा मधुर रस है और थोड़ा वातकारक है तथा गुरु है।

राजनिघण्टु के अनुसार- आम आम्रातक कषाय रस तथा अम्ल रस है तथा हृदय एवं कण्ठ को हर्षित करनेवाला है। पका हुआ आम्रातक फल मधुर तथा अम्ल रस है, स्निग्ध है तथा पित्त रोग एवं कफ रोग को दूर करता है।

भावप्रकाश के अनुसार- आम्रातक अम्ल, वात नाशक, गुरु, उष्ण, रुचिकारक तथा सारक है। पका हुआ आम्रतक फल कषाय रस, रस तथा पाक में स्वादिष्ट और शीतल है। यह हर्षित करनेवाला है, कफकारक है, स्निग्ध है, वीर्यवर्द्धक है, विष्टम्भ कारक है, बलवर्द्धक है, गुरु है, बलकारक है तथा वात, पित्त, भूख, दाह, क्षय रोग तथा रक्तरोग को दूर करता है।

Actions and uses—The pulp is astringent, stomachic, and acid and used in dyspepsia. The bark and gum astringent and demulcent and used in dysentry. (R.N. Khory, Vol. II, p. 172).

आरुकम्

Bokhara Plant

आरुकम्, रक्तफलम्- Eng.— Bokhara Plant.

आरुकी ग्राही तुवरो हृद्यः शीतो गुरुः स्मृतः। मलावष्टम्भको ग्राही भेदी चोष्णः कफापहः॥ पित्तहृत् पाचकश्चाम्लो मधुरश्च मुखप्रियः। मुखस्वच्छकरश्चैव मेहगुल्मार्शोनुत् परः॥ रक्तवातरुजां हन्ता स पक्वो मधुरो गुरुः। कफपित्तकरश्चोष्णो रुच्यो धातुविवर्द्धकः॥ निघण्टुरत्नाकरः वैद्यकनिघण्टुश्च॥

आरुकम्, रक्तफलम् (Eng.— Bokhara Plant.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- आरुकम्। हि.- आलु बोखाराम। बं.- अलू, आलूवोखारा। अं.- Bokhara Plant।

गुण एवं दोष-

निघण्टुरत्नाकर व वैद्यक निघण्टु के अनुसार- आरुक ग्राही, कषाय रस, हृद्य, शीतल तथा गुरु कहा गया है। यह मलावष्टम्भक है, ग्राही है, उष्ण है तथा कफनाशक है। यह पित्त हर है, पाचक है, अम्ल रस तथा मधुर रस है और मुख के लिए प्रिय है। यह मुख स्वच्छकारक है और प्रमेह, गुल्म तथा अर्श रोग को दूर करता है। यह रक्त रोग तथा वात रोग का नाश करता है। पका हुआ फल मधुर तथा गुरु है। यह कफ-पित्तकर, उष्ण, रुचिकारक तथा धातुवर्द्धक है।

Constituents—Malic acid, Citric acid, Sugar, albuminoids, pectin and ash. **Actions and uses**—Demulcent and nutrient. (R.N. Ḳhory, Vol. II, p. 241). "It is described as sub acid, cold and moist, digestive and aperient, especially when taken on an empty stomach, useful in bilious states of the system and heat of body." (Dymock Vol. I, p. 568).

आवर्त्तकी

East Indian screw plant

आवर्त्तकी–*Eng.—East Indian screw plant.*

अन्वर्थसंज्ञा–"मनोज्ञा", "रक्तपुष्पी", "वामावर्त्ता"। आवर्त्तकी च कुष्ठघ्नी सोदूर्ध्वाधोदोषनाशनी। कषाया शीतला वृष्या त्रिदोषघ्न्यतिसारजित्॥ शोफ-गुल्मोदराऽऽनाहक्रिमिजालविनाशनी॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ आवर्त्तकी कषायाम्ला शीतला पित्तहारिणी। राजनिघण्टुः॥

आवर्त्तकी (Eng.—East Indian screw plant.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- अवर्तकी। हि.- कुपाहसि, जोयाका फल, माडोर फलो। बं.- ऑल्मोड़ा। ते.- शयामली। अ.- वलाम् विरिके। फा.- पिचक्। अं.- East Indian screw plant।

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा– मनोज्ञा, रक्तपुष्पी, वामावर्ता।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- आवर्तिकी कुष्ठनाशक है और यह ऊर्ध्व तथा अधोदोष नाशक है, कषाय रस है, शीतल है, वीर्यवर्द्धक है तथा त्रिदोषनाशक एवं अतिसारनाशक है। यह शोथ, गुल्म रोग, उदर रोग, आनाह तथा क्रिमिजाल का नाश करती है।

राजनिघण्टु के अनुसार- आवर्तकी कषाय रस, अम्ल रस तथा शीतल है और पित्तहारक है।

Actions and uses—Demulcent and mildly astringent, powdered fruit is given with other drugs to stop griping in the bowels and flatulence in children. The root bark is given in diabetes. The root may be substituted for that of althaea. The Hindus use the powder of the root with castor oil as an application inside the ears in offensive sores and discharges. (R.N. Khory, Vol. II, p. 104).

ईश्वरमूलम्
Aristolochia India

ईश्वरमूलम् Aristolochia India.

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- रुद्रजटा। हि.- रुद्रजटा। बं.- इशेरमूल। फा.- जारावन्दि हिन्दी। ता.- ईश्वरामूली। ते.- ईश्वरार वेरु। अं.- अरिष्टोलोचिआ इण्डिया।

Actions and uses—Tonic, stimulant and emmenagogue given in intermittent fever, bowel affections of children due to teething, also in cholera; as an emetic the juice of the leaves is given to children in croup. It has a great reputation as an antidote to snake poison, with agara it is applied externally to the abdomen in colic and to the chest in bronchitis in children, (R.N. Khory, Vol. II, p. 513). "The plant was first described by **Rheede,** who states that boiled in oil it is applied as a liniment to snake bites, and a decoction given internally. It is also administered, rubbed to a daste with water or in decoction, in cold fevers, headache, flatulent distention and dysuria. As a lotion it relieves gouty pains and the powder with pepper and hot water steps bloody fluxes. *Ainslie* notices its use by the Tamil docters in the bowel complaints to which children are subject in consequence of indigestion and teething. He also says that the powder

is taken internally in cases of snake-bites and applied to the bitten part. *Fleeming* notices its use in upper India as an emmenagogue and antarthritic. Babu T.N. Mukharji States that the juice of the fresh leaves is very useful in the Croup of children, by including vomiting without causing any depression. (Dymock, Vol. III, pp. 159-60).

ईषद्गोलम्

Spage seeds

ईषद्गोलम्– *Eng.—Spage seeds.*

ईषद्गोलं पर वृष्यं मधुरं ग्राहि शीतलम्। पिच्छिलं तुवरं किञ्चिद्वातकृत् कफपित्तहृत्॥ रक्तातिसारास्त्रपित्तं नाशयेदिति कीर्त्तितम्॥ मूत्रलं शीतबीजं स्यादुष्णवातनिवारणम्। वस्तिसंशोधनं प्रोक्तं शुक्रमेहनिवारणम्॥ आध्मानापहरश्चास्य योज्यः शीतकषायकः॥ वैद्यामृतो निघण्टुसङ्ग्रहश्च॥

ईषद्गोलम् (Eng.—Spage seeds.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- ईषद्गोलम्। हि.- ईषबगोल। बं.- ईषबगोल। गु.- उथमुजीरण। फा.- इस्पजा। अं.- वजरी कतूला। ता.- इस्कल विरै। ते.- इस्पगल। अं.- Spage seeds।

गुण एवं दोष-

वैद्यामृत तथा निघण्टु संग्रह के अनुसार- ईषदगोल उत्तम वीर्यवर्द्धक, मधुर, ग्राही, शीतल, पिच्छिल, कषाय रस, थोड़ा वातकारक है तथा कफ-पित्त को दूर करता है, रक्तातिसार तथा रक्तपित्त का नाश करता है। यह मूत्र है, शीत बीज है तथा उष्ण वातनिवारक है। इसे वस्ति संशोधन कहा गया है। यह आध्मान का नाश करता है। इसका शीतकषाय प्रयोग करे।

Actions and uses—Demulcent, emollient and diuretic; used in inflammatory and other derangements of the stomach and intestines, as in gastric catarrh, dysentery, gonorrhoea and affections of the kidneys. Made into a poultice with veṇegar and gora tela they are applied to rheumatic and gouty swellings; they are also useful in coughs and colds. When roasted, they are used with Sakara in protracted irritation of the bowls in children. (R.N. Khory, Vol. II, p., 501). "In India, they are considered to be cooling and demulcent, and useful in inflammatory and bilious derangements of the digestive organs. The crushed seeds are made into a poultice with vinegar and oil are applied to rheumatic and gouty swellings. With the mucilage a cooling lotion for the head is made. Two or three dirhems moistened with hot waters mixed with sugar are given in dysentery and irritation of the intestinal canal to procure an easy stool. The decoction is prescribed in cough. The roasted seeds have an astringent effect and are useful in irritation of the bowels in children and in dysentery. The natives have an idea that the powdered seeds are injurious and consequently always administer them whole. *Fleming Twining Ainslie* and others speak very favourably of the use of Ispaghul in the treatment of chronic diarrhoea. *Twining* gives the dose for an adult as $2^1/_2$ drachms mixed with half a drachm of sugar-candy. In the pharmacopoeia of india the seeds have been made official and directions are given for the preparation of decoction. (Dymock, Vol. III, pp, 126-7).

ओलट्कम्बल

Abroma Augusta

ओलट्कम्बल–*Abroma Augusta. Eng.—Devil's Cotton.*

ओलट्कम्वल–Abroma Augusta. Eng.—Devil's Cotton.

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- भारद्वाजी। हि.- भारद्वाजी। बं.- ओलट्कम्बल। अं.- Devil's Cotton। ले.- Abroma Augusta।

Constituents—The root bark contains gum, wax, a non-crystalline extractive matter and ash 11. 64 p.c., but no manganese. **Actions and uses**—The root and the sap are uterine tonic and emmenagogue, with black pepper given in congestive and neuralgic dysmenorrhoea and amenorrhoea, either given a week before or during menstruation. It is a valuable substitute for hydrastis, viburnum, and pulsatilla. (R.N. Khory, Vol. II, p. 102). "In 1872 Mr. Bhoobun Mohun Sircar (Ind. Med. Gaz.) first called attention to the use of the root as an emmenagogue in Bengal, and recommended the fresh viscid sap in the treatment of dysmenorrhoea in doses of 30 grains. Subsequently Dr. Kirton recommended the use of drachm doses of the root beat into a paste with water. Dr. Watt in his "Dictionary of the economic products of India" records the opinion of thirteen medical men regarding the medicinal properties of the plant; of these, eight speak favourbaly of it. Dr. R. Macleod says :— It is a valuable medicine in dysmenorrhoea. The fresh root is usually given, made into a paste with black pepper about a week before the time of menstruation, and is continued until it commences. I have seen it prove very efficacious in some cases, especially in the congested form of the disease." Dr. Thornton says :—The slender roots are useful in the congestive and neuralgic varieties of dysmenorrhoea. It regulates the menstrual flow and acts as a uterine tonic. It should be given during menstruation, 1 drachm of the fresh root for a dose with black pepper, the latter acting as a stomachic and carminative." Dr. Evers says :—it has never failed in my hands in speedily relieving painful dysmenorrhoea. In western and southern India the plant is not common, and its medicinal properties do not appear to be known. (Dymock, Vol. I, p. 233).

कङ्कोलकम्

Piper Cubea

कङ्कोलकम्, कृतफलम्–*Piper Cubea. Eng.—Tailed Pepper or Cubebs.*

कङ्कोलं कटुतिक्तोष्णं वक्त्रवैरस्यनाशनम्। मुखजाड्यहरं रुच्यं वात-श्लेष्महरं परम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ कङ्कोलं कटु तिक्तोष्णं वक्त्रजाड्यहरं परम्। दीपनं पाचनं रुच्यं कफवात-निकृन्तनम्॥ राजनिघण्टुः॥ कङ्कोलं लघुतीक्ष्णोष्णं तिक्तं हृद्यं रुचिप्रदम्। आस्यदौर्गन्ध्यहृद्रोग-कफवातामयाऽऽन्ध्यहृत्॥ भावप्रकाशः॥

कङ्कोलकम्, कृतफलम् (Piper Cubea. Eng.—Tailed Pepper or Cubebs.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- कङ्कोलम्, कृतफलम्। हि.- शीतलचिनी। ब.- कावावचिनि। गु.- चणकवाव। ता.- वलमलकू। ते.- सलव मिरीयलिय। फा.- हव्-एल्-आमस। अं.- Tailed Pepper or cubebs। ले.- Paper cubes।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- कङ्कोल कटु रस, तिक्त रस तथा उष्ण है और मुख की विरसता का नाश करता है। यह मुख की जड़ता को दूर करता है तथा रुचिकारक है और वात-कफ को अच्छी तरह दूर करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- कङ्कोल कटुरस तथा तिक्तरस है, उष्ण है तथा मुख की जड़ता को अच्छी तरह दूर करता है। यह दीपन, पाचन, रुचिकारक है तथा कफ विकार एवं वात विकार का नाश करता है।

भावप्रकाश के अनुसार- कंकोल लघु, तीक्ष्ण, उष्ण, तिक्तरस, हृद्य तथा रुचिप्रद है। यह मुखका दुर्गन्ध, हृदय रोग, कफ विकार, वात रोग तथा आन्ध्य रोग को दूर करता है।

Constituents—An active principle 3 p.c., a volatile oil 5 to 15 p.c., also resin 3 p.c.; cubebin 2 p.c.; cubbic acid, fatty matter, wax starch, oil-rum and ash 5 p.c. **Actions and uses**—Stimulant and diuretic. In large doses it irritates the stomach, intestines, uterus and urino genital passages. It disinfects the urine, perspiration and bronchial mucous. Applied to the skin it gives rise to urticaria and vesicular eruptions. The seeds kept in the mouth and chewed relieve troublesom cough. As a stimulant and diuretic it is given in gonorrhoea, urethritis, cystitis, chronic bronchial catarrh, in affections of the genito-urinary organs, and in inflammation of the urinary passages. The powder is dusted or blown by an insufflator into the nose and pharynx in chronic nasal catarrh, follicular pharyngitis, &c., with benefit. It is smoked in cigarettes in acute nasal catarrh. As a local irritant, the oil with rose water is applied to the head in headache and to syphilitic sores on the penis. The oil increases the quantity of urine, importing to it a peculiar odour. (R.N. Khory, Vol. II, p. 517).

कर्मरङ्गः

Chinese Gooseberry

कर्मरङ्गः—*Eng.—Chinese Gooseberry.*

अन्वर्थसंज्ञा–"धाराफलः", "पीतफलः", "शुकप्रियः"। कर्मरङ्गं हिमं ग्राहि स्वाद्वम्लं कफवातकृत्। भावप्रकाशः॥ कर्मरङ्गन्तु तीक्ष्णोष्णं कटुपाकेऽम्लपित्तकृत्। राजवल्लभः॥ कर्मारस्य फलञ्चामं ग्राह्यम्लं वातनाशनम्। उष्णं पित्तकरञ्चैव तत् पक्वं मधुरं मतम्॥ अम्लञ्च बलपुष्टीनां रुचेश्चैव तु वर्द्धकम्। निघण्टुरत्नाकरः॥

कर्मरङ्गः (Eng.—Chinese Gooseberry.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- कर्मरङ्गः, कर्मारः। हि.- कमरख। बं.- कायराङ्गा। म.- कर्मरें। गु.- कमारक। ता.- तमारट्टम् मरम्। ते.- तमारटा कया। अं.- Chinese Gooseberry।

अन्वर्थ ज्ञापिका संज्ञा– धाराफलः, पीतफलः, शुकप्रियः।

गुण एवं दोष-

भावप्रकाश के अनुसार- कर्मरङ्ग (कमारख) शीतल, ग्राही, स्वादु तथा अम्ल रस है और कफ-वातकारक है।

राजवल्लभ के अनुसार- कर्मरङ्ग तीक्ष्ण, उष्ण तथा पाक में कटु है और अम्ल-पित्तकारक है।

निघण्टु रत्नाकर के अनुसार- कर्मरङ्ग (कमारख) का आम फल ग्राही तथा अम्ल रस है और वात नाशक है। यह उष्ण है, पित्त कारक है। पका फल मधुर रस कहा गया है। यह अम्ल रस है तथा बल, पुष्टि तथा रुचि को बढ़ानेवाला है।

Constituents—Contain a watery pulp, which contains much acid potassium oxalate. **Actions and uses**—Antiscorbutic. Fruits are used as an acid vegetable and for preserve. The syrup (1 in 10, dose 1 to 2 drs) is used as a cooling medicine in fevers. The juice is used to remove iron moulds or stains. The leaves are a good substitute for sorrel. (R.N. Khory, Vol. II, p. 152)

काफि

Coffea Arabica

काफि– *Coffea Arabica.*

Constituents—Seeds contain an alkaloid caffeine, 1 to 3 p.c.; proteid 6 to 13 p.c.; sugar, legumin, glucose, dextrine 15 p.c.; caffeo-tannic acid 1 to 2 p.c.; volatile oil and ash, 3 to 5 p.c. **Physiological Action**—Cerebro-spinal, gastric and renal stimulant, laxative, highly antiseptic, efficient diuretic and antilithic. Roasted cofee if moderately taken as a food or beverage acts as stimulant, it assists assimilation and digestion, promotes intestinal paristalsis, lessens tissue waste and decreases the exretion of urea. It allays the sense of prolonged bodily and mental fatigue and keeps off sleep for some time without exhaustion. It increases the reflex action and mental activity. Given in excess it disorders digestion and leads to headache, vertigo and palpitation of the heart, great restlessness, convulsions and paralysis. Coffee is more stimulating, but less sustaining than cocoa. **Therapeutic uses**—Cofee is given in prolonged bodily fatigue, and in mental and cardiac depression; as an analgesic it is given with guarana in neuralgic and nervous headche, in insomnia of chronic alcholism, to stop vomiting, to check diarrhoea and to allay spasms in asthma; also given in cases of narcotic poisoning. In heart disease caffein is given with paraldehyde with benefit. (R.N. Khory, Vol. II, p. 326). "In the women's petition against coffee", 1674, they complained that "it made men as unfruitful as the desert whence that unhappy berry is said to be brought." As late as 1711, we find the following passage in a letter written by Charlotte Elizabeth from Mary to her step-sister in Germany. "I am greaved to learn, dear Louise, that you have taken to coffee; nothing is so unhealthy, and I see many here who have had to give it up because of the disease it has brought upon them. Princess of Hanan died of it in frightful sufferings. After her death they found the cofee in her stomach, where it had caused ulcers. Let this then be a warning to you." (Dymock, Vol. II, pp. 217-18).

कालमेघ

Constituents—A bitter principle, and a considerable quantity of sodium chloride. **Actions and uses—**Bitter tonic and stomachic like quassia and chiretta. The expressed juice of a fresh leaves or the compound infusion is given with cardamom, cloves and cinam on to infants, in general debility, in convalescence after fever and for the relief griping pain with irregularity of the bowels and loss of appelite and in advanced stage of dysentery. It is used as a substitute for nine. (R.N.Khory, Vol. II, pp. 464-65). "It is the principal ingredient of a domestic medicine called *Alui* which is given to infants for the relief of griping, irregularity of bowels and loss of appelite." It is preapared in the following manner :—Take equal parts of cumin, randhani (fruit of Carum Roxburghianum) aniseed, cloves, capsules of greater cardamoms, and pound them throughly with the expressed juice of the leaves of Kalmegh. The mus thus prepared is divided into small pills and dried in the sun. The dose is one pill rubbed down in human milk. In the *Pharmacopoea of India* it has been made official and directions for making a compound tincture are given. Quite recently, under the name of *Halviva* which appears to be a corruption of the Bengali word *Alui* or alvi, a preparation of the drug has been advertising in England as a substitute for Quinine. The dose of the dried leaves about ten grains combined with twenty grains of black-pepper. (Dymock, Vol. III, pp. 46-7).

कालादाना

Seeds of Pharbatis Nil

कालादाना–*Seeds of Pharbatis Nil, Choisy.*

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– कृष्णबीजम्। हि.– कालादाना। बं.– कालादाना। ता.– जिरिकि विरैः, कडि कस्कतन् विरैः। ते.– कोल्लिवितुलू। गु.– कालादाना। अ.– तुख्म-ई-नील। अ.– हब्बून्नील। अं.– Seeds of Pharbatil Nil।

Constituents—A thick oil 14. p.c., mucilage, albuminous matter in tannin and pharbitis, an active resinous principle, identical with convolvulin, a light yellowish friable mass, of a nauseous acrid taste and an unpleasant odour, soluble in alcohol and insoluble in ether, benzol, chloroform, and sulphide of carbon. **Actions and uses—**Drastic purgative and anthelmintic, used in constipation. (R.N. Khory, Vol. II, p. 417).

कुकुशिमे

Actions and uses—It has much the same medicinal properties as *Verbascum Thapsus,* and has been brought to notice by Dr. B.M. Chatterjee as a sedative and astringent in diarrhoea. (Phar. of Ind., p. 161). The plant is slightly bitter and abouds in mucilage. The natives usually express the juice and administered it in one ounce doses as a cooling medicine in fever, skin eruption, dysentery, and such diseases as they consider to be due te heat of blood. (Dymock, Vol. III, p. 4).

कुम्भिका

कुम्भिका, वारिपर्णी–वारिपर्णी हिमा तिक्ता लघ्वी स्वाद्वी सरा कटुः। दोषत्रयहरी रूक्षा शोणितज्वरशोथहृत्॥ भावप्रकाशः॥

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- कुम्भिका, करिपर्णी। हि.- जलकुम्भी, काइ। म.- जलभगुनी। गु.- जलकुम्भी। बं.- टोका पाना। कु.- हिम्वलङ्। ते.- तुटिकुर।

गुण एवं दोष-

भावप्रकाश के अनुसार- वारिपर्णी शीतल, तिक्तरस, लघु, स्वादिष्ट, सारक तथा कटुरस है। यह दोषत्रय नाशक है, रुचिकारक है तथा रक्तविकार, ज्वर तथा शोथ की दूर करती है।

Constituents—It contains salts of potassium, sodium, magnesium and lime also iron aluminum and silicic acid. **Actions and uses**—Dimulcent and sedative, given in dysuria. The ashes are applied as a paste with rose water to ring-worm of the scalp. A pultice of the leaves is applied to painful piles. (R.N. Khory, Vol. II, p. 630).

कृष्णचूडा

Caesalpinia Pulcherrima

कृष्णचूड़ा–*Caesalpinia Pulcherrima.*

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- कृष्णचूडा, सिद्धेश्वरः। बं.- कृष्णचूडा। गु.- सिद्धश्वरी। क.- कोमरी। अ.- Caesalpinia Pulcherrima।

Action and uses—Antispasmodic, uterine, sedative and laxative, given in amenorrhoea, colic, tympanitis, &c. (R.N. Khory, Vol. II, p. 223). "All parts of the plant are said to be emmenagogue and purgative, but there appear to be no record of any exact observations upon this point." (Dymock. Vol. I, p. 506).

गञ्जा

The female flowering top of Cannabis Stiva

आग्नेयी तर्पिणी बल्या मन्मथोद्दीपनी चला। निद्रासञ्जननी गर्भपातिनी च विकाशिनी॥ वेदनाक्षेपहारिणी ज्ञेया च मदकारिणी॥ आत्रेयसंहिता॥ श्वशृगालादिदंशोत्थं जलातङ्कं निवारयेत्। बाह्यायामान्तरायामौ विसूचीमपि दारुणाम्॥ मदात्ययं महाघोरं शूलञ्चैवाम्लपित्तकम्। अग्निमान्द्यं हरेच्चापि रजोऽस्त्रमतिसंस्रुतम्॥ कश्चित्।

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- गञ्जा। हि.- गांजा। बं.- गञ्जा। अं.- The female flowering top of Cannabis Stiva।

गुण एवं दोष-

आत्रेयसंहिता के अनुसार- गंजा (गांजा) आग्नेय, तर्पण, बल्य है, मन्मथ (कामदेम) को उद्दीपन करती है तथा चंचला है। यह निन्द्राजनक है, गर्भपातक है तथा विकाशी है। यह वेदना तथा आक्षेपक को दूर करनेवाली तथा मदकारी है। गंजा कुत्ता-सियार आदि के काटने से होनेवाले जलातङ्क रोग का निवारण करती है। यह बाह्यायाम एवं अन्तरायान तथा भयंकर विसूचिका, मदात्यय, महाद्यौर शूल, अम्लपित्त, अग्निमान्द्य तथा रक्तप्रदर को दूर करती है। यह किसी आचार्य का कथन है।

Constituents—A volatile oil and resin, which is the most active principle, and contains an alkaloid cannabine; tetano cannabine and cannabinon, gum, sugar and potassium nitrate. **Actions and uses**—Anodyne hypnotic, antispasmodic, sudorific, aphrodisiac and appetizing; in large doses narcotic. In medicinal doses and taken for the first time it acts as an agreeable intoxicant, as a result of which, time, distance and sound are magnified. It exhilarates the spirit, excites the imagination and increases the appetite; medicinally it acts as an anodyne and antispasmodic, but is inferior to opium. It has, however, the advantage of not producing constipation, loss of appetite nor the unpleasant after effects peculiar to opium. It is largely used in headache of a continuous or chronic character, asthma, whooping cough, chronic bronchitis, titanus, hydrophobia and other spasmodic affections as hysteria, chorea &c. It is also used in nervous vomiting, mental depression, delirium tremens &c. It is sometimes used in place of opium as a hypnotic where opium cannot be borne and largely used in menorrhoegia and dysmenorrhoea, also used in chronic rheumatism. Among the natives it is largely used as an aphrodisiac and as an intoxicant like opium and alcohol. In large doses or if habitually taken or its use preserved in, it produces a bloated face, congested eyes, tremulous and weak limbs, imbecility, weakness or loss of memory. (R.N. Khory, Vol. II, p. 570).

गण्डगात्रम्

Anona Squamosa

गण्डमात्रम्—*Anona Squamosa. Eng.—Custard apple.*

गण्डगात्रं हिमं वृष्यं वातपित्तनिसूदनम्। श्लेष्मलं तर्षशमनं वान्त्युत्क्लेशनिपीडनम्। आत्रिपसंहिता॥ तर्पणं रक्तकृत् स्वादु शीतलं हृद्यमेव च। बलदं मांसकृद्दाहरक्त-पित्तमरुत्प्रणुत्॥ सीताफलन्तु मधुरं शीतं हृद्यं बलप्रदम्। वातलं कफकृत् स्वादु पुष्टिकृत् पित्तनाशनम्॥ वृहन्निघण्टुरत्नाकरः॥

गण्डगात्रम् (Anona Squamosa. Eng.—Custard apple.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- गण्डगात्रम्, सीताफलम्। हि.- शरीफा, सीताफल। बं.- आता। फा.- शरीफ़। ता.- सीतापल्लम्। ते.- सोतापुन्दु। अं.- Custard apple। ले.- Anona Squamosa।

गुण एवं दोष-

आत्रेय संहिता के अनुसार- गण्डगात्र (शरीफा, सीताफल) शीतल तथा वीर्यवर्द्धक है और वातपित्त का नाशक है। यह कफकारक है, प्यास को शान्त करता है और वमन तथा उत्क्लेश (उबकाई) का नाश करता है।

वृहन्निघण्टु रत्नाकर के अनुसार- गण्डगात्र तर्पण है, रक्तकारक है, स्वादिष्ट है, शीतल है तथा हृद्य है। यह बलप्रद है, मासवर्द्धक है तथा दाह, रक्त-पित्त तथा वात रोग को दूर करता है। सीत फल मधुर, शीतल, हृद्य, बलप्रद, वातकारक, कफकारक, स्वादिष्ट, पुष्टिकारक तथा पित्तनाशक है।

Constitutents—Oil and resins. The seeds, leaves and immature fruit contain an acrid principle. (R.N. Khory, Vol. II, p. 23). "The seeds, leaves, and immature fruit, contain an acrid principle which is destructive to insect life; the seeds are much used by the natives for removing lice from the head, they require to be applied with caution; for if any particles get into the eye, much pain and redness is produced. (Dymock, Vol. I, p. 44). **Actions and uses**—Insecticide. The seeds and leaves are poisonous to insect life. The crushed leaves are applied to the nostrils in hysteoia, and mixed with salt and made into a poultice are applied to sores infested with maggots; an ointment of pounded seeds is used externally in guinea worm, and for removing lice from the hair; also applied to abscesses to hasten maturation. The natives apply the well pounded seeds to procure abortion. The root is used as a drastic purgative and given in melancholia. The drug requires to be used with caution. (R.N. Khory, Vol. II, p. 32).

सरलद्रव:, श्रीवाससार:

The Oleo resin of Pinus Longifolia

सरलद्रव:, श्रीवाससार:—*The Oleo resin of Pinus Longifolia.*

श्रीवाससार: कफनुन्मूत्रलो ज्वरसंहर:। शोफविम्लापनो लेपात् कृमिहृद्वेदनाहर:॥ आत्रेयसंहिता॥

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- सरलद्रव:, श्रीवाससार:। हि.- श्रीवाससार। बं.- गन्धविरेजा। अं.- The Oleo resin of Pinus Longifolia।

गुण एवं दोष-

आत्रेय संहिता के अनुसार- श्रीवाससार कफनाशक, मूत्रकारक तथा ज्वरहर है। यह शोथ को शान्त करता है, लेप करने से क्रिमिरोग को दूर करता है तथा वेदना नाशक है।

Actions and uses—Stimulant, antiseptic; the oleo resin is used as fumigation. It is highly recommended as a plaster for painful chest and enlarged liver. The oil is in much repute, internally in gleet and standing gonorrhoea. (R.N. Khory, Vol. II, p. 579).

चा

Tea Plant.

चा—*Camellia Theifera. Eng.—Tea plant.*

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- चायम्। हि.- चाय। बं.- चा। अं.- Tea plant। ले.- Camellia Theifera।

Constituents—Manufactured tea contains a peculiar volatile oil, tannic and gallic acids; quercetin, so called boheic acid; theine an alkaloid identical with caffeine; also the alkaloids xanthine and theophylline (dimethylxanthine). The volatile oil is most abundant in green tea. **Physiological Action**—Tea is a refreshing and stimulating beverage, soothing, analgesic and sudorific. When indulged into excess it affects the heart, the vaso-motor centre and motor nerves and also the stomach, giving rise to nausea, vomiting, flatulent dyspepsia, tremulousness of the limbs, pallor of the face, feeble pulse, supra-orbital headache, hallucination and nightmare. It diminishes the waste of the body and is indirectly nutritive. It increases the assimilation of nitrogenous and hydrocarbon food. **Therapeutics**—Given as a household drink. Among the natives an infusion of tea with Trikatu is a carminative an diaphoretic in fevers, dyspepsia in mental overwork &c. Its tanning combines with the gelatine of the food, and hence its excess leads to dyspepsia and also to constipation. Its use should be avoided in hysteria, insomnia, in those suffering from cardiac valvular disease. (R. N. Khory, Vol. II, p. 84).

"The principle use of tea is to form an agreeable, slightly stimulating, soothing and refreshing beverage. It was also formerly believed that tea, from the *theine* it contained, had the effect of diminishing the waste of the body, and as any substance that does this necessarily saves food, it was regarded as indirectly nutritive; But Dr. Edward Smith has shown that, on the contrary, tea increases the bodily waste by acting as respiratory excitant, and in other ways. From containing gluten, tea has also been regarded as directly nutritive, but in the ordinary mode of making tea this substance is not extracted to any amount. The action of tea is thus described by Dr. Smith:—It increases the assimilation of food both of the flesh and heat-forming kind; and with abundance of food must promote nutrition, whilst in the absence of sufficient food it increases the waste of the body." Tea also a powerful astringent, and should not, therefore, be taken until some time after meals, as it likely to produce dyspepsia from the combination of its tannic acid with gelatin of the food and production of an insoluble tannate for the same reason if taken in excess it is likely to cause constipation. Tea should not be taken as beverage by those who suffer from wakefulness, or by those who are liable to hysteria or palpitation of the heart from valvular desease. As a nervine stimulant tea my be taken with advantage, for headache and neuralgia, and in other affections, caused by exhaustions of the system from depression of nerve-power. Its effects as a nervine stimulant are due to the *theine* contained in it. (Dymock, Vol. I, pp. 179-80).

चोवचिनी

Smilax Glabra

द्वीपान्तरवचा, चोवचिनी–*Smilax China, Smilax Glabra.*

पूर्वाचार्यकृतवर्णनम्– अश्वगन्धासमं पत्रमोषधी ग्रन्थिसंयुता। वर्णतः पाटलाभा च दृढा च मधुरा रसे॥ शिवनिघण्टुः॥ द्वीपान्तरवचा कट्वी तिक्तोष्णा वह्निदीप्तिकृत्। विबन्धाऽऽध्मानशूलघ्नी

शकृन्मूत्रविशोधिनी॥ वातव्याधीनपस्मारमुन्मादं तनुवेदनाम्। व्यपोहति विशेषेण फिरङ्गामयनाशिनी॥ भावप्रकाश:॥ द्वीपान्तरवचा तिक्ता चोष्णा चाग्निप्रदीपनी। धातुवृद्धिकरी बल्या मलमूत्रविशोधिनी॥ तारुण्यदा पौष्टिकी च वृष्या चैव रसायनी। गर्भप्रदा बद्धविट्कमाध्मानोन्मादनाशिनी॥ वातं शूलमपस्मारधातुक्षयविनाशनी। अङ्गग्रहं फिरङ्गोपदंशं मान्द्यं कटीग्रहम्॥ पक्षाघातमूरुस्तम्भं राजयक्ष्मव्रणौ तथा। गण्डमालां नेत्ररोगं शुक्रशोणितदोषकम्॥ सर्वाङ्ग कम्पवातञ्च कुब्जवातञ्च नाशयेत्॥ निघण्टुरत्नाकर:॥

द्वीपान्तरवचा, चोवचिनी (Smilax China, Smilax Glabra.

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- द्वीपान्तरवचा। हि.- द्वीपान्तरवचा, चोवचिनी। बं.- चोपचिनि। ते.- पिराङ्गिचवका। ता.- कोरिङ्गे। अ.- कुस्व्-एस्शिनि। ले.- Smilax China, Smilax Glabra।

चोवचिनी के सम्बन्ध में पूर्वाचार्य कृत वर्णन- शिवनिघण्टु के अनुसार- अश्वगन्धा के समान पत्रवाला ग्रन्थियुक्त यह चोवचीनी औषध है। वर्ण से पाटला की तरह आभा है, दृढ़ है और रस में मधुर है।

गुण एवं दोष-

भावप्रकाश के अनुसार- द्वीपान्तर वचा कटुरस, तिक्तरस तथा उष्ण है और जाठराग्नि को प्रदीप्त करनेवाली है। यह विबन्ध, आध्मान तथा शूल का नाश करनेवाली है और मलमूत्र का विशोधन करती है। यह वात रोग, अपस्मार, उन्माद तथा शरीर की वेदना का नाश करती है, विशेषकर फिरंग रोग का नाश करती है।

निघण्टु रत्नाकर के अनुसार- द्वीपान्तर वचा (चोवचीनी) तिक्त रस तथा उष्ण है और जाठराग्नि प्रदीपक है। यह धातु को बढ़ानेवाली बलकारक है तथा मल मूत्र का शोधन करनेवाली है। यह युवावस्था प्रदान करती है, पौष्टिक है, वीर्यवर्द्धक है तथा रसायन है। यह गर्भप्रद है, मल विबन्ध, आध्मान तथा उन्माद का नाश करनेवाली है। यह वात विकार, शूल, अपस्मार तथा धातुक्षय का नाश करता है। अङ्गग्रह (शरीर का अकड़न), फिरंग उपदंश (फिरंग रोग), अग्निमान्द्य, कटिग्रह, पक्षाघात, उरुस्तम्भ, राजयक्ष्मा, व्रण, गण्डमाला, नेत्ररोग, वीर्य तथा रक्त विकार, सर्वाङ्ग, कम्प वात तथा कब्जवात का नाश करती है।

Constituents—Fat, sugar, and glucoside, colouring matter gum and starch. **Actions and uses**—Diaphoretic, stimulant; alterative and resolvent; given with Anantamula in long standing headache, chobchini, with masataki, elachi and taja boiled with milk, is given in rehumatism, gout, and epilepsy; also in general cachexia, scrofula seminal weakness and constitutional tertiary syphilis. The rhizome is made into a paste and applied to swelled hands and feet in general obesity. (R.N. Khory, Vol. II, p. 585). "The authors of the *Makhzan-el Adwiya* has a long article upon its medicinal virtues. He also notices particularly the valuable appearance of different samples of the drug, and directs that what is heavy, of a rose colour, and free from knots is to be selected. He tells that the fresh root is some times brought to India; some of this he pulanted at Moorshedabad. (A.H. 1178); It produced a climbing stem with small elongated leaves, not unlike a bamboo; after a year's time he dug it up, but found that the roots had degenerated and did not retain the qualities of China article. "The reported good effects of china-root on the Emperor Charles V., who was suffering from gout, acquired for the drug a great

celebrity in Europe, and several works written in praise of its virtues. But though its powers were soon found to have been greatly over rated, it still retained some reputation as a sudorific and alterative, and was much used at the end of the 17th century in the same way as sarsaparilla. It still retains a place in some modern Pharmacopoeias. (Dymock, Vol. III, p. 501).

जिङ्गिनी
Odina Wodier

जिङ्गिनी—*Odina Wodier.*

अन्वर्थसंज्ञा—"सुनिर्यासा"। जिङ्गिनी मधुरा सोष्णा कषाया व्रणशोधिनी। कटुका व्रणहृद्रोगवातातिसारहृत् पटुः॥ तमालशालवद्वेद्या दाहविस्फोटहृत् पुनः॥ भावप्रकाशः॥ वातघ्नी मधुरोष्णा च व्रणघ्नी योनिशोधिनी। जिङ्गिनी कटुका पाके तथातिसारनाशनी॥ राजवल्लभः॥

जिङ्गिनी (Odina Wodier.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- जिङ्गिनी। हि.- जिङ्गिनी कासमल्ला। बं.- जिओल। ते.- गरियना। ले.- Odina Wodier।

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा- सुनिर्यासा।

गुण एवं दोष-

भावप्रकाश के अनुसार- जिङ्गिनी मधुर, उष्ण एवं कषाय रस है तथा व्रणशोधक है। यह कटु रस है और व्रण, हृदय रोग, वात रोग तथा अतिसार को दूर करती है तथा पटु (नेत्ररोग दूर करनेवाली) है। यह तमाल शाल की तरह जानने योग्य है और दाह, विस्फोट को दूर करनेवाली है।

राजवल्लभ के अनुसार- जिङ्गिनी वातनाशक, मधुररस, उष्ण, व्रणनाशक तथा योनिशोधक है। यह पाक में कटु है तथा अतिसार नाशक है।

Constituents—The bark contains tannin and ash, the contains considerable quantity of potassium, carbonate and hence deliquescent. **Actions and uses**—Astringent used as a gargle for the mouth; also as a lotion for skin eruptions. The bark mixed with Neem oil is said to be very useful application for chronic ulcers. The gum beaten up with brandy is used as an application to sprains and bruises. The gum is given internally in asthma and as a cordial to woman during lactation. (R.N. Khory, Vol. II, p. 165). "In the Pharmacopoeia of India the astringent properties of the bark are noticed, and its use as a lotions in impetiginous eruptions and obstinate ulcerations. A decoction of the bark is recommended by Dr. B. Bose as an astringent gargle. At Pondicherry the bark is administered in gout and dysentery; it has a stimulant action. (Dymock, Vol. I, p. 393).

ढेंड़श
Hibiscus Cancellatus

ढेंड़श—*Hibiscus Cancellatus. Eng.—Edible Hibiscus.*

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- पिच्छिला। हि.- राम तरोई। बं.- ढेंड़श। ता.- भेण्डमिकेक्। ते.- वेण्डाकार। गु.- भिण्डु। अ.- वनिया। अं.- Edible Hibiscus। ले.- Hibiscus Cancellatus।

Constituents—Fresh capsules contain pectin, stranch, mucilage and ashes, rich in salts of potash, lime and magnesia, the ripe seeds contain phosphoric acid. **Actions and uses**—Emollient demulcent, diuretic, cooling and aphrodisiac, given in irritation of the throat, catarrh of the bladder, dysuria, and gonorrhoea. (R.N. Khory, Vol. II, p. 91). "Mahomedan writers describe it as cold and moist and beneficial to people of a hot temperament. *Roxburgh* considers it to be nourishing as well as mucilaginous and recommends it as a valuable soothing and demulcent remedy in irritation of the throat caused by coughing. In the Bengal Dispensatory a lozenge is recommended." (Dymock, Vol. I, p. 211).

ताम्रकूटः

Nicotiana Tabacum

ताम्रकूटः, कलञ्जः—*Nicotiana Tabacum.*

तमाखुः पित्तलस्तीक्ष्णश्चोष्णो वस्तिविशोधनः। मदकृद्भ्रामकस्तिक्तो दृष्टिमान्द्यकरः सरः॥ वामकः कटुको रुच्यो वातस्यानुविलोमकः। कफकासश्वासवातकोष्ठवातकृमीञ्जयेत्॥ दन्तशुक्रदूष्टिरुजो लिक्षायूकादिकान् गदान्। वृश्चिकादिविषं शोथं नाशयेदिति कीर्त्तितम्॥ शालिग्रामनिघण्टुः॥ कलञ्जसंवेष्टनधूमपानात् स्याद्दन्तशुद्धिर्मुखरोगहानिः। कफघ्नमामज्वरहानिकृच्च गान्धर्वविद्याप्रवणैकसेव्यम्॥ विष्णुसिद्धान्तसारावली॥ शिरोगदच्छित् क्षवणः कलञ्जो वम्यो विषं विश्वविषस्य हन्ता। कलञ्जसंवेष्टनधूमपानात् स्याद्दन्तशुद्धिर्मुखरोगहानिः॥ कश्चित्॥

ताम्रकूटः, कलञ्जः (Nicotiana Tabacum.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- ताम्रकूटः, कलञ्जः। हि.- तमाखु। बं.- तामाक, तामाकु। म.- तम्बाखु। गु.- तमाकु। फा.- तम्बाकु। अ.- तम्बाक। ले.- Nicotiana Tabacum। अं.- Nicotiane Tobacco।

गुण एवं दोष-

शालिग्राम निघण्टु के अनुसार-तमाखू पित्तकारक, तीक्ष्ण तथा उष्ण है और वस्तिशोधक है। यह मदकारक है, भ्रमकारक है, तिक्त रस है तथा नेत्र शक्ति को मन्द करता है और सारक है। यह वमन कराने वाला है, कटुरस है, रुचिकारक है तथा वात का अनुलोमन करने वाला है। यह कफ विकार, कास, श्वास, वात, कोष्ठवात तथा क्रिमिरोग को दूर करता है। यह दन्त विकार, नेत्र, शुक्र रोग, लीख, यूका आदि रोग, विच्छू आदिका विष तथा शोथ का नाश करता है ऐसा कहा गया है।

विष्णुसिद्धान्त सारावली के अनुसार- कलञ्ज (तमाखु) खाने तथा धूम्रपान करने से दन्त शुद्धि होती है तथा मुख रोग का नाश होता है। यह कफ नाशक है, आम ज्वर का नाश करता है। गन्धर्व विद्या जाननेवाले (गायकों) के लिए सेवन के योग्य है।

किसी के मत के अनुसार- शिरो रोग का नाश करता है तथा छींक लानेवाला है। यह वमन कारक विष है, विश्व के विष का नाश करनेवाला है। कलञ्ज मुख में खाने तथा धूम्रपान करने से दन्त शुद्धि करता है तथा मुख रोग का नाश करता है।

Constituents—Nicotine—a liquid alkaloid, Nicotianin a volatile sable camphoraceouus principle. resin, albumen, gum, extractive matter and ash, containing a large amount of salts as sulphates, nitrates, chlorides, phosphates, malates and citrates of potassium, ammonium calcium &c. **Actions and uses**—The juice of the leaves is sedative and antispasmodic. Dry leaves are irritant, nauseating, emetic and sometimes purgative, in small doses, tobacco stimulates the secorting glands as the saliva, the intestinal secretions and the urine. It lessens the sense of excessive exertion and fatigue. It keeps the bowels free. In some persons it usually causes vomiting. In large doses and if taken for a long time it produces tremors, clonic spasms, contracted pupils, depression of the heart, cold skin and profuse sweats. In toxic doses, it leads to coma, and death by paralysis of the heart and respiration smoking or chewing tobacco leaves to excess, causes, irritation of the fauces, pharynx and stomach, leading to dyspepsia to great nervous depression, impaired sexual appetite and even to angina. It interfers with nutrition, digestion and assimilation, and hence smoking is very injurious in the young. In a few casses, it leads cardiac hypertrophy, cardic dilatation and even cardiac valvular lesion. Nicotina, Nicotine or Nicotia is the poisonous principle. Its quantity varies greatly in different specimens. To obtain it add potassa to concentrated acidulated infusion of the leaves, shake with ether to dissolve the alkaloid, add oxalic acid to form nicotine oxalate; this is precepitated by ether. It is a colourless volatile oily liquid; taste acrid, odour strong and disagreeable; exposed to the air it rapidly becomes brown. It forms soluble salts with acids; soluble in water also in alcohol and ether. Does $^1/_{10}$ to $^1/_6$ gr. given in tetanus, and strychinine poisoning.

According to some, tobacco smoke contains no nicotine, but in its stead it contains a series of empyreumatic decomposition products as pyridine, picoline, collidine, parvoline, &c. In the smoke of tobacco used for pipe, pyridine is found in the largest quantity; whereas in cigars, where there is free access of air, collidine predominates. Tobacco smoke also contants about 9 p.c. of carbon dioxide; and such substances as hydrocyanic acid, creosote, hydrogen sulphide gas and acetic carbolic and valerianic acids. Nicotine is a violent gastric irritant. It often leads to vomiting and collapse. Its action is very rapid, and fatal, results follow in a few minutes. Given in minimum doses internally or 2 minims by the rectum, it relieves spasm in tetanus and in strychnine poisoning. gr. $^1/_{24}$ hypodernically injected is also very effective. Tobacco may be given as a diuretic in renal dropsy and as an anti-spasmodic in emphysema, asthma, whooping cough, obstinate hiccough nomphomania, chordee and to relieve colic. It may also be used as inhalation, in nasal polypi, nasal catarrh, headache, chronic giddiness and fainting. The leaves are made hot and applied to the abdomen in colic and gripes, and to the spine in tetanus. The upper surface of the leaf painted with silarasa is used as an application to the painful swelling of the testes in orchitis. Fresh leaves when bruised are locally applied as a palliative in urticaria, gouty and rheumatic painful joints and to the abdomen in lead colic. The natives use a course powder or thin slices of the leaves to smoke in hukka or to chew it in the mouth. Moderate tobacco smoking is considered to be calmative, and cardiac, sedative, disinfectant, and good for

fumigating rooms. A very fine powder of the leaves known as tapkhir (snuff) is often used as a tooth powder (R.N. Khory, Vol. II, pp. 446-7). There can be no doubt that the moderate use of tobacco smoking is not injurious to a great many people, but it is equally certain that on some constitution it produces mischievous effects. For a full account of the injurious action of the excessive use of the herb by smoking, snuffing or chewing Stille's therapeutics may be consulted. He shows that it lessons the natural appetite more or less impairs digestion and induces constipation, while it irritate the mouth and throat rendering it habitually congested and imparing the puriety of voice. It induces a constant sense of uneasiness and nervousness, with epigastric sinking or tension palpitation (irritable heart) hypochondriasis, impaired memory, neuralgia, and frequent urination. Chewing and snuffing tend to cause gastralgia, but smoking causes neuralgia of the fifth pair. It renders vision weak and uncertain, causing objects to appear nebulous, or creates muscae volitantes and similar subjective perceptions. Analogous derangements of hearing occur, with buzzing, ringing &c. In the ears, and even hallucinations of this sense. Often there is a feeling of a rush of blood to the head, with vertigo and impairment of attention, so as to prevent continuous mental effort; the mind is also apt to be filled with crude and groundless fancies leading to self-distruct and melancholy. The sleep is frequently restless and disturbed by distressing dreams. It impairs muscular power and co-ordination, probably both by interfering with nutrition and by exhausting nervous force an usually keeps down the growth of muscle and the deposit of fat. Lander-Brunton remarks that effect produced on the system by tobacco smoking may be partly due to nicotine, but are probably rather due to products of its decomposition, such as pyridine and collidine. In pipe smoking pyridine preponderates, but when tobacco is smoked in cigars, where there is free access of air, the chief product of the dry distillation undergone by the tobacco is collidine, which is far less active than pyridine and this may partly account for the fact that many Europeans who have resided for some years in India, are unable to smoke a pipe but can smoke many times the equivalent of a pipeful of tobacco in the from of cigars with impunity. (Dymock, Vol. II, pp. 638-9).

त्वक्

Cinnamon

वराङ्गम्, गुडत्वक्, सैंहलम्–*Ceylon Cinnamon;* त्वक्पत्रम्, लाटपर्णम्–*Indian Cinnamon. Cinnamomum Iners, C. Nitidum.*

भेदः–सैंहलम्, लाटपर्णञ्च। अन्वर्थसंज्ञा– "सुरभिवल्कलम्", "हृद्यम्", "बल्यम्", "कामवल्लभम्", "मुखशोधनम्"॥ वराङ्गं लघुतीक्ष्णोष्णं कफवात-विषापहम्। कण्ठवक्त्ररुजो हन्ति शिरोरुग्वस्ति-शोधनम्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ त्वचन्तु कटुकं शीतं कफकासविनाशनम्। शुक्लामशमनञ्चैव कण्ठशुद्धिकरं लघु॥ राजनिघण्टुः॥ त्वचं लघूष्णं कटुकं स्वादु तिक्तञ्च रूक्षकम्। पित्तलं कफवातघ्नं कण्ड्वामारुचिनाशनम्॥ हृद्वस्तिरोगवातार्शःकृमिपीनसशुक्रहृत्। उक्ता दारुसिता स्वाद्वी तिक्ता चानिलपित्तहृत्॥ सुरभिः शुक्रला वर्ण्या मुखशोषतृषापहा॥ भावप्रकाशः॥ वह्निमान्द्यानिलहर-माध्मानक्षेपनाशनम्। वान्त्युत्क्लेशप्रशमनं सङ्ग्राहि दशनार्त्तिहृत्॥ त्वाचं तैलं रजःस्त्रावि तोये क्षिप्तं निमज्जति॥ आत्रेयसंहिता॥

वराङ्गम्, गुडत्वक्, सैंहलम्–Ceylon Cinnamon; त्वक्पत्रम्, लाटपर्णम्–Indian Cinnamon. Cinnamomum Iners, C. Nitidum.

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- वराङ्गम्, त्वक्पत्रम्। हि.- डालचिनि। बं.- दारुचिनि। ले.- Cinnamon।

त्वक् के भेद- सैंहल, लाटपर्ण। **अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा-** सुरभिवल्कलम्, बल्यम, कामवल्लभम्, मुखशोधनम्।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीयनिघण्टु के अनुसार- बराङ्ग लघु, तीक्ष्ण तथा उष्ण है और कफ विकार, वात विकार एवं विष का नाश करता है। यह कण्ठ तथा मुख के रोग का नाश करता है। शिर की पीड़ा तथा वस्ति का शोधन करता है।

राजनिघण्टु के अनुसार- त्वक् कटुरस तथा शीतल है और कफ विकार एवं कास रोग का नाश करता है, सफेद आम को शान्त करता है तथा कण्ठ को शुद्ध करता है एवं लघु है।

भावप्रकाश के अनुसार- त्वक् लघु, उष्ण, कटुरस, स्वादिष्ट, तिक्त रस, रूक्ष, पित्तकारक, कफवात नाशक है तथा कण्डू, आम विकार तथा अरुचि का नाश करता है। यह हृदय रोग, वस्ति रोग, वात रोग, अर्श रोग, क्रिमिरोग, पीनस रोग तथा नेत्र शुक्र (फूली) का नाश करता है। पूर्वोक्त दारुंसिता स्वादिष्ट तथा तिक्त रस है और अनिल तथा पित्त को दूर करता है। यह सुगन्धित है, वीर्यवर्द्धक है, वर्णकारक है तथा मुखदोष एवं प्यास का नाश करती है।

आत्रेय संहिता के अनुसार- त्वक् (दालचीनी) का तैल मन्दाग्नि को दूर करता है, वातनाशक है, आध्मान नाशक है, आक्षेप नाशक है, वमन तथा उवकाई को शान्त करता है, ग्राही है तथा दाँत की पीड़ा को दूर करता है। यह रक्त रजास्रावी है तथा जल में छोड़ने पर डूब जाता है।

Constituents—Volatile oil, 2 p.c., cinnamic acid, resin, tannin, sugar, mannit, starch, mucilage, ash, &c. **Actions and uses**—The bark is an agreeable, carminative, antispasmodic, aromatic, stimulant, astringent and germicide, and is used as adjunct to other medicines. The oil has no astringency. It is a Vascular and nervine stimulant. In large doses the oil is an irritant and narcotic poison. In medicinal doses it is a good remedy for flatulence, paralysis of the tongue, enteralgia and cramps in the stomach; also to check nausea and vomiting. As an antiseptic it is used as an injection in gonorrhoea. As a germicide, it destroys the pathogenic bacilli and is used internally in typhoid fever. The bark is haemostatic, and has a specific action on the uterus and is given with other uterine haemorrhages; also given in flatulence, nausea, vomiting and to check diarrhoea and the gripes caused by other medicines. Cinnamic acid is antitubercular and is used as an injection in phthisis. (R.N. Khory, Vol. II, p. 528).

पुदिनः

Mentha Sylvestris

पुदिनः, रोचनी–*Mentha Sylvestris.*

अन्वर्थसंज्ञा– "वान्तिहारी", "अजीर्णहरः", "रुच्यः", "शाकशोभनः", "सुगन्धिपत्रः"।

पुदिनस्तु गुरुः स्वादूरुच्यो हृद्यः सुखावहः। मलमूत्रस्तम्भकरः कफकास-मदापहः॥ अग्निमान्द्यविसूचीघ्नः सङ्ग्रहण्यतिसारहा। जीर्णज्वरं कृमींश्चैव नाशयेदिति कीर्त्तितम्॥ निघण्टु-रत्नाकरः॥ रोचनी वह्निजननी वक्त्रजाड्यनिषूदनी। कफवातहरी बल्या छर्द्यरोचकवारिणी॥ आयुर्वेदविज्ञानम्॥

पुदिनः, रोचनी (Mentha Sylvestris.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- पुदिनः, रोचनी। हि.- पोदिना। बं.- पूदिना। गु.- फुदिना। फा.- पूरम्। अ.- तूदलज्। अं.- Wild mint। ले.- Mantha Sylvestris।

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा- वान्तिहारी, अजीर्णहरः, रुच्यः, शकशोभनः, सुगन्धिपत्रः।

गुण एवं दोष-

निघण्टुरत्नाकर के अनुसार- पुदिन (पुदीना) गुरु, स्वादिष्ट, रुचिकारक, हृद्य तथा सुख को देनेवाला है। यह मल तथा मूत्र को रोकनेवाला है, कफ विकार, कास तथा मद को दूर करनेवाला है। यह मन्दाग्नि तथा विसूचिका को दूर करनेवाला है तथा ग्रहणी एवं अतिसार का नाश करता है। यह जीर्णज्वर तथा क्रिमिरोग का नाश करता है ऐसा कहा गया है।

आयुर्वेदविज्ञान के अनुसार- पुदीना रोचक है, जाठराग्निवर्द्धक है, मुख की जड़ता का नाश करनेवाली है, कफ-वात नाशक है, बलकारक है, वमन तथा अरुचि को दूर करनेवाली है।

Constituents—A volatile oil similar in composition to peppermint, but differing from it in odour and flavour; resin, gum and tannin. **Actions and uses—**Stimulant, carminiative and stomachic; given in hiccough, vomiting &c. A vapour of the leaves is largely inhaled with olen chaha in catarrh and fevers. (R.N. Khory, Vol. II, p. 488). Different kinds of mint are used as domestic remedies on account of their stimulant and carminative properties. They are often made into a medicinal chutney which is eaten to remove a bad taste in the mouth in febrile conditions of the body, e.g., pudina, kharik (dry dates), black peper, rock salt, raisins and cumin in equal proportions are rubbed into a chutney with lime juice. (Dymock, Vol. III, p. 103).

पेंपे

Carica Papaya

पेंपे—*Carica Papaya. Eng.—Papaw.*

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- पेंपिया। बं.- पेंपिया। ता.- पप्पालि मरान। ते.- वपेया पण्डु। अं.- Papaw। ले.- Carica Papaya।

Constituents—The juice contains an albuminoid, digestive or milk curdling forment—papain or Papayotin. **Papayotin—**A concentrated, active principle, obtained from the juice by pricipitation with alcohol. A whitish, amorphus eygroscopic powder, soluble in 75 p.c., of absolute alcohol, water and glycerine. Dose 2 to 10 grs. It is capable of digesting 200 times its

weight of fresh pressed blood fibrin. Its action is quicker than that of pepsin at higher temperatue, and does not require an addition of free acid. Seven grains of papayotin can digest one pint of milk. It acts as a solvent in alkaline solutions, and like pepsin it curdles milk. Dose 1 to 8 grains. The fresh fruit contains a caoutchouc-like subtance; soft yellow resin, fat, albuminoids, sugar, pectin, citric, tartaric and malic acids, dextrine, &c. The dried fruit contains a large amount of ash 84 p.c. which contains soda, potash and phosphoric acid. The seed contains an oil, papaya oil or caricin, an oil-like substance of a disagreeble taste and smell soluble in ether and alcohol; several acids; similar to palmitic acid, carica fat acid and a crystalline acid called papayic acid, a resin acid and a soft resin. Leaves contain an alkaloid called Carpaine. **Physiological action**—The action of the milky juice of the unripe fruit upon the raw meat is well known among Indian cooks. It is an enzyme, similar to pepsin, acting as a solvent in alkaline, acid or neutral solutions. It is a powerful digestive of meat albumen, forming true peptones. As a solvent of fibrin and other nitrogenous substances, the juice makes the meat tender, and is used as an anthelmintic, and for dyspepsia. Externally it is applied for ring worm and psoriasis, sometimes it is given as an emmenagogue. It is not precipitated like pepsin on boiling, but is precipitated by mineral acid, iodine, mercuric cloride. (R.N. Khory, Vol. II, pp. 301-2).

पेयारा

Guava

पेयारा–*Guava.*

विविध भाषाओं में नाम-

हि.- सरिफा। बं.- पेयारा। ता.- विल्लय गोया पव्यास। ते.- इराजाम् पण्डु। अ.- अमकट्। अं.- Guava।

Constituents—The bark contains tannin 27.4 p.c. Resin and crystals of calcium oxate. **Actions and uses**—Astringent the unripe fruit is undigestible, and often causes bilious vomiting and feverishness. The ripe fruit is edible but produces costiveness. The bark of white guava is astringent and the deocction is used along with other astringents, for chronic diarrhoea of children. It is also used as a wash in propalpsus. The leaves are astringent and stomachic, and are used to arrest vomiting in diarrhoea. The bark and leaves of the red variety are used to allay vomiting and diarrhoea in cholera. (R.N. Khory, Vol. II, p. 273).

फेनिल:

Sapindus Trifoliatus

रिठा, फेनिल:, अरिष्टक:–*Sapindus Trifoliatus. Eng.—Soapnut tree.*

अन्वर्थसंज्ञा– "रक्तबीज:", "पीतफेन:", "गर्भपातन:"॥ अरिष्टकस्त्रिदोषघ्नी ग्रहजिद्गर्भपातन:॥ भावप्रकाश:॥ रीठाकरञ्जस्तिक्तोष्ण: कटुस्निग्धश्च वातजित्। कफघ्न: कुष्ठकण्डूतिविष-विस्फोटनाशन:॥ राजनिघण्टु:॥ अरिष्टक: कटु: पाके तीक्ष्णोष्णो लेखनो गुरु:। दोषत्रयहरो गर्भपातनो गर्भशान्तिकृत्॥ तज्जलं वामकं पानान्नस्याच्छीर्षरुजापहम्। अर्द्धशीर्षव्यथां हन्ति वमनाद्विषनाशनम्॥ शालिग्रामनिघण्टु:।

रिठा, फेनिलः, अरिष्टकः (Sapindus Trifoliatus. Eng.—Soapnut tree.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- रिठा, फेनिलः, अरिष्टकः। हि.- रिठा। बं.- रिटा। ता.- पान्नानकटाइ। ते.- कुस्कुडु कयालु। गु.- अरिथा। अं.- Soapnut। ले.- Sapindus Trifoliatus।

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा- रक्तबीजः, पीतफेनः, गर्भपातनः।

गुण एवं दोष-

भावप्रकाश के अनुसार- अरिष्टक (रीठा) त्रिदोषनाशक, ग्रहबाधा को दूर करने वाला है तथा गर्भपातक है।

राजनिघण्टु के अनुसार- रीठा करञ्ज, तिक्त रस, उष्ण, कटुरस, स्निग्ध तथा वातहर है। यह कफनाशक है तथा कुष्ठ रोग, कण्डू, विष विकार तथा विस्फोटनाशक है।

शालिग्राम निघण्टु के अनुसार- अरिष्टक (रीठा) पाक में कटु रस, तीक्ष्ण, उष्ण, लेखन तथा गुरु है और तीन दोषों को दूर करनेवाली है, गर्भपातक है तथा गर्भशान्तिकारक है। रीठा का जल (क्वाथ) वमन करनेवाला है, पान करने से तथा नस्य लेने से सिर के रोग को दूर करती है। यह अधकपारी की व्यथा का नाश करती है, वमन कराने से विष का नाश करती है।

Constituents—Saponin 11.5 p.c., Glucose and pectin. The thick cotyledons contain white fat 30 p.c. It saponifies readily. **Actions and uses**—Expectorant, emetic, anthelmentic and purgative. Externally stimulant and irritant, used in asthma, colic, worms, and as a purge combined with scammony. Externally applied to the mucous membrane of the nose to rouse patients from insensibility in hysteria, epilepsy, hemicrania and melancholia; also applied to scrofulous and other glandular swelling and to the bites of venomous reptiles; used also to destroy pediculi and to wash and cleanse the hairs of the head. Pessaries made of the kernel of the seeds are used in ammenorrhoea and after childbirth to stimulate the uterus to a healthy contraction. (R.N. Rhory, Vol. II, p. 74) Fumigations with it are useful in hysteria and melancholy. The root is said to be useful as an expectorant. Rheed describes the tree as anti-arthritic, and says a bath is prepared with the leaves, and the root is administered internally. The bark is astringent. We have no record of the use of the fruit as a poison for human beings, doses of 70 grains and more appear to have injurious effect upon the system when taken as a purge." (Dymock, Vol. I, p. 368).

बाकुचिभेदः

Psoralia Corylifolia

वाकुचिभेदः, शिवत्रारिः–*Psoralia Corylifolia, Trifolium Uniflorum.*

शिवत्रारिर्वाकुचिभेदः कुष्ठदोषत्रयास्त्रजित्। वातरक्तहरो लेपात् सिध्म शिवत्रविनाशनः॥ आत्रेयसंहिता॥

वाकुचिभेदः, शिवत्रारिः (Psoralia Corylifolia, Trifolium Uniflorum.)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- वाकुचिभेदः, श्वित्रारिः। हि.- वाकुचि। बं.- बुचकिदाना। ले.- Psoralia Corylifolia, Trifolium Uniflorum।

गुण एवं दोष-

आत्रेय संहिता के अनुसार- श्वित्रारि वाकुची का भेद है और यह कुष्ठ रोग, तीनों दोष तथा रक्त विकार को दूर करता है। यह लेप करने से वातरक्त को शान्त करता है तथा सिध्म (सिहुणा) एवं श्वित्र (सफेद कुष्ठ) का नाश करता है।

Constituents—A colourless oil, extractive metter 13.5 p.c., albumen, sugar, ash, 7.5 p.c. Containing a trace of manganese. **Actions and uses**—Seeds are alterative nervine tonic, laxative, aphrodisiac and stimulant; given in leprosy and chronic skin diseases. (R.N. Khory, Vol. II, p. 525). Some years ago the seeds were extensively tried in Bombay by Dr. Bhao Daji and others, as a remedy in leprosy, with same success. Dr. Kanay Lall Dey strongly recommends the oleoresinous extract of the seeds diluted with simple unguents as an application in leucoderma. He says "After application for same days the white patches appear to become red or vascular; some times a slightly plainful sensation is felt, occasionally some small visicles or pimples appear, and if these be allowed to remain undisturbed, they dry up, leaving a dark spot of pigmentary matters gradually develope, which ultimately coalesce with each other, and thus the whole patch disappears. It is also remarkable that the appearance of fresh patches is arrested by its application. (Dymock, Vol. 1, p. 413).

बिम्बी

Cephalandra Indica

बिम्बी, तुण्डिका, कटुतुण्डी–*Cephalandra Indica.*

भेदः– बिम्बी मधुरबिम्वी च॥ तुण्डिका कफपित्तासृक्शोफपाण्डुज्वरापहा। श्वासकासापहं स्तन्यं फलं वातकफापहम्॥ 'बिम्बीफलं' स्वादु शीतं स्तम्भनं लेखनं गुरु। पित्तास्त्रदाहशोफघ्नं वाताध्मानविबन्धकृत्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ 'कटुतुण्डी' कटुस्तिक्ता कफवान्तिविषापहा। अरोचकास्त्रपित्तघ्नी सदा पथ्या च रोचनी॥ 'बिम्बी' तु मधुरा शीता पित्तश्वासकफापहा। असृग्ज्वरहरा रम्या कासजिद् 'गृहबिम्बीका'॥ राजनिघण्टुः॥ 'बिम्बीफलं' स्वादु शीतं गुरु पित्तास्त्रवातजित्। स्तम्भनं लेखनं रुच्यं विबन्धाऽऽध्मानकारकम्॥ भावप्रकाशः॥

बिम्बी, तुण्डिका, कटुतुण्डी (Cephalandra Indica)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- बिम्बी, तुण्डिका, कुटुतुण्डी। हि.- कडवी कन्टूरी। बं.- तोलाकुचा। म.- कडु तेण्डली। गु.- कडवी घोली। क.- तीत कुन्दुरु। ले.- Cephalandra Indica।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- तुण्डिका कफ विकार, पित्त विकार, रक्त विकार, शोथ, पाण्डु तथा ज्वर

का नाश करती है, श्वास तथा कास को दूर करती है, दूध बढ़ाने वाली है और बिम्बी का फल वात-कफ नाशक है। बिम्बी फल स्वादिष्ट, शीतल, स्तम्भक, लेखन तथा गुरु है। यह पित्त रोग, रक्त रोग, दाह तथा शोथ का नाशक है और वात रोग, आध्मान तथा विबन्धकारक है।

राजनिघण्टु के अनुसार- कटुतुण्डी (कड़वी बिम्बी) कटु रस तथा तिक्त रस है तथा वात, आध्मान तथा विबन्धकारक है। यह अरोचक तथा रक्त पित्त का नाश करती है। सदा पथ्य है तथा रुचिकारक है। बिम्बी मधुर रस तथा शीतल है और पित्त रोग, श्वास रोग तथा कफ रोग का नाश करती है। यह रक्त प्रदर तथा ज्वर को दूर करती है, रम्य है एवं काश नाशक है।

भावप्रकाश के अनुसार- बिम्बी फल स्वादिष्ट, शीतल तथा गुरु है और पित्त रोग, रक्त रोग तथा वात रोग को दूर करता है। यह स्तम्भन कारक है, लेखन है, रुचिकारक है तथा विबन्ध एवं आध्मानकारक है।

Constituents—The dried powder contains resin and an alkaloid starch, sugar, gum, fatty matter, an organic acid and ash 16 p.c. which contains no manganese. **Actions and uses—** Alterative; given in diabetes, enlarged glands and in skin diseases such as pityriasis. (R.N. Khory, Vol. II, p. 307).

"The root and juice of the leaves are used medicinally. The wild fruit is very bitter, but that of the cultivated form is sweet and is much used as a vegetable. In Hindu medicine the juice of the tuberous root is used as an adjunct to the metalic preparations prescribed in diabetes in doses of one tola (180 grs.) every morning. Dutt States that he has known several patients who were benefited by its use. *Ainslic* notices its use in southern India, and says that the juice of the leaves is applied to the bites of animals. Moodeen Sheriff states that in the bazars of the South the root is sold as a substitute for caper root. In the concan the root pounded with the juice of the leaves is applied to the whole body to induce perspiration in fever and the green fruit is chewed to cure sores on the tongue. (Dymock, Vol. II, p. 86).

विहिदाना

Pyrus Cydonia

विहिदाना–*Pyrus Cydonia. Eng.—Quince seed.*

विविध भाषाओं में नाम-

हि.-बं.- विहिदाना, मोगलाइ विहिदाना। ता.- सिझइझ दालाइभिराइ। ते.- सिया-भालिया भिहेलु। अ.- नज्।

अ.- Quince seed। ले.- Pyrus Cydonia।

Constituents—The seeds contain a mucilage named cydonin, albuminous matter, fixed oil, an oily liquid which contains aenanthic ether, and ash 3.5 p.c., containing alkalies, alkaline earths, iron &c. **Actions and uses—**Cydonium or quince seeds are nutritive, astringent, demulcent and emollient, and given with sugar in cough dysentery, catarrhal affections of the throat and pulmonary mucous membrane; also used as a vehicle for injection in gonorrhoea and urinary disorders. Externally the mucilage is applied to burns and scalds. (R.N. Khory, Vol. II, p. 245).

भङ्गा

Cannabis Sativa

विजया, शक्राशनम्, त्रैलोक्यविजया, संविदा–*Cannabis Sativa.*

अन्वर्थसंज्ञा–"तन्द्राकृत्", "बहुवादिनी", "मादिनी"॥ भङ्गा कफहरी तिक्ता ग्राहिणी पाचनी लघुः। तीक्ष्णोष्णा पित्तला मोहमन्दवाग्वह्निवर्द्धिनी॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुर्भावप्रकाशश्च॥ मदनोद्दीपनी निद्राजननी हर्षदायिनी। धनुस्तम्भं जलत्रासं विसूचीञ्च मदात्ययम्॥ प्रवृत्तिं रजसो बह्वीं हन्त्यपत्यप्रसूतिकृत्॥ इति कश्चित्॥

विजया, शक्राशनम्, त्रैलोक्यविजया, संविदा (Cannabis Sativa)

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– विजया, शक्राशनम्, त्रैलोस्यविजया, संविदा, भङ्गा। हि.– भाङ्ग, सब्जि। ब.– भाङ्ग, सिद्धि। ता.– गञ्जा इलाइ। ते.– गञ्जा अकु। ले.– Cannabis Sativa।

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा– तन्द्राकृत्, बहुवादिनी, मादिनी।

गुण एवं दोष–

धन्वन्तरीय निघण्टु तथा भावप्रकाश के अनुसार– भङ्गा (भांग) कफहर, तिक्तरस, ग्राही, पाचन तथा लघु है। यह तीक्ष्ण, उष्ण तथा पित्तकारक है और मोहकारक, वाणी को मन्द करनेवाली तथा जाठराग्नि को बढ़ानेवाली है।

कुछ लोगों के मत के अनुसार– भांग मदन को उदीप्त करनेवाली, निद्रा जनक तथा हर्षदायक है और यह धनुस्तम्भ, जलसंत्रास, विसूची, मदात्यय, रज की प्रवृत्ति तथा अग्नि का नाश करती है तथा अपत्यप्रसव कारक है।

Constitutents—A volatile oil and resin, which is the most active principle, and contains an alkaloid cannabine, tetano cannabine and cannabinon; gum, sugar, and potassium nitrate. "They use Bhang in gonorrhoea and deyspepsia. Locally a decoction of the leaves is applied to erysipelas and neuralgic painful parts. Its application to the anus is used to relieve the pain of haemorrhoids. A paste applied to the head relieves dandruff and vermin. (R.N. Khory, Vol. II, p. 570).

"The medicinal properties of cannabis have now been investigated by many European physicians in India. O'shaughnessy tried it with more or less success in various diseases, especially in titanus hydrophobia, rheumatism, the convulsions of children and cholera. Subsequent experience has confirmed the value of the drug as a remedy in tetanus and cholera. In the former disease we have obtained most satisfactory results, large doses are required, and the patient must be kept under the influence of the drug for some days. In cholera its action may be compared with of opium; it is most likely to be sucessfuul when resorted to early in the disease. (Dymock, Vol. III, p. 325).

भाँट

Clerodendron Infortunatum

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- घण्टाकर्णः। हि.- भाँट। ब.- भाँट, भेंटकुल, भेंटु। ले.- Clerodendron Infortunatum।

Constituents—Resinous matter, bitter principle and tannin. **Actions and uses**—Bitter tonic, antiperiodic and vermifuge; also a good laxative; a decoction is some times given as a rectal enema for worms; also given as a bitter tonic during convalescence from acute diseases. As an antiperiodic it is given in malarial fever. (R.N. Khory, Vol. II, p. 470).

"Rheede states that the leaves of this plant are used as a vermifuge, and that the root rubbed down with buutter milk is administered in colic and lientery. Dr. Bholanath Bose has drawn attention to the leaves as a cheap and efficient substitute for chiratta. Brigade Surgeon J.H. Thornton considers the expressed juice of the leaves to be an excellent laxative, cholagogue and anthelmintic; also a valuable bitter tonic, and useful as an injection into the rectum for the destruction of ascarides. These opinions are supported by those of six other medical officers quoted by Dr. G. Watt in the *Dictionary of the Economic Products of India,* Vol. II, p. 373. (Dymock, Vol. III, pp. 79-80).

भूर्जपत्रकः

Betula Alnoides

भूर्जः—*Betula Alnoides.*

अन्वर्थसंज्ञा—"वल्कद्रुमः", "सुचर्मा", "चित्रत्वक्", "बिन्दुपत्रः", "शैलेन्द्रस्थः"॥ भूर्जः कटुकषायोष्णो भूतरक्षाकरः परः। त्रिदोषशमनः पथ्यो दुष्टकौटिल्यनाशनः॥ राजनिघण्टुः॥ भूर्जो बलकरः श्लेष्मकर्णरुक्पित्तरक्तजित्। कषायं कटुरुष्णश्च मेदोविषहरः परः॥ भावप्रकाशः॥ भूर्जो बल्यःकफास्त्रघ्नः॥ राजवल्लभः॥

भूर्जः (Betula Alnoides)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- भूर्गः। हि.- भूर्जपत्र, भोजपत्र। बं.- भुज्जिपत्र। ले.- Betula Alnoides।

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा- वल्कद्रुमः, सुचर्मा, चित्रत्वक्, बिन्दुपत्रः, शैलेन्द्रस्थः।

गुण एवं दोष-

राजनिघण्टु के अनुसार- भूर्ज (भोजपत्र) कटुरस, कषायरस तथा उष्ण है और उत्तम भूतबाधा से रक्षा करनेवाला है। यह त्रिदोष शामक है, पथ्य है, दुष्ट कुटिलता नाशक है।

भावप्रकाश के अनुसार- भूर्ज बलकारक, कफरोग, कर्ण रोग, पित्त रोग तथा रक्त रोग को दूर करता है। यह कषाय रस है, कटु रस है तथा उष्ण है तथा मेदो विकार तथा विष को दूर करता है।

राजवल्लभ के अनुसार- भूर्ज (भोजपत्र) बलकारक तथा कफविकार एवं रक्त विकार का नाश करता है।

मायाफलम्

Quercus infectoria

मायाफलम्, मायुकम्, मज्जफलम्–*Quercus infectoria. Eng.—Dyer's Oak.*

अन्वर्थसंज्ञा– "छिद्राफलम्"॥ मायाफलं वातहरं कटूष्णकम्। शैथिल्यसङ्कोचककेशकार्ण्यदम्। राजनिघण्टुः॥ मायुकं शीतलं रूक्षं कषायं लघु दीपनम्। विपाके कटुकं ग्राहि कफपित्तहरं परम्॥ शोढलनिघण्टुः॥ कीटावासो मज्जफलं ग्राहि बल्यं ज्वरापहम्। शोणितस्रुतिहृद्धन्ति मुखदन्तगतान्। गदान्। श्वेतप्रदरमर्शांसि योनिकन्दं सुदारुणम्। अतीसारं महाघोरं ग्रहणीं सप्रवाहिकाम्। कश्चित्॥

मायाफलम्, मायुकम्, मज्जफलम् (Quercus infectoria. Eng.—Dyer's Oak.)

विविध भाषाओं में नाम–

सं.– मायाफलम्, मायुकम्, मज्जफलम्। हि.– मायाफल। बं.– माजुफल। अं.– Dyer's Oak। ले.– Quercus infectoria।

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा– छिद्राफलम्।

गुण एवं दोष–

राजनिघण्टु के अनुसार– माया फल वातहर, कटुरस, तथा उष्ण है और शिथिलताकारक, संकोचक है एवं केश को काला करनेवाला है।

शोढल निघण्टु के अनुसार– मायुक (मायाफल) शीतल, रूक्ष, कषाय रस, लघु तथा जाठराग्नि दीपक है, विपाक में कटु है, ग्राही है तथा उत्तम कफपित्तहर है।

कुछ लोगों के मत के अनुसार– कीटावास मज्ज-फल ग्राही, बलकारक, ज्वरनाशक तथा रक्तस्रावहर है और मुख तथा दन्त के रोगों का नाश करता है। यह श्वेत प्रदर, अर्शरोग, भयंकर योनिकन्द रोग, भयंकर अतिसार, ग्रहणी तथा प्रवाहिका का नाश करता है।

Constituents—Tannin 50 p.c., gallic acid 2 to 3 p.c., Ellagic acid, mucilage, sugar, resin and starch in the nucleus. **Actions and uses**—The galls are astringent and tonic. They constringe the muscular tissue in the walls of the minute vessels, check haemorrhage and cut short local inflammations. The natives use galls combined with pomegranate bark and baras kapur to check haemorrhage and use it locally as a gargle for relaxed throat and as an injection for relaxed vagina and rectum. (R.N. Khory, Vol. II, p. 564).

मिश्रेया

Pempinella Anisum

मिश्रेया, मिशिः,–*Pempinella Anisum.*

अन्वर्थसंज्ञा– "तालपर्णी", "अवाक्पुष्पी", "संहितपुष्पिका"॥ तिक्ता स्वादु हिमा वृष्या दुर्नामक्षयजिन्मिशिः। क्षतक्षीणहिता बल्या वातपित्तास्रदोषजित्॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ मिश्रेया मधुरा स्निग्धा कटुः कफहरा परा। वातपित्तोत्थदोषघ्नी प्लीहजन्तुविनाशनी॥ राजनिघण्टुः॥ मिश्रेया

तद्गुणा प्रोक्ता विशेषाद् योनिशूलहृत्। रूक्षोष्णा पाचनी कासवमिश्लेष्मानिलान् हरेत्॥ भावप्रकाश:॥

मिश्रेया, मिशि: (Pempinella Anisum)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- मिश्रेया, मिशि:। हि.- सोंप। बं.- मौरी। गु.- मिठा जीरा। फा.- रजियान्-इ- क्रमि। ता.- शम्बु। ते.- कुपिचेट्टु। ले.- Pempinella Anisum। अं.- Common Anisi।

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा- तालपर्णी, अवाक्पुष्पी, संहितपुष्पिका।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- मिसि (सौंफ) तिक्तरस, स्वादु रस, शीतल तथा वीर्यवर्द्धक है और अर्श रोग तथा क्षय रोग को जीत लेती है, क्षत क्षीण के रोगियों के लिए हितकर है, बलकारक है तथा वात, पित्त एवं रक्त दोष को दूर करती है।

राजनिघण्टु के अनुसार- मिश्रेया (सौंफ) मधुर, स्निग्ध, कटु रस तथा उत्तम कफ नाशक है। यह वात तथा पित्त जन्य दोष का नाश करती है और प्लीहा विकार एवं क्रिमि रोग का नाश करती है।

भावप्रकाश के अनुसार- मिश्रेया (सौंफ) मिसि के गुण से युक्त है तथा योनि शूल को दूर करती है। यह रूक्ष है, उष्ण है, पाचन है और कास, वमन, कफजन्य रोग एवं वातजन्य रोगों को दूर करती है।

Constituents—Volatile oil 1 to 3 p.c., fixed oil 3 to 4 p.c., sugar, mucilage and ash 7 p.c. **Actions and uses**—The volatile oil which is the active medicinal agent, is aromatic, slightly stimulant of the heart and digestive organs. It liquifies the bronchial secretion, hence it is used as expectorant; it is also carminative and stomachic and is used as a corrective to allay griping of purgative medicines. It is given in flatulence intestinal colic and in bowel complaints. It has a special influence on the bronchial tubes and is given in infantile bronchial catarrh, after the acute stage has passed away. In large doses it is slightly narcotic. Locally the oil is applied to the head to relieve the headache and to the abdomen to expel flatus, to the joints in rheumatism and round the ear in earache. (R.N. Khory, Vol. II, pp. 295-96).

मुक्तवर्षी

Acalypha Indica. A. Paniculata, Eng.—Indian Acalypha.

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- मुक्तवर्षी। हि.- कुप्पि, खोकालि। बं.- मुक्तझुरी, मुक्तवर्षी। गु.- दादरो। ता.- कुप्पाडमेनि। ते.- कुप्पाइ चेट्टु। अं.- Indian Acalypha। ले.- Acalypha Indica, A. Paniculata।

Constituents—An alkaloid, acalyphine. **Actions and uses**—Cathartic, emetic, expectorant and vermifuge. The infusion with a little garlic is used to expel worms in children. The decoction is a safe, speedy and sure laxative and emetic like senega or ipecacuanha. It increases the pulmonary secretions but does not cause any depression of the vital powers; given in pulmonary tuberculosis, croup, asthma, and bronchitis of children. Externally the decoction is used in

earache. The juice made into liniment with oil is used in rheumatism and venereal pains : with lime (chunam) it is used as an application in skin diseases. Cataplasm of leaves relieves pain attendant on bites of venomous insects; also recommended for syphilitic ulcers; suppository of bruised leaves relieves constipation in children. (R.N. Khory, Vol. II, p. 538). In the Pharmacopoeia of India (p. 205), the following reference to this plant by Dr. Bidie, of Madras, will be found—"The expressed juice of the leaves is in great repute, wherever the plant grows, as an emetic for children, and is safe certain and speedy in its action like Ipecacuanha, it seem to have little tendency to act on the bowels or depress the vital powers, and it decidedly increase the secretion of the pulmonary organs. The dose of the expressed juice for infant is a tea spoonful" Dr. E. Ross speaks highly of its use as an expectorant, ranking it in this respect with senega; he found it specially useful in the bronchitis of children. The purgative action of the root noticed by Rheede is confirmed by. Dr. H.E. Busteed, who has uused it as a laxative for children. In Bombay the plant has a reputation as an expectorant, hence the native name Khoki (cough). Brigade Surgeon Langley in a communication to Dr. Watt, Dict. Econ. Prod. Ind., Vol. I., writes—"This plant is called in Canara Chalmari as well as Kuppi. The natives, use it in congestive headache : A piece of cotton is saturated with the expressed juice and inserted into each nostril; his relieves the head symptoms by causing haemorrhage from the nose. The powder of the dry leaves is used in bedsores and wounds attacked by worms. In asthma and bronchitis I have employed it with benefit both for children and adults." Dr. Langley recommends a tincture of fresh herb made with spirits of ether (3 oz to one pint), dose 20 to 60 minims, frequently repeated during the day, in honey, it acts as an expectorant and nauseant, in large doses it is emetic. (Dymock, Vol. III., pp. 292-3).

मेथिका

Fenugreek

मेथी–*Eng. Fenugreek.*

अन्वर्थसंज्ञा– "बहुपर्णी", "पीतबीजा", "गन्धबीजा", "दीपनी", "शीतवीर्या"॥ मेथिका कटुरुष्णा च रक्तपित्तप्रकोपणी। अरोचकहरा दीप्तिकरी वात-प्रणाशिनी॥ राजनिघण्टुधन्वन्तरीय-निघण्टू॥ मेथिका वातशमनी श्लेष्मघ्नी ज्वरनाशिनी। ततः स्वल्पगुणा वन्या वाजिनां सा तु पूजिता॥ भावप्रकाश:॥

मेथी (Eng. Fenugreek)

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- मेथिका। हि.- मेथी। बं.- मेथी। ता.- वेण्डाम। ते.- मेतुलु। फा.- सेम्वालिता। अ.- हालवा सिमलेमम्। अं.- Fenugreek।

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा- बहुपर्णी, पीतबीजा, गन्धबीजा, दीपनी, शीत वीर्या।

गुण एवं दोष-

राजनिघण्टु एवं धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- मेथी कटुरस तथा उष्ण है और रक्तपित्त को प्रकुपित करती है, अरोचक को दूर करती है, अग्निदीपक है तथा वातनाशक है।

भावप्रकाश के अनुसार- मेथी वातशामक, कफनाशक तथा ज्वर-नाशक है। वनमेथी मेथी के गुणों से थोड़ा न्यून गुणवाली है। वह पीड़ा के लिए हितकर है।

Constituents—The cells of the testa contain tannin. The coty-ledons contain a yellow colouring matter, but no sugar; seeds contain a foetid bitter, fatty oil 6 p.c., also resin and mucilage 28 p.c. albumin 22 p.c., two alkaloids—choline (a base found in animal secretions), and trigonelline. The seeds on incineration leave ash 7 p.c. Containing Phosphoric acid 25 p.c. **Actions and uses**—Demulcent, tonic and carminative; given in dyspepsia with loss of appetite, rheumatism, and to puerperal women during confinement. In leucorrhoea the passaries of methi powder are used. (R.N. Khory, Vol. II, p. 233).

मेन्दी

Lawsonia Alba

मेन्दी–*Lawsonia Alba. Eng.—Henna.*

विविध भाषाओं में नाम-

हि.- मेहदी। बं.- मेन्दी, मेडदी। ते.- मोरन्टम्। फा.- हिन। अ.- हिन्ना अकान् काफल जुम्। अं.- Henna।

Constituents—Henno tannic acid—a kind of tannin resin and a colouring matter. **Actions and uses**—Arabic and Persian works describe the leaves as a valuable external application in headache, combined with oil so as to from a paste, to which resin is sometimes added. They are applied to the soles of the feet in small-pox and are supposed to prevent the eyes being affected by the disease. They also have the reputation of promotingthe healthy growth of the hair and nails. A decoction of the leaves is used as a astringent gargle. The bark is given in jaundice and enlargement of the spleen also in calculous affections and as an alterative in leprosy and obstinate skin diseases, in decoction it is applied to burns scalds, &c. An infusion of the flowers is said to cure headache and to be a good application to bruises; a pillow stuffed with them has the reputation of acting as a soporific. (Dr. Emerson). Ainslie notices the use of an extact prepared from the flowers and leawes by the Tamil physicians of Southern India as a remedy in leprosy half a tea spoonful twice a day being the dose. He also says that the leaves are applied externally applied in cutaneous affections. In the Concan the leaf juice mixed with water and sugar is given as a remedy for spermatorrhoea. (Dymock, Vol. II, p. 42).

रालः

The resin of Shorea Robusta

रालः, शालनिर्यासः, सर्ज्जरसः–*The resin of Shorea Robusta.*

अन्वर्थसंज्ञा–"बहुरूपः", "सुरभिः", "अग्निवल्लभः"॥ रालः स्वादुः कषायोष्णः स्तम्भनो व्रणरोपणः। विषादिभूतहन्ता च भग्नसन्धानकृन्मतः॥ धन्वन्तरीयनिघण्टुः॥ रालस्तु शिशिरः स्निग्धः कषायस्तिक्तसङ्ग्रहः। वातपित्तहरः स्फोटकण्डूतिव्रणनाशनः॥ राजनिघण्टुः॥ रालो हिमो गुरुस्तिक्तः कषायाग्रहको हरेत्। दोषास्त्रस्वेदविसर्पज्वरव्रणविषादिकाः॥ गुहभग्नाग्निदग्धास्त्र- शूलातिसारनाशनः॥

भावप्रकाशः॥ तैलं सर्जरसोद्भूतं विस्फोटव्रणनाशनम्। कुष्ठपामाकृमिहरं वातश्लेष्मामयापहम्॥ आत्रेयसंहिता॥

रालः, शालनिर्यासः, सर्जरसः–The resin of Shorea Robusta.

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- रालः, शालनिर्यासः, सर्जरसः। हि.- राल। बं.- धुना। म.- राष्ट। गु.- राल, सर्जरस। ते.- सर्जवनम्। फा.- रालममरेवी। अ.- किकहर। अं.- Yedlow Resin।

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा- बहुरूपः, सुरभिः, अग्निवल्लभः।

गुण एवं दोष-

धन्वन्तरीय निघण्टु के अनुसार- राल स्वादिष्ट, कषाय रस तथा उष्ण है, स्तम्भनकारक है, व्रणरोपक है, विषादि भूत बाधा का नाश करनेवाला है और भग्न संधानकारक है।

राजनिघण्टु के अनुसार- राल शीतल, स्निग्ध, कषाय रस, तिक्त रस तथा संग्राहक है। यह वात-पित्त-हर है तथा स्फोट, कण्डू तथा व्रण का नाश करता है।

भावप्रकाश के अनुसार- राल शीतल, गुरु, तिक्तरस, कषाय रस तथा ग्राही है और रक्त दोष, स्वेद, विसर्प, ज्वर, व्रण, विपादिका (वेवाई), ग्रहबाधा, भग्न, अग्नि दग्ध, रक्त विकार, शूल तथा अतिसार नाशक है।

आत्रेय संहिता के अनुसार- सर्जरस से उत्पन्न तैल विस्फोट तथा व्रण नाशक है। यह कुष्ठ, पामा तथा क्रिमिरोग को दूर करता है और वात रोग तथा कफ रोग का नाश करता है।

Actions and uses—Stimulant and demulcent. The native use it for fumigat sick rooms. Externally, as a plaster or ointment, it acts as a stimulant. A paste of it mixed with brandy and white of eggs is a very useful and soothing application for the relief of lumbago and other rheumatic pains. The natives use the powder of Rala as an astringent application to the relaxed uvula; it has also been tried in dysentery with some good results. (R.N. Khory. Vol. II, p. 86).

"The author of the Bengal Dispensatory, after conducting a series of experiments with genuine sal resin pronounced it to be an efficient substitute for pine resin. Dr. Sakharam Arjun states (Bomb. Drugs) that he has seen Shorea resin mixed with surgar, given with good effect in dysentery." (Dymock, Vol. I, p. 196).

लङ्कामरिच

Capsicum Minimum

कटुवीरा–*Capsicum Minimum.*

अन्वर्थसंज्ञा–"तीक्ष्णा", "तीव्रशक्तिः"॥ कटुवीराग्निजननी वलासघ्नी च दाहिनी। हन्त्यजीर्णं विसूचीञ्च व्रणं क्लिन्नं सुदारुणम्॥ तन्द्रां मोहं प्रलापञ्च स्वरभेद-मरोचकम्। नरं लुप्तधरं क्षीणं सन्निपातनिपीडितम्॥ नष्टेन्द्रियगणं तीक्ष्णा मृत्योराकृष्य जीवयेत्॥ आत्रेयसंहिता॥

कटुवीरा–Capsicum Minimum.

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- कटुवीरा। हि.- लालमिर्च। बं.- लङ्का, लङ्कामरिच, गाछ मरिच। ता.- गोलकण्डा। ते.- मिरचाकया। फा.- किक्कल-ई-सुर्ख। अ.- किल किल अहमद्। अं.- Red piper, chold। ले.- Capsicum Minimum।

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा- तीक्ष्णा, तीव्रशक्तिः।

गुण एवं दोष-

आत्रेय संहिता के अनुसार- कटुवीरा जाठराग्निजनक, कफनाशक तथा दाहकारक है और अजीर्ण, विषूचिका, व्रण, भयंकर क्लिन्नता, तन्द्रा, मेह, प्रलाप, स्वर भेद तथा अरोचक का नाश करता है। लुप्तधर, क्षीण, सन्निपात से पीड़ित, नष्ट इन्द्रियगण मनुष्य को तीक्ष्ण (लंकामरिच) मृत्यु को निकाल कर जीवन प्रदान करती है।

Constituents—Capsicin a volatile alkaloid; capsaicin—a crystalline substance; a volatile oil, fixed oil fatty acid, resin red colouring matter and ash 45 p.c. **Actions and uses**—A powerful local irritant; applied for a long time to the skin, it produces visication. In medicinal doses it stimulates the alimentary canal, gives rise to a burning sensation in the mouth increases the flow of saliva and gives sensation of warmth in the stomach, promotes the gastric juice, aids appetite and digestion and increases the peristalsis of the intestines. It stimulates the heart, skin and kidneys; as an aphrodisiac it stimulates the nervous and genital system. Like ergot it acts as a styptic upon the unstriped muscular fibers of the blood vessels. As an aphordisiac tonic it is given in functional impotence, spermatorrhoea, in chronic cystitis and catarrh of the prostrate. In parenchymatous nephritis it checks the waste of albumen. As a stomachic tonic with Nux vomica, it is used in atonic dyspepsia, chronic diarrhoea, colic, tympanitis, ague and extreme prostration, in dipsomania. It allays the craving usual in chronic alcoholism. It is given in delirium tremens in large doses with good results, also in opium habit. In sea-sickness, in malarial and other low fevers, gout, inhabitual constipation, haemorrhoids, in cholera it acts as a stimulant.

लङ्कासिज

Milk bush

लङ्कासिज—*Euphorbia Tirucalli. Eng.— Milk bush.*

विविध भाषाओं में नाम-

हि.- बजकिसेहुण्ड। बं.- लङ्कासिज। गु.- रणशिर। ते.- कडा चेमुडु। ता.- तिरुकल्ली। अं.- Milk bush। ले.- Euphorbia Tirucalli।

Constituents—Euphorbon, resin, gum, caoutchouc, malate of calcium & c. **Action and uses**—In small doses the juice is used as apurgative. It is applied as a vesicant to painful joints in rheumatism and neuratgia. The milky juice mixed with flour is considered very useful as a blister in syphilitic nodes. (R.N. Khory, Vol. II, p. 546)

शियालकाँटा

Mexican Popy

शियालकाँटा–*Argemone Mexicana. Eng.—Mexican Popy, Yellow Thistle.*

विविध भाषाओं में नाम-

हि.- भारमन्द, फरिङ्गि धुतरा, कुप्पिला। बं.- शियालकाँटा। गु.- पीलट धतुरा। ते.- ब्रफिदन्नि चेट्टु। ता.- विरम तन्तु। ले.- Argemone Mexicana। अं.- Mexican Popy।

Constituents—The leaves and capsules contain morphia, the seeds contain an oil 36 p.c. Carbohydrates and albumen 49 p.c. moisture 9 p.c. and ash 6 p.c. The ash contains alkaline phosphates and sulphates. **Actions and uses**—The juice is alterative and used in syphilis, leprosy and gonorrhoea along with the juice of Aristolochia bracteata. The seeds are narcotico-acrid. The oil and extract from the seeds are laxative and sedative, combining the action of castor-oil and Canabis Indica. The oil is used in cholera, dropsy, painful colic. As substitute for ipecacuanha, the seeds are given in dysentery and other intestinal affections. Locally the juice or the oil is used as a soothing application to indolent ulcers, herpetic eruptions, leucoderma, syphilitic ulcers and warts. It relieves strangury caused by blisters. Fresh root is applied to scorpion bites. (R.N. Khory, Vol. II, p. 40).

In the Concan the juice with milk is given in leprosy. The seeds and seed oil have been used by European physicians in India, and there has been much difference of opinion regarding their properties, some considering them inert and other asserting that the oil in doses of from 39-60 minims is a valuable remedy in dysentery and other affections of the intestinal canal. the evidence collected in India for the preparation of the Indian Pharmacopoeia strongly supports the latter opinion; our experience is also in favor of it; and *Charbonnier,* who examined the oil in 1868, found it aperient in small doses; possibly those who have used the oil unsuccessfully purchased it in the bazar; and were supplied with a mixed article; no bazar made oil can be relied upon. Further experiments with oil fully confirm this opinion. Fluckiger found 4 to 5 grammes to have a mild purgative effect. The smallness of the dose required to produce an aperient action, and the absence of any disagreeable taste, will probably lead to a more extended use of it as a substitute for castor-oil. An extract made from the whole plant has been found to have an aperient action, and the milky juice to promote healing of indolent ulcers. We have not noticed any bad effects from its application to the eyes. (Dymock, Vol. I, p. 110).

हस्तिशुण्डी

Heliotropium Indicum

हस्तिशुण्डी–*Heliotropium Indicum. H. Cordifolium, Eng.—Indian turn-sole.*

अन्वर्थसंज्ञा– "सरपत्रिका"॥ हस्तिशुण्डी कटूष्णा स्यात् सन्निपातज्वरापहा। राजनिघण्टुः।

हस्तिशुण्डी–Heliotropium Indicum. H. Cordifolium, Eng.—Indian turn-sole.

विविध भाषाओं में नाम-

सं.- हस्तिशुण्डी। हि.- हाथिशुंढ़। बं.- हातिशुंड़ा। गु.- हाति श्रुतमा। ता.- तलुमनि, नागदन्ती। ते.- तेलकटुक्का। अं.- Indian turn-sole। ले.- Heliotropium Indicum. H. Cordifolium।

अन्वर्थज्ञापिका संज्ञा- सरपत्रिका।

गुण एवं दोष-

राजनिघण्टु के अनुसार- हस्तिशुण्डी कटुरस तथा उष्ण और सन्निपात ज्वर का नाश करती है।

Constituent—Tannin, an organic acid and an alkaloid. **Actions and uses**— Local anodyne. The juice boiled with castor-oil is used to allay the pain of the sting of a scorpion and to cure the bite of a mad dog. The leaves are applied to painful gum boils and pimples on the face with benefit. (R.N. Khory, Vol. II, p. 422).

— ● —

चित्र-सूची

चित्र सूची

1



अंकोट (Alangium lamarckii) Page - 5

2



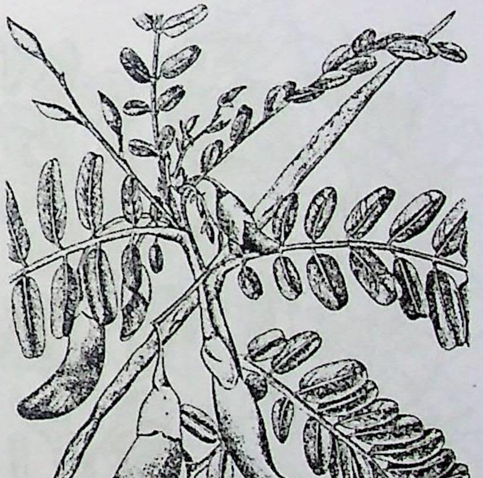
अर्क (Calotropis procera) Page - 17

3



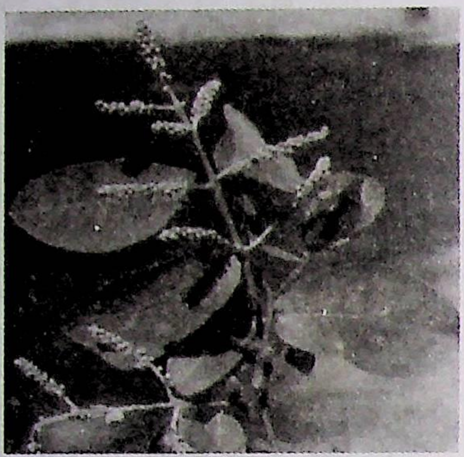
अगरु (Aquilaria agallocha) Page - 1

4



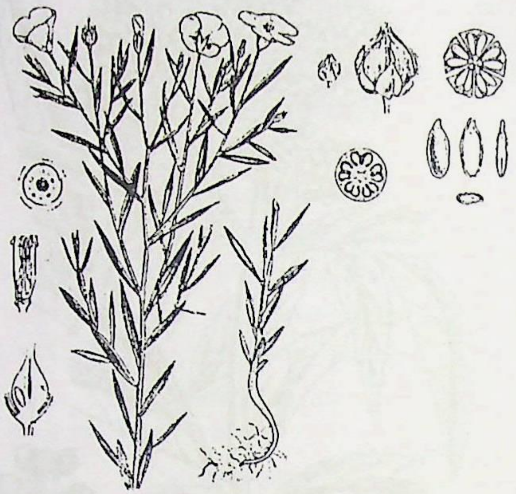
अगस्ति (Sesbania grandiflora) Page - 3

5



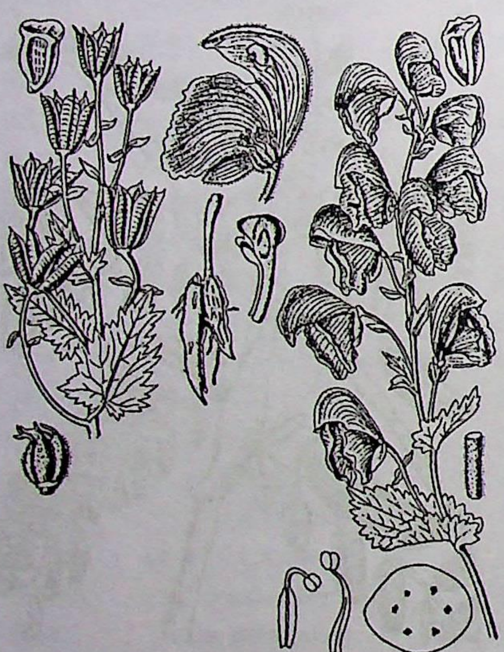
अर्जुन (Terminalia arjuna) Page - 21

6



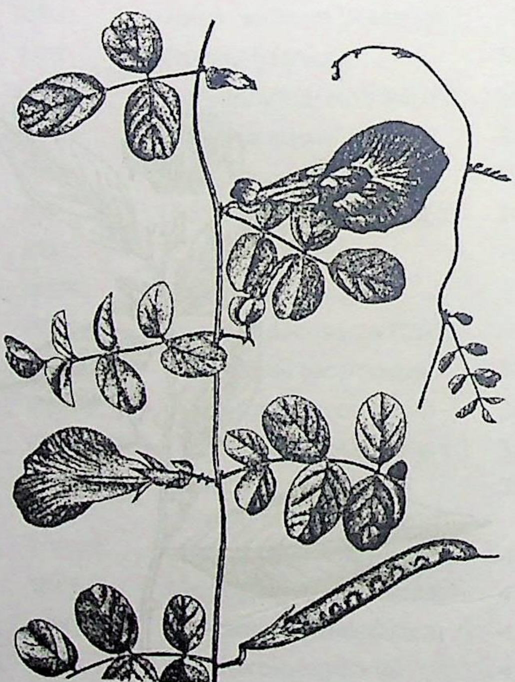
अतसी (Linum usitatissimum) Page - 7

7



अतिविषा (Aconitum heterophyllum) Page - 10

8



अपराजिता (Cliforia ternatea) Page - 11

9



अपामार्ग (Achyranthes aspera) Page - 13

10



अम्लवेतस (Rumex vesicarius) Page - 16

11



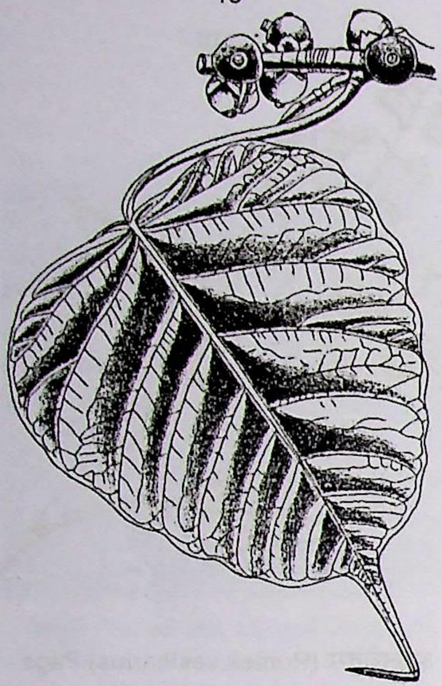
अशोक (Saraca asoca) Page - 26

12



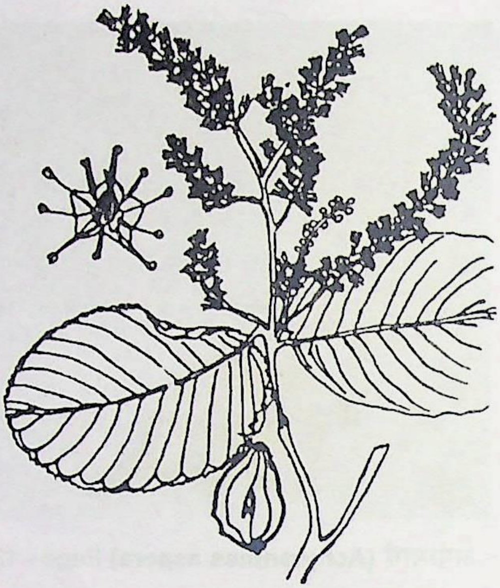
अश्वगन्धा (Withania somnifera) Page - 27

13



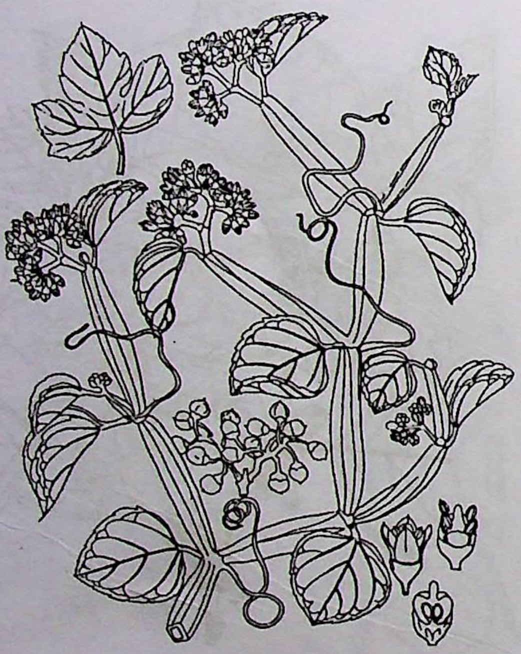
अश्वत्थ (Ficus religiosa) Page - 29

14



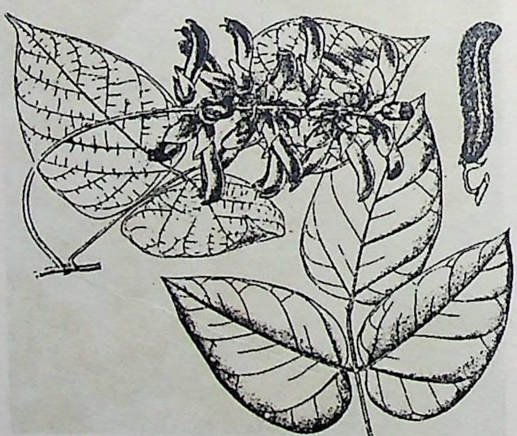
असन (Terminalia tomentosa) Page - 31

15



अस्थिसंहार (Vitis quadrangularis) Page - 32

16



आत्मगुप्ता (Mucuna pruciens) Page - 34

17



आर्द्रक (Zingiber oficinale) Page - 46

18



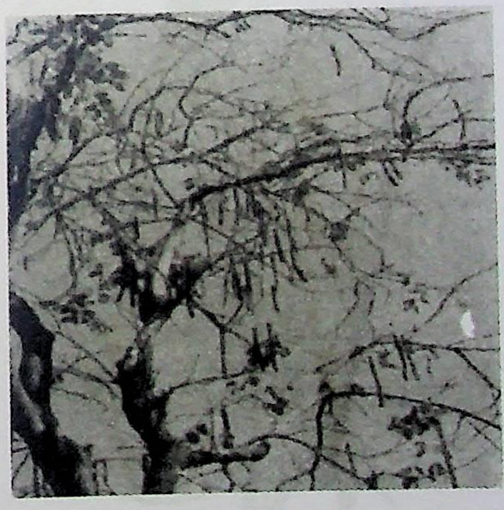
आमलकी (Phyllanthus emobhica) Page - 36

19



आम्र (Mangifera indica) Page - 39

20



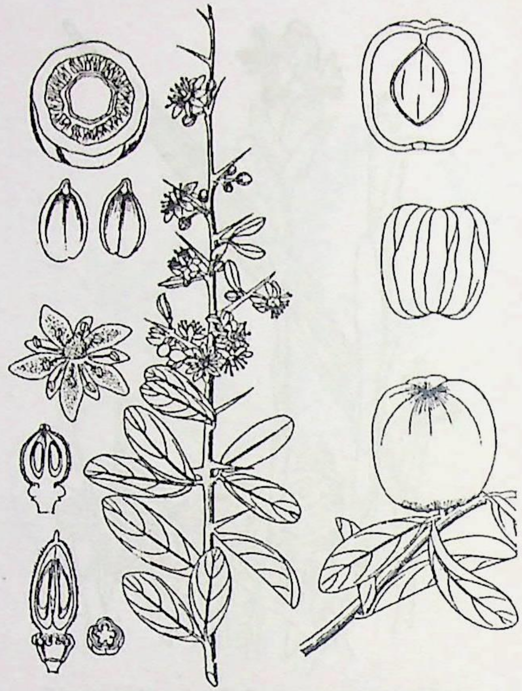
आरग्वध (Cassia Fistula) Page - 43

21



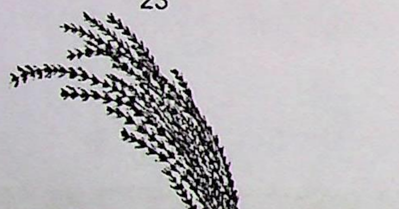
आवर्तकी (Helictres-isora) Page - 444

22



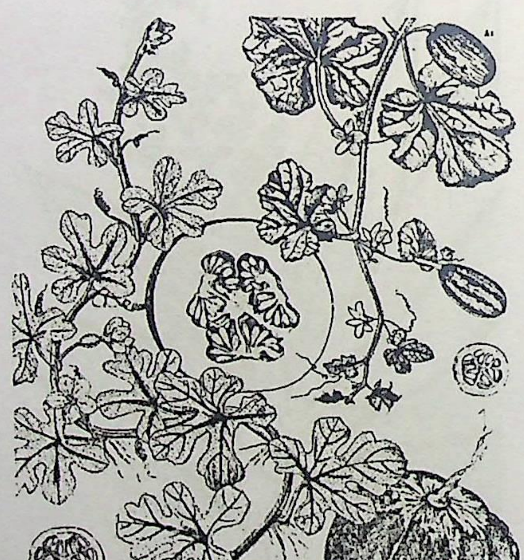
इङ्गुदी (Balanitis roxburghii) Page - 50

23



ईक्षुः (Saccharum officinarum) Page - 54

24



इन्द्रवारुणी (Cucumis trigonus) Page - 52

25



इसद्गोल (Spage seeds) Page - 446

26



उदुम्बर (Ficus glomerata) Page - 57

27



उपोदकी (Basella alba) Page - 60

28



उशीरादि (Andropogon squorrosus) Page - 61

29



एरण्ड (Ricinus communis) Page - 65

30



एला (Elettaria cardmomum) Page - 73

31



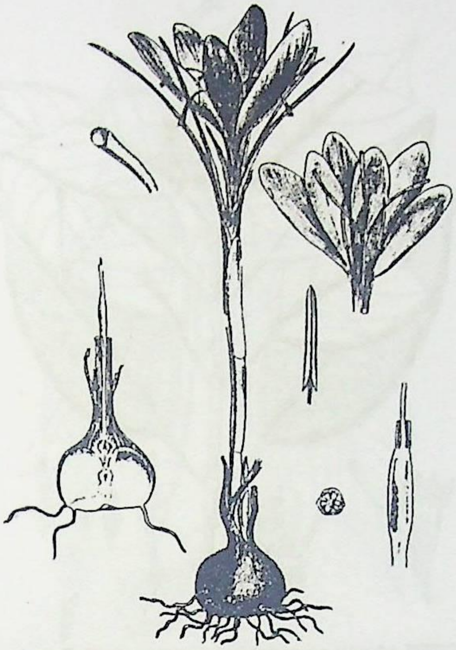
एर्वारु-प्रभृतय: (Cucumis utillssimus) Page - 68

32



कर्कटशृङ्गी (Pistacia integerrima) Page - 96

33



कङ्गुनी (Panicum italicum) Page - 74

34



कट्फल (Myrica sapida) Page - 75

35



कटुका (Picrorrihiza Kurroa) Page - 134

36



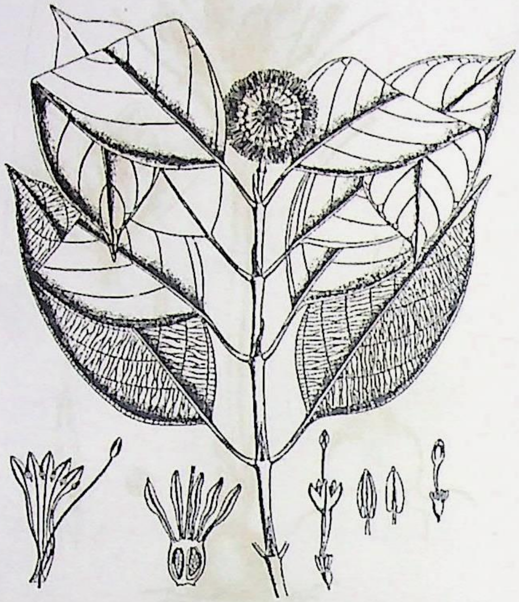
कण्टकारी (Solanum surattense) Page - 78

37



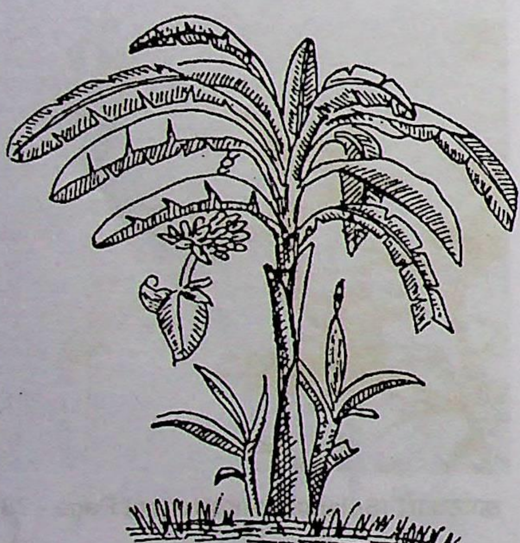
कतक (Strychnos potatorum) Page - 81

38



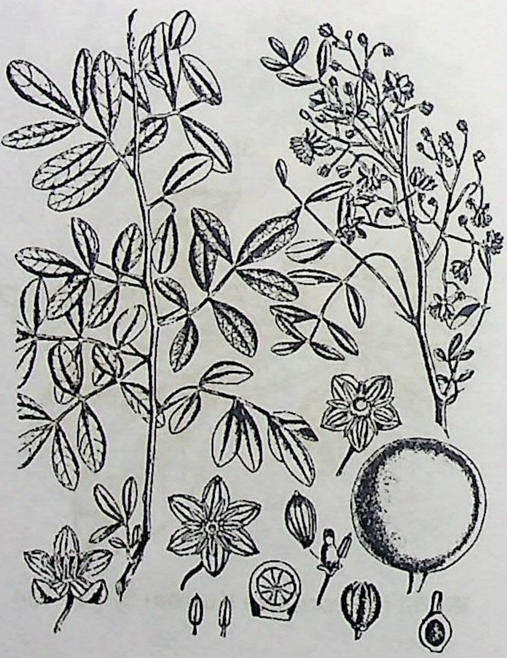
कदम्ब (Anthocephalus cadamba) Page - 82

39



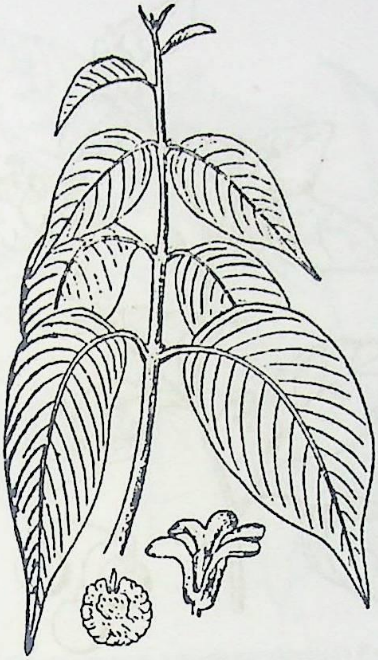
कदली (Musa sapientium)) Page - 83

40



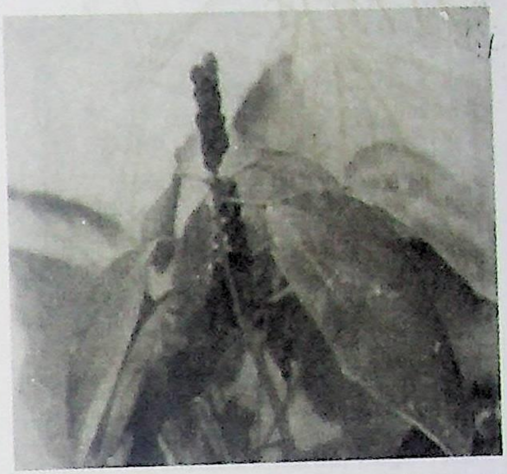
कपित्थ (Feronia elephantum) Page - 86

41



कर्पूर (Cinnomomum camphora) Page - 97

42



कम्पिल्लक (Mallotus philippensis) Page - 89

43



करञ्ज (Pongamia glabra) Page - 90

44



करवीर (Nerium indicum) Page - 94

45



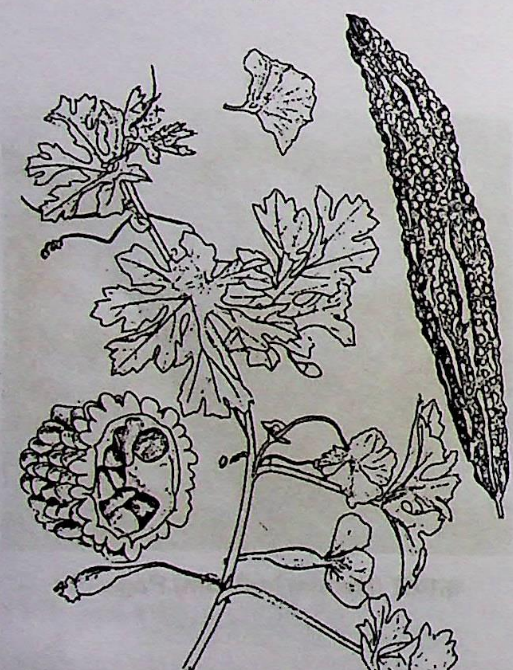
काकजङ्घा (Leea hirta) Page - 100

46



काकमाची (Solanum nigrum) Page - 102

47



कारवेल्ल (Momordica charantia) Page - 104

48



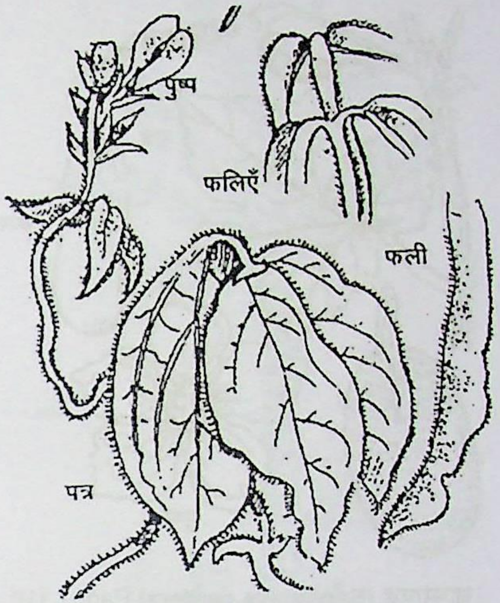
कासमर्द (Cassia occidentalis) Page - 107

49



कुटज (Holarrhena antidysenterica) Page - 110

50



कुलत्थ (Dolichos biflorus) Page - 112

51



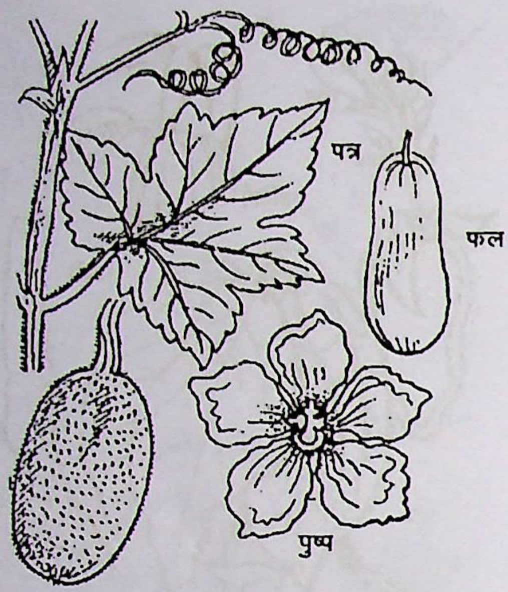
कुश-काशादि (Andropogon nardus) Page - 115

52



कुष्ठ (Saussurea costus) Page - 117

53



कुष्माण्ड (Benincasa cerifera) Page - 119

54



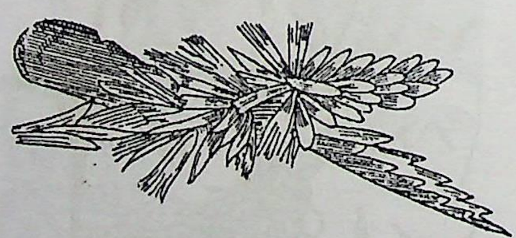
कुसुम्भ (Calthamustinctorious) Page - 155

55 A



केतकी (Pandanus odoratissimus) Page - 123

55B



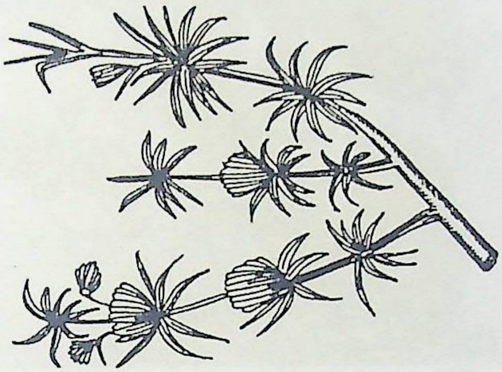
स्वर्ण केतकी (Pandanus Odoratissimus) Page - 382

57



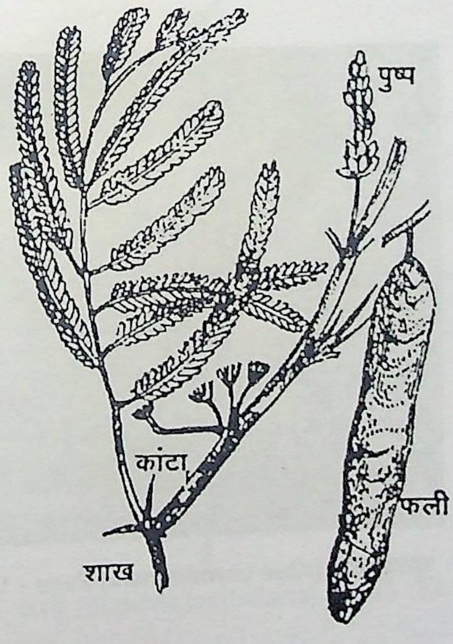
खर्जूरी (Phoenix sylvestris) Page - 133

56



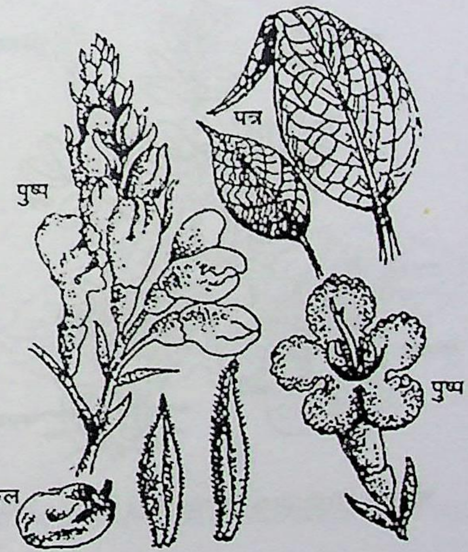
कोकिलाक्ष (Ruellia longifolia) Page - 124

58



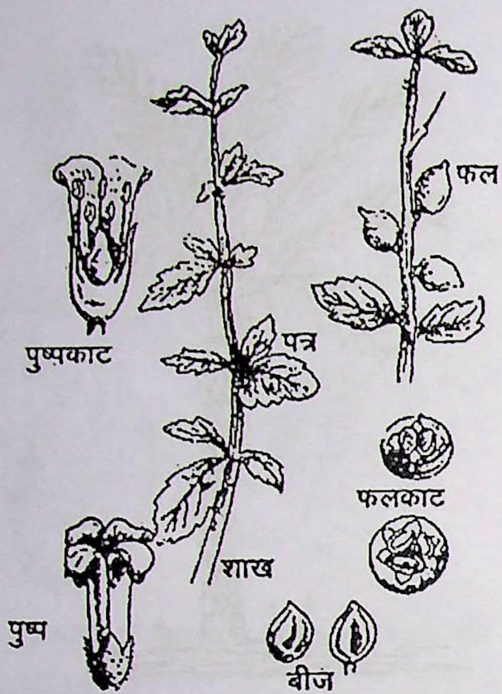
खदीर (Acocia catechu) Page - 130

59



गम्भारी (Gmelina arborea) Page - 137

60



गुग्गुल (Amyris commiphora) Page - 139

61



गुडुची (Tinospora cordifodia) Page - 145

62



गोखरु (Tribulus terrestris) Page - 148

63



घृतकुमारी (Aloe barbadensis) Page - 153

64



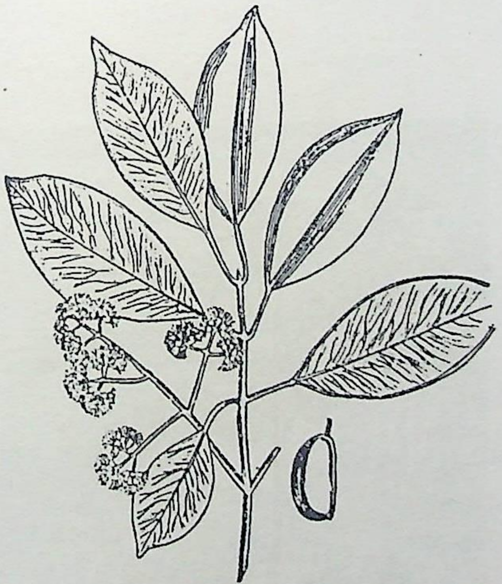
चन्दन (Santalum album) Page - 156

65



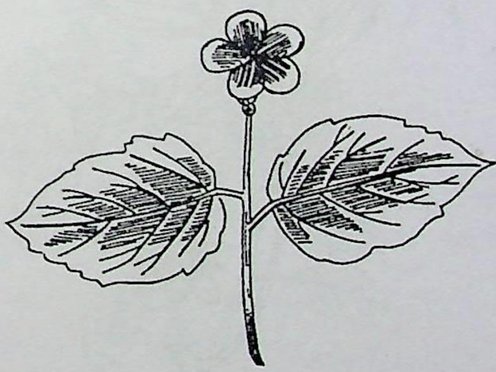
चित्रक (Plumbago zeylanica) Page - 161

66



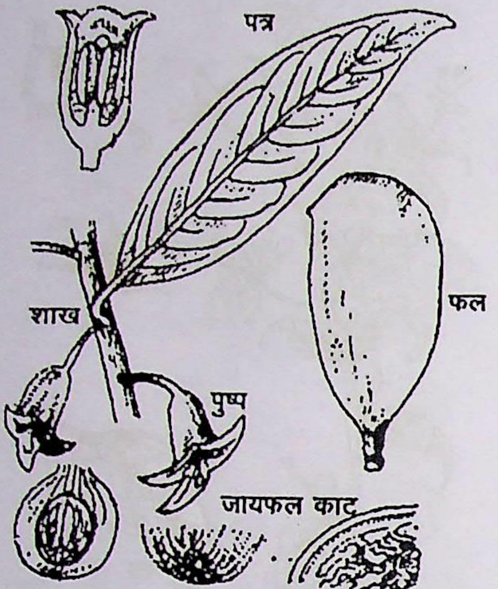
जम्बू (Eugenia jambolana) Page - 167

67



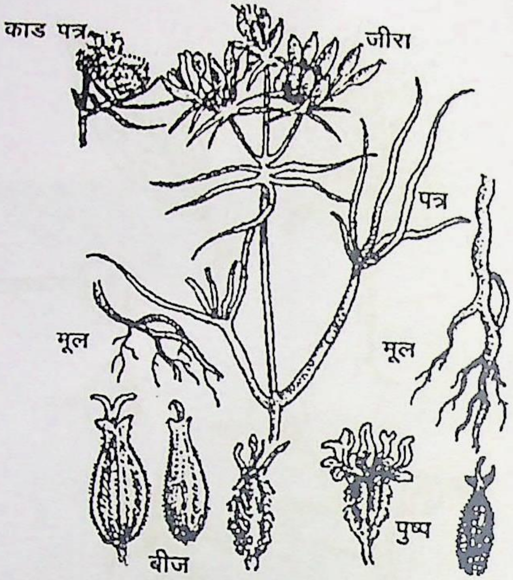
जवा (गुडहल) (Hibiscus Rosasinensis) Page - 391

68



जायफल (Myristica fragrans) Page - 178

69



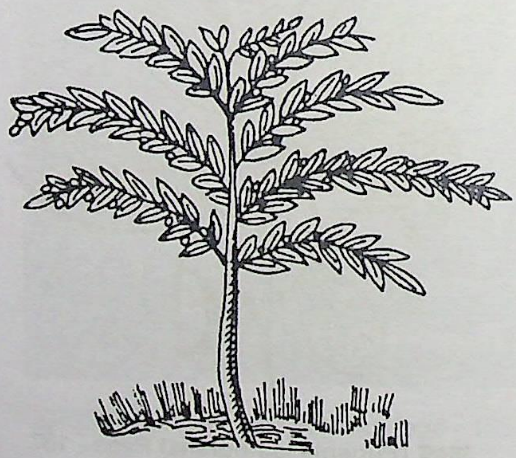
जीरकत्रय (Cuminum cyminum) Page - 180

70



ज्योतिष्मती (Celastrus paniculata) Page - 185

71



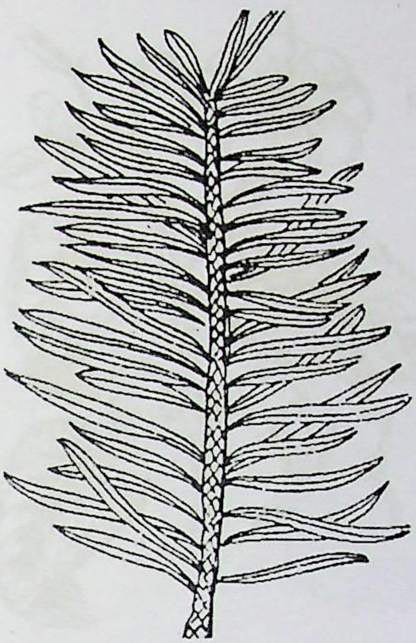
तामलकी (Phyllanthusnirhri) Page - 347

72



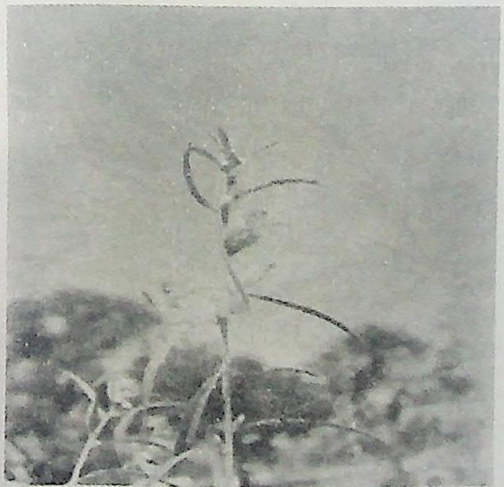
ताल (Borassus flabelliformis) Page - 198

73



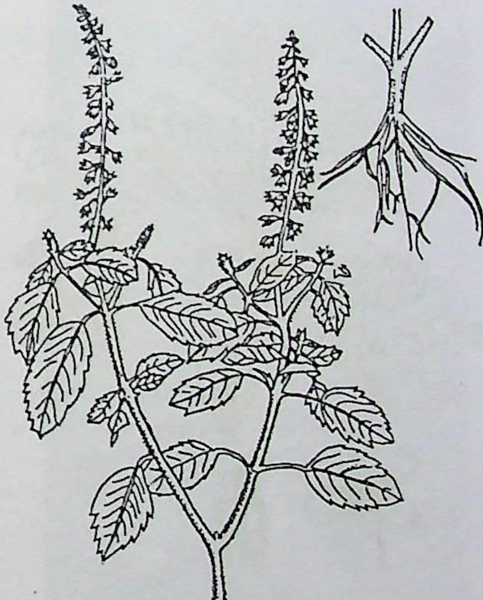
तालीसपत्र (Abies Webbiana) Page - 199

74



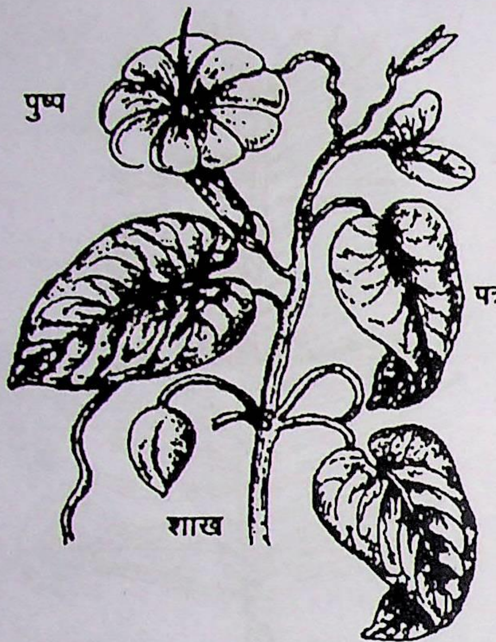
तिल (Sesamum indicum) Page - 206

75



तुलसी (Ocymum sanctum) Page - 210

76



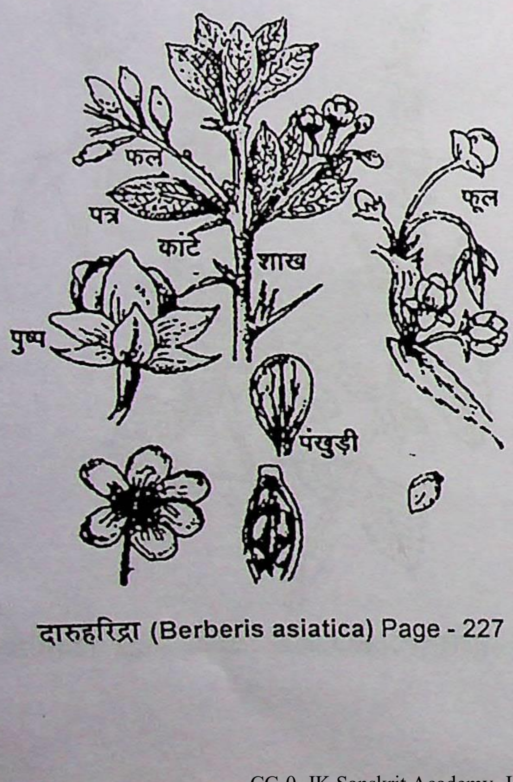
त्रिवृत् (निषोथ) (**Ipomoea turpethum**) Page - 216

77



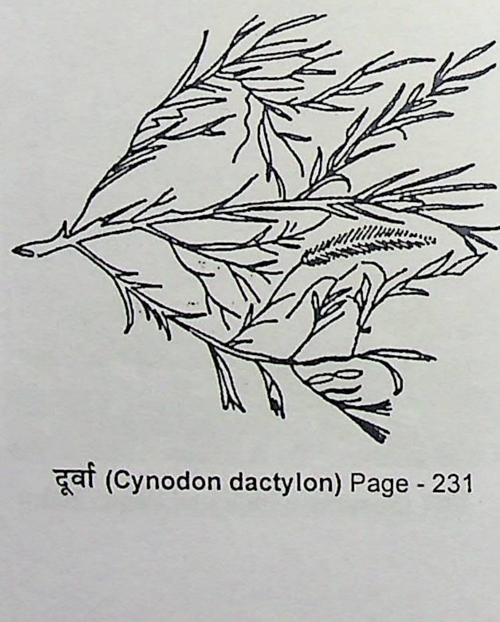
दाडिम (Punica granatum) Page - 223

78



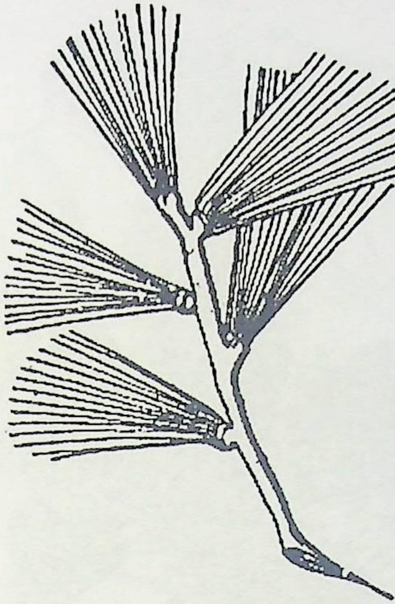
दारुहरिद्रा (Berberis asiatica) Page - 227

79



दूर्वा (Cynodon dactylon) Page - 231

80



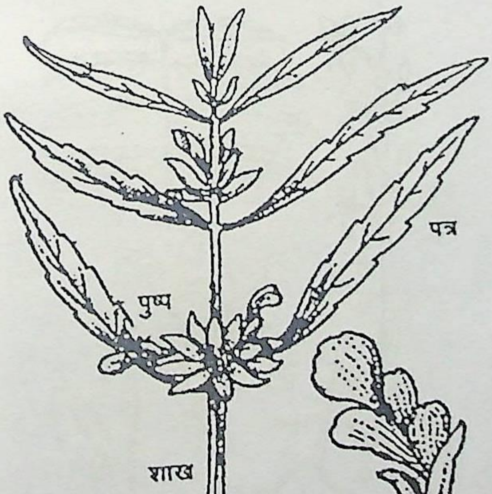
देवदारु (Pinus Deodara)
Page - 233

81



द्राक्षा (Vitis venifera) Page - 235

82



द्रोणपुष्पी (L. zeylanica) Page - 238

83



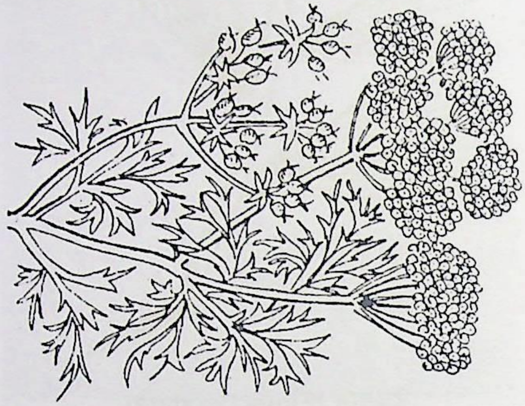
धतुरा (Datura Fastuosa) Page - 242

84



धातकी (Woodfordia floribunda) Page - 239

85



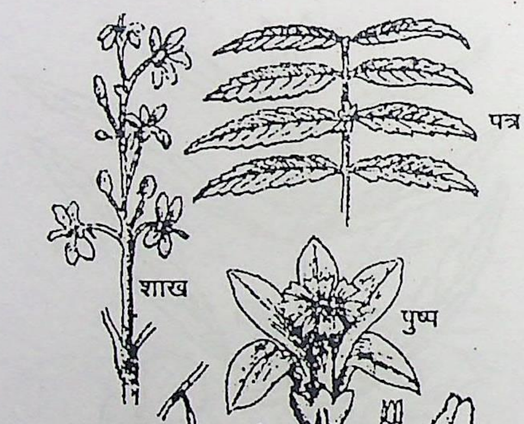
धान्यक (Coriandrum sativum) Page - 240

86



नागकेशर (Mesua ferrea) Page - 246

87



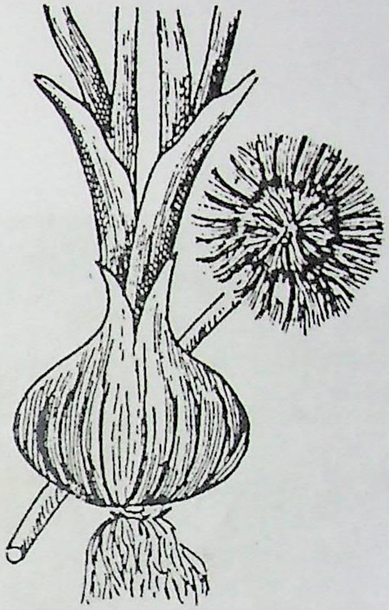
नीम्ब (Melia azadiracta) Page - 249

88



पटोल (Trichosanthes dioica, Roxb) Page - 255

89



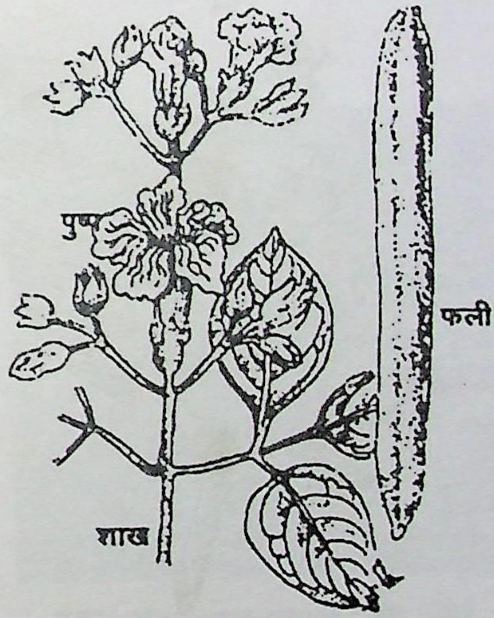
पलाण्डु (Alium Sepa) Page - 695

90



पलाश (Butea frondosh) Page - 266

91

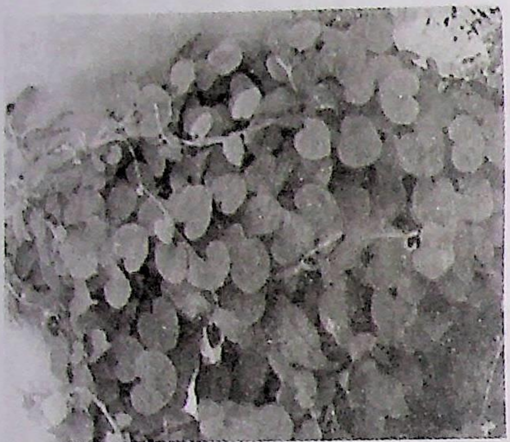


पाटला (Stereospermum suaveolens) Page - 196

93



92



पाठा (Cissampelos pareiro) Page - 269

पिप्पली (Piper longum) Page - 272

94



पुन्नाग (Ochrocarpus Songifolium) Page - 384

95



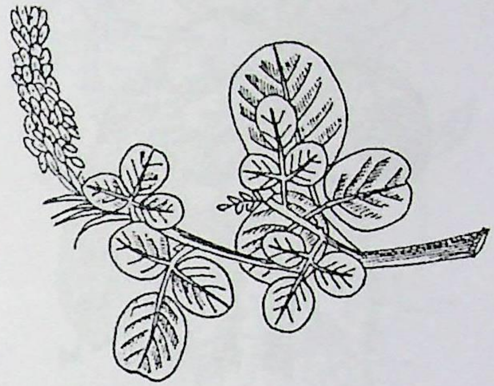
पुनर्नवा (Boerrhavia diffusa) Page - 279

96



पूगफल (Areca catechu) Page - 282

97



पृश्निपर्णी (Lagopoides Uraria picts.) Page - 206

98



प्रसारणी (Paederia foetida) Page - 286

99



बकुल (Mimusops elengi) Page - 290

100



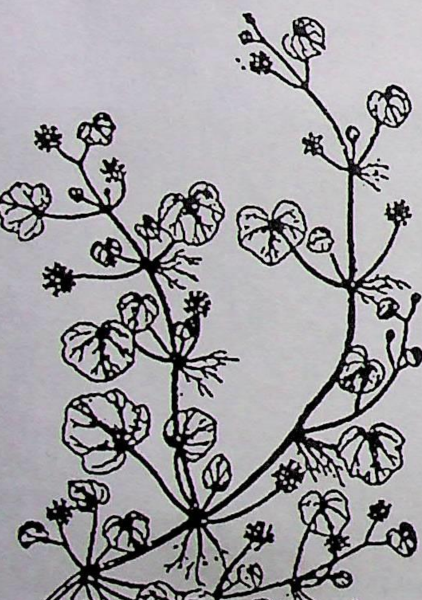
बिभीतक (Terminalia belarica) Page - 320

101



बिल्व (Aegle marmelos) Page - 322

102



ब्राह्मी-मण्डुकपर्णी (Gratiola monniera) Page - 332

103



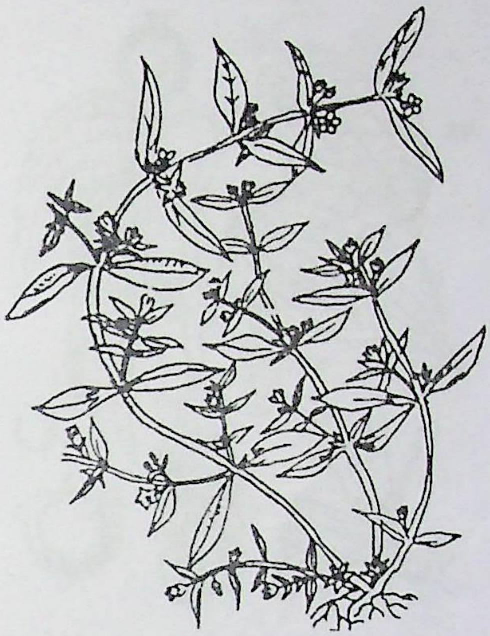
बृहती (बड़ी कटेरी) (Solanum indicum) Page - 327

104



भारंगी (Siphonanthus indica) Page - 339

105



भृंगराज (Eclipta alba) Page - 342

106



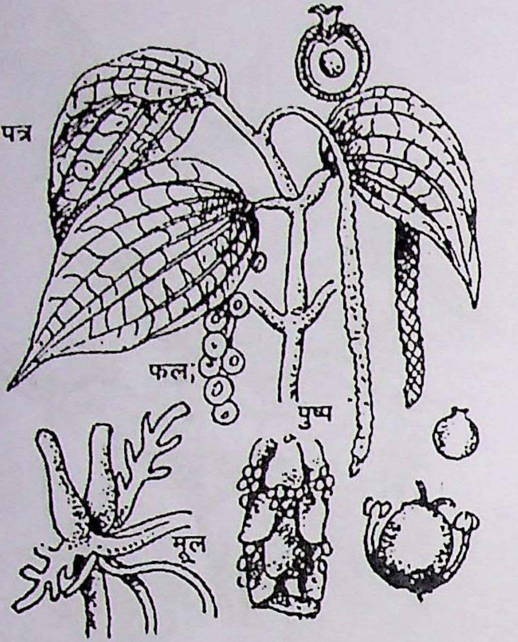
मञ्जिष्ठा (Rubia-corbifolia) Page - 206

107



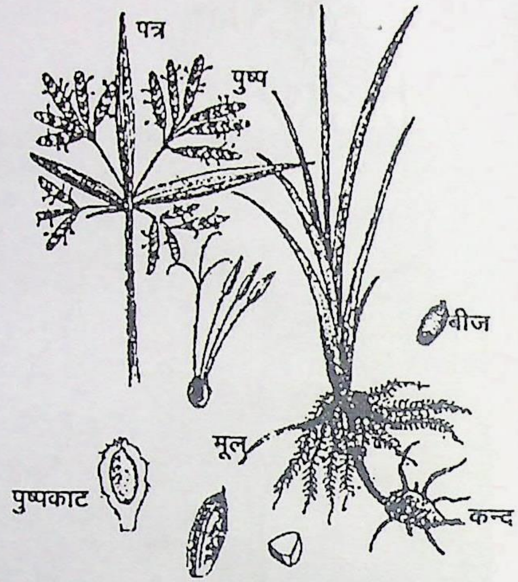
मदन (Randia dumetrom) Page - 346

108



मरिच (कालीमिर्च) (Piper nigrum) Page - 352

109



मुस्तक (Cyperus rohundus) Page - 364

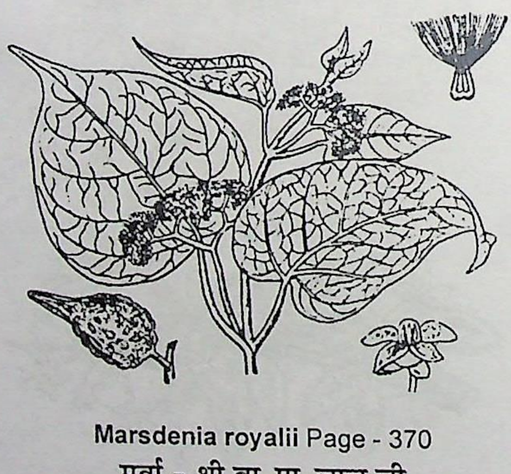
110 A

सूचीमुखी-मूर्वा



Sansevieria-roxburghia Page - 370

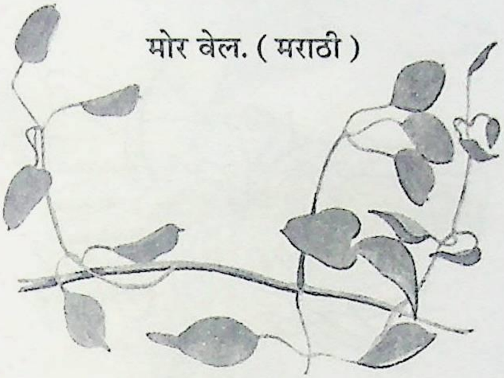
110 B



Marsdenia royalii Page - 370

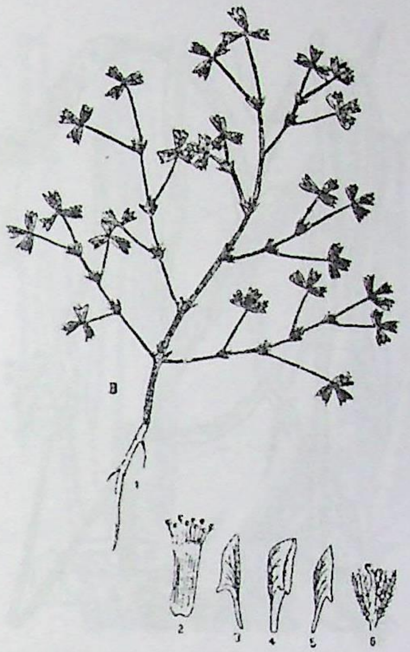
मुर्वा - श्री बा. पा. लाल जी

110 C



Clematis-triloba Page - 370
मुर्वा - श्री भागीरथ जी

111



मेथिका (Fenugreek) Page - 470

112



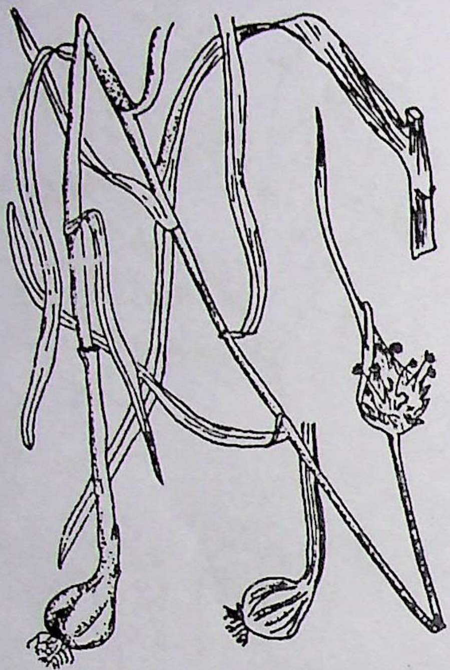
मेषश्रृंङ्गी (Gymnema sylvestre) Page - 371

113



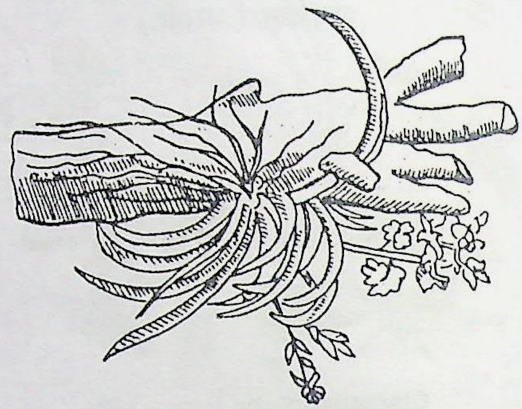
यवानी (अजवायन) (Ptychotis ajowan) Page - 373

114



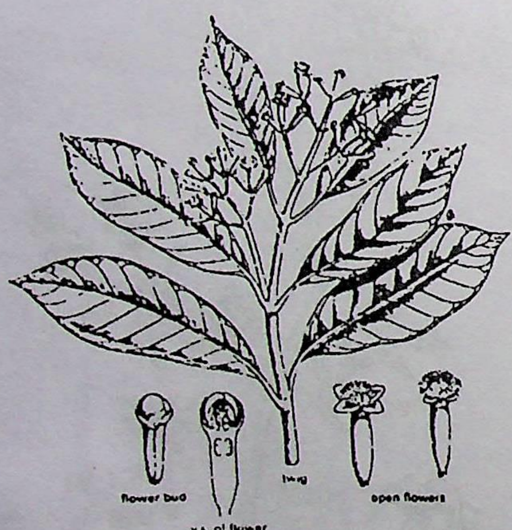
रसोन (Allium sativum [Rasona]) Page - 376

115



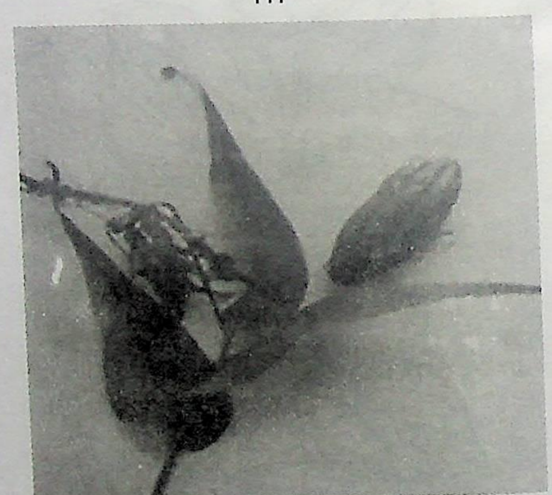
रास्ना (Vanda roxburghic) Page - 140

116



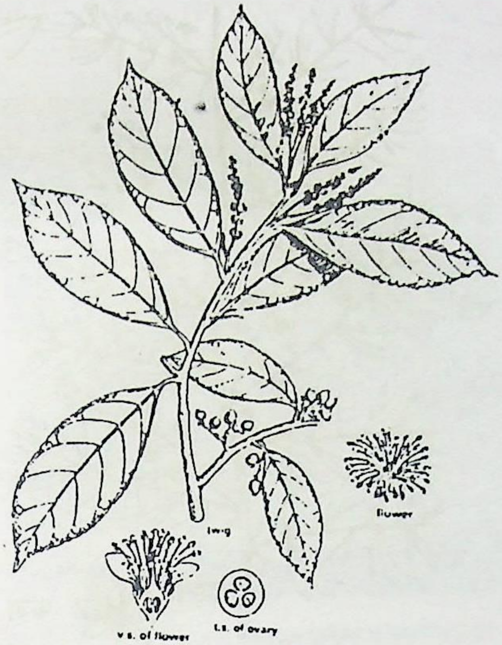
लवङ्ग (Caryophyllus aromaticus) Page - 382

117



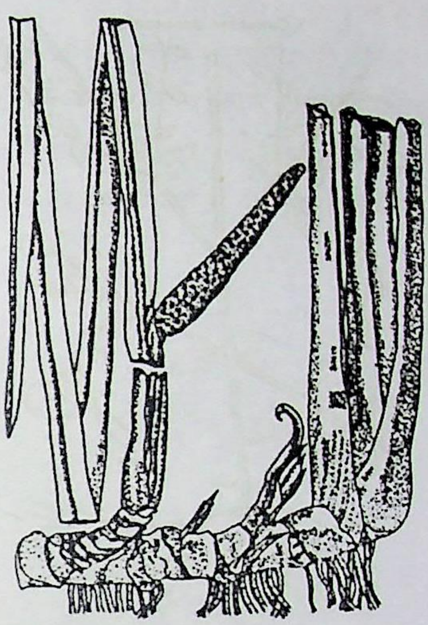
लांगली (Gloriosa superba) Page - 384

118



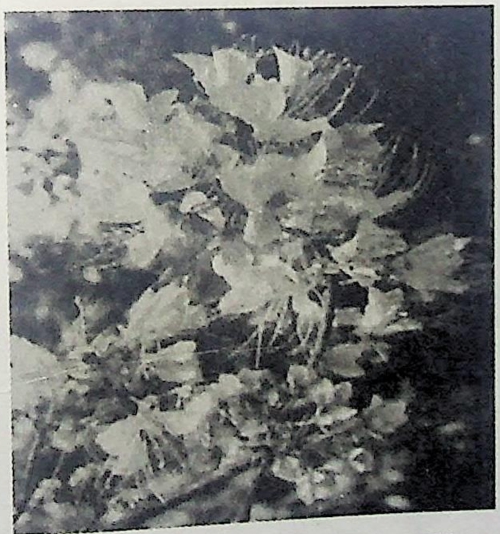
लोध्र (Sympiocos Racemosa) Page - 386

119



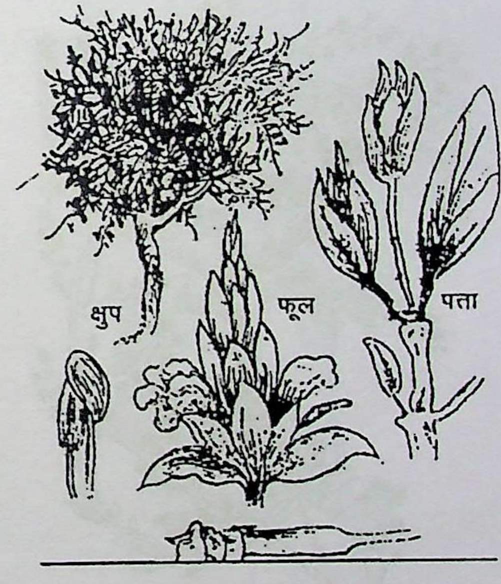
वचा (Acorus calamus [Vaca]) Page - 291

120



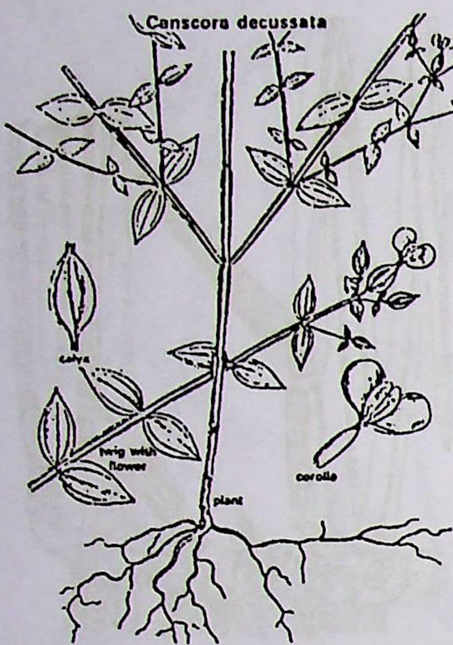
वरुन (Crataeva magna) Page - 299

121



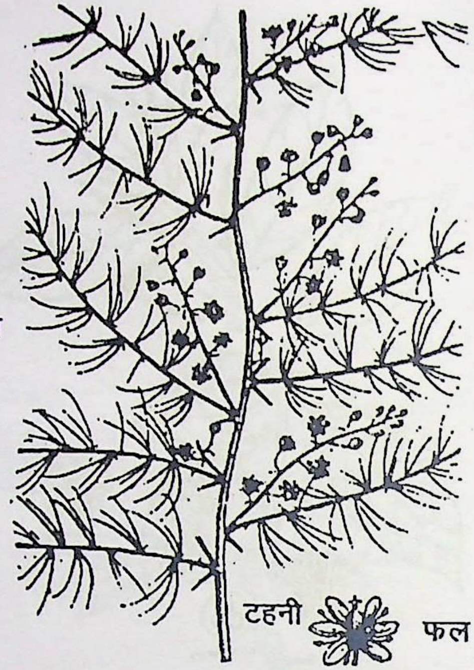
वासक (Adhatoda vasica) Page - 314

122



शंखपुष्पी (Pladera decussata Roxb) Page - 388

123 A



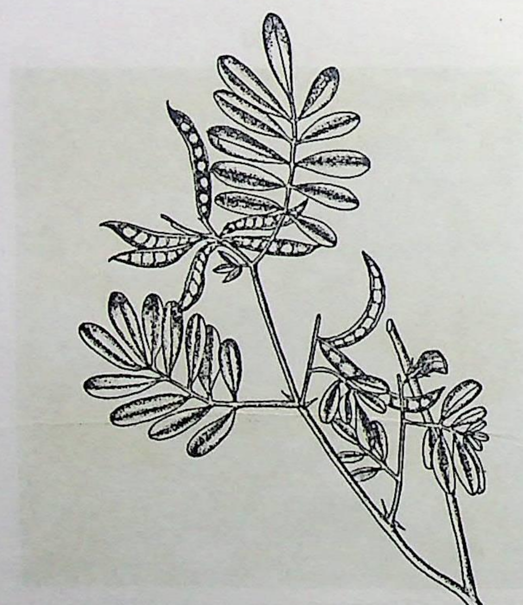
शतावरी (Asparagus racemosus) Page - 390

123 B



शतावरी (Asparagus racemosus) Page - 390

124



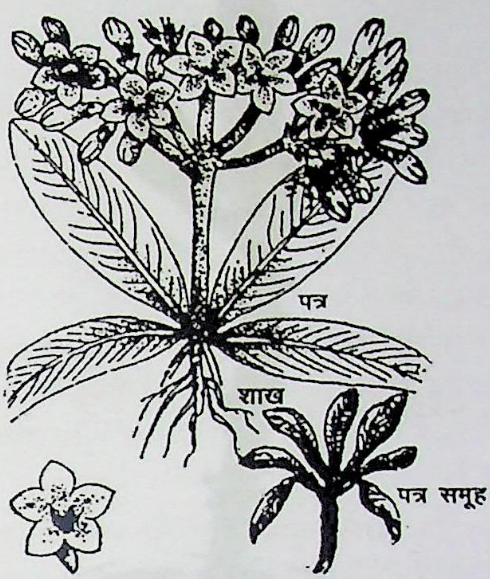
शरपुङ्खात्रय (Tephrosia purpurea Pers.)
Page - 393

125



शाल्मली (Bombax ceiba after sheding of-the leaves) Page - 396

126



सप्तपर्ण (Alstonia scholaris) Page - 411

127



सारीवा (Asclepias pseudosarsa) Page - 416

128



सोमराजी (Serratula anthelmintica) Page - 427

129



स्नुही **(Euphorbia Ligularia)**
Page - 423

130

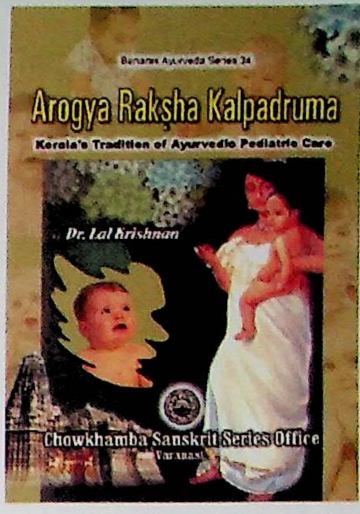


हरीतकी **(Terminalia chebula)**
Page - 429

131



हिंगु (हिंग) **(Ferula foetida)**
Page - 437



Arogya Raksha kalpadruma, is a laudable literary source on specialty Ayurvedic pediatric care of Kerala terrain. Sri. Kaikkulangara Rama Warrier, one of the illustrious astute of ancient kerala, is considered as the author of this treasured literature. This literary work contains exceptional information regarding various diseases pathogenesis and its management, with reference to pediatric age group, which is not seen any of the other Ayurvedic literary works.

A sumptuous explanation of 51 type of Visarpa (inflammatory skin diseases) etiology, pathogenesis and its management is explicatively explained in this book is its outstanding feature. Apart from this topic, various other disease pathogenesis and its management, such as rakta sthambha, kundalaka, sakha roga, nabhi roga etc. are explained in this work. This is another special feature not seen in any of the other Ayurvedic literary works present today. Another topic of special citation is that, is the lucid explanation on immunomodulatory methods followed in children, is explained under the topic as prakaradi yoga, is a specially of this book. Aside from all the above, Arogya raksha kalpadruma explains the innards of all the eight specially divisions of Ayurveda.

On rummaging the heirloom of Kerala's splendid Ayurvedic pediatric health care treasures, one can find, Arogya raksha kalpadruma, is the bible of the ancient Ayurvedic pediatric health care wisdom of Kerala.

Dr. Lal Krishnan 400.00

ISBN : 81-7080-209-1

Price : Rs.